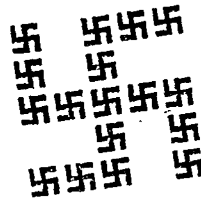
प्रकाशक—
श्री जैन साहित्य मन्दिर
(वीरपुत्र कार्यालय)
कड़क्का चौक
अजमेर



मुद्रक—
श्री मानमल जैन
श्री वीरपुत्र प्रिंटिंग प्रेस
नया बाजार, अजमेर

प्रकाशकीय निवेदन



किसी भी राष्ट्र, समाज या धर्म का गौरव तथा उसकी आत्मा उसके साहित्य में ही व्यक्त होती है। जैन समाज का गौरव उसके ठोस साहित्य, प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्धांत, सांस्कृतिक उच्चता और उदार भावना के कारण ही सुदृढ़ और चिरस्थायी सा अब तक कायम रह सका है।

किन्तु दुर्भाग्यवश जब से हमारे जैनाचार्यों में या जैन समाज में साम्प्रदायिक भावना, स्व प्रतिष्ठा या अपना संगठन बनाने की भावना प्रबलवती हुई उनका ध्यान जैन सिद्धांतों के प्रचार व लोक कल्याण के कार्य से निरन्तर दूर हटता गया और पूर्वाचार्यों द्वारा उपर्जित श्री कीर्ति में वृद्धि के स्थान पर घटती ही हुई व होरही है। मेरे तेरे में भगवान, सिद्धान्त, साहित्य, कलाधाम आदि सभी के टुकड़े २ कर दिये गये और आज उन्हीं टुकडों की रक्षा को "स्वत्व रक्षा" माना जा रहा है। आपसी कलह ने प्रगति के मार्ग में कांटे बिछा रक्खे हैं।

ऐसे समय में यह आवश्यक है कि समाज का ध्यान संकुचित मनोवृत्ति को छोड़ ऐक्य सूत्र में आबद्ध होकर टुकड़ों २ में बिखरी हुई पूंजी को एक स्थान पर ग्रन्थित करने, अपनी प्रतिष्ठा और साधन सम्पन्नता अनुभव करने की ओर आकर्षित कराया जाय। इस एक स्थान पर एकत्रित सम्पति का स्वरुप इतना विशाल, सुदृढ़ और सुन्दर है कि जिसकी समानता विश्व का कोई भी संगठन या सिद्धान्त नहीं कर सकता। पूर्वजों का गौरव गुम्फित करने की भावना ही इस "जैन गौरव स्मृतियां ग्रन्थ प्रकाशन का मुख्य कारण बना। भावना जगीं और प्रयत्न किया गया।

और यह ग्रन्थ उसी प्रयत्न का फल है। सत्य तो यह है कि जैन समाज का गौरव प्रकट करने के लिये भिन्न २ विषयों पर हजार ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जांय तब भी पूर्णता या अन्तिम छोर नहीं पाया जा सकता। यह ग्रन्थ तो संक्षिप्त सूची मात्र ही बन पाया है।

साहित्य सृजन की इस दिशा में एक विशेष सामर्थ्य युक्तसंगठित प्रयत्न की आवश्यकता है। इसके लिये एक शोध खोज तथा एक ऐसे विद्वद् लेखक मंडल के गठन की आवश्यकता है जिनके जीवन का उद्देश्य ही 'जैन गौरव' की खोज व प्रकाशन बनजाय।

समया भाव, आर्थिक कठिनाइयाँ, यथेष्ठ कागज प्राप्ति में दुर्लभता आदि कई कारणों से कई एक प्रकरण हमें प्रकाशन सामग्री से अलग रखने पड़े हैं—लिखी सामग्री में काट छांट करने को बाध्य होना पड़ा है। ग्रन्थ प्रकाशन की अवधि विशेष बढ़ाना उचित नही समझा गया और आज यह ग्रन्थ पाठकों की सेवा में प्रेषित है।

जैसा कि उपर लिखा जा चुका है कि यह ग्रन्थ तो 'जैन गौरव' की एक सूचि मात्र है। इस सूचि के आधार पर गौरव गाथा संग्रहीत करने के लिये विशाल

शक्ति और साधनों युक्त प्रयत्न करने की आवश्यकता है। जैन समाज इस ओ ध्यान दे, यह आवश्यक है। यह ग्रन्थ इस दिशा में एक निवेदन माना जाय।

ग्रन्थ प्रकाशन में जिन २ सज्जनों ने 'माननीय सहायक' के रुप में आर्थिव सहायता प्रदान की है उनके हम उपकृत हैं। कोटिश धन्यवाद।

अजमेर १५-५-५१ —मानमल जैन

विषयानुक्रम

भारतीय इतिहास और राजनीति में जैन जाति—३०७-३९०

★जैन साहित्य और साहित्यकार पृष्ठ ३९१

★ जैन कला और कलाधाम ४५५-५२४

*इस विषय सूची में केवल प्रमुख साहित्य कारों के ही नामोल्लेख व संख्या बताई गई है। विषय विस्तार में कई साहित्यकारों का निवेचन है।

आवश्यक सूचना—

नोट—ग्रन्थ प्रारम्भ पृष्ठ ५१ से किया गया है इससे पूर्व की पृष्ठ "भूमिका" के लिये छोड़े गए थे।

भूमिका एक विशिष्ठ विद्वान् ने लिखने का आश्वासन प्रदान किया था किन्तु वार २ निवेदन करने पर जब वह प्राप्त न हो सकी और ग्रन्थ प्रकाशन में बिलम्ब होता दिखाई दिया तो विना भूमिका के ही यह प्रकाशित कर रहे हैं। अतः यह पृष्ठ संख्या खाली समझी जाय।

माननीय संरक्षक

सेठ ओमाजी ओखाजी, मालवाड़ा, जोधपुर

मालवाड़ा निवासी सेठ मगनलालजी, सेठ मूलचन्दजी और सेठ चिम्मनलालजी इस परिवार के मुखिया हैं। तीनों ही परम उदार, धर्मनिष्ठ, शिक्षा व साहित्य प्रेमी व गुप्त दानी हैं। मालवाड़ा में विशाल भवन और सवालाख रू० ध्रुव फंड से ओमाजी ओखाजी मिडिल स्कूल व धर्मार्थ औषधालय है। वर्तमान में जोधपुर में काम काज होता है। विशेष पृष्ठ ५६७ पर पढ़ें। आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायतार्थ २५०) अग्रिम व २५०) पश्चात प्रदान करने की उदारता प्रदर्शित की है। कोटिशः धन्यवाद।

माननीय सहायक

१—दानवीर रावराजा राज्य भूषण श्रीमन्त सर सेठ हुकमचंदजी सा. इन्दौर

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, जैनसमाज के सर्वोपरि नेता, संरक्षक व दानवीर (विशेष परिचय पृष्ठ ५५०) आप से ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में बड़ी सहायता प्राप्त रही है। धन्यवाद !

२—रायबहादुर राज्य भूषण सेठ कन्हैयालालजी भंडारी, इन्दौर

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, मिल मालिक व शिक्षाप्रेमी (विशेष परिचय पृष्ठ ५६०) आप से ग्रन्थ प्रकाशन में बड़ी सहायता प्राप्त रही है। धन्यवाद !

निम्न महानुभावों ने ग्रन्थ प्रकाशन में १०० रुपया विशेष सहायता रूप में प्रदान करने की कृपा की है। एतदर्थ सबको कोटिशः धन्यवाद। —प्रकाशक

३—जैनरत्न रायबहादुर सर सेठ भागचन्दजी सा. सोनी, अजमेर

जैन समाज के रत्न, प्रसिद्ध श्रीमन्त, टीकमचंद

जैन हॉईस्कूल के जन्मदाता व पोषक। राजस्थान की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के सहायक। परिचय पृष्ठ ५६७

४—सेठ छगनमलजी सा. मूथा, बंगलौर

सुप्रसिद्ध शिक्षा प्रचारक दानवीर। कई संस्थाओं के संचालक (५६७) स्थानकवासी जैन समाज के आगेवान।

५—रामपुरिया परिवार, बीकानेर

बीकानेर राज्य का सुप्रसिद्ध धन कुबेर, मिल मालिक। रामपुरिया कॉलेज के संचालक।

६ समाज भूषण सेठ राजमलजी सा० ललवानी, जामनेर

जैन समाज की एक्यता के लिये सतत प्रयत्न कर्त्ता, महान सुधारक व समाज प्रेमी। एक्स एम० एल० ए०। (५८१)

७. सेठ साहूशीतलप्रसादजी सा. जैन, दिल्ली

सुप्रसिद्ध उद्योगपति डालमिया जैन लि. के प्रमुख साझीदार। कुशल व्यवसायी। महान् उद्योगपति। रईस (५८२)

८. रा. सा. सेठ मोतीलालजी सा. रानीवाला, ब्यावर

एडवर्ड मिल्स ब्यावर के मैनेजिंग डायरेक्टर, राजस्थान के प्रसिद्ध उद्योग पति, उदार चेता। (५७२)

९. दीवान बहादुर सेठ केशरीसिंहजी सा. बाफणा, कोटा

राजस्थान के प्रतिष्ठित श्रीमन्त। गंगा नगर शुगर मिल्स आदि उद्योगों के धनी (५७४)

१०. सेठ सौभाग्यमलजी सा. लोढ़ा, अजमेर

उदार चरित्र शिक्षा प्रेमी श्रीमन्त। मेवाड़ टेक्सटाइल मिल्स भीलवाड़ा के मैं० डायरेक्टर। (५७५)

११. सेठ राजेन्द्रसिंहजी नरेन्द्रसिंहजी सा. सिंघी, कलकत्ता

कलकत्ता व बंगाल जैन समाज के प्रमुख गौरव शील परिवार के मुखिया। (५७६)

१२. नेमीचन्दजी सा. गधइया, कलकत्ता

सरदार शहर के सुप्रसिद्ध परिवार सेठ श्रीचन्दजी गणेशदासजी

गधइया के प्रमुख । कलकत्ता में प्रमुख कपड़ा व्यवसायी तेरापन्थी जैन समाज के आगेवान, उदार चेताश्रीमन्त । (५७६)

१३ सेठ रतनचन्दजी सा. बांठिया, पनवेल,

धूत पापेश्वर सेल्स कोरपोरेशन के संचालक, प्रसिद्ध उद्योग पति, दानवीर श्रीसन्त (५८३)

१४ सेठ ईश्वरचन्दजी भैरोदानजी सा. चौपड़ा, गंगाशहर

तेरा पंथी जैन समाज के सर्वोपरि नेता । दानवीर शिक्षा प्रेमी श्री मन्त । चौपड़ा हाई स्कूल के संचालक । चौपडा राम नगर स्टेट के मालिक । (५८४)

१५ सेठ चम्पालालजी सा. बांठिया, भीनासर

उत्साही, विचारवान कार्यकर्त्ता व दानवीर श्रीसन्त । जवाहर विद्या पीठ व जवाहर साहित्य प्रकाशन के प्राण । एकम एम. एल. सी. । (५८५)

१६ सेठ चम्पालालजी सा. बेद, भीनासर

परम उदार चेता श्रीमन्त । तेरा पंथी जैन समाज के आगेवान (५८६)

१७ सेठ नथमलजी सा. सेठी, कलकत्ता

कलकत्ता के प्रसिद्ध जूट व्यवसायी व उद्योगपति । सामाजिक कार्य कर्त्ता । (५८७)

१८ सेठ घनश्यामदासजी सा. आकलीवाल, लालगढ़

आसाम में बर्मा आयल कम्पनी के प्रमुख सार्थी । राज्य सन्मानित । उदार चरित्र । (५८८)

१९ श्री जवाहरलालजी सा. दफतरी, बनारस

समाज सेवी कर्मठ कार्य कर्त्ता । ओसवाल महा सम्मेलन के म. मंत्री (५९१)

२० सेठ लक्ष्मीचन्दजी फतेहचन्दजी सा. कोचर, बीकानेर

धर्मवीर । धार्मिक व शिक्षा प्रचार कार्यों में परम सहायक । (५९२)

२१ सेठ नरभेरामजी हंसराजजी कामानी, जमशेदपुर

सुप्रसिद्ध उद्योगपति । जमशेदपुर जैन संघ के संघपति । धार्मिक व शिक्षा कार्यों के परम सहायक (५९५)

२२ सेठ सागरमलजी सा. चौपड़ा, नाली (मारवाड़)

स्वभावतः परम उदार जन हितैषी। मेसर्स देवीचन्द दलीचंद नई हनुमानगली बम्बई फर्म के मालिक। बम्बई में सर्व श्रेष्ठ छाता व्यापारी। साहित्यिक कार्यों के विशेष प्रेमी। मारवाड़ जैन युवक संघ के प्राण।

२३ श्री सुगनचन्दजी आंचलिया, सैंथिया

प्रगतिशील गंभीर विचारक। साहित्य प्रेमी। तेरा पंथी जैन समाज के कर्मठ कार्य कर्ता व अणुव्रती। हीरालाल प्रतापमल सोंथिया (वीर भूमी बंगाल) फर्म के मालिक। परम उदार।



शिल्प कला के आदर्श नमूने



जैसलमेर में भ० शान्तिनाथजी का मन्दिर।



श्री लोद्रवा (जैसलमेर) में भ० पार्श्वनाथजी का मन्दिर

[विषयावतार]



जैनधर्म, विशाल विश्व रूपी नन्दन वन का सुन्दर पारिजात प्रसून है। जिस प्रकार पारिजात पुष्प में समस्त नन्दन वन को अपने अनुपम सौरभ से सुरभित करने की शक्ति रही हुई है इसी तरह जैनधर्म में वह दिव्य शक्ति विद्यमान है कि वह अपने सिद्धान्त सौरभ से समस्त संसार के वायुमण्डल को सौरभान्वित कर सकता है। यह केवल आलंकारिक वर्णन या अतिरंजित प्रशंसा नहीं अपितु वास्तविक सत्य है।

शान्ति का स्रोत

जैनधर्म विश्वशान्ति का शाश्वत स्रोत है। विश्व के आंगन में सुख और शान्ति रूपी सुधा का संचार एवं विस्तार करने का सर्वोपरि श्रेय यदि किसी को है तो वह जैनधर्म को ही हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैनधर्म ने ही सर्व प्रथम विश्व के सामने अहिंसा प्रधान संस्कृति प्रस्तुत की। जैनधर्म ही अहिंसामय संस्कृति का आद्य प्रणेता है। अहिंसा के द्वारा ही सच्ची शान्ति मिल सकती है, यह ध्रुव सत्य है। हिंसा, वैर, प्रतिस्पर्धा और युद्ध की दारुण विभीषिका से भयभीत बने हुए विश्व को इस सत्य की थोड़ी बहुत प्रतिती होने लगी है। आज सारा विश्व हिंसा और विनाश के साधनों से संत्रस्त है। सारा वायुमण्डल सम्भावित महायुद्ध के झंझात में अशान्त और विक्षुब्ध हो रहा है। चारों ओर अशान्ति का घोर अंधकार छा रहा है। ऐसे घोर अंधकार मय वातावरण में भी जैनधर्म का अहिंसा सिद्धान्त ही दूर-सुदुर तक चमकती हुई प्रकाश किरणों को फेंकने वाले प्रकाश स्तम्भ की शांन्ति के मार्ग का निर्देश कर रहा है।

क्लेश, कलह, कटुता और क्रूर-क्रांति के कारण कहराती हुई मानवता को यदि कष्टों से मुक्ति पाना है तो सुख शान्ति के स्रोत रूप अहिंसा का आश्रय लिए बिना नहीं चल सकता। अशांति रूपी राजयक्ष्मा से छुटकारा दिलाने वाली यही रामवाण महौषधि है। ऐसे संकट काल में जो भी शांति दृष्टिगोचर होती है वह अहिंसा प्रधान जैन संस्कृति की ही अनुपम देन है अथवा यह कहना चाहिए कि यह अहिंसा से ओत-प्रोत जैनधर्म, इस रूप में विश्व के लिए अनुपम वरदान है।

शांति का स्रोत

जैनधर्म, आत्मा का अधिराज्य स्थापित करने वाला धर्म है। अध्यात्म इसकी आधार शिला है। यह भौतिकता के संकुचित क्षेत्र में आबद्ध न होकर आध्यात्मिकता के विराट विश्व में उन्मुक्त होकर विचरण करने वाला है। इसका लक्ष्य बिन्दु इस दृश्यमान स्थूल संसार तक ही सीमित नहीं वरन् विराट अन्तर्जगत् की सर्वोपरि स्थिति प्राप्त करना है। यह बाह्य क्रिया काण्डों को विशेष महत्व नहीं देने वाला, विशुद्ध आध्यात्मिक धर्म है।

जैनधर्म, महान् विजेताओं का धर्म है। इस धर्म के आद्य उपदेशक 'जिन' है जिसका अर्थ महान् विजेता है। विजेता का अर्थ—दूसरों को जीतने वाला नहीं अपितु अपने आपको जीतने वाला है। आत्म विजेता ही सच्चा विजेता है। रण-संग्राम के विजेता सच्चे विजेता नहीं है क्योंकि उनकी विजय विजय-पताका की तरह ही अस्थिर है। उनकी विजय कालान्तर में पराजय में परिणत हो सकती है। उनके द्वारा फहरायी हुई विजय-ध्वजा प्रतिक्षण हिल-हिलकर उस विजय की अस्थिरता को प्रकट करती है। जर्मन विचारक हर्डक ने कहा है:—

"बड़े बड़े रणसंग्रामों में विजय पाने वाला वीर है, प्रचण्ड सिंहों को जीतने वाला वीर है परन्तु वह वीरों का भी वीर है-जो अपने आपको जीतता है।"

जिनेश्वर देव परम अध्यात्मिक विजेता हैं। उन्होंने अपने प्रबल आत्म बल के द्वारा समस्त अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उच्चतम आध्यात्मिक साम्राज्य प्राप्त किया है। ऐसे महान् विजेताओं का धर्म, जैन धर्म है।

चूंकि जैनधर्म महान् विजेताओं का धर्म है अतएव वह आत्मा की स्वतन्त्रता का उपासक है। वह मानता है कि आत्मा में अनन्त शक्ति है। प्रत्येक आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा ही परमात्मा बन सकता है। उसे किसी दूसरे पर अवलम्बित रहने की आवश्यकता नहीं है। जैनधर्म का यह स्वावलम्बन मय सिद्धान्त मानव को मानव की दासता से मुक्त करता है और उसे अपने परम और चरम साध्य को प्राप्त करने के लिये अदम्य प्रेरणा प्रदान करता है। जैनधर्म, अपनी इस विशेषता के कारण ही श्रमण-धर्म कहलाता है। श्रमण का अर्थ श्रम करने वाला होता है। किसी दैविक या अदृष्ट शक्ति पर अवलम्बित न रह कर व्यक्ति अपना विकास अपने ही परिश्रम द्वारा कर सकता है, यह सिद्धान्त श्रमण संस्कृति की अनुपम देन है।

भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास में जैनधर्म और संस्कृति का असाधारण योग रहा है। भारतीय संस्कृति में वैदिक, जैन और बौद्ध संस्कृति का विचित्र सामंजस्य है। अतएव जैन संस्कृति की उपेक्षा करने से भारतीय संस्कृति का वास्तविक चित्र ही अंकित नहीं किया जा सकता है। सर षण्मुखम चेट्टी ने एक भाषण में कहा है कि "जैनधर्म की महत्ता के विषय में कुछ कहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अपने अध्ययन के आधार पर यह अधिकार पूर्वक कह सकता हूं कि भारतीय संस्कृति के विकास में जैनों ने असाधारण योग दिया है। मेरा निजि विश्वास है कि यदि भारत में जैनधर्म का प्रभाव दृढ़ रहता तो हम सम्भवतः आज की अपेक्षा अधिक संगठित और महत्तर भारतवर्ष का दर्शन करते। जैनों की उपेक्षा करने से भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति का सच्चा चित्र हमारी आँखों के सामने नहीं आ सकता।

भारतीय संस्कृति की दो धारायें

प्राचीन काल से भारतवर्ष में दो प्रकार की विचारधारायें चली आ रही हैं। इन विचार-धाराओं को 'समण' और 'ब्राह्मण' शब्दों से प्रकट किया जाता है। 'समण' प्राकृत का शब्द है इसके संस्कृत रूप "श्रमण," 'समन' और "शमन" होते हैं। 'श्रमण' शब्द इस बात को प्रकट करता है कि व्यक्ति अपना विकास अपने ही श्रम से कर सकता है। विकास पतन, सुख-दुःख, हानि लाभ और उत्कर्ष-अपकर्ष के लिये व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है। कोई दूसरा व्यक्ति उसका उद्धार या अपकार नहीं कर सकता। इस तरह आत्मा की शक्ति पर ही अवलम्बित रह कर पुरुषार्थ की प्रेरणा देने

वाली संस्कृति श्रमण संस्कृति कही जाती है। 'समन' शब्द का अर्थ है समानभाव रखने वाला। जो संस्कृति सब प्राणियों को अत्मवत् समझने की शिक्षा देती है, जो सब अत्माओं को समान अधिकार देती है, जिसमें वर्गगत या जातपांति गत भेद के लिये कोई अवकाश नही है, वह समन संस्कृति है। 'शमन' का अर्थ है अपनी वृतियों को शान्त रखना। इस तरह व्यक्ति तथा समाज का कल्याण श्रम, सम और शम रूप तीन तत्वों पर अवलम्बित है। इन तीनों को सूचिति करनेवाली संस्कृति श्रमण संस्कृति के नाम से पहचानी जाता है।

ब्रह्मण संस्कृति का आधार 'ब्रह्म' है। इसका अर्थ है यज्ञ, पूजा, स्तुति और ईश्वर। ब्राह्मण संस्कृति इन्हीं तत्त्वों के चारों और घूमती है। वेद काल के प्रारम्भ में हमें प्रकृति पूजा दृष्टिगोचर होती है। अग्नि, वायु, जल, सूर्य आदि की स्तुति विविध मंत्रों के द्वारा की जाती है। इस भक्ति का अधिकार सबको प्राप्त था। उस समय किसी वर्ग विशेषा का अधिपत्य न था। वर्ण-व्यवस्था को स्थान नहीं था। स्त्री-पुरुष में किसी प्रकार का भेद न था उस समय केवल भक्ती थी। इसके बाद वातावरण परिवर्त्तित हो जाता है। ब्राह्मण वर्ग अपना प्रभुत्व स्थापित करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। धर्म की आत्मा लुप्त होजाती है और ब्राह्म क्रिया काण्डों को महत्व मिल जाता है। सामूहिक यज्ञ की वृद्धी हो जाती है और पुरोहित समाज का नेता बन जाता है। यज्ञों का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है और वह जीवन का अनिवार्य अंग हो जाता है। यज्ञ करने का उद्देश्य सांसरिक वासनाओं को पूर्ण करना हो जाता है। धन, पुत्र, राज्यविस्तार, शत्रुनाश या और किसी भैतिक स्वार्थ की पूर्ति करना है तो यज्ञ का आश्रय लिया जाता है। यज्ञ के लिए किया जाने वाला पाप भी पाप नहीं रहता है। जो व्यक्ति जितने अधिक यज्ञ करता है वह उतना ही अधिक धर्मात्मा समझा जाता है। नैतिकता, आदर्श और मानवता लुप्त हो जाती है और यज्ञ एवं की याज्ञियों का एकाधिपत्य स्थापति हो जाता है। इसके विषय में सर राधाकृष्णन् ने कहा है कि—तत्कालीन यज्ञ संस्था ऐसी दुकानदारी है जिसकी आत्मा मर गई है और जिसमें यजमान एवं पुरीहित में सौदे होते हैं। यदि यजमान अधिक दक्षिणा देकर बड़ा यज्ञ करता है तो उसे बड़े फल की प्राप्ति होती है और थोड़ी दक्षिणा देने से छोटे फल की। यह ऐसी

दुकारीदारी हो गई है जहां ग्राहक को माल परखने का भी नैतिक अधिकार नहीं है। राज्याश्रय होने से ब्राह्मण वर्ग ने अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिये विविधविधान कर लिये जैसे कि वेद स्वयं प्रमाण है, ये नित्य हैं, इन्हें पढ़ने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है (स्त्री शूद्रौ नाधीयेताम्) इत्यादि।

उत्तरोत्तर वैदिक कर्म काण्डों और पुरोहितों को पोषण मिलता गया। परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि समस्त मस्तिष्क इन्हीं में कुंठित हो गया। इस दुकानदारी के साथ-साथ स्वतन्त्र और स्वस्थ विचारों का प्रवाह भी स्थान प्राप्त करता गया। उपनिषद् और विविध दार्शनिक परम्पराएँ उसी उपजाऊ मस्तिष्क की देन हैं। उपनिषद् काल में कर्मकाण्डों का जोर कुछ कम हुआ और अध्यात्म की ओर झुकाव अधिक हो गया। सर राधाकृष्णन् के शब्दों में उपनिषद् एक ओर वैदिक उपासना का विकसित रूप है और दूसरी ओर ब्राह्मण-युग की प्रतिक्रिया।

ब्राह्मण-संस्कृति ने यज्ञ और ईश्वर के सर्वनियन्तृत्व को स्वीकार किया इससे माना जाने लगा कि भगवान् की जो इच्छा होगी, वही होगा। मनुष्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता। इस भावना ने निर्बलता और अकर्मण्यता को जन्म दिया। व्यक्ति की पुरुषार्थ-भावना को धक्का लगा। इसके विरुद्ध श्रमण-संस्कृति यह विधान करती है कि मनुष्य या व्यक्ति स्वयं अपना विकास कर सकता है। वह अपने पुरुषार्थ से परम और चरम-विकास परमात्म-पद को प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मण परम्परा में व्यक्ति अपने उद्धार के लिये सदा परमुखापेक्षी रहा है। देवी-देवता, ईश्वर, ग्रह, नक्षत्र आदि सैंकड़ों ऐसे तत्व हैं जो व्यक्ति के भाग्य पर नियन्त्रण करनेवाला, स्वाश्रयी और अनन्त शक्ति-सम्पन्न है। यह सब से प्रधान और मौलिक भेद है जो ब्राह्मण और श्रमण-संस्कृति में पाया जाता है।

ब्राह्मण-संस्कृति में वर्ग-विशेष को महत्व प्राप्त है। ब्राह्मण चाहे जितना ही नैतिक दृष्टि से पतित क्यों न हो तो भी वह पूजनीय माना गया है। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए दूसरे वर्ग को अत्यन्त हीन और घृणास्पद समझा गया है। शूद्रों और स्त्रियों के प्रति उसमें घृणा के दर्शन होते हैं। इसके विरुद्ध श्रमण संस्कृति किसी वर्ग के माहात्म्य को स्वीकार नहीं करती। वह स्पष्ट घोषित करती है कि वर्ग या व्यक्ति का कोई महत्व नहीं

है। महत्व है तो गुणों का। जिस व्यक्ति में जितने अधिक गुण हैं वह चाहे किसी भी जाति, वर्ग और श्रेणी का क्यों न हो, उतना ही अधिक सम्माननीय है। जैन परम्परा गुण पूजक है, व्यक्ति पूजक नहीं। श्रमण परम्परा में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने कल्याण का मार्ग खुला हुआ हैं जब कि ब्राह्मण परम्परा में अमुक (ब्राह्मण) वर्ग ही धर्म का अधिकारी माना गया है। श्रमण संस्कृति में आत्म विकास की प्रधानता है जब कि ब्राह्मण संस्कृति में इह लौकिक विकास का प्राबल्य है। श्रमण परम्परा का आधार तर्क और बुद्धि पर है। जब कि ब्राह्मण परम्परा का आधार भक्ति पर। श्रमण परम्परा में धर्म का स्वरूप अहिंसा संयम और तप है। उसमें धर्म स्वयं मंगल है अर्थात् अपने आप में साध्य है। भौतिक सम्पत्तियों के स्वामी देवता भी धर्मात्मा के चरणों में नमस्कार करते हैं श्रमण संस्कृति यह मानती है कि सभी प्राणियों को जीवन प्रिय है, सुख अच्छा लगता है, दुखः प्रतिकूल है अतः किसी भी जीव को कष्ट पहुंचाना भयंकर पाप है। ब्राह्मण परम्परा में भी "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" का विधान तो है मगर वेद विहित हिंसा, हिंसा नहीं है यह कहकर हिंसा का अवलम्बन लिया गया है। इस तरह प्राचीन काल से भारत के आंगन में ये श्रमण और ब्राह्मण परम्परा चली आरही है। यह निःसंदेह सत्य है कि समय समय पर दोनों विचारधाराएँ एक दूसरे के प्रभाव से प्रभावित होती रही हैं। दोनों परम्पराओं पर एक दूसरे का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

श्रमण परम्परा में तत्कालीन ब्राह्मणोत्तर सब धार्मिकपरम्पराओं का समावेश हो जाता है, तदपि बौद्ध और जैन परम्परा का ही उससे प्रधान रूप से ग्रहण होता है। बौद्ध परम्परा बुद्ध के द्वारा प्रवर्त्तित हुई जबकि जैन परम्परा का अस्तित्व इतिहास काल के पूर्व अत्यन्त प्राचीन काल में भी था। सनातन काल से जैन विचारधारा भारतीय धार्मिक जीवन को अनुप्राणित करती आई है। भगवान ऋषभदेव इस विचार धारा के आद्य प्रवर्त्तक हैं। ब्राह्मण परम्परा के पूर्व, आर्यों के आगमन के पूर्व भी भारत में इस विचारधारा का अस्तित्व था, यह आजकल के निष्पक्ष पुरातत्ववेत्ताओं ने अपने अनुसंधानों से प्रकट किया है। भगवान ऋषभदेव का उल्लेख प्राचीनतम ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। इस से यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म कम से कम ब्राह्मण परम्परा के समानान्तर के रूप में था। इससे इस बात का

खण्डन हो जाता है कि जैनधर्म वेदधर्म की शाखा है। इस विषय का विवेचन पुरातत्व प्रकरण में किया जायगा।

गौरवगाथा

जैनधर्म का आजतक का इतिहास अत्यन्त समुज्वल रहा है। भारतीय धार्मिक इतिहास इसकी भव्य गरिमा और गौरव गाथा से परिपूर्ण है। प्राचीन काल से जैनधर्म अपनी भव्य विचार सरणी का प्रभाव भारतीय अन्य धर्मों की विचार धाराओं पर डालता रहा है। भारत के दैनिक लोकजीवन पर जैन संस्कृति का अमिट प्रभाव भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय लोकजीवन को जैनसंकृति ने बहुत ऊँचा उठाया है।

प्राचीन भारत के न केवल धार्मिक बल्कि राजनैतिक, सामाजिक साहित्यिक, आर्थिक और कलाकौशल के क्षेत्र में भी जैनधर्म का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। धर्म और व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में इस धर्म ने अपनी वैज्ञानिकता के द्वारा नये जीवन, नई क्रान्ति, नवीन प्रकाश और नवीन चेतना का संचार किया है। जिस जिस क्षेत्र में इसने प्रवेश किया उसको नवीन रूप प्रदान किया।

जैनधर्म का प्रभाव उत्तर और दक्षिण भारत में समान रूप से पड़ा है। उत्तर भारत के शिलालेखों और अनुश्रुतियों से उन राजाओं की कीर्ति गाथाओं का पता चलता है जो जैनधर्म के अनुयायी या उसके संरक्षक थे। गुजरात के प्रसिद्ध सम्राट कुमार पाल जैन धर्म के परमानुयायी थे। दक्षिण भारत की जैन कीर्तियां इतिहास के पृष्ठपृष्ठ पर अंकित हैं। दक्षिण में १२ वीं शताब्दी तक ऐसा कोई राजवंश नहीं हुआ जिस पर जैनधर्म का प्रभाव नहीं पड़ा हो। कदम्ब, गंग, रट्ट राष्ट्रकूट और कल चूर्य इन सब प्रमुख राजवंश का धर्म जैनधर्म था। उस समय जैनधर्म राष्ट्र धर्म था। राज्य प्रश्रय और राजनैतिक महत्व प्राप्त होने पर भी जैनाचार्यों ने कभी संकीर्णता को स्थान नहीं दिया। उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ और अपने प्रभुत्व की कभी चिन्ता न की। किसी भी धर्म के प्रति उन्होने संकीर्णता या द्वेष का व्यापार नहीं किया। राजनैतिक महत्व प्राप्त कर उन्होंने अहिंसा धर्म का अधिक से अधिक प्रसार करने का प्रयत्न किया। जैनाचार्यों ने जनता को वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की बोधपाठ सिखाया। उन्होंने जनता को मनोवैज्ञानिक पथ प्रदर्शन किया।

जैनधर्म की वैज्ञानिक विचार धारा से भारत के धार्मिक क्षेत्र में विचार स्वातन्त्र्य का प्रवेश हुआ जिससे पुरोहित वाद के दुर्ग की नींव हिल गई। सामाजिक क्षेत्र में नवीन क्रान्ति हुई जिससे किसी भी वर्ण के जन्म-सिद्ध श्रेष्ठत्व को अस्वीकृत किया गया। जातिपांति की दीवारें और ऊँच-नीच के भेद भाव ढह गये। सद्गुणी शूद्र भी दुर्गुणी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है और धार्मिक क्षे में योग्यता के आधार पर हर एक वर्ण का पुरुष या स्त्री समान रूप से उच्च पद का अधिकारी है, यह जैनधर्म ने ही घोषित किया। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में लोक तंत्रात्मक विचार धारा को जन्म देने का श्रेय जैनधर्म को ही है। जैनधर्म ने उत्पीड़ित, दलित, शोषित और पतित समझे जाने वाले वर्ग का उद्धार किया, उसे समानता के स्तर पर स्थापित कर दिया।

जैनधर्म ने आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त वाद को स्थान देकर धर्म और दर्शन की अनेक गुत्थियों का समाधान किया। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में जैनधर्म की यह अनुपम देन है। जैनधर्म की साहित्य और कला सम्बन्धी देन भी अपूर्व है। इन सब बातों का विस्तृत विवेचन अगले पृष्ठों में यथास्थान किया जायगा। तात्पर्य यह है कि जैनधर्म और जैन संस्कृति ने भारतीय संस्कृति में एक नवीन जीवन का संचार किया है।

धर्मों में जैनधर्म का स्थान

प्राचीन धर्मों के इतिहास में जैनधर्म का वैज्ञानिक धर्म के रूप में अत्यन्त गौरवमय स्थान है। न केवल भारतीय धर्मों में ही वरन विश्व के समस्त धर्मों में जैनधर्म का स्थान अन्य किसी धर्म की अपेक्षा किसी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जैनधर्म ने अपने सिद्धान्तों के रूप में वह बहुमूल्य उपहार समर्पित किया है जो आजतक किसी ने नहीं किया। जैनधर्म के सिद्धान्त विश्व की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति है। शताब्दियों तक जैनधर्म भारतवर्ष का प्रमुख धर्म रहा है। इस रूप में उसने जो सेवाएँ बजाई हैं उन्होंने ही उसे धर्मों के इतिहास में गौरवमय स्थान पर आसीन किया है।

विश्व में जितने धर्म प्रचलित हैं उनमें आध्यात्मिकता की दृष्टि से जैन धर्म का सर्वप्रथम स्थान है। आत्मा तत्व का सर्वप्रथम निरूपण जैन धर्म ने ही किया है ऐसा विद्वानों का अनुभव है। आत्म-अनात्मा की मीमांसा वैदिक काल में स्पष्ट रूप से प्रतीत नहीं होती। उपनिषदों में आत्म तत्व की

विशेष विचारणा है, परन्तु जैनधर्म तो प्रारम्भ से ही जीव और अजीव तत्व का कथन करता आया है। विश्व के अधिकांश धर्मों का उद्देश्य और चरम साध्य ऐहिक और पारलौकिक भौतिक आभ्मुदय मात्र है जब कि जैन धर्म का चरम साध्य भौतिक आभ्मुदय को हेय मानकर आत्मा कि सर्वोच्च पराकाष्ठा– परमात्म पद को प्राप्त करना है। श्रेयस को छोडकर निःश्रेयस की आराधना करना जैनधर्म का साध्य है। अतः आध्यात्मिक दृष्टि बिन्दु से जैनधर्म का स्थान विश्व के समस्त धर्मों से ऊँचा है। जैनधर्म के सिध्दांत आध्यत्मिक होते हुए भी व्यवहारिक जगत् के लिए भी उनका बहुत अधिक महत्त्व है। आध्यात्मिक और व्यावहारिक–दोनों दृष्टियों से जैनधम का बहुत ऊँचा स्थान है।

जैनधर्म विश्व धर्म है

जैन धर्म परम उदार, व्यापक और सार्वजनिक है। यह सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय है। इसके सिद्धान्तों में संकीर्णता के लिये कोई स्थान नहीं है। इसमें जातिपांति का कोई भेद नहीं, राजा और रंक का पक्षपात नहीं, स्त्री और पुरुष के अधिकारों में विषमता नहीं है। यह मानव मात्र को ही नहीं पशु-पक्षियों को भी धर्म का अधिकार प्रदान करता है। आचारांग सूत्र में कहा गया है कि:—

"जहा तुच्छस्स कत्थइं तहा पुएणस्स कत्थइ, जहा पुएणस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइं" अर्थात् जैनधर्म का उपदेष्टा साधक जिस भाव से–अनासक्त भाव से रंक को उपदेश करता है उसी निष्काम भाव से चक्रवर्त्ती आदि को भी उपदेश देता है और जिस भाव से चक्रवर्त्ती आदि को उपदेश देता है उसी भाव से साधारण से साधारण व्यक्ति को भी उपदेश देता है। अर्थात् उसकी दृष्टि में श्रीमन्त और निर्धन का, राजा और रंक का ऊंच और नीच का भेद भाव नहीं होता। वह प्रत्येक व्यक्ति को अपने उपदेश का अधिकारी समझता है। जैनधर्म की छत्र छाया प्रत्येक देश का, प्रत्येक प्रान्त का प्रत्येक जाति का, प्रत्येक वर्ग का और प्रत्येक श्रेणी का व्यक्ति आश्रय पा सकता है। पतित से पतित व्यक्ति भी इसका अवलम्बन लेकर अपना कल्याण कर सकता है।

जर्मनी के विद्वान् प्रो० हेल्मुथ फॉन ग्लासनाप्प ने 'जैनधर्म' नामक अपने ग्रंथ में लिखा है कि:—

जैन अपने धर्म का प्रचार भारत में आकर बसे हुए शकादि म्लेच्छों में भी करते थे, यह बात 'कालकाचार्य' की कथा से स्पष्ट है। कहा तो यह भी जाता है कि सम्राट अकबर भी जैनी होगया था। आज भी जैन संघ में मुसलमानों को स्थान दिया जाता है। इस प्रसंग में बुल्हर सा० ने लिखा था कि अहमदाबाद में जैनों ने मुसलमानों को जैनी बनाने की प्रसंग वार्ता उनसे कही थी। जैनी उसे अपने धर्म की विजय मानते थे। भारत की सीमा के बाहर के प्रदेशों में भी जैन उपदेशकों ने धर्म प्रचार के प्रयत्न किये थे। चीनी-यात्री ह्वेनसांग (६२८-६४५ई०) को दिगम्बर जैन साधु कियापिशी (कपिश) में मिले थे—उनका उल्लेख उसके यात्रा विवरण में है। हरिभद्राचार्य के शिष्य हंस परमहंस के विषय में यह कहा जाता है कि वे धर्म प्रचार के लिये तिब्बत (भोट) में गये और वहां बौद्ध के हाथों से मारे गये थे। ग्रुइनवेडल सा० ने कुछ की हकीकत का जो अनुवाद किया है वहाँ जैनधर्म के प्रचार की पुष्टि होती है। महावीर के धर्मानुयायी उपदेशकों में इतनी प्रचार की भावना थी कि वे समुद्र पार भी जा पहुंचते थे। ऐसी बहुत सी कथाएं मिलती है जिनसे विदित होता है कि जैन धर्मोपदेशकों ने दूर दूर के द्वीपों के अधिवासियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। महम्मद सा० के पहले जैनउपदेशक अरबस्थान भी गये थे। इस प्रकार की भी कथा है। प्राचीन काल में जैन व्यापारीगण अपने धर्म को सागर पार ले गये थे यह बात संभव है। अरब दार्शनिक तत्ववेता अबुल-अला (९७३-१०६८ ई०) के सिद्धान्तों पर स्पष्टतः जैनप्रभाव दीखता है। वह केवल शाकाहार करता था—दूध तक नहीं लेता था। दूध को पशुओं के स्तन से खींच निकालना वह पाप समझता था। यथा शक्ति वह निराहार रहता था। मधु का भी उसने त्याग किया था क्योंकि मधुमक्खियों को नष्ट करके मधु इकट्ठा करने को वह अन्याय मानता था। इसी कारण वह अण्डे भी नहीं खाता था। आहार और वस्त्रधारण में वह सन्यासी जैसा था। पैर में लकड़ी की पगरखी पहनता था क्योंकि पशुचर्म के व्यवहार को भी पाप मानता था। एक स्थल उसने नग्न रहने की प्रशंसा की है। उनकी मान्यता थी कि भिखारी को दिरम देने की अपेक्षा मक्खी की जीवन रक्षा

जैनधर्म और पुरातत्व

जैनधर्म की मौलिकता और प्राचीनता

जैनधर्म सर्वथा मौलिक और अत्यन्त प्राचीन धर्म है। इस के आविर्भावसम्बन्धी काल का पता लगाने के लिये आज से नहीं, सैंकड़ों वर्षों से वद्विानों की दौड़ धूप हो रही है। इस सम्बन्ध में विभिन्न धारणायें हैं। कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ कहता है। कल्पनाओं के सहारे दौड़ने का कहीं निश्चित अन्त नहीं होता। जैनधर्म अनादिकालीन है अतः इसके आदिकाल का पता लगाना असम्भवसा है।

जिस प्रकार यह सृष्टि-प्रवाह अनादि-अनन्त है। जो वस्तु अनादि होती है उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न ही नहीं उठ सकता। जैसे काल चक्र अनादि और अनन्त है तो उसकी उत्पत्ति के लिए कोई प्रश्न नहीं होता। यही बात जैनधर्म के सम्बन्ध में समझनी चाहिये। यह धर्म काल-प्रवाह के समान अनादि अनन्त है। जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएं घटती-बढ़ती रहती हैं इसी तरह जैन धर्म भी वृद्धि-हानि पाता रहता है [illegible] चन्द्रमा अपनी समस्त कलाओं से पृथ्वी को आह्लादि[illegible] कृष्णपक्ष की अमावस्या को वह तिरोहित हो जाता है [illegible] धर्म अपने समग्र रूप में प्रकाशित होता है और कभी [illegible] ज्योति हीन हो जाती है। चन्द्रमा [illegible] क्षीण हो जाता है और पुनः शु[illegible] नवीन उत्पत्ति नहीं समझी जा[illegible]

होता है इससे सूर्य का नवीन उत्पन्न होना नहीं माना जाता है वरन् उसका उदय और अस्त होना समझा जाता है। ठीक इसी तरह जैन धर्म का विकास और ह्रास होता रहता है। इस विकास और ह्रास को उत्पत्ति और विनाश नहीं कहा जा सकता। इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में रिषभदेव ने जैन धर्म का पुनरुत्थान किया। जैन परिभाषा में धर्म का पुनरुद्धार कर तीर्थ स्थापन करनेवाले को तीर्थंकर कहा जाता है। प्रत्येक तीर्थंकर का काल जैन धर्म का उदयकाल है। एक तीर्थंकर के समय से दूसरे तीर्थंकर के जन्म समय से पहले तक जैन धर्म उदित होकर पुनः अस्त हो जाता है। दूसरे तीर्थंकर पुनः उसका अभ्युत्थान करते हैं। इस दृष्टि से रिषभदेव से लगाकर महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर जैन धर्म के संस्थापक नहीं परंतु उसे नवजीवन देनेवाले युगावतारी महापुरुष हैं।

जैन धर्म के प्राचीन इतिहास के संबंध में कतिपय पाश्चात्य और पौर्वात्य इतिहासकार अनभिज्ञ रहे हैं। यही कारण है कि कतिपय इतिहासकारों ने जैन धर्म के विषय में भ्रांत अभिप्राय व्यक्त किये हैं। किसी ने इसे वैदिक धर्म का रूपांतर माना है और किसी ने इसे बौद्ध धर्म की शाखा मान कर महावीर को इसका संस्थापक माना है। सचमुच यह इतिहासकारों की अनभिज्ञता का परिणाम है। साथ ही यह भी कहना ही पड़ेगा कि इतिहास के विषय में जैन विद्वानों की उपेक्षा बुद्धि रही जिसके कारण जैन इतिहास अपने वास्तविक रूप में विश्व के सम्मुख नहीं आ सका। कतिपय इतिहासकारों ने जैन धर्म को उसके मूल ग्रन्थों से न समझ कर उसके प्रतिद्वंद्वी धर्मग्रंथों के आधार से ही समझने की कोशिश की है इसलिए वे इसके संबंध में भ्रांत निर्णय पर पहुँचे हैं। अजैन संसार को प्रायः जो जैन धर्म का इतिहास विदित है वह बहुत कुछ भ्रांत और गलत है। अब ज्यों-ज्यों ऐतिहासिक अन्वेषण होता जा रहा है त्यों-त्यों यह प्रकट होता जा रहा है कि जैन धर्म और जैन संस्कृति अति प्राचीन है।

आधुनिक इतिहास काल जिस समय से प्रारम्भ होता है उससे पूर्व जैन धर्म विद्यमान था यह अब इतिहास वेत्ताओं को भलीभांति विदित हो चुका है। इतिहास काल की परिधि चार पाँच हजार वर्ष के अन्दर ही सीमित है। उससे बहुत-बहुत प्राचीन काल में भी जैन धर्म का अस्तित्व था।

अब यहाँ यह प्रमाणित किया जाता है कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से ही नहीं अपितु वेद धर्म से भी प्राचीन है।

प्राचीन भारत में मुख्य रूप से तीन धर्मों का प्रभुत्व रहा है:- जैन धर्म, बौद्ध धर्म और वेद धर्म। इन तीनों के सम्वन्ध में यहाँ विचार करना है। प्रथम बताना ठीक है कि जैन धर्म बौध्द धर्म से प्राचीन है और मौलिक है।

जैनधर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन है

यह तो निर्विवाद है कि बौध्द धर्म के संस्थापक बुध्द हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन हैं। इससे यह सिध्द है कि बौध्द धर्म लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व का है इससे पहले बौध्द धर्म का अस्तित्त्व नहीं था। आज के निष्पक्ष इतिहास वेत्ताओं ने यह स्वीकार कर लिया है कि जैनधर्म बुध्द से बहुत पहले ही प्रचलित था। इससे लेथब्रिज, एलफिन्टन, ब्रेवर, वार्थ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जैनधर्म को बौध्द धर्म की शाखा मानने की जो गलती की है उसका संशोधन हो जाता है। उक्त विद्वानों ने वस्तुस्थिति का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पहले ही पूर्वग्रह के कारण दोष में फंसकर गलत राय कायम कर ली है। केवल अपने पूर्वग्रह के कारण किये गये अनुमान के बल पर जैन धर्म के सम्बंध में ऐसा गलत अभिप्राय व्यक्त करके इंहोंने उसके साथ ही नहीं परंतु वास्तविकता के साथ न्अयाय किया है।

इन विद्वानों के इस भ्रम का कारण यह है कि जैनधर्म और बौध्द धर्म के कुछ सिध्दांत आपस में मिलते जुलते हैं। भगवान् महावीर और बुध्द ने तत्कालीन वैदिक हिंसा का जोरदार विरोध किया था और ब्राह्मणों की अखण्ड सत्ता को अभित्रस्त किया था इसलिए ब्राह्मण लेखकों ने इन दोनों धर्मों को एक कोटि में रख दिया। इस समानता के कारण इन विद्वानों को यह भ्रम हुआ कि जैन धर्म बौध्द धर्म की एक शाखा है। ऊपरी समानता को देखकर और दोनों धर्मों के मौलिक भेद की उपेक्षा करके इन विद्वानों ने यह गलत अनुमान बांधा था।

जर्मनी के प्रसिध्द प्रोफेसर हर्मन जेकोबी ने जैनधर्म और बौध्द धर्म के सिध्दांतों की बहुत छानबीन की है और इस विषय पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। इस महापण्डित ने अकाट्य प्रमाणों से यह सिध्द कर दिया

है कि जैनधर्म की उत्त्पत्ति न तो महावीर के समय में और न पार्श्वनाथ के समय में हुई किंतु इससे भी बहुत पहले भारत वर्ष के अति प्राचीन काल में यह अपनी हस्ती होने का दावा रखता है।

जैनधर्म बौध्दधर्म की शाखा नहीं है, बल्कि एक स्वतंन्त्र धर्म है। इस बात को सिध्द करने के लिए अध्यापक जेकोबी ने बौध्दों के धर्मग्रन्थों में जैनों का और उनके सिध्दांतों का जो उल्लेख पाया जाता है उसका दिग्दर्शन कराया है और बड़ी योग्यता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से प्राचीन है। अब यहाँ यह दिग्दर्शन करा देना उचित है कि बौद्धों के धर्मशास्त्रों में कहाँ २ जैनों का उल्लेख पाया जाता है:—

(१) मज्झिमनिकाय में लिखा है कि महावीर के उपाली नामक श्रवक ने बुद्धदेव के साथ शास्त्रार्थ किया था।

(२) महावग्ग के छठे अध्याय में लिखा है कि सीह नामक श्रावक ने जो कि महावीर का शिष्य था, बुध्ददेव के साथ भेंट की थी।

(३) अंगुतर निकाय के तृतीय अध्याय के ७४ वें सूत्र में वैशाली के एक विद्वान् राजकुमार अभय ने निगन्थ अथवा जैनों के कर्म सिध्दांत का वर्णन किया है।

(४) अगुतर निकाय में जैनश्रावकों का उल्लेख पाया जाता है और उनके धार्मिक आधार का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

(५) समन्नफल सूत्र में बौद्धों ने एक भूल की है। उंहोने लिखा है कि महावीर ने जैनधर्म के चार महाव्रतों का प्रतिपादन किया किन्तु ये चार महाव्रत महावीर से २५० वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ के समय माने जाते थे। यह भूल बड़े महत्त्व की है क्योंकि इससे जैनियों के उत्तराध्ययन सूत्र के तेवीसवें (२३) अध्ययन की यह बात सिध्द हो जाती है कि तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी महावीर के समय में विद्यमान थे।

(६) बौद्धों ने अपने सूत्रों में कई जगह जैनों को अपना प्रतिस्पर्धी माना है किंतु कहीं भी जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा या नवस्थापित नहीं लिखा।

अब यहाँ यह प्रमाणित किया जाता है कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से ही नहीं अपितु वेद धर्म से भी प्राचीन है।

जैनधर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन है

प्राचीन भारत में मुख्य रूप से तीन धर्मों का प्रभुत्त्व रहा है:- जैन धर्म, बौद्ध धर्म और वेद धर्म। इन तीनों के सम्वन्ध में यहाँ विचार करना है। प्रथम बताना ठीक है कि जैन धर्म बौध्द धर्म से प्राचीन है और मौलिक है। यह तो निर्विवाद है कि बौध्द धर्म के संस्थापक बुध्द हैं। ये भगवान् महावी- के समकालीन हैं। इससे यह सिध्द है कि बौध्द धर्म लगभग अढ़ाई हजार व पूर्व का है इससे पहले बौध्द धर्म का अस्तित्त्व नहीं था। आज के निष्पक्ष इतिहास वेत्ताओं ने यह स्वीकार कर लिया है कि जैनधर्म बुध्द से बहुत पहले ही प्रचलित था। इससे लेथब्रिज, एलफिंस्टन, ब्रेवर, वार्थ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जैनधर्म को बौध्द धर्म की शाखा मानने की जो गलती की है उसका संशोधन हो जाता है। उक्त विद्वानों ने वस्तुस्थिति का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पहले ही पूर्वग्रह के कारण दोष में फंसकर गलत राय कायम कर ली है। केवल अपने पूर्वग्रह के कारण किये गये अनुमान के वल पर जैन धर्म के सम्बंध में ऐसा गलत अभिप्राय व्यक्त करके इंहोंने उसके साथ ही नहीं परंतु वास्तविकता के साथ न्अयाय किया है।

इन विद्वानों के इस भ्रम का कारण यह है कि जैनधर्म और बौद्ध धर्म के कुछ सिध्दांत आपस में मिलते जुलते हैं। भगवान् महावीर और बुध्द ने तत्कालीन वैदिक हिंसा का जोरदार विरोध किया था और ब्राह्मणों की अखण्ड सत्ता को अभित्रस्त किया था इसलिए ब्राह्मण लेखकों ने इन दोनों धर्मों को एक कोटि में रख दिया। इस समानता के कारण इन विद्वानों को यह भ्रम हुआ कि जैन धर्म बौध्द धर्म की एक शाखा है। ऊपरी समानता को देखकर और दोनों धर्मों के मौलिक भेद की उपेक्षा करके इन विद्वानों ने यह गलत अनुमान बांधा था।

जर्मनी के प्रसिध्द प्रोफेसर हर्मन जेकोबी ने जैनधर्म और बौध्द धर्म के सिध्दांतों की वहुत छानवीन की है और इस विषय पर वहुत अच्छा प्रकाश डाला है। इस महापण्डित ने अकाट्य प्रमाणों से यह सिध्द कर दिया

है कि जैनधर्म की उत्त्पत्ति न तो महावीर के समय में और न पार्श्वनाथ के समय में हुई किंतु इससे भी वहुत पहले भारत वर्ष के अति प्राचीन काल में यह अपनी हस्ती होने का दावा रखता है।

जैनधर्म बौध्द्धर्म की शाखा नहीं है, वल्कि एक स्वतंन्त्र धर्म है। इस बात को सिध्द् करने के लिए अध्यापक जेकोबी ने बौध्दों के धर्मग्रन्थों में जैनों का और उनके सिध्दांतों का जो उल्लेख पाया जाता है उसका दिग्दर्शन कराया है और बड़ी योग्यता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से प्राचीन है। अब यहाँ यह दिग्दर्शन करा देना उचित है कि बौद्धों के धर्मशास्त्रों में कहाँ २ जैनों का उल्लेख पाया जाता है :—

(१) मज्झिमनिकाय में लिखा है कि महावीर के उपाली नामक श्रवक ने बुद्धदेव के साथ शास्त्रार्थ किया था।

(२) महावग्ग के छठे अध्याय में लिखा है कि सीह नामक श्रावक ने जो कि महावीर का शिष्य था, बुध्ददेव के साथ भेंट की थी।

(३) अंगुतर निकाय के तृतीय अध्याय के ७४ वें सूत्र में वैशाली के एक विद्वान् राजकुमार अभय ने निर्ग्रन्थ अथवा जैनों के कर्म सिध्दांत का वर्णन किया है।

(४) अगुंतर निकाय में जैनश्रावकों का उल्लेख पाया जाता है और उनके धार्मिक आधार का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

(५) समन्नफल सूत्र में बौद्धों ने एक भूल की है। उंहोने लिखा है कि महावीर ने जैनधर्म के चार महाव्रतों का प्रतिपादन किया किन्तु ये चार महाव्रत महावीर से २५० वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ के समय माने जाते थे। यह भूल बड़े महत्त्व की है क्योंकि इससे जैनियों के उत्तराध्ययन सूत्र के तेवीसवें (२३) अध्ययन की यह बात सिध्द हो जाती है कि तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी महावीर के समय में विद्यमान थे।

(६) बौद्धों ने अपने सूत्रों में कई जगह जैनों को अपना प्रतिस्पर्धी माना है किंतु कहीं भी जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा या नवस्थापित नहीं लिखा।

(७) मंखलिलपुत्र गोशालक महावीर का शिष्य था परंतु बाद में वह एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तक बन गया था। इसी गोशालक और उसके सिध्दांतों का बौध्द धर्म के सूत्रों में कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

(८) बौद्धों ने महावीर के सुशिष्य सुधर्माचार्य के गौत्र का और महावीर के निर्वाण स्थान का भी उल्लेख किया है। इत्यादि २

प्रोफेसर जैकोबी महोदय ने विश्वधर्म कॉंग्रेस में अपने भाषण का उपसंहार करते हुए कहा था कि :–

In conclusion let me assert my conbichon that Jainism is an original system quite distinct and independent from all others and that therefore it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in ancient India.

अर्थात्–अंत में मुझे अपना दृढ निश्चय व्यक्त करने दीजिये कि जैनधर्म एक मौलिक धर्म है। यह सब धर्मों से सर्वथा अलग और स्वतंत्र धर्म है। इसलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धार्मिक जीवन के अभ्यास के लिए यह बहुत ही महत्त्वका है।"

जेकोबी साहब के उक्त वक्तव्य से यह सिध्द हो जाता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है 'इतना ही नहीं, किसी भी धर्म की शाखा नहीं है। वह एक मौलिक, स्वतन्त्र और प्राचीन धर्म है"

जैनधर्म वेदधर्म से भी प्राचीन है

कई विद्वानों का यह भ्रमपूर्ण मत है कि जैनधर्म वेदधर्म की शाखा है और उसके आदि प्रवर्तक पार्श्वनाथ (८७७–७७७ ईसा से पूर्व) है। इस भ्रामक मान्यता के मूल में जो कारण है वह यही है कि इन विद्वानों ने जैनधर्मका अध्ययन जैनशास्त्रों से नहीं किया लेकिन वेदधर्म के ग्रन्थों में जैनधर्म का जो रूप चित्रित है उसीको सत्य मानकर उन्होंने अपना अनुमान खड़ा किया है। अशुध्द आधारों की भित्ती पर खड़ा किया हुआ अनुमान भी अशुध्द ही होता है।

जैन साहित्य को इसके प्रतिस्पर्धियों के द्वारा बहुत क्षति उठानी पड़ी है, इसलिए अपने अवशिष्ट साहित्य की सुरक्षा के लिए जैनियो ने उसे भण्डारों में रख दिया था। आगे चलकर इस ओर लक्ष्य की न्यूनता से वह साहित्य दीमकों का शिकार होगया। इस परिस्थिति से बचकर भी जो साहित्य विद्यमान रहा है वह भी विद्वानों को उपलब्ध नहीं है। इसका कारण भण्डारों के स्वामियों की अदूरदर्शिता और समय को पहचानने की अकुशलता है। ऐसी स्थिति में, जबकि जैनसाहित्य पर्याप्त मात्रा में अनुपलब्ध था तब पुरातत्त्व की खोज करते समय पूर्वीय भाषाएँ जानने वाले युरोप के विद्वानों को, जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों का आश्रय लेना पड़ा। वहाँ उन्हें जैनधर्म का जो विकृत रूप दिखाई दिया उस पर से ही उन्होंने अपने अनुमान बाँधे। यही कारण है कि वे सत्य को न पा सके और भ्रान्त विचारों पर जा पहुँचे।

अब वेदधर्म के मान्य वेदों, पुराणों और अन्य ग्रन्थों के उद्धरण देकर यह सिद्ध करेंगे कि जैनधर्म वेद काल से पहले भी अस्तित्त्व में था। इसके पहले काल क्रम की दृष्टि से एक बात उल्लेख करना आवश्यक है वह यह है कि:—

शाकटायन एक जैन वैयाकरण थे। ये आचार्य किस काल में हुए इसका प्रामाणिक कोई उल्लेख नहीं मिलता, तदपि यह निर्विवाद है कि ये आचार्य प्रसिध्द वैयाकरण पाणिनि से बहुत प्राचीन है। इसका करण यह है कि पाणिनि रिषि ने अपनी अष्टाध्यायी में "व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य" इत्यादि सूत्रों में शाकटायन का नामोल्लेख किया है जो शाकटायन की पाणिनि से प्राचीनता को प्रमाणित करता है। अब विचारना है कि पाणिनि का समय कौनसा है? इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदों ने महर्षि पाणिनि का समय ईस्वी सन् पूर्व २४०० वर्ष बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि पाणिनि रिषि आज से चार हजार तीन सौ पचास वर्ष पूर्व हुए हैं। शाकटायन इससे भी प्राचीन हैं। इसका नाम यास्क के निरुक्त में भी आता है। ये यास्क पाणिनि से कई शताब्दियों पहले हुए हैं। रामचन्द्र घोष ने अपने 'पीप इन्टु दी वैदिक एज' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'यास्क कृति निरुक्त को हम बहुत प्राचीन समझते हैं। यह ग्रन्थ वेदों को छोड़कर संस्कृत के सबसे प्राचीन साहित्य से सम्बन्ध रखता है। इस बात से यही सिद्ध होता है,

कि जैनधर्म का अस्तित्व यास्क के समय से भी बहुत पहले था। शाकटायन का नाम रिग्वेद की प्रति शाखाओं में और यजुर्वेद में भी आता है।

शाकटायन जैन थे, इस बात का प्रमाण ढूंढने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। उनका रचित व्याकरण ही इस बात को सिद्ध करता है। वे अपने व्याकरण के बाद के अन्त में लिखते हैं :- "महा श्रमण संघाधिपतेः श्रत केवलि देशीयाचार्यस्य शाकाटायनस्य कृतौ"। उक्त लेख में आये हुए 'महा श्रमणसंघ' और श्रुत केवलि शब्द जैनों के पारिभाषिक घरेलू शब्द हैं। इनसे निर्विवाद सिध्द होता है कि शाकटायन जैन थे। इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि पाणिनि और यास्क के पहले भी जैन धर्म विद्यमान था।

वैदिक धर्म के प्राचीन ग्रन्थों से भी यह सिद्ध होता है कि उस समय भी जैनधर्म का अस्तित्व था। वेदधर्म के सर्वमान्य रामायण और महाभारत में भी जैनधर्म का उल्लेख पाया जाता है। रामचन्द्र के कुल पुरोहित वशिष्ठजी के बनाये हुए योगवशिष्ट ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख है :-

नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु च न मे मनः ।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

भावार्थः- रामचन्द्रजी कहते हैं कि मैं राम नहीं हूँ, मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है; मैं जिनदेव के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूँ।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि रामचन्द्रजी के समय में जैनधर्म और जैनतीर्थङ्कर का अस्तित्व था। जैनधर्मानुसार बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के समय में रामचन्द्र जी का होना सिद्ध है। महाभारत के आदि पर्व के तृतीय अध्याय में २३ और २६ वें श्लोक में एक जैन मुनि का उल्लेख है। शान्ति पर्व (मोक्ष धर्म अध्याय २३९ श्लोक ६) में जैनों के सुप्रद्धि सप्तभंगी नय का वर्णन हैं।

आधुनिक कतिपय इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है (यद्यपि जैनों को यह स्वीकृत नहीं) कि महाभारत ईसा से तीन हजार वर्ष पहले तैयार हुआ था और रामचन्द्र जी महाभारत से एक हजार वर्ष पहले विद्यमान थे। इस पर से कहा जा सकता है कि रामचन्द्र जी के समय में (चाहे वह कौन

सा भी हो) जैनधर्म का अस्तित्व था। रामचन्द्रजी के काल में जैनधर्म का अस्तित्व सिध्द हो जाने पर वेदव्यास के समय में उसका अस्तित्व सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। तदपि वेद व्यास ने अपने ब्रह्म सूत्र "नैकस्मिन्न संभवात्" कहकर जैन दर्शन के स्याद्वाद सिध्दान्त पर आक्षेप किया है। अगर उस समय जैन दर्शन का स्याद्वाद सिध्दान्त विकसित न हुआ होता तो वेद व्यास उस पर लेखनी नहीं उठाते। यद्यपि वेदव्यास ने स्याद्वाद के जिस रूप पर आक्षेप किया है वह स्याद्वाद का शुध्द रूप नहीं-विकृत रूप है। तदपि इससे यह तो भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि वेद व्यास से समय में जैन दर्शन का मौलिक सिध्दान्त स्याद्वाद प्रचलित था। रामायण महा भारत से जैनधर्म का अस्तित्व सिध्द हो जाने पर अब पुराणों को देखना चाहिए।

अठारह पुराण महर्षि व्यास के द्वारा रचित माने जाते हैं। ये व्यास महर्षि महाभारत के समयवर्त्ती बतलाये जाते हैं। चाहे कुछ भी हो हमें यह देखना है कि पुराण इस विषय में क्या कहते हैं? शिव पुराण में रिषभनाथ भगवान् का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है:—

कैलाशे पर्वते रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारञ्च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

इसका अर्थ यह है कि-केवल ज्ञान द्वारा सर्व व्यापी, कल्याण स्वरूप, सर्व ज्ञान जिनेश्वर रिषभदेव सुन्दर कैलाश पर्वत पर उतरे। इसमें आया हुआ 'वृषभ' और 'जिनेश्वर' शब्द जैनधर्म को सिध्द करते हैं क्योंकि 'जिन' और 'अर्हत्' शब्द जैन तीर्थङ्कर के लिये रूढ है। ब्रह्माण्ड पुराण में इस प्रकार लिखा है:—

"नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम्
रिषभं क्षत्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्॥
रिषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजो-।
ऽभिषिच्य भरतं राज्ये महाप्रव्रज्यामास्थितः॥"

"इह हि इक्ष्वाकुकुल वंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्याः नन्दनेन महादेवेन रिषभेण दशप्रकारो धर्मः स्वयमेवाचीर्णः केवल ज्ञानलाभाच्च प्रवर्त्तितः"।

अर्थात्:—नाभिराजा और मरुदेवी रानी से मनोहर, क्षत्रियवंश का पूर्वज 'रिषभ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। रिषभनाथ के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र शूरवीर 'भरत' हुआ। रिषभदेव भरत को राज्यारूढ़ करके प्रव्रजित होगये। इक्ष्वांकुवंश में उत्पन्न नाभिराजा और मरुदेवी के पुत्र रिषभ ने क्षमा मार्दव आदि दस प्रकार का धर्म स्वयं धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उसका प्रचार किया।

स्कन्द पुराण में भी लिखा है:—

आदित्यप्रमुखाः सर्वे बध्दाञ्जलय ईदृशं।
ध्यायन्ति भावतो नित्यं यदङ्घ्रियुगनीरजं॥
परमात्मानमात्मानं लसत्केवलानिर्मलम्।
निरञ्जननिराकारं रिषभन्तुमहा रिषिम्"

भावार्थ:—रिषभदेव, परमात्मा, केवल ज्ञानी, निरञ्जन, निराकार, और महर्षि हैं। ऐसे रिषभदेव के चरण युगल का आदित्य आदि सूर-नर भावपूर्वक अञ्जलि जोड़कर ध्यान करते हैं।

नागपुराण में इस प्रकार उल्लेख है:—

अकारादि हकारान्तं मूर्धाधोरेफ संयुतम्।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम्॥
एतद वि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत् परमां गतिम्॥

अर्थात्—जिसका प्रथम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है, जिसके ऊपर आधारेफ तथा चन्द्रबिन्दु विराजमान है ऐसे "अर्हं" को जो सच्चे रूप में जान लेता है, वह संसार के बन्धन को काटकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

बहुमान्य मनुस्मृति में मनु ने कहा है:—

मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः॥

भावार्थ—इस भारतवर्ष में 'नाभिराय' नाम के कुलकर हुए। उन नाभिराय के मरुदेवी के उदर से मोक्ष माग को दिखाने वाले, सुर-असुर

द्वारा पूजित, तीन नीतियों के विधाता प्रथम जिनेश्वर अर्थात् रिषभनाथ सत्युग के प्रारम्भ में हुए।

'रिषभ' शब्द के सम्बन्ध में शंका को अवकाश ही नहीं है। वाचस्पति कोष में 'रिषभदेव' का अर्थ 'जिनदेव' किया है। और शब्दार्थ चिन्तामणि में 'भगवदवतारयेदे आदिजिने—अर्थात् भगवान् का अवतार और प्रथम जिनेश्वर किया गया है।

पुराणों के उक्त अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकाल के पहले जैनधर्म था। इसके अतिरिक्त भागवत के पांचवे स्कन्ध के चौथे पांचवें और छठे अध्याय में प्रथम तीर्थङ्कर रिषभदेव को आठवां अवतार बतलाकर उनका विस्तृत वर्णन किया गया है। भागवत पुराण में यह लिखा है कि 'सृष्टि की आदि में ब्रह्म ने स्वयंम्भू मनु और सत्यरूपा को उत्पन्न किया। रिषभदेव इनसे पांचवीं पीढ़ी में हुए। इन्हीं रिषभदेव ने जैनधर्म का प्रचार किया। इस पर से यदि हम यह अनुमान करें कि प्रथम जैन तीर्थङ्कर रिषभदेव मानव जाति के आदि गुरु थे तो हमारा विश्वास है कि इस कथन में कोई अत्युक्ति न होगी।

दुनिया के अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि आधुनिक उपलब्ध समस्त ग्रन्थों में वेद सबसे प्राचीन है अतएव अब वेदों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि वेदों की उत्पत्ति के समय जैनधर्म विद्यमान था। वेदानुयायियों की मान्यता है कि वेद ईश्वर-प्रणीत हैं। यद्यपि यह मान्यता केवल श्रद्धागम्य ही है तदपि इससे यह सिद्ध होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही जैनधर्म प्रचलित था क्योंकि रिग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद और अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में जैन तीर्थङ्करों के नामों का उल्लेख पाया जाता है।

रिग्वेद में कहा है:—

आदित्या त्वगसि आदित्यसद् आसीद अस्त भ्राद्या वृषभो तरिक्षं जमिमीते वारिमाणं। पृथिव्याः आसीत् विश्वा भुवनानि समाडिवश्वे तानि वरुणस्य व्रतानि। ३०। अ० ३।

अर्थ—तू अखण्ड पृथ्वी मण्डल का सार त्वचा स्वरूप है, पृथ्वीतल का भूषण है, दिव्यज्ञान के द्वारा आकाश को नापता है, ऐसे हे वृषभनाथ सम्राट! इस संसार में जगरक्षक व्रतों का प्रचार करो।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् (अ. १ अ. ६ व. १६)
अर्हन्निदं दयसे विश्वं भवसुवं न वा ओ जीयो रुद्रत्वदास्ति (अ. २ अ. ७. व. १७)

अर्थ—हे अर्हन्देव ! तुम धर्मरूपी बाणों को, सदुपदेश रूप धनुष को, अनन्त ज्ञानरूप आभूषण को धारण किये हुए हो। हे अर्हन् ! आप जगत्प्रकाशक केवल ज्ञान प्राप्त हो, संसार के जीवों के रक्षक हो, काम क्रोधादि शत्रु समूह के लिए भयंकर हो, आपके समान अन्य बलवान नहीं है।

ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थ मनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा।

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थङ्करान् रिषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिध्दान् शरणं प्रपद्ये।

ॐ नमो अर्हतो रिषभो ॐ रिषभं पवित्रं पुरु हुत मध्वरं यज्ञेषु नग्नं परंम माहसं स्तुतं वारं शत्रुं जयन्तं पशुरिन्द्रमाहु रिति स्वाहा।

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृध्दश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्ठ नेमिः स्वास्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।

इत्यादि बहुत से वेदमंत्रों में जैन तीर्थंकर श्री रिषभदेव, सुपार्श्व नाथ, अरिष्ठनेमि आदि तीर्थङ्करों के नाम आये हैं। इन तीर्थङ्करों के प्रति पूज्य भाव रखने की प्रेरणा करने वाले कतिपय वेदमंत्र पाये जाते हैं। इन सब प्रमाणों पर से यह प्रतीत होता है कि वेदों की रचना के पूर्व भी जैनधर्म बड़े प्रभाव के साथ व्याप्त था तभी तो वेदों में उनके नाम बड़े आदर के साथ उल्लिखित हुए हैं। इन बातों का विचार करने पर कोई भी निष्पक्ष वेदानुयायी यह नही कह सकता है कि जैनधर्म वैदिक धर्म के बाद उत्पन्न हुआ है। वेदों में जो प्रमाण दिये गये हैं वही इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि जैनधर्म अति प्राचीन काल से चला आता है। जिस वैदिक धर्म को प्राचीन बतलाया जाता है उससे भी पहले जैनधर्म अस्तित्व रखता था।

जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पाश्चात्य और पौर्वात्य पुरातत्वविदों और इतिहासकारों ने जो अभिप्राय व्यक्त किये हैं उनका दिग्दर्शन कराना अप्रासंगिक नहीं होगा।

(१) काशी निवासी स्व० स्वामी राममिश्राशास्त्री ने अपने व्याख्यान में कहा था :—

" जैनधर्म उतना ही प्राचीन है जितना कि यह संसार है । „

(२) प्राचीन इतिहास के सुप्रसिद्ध आचार्य प्राच्य विद्या महार्णव नगेन्द्रनाथ वसु ने अपने हिन्दी विश्व कोष के प्रथम भाग में ६४ वें पृष्ठ पर लिखा है:—

" रिषभदेव ने ही संभवतः लिपि विद्या के लिए लिपि कौशल का उद्भावन किया था । ...... रिषभदेव ने ही संभवतः ब्रह्मविद्या शिक्षा की उपयोगी ब्राह्मी लिपि का प्रचार किया । हो न हो, इसलिए वह अष्टम अवतार बनाये जाकर परिचित हुए ।

इसी विश्वकोष के तीसरे भाग में ४४३ वें पृष्ठ पर लिखा है:- भागवतोक्त २२ अवतारों में रिषभ अष्टम हैं । इन्होंने भारतवर्षाधिपति नाभिराजा के औरस और मरुदेवी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया था । भागवत में लिखा है कि जन्म लेते ही रिषभनाथ के अंगों में सब भगवान् के लक्षण झलकते थे ।

(३) श्रीमान् महामहोपाध्याय डा. सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए. पी एच. ,एफ. आई. आर. एस' सिद्धान्त महोदधि, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज कलकत्ता ने अपने भाषण में कहा था:-

"जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है । मुझे इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्वका है "

(४) लोकमान्य तिलक ने अपने 'केशरी' पत्र में १३ दिसम्बर १९०४ को लिखा है कि:—

"महावीर स्वामी जैनधर्म को पुनः प्रकाश में लाये । इस बात को आज करीब २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । बौद्ध धर्म की स्थापना के पहले जैनधर्म फैल रहा था, यह बातें विश्वास करने योग्य हैं । चौवीस तीर्थङ्करों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर थे ।

इससे भी जैनधर्म की प्राचीनता जानी जाती है ।

(५) स्वामी विरूपाक्ष वडींयर धर्मभूषण, वेदतीर्थ, विद्यानिधि, एम. ए., प्रोफेसर संस्कृत कालिज, इन्दौर, 'चित्रमय जगत्' में लिखते हैं।

"ईर्षा-द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुए भी जैनशासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी होता रहा है। अर्हन् देव साक्षात् परमेश्वर स्वरूप हैं। इसके प्रमाण भी आर्य-ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अर्हन्त परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया जाता है। रिषभदेव का नाती मरीचि प्रकृतिवादी था और वेद उसके तत्त्वानुसार हो सके, इस कारण ही रिगवेद आदि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है। फलतः मरीचि रिषि के स्तोत्र वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में हैं और स्थान २ पर जैन तीर्थङ्करों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं है कि वैदिक काल में जैनधर्म का अस्तित्व न मानें।"

(६) मेजर जनरल जे. जी. आर. फार लांग एफ. आर. एस. ई, एफ. आर. ए. एस. एम. ए. डी. 'शार्ट स्टडीज इन दी साइन्स ऑफ कम्पेरीटिव रिलिजन्स्, के पृ० २४३ में लिखते हैं:—

अनुमानतः ईसा से पूर्व के १५०० से ८०० वर्ष तक बल्कि अज्ञात समय से सर्व उपरी पश्चिमीय, उत्तरीय, मध्यभारत में तूरानियों का "जो आवश्यकतानुसार द्राविड़ कहलाते थे, और वृक्ष, सर्प और लिंग की पूजा करते थे, शासन था।" परन्तु उसी समय में सर्व ऊपरी भारत में एक प्राचीन, सभ्य, दार्शनिक और विशेषतया नैतिक सदाचार व कठिन तपस्या वाला धर्म अर्थात् जैनधर्म भी विद्यमान था, जिसमें से स्पष्टतया ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों के प्रारम्भिक सन्यास भावों की उत्पत्ति हुई। आर्यों के गंगा क्या सरस्वती तक पहुंचने के भी बहुत समय पूर्व जैनी अपने २२ बौद्धों-संतों तीर्थंकरों द्वारा-जो ईसा से पूर्व की ८-९ शताब्दी के २३ वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ से पहले हुये थे—शिक्षा पा चुके थे।

उक्त विद्वानों के अभिप्रायों से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जैन-धर्म अति प्राचीन धर्म है। ये इतिहासकार, संशोधक और पुरातत्व के ज्ञाता अजैन हैं अतएव पक्षपात की आशंका नहीं हो सकती। इन विद्वानों ने अपने निष्पक्ष अनुसन्धान के आधार पर अपने अभिप्राय व्यक्त किये हैं। इससे यह भलि भांति प्रमाणित हो जाता है कि जैनधर्म सृष्टि-प्रवाह के समान ही अनादि है, अतएव प्राचीन है।

इतिहास-काल के पूर्व का जैन धर्म

जैन दृष्टि के अनुसार यह काल-प्रवाह 'चक्रनेमि-क्रम' की तरह गतिशील है। जिस प्रकार गाड़ी का पहिया ऊपर-नीचे जाता-आता रहता है इसी तरह जगत् का इतिहास भी कभी उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुंचता है तो कभी अपकर्ष की चरम सीमा पर। इन उत्कर्ष और अपकर्ष के किनारों में बद्ध होकर यह काल-प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित हो रहा है और प्रवाहित होता रहेगा। जैन परिभाषा में इसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी-काल कहते हैं।

भगवान् रिषभदेव

प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में चौवीस युगावतारी महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो जगत् को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का संदेश दे जाते हैं। ये महापुरुष 'तीर्थंकर' कहे जाते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर हुए उनमें सर्व प्रथम रिषभदेव और अन्तिम महावीर स्वामी हैं।

रिषभदेव अत्यन्त प्राचीन काल में हो गये हैं। जैन परिभाषा के अनुसार अवसर्पिणी काल-चक्र के तीसरे सुषम दुःषम आरा के अधिकांश भाग के व्यतीत हो जाने पर भगवान् रिषभदेव का जन्म हुआ था। वह काल युगलियों का काल था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह मानव-सभ्यता का आदि काल था। उस समय न गाँव बसे थे और न नगर; न कृषि का धंधा था और न वाणिज्य-व्यवसाय, न उद्योग था और न कला-कौशल। सब लोग वृक्षों के नीचे रहते थे और वृक्षों से ही अपनी सब आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर लेते थे। उस समय के लोगों की आवश्यकताएँ अत्यन्त कम थीं। कल्पवृक्षों के द्वारा आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाया करती थी। अतः उस काल के लोगों का जीवन सुख-संतोषमय था परंतु साथ ही संघर्ष-शून्य भी।

भगवान् रिषभदेव, इसी युग के जन-नायक अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजा के सुपुत्र थे। आपकी माता का नाम मरुदेवी था। भगवान् रिषभदेव का बाल्यकाल इसी युगकालीन सभ्यता में बीता। समय बदल रहा था। प्रकृति का वैभव क्षीण होने लगा। तत्कालीन प्रजा के एकमात्र आधार रूप कल्पवृक्ष कम होने लगे और उनकी फल देने की शक्ति भी मन्द हो गई।

परिस्थिति बड़ी विषम हो गई। उपभोग करनेवालों की संख्या बढ़ती गई और जीवनोपयोगी साधन कम होते गये। ऐसी स्थिति में प्रायः जो हुआ करता है वही संघर्ष, द्वंद्व, लड़ाई-झगड़ा और वैर-विरोध होने लगा। लोगों में संग्रह-भावना पैदा हो गई। उन्हें भविष्य की चिंता होने लगी। अतः पहले जो संतोष एवं उदारता की भावना थी वह विलीन हो गई। युगलियों को इस विषम परिस्थिति का सर्व प्रथम अनुभव हुआ अतः वे बड़े परेशान हुए। उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझता था। उनके सामने निराशा का घना अन्धकार छा गया था। मानव-जाति का भविष्य घोर संकटमय प्रतीत हो रहा था। उस समय आवश्यकता थी एक महान् कर्मठ नेता की जो तत्कालीन मानव-समाज को उस विषम परिस्थिति से उबार सके। सकल मानव-जाति के सद्भाग्य से भगवान् रिषभदेव उस समय नेतृत्व करने योग्य हो गये थे। नाभिराजा ने अपने सुयोग्य पुत्र रिषभ को सारा नेतृत्व सौंप दिया।

रिषभदेव ने सारी परिस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया। उनके हृदय में मानव-जाति के प्रति असीम करुणा उमड़ रही थी अतः उन्होंने उसका उद्धार करने का दृढ़ संकल्प किया। इसके लिए उन्होंने दिन-रात एक किया। अपनी कुशलता के द्वारा उन्होंने मानव-जाति को संकट से मुक्त होने के लिए नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। उन्होंने मानव-जाति को प्रकृति के आश्रित ही न रह कर पुरुषार्थ करने का पाठ पढ़ाया। अन्न उत्पन्न करना, वस्त्र पैदा करना, पात्र बनाना, अग्नि का उपयोग करना इत्यादि जीवनोपयोगी विविध साधनों के उत्पादन और संरक्षण के व्यावहारिक उपाय बताये। उन्होंने जनता को घर बनाना, नगर बसाना, व्यापार करना, संतान का पालन-पोषण करना और विविध कलाओं के आश्रय से जीवन-निर्वाह करना सिखाया। रिषभदेव भगवान् के नेतृत्व में सर्व प्रथम नगरी बसाई गई जो विनीता नाम से प्रसिद्ध हुई। वही विनीता नगरी आगे चल कर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कर्म-युग का प्रारम्भ

रिषभदेव ने भोगभूमि में पले हुए लोगों को कर्म की शिक्षा दी। उन्होंने पुरुषार्थ का सबक सिखाया। स्त्रियों और पुरुषों को चौसठ और बहत्तर कलाओं का शिक्षण दिया। अक्षर-ज्ञान और लिपि-विज्ञान की शिक्षा दी। असि (सस्त्र) मसि (लेखन) और कृषि के शिक्षण के द्वारा उन्होंने मानव-जाति को उस महान् संकट से उबार लिया। जनता की आवश्यकताएँ अब उसके पुरुषार्थ

के द्वारा पूर्ण होने लगीं। इससे जनता ने पुनः सुख-शांति का अनुभव किया। इस रूप में भगवान् रिषभदेव मानव-जाति के त्राता हैं, आदि गुरु हैं और सर्व प्रथम उपदेष्टा हैं। इसीलिए वे 'आदिनाथ' कहलाते हैं।

इस तरह रहन-सहन और खान-पान में जनता को स्वावलम्बी बनाने के पश्चात् भगवान् रिषभदेव ने सामाजिक नीति का सूत्रपात किया। युगलिक-युग में मानव-जीवन की कोई विशिष्ट मर्यादा नहीं थी। अतः उन्होंने कर्म-भूमि युग के आदर्श के लिए और पारिवारिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए विवाह-प्रथा को प्रचलित करना उचित समझा। अतः भगवान् का विवाह सुमंगला और सुनंदा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। इस प्रथम विवाह का आदर्श जनता में भी फैला और समस्त मानव-जाति सुगठित परि-वारों के रूप में फलने-फूलने लगी। भगवान् ने अपने आदर्श गृहस्थाश्रम के द्वारा जनता को गृहस्थ-धर्म की शिक्षा दी। सुमंगला के परम प्रतापी पुत्र भरत हुए। ये बड़े ही प्रतिभाशाली सुयोग्य शासक थे। इनके नाम से ही हमारा देश भारतवर्ष कहलाता है। ये इस युग के प्रथम चक्रवर्ती हुए। सुनन्दा के गर्भ से बाहुबलि उत्पन्न हुए। ये अपने युग के माने हुए शूर वीर योद्धा थे। ये जैसे शूर वीर थे वैसे धर्म वीर भी थे अतः उन्होंने प्रबल वैराग्य से दीक्षा धारण कर आत्म-कल्याण किया था। भरत और बाहुबलि के सिवाय भगवान् रिषभदेव के अट्ठाणवें पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी नाम की दो कन्याएँ भी थीं। भगवान् ने इन दोनों पुत्रियों को उच्च शिक्षण दिया था। भगवान् ने ब्राह्मी को सर्व प्रथम लिपि का शिक्षण दिया था अतः इस कन्या के नाम से ही वह ब्राह्मी लिपि कहलायी। भगवान् ने कन्याओं को प्रथम शिक्षण देकर मानव-जाति के विकास में स्त्री-शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व प्रदर्शित किया है।

तत्कालीन प्रजा का संगठन सुव्यवस्थित चलता रहे इस उद्देश्य से भगवान् ने मानव-जाति को तीन भागों में विभक्त किया था—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण वर्ण की स्थापना भगवान् के सुपुत्र महाराजा भरत ने उक्त तीनों विभागों में से मेधावी पुरुषों को चुन कर अपने चक्रवर्ती-काल में की। भगवान् ने वर्ण की स्थापना में कर्म को महत्त्व दिया था। उस समय जाति को कोई महत्त्व नहीं था। इस प्रकार भगवान् ने जीवनोपयोगी साधनों

के उत्पादन की, सामाजिक प्रथाओं की, राजनैतिक नीतियों की और अन्यान्य आवश्यक बातों की व्यवस्था की। भगवान् ने संकट में फँसी हुई तत्कालीन मानव-जाति की नैया को कुशलतापूर्वक पार पहुँचाई।

मानव-जाति की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की शिक्षा देने और उसको व्यवस्थित कर देने के पश्चात् भगवान् ने आत्म-कल्याण का मार्ग अपनाया। उन्होंने सर्वस्व परित्याग कर मुनि-दीक्षा धारण की। वे एकांत वनों में ध्यान धर कर खड़े रहते थे। उन्होंने अखण्ड मौन धारण किया था। शरीर-रक्षा के लिए वे अन्न-जल तक नहीं लेते थे। भगवान् के साथ अन्य चार हजार पुरुषों ने भी दीक्षा ली थी। ये लोग किसी गम्भीर चिंतन के बाद आत्म-निरीक्षण की दृष्टि से तो मुनि नहीं बने थे, केवल भगवान् के प्रेम के कारण उनके पीछे हो गये थे। अतः इन्हें आध्यात्मिक आनंद नहीं आ सका। ये भूख-प्यास से घबरा उठे। भगवान् मौन रहते थे अतः उन्हें पता नहीं चला कि क्या करें और क्या न करें? मुनि-वृत्ति छोड़ कर ये कुटिया बना कर और वन-फल खाकर निर्वाह करने लगे। भारतवर्ष में विभिन्न धर्मों का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। आचरण और तत्त्वज्ञान दो ही धर्म के अङ्ग हैं। इन दो की भिन्नता के कारण ही भिन्न-भिन्न धर्म प्रचलित हुए हैं।

भगवान् बारह मास तक निराहार रहे। वे सहिष्णुता की उच्च कोटि पर पहुँचे हुए थे अतः विविध कष्टों को सह कर वे आत्म-साधना करते रहे। कठोर साधना के कारण उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भगवान ने धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने स्त्री और पुरुष को समान महत्त्व देते हुए चार तीर्थ की स्थापना की—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। भगवान् ने साधु तथा गृहस्थ के कर्तव्यों का उपदेश दिया। यही उपदेश जैन धर्म है। जिन अर्थात् आभ्यन्तर रागद्वेषादि शत्रु को जीतनेवाले बन कर रिषभदेव ने यह उपदेश दिया, अतः यह जैन धर्म कहलाता है। इस युग में भगवान् रिषभदेव ही धर्म की आदि करनेवाले सर्व प्रथम तीर्थंकर हुए हैं।

कतिपय लोग भगवान् रिषभदेव को केवल पौराणिक पुरुष मानते हैं और उनकी यथार्थता में शंका करते हैं परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है। भगवान् रिषभदेव वैसे ही यथार्थ महामानव हैं जैसे राम और कृष्ण।

जैसे राम और कृष्ण के अस्तित्व के विषय में शंका नहीं उठाई जाती इसीतरह रिषभदेव के सम्बन्ध में भी शंका को अवकाश नहीं होना चाहिये। भगवान् रिषभदेव का उल्लेख केवल जैन धर्म में ही नहीं। है वैदिक और बौद्ध स्रोतों से भी उनका समर्थन होता है। श्रीमद् भागवत में रिषभदेव की महिमा मुक्तकंठ से गाई गई है। उसके पञ्चम स्कन्ध अ. ३-६ में रिषदेव का वर्णन है जहां उन्हें कैवल्यपति और योगधर्म का आदि उपदेशक बताया है। वह जैनतीर्थंकर से अभिन्न है। रिग्वेद में भी इनका उल्लेख है। प्रभासपुराण आदि में भी उनका उल्लेख है। यह पहले जैनधर्म की प्राचीनता के प्रकरण में कहा जा चुका है।

बौद्धाचार्य आर्यदेवने " सत् शास्त्र " में रिषभदेव को जैनधर्म का आदि प्रचारक लिखा है। धर्मकीर्त्तिने भी सर्वज्ञ के उदाहरण में रिषभ और महावीर का समान रूप से उल्लेख किया है। धम्मपद के " उसभं पवरं वीरं " पद न.४२२ में तीर्थंकर रिषभदेव का उल्लेख है। इन सब से यही सिद्ध होता है कि भगवान् रिषभदेव इस अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम धर्म की आदि करने वाले यथार्थ महापुरुष हैं। उनकी वास्तविकता के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका करना निर्मूल है।

भगवान् रिषभदेव मानव जाति के सर्वप्रथम उद्धार कर्त्ता हैं। वे न केवल जैनधर्म की बल्कि विश्व की विभूति हैं। ये मानव जाति के आदिगुरु आदि उपदेशक हैं। सारा विश्व इनका रिणी है। यही जैनधर्मके इस युग के आद्यप्रवर्तक हैं।

इनके पश्चात् द्वितीय तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ से लेकर इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमीनाथ तक के तीर्थंकर अत्यन्त प्रचीन काल में होगये। इनका काल ऐतिहासिक काल की परिधि से बहुत पहले का है। बावीसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि हुए। ये कर्मयोगी श्री कृष्ण के पैतृक भाई थे।

सर भाण्डारकरने नेमिनाथ को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है। नेमिनाथ देवकीपुत्र कृष्ण के चचेरे भाई और यदुवंश के तेजस्वी तरुण थे। कृष्ण यदि ऐतिहासिक पुरुष माने जाते हैं तो कोई कारण नहीं है कि नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष न माना जावे। भगवान् नेमिनाथ के महान् जीवन-कार्य उनकी ऐतिहासिकता

नेमीनाथजीकी ऐतहासिकता

के स्वयं प्रमाण हैं। उन्होंने ठीक लग्न के मौके पर माँस के निमित्त एकत्रकिये गये सैकड़ों पशुपक्षियों को लग्न में असहयोग के द्वारा जो अभयदान दिलाने का महान् साहस किया उसका प्रभाव सामाजिक समारम्भों में प्रचलित चिरकालीन मांस-भोजन की प्रथापर ऐसा पड़ा कि उस प्रथा की जड़ हिलसी गई। जैन परम्परा के आगे के इतिहास में जो अनेक अहिंसा पोषक और प्राणि रक्षक प्रयत्न दिखाई देते हैं उनके मूल में नेमिनाथ की इस त्याग घटना का संस्कार काम कर रहा है। नेमिनाथ के जीवन की यह मौलिक घटना उनके महान् ऐतिहासिक जीवन को प्रकट करती है। इस घटना को विश्वसनीय मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है।

भगवान् पार्श्वनाथ

तेवीसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को अब सब विद्वान मानने लगे हैं। पहले कुछ विद्वान, जैनधर्म का प्रारम्भ भगवान् महावीर से मानने की भूल करते थे परन्तु बाद के संशोधनों से यह अब सर्व सान्य तत्व हो गया है कि महावीर से पहले कई शताब्दियों पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व था। भगवान् पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता अब सर्वमान्य को चुकी है। इस विषय में अब किसीको सन्देह नहीं रहा। ऐतिहासिक विद्वानों ने इनका समय ईसा से पूर्व ८००वर्ष माना है। विक्रम संवत् पूर्व ८२० से ७२० तक का आपका जीवनकाल है। महावीर स्वामी के निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व आपका निर्वाण काल है।

भगवान् पार्श्वनाथ अपने समय के युगप्रवर्त्तक महापुरुष थे। वह युग तापसों का युग था। हजारों तापस उग्र शारीरिक क्लेशों के द्वारा साधना क्रिया करते थे। कितने ही तापस वृक्षोंपर औंधे मुँह लटका करते थे। कितने ही चारों ओर अग्नि जला कर सूर्य की आतापना लेते थे। कई अपने आपको भूमि में दबा कर समाधि लेते थे। अग्नितापसों का उस समय बड़ा प्राबल्य था। शारीरिक कष्टों की अधिकता में ही उस समय धर्म समझा जाता था। जो साधक जितना अधिक देह को कष्ट देता था वह उतना ही अधिक महत्व पाता था। भोलीभाली जनता इन विवेक शून्य क्रिया काण्डों में धर्म समझती थी; इसप्रकार उससमय देहदण्ड का खूब दौरदौरा था। भगवान् पार्श्वनाथ ने धर्म के नामपर चलते हुए उस पाखण्ड के विरुद्ध प्रबल शान्ति की। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि विवेक हीन क्रिया काण्डों

का कोई महत्व नहीं है । सत्य विवेक के बिना किया गया घोरतम तपश्चरण भी किसी काम का नहीं है । हजार वर्ष पर्यन्त उग्र देहदमन किया जाय परन्तु यदि विवेक का अभाव है तो वह व्यर्थ होता है । विवेक शून्य क्रियाकाण्ड आत्मा को उन्नत बनाने के बजाय उसका अधः पतन करने वाला होता है । भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन की यही सर्वोत्तम महानता है कि उन्होंने देह-दमन की अपेक्षा आत्मसाधना पर विशेष भार दिया ।

कमठ, उस समय का एक महान् प्रतिष्ठा प्राप्त तापस था । वह वाराणसी के बाहर गंगातट पर डेरा डाल कर पंचाग्नि तप किया करता था । इस पंचाग्नितप के कारण वह हजारों लोगों का श्रद्धाभाजन और माननीय बना हुआ था । हजारों लोग उसके दर्शन के लिए जाते थे । पार्श्वनाथ भी वहाँ गये । उन्होंने देखा कि तापस की धूनी में जलने वाली बड़ी २ लकड़ियों में नाग और नागिनी भी जल रहे हैं । उनका अन्तःकरण इस दृश्य को देखकर द्रवित हो गया । साथ ही उन्होंने इस पाखण्ड को, ढोंग को आडम्बर को दूर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया । तात्कालिन प्रथा के विरुद्ध और बहुमत वाले लोकमत के खिलाफ आवाज उठाना साधारण काम नहीं है इसके लिए प्रबल आत्मबल की आवश्यकता होती है । पार्श्वनाथ ने निर्भयता पूर्वक अपने अन्तःकरण की आवाज को उस तापस के सामने रक्खी । उसके साथ धर्म के सम्बन्ध में गम्भीर चर्चा की और सत्य का वास्तविक स्वरूप जनता के सामने रखा । उन्होंने अपने पर आने वाली जोखिम की परवाह न करते हुए स्पष्ट उद्घोषित किया कि ऐसा तप अधर्म है जिसमें निरपराध प्राणी मरते हों । पार्श्वनाथ की सत्यमय, ओजस्वी और युक्तियुक्त वाणी को सुनकर कमठ हतप्रभ होगया । पार्श्वनाथ ने जलते हुए नाग नागिनी को बचाया और उन्हे सम्यक धर्मशरण के द्वारा सद्गति का भागी बनाया । कमठ पर पार्श्वनाथ की विजय विवेक शून्य देह दण्ड पर आत्मसाधना की विजय थी ।

भगवान् पार्श्वनाथ ने उस तापस युग में आत्मा और अनात्मा का स्पष्ट स्वरूप जनता के सामने रक्खा । "आत्मतत्व भिन्न २ तत्वों का समूह नहीं परन्तु अच्छेद्द और शाश्वत शुद्ध तत्व है । ईश्वर और मनुष्य, पशु और वृक्ष आदि सब में चेतन-आत्मा है । पूर्वभव के कर्मफल प्रत्येक आत्मा को

भोगनेपड़ते हैं। ये कर्म-फल जब तक आत्मा पर लदे हुए हैं तब तक वह भव भव में भ्रमण करता रहता है। जब कर्मों का क्षय होता है, आत्मस्वरूप की शुद्ध प्रतीती होती है, आत्मा और परमात्मा के तदात्म्य का अनुभव होता है। तब मोक्ष होता है। परमात्मा और जीवात्मा का अन्योन्त अभेद का नाम ही मोक्ष है"। यह पार्श्वनाथ का आत्मविपयक मन्तव्य था।

भारतीय तत्त्व ज्ञान का प्राचीन इतिहास अन्धकार से घिरा हुआ है अतः किसने और कब आत्म तत्त्व के सिद्धान्त की स्थापना की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। फिर भी प्राचीन वेद और उपनिषदों में आत्मा का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैतिरीय, ऐतरेय, कौशीतकी आदि उपनिषदों में वर्णित आत्म तत्व का स्वरूप वाद के उपनिषदों में परिवर्त्तित हो जाता है। काठक आदि उपनिषदों में उसका दूसरा ही रूप दृष्टिगोचर होता है। इससे विद्वानों का अनुमान है कि ईसा से पूर्व की सहस्राब्दी पूर्वार्ध में आत्म तत्व की विचारणा विशेष रूप से हुई है। इसका प्रभाव ही वाद के उपनिषदों पर पड़ा है। अर्थात् पार्श्वनाथ ने आत्म-अनात्म तत्व की जो स्पष्ट विचारणा की उसका ही प्रभाव तत्कालीन उपनिषदों पर पड़ा है। वैदिक और बौद्ध साहित्य में आत्म-तत्व की जो विचारणा है उसका मूल बीज पार्श्वनाथ के आत्म-अनात्म विचारणा में सन्निहित है। यह तो निश्चित है कि भगवान् पार्श्वनाथ ने आत्मा की साधना पर विशेष भार दिया। उन्होंने अपना सारा जीवन आत्मा की साधना में ही व्यतीत किया और उन्होंने अन्त में सफलता प्राप्त की। उन्हें परिपूर्ण आत्म ज्ञान प्राप्त होगया और उन्होंने अन्य जीवों को भी आत्मा और कर्म का स्वरूप समझाकर कर्म से मुक्त होने का उपाय बताया।

आत्मा का शुध्द स्वरूप, कर्म जनित विकार और कर्मविकार से मुक्त होने के उपायों का भगवान् पार्श्वनाथ ने तत्कालीन जनता को भलीभाँति दिग्दर्शन कराया। आत्मा की साधना और मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन्होंने चार महाव्रतों का पालन करने का विधान किया। वे चार महाव्रत इस प्रकार हैं:—(सव्वाओ पाणाइवायाओवेरमणं) सब प्रकार की हिंसा से दूर रहना, (सव्वाओ मुसावायाओवेरमणं) सब प्रकार के मिथ्याभाषण से

चतुर्याम के पुरस्कर्त्ता पार्श्वनाथः—

दूर रहना, (सव्वाओ अदिएणादाणाओ वेरमणं) सब प्रकार के अदत्तादान से दूर रहना और (सव्वाओं बहिद्धादाणाओ वेरमणं) सब प्रकार के परिगृह का त्याग करना। अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिगृह की आराधना करने से आत्मा का सर्वाङ्गीण विकास हो सकता है। अपरिगृह में ब्रह्मचर्य का भी समावेश हो जाता था क्योंकि उसकाल में स्त्री भी परिग्रह समझी जाती थी। इस प्रकार पार्श्वनाथ ने चतुर्याम मय धर्म का उपदेश दिया। बाह्य क्रिया काण्डों और विवेक शून्य दैहिक तपश्चर्याओं के चक्कर में फँसी हुई जनता को आत्मतत्व और आत्मविकास का उपदेश देकर भगवान् पार्श्वनाथ ने विश्व का महान् कल्याण किया।

सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् श्री धर्मानन्द कौशाम्बीने "भारतीय संस्कृति और अहिंसा" नामक अपनी पुस्तकमें पार्श्वनाथके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है:—

"परिक्षित के बाद जननेजय हुए और उन्होंने कुरुदेश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झंडा लहराया। उसी समय काशी देश में पार्श्व एक नवीन संस्कृति की आधार शिला रख रहे थे।"

"श्री पार्श्वनाथका धर्म सर्वथा व्यवहार्य था हिंसा, असत्य, अस्तेय और परिग्रह का त्याग करना, यह चतुर्याम संवरवाद उनका धर्म था। इसका इन्हों ने भारत में प्रचार किया। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुव्यस्थित रूप देने का, यह प्रथम ऐतिहासिक उदाहरण है।

"श्री पार्श्वमुनि ने सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह—इन तीन नियमों के साथ अहिंसा का मेल बिठाया। पहले अरण्य में रहने वाले ऋषि मुनियों के आचरण में जो अहिंसा थी, उसे व्यवहार में स्थान न था अस्तु उक्त तीन नियमों के सहयोग से अहिंसा सामाजिक बनी, व्यवहारिक बनी।

"श्री पार्श्वमुनि ने अपने धर्म के प्रसार के लिए संघ बनाया। बौद्ध साहित्य से ऐसा मालूम होता है कि बुद्ध के काल में जो संघ अस्तित्व में थे उनमें जैन साधु तथा साध्वियों का संघ सबसे बड़ा था।"

उक्त उदाहरण से भगवान् पार्श्वनाथ के महान् जीवन की झाँकी मिल जाती है। भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी-नरेश अश्वसेन और महारानी

श्री वामा देवी के सुपुत्र थे। गृहस्थदशा में भी आपने विवेक शून्य तापसों से विचार संघर्ष किया और सत्य प्रचार का मंगल आरम्भ किया तत्पश्चात् राजसी वैभव को ठुकरा कर आप आत्म साधना के लिए निर्ग्रन्थ बन गये। आपके हृदय में समभाव का स्रोत उमड़ रहा था। साधनावस्था में कमठ ने इन्हें भीषण कष्ट दिये परंतु आप उस पर भी दया का स्रोत बहाते रहे। धरणेन्द्र ने आपकी उस उपसर्ग से रक्षा की तो भी उस पर अनुराग न हुआ। आपत्तियों का पहाड़ गिराने वाले कमठ पर नतो द्वेष हुआ और न भक्ति करने वाले धरणेन्द्र पर अनुराग हुआ। इस प्रकार पार्श्व प्रभु ने अखण्ड साम्यभाव की सफल साधना की। परिणाम स्वरूप आपको विमल ज्ञान का आलोक प्राप्त हुआ। आपने विश्वकल्याण के लिए चतुर्विध संघ की स्थापना की और ज्ञान का प्रकाश फैलाया। सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर आप निर्वाण पधारे।

प्रभु पार्श्वनाथ के निर्वाण के बाद उनके आठ गणधरों में से शुभदत्त संघ के मुख्य गणधर हुए इनके बाद हरिदत्त, आर्यसमद्र, प्रभ और केशि हुए। पार्श्वनाथ के निर्वाण और केशि स्वामी के अधिकार पद पर आने के बीच के काल में पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा उपदिष्ट व्रतों के पालन में क्रमशः शिथिलता आगई थी। इस समय निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में काल प्रवाह के साथ विकार प्रविष्ट हो गये थे। सद्भाग्य से ऐसे समय में पुनः एक महाप्रतापी महापुरुष का जन्म हुआ, जिन्होंने संघ को नवीन संस्कार प्रदान किये। ये महापुरुष थे चरमतीर्थङ्कर, भगवान् महावीर।

भ० महावीर और उनकी धर्म क्रान्ति

"भगवान् महावीर अहिंसा के अवतार थे, उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था।...महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्त के लिए पूजा जाता हो तो वह अहिंसा है।...प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया हो तो वे महावीर स्वामी थे।"—महात्मा गांधी

प्राचीन भारत के धार्मिक इतिहास में भगवान् महावीर प्रबल और सफल क्रांतिकार के रूप में उपस्थित होते हैं। उनकी धर्म क्रान्ति से भारतीय

धर्मों के इतिहास का नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। वे तत्कालीन धर्मों का काया कल्प करने वाले और उन्हें नव जीवन प्रदान करने वाले युग निर्माता महापुरुष हुए। विश्व में अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं महामानव महावीर को है। मानव जाति के इस महान् शिक्षक की उदात्त शिक्षाओं के अनुसरण में ही सच्चा सुख और शाश्वत शान्ति सन्निहित है। इस सत्य को यह विश्व जितना जल्दी समझ सकेगा उतना ही उसका कल्याण हो सकेगा और वह सच्चा शांति निकेतन बन सकेगा। डा. वाल्टर शून्विग ने नितान्त सत्य ही कहा "संसार सागर में डूबते हुए मानवोंने अपने उद्धार के लिए पुकारा इसका उत्तर श्री महावीर ने जीव के उद्धार का मार्ग बता कर दिया। दुनिया में ऐक्य और शांति चाहने वालों का ध्यान महावीर की उदात्त शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।" सचमुच भगवान् महावीर मानव जाति के महान् त्राता के रूप में अवतरित हुए।

महावीर स्वामी का जन्म विक्रम संवत् पूर्व ५४२ (ईस्वी सन् पूर्व ५९९) में हुआ। इनकी जन्मभूमि क्षत्रियकुण्डपुर है। यह स्थान वर्तमान बिहार प्रदेश के पटनानगर के उत्तर में आये हुए वैशाली (वर्तमान बसाढ़) प्रदेश का मुख्य नगर था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। इनके पिता ज्ञातृवंश के प्रभावशाली राजा थे। वैसे ये क्षत्रियों के स्वाधीन तंत्र मण्डल के प्रमुख थे। इन सिद्धार्थ का विवाह वैशाली के अधिपति चेटक राजा की बहन त्रिशला के साथ हुआ। इसीसे इनके महान् प्रभावशाली होने का परिचय मिलता है। भगवान् महावीर का जन्म ज्ञातृकुल में हुआ इसलिए वे ज्ञातपुत्र के रूप में भी प्रसिध्द हुए। इनका गौत्र काश्यप था। माता पिता ने इनका नाम वर्धमान रक्खा था क्योंकि इनके जन्म से उनकी सम्पत्ति में वृध्दि हुई थी। किन्तु सम्पत्ति की निःसारता से प्रेरित होकर उन्होंने त्याग और तपस्या का जीवन स्वीकार किया। उनकी घोर अत्युत्कट साधना के कारण इनका नाम महावीर होगया और इसी नाम से वे विशेष प्रसिद्ध हुए। वर्धमान नाम इतना प्रचलित नहीं है जितना इनका आत्म गुणनिष्पन्न महावीर नाम।

भगवान् महावीर के माता पिता भ० पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। अतः

बचपन में महावीर भी त्यागी महात्माओं के संसर्ग में आये हों यह सम्भव है। महावीर राजकुमार थे, सब प्रकार के सुखोपभोग के साधन उन्हें प्राप्त थे उनके चारों ओर संसारिक सुख वैभव बिछा पड़ा था। यह सब कुछ था, परन्तु महावीर के हृदय में कुछ दूसरी ही भावनाएँ काम कर रही थी। उनका चित्त सांसारिक सुखों से ऊपर उठकर किसी गम्भीर चिन्तन में लगा रहता था। वे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और विविध परिस्थितियों पर विचार करते थे। उनका चित्त उस काल के धार्मिक और सामाजिक पतन के कारण खिन्नसा रहता था उस समय का विकारमय वातावरण उन्हें क्रान्ति की चुनौति दे रहा था। उस चुनौति को स्वीकार करने के लिए उनके चित्त में पर्याप्त मन्थन हो रहा था। उन्होंने उस परिस्थिति में आमूल चूल क्रान्ति पैदा करने का संकल्प कर लिया था। वे दीर्घदर्शी थे अतः उन्होंने एकदम बिना साधना के क्रान्ति के क्षेत्र में उतरने का साहस नहीं किया, उन्होंने क्रान्ति पैदा करने के पहले अपने आपको तैयार करना अपनी दुर्बलताओं पर विजयपाना अधिक हितकारी समझा। इसलिए अपनी २८ वर्ष की उम्र में माता पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर उन्होंने त्यागमार्ग, आत्मसाधना का मार्ग स्वीकार करना चाहा। परन्तु उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के आग्रहके कारण दो वर्ष तक गृहस्थ जीवन में ही वे तपस्वियोंसा अलिप्त जीवन बिताते हुए रहे और परिस्थिति का अध्ययन करते हुए अपनी तैयारी करते रहे। अन्ततोगत्वा तीस वर्ष की भरी जवानी में विशाल साम्राज्य लक्ष्मी को ठुकरा कर मार्गशीर्ष कृष्णा दसवीं के दिन पूर्ण अकिञ्चन भिक्षु के रूप में वे निर्जन वनों की ओर चल पड़े।

महावीर की साधना

महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए ध्यान, धारणा, समाधि और उपवास अनशन आदि सात्विक तपस्याओं का आश्रय लिया। वे मानव समाज से अलग, दूर पर्वतों की कन्दराओं में और गहन वन प्रदेशों में रहकर आत्मा की अनन्त, परन्तु प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को जगाने में ही संलग्न रहे। एक से एक भयंकर आपत्तियों ने उन्हें घेरा, अनेक प्रलोभनों ने उन्हें विचलित करना चाहा परन्तु भगवान् हिमालय की तरह अडोल रहे। जिन घटनाओं का वर्णन पढ़ने से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से जिस जीवन पर गुजरी होंगी वह कितना महान् होगा!

साधनाकाल में भगवान् महावीर ने दीर्घ तपस्वी बन कर असह्य परीषह और उपसर्ग सहन किये। कठोर शीत, गरमी, डाँस-मच्छर और नाना क्षुद्र जन्तु जन्य परिताप को उन्होंने समभाव से सहन किया। बालकों ने कुतुहल वश उन्हें अपने खेलका साधन बनाया, पत्थर और कंकर फेंके। अनार्यों ने उनके पीछे कुत्ते छोड़े। स्वार्थी और कामी स्त्री-पुरुषों ने उन्हें भयंकर यातनाएँ दीं। परन्तु उन्होंने अरक्तद्विष्ट भाव से सब कुछ सहन किया। वे कभी श्मशान में रह जाते, कभी खँडहर में, कभी जंगल में और कभी वृक्ष की छाया में। उन्होंने कभी अपने निमित्त बना हुआ आहार-पानी ग्रहण नहीं किया। शुद्ध भिक्षाचर्या से जो कुछ जैसा वैसा मिला उसीसे निर्वाह किया। उन्होंने साढ़े बारह वर्ष के लम्बे साधना काल में सब मिलाकर ३५० से अधिक दिन भोजन नहीं किया। कितनी कठोर साधना है!

उन महासाधक ने कभी प्रमाद का अवलम्बन नही लिया। सदा अप्रमत्त होकर साधना में लीन रहे। रात्रि में भी निद्रा का त्याग कर वे ध्यानस्थ रहते। मानापमान को उस जितेन्द्रिय महापुरुष ने समभाव से सहन किया। इस प्रकार आन्तरिक और बाह्य सब प्रकार के कष्टोंको उन्होंने जिस समभाव से सहन किया वह सचमुच विस्मय का विषय है। उनकी साधना काल का जीवन अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रस्थित एक अप्रमत्त संयमी का खुला हुआ जीवन है। उन्होंने अपने जीवन के द्वारा अपने उपदेशों की व्यावहारिकता सिद्ध की है। जो कुछ उन्होंने अपने जीवन में किया, जिस कार्य को करके उनने अपना साध्य सिद्ध किया वही उन्होंने दूसरों के सामने रक्खा। उससे अधिक कोई कठिन नियम उन्होंने दूसरों के लिए नहीं बताये। सचमुच महावीर का जीवन मानवीय आध्यत्मिक विकास का एक जीता जागता आदर्श है। वे केवल उपदेश देने वाले नहीं परंतु स्वयं आचरण करने के बाद दूसरों को मार्ग बताने वाले सच्चे महापुरुष थे।

भगवान् महावीर ने संसार सुखों को छोड़कर संयम का मार्ग अपनाते समय प्रतिज्ञा की थी कि मैं किसी भी प्राणी को पीड़ा न दूँगा, सर्वसत्वों से मैत्री रक्खूँगा, अपने जीवन में जितनी भी बाधाएँ उपस्थित होंगी उन्हें बिना किसी दूसरे की सहायता के समभाव पूर्वक सहन करूँगा। इस प्रतिज्ञा को एक वीर पुरुष की तरह इन्होंने निभाया, इसीलिए वे महावीर कहलाये।

अहिंसा और सत्य की निरन्तर साधना के बल से उन्होंने अपने समस्त दोषों-विकारों और दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर ली। साढ़े बारह वर्ष तक दीर्घ तपस्या का अनुष्ठान करने के पश्चात् उन्हें अपने लक्ष्य में सफलता मिली। वे वीतराग बनगये। आत्मा की अनन्त ज्ञान ज्योति जगमगा उठी। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन उन्हें केवल ज्ञान और केवल दर्शन का विमल प्रकाश प्राप्त हुआ। तब वे लोगों को हित का उपदेश देने वाले तीर्थङ्कर बने। यह है महावीर की कठोर साधना और उसका दिव्य-भव्य परिणाम।

तत्कालीन परिस्थिति

भगवान् महावीर के उपदेश और उनकी क्रान्ति को समझने के पहले उस काल की परिस्थिति का ज्ञान करना आवश्यक है। महापुरुष अपने समय की परिस्थिति के अनुसार अपना सुधार आरम्भ करते हैं। अपने समय के वातावरण में आये हुए विकारों में सुधार करना ही उनका प्रधान काम हुआ करता है। अतः हमें यहाँ यह देखना है कि भगवान् महावीर के सामने कैसी परिस्थिति थी। उस समय भारत के धार्मिक क्षेत्रमें वैदिक कर्मकाण्डों का प्राबल्य था। सब तरफ हिंसक यज्ञों का दौरदौरा था। लाखों मूक पशुओं की लाशें यज्ञ की बलिवेदी पर तड़पती रहती थीं। पशु ही नहीं बालक, वृद्ध और लक्षण सम्पन्न युवक तक देव पूजा के बहम से मौत के घाट उतारे जाते थे। यज्ञों में जितनी अधिक हिंसा की जाती थी उतना ही अधिक उसका महत्व समझा जाता था। ब्राह्मणों ने धार्मिक अनुष्ठानों को अपने हाथ में रख लिया था। देवों और मनुष्यों का सम्बन्ध पुरोहित की मध्यस्थता के बिना हो सकता था। सहायक के तौर पर नहीं बल्कि स्थिर स्वार्थों की रक्षा के लिए प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता अनिवार्य कर दी थी। धार्मिक विधि-विधान भी जटिल बना दिये गये थे ताकि उन्हें सम्पन्न कराने वाले पुरोहित के बिना काम ही न चले। इस तरह ब्राह्मण वर्ग ने अपना एकाधिपत्य जमा रखा था। उन्होंने अपनी सत्ता को बनाये [illegible] लिए [illegible] का भूत खड़ा कर रक्खा था। जिसके अनुसार वे [illegible] समाज के एक वर्ग को सर्वथा हीन मानते थे। [illegible] के आधार पर उन्होंने शूद्रों [illegible] दिया था। स्त्रियों की स्वत[illegible] अनुष्ठानका स्वातन्त्र्य प्राप्त

के सिवा और कोई उनका काम ही नही था । "स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्" का खूब प्रचार था । मनुष्यों का महान व्यक्तित्व नष्ट हो चुका था और वे अपने आपको इन ब्रह्मण पुजारियों के हाथ का खिलौना बनाये हुए थे । प्रत्येक नदी नाला, प्रत्येक ईंट -पत्थर प्रत्येक झाड- झंखाड़ देवता माना जाता था । भोला समाज अपने आपको दीन मान कर इनके आगे अपना मस्तक रगड़ता फिरता था । इस तरह आध्यात्मिक और संस्कृतिक पतन के काल में भगवान महावीर को अपना सुधार-कार्य प्रारम्भ करना पड़ा ।

उपदेश और धर्म क्रान्ति

अपनी अपूर्णताओं को पूर्ण करने के पश्चात् विमल केवल-ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर भगवान् महावीर ने लोक-कल्याण के लिए उपदेश देना प्रारम्भ किया । उन्होंने अपने उपदेशों के द्वारा मानवता को जागृत करने का प्रयत्न किया । इसके लिए तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक भ्रान्त रूढियों के विरुद्ध उन्होंने प्रबल आन्दोलन किया । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि धर्म, बाह्य क्रिया काण्डों ही के द्वारा नहीं किन्तु आत्मा के गुणों का विकास करने से होता है । धर्म के नाम पर की जाने वाली याज्ञिकी हिंसा धर्म का कारण नहीं बल्कि घोर पाप का कारण है । हिंसा से धर्म होना मानना, विष खाकर जीवित रहने के समान असम्भव कल्पना है । उन्होंने हिंसक यज्ञों के विरुद्ध प्रबल क्रान्ति की । ब्राह्मण धर्म गुरुओं की दाम्भिकताका पर्दा-फाश किया । जिस जातिवाद के आधार पर वे अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए थे उसके विरुद्ध महावीर ने सिंहनाद किया । उन्होंने जाति-पांति के भेद भाव को निर्मूल बताया । उन्होंने डंके की चोट यह उद्घोषणा की कि मानव मात्र ही नहीं, प्राणी-मात्र धर्म का अधिकारी है । धर्म किसी वर्ग या व्यक्ति की पैतृक सम्पत्ति नहीं, वह सर्वसाधारण के लिए है । प्रत्येक प्राणी को धर्म के आराधन का अधिकार है । धर्म की दृष्टि में जाति की कोई महत्ता नहीं । मानव मानव के बीच भिन्नता की दीवार खड़ी करने वाले जातिवाद के विरुद्ध भगवान् महावीर ने प्रबलतम आन्दोलन किया । इसके फलस्वरूप अन्धविश्वासों के दुर्ग ढह-ढह कर भूमिसात् होने लगे । ब्राह्मण गुरुओं के चिर प्रतिष्ठित सिंहासन हिल उठे । चारों ओर क्रान्ति का ज्वाला मुखी फट पड़ा । प्राचीनता के पुजारियों ने प्रचलित परम्पराओं की रक्षा के लिए तन-तोड़ प्रयत्न किये, नव क्रान्ति को मिटाने के लिए अनेक उपायों का प्रयोग

किया। महान् क्रान्तिकार के मार्ग में काँटे बिछाये, परन्तु महापुरुष बाधाओं से कब रुका करते हैं ? वे तो अपने निश्चित ध्येय की ओर अविर आगे बढ़ते रहते हैं और साध्य पर पहुँच कर ही विराम लेते हैं। पुर पन्थियों के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी भगवान् महावीर के सचोट अ सक्रिय उपदेशों ने जनता में क्रान्ति की लहर व्याप्त कर दी। हिंसामय ध कृत्यों के प्रति जनता में घृणा के भाव पैदा होगये और ब्राह्मण धर्म गुरु के एकाधिपत्य को उसने अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार भगवान् महाव की धर्मक्रान्ति ने तत्कालीन भारत की काया पलट दी।

भगवान महावीर के उपदेश का सार थोड़े शब्दों में इस प्रकार दि जा सकता है:—सब जीव जीवन और सुख के अभिलाषी हैं, दुःख अ मरण सब को अप्रिय है, सब को जीना अच्छा लगता है जीवन सब वल्लभ है। मरना कोई नहीं चाहता अतएव जीवो और दूसरे को जीने दे अहिंसा की आराधना ही सच्चा धर्म है। यह धर्म ही शुद्ध है, ध्रुव नित्य है, शाश्वत है और सब त्रिकालदर्शी अनुभवियों के अनुभव का निचो है। (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये जाति से नहीं किन्तु कर्म से ह हैं। जन्मगत जाति का कोई महत्व नहीं। जन्म से ऊँच-नीच का भे वास्तविक नहीं, मिथ्या है। धर्माचरण और शास्त्र श्रवण का सबको सम अधिकार है। ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म-आत्मा के स्वरूप को जाने और अहिं धर्म का पालन करे। (३) यज्ञ का अर्थ आत्म बलिदान है जिस में हि होती है वह यज्ञ, वास्तविक यज्ञ नहीं है। (४) आत्मा का उद्धार आत्मा अपने पुरुषार्थ से कर सकता है और वह परमात्मा बन सकता है। आत पर लगे हुए कर्म के आवरणों को सम्यग ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्य चारित्र के द्वारा दूर कर प्रत्येक व्यक्ति मुक्ति का अधिकारी हो सकता (५) आत्मा स्वयं अपने कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है। इस तरह भगव महावीर के उपदेश और सिद्धांतों को हम इन चार विभागों के समावि कर सकते हैं:—(१) अहिंसावाद (२) कर्मवाद (३) साम्यवाद और (स्याद्वाद।

भगवान् महावीर की अहिंसा-प्रधान उपदेश प्रणालीने आचार म में, व्यवहार में अहिंसा की पुनः प्रतिष्ठा की। उनकी स्याद्वादमयी उदार ह



ने तत्वज्ञान और दार्शनिक विचार-संसार में नवीन दृष्टिकोण की सृष्टि की उनके कर्मवाद ने मानव जगत् को मानसिक दासता और आध्यात्मिक परतन्त्रता से मुक्ति दिलाई तथा पुरुषार्थ एवं स्वावलम्बन का पुनीत पाठ पढ़ाया उनके साम्यवाद के सिद्धांत ने जाति पांति के भेद को मिटा कर मानव मात्र की एक रूपता का आदर्श उपस्थित किया। इसी साम्यवाद ने स्त्रियों की पुनः सन्मान पूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा की। भगवान के साम्य सिद्धांत ने जाति भेद, लिंगभेद, वर्गभेद और अमीर-गरीब के भेद को निर्मूल किया और अपने धर्मशासन में गुणपूजा को महत्व दिया। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः" कालिदास की यह उक्ति भगवान महावीर के धर्मशासन में यथार्थ रूप से चरितार्थ होती है। भगवान महावीर ने अपने संघ में नारी को भी पुरुष के समान समानाधिकार देकर स्त्रीस्वातन्त्र्य की प्रतिष्ठा की और उसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। इसी तरह अपने श्रमण संघ में चाण्डाल जाति के व्यक्ति को भी मुनि दीक्षा देकर गुरुपद का अधिकारी बनाया। "सक्खं खुदीसइ तवो विसेसो न दीसइ जाइविसेस कोवि" अर्थात् "तप और संयम का वैशिष्ट्य है, जाति की कोई महत्ता नहीं" यह कह कर चाण्डाल पुत्र हरिकेशी को भी मुनि संघ में स्थान दिया और उसे ब्राह्मणों के यज्ञवाडे में भेज कर उनको भी पूजनीय बना दिया, यह भगवान महावीर के सामाजिक साम्य का भव्य उदाहरण है।

भगवान् महावीर ने अहिंसा और समता के आध्यात्मिक सिद्धान्तों को सामाजिक क्षेत्रमें भी सफलता पूर्वक प्रयुक्त किये। जैसाकि पं. सुखलालजी ने लिखा है:—

"महावीर ने तत्कालीन प्रबल बहुमत की अन्याय्य मान्यता के विरुद्ध सक्रिय कदम उठाया और मेतार्य तथा हरिकेशी जैसे सबसे निकृष्ट गिने जाने वाले अस्पृश्यों को अपने धर्मसंघ में समान स्थान दिलाने का द्वार खोल दिया। इतना ही नहीं बल्कि हरिकेशी जैसे तपस्वी आध्यात्मिक चाण्डाल को छुआछूत में आनखशिख डूबे हुए जात्यभिमानी ब्राह्मणों के धर्मवीरों में भेजकर गाँधीजी के द्वारा समर्थित मन्दिर में अस्पृश्य प्रवेश जैसे विचार के धर्म बीज बोने का समर्थन भी महावीरनुयायी जैन परम्परा ने किया है। यज्ञयाज्ञादि में अनिवार्य मानी जाने वाली पशु आदि प्राणी हिंसा से केवल

स्वयं पूर्णतया विरत रहते तो भी कोई महावीर या उनके अनुयायी त्यागी को हिंसाभागी नहीं कहता। पर वे धर्म के मर्म को पूर्णतया समझते थे इसीसे जयघोष जैसे वीर साधु यज्ञ के महान् समारंभ पर विरोध व संकट की परवाह किये बिना अपने अहिंसा सिद्धान्त को क्रिया शील व जीवित बनाने जाते हैं। अन्त में उस यज्ञ में मारे जाने वाले पशु को प्राण से तथा मारने वाले याज्ञिक को हिंसा वृत्ति से बचालेते हैं।"

आजके युग के महापुरुष महात्मा गांधीजी ने जिन जिन साधनों का अवलम्बन लेकर भारत में सफल क्रान्ति पैदा की और आधुनिक विश्व को विस्मय चकित किया उनका मूल स्रोत भगवान् महावीर के आदर्श जीवन और सिद्धान्तों में है। अहिंसा और सत्य का सिद्धान्त, अस्पृश्यता निवारण का सिद्धान्त, नारीजागरण, सामाजिक साम्य, ग्राम्यजनों की सुधारणा, श्रमिकों का आदर आदि २ कार्यों के लिए महात्माजी ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तों से प्रेरणा प्राप्त की है। महात्माजी की इन शिक्षाओं का उद्गम भ० महावीर की शिक्षाओं में है।

भगवान् महावीर स्वयं सब प्रकार के दोषों से अतीत हो चुके थे इसलिए उनके उपदेशों का जादू के समान चमत्कारिक प्रभाव होता था।

उपदेश का प्रभाव

जिस व्यक्ति का अन्तः करण पवित्र होता है उसके मुख से निकली हुई आवाज श्रोताओं के अन्तः करण को छू लेती है। इसके विपरीत जिस उपदेशक का आचरण अपने कहने के अनुसार नही होता उसका प्रभाव नहीं सा होता है। यदि हो भी जाता है तो वह क्षणिक ही होता है। भगवान् महावीर की वाणी में हृदय की पवित्रता का पुट था अतः उसका चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। भगवान् ने जिस २ क्षेत्र में प्रवेश किया उसमें सफलता प्राप्त की। उनका सबसे प्रधान कार्य था हिंसा का विरोध। इस दिशा में उन्हें जो सफलता मिली वह इसी बात से प्रकट हो जाती है कि अब हिंसकयज्ञों की प्रथा लुप्तसी हो गई है। यह भगवान् महावीर का अभूतपूर्व प्रभाव है कि जिन यज्ञों की पूर्णाहुति पशुवध के बिना नहीं हो सकती थी ऐसे यज्ञ भारत में नामशेष हो गये। इस विषय में आनन्द शंकर भाई ध्रुव लिखते हैं:—

"ऐतरीय कहा गया है कि सर्वप्रथम पुरुषमेध था, इसके बाद

अश्वमेध और अजामेध होने लगे। अजामेध में से अन्त में यवों से यज्ञ की समाप्ति मानी जाने लगी। इस प्रकार धर्म शुद्ध होते गये। महावीर स्वामी के समय में भी ऐसी ही प्रथा थी ऐसा उत्तराध्ययन सूत्र में आये हुए विजय घोष और जयघोष के संवाद से मालूम होता है। इस संवाद में यज्ञ का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट किया गया है। वेद का सच्चा कर्त्तव्य अग्नि होत्र है। अग्नि होत्र का तत्त्व भी आत्म बलिदान है। इस तत्त्व को काश्यप धर्म अथवा ऋषभ देव का धर्म कहा जाता है। ब्राह्मण के लक्षण भी अहिंसा धर्म विशिष्ट दिये गये हैं। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में भी ब्राह्मण के ऐसे ही लक्षण दिये गये हैं। गौतमबुद्ध के समय में ब्राह्मणों का जीवन इसी ही तरह का होगया था। ब्राह्मणों के जीवन में जो त्रुटियाँ आगई थी वे बहुत बाद में आई थी और जैनों ने ब्राह्मणों की त्रुटियों को सुधारने में अपना कर्त्तव्य बजाया है। यदि जैनों ने इस त्रुटि को सुधारने का कार्य न किया होता तो ब्राह्मणों को अपने हाथों पर काम करना पड़ता।"

इसी तरह लोकमान्य तिलक ने भी कहा है कि—जैनों के अहिंसा परमो धर्मः के उदारसिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप डाली है। यज्ञयागादिक में पशुओं की हिंसा होती थी। यह प्रथा आज कल बंद होगई है। यह जैन धर्म की एक महान् छाप ब्राह्मण धर्म पर अर्पित हुई है। यज्ञार्थ होने वाली हिंसा से आज ब्राह्मण मुक्त हैं यह जैन धर्म का ही पुनीत प्रताप है।

भगवान् महावीर के उपदेश, कार्य और पुण्य प्रभाव का उल्लेख करते हुए कवि सम्राट डॉ० रविन्द्र नाथ टेगौर ने कहा है:—

Mahav ra proclaimed in India the me sage of salvation that religion is reality and not a mere convention that salvation comes from taking refuge inthat true religion and not from observing that external ceremonies of the community that religion can not re ard any barries between man and man as an external verity. Wonderous to say, this teaching rapidly overtopped the barries of the races abiding instinct and conquered the whole country.

अर्थात्—"महावीर ने डिंडम नाद से आर्यावर्त्त में ऐसा संदेश उद्घोषित किया कि धर्म कोई सामाजिक रूढ़ि नहीं है परन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष बाह्य क्रिया काण्डों के पालन मात्र से नहीं मिलता है परन्तु सत्य धर्म स्वरूप में आश्रय लेने से मिलता है। धर्म में मनुष्य मनुष्यके बीच का भेद नहीं रह सकता है। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीर की ये शिक्षाएँ शीघ्र ही सब बाधाओं को पार कर सारे आर्यावर्त्त में व्याप्त होगई।"

कवि सम्राट् के इन वाक्यों से भगवान् महावीर के उपदेशों का क्या पुण्य प्रभाव हुआ सो स्वयमेव व्यक्त हो जाता है।

भगवान् महावीर पूर्ण वीतराग थे अतः उनकी दृष्टि में राजा-रंक का, गरीब-अमीर का, धनी-निर्धन का, ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था। वे जिस निस्पृहता से रंक को उपदेश देते थे उसी निस्पृहता से राजा को भी उपदेश देते थे। वे राजा आदि को जिस तत्परता से उपदेश देते थे उसी तत्परता से साधारण जीवों को भी उपदेश देते थे। यही कारण है कि उनके संघ में जहाँ एक ओर बड़े २ राजा राज्य का त्याग कर अनगार बने हैं वहीं दूसरी ओर साधारण, दीन, शूद्र और अति शूद्र भी मुनि बन सके हैं। भगवान् के अपूर्व वैराग्य का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था। इसीलिए बड़े २ राजा, राजकुमार, रानियाँ, सेठसाहूकार और उनके सुकुमार भगवान् के पास दीक्षित हो गये थे। भोग विलासों में सर्वदा बेभान रहने वाले धनी नवयुवकों पर भी भगवान् के वैराग्य और त्याग का गहरा असर पड़ा। राजगृही के धन्ना और शालिभद्र जैसे धनकुबेरों के जीवन परिवर्त्तन की कथाएँ कट्टर से कट्टर भोगवादी के हृदय को भी हिला देतीं हैं। बड़े २ राजा महाराजाओं के सुकुमार पुत्रों को भिक्षु का बाना पहने हुए, तप और त्यागी की साक्षात् जीती जागती मूर्त्ति बने हुए और गाँव गाँव में अहिंसा दुंदुभी बजाते हुए देखकर भगवान् के महान् प्रभाव से हृदय पुलकित हो उठता है। मगध सम्राट् श्रेणिक की उन महारानियों को जो पुष्प शय्या से निचे पैर तक नहीं रखती थीं जब भिक्षाणियों के रूप में घर-घर भिक्षा माँगते हुए, धर्म की शिक्षा देते हुए देखते हैं तो हमारा हृदय एकदम "धन्य धन्य" पुकार ... है। यह था भगवान् महावीर के उपदेशों का चमत्कारी पुण्य प्रभाव।

भगवान् के उपदेश को सुनकर वीरागंक, वीरयश, संजय, एणेयक, सेय, शिव उदयन और शंख इन समकालीन राजाओं ने प्रवज्या अंगीकार की थी। अभयकुमार, मेघकुमार आदि अनेक राजकुमारों ने घर-बार छोड़कर व्रतों को अंगीकार किया। स्कन्धक प्रमुख अनेक तापस तपस्या का रहस्य जानकर भगवान् के शिष्य बन गये। अनेक स्त्रियाँ भी संसार की असारता जानकर श्रमणी संघ में सम्मिलित हो गईं थीं। भगवान् के गृहस्थ अनुयायियों में मगधराज श्रेणिक, कोणिक अधिपति चेटक, अवन्तिपति चण्डप्रद्योत आदि थे। आनन्द आदि वैश्य श्रमणोपासकों के साथ ही साथ शकडालपुत्र जैसे कुम्भकारभी उपासक संघ में सम्मिलित थे। अर्जुनमाली जैसे दुष्ट से दुष्ट हत्यारे भी उनके पास वैर त्याग कर के शान्तिरस पानकर समाधारण कर दीक्षित हुये थे। भगवान् के उपदेश सब श्रेणियों के उपयोगी और हितकर होते थे। अतः सब श्रेणियों के व्यक्ति भगवान् के संघ में सम्मिलित हो सके थे। भगवान् का उपदेश सर्वतोमुखी था अतः उसका पुण्यप्रभाव भी सर्वतोमुखी हुआ था।

सबसे आश्चर्य की बात यह है कि भगवान् के सर्वप्रथम शिष्य ब्राह्मण पण्डित हुए,— इन्द्रभूति गौतम। जो अपने समय के एक धुरन्धर दार्शनिक, साथ ही क्रियाकाण्डी ब्राह्मण माने जाते थे वे भगवान् के प्रथम शिष्य हुए। गौतम पर भगवान् के अप्रतिम ज्ञान प्रकाश का और अखण्ड तपस्तेज का वह विलक्षण प्रभाव पड़ा कि वे यज्ञवाद का पक्ष छोड़कर भगवान् के पास चार हजार चार सौ ब्राह्मण विद्वानों के साथ दीक्षित होगये। यह है भगवान् के उपदेश का पुण्य प्रभाव।

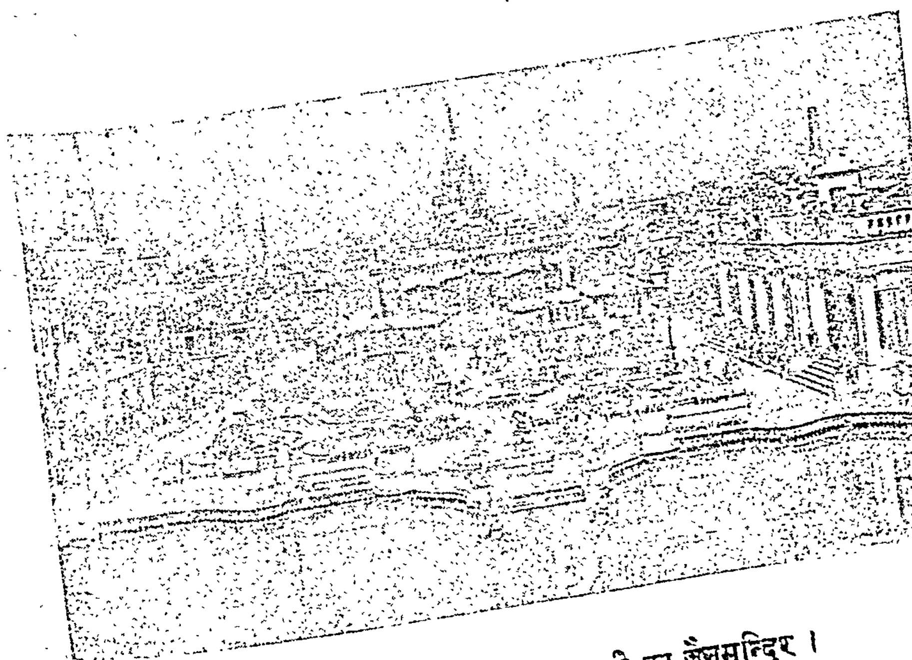
महावीर का अनुयायी नृपति मण्डल

भगवान् महावीर स्वयं राज कुमार थे। उनके पिता सिद्धार्थ प्रतापी राजा थे। माता त्रिशाला वैशाली के नरेश चेटक की बहन थी। चेटक नरेश की पुत्री का विवाह मगध प्रतापी राजा बिम्बसार (श्रेणिक) के साथ हुआ था। राज परिवारों के सम्बन्ध के कारण भी भगवान् महावीर को अपने धर्म प्रचार में संभवतः कुछ सहूलियत हुई हो। भगवान् महावीर के उपदेशों से अनेक नृपति प्रभावित हुए। उनके अनुयायी नरेशों में—वैशाली नरेश चेटक—(जो गणसत्तात्मक राज्य के नायक थे),

कौशाम्बी के राजा शतानिक, मगध नरेश श्रेणिक (बौद्ध ग्रन्थों में जिसे बिम्बिसार भी कहा गया है ।)जैन सूत्रों में भंभासार नाम भी मिलता है। सेणिय नाम तो जैन और बौद्ध दोनों ग्रथों में पाया जाता है ।)श्रेणिक का पुत्र राजा कौनिक (अजात शत्रु), उसका पुत्र राजा उदायी, उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत, पोतनपुर के राजा प्रसन्नचन्द्र वीतभय पट्टन का उदायी राजा आदि मुख्य हैं । कथा साहित्य परसे यह मालूम होता है कि कम से कम तेवीस राजाओं ने भगवान् महावीर का उपदेश सुन कर उनका धर्म स्वीकार किया और उनके दृढ़ अनुयायी हो गये ।

जैन सूत्रों में जो भगवान् के समवसरण और धर्म कथा का वर्णन आता है उससे यह प्रतीत होता है कि राज वर्ग के लोग भगवान् के उपदेश को सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहते थे । बड़े २ प्रतापी राजा अपने अन्तः पुर, दरबारी गण और दल बल सहित तीर्थङ्करों का उपदेश सुनने के लिए जाते थे । भगवान् के उपदेश इतने सचोट होते थे कि अनेक राजाओं ने उससे प्रभावित होकर दीक्षा धारण करली थी । मगध देश—भगवान् की मातृभूमि के अग्रगण्य नृपति भगवान् के विशेष सम्पर्क में आये । महाराजा श्रेणिक, उनका पुत्र कोणिक और तत्पुत्र उदायी ये बड़े धर्मात्मक राजा हुए । यह परम्परा अशोक वर्धन और सम्प्रति तक चलती रही थी । महान् सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तब नव नन्द वंश ने शिशुनाग राजाओं का राज्य ले लिया । इस नन्द वंश के आश्रय में भी महावीर का धर्म विकासित हुआ । इसके बाद नन्दवंश के अन्तिम नन्द के पास से मौर्यवंश के महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त ने राज्य ले लिया तब भी जैनधर्म का खूब विकास हुआ । भारत के प्रथम इतिहास प्रसिद्ध महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त जैनधर्मानुयायी हो गये थे । स्वयं जैन थे । दिगम्बर सम्प्रदाय के कथानुसार चन्द्रगुप्त ने राजपाट छोड़कर अन्त में मुनि दीक्षा धारण कर ली थी और भद्र बाहु स्वामी के साथ वह मैसूर चला गया था । वहाँ श्रवण बेलगोल की गुफा में ही उसका देहोत्सर्ग हुआ । चन्द्रगुप्त बिन्दुसार और उसके बाद अशोक भी जैनधर्म के साथ गाढ़ सम्पर्क रखने वाले राजा हुए है । सम्राट अशोक का जैनधर्म के साथ सम्बन्ध था इस विषयक प्रमाणों में किसी तरह का विवाद नहीं है । अशोक ने अपने उत्तर जीवन में बौद्ध धर्म को विशेषतया स्वीकार कर लिया था तदपि जैनधर्म के साथ उसका व्यवहार

भगवान् महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी में जलमन्दिर ।



कलकत्ता में राय बहादुर बद्रीदासजी का जैनमन्दिर ।

ठीक-ठीक बना रहा। इस तरह मगध की राजपरम्परा में भगवान् महावीर का धर्म दीर्घ काल तक चलता रहा।

भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तीर्थ की स्थापना की। अपने उपदेशों के प्रभाव से उनके तीर्थ में साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

पंचयाम धर्म और संघ-व्यवस्था

यह पहले कहा जा चुका है कि तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ स्वामी ने चतुर्याममय धर्म का उपदेश दिया था। उस समय स्त्री को भी परिग्रह रूप समझा जाता था अतः अपरिग्रह व्रत में ब्रह्मचर्य व्रत का भी समावेश कर लिया जाता था। भगवान् पार्श्वनाथ ने अपने संघ के साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य पालन की आज्ञा दी थी परन्तु उसे अलग व्रत न मान कर अपरिग्रह व्रत में ही सम्मिलित कर लिया था परन्तु धीरे-धीरे परिग्रह का अर्थ संकुचित होता गया। अब परिग्रह से धन, धान्य, जमीन आदि ही समझे जाने लगे। धीरे-धीरे मानव-प्रकृति में वक्रता और जड़ता बढ़ने लगी इस लिए स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य को अलग व्रत के रूप में स्थान देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। भगवान् महावीर के समय में कई दाम्भिक परिव्राजक ऐसा भी प्रतिपादन करने लगे थे कि स्त्री-सेवन में कोई दोष नहीं है। इस तरह की परिस्थिति में भगवान् महावीर ने चतुर्याम धर्म के स्थान में पञ्चयाम मय धर्म का उपदेश दिया

भगवान् महावीर ने नवीन सम्प्रदाय या मत की स्थापना नहीं की। उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में जो विकारी तत्त्व प्रविष्ट हो गये थे उन्हें दूर कर उसका संशोधन किया। भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के सिद्धान्तों और तत्वज्ञान में कोई भेद नहीं है। केवल बाह्य आचार में परिस्थिति के अनुसार थोड़ा भेद किया गया है। पार्श्वनाथ के साधु-साध्वी विविध वर्ण के वस्त्र रख सकते थे जब कि भगवान् महावीर ने अपने साधु-साध्वियों के लिए श्वेत वस्त्र रखने की ही आज्ञा प्रदान की। सचेल-अचेल का यह भेद उत्तराध्ययन सूत्र के केशि-गौतम संवाद से प्रकट होता है। चतुर्याम-पञ्चयाम और सचेल-अचेल के भेद से ही भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर की परम्परा में नगण्यसा भेद था। इसके अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं था इसलिए ये दोनों परम्पराएँ

भगवान् महावीर के शासन के रूप में एक हो गई। केशि-गौतम संवाद से इस बात पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस तरह भगवान् महावीर ने पंच-याम मय धर्म का उपदेश दिया और अपने संघका व्यवस्थित विधान बनाया।

भगवान् महावीर में उपदेश प्रदान करने की जैसी अनुपम कुशलता थी वैसी ही अपने अनुयायियों की व्यवस्था करने की भी अद्वितीय क्षमता थी। भगवान् के द्वारा अपने संघ की जैसी व्यवस्था की गई है वैसी व्यवस्था अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती। अपने संघ में त्यागियों और गृहस्थों के पृथक पृथक् नियमों और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विधि-विधानों के द्वारा भगवान् महावीर ने अपने संघ को ऐसी शृंखला का रूप दिया है जो कभी छिन्न-भिन्न नही हो सकती। यह उनकी व्यवस्था-शक्ति की अनुपमता का सूचक है। पच्चीस सौ वर्ष पहले के बनाये हुए विधि-विधान आज भी उसी रूप में चले आ रहे हैं यह इसी व्यवस्थित संघ-व्यवस्था का परिणाम है। संघ-व्यवस्था की इस महान् शक्ति के कारण जैन धर्म अनेक संकट-कालों में से गुजरने पर भी सुरक्षित और सुव्यवस्थित रह सका है। प्रोफेसर ग्लाजेनाप ने भगवान् की संघ-व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि:—

"महावीर के धर्म में साधु-संघ और श्रावक-संघ के बीच जो निकट का सम्बन्ध बना रहा उसके फलस्वरूप ही जैन धर्म भारतवर्ष में आज तक टिका रहा है। दूसरे जिन धर्मों में ऐसा सम्बन्ध नहीं था वे गंगा भूमि में बहुत लम्बे समय तक नहीं टिक सके।" महावीर में योजना और व्यवस्था करने की अद्भुत शक्ति थी। इस शक्ति के कारण इन्होंने अपने शिष्यों के लिए जो संघ के नियम बनाये वे अब भी चल रहे हैं। महावीर के समय में स्थापित साधु-संघों में सब जैन साधुओं को व्यवस्थित नियमन में रखने का बल अब भी विद्यमान है, ऐसा जब हम देखते हैं तो काल-बल जिस पर जरा भी असर नहीं कर सकता ऐसा स्वरूप पार्श्वनाथ के साधु-संघ को देनेवाले इस महापुरुष को देख कर आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता है।"

महावीर की संघ-व्यवस्था का कितना भव्य स्वरूप है।

समकालीन धर्मप्रवर्तक

भगवान् महावीर के समकालीन धर्मप्रवर्तकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रभावशाली गौतम बुद्ध थे। ये बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्तक हैं। इन्होंने भी तत्कालीन यज्ञों में होनेवाली हिंसा और ब्राह्मणों के वर्णाभिमान के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया। उस समय के हिंसक यज्ञों और ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरोध में तीव्र क्रान्ति पैदा करनेवाले दो ही महापुरुष हुए—भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध। इन दोनों महापुरुषों ने तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र में नवीन क्रान्तिमय विचार-धारा को जन्म दिया। बाह्य-क्रियाकाण्डों और वैदिक ब्राह्मण पुजारियों के चक्कर में फँसी हुई जनता को आत्म-धर्म का पाठ सिखाने के लिए इन दोनों महापुरुषों ने प्रबल पुरुषार्थ किया है। धार्मिक क्षेत्र में से हिंसा को दूर कर देने का पुनीत श्रेय इन दोनों महान्विभूतियों को ही है। महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में विशेष वर्णन करना है, अतः उनका स्वतंत्र रूप से अगले प्रकरण में उल्लेख करेंगे। बुद्ध के अतिरिक्त इस उस समय निम्न लिखित पाँच और प्रसिद्ध मतप्रवर्तक हुए:—

(१) पूरण कस्सप (पूर्ण काश्यप)
(२) ककुद् कात्यायन
(३) अजीत केश कम्बली
(४) मंखलि पुत्र गोशाल (मस्करिन गोशाला)
(५) संजय वेलट्ठि पुत्त

इन धर्माचार्यों का और इनके सिद्धान्तों का बौद्ध-ग्रन्थों में नामोल्लेख पूर्वक निरुपण किया गया है जबकि जैन ग्रन्थ सूत्रकृतांग में नामोल्लेख के बिना ही इनके मतों का वर्णन किया गया है। इन धर्मप्रवर्तकों के मन्तव्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

पूरन कस्सप

ये अक्रियावाद के प्ररूपक माने जाते हैं। इनके सिद्धान्त का वर्णन इस प्रकार मिलता है:—"करते कराते, छेदन करते कराते, पकाते पकवाते, शोक करते परेशान होते, परेशान कराते, चलते चलाते, प्राण मारते, बिना दिये लेते, सेंध लगाते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, पर-स्त्री गमन करते, झूठ बोलते हुए

भी पाप नहीं किया जाता। छूरे से तेज चक्र द्वारा जो इस पृथ्वी के प्राणियों के एक मांस का खलिहान बनादे, मांस का पुंज बना दे तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं होता, पाप का आगम नहीं होता। यदि घात करते-कराते काटते-कटाते, पकाते-पकवाते गंगा के दक्षिण तीर पर भी जाए तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं—पाप का आगम नहीं होगा। दान देते दिलाते, यज्ञ करते कराते यदि गंगा के उत्तर तीर भी जाए तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्य का आगम नहीं होगा। दान, दम, संयम से, सत्य बोलने से न पुण्य है, न पुण्य का आगम है।"

सामञ्ञफल (दीग्घ निकाय) सूत्त में इस वाद को अक्रियावाद कहा गया है। सूत्रकृताङ्ग में ऐसे वाद का वर्णन है। इसे अकारकवाद कहा गया है। विद्वानों का मानना है कि "आत्मा अपने मूल स्वभाव में निष्क्रिय है और वह पुण्य-पाप से परे है" इस सिद्धान्त को यदि अन्तिम सीमा तक लिया जाय तो यह वाद फलित होता है।

बौद्ध-ग्रन्थ में पूरणकश्यप को अचेलक—नग्न तपस्वी तथा संघ-स्वामी, गणाचार्य ज्ञानी, यशस्वी और मत स्थापक के रूप में वर्णित किया है।

ककुद कात्यायन

यह शाश्वतवाद के प्ररूपक कहे जाते हैं। इनके सिद्धान्त का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है:—"यह जगह सात काय-पदार्थ का बना हुआ है। यह सप्तकाय अकृत, अनिर्मित, अवध्य, कूटस्थ और स्तम्भ-वत् अचल है। यह चलित नहीं होते, विकार को प्राप्त नहीं होते, न एक-दूसरे को हानि पहुंचाते हैं, न एक-दूसरे के लिए पर्याप्त है। यह सप्तकाय इस प्रकार है:—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजः-काय, वायुकाय, सुख, दुःख और जीवन। इन सप्तकाय को मारनेवाला, घात करानेवाला, सुननेवाला, सुनानेवाला, जाननेवाला, जतलानेवाला कोई भी नहीं है। जो तीक्ष्ण शस्त्र से किसी का शीष भी काट डाले तो भी कोई किसी को प्राण से नहीं मारता। सात कायों से अलग खाली जगह में वह शस्त्र गिरता है।"

ककुद कात्यायन का यह वाद "आत्मा को कोई नहीं मार सकता है, कोई नहीं छेद सकता है" गीता में वर्णित इस वाद को विशेष स्पष्ट किया

जाने पर फलित हो सकता है। प्रश्नोपनिषद् में कबन्धी कात्यायन का उल्लेख पाया जाता है। कबन्धी और ककुद ये दोनों शब्द शारीरिक पंगुता के वाचक हैं। आचार्य बुद्ध घोष ने लिखा है कि ककुद कात्यायन ठंडा पानी नहीं पीता था अपितु उष्ण जल पीता था। उसके अनुयायी भी तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे। कात्यायन का शिष्य-सम्प्रदाय भी विशेष था। वह विपुल शिष्य-वृन्द का नायक और प्रसिद्ध मत प्रवर्तक था।

अजित केश कम्बल

यह उच्छेदवाद या भूतवाद का प्ररूप है। इसके सिद्धान्त का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है:—"न दान हैं, न यज्ञ है, न होम है, न पुण्य या पाप का अच्छा-बुरा फल होता है, न यह लोक है न परलोक है, न माता है न पिता है, न अयोनिज (देव) सत्व हैं और न इस लोक में वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण है जो इस लोक और परलोक को स्वयं जानकर और साक्षात् कर कहेंगे। मनुष्य मरे हुए मनुष्य को खाट पर रख कर ले जाते हैं, उसकी निंदा-प्रशंसा करते हैं। हड्डियाँ कबूतर के रंग की हो जाती हैं और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते हैं उसका कोई फल नहीं होता। आस्तिकवाद झूठा है। मूर्ख और पंडित सब शरीर के नष्ट होते ही उच्छेद को प्राप्त हो जाते हैं। मरने के बाद कोई नहीं रहता।"

अजित केस कम्बल का यह वाद नास्तिक चार्वाक दर्शन से मिलता है। इसे भूतवाद भी कहा जाता है। अजित केस कम्बल अजित केस के बने हुए कम्बल को ही ओढ़ता था अतः वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह भी उस काल का, विपुल शिष्यवृन्द का नायक और प्रसिद्ध मत स्थापक था।

मंखलीपुत्त गोसालः—

भगवान महावीर और बुद्ध को छोड़कर तत्कालीन धर्मप्रवर्तकों में मंखली पुत्त गोसाल का महत्वपूर्ण स्थान था। उसने आजीविक सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इस सम्प्रदाय को भी उस समय में पर्याप्त महत्व मिला, ऐसा प्रतीत होता है। सम्राट् अशोक के शिलालेखों में आजीविक सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया गया है। अशोक के पौत्र दशरथ ने भी उनके लिये रहने को गुफाएँ भेंट की थी ऐसा वर्णन पाया जाता है। इस परसे इस सम्प्रदाय

के प्रभाव पूर्ण होने का प्रमाण मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि गोसाल का जन्म गोशाला में हुआ था अतः वह गोशालक नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह एक भिक्षाचर का पुत्र था। गोशालक भ० महावीर की छद्मस्थ अवस्था में छह वर्ष जैसे दीर्घ समयतक उनके साथ रहा था। बादमें उनका साथ छोड़कर वह निकल गया और उसने नया मत स्थापित किया जो आजीविक सम्प्रदाय के नाम से या नियति वाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मतका मन्तव्य इस प्रकार है:—

"सत्वों के क्लेश का हेतु नहीं है-प्रत्यय नहीं है। विना हेतु और विना प्रत्यय के ही सत्व क्लेश पाते हैं। सत्वों की शुद्धि का कोई हेतु नही है-कोई प्रत्यय नहीं है। विना हेतु और प्रत्यय के सत्व शुद्ध होते हैं। हम कुछ नहीं कर सकते हैं। कोई पुरुष भी नहीं कर सकता है। वल नहीं है। पुरुष का कोई पराक्रम नहीं है। सब सत्व, सब प्रानी, सब भूत और सबजीव अपने वश में नहीं है, निर्वल, निर्वीर्य, भाग्य और संयोग के फेर से छहजातियों में उत्पन्न हो सुख दुःख भोगते हैं"

वौद्ध ग्रन्थों में इस सिद्धान्त को संसार शुद्धिवाद कहा गया है और जैनसूत्रों में इसे नियातिवाद कहा गया है। आजीविकों के मत में वल, वीर्य पुरुषाकार या पराक्रम को स्थान नहीं है-क्योंकि उनके मतानुसार प्रत्येक पदार्थ नियतिभावाश्रित है। उपासक दशाङ्ग सूत्र में वर्णन है कि सकडाल पुत्र कुम्भकार पहले इसी आजीविक सम्प्रदाय का चुस्तअनुयायी था। नियतिवाद में उसकी अटूटश्रद्धा थी परन्तु वाद में भगवान् महावीर के सदुपदेश से उसने पुरुषार्थ की महत्ता जानी और अँगीकार की। उसने आजीविक सम्प्रदाय का त्याग किया और भ० महावीर का श्रावक वनगया। भगवती सूत्रमें गोशालक का विस्तृत अधिकार है।

आजीविक सम्प्रदाय के अनुयायीयों के विषय में कहा जाता है कि वे अचेलक तपस्वी थे और प्रत्येक वस्तु में जीवत्व होने के कारण किसी को विघ्न वाधा न पहुँचे ऐसे व्यवहार में वे श्रद्धा रखते थे। सामान्यतः निर्दोष भिक्षाचारी से अपना जीवन यापन करते थे। मज्झिम-निकाय में कहा गया है कि "अजीविक लोग दूसरों की आज्ञा मानकर स्वमान भंग नहीं होने देते

थे और वे औद्देशिक और नैमित्तिक भिक्षा स्वीकार नहीं करते थे । इतना ही नहीं जब लोग जीमने बैठे हों तब अथवा दुष्काल के समय एकत्रित अन्न में से भी भिक्षा मांगते नहीं थे और मछली मांस आदि मादक पदार्थ भी खाते नहीं थे ।"

गोशालक ने जैनसिद्धान्तों के अनुरूप ही अपने कई सिद्धान्तों का प्रचार किया । वह भ. महावीर के साथ छः वर्ष तक रहा अतः उसके सिद्धान्तों में जैनधर्म की छाया स्पष्ट है । आजीविक सम्प्रदाय की मुख्य नियतिवाद –विषयक मान्यता के अतिरिक्त एक और विशेषता है–वह है पुनर्जन्म विषयक विचित्र मान्यता । गोशालक का ऐसा मत था कि जीव को अनेक प्रकार के विविध भव में जन्म लेना पड़ता है और अन्त में निर्वाणपद पाने के अन्तिम भव में सात बार खोली बदलनी पड़तीं हैं । अर्थात् किसी मृत्यु प्राप्त शरीर में घुस कर नवीन रूप से जीवन चर्या करनी पड़ती है । ऐसा होने के बाद ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है । उसने स्वयं भी १३३ वर्ष की अपनी आयु में छह बार खोली बदलने के बाद सातवीं बार श्रावस्ती में गोसाल के शव में प्रवेश किया और वहां सोलह वर्ष तक रहा । इस सिद्धान्त के आधार पर गोशालक कहता था कि महावीर का जो गोशाल शिष्य था उसकी तो मैंने खोली ग्रहण की है, बाकी मेरे जीव के साथ उस गोशाल का कोई सम्बन्ध नहीं है । यह है गोशालक की पुनर्जन्म सम्बन्धी विचित्र मान्यता ।

गोशालक की मृत्यु के बाद भी उसका सम्प्रदाय चलता रहा । ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में अजीविक सम्प्रदाय अलग सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध था । तेरहवीं शताब्दी में भी इस सम्प्रदाय का नाम कहीं २ दिखाई देता है । बाद में यह सम्प्रदाय प्रो० ग्लाजेनाप के कथनानुसार दिगम्बर सम्प्रदाय में विलीन हो गई ।

संजय वेलट्ठिपुत्त

यह अनिश्चित वाद या अज्ञान बाद का प्ररूपक है । इसका सिद्धान्त इस प्रकार है :—"यदि आप पूछें क्या परलोक है ? और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तो आपको बताऊँ कि परलोक है । मैं ऐसा भी नहीं कहता हूँ कि "यह नहीं है ।" परलोक नहीं है । परलोक है भी और नहीं भी है । परलोक न है और न नहीं है । अयोनिज प्राणी नहीं है, है भी और नहीं भी है ।

अच्छे बुरे काम के फल हैं, नहीं हैं, है भी और नहीं भी, न है और न नहीं है।"

यह संजय वेलट्ठिपुत्त परिव्राजक थे। इनका यह मत अनिश्चित वाद के रूप में बौद्धग्रन्थों में वर्णित है। जैन ग्रन्थों में इसे अज्ञानवाद माना गया है। सूत्रकृताङ्ग सूत्र में इस अज्ञानवाद का वर्णन किया गया है। यह अज्ञान-एक ओर इन्द्रियातीत वस्तुओं की व्यर्थ चर्चाओं में से निकल कर मनुष्य जीवन सम्बन्धी बातों में तन्मय करने के लिए उपयोगी हो सकता है वहीं दूसरी ओर मानव समाज की तत्त्वजिज्ञासा, आचार प्रणालिका में बाधक हो सकता है। इसलिए भ० महावीर ने इस वाद का स्याद्वाद की विशिष्ट प्रणालिका द्वारा संशोधन किया और अज्ञानवाद का निराकरण किया। इस प्रकार बुद्ध को छोड़कर उक्त पांच मुख्य मतस्थापक भगवान् महावीर के समय में अपने २ मत का प्रचार करते रहे थे। इन सबके होते हुए भी उस समय में सफल धार्मिक क्रान्ति करने वाले दो ही महापुरुष विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए, श्री महावीर और श्री बुद्ध।

महावीर और बुद्ध

आज से पच्चीस शताब्दी पूर्व भारत वर्ष के धार्मिक क्षेत्र में एक प्रबल क्रान्ति की लहर उठी। उसने तत्कालीन समस्त भारत को त्वरित गति से प्रभावित किया। धर्मों के स्वरूप और बाह्य क्रियाकाण्डों में महत्व का परिवर्त्तन हुआ। इस क्रान्ति को जन्म देने वाले दो युग प्रवर्त्तक महापुरुष हुए। प्रथम श्री महावीर और दूसरे श्री गौत्तम बुद्ध। दोनों महापुरुषों के सामने समान लक्ष्य था और दोनों को एक सी परिस्थिति के बीच अपना कार्य आरम्भ करना पड़ा। इन दोनों महाविभूतियों ने उस काल के धार्मिक क्षेत्र में आये हुए विकारी तत्वों को दूर करने के लिए जो श्रम उठाया, धर्मों को जो वैज्ञानिक रूप दिया जो लोक कल्याण के कार्य किये इसके लिए सारा संसार इनका ऋणी है।

भगवान् महावीर और बुद्ध के समय में वेदविहित हिंसा आदि क्रियाकाण्डों ने ही धर्म का रूप ले रखा था। शूद्रों और स्त्रियों को अतिहीन समझा जाता था। उन्हें कोई धार्मिक अधिकार नहीं था। यज्ञों के द्वारा देव कृपा प्राप्त

को तार देने के क्रियाकाण्ड की रचना करके, वर्णभेद की प्रचण्ड दीवार खड़ी करके तथा अपने आपको सर्वोच्च और सर्वधिकारी मानकर कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में अपना एकाधिपत्य बना रखा था। इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त सी थी। उस समय इन दोनों क्षत्रिय सुधारकों ने सर्व प्रथम याज्ञिक हिंसाकाण्डों और जातिवाद के कारण फैली हुई विषमता को सारी बुराइयों का कारण माना और इन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न किये। इन दोनों क्षत्रिय आध्यात्मिक पुरुषों ने अहिंसामय धर्म का स्वरूप जनता के सामने रक्खा। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि यज्ञादि बाह्यक्रिया काण्डों से मोक्ष नहीं हो सकता। धर्म किसी वर्ग या जाति की बपौती नहीं है। वह सर्व साधारण की चीज है। प्रत्येक व्यक्ति उसका अधिकारी है। धर्म में जाति का कोई स्थान नहीं है। इस उपदेश के कारण तत्कालीन परिस्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ। याज्ञिक हिंसाओं का दौरदौरा कम हुआ। अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई। सर्व साधारण जनता को धर्म-पालन का अधिकार प्राप्त हुआ। तात्कालीन जनता ने इन महान् उपदेशकों के उपदेशों को हितकारी माना और वह उससे बहुत अंशों तक प्रभावित हुआ। दोनों महापुरुषों के द्वारा स्थापित संघों में प्रवृष्ट होकर जनता ने अपने को कृतार्थ और धन्य माना। भगवान् महावीर और उनके अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

इन दोनों महान् आत्माओं के बीच क्या सादृश्य था और क्या अन्तर था, इन दोनों की कार्य प्रणालि में क्या विशेषता थी, दोनों में क्या महत्वपूर्ण भेद था आदि विषयों पर प्रकाश डालते हुए जर्मन प्रोफेसर ल्यूमन ने लिखा है:—

"महावीर का जन्म ई० सं० पूर्व ५७० के आस पास हुआ। वह महान् विजेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। बुद्ध ई० सं० पूर्व ५५० के लगभग जन्मे और बुद्ध अर्थात् ज्ञानी कहलाये। ये दोनों महापुरुष "अर्हन्त", "भगवन्त" और 'जिन' नामों से विख्यात थे। किन्तु महावीर की तीर्थङ्कर संज्ञा उसी प्रकार निराली है जैसे बुद्ध की तथागत! दोनों महापुरुषों के क्रमशः यही नाम लोकप्रिय और प्रचलित थे। 'तीर्थङ्कर' शब्द का अर्थ 'तारन हार' अथवा 'मुक्तिमार्ग के प्रदर्शक' है। तीर्थंकर का भावार्थ 'मार्गदर्शक'

समझना ठीक है। 'तथागत' शब्द का अर्थ होता है "ऐसे गये जो" अर्थात् "सच्चे मार्ग पर चढ़े हुए" इसका भावार्थ "आदर्शरूप" होता है। महावीर ज्ञातकुल में और बुद्ध शाक्य कुल में जन्मे थे। इस लिये महावीर 'ज्ञातपुत्र' और बुद्ध शाक्यपुत्र भी कहलाये थे। शाक्य पुत्र की अपेक्षा शाक्यमुनि भी वह कहलाये। घर के भाई बन्धुओं में महावीर 'वर्द्धमान और बुद्ध 'सिद्धार्थ' नाम में प्रख्यात थे। बुद्ध नाम की अपेक्षा से उनके अनुयायी बौद्ध कहलाये और महावीर की जिन संज्ञा के अनुरूप उनके अनुयायी जैन नाम से प्रसिद्ध हुए।"

"लगभग तीस-तीस वर्ष की अवस्था में संसार-व्यवहार से उदासीन होकर दोनों ने त्याग मार्ग अंगीकार किया। दोनों ने उत्साह पूर्वक परिपूर्ण पुरुषार्थ से तपश्चर्या अंगीकार की। तपस्या इनके लिए कसौटी थी। महावीर इसमें सफल हुए और उन्होंने तप को महत्व देते हुए अपना धर्मोपदेश प्रचारित किया। ...... नैतिक सिद्धांत और धार्मिकभावनाओं में महावीर और बुद्ध प्रायः समान ही थे; मुख्य विषयों में तो एक मत थे इतना ही नहीं परन्तु इनके समय के दूसरे विचारकों के (कतिपय) नैतिक और धार्मिक अभिप्रायों के साथ भी दोनों एक मत थे......ब्राह्मण धर्म के आचार्यों के ज्ञाति भेद की संकुचितता के कारण और यज्ञ में पशुओं को मार कर होम करने में धर्म मानने के कारण उनका यह धर्म कार्य इन दोनों को भयंकर पाप कर्म प्रतीत हुआ। क्यों कि मनुष्य और पशु की हिंसा को ये भयंकर पाप मानते थे।... महावीर ने अपना पुरुषार्थ आत्मा के विषय पर अधिक लगाया, केवल वे साधु ही नहीं तपस्वी भी थे। किन्तु बुद्ध को बोध प्राप्त होने पर वह तपस्वी न रहे मात्र साधु रह गये। बुद्ध ने अपना पुरुषार्थ जीवनधर्म पर लगाया। इस प्रकार महावीर का उद्देश्य आत्मधर्म हुआ तो बुद्ध का लोकधर्म। बुद्ध ने अपना उद्देश्य आत्मधर्म से विकसित करके लोकधर्म स्वीकार किया। इस कारण वे प्रख्यात भी खूब हुए। बुद्ध की दृष्टि लोकसमाज पर लगी। वह सबके थे और उनका आत्मयोग भी सबके लिए था। इस प्रकार उनका धर्म महावीर के धर्म से सर्वथा स्पष्ट रीति से अलग ठहरता है।

महावीर के धर्म में सर्वोच्च भावना आत्मयोग और आत्मत्याग की है। प्रत्येक-बुद्ध और बुद्ध-इन दो शब्दों का अर्थ भेद दोनों महापुरुषों के भेद

को स्पष्ट करता है। प्रत्येक बुद्ध का अर्थ यह है कि "जो अपने लिए ज्ञानी हुआ हो," और बुद्ध का अर्थ यह कि वह पुरुष जो सबके लिए ज्ञानी हुआ हो। पहला ज्ञानी एकान्त में रहता हुआ अपनी आत्म शुद्धि करके संतोष मानता है। दूसरा लोक समाज में विचरते और उपदेश देते हुए भी आत्म शुद्धि का प्रयत्न करता है। महावीर को एकान्त वासी प्रत्येक बुद्ध की संज्ञा तो दी नहीं जा सकती, क्योंकि वह भी लोक समाज में विचरते थे। बुद्ध की तरह महावीर के भी अनेक शिष्य थे और उनका अपना संघ था। महावीर के संघ का विस्तार भी होता रहा। भारत की सीमा के बाहर, यद्यपि उसका विस्तार अधिक न हुआ परन्तु भारत में उसका अस्तित्व आज तक है। अतः महावीर का स्थान प्रत्येक बुद्ध से ऊँचा है। निस्संदेह महावीर उन महापुरुषों में थे जो आत्मचिन्तन पर विशेष ध्यान देते थे और उनके शिष्यगण आत्मोद्धार के लिए विशेष पुरुषार्थ करते थे। इस प्रकार प्रत्येक बुद्ध और बुद्ध इन दोनों श्रेणियों के ऊपर महावीर थे।

बुद्ध और महावीर की लोक समाज के प्रति दृष्टि की भिन्नता बताते हुए ल्यूमन ने ही लिखा है कि "महावीर लोक समाज के साथ हिल-मिल जाने की वृति से दूर रहते थे और बुद्ध लोक समाज में घुल मिल भी जाते थे। यह भेद इस पर से स्पष्ट जाना जाता है कि जब उनके अनुयायी प्रसंगोपात्त बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण देते तो वे उनके यहाँ भोजन करने चले जाते थे परन्तु महावीर ऐसा मानते थे कि जनसमाज के साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

भ० महावीर और बुद्ध के जीवन के मुख्य भेदों पर विचार करते समय हमारे सामने प्रधानरूप से निम्न बातें आती हैं:—

(१) भगवान् महावीर ने तपश्चर्या को स्वीकार कर उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की जब कि बुद्ध ने प्रारम्भ में तपस्या अंगीकार की परन्तु वे उसके द्वारा समाधि प्राप्त न कर सके। इसलिए उन्होंने तप पर विशेष भार नहीं दिया। उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन लिया। न तो वे गृहस्थों की तरह वासना-सक्त थे और न श्रमणों के समान घोर तपस्वी। महावीर आत्मयोगी और महा तपस्वी थे।

(२) महावीर ने अपने प्रचार कार्य में भी आत्म दृष्टि को प्रधानता दी। उनका उपदेश मुख्य रूप से त्याग और तप को लेकर होता था। व्यक्ति की आत्मा के उत्थान की ओर उनका विशेष लक्ष्य था अतः उन्होंने अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि अपने अनुयायियों की आत्म शुद्धि की ओर। तप-त्याग मय उपदेश के आचरण की कठिनता के कारण महावीर के अनुयायियों की संख्या इतनी अधिक न बढ़ सकी जितनी कि बुद्ध के अनुयायियों की। बुद्ध ने अपने अनुयायियों के लिये सरल मार्ग निर्धारित किया। वह कम श्रमसाध्य था अतः जनता का झुकाव उस ओर अधिक हुआ।

महावीर के संघ में आचार-विषयक कठिनता थी परन्तु साथ ही वह स्थिरता का कारण भी बनी जबकि बुद्ध के संघ में सरलता थी इसी लिए वह अधिक काल तक स्थिर न रह सका। अनुयायियों की अधिक संख्या होने पर भी बुद्ध धर्म भारत से लुप्त होगया और महावीर के अनुयायियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होने पर भी वह आज तक भारत भूमि में प्रभाव पूर्ण और गौरव पूर्ण स्थिति में बना रहा, यही यह सूचित करता है कि महावीर ने अपने संघ में प्रभाव की अपेक्षा स्थायित्व पर विशेष भार दिया।

(३) बुद्ध ने केवल जीवन सुधार पर लक्ष्य दिया, उन्होंने आत्मा, स्वर्ग नरक, आदि तत्त्वज्ञान की ओर उपेक्षा बुद्धि रक्खी। उन्होंने संसार के दुखों और उनसे मुक्त होने के लिए जीवन को संयामित बनाने पर जोर दिया। यह जीवन सुधार लिया तो भविष्य भी सुधर जायगा। बात तो ठीक थी; परन्तु बुद्धि की जिज्ञासा को इतने से संतोष नहीं होगा। महावीर ने इस जीवन के सुधार पर भी लक्ष्य दिया और आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक आदि तत्त्वों का भी वैज्ञानिक निरिक्षण किया। इससे मानव के मन को भी संतोष हुआ और बुद्धि को भी। इससे वह इस जीवन के साथ ही साथ भावी जीवन को भी सफल बनाने में समर्थ हुआ।

प्रोफेसर विन्टरनिट्स ने कहा है कि—बौद्धों की अपेक्षा विशेष तीव्र स्वरूप में जैन धर्म ने त्याग धर्म पर और संघ के नियमन के प्रकारों पर भार दिया है। श्रीबुद्ध की अपेक्षा श्री महावीर ने तत्त्व ज्ञान की एक अधिक से अधिक विकासित पद्धति का उपदेश दिया है

बुद्ध और महावीर की समीक्षा करते हुए एक लेखक ने लिखा है
बुद्ध का हृदय माता के समान कोमल और ममता मय था जबकि
वीर का हृदय पिता के समान कठोर और हितैषी था। इस रूपक के
रा इन दोनों महापुरुषों की महानता और महोपकारित का परिचय मिल
ता है।

भगवान् महावीर का निर्वाण-काल प्रायः ई. पू. ५२७ माना जाता है। परन्तु श्री हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व के मतानुसार महाराजा चन्द्रगुप्त के राज्या रोहण पूर्व १५५ वर्ष महावीर का निर्वाण हुआ। इस पर से जेकोबी महोदय ने यह कहा है कि यह प्रसंग ई. पू० ४७७ में बना होना चाहिए। माजिम निकाय के सामगाम सूत्र से स्पष्ट है कि जिस समय बुद्ध सामगाम में थे उस समय ज्ञातृपुत्र महावीर पावा में मुक्त हुए थे। महावीर निर्वाण के कुछ समय पश्चात् बुध्द दिवंगत हुए थे। महावीर का निर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन हुआ था। उस दिन लिच्छवी राजाओं ने निर्वाण के स्मरणार्थ अपने नगर में दीपमालाएँ जलाई थीं इसलिए दीपमालिका पर्व प्रचलित हुआ

महावीर निर्वाण से वीर संवत् चला आता है लोकमान्य तिलक ने बडौदा में जैन श्वे० कॉन्फेन्स में भाषण देते हुए बताया था कि—"इतिहास से इस बात का पता चलता है कि धर्माचार्य के नाम से संवत चलाने की पहल जैनों ने की है।"

जैनधर्म और बौद्धधर्म

जैनधर्म और बौद्धधर्म में अनेक समान तत्व हैं। इस समानता के कारण पाश्चात्य विद्वानों और इतिहासकारों में विविध भ्रमपूर्ण मान्यताएँ भी इन दोनों धर्मों के सम्बन्ध में फैली हैं। किसी ने जैनबौद्ध को एक ही माना, किसी ने जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा माना तो किसी ने बौद्धधर्म को जैन धर्म की शाखा के रूप में माना। कोल ब्रुक, प्रिन्सेप, स्टिवन्सन, ओ० टॉमस आदि की मान्यता थी कि बौद्धधर्म जैनधर्म से उत्पन्न हुआ है। सम्भवतः ये लोग इस अनुमान महावीर के प्रधान शिष्य गौतम को ही गौतमबुद्ध मानकर

पर आये थे। जैन कथा विभाग के अनुसार पार्श्वनाथ के सम्प्रदाय के बुद्ध कीर्त्ति नाम के साधु ने सरयू के तटपर तप करते हुए एक मरी हुई मछली को देखी और निर्जीव मानकर उसे खाने में कोई दोष नहीं है यह समझकर वह उसे खा गया इससे भ्रष्ट होकर उसने बौद्ध धर्म चलाया, ऐसा कहा जाता है। बौद्ध यह दावा करते हैं कि बौद्ध ग्रन्थों का आधार लेकर जैनों ने अपना धर्म स्थापित किया है। धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता के युग में ऐसी २ कल्पनाएँ पैदा हों, यह कोई अचरज की बात नहीं है, ऐसा होना स्वाभाविक है।

गत शताब्दी के कतिपय संशोधकों का ऐसा मत था कि जैनधर्म बौद्धधर्म की सम्प्रदाय है। जब बौद्धधर्म की अवनति होने लगी तब जैनधर्म की उत्पत्ति हुई"। ऐसा विल्सन और वेन्फी की मान्यता थी। क्रि. लासन आदि इसे ई. स. १-२ शताब्दी में और वेबर बौद्धधर्म के प्रारम्भ की शताब्दी में इसे उत्पन्न हुआ मानते थे। इस प्रकार इन दोनों धर्मों के पौर्वापर्य के सम्बन्ध में और एक दूसरे की शाखा मानने के विषय में जो विभिन्न मान्यताताएँ थी वे हर्मन जेकोब के अन्वेषण और गवेषणापूर्ण मन्तव्य से दूर होगई। हर्मन जेकोबी ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि जैनधर्म एक सर्वथा स्वतंत्र और मौलिक धर्म है। वह किसी बौद्ध या वेदधर्म की शाखा नहीं है। अब प्रायः सब ऐतिहासिक पुरातत्त्ववेत्ता इस बात से सहमत हैं कि "जैनधर्म व बौद्धधर्म दो अलग २ स्वतंत्र धर्म हैं। जैनधर्म, बौद्धधर्म से प्राचीन है। बौद्धधर्म का साम्य जैनधर्म के साथ अधिक है।"

यह सत्य है कि जैनधर्म और बौद्धधर्म की कई बातों में समानता है। दोनों वेद विरोधी है। दोनों ने ब्राह्मण गुरुओं की सत्ता और याज्ञिक कर्म काण्डों का विरोध किया था। दोनों ने अहिंसा, मैत्री और साम्य को महत्त्व दिया। दोनों ने जगत् कर्त्ता के रूप में ईश्वर को अस्वीकार किया। दोनों ने अपने पूज्य पुरुषों को "अर्हत् बुद्ध जिन" नाम दिये। दोनों के साहित्य में नाम प्रायः समान ही आते हैं। कर्म सिद्धान्त को भी किसी सीमा तक दोनों स्वीकार करते हैं। इतनी समानता होने के साथ ही साथ इन दोनों धर्मों में महत्त्व पूर्ण मौलिक भिन्नता है।

दोनों धर्मों के ग्रन्थ अलग २ हैं, इतिहास अलग २ है, कथाएँ भिन्न भिन्न हैं और सिद्धान्तों में भी महत्त्वपूर्ण भिन्नता है। जैनधर्म द्रव्यापेक्षया शाश्वत, अभौतिक जीव का अस्तित्व मानता है और यह स्वीकार करता है कि जबतक यह जीवात्मा पुद्गल के बन्धन में होता है तबतक वह संसार में परिभ्रमण करता है। बौद्धधर्म में ऐसा शाश्वत आत्मा ही नहीं माना गया है। उनका मानना है कि 'अहं' कोई जीव है ही नहीं। जिसे आत्मा, अहं या जीव रूप कहा जाता है वह कोई शाश्वत पदार्थ नहीं है परन्तु क्षणिक धर्मों की सन्तान है। यह एक क्षण में उत्पन्न होने वाली और दूसरे क्षण में नष्ट होने वाली विविध पदार्थों की शृंखला है। आत्मद्रव्य की नास्तिकता का यह सिद्धान्त बौद्धधर्म का महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त है। जैनधर्म और बौद्धधर्म के सिद्धान्त में यह मुख्य भेद है। इसी तरह ज्ञान, नीति, कर्म और निर्वाण के सम्बन्ध में भी बहुत भेद है।

अहिंसा और कर्म के सिद्धान्तों में उपरी साम्य होने पर भी गहराई से विचारने पर गहरा भेद प्रतीत होता है। जैनधर्म में मांसाहार का सर्वथा निषेध किया गया है और किसी भी अवस्था में मांसभक्षण की छूट नहीं दी ई गई है। जब कि बौद्धधर्म में अपने निमित्त न मारे गये जीवका मांसाहार करने की परिपाटी देखी जाती है। अहिंसा और हिंसा की परिभाषाओं में भी अन्तर है। कर्म के सिद्धान्त के विषय में बौद्ध मानते हैं कि प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल पाता है। जब तक रूप, वेदना, संस्कार और विज्ञान की संतान चलती रहेगी तबतक अनेक जन्मों में प्राणी को भ्रमण करना पड़ेगा। जब जब आस्रव क्षीण होंगे तब कर्मों का क्षय होगा और निर्वाण होगा"। इस विवेचन से यह स्पष्ट नहीं कि बुद्ध भी महावीर के अनुरूप कर्म को एक विशेष सूक्ष्म पुदगलों की आत्मा पर प्रक्रिया रूप मानते थे जो आस्रव, बंध और निर्जरा की अवस्थाओं से युक्त है। बौद्ध साहित्य में आस्रव और संवर शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु बंध और निर्जरा का प्रयोग कहीं नहीं हुआ।

संघ व्यवस्था में भी दोनों धर्मों में महत्व का भेद रहा है। महावीर ने साधु, साध्वी और श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की थी जबकि बुद्ध ने प्रथम, तो भिक्षुओं को और बाद में भिक्षुणियों को भी संघ में

स्थान दि गृहस्थों को उन्होंने संघ में स्थान नहीं दिया जैनसंघ में गृहस्थ और साधु का सम्पर्क नियमित बना रहे इसका ध्यान रक्खा गया जिससे साधु वर्ग में उतनी शिथिलता नहीं आसकी। बौद्धधर्म में यह व्यवस्था न होने से उसके साधु वर्ग में शिथिलता आगई। इसके कारण उसे अति क्षति उठानी पडी।

इतनी समानता और असमानता होने पर भी दोनों धर्म लम्बे समय तक साथ २ विकसित हुए हैं इसीलिए एक दूसरे का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। एक दूसरे के प्रभाव से उनमें कुछ नवीन तत्त्व आजाते हैं। जैसा कि जेकोबी ने लिखा है कि विचारों पर विशेष असर करने वाले बाह्य जगत् के प्रभाव को बौद्ध आस्रव कहते हैं। यह भाव जैनधर्म से लिया गया है। क्योंकि जीव पर कर्मपुदगल असर करते हैं, यह मान्यता केवल जैनधर्म की ही है।" इसी तरह हरिभद्र सूरिने तीर्थङ्कर को बोधिसत्व कहा है। यह भाव बौद्धों से लिया गया है। इसी तरह एक धर्म का दूसरे धर्म पर असर होता ही है। जैनधर्म और बौद्धधर्म के साम्य एवं वैषम्य का यह दिग्दर्शन मात्र है। अब आगे जैनधर्म और वैदिकधर्म के विषय में विचार करेंगे।

जैनधर्म और वैदिकधर्म

भारत भूमि में अज्ञातकाल से जैनधर्म और वैदिकधर्म साथ साथ चलते आये हैं। उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य और अन्यान्य पुरातत्त्व के साधनों से यह ज्ञात हो जाता है ये दोनों धर्म अत्यन्त प्राचीन काल से चले आरहे है। प्राचीनतम वेदों में जैनधर्म और उसके तीर्थङ्करों का स्पष्ट वर्णन पाया जाता हैं। प्रथम तीर्थङ्कर- ऋषभदेव के समय का पता लगाना असंभवसा है। वे इतने प्राचीन काल में हुए हैं कि उसका अन्दाजा लगाना भी दुष्कर है। जैनधर्म विषयक अज्ञान के कारण कई प्राच्य और प्रतीच्य विद्वानों ने जैनधर्म को वेदधर्म की शाखा मानने की भूल की है परन्तु अर्वाचीन अन्वेषकों के द्वारा यह प्रमाणित हो गया है कि जैनधर्म किसी भी धर्म की शाखा नहीं परन्तु स्वतंत्र मौलिक एवं प्राचीन धर्म है। जैसे २ जैनधर्म के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान अध्ययन और अन्वेषण करते जा रहे

हैं; वैसे २ उनकी यह पुरानी भ्रामक मान्यता दूर होती जा रही है और वे जैनधर्म की मौलिकता एवं महानता से प्रभावित होते जाते हैं। जैनधर्म की प्राचीनता पहले सिद्ध की चुकी जा है। यहाँ यह बताया जाता है कि जैनधर्म और वेदधर्म में क्या २ समानताएँ है और दोनों धर्मों में मौलिक भेद क्या है।

सदियों नहीं, हजारों वर्षों से एक दूसरे के सम्पर्क में रहने के कारण जैन और वेदानुयायी सम्प्रदायों के सामाजिक और दैनिक जीवन में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। जैन और अन्य हिन्दु कहे जाने वाले लोगों के रीति रिवाज और जीवन व्यवहार एक दूसरे से इतने हिलमिल गये हैं कि धार्मिक भेद होने पर भी उनमें कोई विशेष भेद नहीं मालूम होता। इसी लिए जैन और हिन्दु में मोटी दृष्टि से भेद दिखाई नहीं देता। कतिपय जैन, जनगणना में धर्म के खाने में अपने आपको हिन्दु लिखाते हैं या गणना करने वाले जैनों को हिन्दु मानकर अपने आप ही 'हिन्दुधर्मी' लिख लेते हैं। इसका कारण यह है कि दोनों में सामाजिक और व्यावहारिक समानता आगई है। वास्तव में जिसे आजकल हिन्दुधर्म कहा जाता है वह वेदधर्म है। यदि हिन्दु शब्द से धर्म का ही ग्रहण हो तब तो जैन स्पष्टरूप से हिन्दुओं से अलग है क्योंके उनके धर्म में और वेदधर्म में गहरा मौलिक भेद है। यदि हिन्दु शब्द से राष्ट्र का या भारतीय संस्कृति का अर्थ है तो निस्संदेह जैन हिन्दु है। सामाजिक और दैनिक जीवन व्यवहार के पारस्परिक प्रभाव से प्रभावित होने पर भी धार्मिक सिद्धान्तों का भेद ज्यों का त्यों बना रहा है।

वैदिक (ब्राह्मण) धर्म और जैन धर्म के सिद्धान्तों के मूल में ही गहरा अन्तर है। जैन सिद्धान्त साम्य के आदर्श पर आश्रित है जब कि ब्रह्मण धर्म के सिद्धान्त वैषम्य की भूमिका पर। जैनधर्म यह मानता है कि प्रत्येक आत्मा तात्विक दृष्टि से समान है। चाहे पृथ्वीगत हो, जलगत या वनस्पतिगत हो, या कीट-पतंग पशु-पत्ती रूप हो या मानव रूप हो, प्रत्येक आत्मा समान है। सूद्म सूद्म आत्मा को भी सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है अतएव प्राणी मात्र को आत्मतुल्य समझकर उसकी हिंसा से निवृत्त होना चाहिए। आत्म समानता के सिद्धान्त को जीवन-व्यवहार में उतारने के

लिए जैनधर्म ने अहिंसा को सर्वाधिक महत्व दिया है। प्राणिमात्र के दुःख को अपने दुख के समान अनुभव करने के लिए जैन शास्त्र स्थान स्थान पर आदेश करते हैं। जैनधर्म ने पृथ्वी में, अग्नि में, हवा में, वनस्पति में और कीट पतंगों में भी जीवात्माएँ मानी हैं अतएव उसका आत्म साम्य का सिद्धान्त अति व्यापक है। इस आत्म साम्य की व्यापकता के कारण उसकी अहिंसा भी इतनी ही व्यापक है। पृथ्वी और जलगत आत्माएँ भी तत्व दृष्टि से मानवात्मा के समान हैं अतएव अशक्य परिहार को अपवाद और विवशता मानकर यथा सम्भव सब प्राणियों के प्रति अहिंसक रहना –दूसरों के दुख को आत्म दुख के रूप में संवेदन करना–जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त है। ब्राह्मण धर्म में यह बात नहीं है। वहां अहिंसा धर्म माना गया परन्तु साथ ही यज्ञ-मार्गों में पशुओं की हिंसा का विधान किया गया है। यज्ञों में की जाने वाली हिंसा को यहां धर्म माना गया है। इस विधान में बलि किये जाने वाले निरपरा पशु आदि के प्रति स्पष्ट रूप से आत्म-साम्य का अभाव देखा जाता है। यह आत्मवैषम्य की दृष्टि है।

इस दृष्टि वैषम्य के कारण जैनधर्म और ब्राह्मण धर्म के धार्मिक अनुष्ठानों में तीव्र भेद पाया जाता है। ब्राह्मण धर्म यज्ञयागादि हिंसा प्रधान कर्म काण्डों और उनकी आज्ञा देने वाले वेदों में श्रद्धा रखता है जबकि जैन धर्म इन्हें नहीं मानता। वेद धर्म में नदियों को पवित्र मानकर उनमें स्नान करने का बड़ा धार्मिक महत्व है, जैनधर्म ऐसा नहीं मानता है। तात्पर्य यह है कि अहिंसा की प्रधानता के कारण जैनियों के बाह्य आन्तरिक अनुष्ठानों और वेदनुयायी सम्प्रदाय के धार्मिक अनुष्ठानों में बड़ा भेद रहा हुआ है।

जैन धर्म का साध्य निःश्रेयस (मोक्ष) है। जब कि वेदों के अनुसार ब्राह्मण धर्म का साध्य है अभ्युदय जिसमें ऐहिकसमृद्धि, राज्य, पुत्र-प्राप्ति, इन्द्रपद का लाभ, स्वर्गीय सुख आदि का समावेश है। उपनिषद आदि में आगे चल कर इस साध्य में परिवर्तन अवश्य देखा जाता है।

ब्राह्मण धर्म की सामाजिक व्यवस्था में और धर्माधिकार में ब्राह्मण वर्ण का जन्मसिद्ध श्रेष्ठत्व और उत्तर वर्णों का ब्राह्मण की अपेक्षा कनिष्ठत्व मान्य

गया है। जैनधर्म में जन्म से किसी वर्ग या वर्ण का प्राधान्य नहीं माना गया है। वह तो गुणकर्म के अनुसार श्रेष्ठत्व और कनिष्ठत्व मानता है। इसलिए धार्मिक क्षेत्रों में वह प्राणीमात्र को समान अधिकार प्रदान करता है। किसी भी वर्ण का व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अपने सद्गुणों के कारण उच्च पद को प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मण धर्म में जाति वाद की प्रधानता है जब कि जैन धर्म में गुणपूजा की प्रधानता।

जैन और ब्राह्मण परम्परा के तत्व ज्ञान में भी गहरा मौलिक भेद है। ब्राह्मण परम्परा में सांख्य योग मीमांसक आदि को छोड़ कर ईश्वर को जगत् का कर्त्ता और संहर्त्ता माना जाता है। जैन परम्परा में ईश्वर को जगन्नियता-कर्त्ता हर्त्ता नहीं माना गया है। जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक प्राणि अपनी सृष्टि का आप ही कर्त्ता है। जैन दृष्टि के अनुसार प्रत्येक आत्मा में ईश्वर भाव रहा हुआ है। जो आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्म के आवरण को दूर कर के अपने परमात्म भाव को प्रकट कर सकता है। जैन धर्म ईश्वर को शुद्ध जीवात्मा से अलग नहीं मानता है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है और सब मुक्तात्मा समान रूप से ईश्वर हैं। मुक्तात्मा ही ईश्वर है अतएव वह सृष्टि के सृजन और संहार के प्रपञ्च से अतीत है यह जैनधर्म की मान्यता है। जब कि ब्राह्मण परम्परा में मुक्तात्मा के अतिरिक्त ईश्वर की स्वतंत्र मान्यता है। और वह कर्त्तासंहर्त्ता माना गया है। जैन धर्म के अनुसार यह जगत-प्रवाह अनादि अनन्त है। इसमें उत्सर्पण अवसर्पण होता रहता है परन्तु यह निर्मूल नष्ट नहीं होता और नवीन पैदा नहीं होता। ब्राह्मण परम्परा में प्रलय के समय सृष्टि का प्रलय हो जाना और पुनः ईश्वर के द्वारा नई सृष्टि का सृजन करने का सिद्धान्त माना गया है।

इन दोनों धर्मों में आत्मा और कर्म के सम्बन्ध में भी मान्यता का भेद है। वह दार्शनिक चर्चा है अतः तत्वज्ञान के प्रकरण में उसका विशेष वर्णन किया जायगा। यहां तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि जैन धर्म आत्मा को प्रति व्यक्ति भिन्न, कर्ता, भोक्ता, प्रणामी नित्य और देह व्यापी मानता है। ब्राह्मण परम्परा में इस विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। सांख्य-योग्य, न्याय वैशेषिक और अद्वैतवादी परम्पराएँ इस विषय में अलग-अलग अभिप्राय व्यक्त करती हैं। न्याय वैशेषिक परम्परा आत्मा के कर्तृत्व को और उसके

स्वमीत्व को स्वीकार करती है अतः इस सम्बन्ध में वह जैन परम्परा के अधिक नजदीक है। ब्राह्मण परम्परा में कर्म को अदृष्ट सत्ता के रूप में माना गया है जब कि जैन परम्परा में रागद्वेष को भावकर्म कहा जाता है और इस भावकर्म के द्वारा आत्मा अपने आसपास सर्वत्र सदा वर्तमान सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं को आकृष्ट करता है तथा उसे विशिष्ट रूप अर्पित करता है, यह द्रव्य कर्म कहा जाता है। विशिष्ट रूप प्राप्त यह भौतिक परमाणुपुञ्ज कार्मण शरीर कहा जाता है सो जन्मान्तर में जीव के साथ जाता है और स्थूल शरीर के निर्माण की भूमिका बनाता है।

इसी तरह मोक्ष विषयक मान्यता में भी उक्त परम्पराओं में मतभेद है। जैन परम्परा के अनुसार मानव शरीर से ही साधना के द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जब कि वेद परम्परा में देवता भी मोक्ष प्राप्त कर सकते है जैन। परम्परा के अनुसार देवयोनि भोगभूमि है। वहाँ तो अपने पुण्य का फल भोगा जाता है। पाप और पुण्य के बन्धन से मुक्त होने के लिए मानव शरीर के द्वारा साधना करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त जैन तत्वज्ञान में कई ऐसे तत्व भी हैं जो वैदिक परम्परा में नही हैं जैसे। गति स्थिति में सहायता करनेवाले धर्म-अधर्म-तत्व, लेश्या,आदि-आदि-। जैन तत्वज्ञान की एक विशिष्ट विचार-शैली है जो अनेकान्त या स्याद्वाद के रूप में प्रसिद्ध है। इस शैली का प्राधान्य जैन धर्म के तत्त्वनिरूपक ग्रन्थों में ही पाया जाता है अन्यत्र नहीं।

इन सब असमानताओं के रहने पर भी ये दोनों धर्म पुरातन काल से साथ-साथ चले आते रहने के कारण एक-दूसरे से प्रभावित हुए हैं। एक-दूसरे ने एक-दूसरे से कुछ न कुछ ग्रहण किया ही है। छोटी-मोटी अनेक बातों में एक का प्रभाव दूसरे पर न्यूनाधिक मात्रा में पड़ा हुआ देखा जाता है। जैनधर्म की अहिंसा भावना का ब्राह्मण परम्परा पर क्रमशः इतना प्रभाव पड़ा कि जिससे यज्ञीय हिंसा लुप्तसी हो गई है। यज्ञीय हिंसा का समर्थन अब केवल शास्त्रीय चर्चा का विषय मात्र रह गया है। यह स्पष्ट रूप से जैन धर्म के प्रभाव को व्यक्त करता है। इसी तरह निवृत्ति प्रधान जैन धर्म पर ब्राह्मण परम्परा की लोक संग्राहक वृत्ति का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव

अवश्य पड़ा है यह मानना ही पड़ता है। इस सम्बन्ध में जर्मन प्रोफेसर ग्लाजेनाप ने "जैनधर्म" में लिखा है:—

"निस्संदेह हिन्दु सम्प्रदायों पर जैनधर्म की छाप तो है ही। पशु यज्ञ के विरुद्ध अहिंसा की भावना तीव्र हुई और खास करके वैष्णव धर्म में अन्नाहार की भावना की जड़ जमी यह जैन और बौद्ध धर्म की भावना का परिणाम कहा जा सकता है। वैष्णव धर्म पर जैनधर्म का दूसरा भी प्रभाव पड़ा है। 'जिन' विष्णु का अवतार माने जाते हैं। विष्णु ने ऋषभ के रूप में अर्हत् शास्त्र प्रकट किया, ऐसा पद्मतन्त्र में लिखा है। भागवत पुराण में और वैष्णवों के दूसरे धर्मग्रन्थों में ऋषभ को विष्णु का अवतार माना गया है। उसमें ऋषभ के चरित्र के विषय में जो कथा आती है वह जैन कथा से थोड़े अंश में ही मिलती है फिर भी ऋषभ की कथा का वैष्णव ग्रन्थों में आना भी महत्वपूर्ण बात है। वैष्णवों की दार्शनिक सम्प्रदायों में खास तोर पर मध्व के (ई. सं० ११९९-१२७८) ब्रह्म सम्प्रदाय में जैनधर्म की छाया स्पष्ट है। यह सहज सिद्ध हो सकती है कि मध्व दक्षिण कन्नड में रहता था और वहाँ अनेक शताब्दियों से जैनधर्म, मुख्यधर्म था। इसलिए जैनधर्म की छाप मध्व सम्प्रदाय पर है। प्रारब्धवाद, श्रेणियाँ आदि मध्व के सिद्धांत जैनधर्म के आधार पर रचे गये हों यह असम्भव नहीं है।"

"शव सम्प्रदाय पर भी जैनधर्म की छाप है। जी. यु. पोप का अनुमान है कि जीव के शुद्ध स्वरूप को आवृत करने वाले तीन पाप या मल का सिद्धांत जैन सिद्धांत के आधार से है।······आस्रव-कर्म और माया-मल का सिद्धांत जैनों के कर्म सिद्धान्त के आधार पर प्रकट हुआ हो, यह बात अवगणना करने योग्य नहीं है। तदपि इस विषय में विशेष संशोधन की अपेक्षा है। लिंगायतों के धर्म कर्म पर भी जैनधर्म का प्रभाव होना सम्भव है परन्तु इस सम्प्रदाय के विषय में भी शास्त्रीय संशोधन हो तब स्पष्टता पूर्वक कुछ कहा जा सकता हैं। राजपुताने में अलखगीर का सम्प्रदाय है। इसका स्थापक लालगीर है। सर जी. ग्रीयर्सन कहते हैं कि उस सम्प्रदाय और जैनधर्म में कई बातों का साम्य है। उसके संशोधन की भी आवश्यकता है।"

"वर्त्तमान काल में भी जैनों ने हिन्दुओं के आध्यात्मिक जीवन पर छाप डाली है। जे. एन. फर्कहार कहता है कि आर्यसमाज के संस्थापक

दयानन्द सरस्वती के जन्म स्थान टंकारिया (काठियावाड़) में स्थानकवासी जैनों का प्राबल्ल था और बहुत करके इस सम्प्रदाय के प्रभाव से वे मूर्तिपूजा का निषेध करने के लिए प्रेरित हुए। भारत प्रजा के नेता मोहनदास कर्मचंद गांधी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह का सिद्धांत प्रकट किया इसमें भी जैन भावना का असर स्पष्ट है। गांधीजी कि जन्म से वैष्णव है, अपनी युवावस्था में जैनधर्म की गम्भीर छाया में आये थे। अभ्यास के लिए विलायत जाते समय, जाने के पूर्व जैन साधु वेचरजी स्वामी के पास अपनी माता के समक्ष मांस मदिरा और नारी का स्पर्श नहीं करने की प्रतिज्ञा ली थी।" गांधीजी ने भी अपनी आत्मकथा में इस बात का निर्देश किया है। उन्होंने यह स्पष्ट कहा है कि मैं जन्म से वैष्णव हूँ तदपि मैंने जैनधर्म से बहुत कुछ ग्रहण किया है। जैनतत्वज्ञ कवि रायचन्द्रजी के सम्पर्क से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।"

उक्त उद्धरण से जैनधर्म का वैदिक और अन्य धर्मों पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है यह सिद्ध हो जाता है। जैनधर्म और वेद धर्म में कौन प्राचीन है, इसका निर्णय करने के लिए कोई ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं है। इनका यथार्थ और पूरा इतिहास अद्यावधि अज्ञात है। प्राचीन कथाओं के आधार पर यह कहा जाता है कि—नाभि-पुत्र ऋषभ और तत्पुत्र भरत के द्वारा प्रकट किये हुए सत्यवेद की भावना को मनुष्य भूल गया और वह कालान्तर में मिथ्यात्व में पड़ कर पशु यज्ञ करने लगा पण्डित पर्वत का कथन है कि तीर्थङ्कर मुनि सुव्रतके समय में पशु यज्ञकी उत्पत्ति हुई। वेरिस्टर चम्पतराय जैन ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि "हिन्दुधर्म जैनधर्म की शाखा है।" इस विषय में ग्लाजेनाप ने लिखा—है कि जैनियों के इस दावे को कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नहीं है और जैनों के सिवाय अभी और कोई इस बात को मानता नहीं है तो भी यह बात सर्वथा निर्मूल नहीं है। क्यों कि जैनधर्म ने हिन्दुधर्म पर अनेक विषयोंमें प्रभाव डाला है। हिन्दुओं के अति प्राचीन धर्मग्रन्थों में जैन भावना के चिन्ह हैं। इस विषय का संशोधन अभी इतना कम है कि स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।" प्रोफेसर हर्टल का कहना है कि मुंडकोपनिषद् और जैनधर्म में निकट का सम्पर्क है।

कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि प्राचीनतम काल से जैनधर्म चला आ रहा है और वह किसी दूसरे धर्म की शाखा नहीं है। वह सर्वथा स्वतंत्र, मौलिक, प्राचीन और वैज्ञानिक धर्म है। जैनधर्म के सम्बन्ध में पुरातत्वज्ञ विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है, इससे पहले भी कई भ्रान्त धारणाओं का संशोधन हुआ है। आगे के अन्वेषणों द्वारा जैनधर्म के प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ेगा और विश्व जैनधर्म के अतीत गौरव के भव्य स्वरूप का अनुभव कर सकेगा।

जैन संस्कृति और सिद्धान्त

जैन संस्कृति, भारत की नहीं, विश्व की एक मौलिक संस्कृति है। इस संस्कृति के वीज वर्तमान इतिहास की परिधि से वहुत परे प्राचीनतम भारत की मूल संस्कृति में हैं। सिन्धु उपत्यका की खुदाई से प्राप्त होनेवाली सामग्री से इस वात पर प्रकाश पड़ता है कि आर्यों के भारत में आगमन के पूर्व भी यहाँ एक विशिष्ट सभ्यता प्रचलित थी। इससे यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि भारत में आदि सभ्यता का दर्शन वेदकाल से ही होता है। आर्यों से आने के पहले प्राग्वैदिक संस्कृति के ज्ञान के लिए भी विद्वानों को साधन उपलब्ध होगये हैं। उनसे यह सिद्ध होता है कि उप[illegible] ऊपरी भारत में एक प्राचीन सभ्य, दार्शनिक [illegible] व्रत[illegible] चार व कठिन तप श्चर्या वाला धर्म—जैनधर्म [illegible] है कि जैन संस्कृति भारत की प्राचीन और [illegible]

जैन संस्कृति निरूपणः—

साम्यदृष्टि का प्राधान्य

जन संस्कृति साम्य पर प्रतिष्ठित है। सामाजिक साम्य, साम्य विषयक साम्य और प्राणि जगत् के प्रति दृष्टि विषयक साम्य, यह इसकी मुख्य विशेषता है। सामाजिक साम्य का अर्थ यह है कि जैन संस्कृति समाज और धर्म के क्षेत्र में सब जीवों को समान अधिकार देती है। वह किसी व्यक्ति या वर्ग को जन्म से श्रेष्ठ या हीन नहीं मानती है। वह गुण-कर्म कृत श्रेष्ठत्व और कनिष्ठत्व मानती है अतः धर्माधिकार और समाज रचना में जन्मसिद्ध वर्णभेद को मान न देकर गुण कर्म के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्था करती है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी वर्ण का हो, स्त्री हो या पुरुष, रंक हो या राव हो धर्म के क्षेत्र में समान अधिकार वाला है। उच्चवर्ण का व्यक्ति यदि गुण कर्म से हीन है तो वह इसकी दृष्टि में हीन है और यदि निम्न वर्ण का व्यक्ति गुण-कर्म से श्रेष्ठ है तो वह जैन दृष्टि से श्रेष्ठ है। यह जैन संस्कृति का सामाजिक साम्य है।

जैन दृष्टि का साध्य ऐहिलौकिक या पारलौकिक भौतिक अभ्युदय नहीं है। इसका साध्य है परम और चरम निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति। उस अवस्था में सम्पूर्ण साम्य प्रकट होता है, कोई किसी से न्यून या अधिक नहीं रहता है जीव जगत् के प्रति जैन दृष्टि पूर्ण आत्म साम्य की है। न केवल पशु-पक्षी किन्तु कीट पतंग और वनस्पति जल, पृथ्वी आदि के सूक्ष्म एवं अव्यक्त चेतना वाले जीवों को भी वह मनुष्य के समान ही मानती है। अतः यह सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की हिंसा को भी आत्मवध के समान मानती है। इस प्रकार जैन संस्कृति साम्य के तत्व पर प्रतिष्ठित है। ब्राह्मण संस्कृति का आधार वैषम्य है। यही जैन और ब्राह्मण संस्कृति का मौलिक भेद है।

साम्य अर्थात् समभाव जैन परम्परा का प्राण है। इस साम्य दृष्टि का इस परम्परा में इतना अधिक महत्त्व है कि इसे ही केन्द्र मानकर अन्य सब अचार-विचार का निरूपण किया है। साम्य दृष्टि मूलक और साम्य दृष्टि पोषक जो जो आचार विचार हैं वे सब सामाजिक रूप में इस परम्परा

जैन संस्कृति और सिद्धान्त

जैन संस्कृति, भारत की नहीं, विश्व की एक मौलिक संस्कृति है। इस संस्कृति के बीज वर्तमान इतिहास की परिधि से बहुत परे प्राचीनतम भारत की मूल संस्कृति में हैं। सिन्धु उपत्यका की खुदाई से प्राप्त होनेवाली सामग्री से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि आर्यों के भारत में आगमन के पूर्व भी यहाँ एक विशिष्ट सभ्यता प्रचलित थी। इससे यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि भारत में आदि सभ्यता का दर्शन वेदकाल से ही होता है। आर्यों से आने के पहले प्राग्वैदिक संस्कृति के ज्ञान के लिए भी विद्वानों को साधन उपलब्ध होगये हैं। उनसे यह सिद्ध होता है कि उस समय में सर्व ऊपरी भारत में एक प्राचीन सभ्य, दार्शनिक और विशेषतया नैतिक सदाचार व कठिन तप श्चर्या वाला धर्म—जैनधर्म भी विद्यमान था। तात्पर्य यह है कि जैन संस्कृति भारत की प्राचीन और मौलिक संस्कृति है।

जैन संस्कृति निरूपण:—

जन संस्कृति साम्य पर प्रतिष्ठित है। सामाजिक साम्य, साम्य विषयक साम्य और प्राणि जगत् के प्रति दृष्टि विषयक साम्य, यह इसकी मुख्य विशेषता है। सामाजिक साम्य का अर्थ यह है कि जैन संस्कृति समाज और धर्म के क्षेत्र में सब जीवों को समान अधिकार देती है। वह किसी व्यक्ति या वर्ग को जन्म से श्रेष्ठ या हीन नहीं मानती है। वह गुण-कर्म कृत श्रेष्ठत्व और कनिष्ठत्व मानती है अतः धर्माधिकार और समाज रचना में जन्मसिद्ध वर्णभेद को मान न देकर गुण कर्म के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्था करती है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी वर्ण का हो, स्त्री हो या पुरुष, रंक हो या राव हो धर्म के क्षेत्र में समान अधिकार वाला है। उच्चवर्ण का व्यक्ति यदि गुण कर्म से हीन है तो वह इसकी दृष्टि में हीन है और यदि निम्न वर्ण का व्यक्ति गुण-कर्म से श्रेष्ठ है तो वह जैन दृष्टि से श्रेष्ठ है। यह जैन संस्कृति का सामाजिक साम्य है।

साम्यदृष्टि का प्राधान्य

जैन दृष्टि का साध्य ऐहिलौकिक या पारलौकिक भौतिक अभ्युदय नहीं है। इसका साध्य है परम और चरम निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति। उस अवस्था में सम्पूर्ण साम्य प्रकट होता है, कोई किसी से न्यून या अधिक नहीं रहता है जीव जगत् के प्रति जैन दृष्टि पूर्ण आत्म साम्य की है। न केवल पशु-पक्षी किन्तु कीट पतंग और वनस्पति जल, पृथ्वी आदि के सूक्ष्म एवं अव्यक्त चतेना वाले जीवों को भी वह मनुष्य के समान ही मानती है। अतः यह सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की हिंसा को भी आत्मवध के समान मानती है। इस प्रकार जैन संस्कृति साम्य के तत्व पर प्रतिष्ठित है। ब्राह्मण संस्कृति का आधार वैषम्य है। यही जैन और ब्राह्मण संस्कृतिका मौलिक भेद है।

साम्य अर्थात् समभाव जैन परम्परा का प्राण है। इस साम्य दृष्टि का इस परम्परा में इतना अधिक महत्त्व है कि इसे ही केन्द्र मानकर अन्य सब अचार-विचार का निरूपण किया है। साम्य दृष्टि मूलक और साम्य दृष्टि पोषक जो जो आचार विचार हैं वे सब सामाजिक रूप में इस परम्परा

में स्थान पाते हैं। जैसे ब्राह्मण परम्परा में सन्ध्या करना अवश्यक कर्म माना गया है इसी तरह जैन परम्परा में गृहस्थ और त्यागी सब के लिए आवश्यक कर्म बतलाये हैं जिनमें सर्व प्रथम सामायिक है। अगर सामायिक न हो तो कोई आवश्यक सार्थक नहीं है। गृहस्थ या त्यागी अपने २ अधिकारानुसार जब जब धार्मिक जीवन को स्वीकार करता है तब तब वह "करेभिभंते! सामाइयं" की प्रतिज्ञा करता है। इसका अर्थ है कि हे भगवान्! मैं समता समभाव को स्वीकार करता हूँ। समता का विशेष स्पष्टीकरण करते हुए आगे कहा गया है कि मैं सावद्य योग अर्थात् पाप का व्यापार का यथाशक्ति त्याग करता हूं। सब प्राणियों के प्रति समानता (आत्मौपम्य) का भाव रख सकने के लिए, राग द्वेष के प्रसंगों में मध्यस्थ भावना बनाये रहने के लिए, जीवन-मरण, हर्ष शोक, लाभ हानि मानायमान आदि के प्रसंगों में भी समभाव रखने का अभ्यास करने के लिए प्रत्येक जैन के लिए सामायिक व्रत करना आवश्यक बताया गया है। इससे ही यह प्रकट हो जाता है कि जैन परम्परा में साम्य का कितना अधिक महत्व है।

जैनधर्म की यह साम्य दृष्टि मुख्यतया दो प्रकार से व्यक्त हुई है। आचार में और विचार नें। जैनधर्म का बाह्य आभ्यन्तर, स्थूल सूक्ष्म सब आचार साम्य दृष्टि मूलक अहिंसा के केन्द्र के आस पास ही निर्मित हुआ है। जिस आचार के द्वारा अहिंसा की रक्षा और पुष्टि न होती हो ऐसे किसी भी आचार को जैन परम्परा मान्य नहीं रखती। यद्यपि सब धार्मिक परम्पराओं ने अहिंसा तत्व पर न्यूनाधिक भार दिया है पर जैनधर्म नेस तत्व पर जितना भार दिया है, इसे जितना व्यापक बनाया है उतना अन्य किसी ने नहीं। साम्य दृष्टि के कारण ही अहिंसा के सिद्धान्त पर जैनधर्म ने सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर दृष्टि से विचार किया है। ब्राह्मण परम्परा में सब जीवों के प्रति आत्मौपम्य की भावना का यथोचित रूप से विकास नहीं हुआ। वह परम्परा यज्ञ यागादि के लिए नरमेध, अश्वमेध, अजामेध आदि का विधान करती है और इस तरह यज्ञादि कर्म काण्ड के लिए मनुष्य पशु पक्षी आदि की हिंसा का उपदेश करती है। इस आदेश से यह स्पष्ट होता है कि वह परम्परा सब जीवों को अपने समान समझने की भावना पर जोर न देकर केवल यागादि कर्म काण्ड को महत्व देती है। याज्ञिक, यज्ञ में बलि दिये जाने

वाले नर, पशु या पक्षी के प्राणों की परवाह न करता हुआ अपने भौतिक अभ्युदय को महत्व देता है। वह वेदविहित हिंसा को हिंसा नहीं मानता है। इस तरह वह हिंसा का अमुक सीमा तक समर्थन करता है। इसके विरुद्ध जैन परम्परा हिंसा का किसी भी रूप में समर्थन नहीं करती है। वह दृढ़ता के साथ अहिंसा का पालन करने पर भार देती है। किसी भी निमित्त से की जाने वाली हिंसा को वह क्षन्तव्य नहीं मानती है। उसकी सब जीवों के प्रति साम्य दृष्टि होने से वह मनुष्य या पशु पक्षी की तो क्या वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जन्तुओं तक की हिंसा को क्षन्तव्य नहीं मानता है। ब्राह्मण और श्रमण (जैन) संस्कृति का यह पारस्परिक मुख्य विरोध है। इस तीव्र विरोध के कारण दोनों संस्कृतियों में संघर्ष की मात्र सम्भावना ही नहीं किन्तु तीव्र संघर्ष भूतकाल में भी हुआ और वर्तमान में भी यह विरोध का बीज निर्मूल नहीं हुआ है। यह विरोध प्राचीन ब्राह्मण काल में भी था और बुद्ध एवं महावीर के समय में तथा इसके बाद भी रहा है। इस लिए महाभाष्कार पंतजलि ने शाश्वत विरोध के अहिन्कुल गो व्याघ्र जैसे द्वन्द्वों के उदाहरण देते हुए साथ ब्राह्मण-श्रमण भी कह दिया है। इससे दोनों संस्कृतियों के उस काल के पारस्परिक तीव्र संघर्ष की सूचना मिलती है।

जैन संस्कृति प्रबलता के साथ अहिंसा का प्रचार एवं प्रसार करती आई है। संसार और प्रधानतया भारत के वातावरण में व्याप्त हिंसा को दूर करने के लिए यह संस्कृति सदा से प्रयत्न करती आई है। भगवान् महावीर ने हिंसा के विरुद्ध तीव्र क्रान्ति की और अहिंसा की भव्य प्रतिष्ठा की। अहिंसा के सिद्धांत पर और उसके अनुसरण पर जैन संस्कृति अत्यन्त भार देती आई है इसलिए वह अहिंसक संस्कृति के रूप में विश्व भार में विख्यात है। दूसरे स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जैन संस्कृति अर्थात् अहिंसक संस्कृति और अहिंसक संस्कृति अर्थात् जैनसंस्कृत। जैनधम और अहिंसा एक दूसरे में ओत-प्रोत है।

भगवान् महावीर स्वामी ने हिंसा के विरोध में जो प्रबल आन्दोलन किया किया उसका ब्राह्मण संस्कृति पर गहरा असर हुआ। इसके सम्बन्ध में आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ने इस प्रकार कहा है:— "वेदविहित यज्ञीय हिंसा को तोड़ कर औपनिषद, भागवत और पंचयज्ञानुष्ठान के धर्म ने

अहिंसा-धर्म का विस्तार किया परन्तु इस अहिंसा के मार्ग में बहने वाला सबसे बड़ा प्रवाह महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के उपदेशों का है। महावीर स्वामी ने संसार और कर्म के बन्धनों को तोड़ने के लिए तप की महिमा बताई और अहिंसा को पंचव्रतों में प्रथम स्थान दिया। इनके पहले भी अहिंसा व्रत का स्वीकार चला आ रहा था परन्तु उन्होंने इसका ऐसा समर्थ उपदेश दिया कि औपनिषद् और भागवत धर्म के बाहर-मनुस्मृति में वर्णित—जो द्वैधीभाव की स्थिति विद्यमान थी उससे देश के बड़े भाग का उद्धार किया। हजारों स्त्री पुरुषों ने "अहिंसा परमो धर्मः' को जीवन का महा मन्त्र बनाया। आज हिन्दुस्तान अहिंसा धर्म के आचार के द्वारा पृथ्वी के सब देशों से अनोखा दिखाई देता है यह महिमा अधिकांशतः महावीर स्वामी की है।"

"इस अवलोकन का हेतु अहिंसा के सम्बन्ध में अपने देश की सच्ची ऐतिहासिक स्थिति का वर्णन करता है। यह स्थिति बहुधा अहिंसा प्रधान है और इसके परिणाम स्वरूप बंगाल, पंजाब, काश्मीर और सिन्ध को छोड़कर हिन्दुस्तान के बड़े भागने खास कर द्विज वर्णों ने हिंसा छोड़दी है इसदिशा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य जैनधर्म ने अहिंसा को जो प्राधन्य है वह सुप्रसिद्ध है।

जैन-संस्कृति प्रधानतया अहिंसा से ओतप्रोत है इसलिए जैन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा की झाँकी दिखलाई पड़ती है। आहार-विहार, रहन-सहन, उद्योग, कला, समाज-व्यवस्था, राज-व्यवस्था आदि सब प्रदेशों में इसी महान् सिद्धान्त का ध्यान रखा गया है।

निरामिषता

जैनों का आहार-विहार संसार की अन्य समस्त जातियों के मनुष्यों के आहार-विहार की अपेक्षा कहीं अधिक अहिंसक और सात्विक है। जैन पूर्णतया निरामिष भोजी और मद्यपान से घृणा करनेवाले हैं। मांसाहार की बात तो दूर रही किंतु जो जमीन में कन्दरूप से उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ हैं वे भी जैन-दृष्टि से अभक्ष्य समझी जाती हैं क्योंकि उनमें अनन्त जीवों का पिंड विद्यमान है।

जैन संस्कृति ने मांसाहार का बड़ी दृढता से विरोध किया है। उस

की दृष्टि में मांसाहार करने वाले मानवीय जघन्यता की सीमा को पार कर हिंसक पशुओं की कोटि में आजाते हैं। जैन धर्म में मांसाहार को नरक का कारण बताया गया है और इसे महा भयंकर सप्तव्यसनों में गिनाया गया है। मांसहार मनुष्य के कोमल हृदय की कोमल भावनाओं को नष्ट भ्रष्ट कर उसे पूर्णतया निर्दय और कठोर बना देता है। मांस किसी खेत में नहीं पैदा होता, वृक्षों पर नहीं लगता, आकाश से नहीं बरसता वह तो चलते फिरते प्राणियों को मारकर उनके शरीर से प्राप्त किया जाता है। जब आदमी पैर में लगे हुए छोटे से काँटे के दर्द को भी सहन नहीं कर सकता, रात भर छटपटाता रहता है तब भला दूसरे मूक प्राणियों के गर्दन पर छुरी चलाना किस प्रकार न्यायसंगत हो सकता है? वधिक जब चमचमाता छुरा लेकर मूक पशुओं की गर्दन पर प्रहार करता है तव वह ही कितना भयंकर होता है। खून की धारा बह रही हो, मांस का ढेर लगा हो, हाडियों के टीले लगे हो, चमड़े के खण्ड इधर उधर विखरे हो, यह कितना घृणित और कुत्सित काम है। ऐसी घृणित दशा में मनुष्य नहीं, राक्षस ही काम कर सकता है! सुना है कि यूरप में ऊँचे प्रतिष्ठित जज कसाई की गवाही भी नहीं लेते। उनकी दृष्टि में कसाई इतना निर्दय हो जाता है कि वह मनुष्य भी नहीं रह पाता। जो लोग मांसाहार करते हैं वे कसाई न होने पर भी कसाई को उत्तेजाना देने वाले होने से भयंकर पाप के भागी वनते हैं। मांसाहार करने वाले क्रूर प्रकृति के होते हैं अतः एक दृष्टि से वे कसाई के समान ही हैं।

जैन दृष्टि तो सब प्राणियों को अपने समान समझती है अतः उसकी दृष्टि से जो दूसरे प्राणियों का मांस खाता है वह मानो अपना स्वयं का मांस खा रहा है। इस दृष्टि के कारण जैन परम्परा में मांसाहार का कतई प्रयोग नहीं किया जाता। यही नहीं जैन परम्पराने भारत के सामाजिक जीवन से इस भयंकर मांसाहार प्रचलन को दूर करने के लिए भूतकाल में अनेक प्रयत्न किया हैं और वर्तमान में भी कर रहीं है। जैन राजाओं ने अपने शासन-काल में इस हिंसक कृत्य पर प्रतिवन्ध लगाया था। जैन लोगों के प्रवल प्रयासों और दृढतम विरोध के कारण ही द्विजवर्ण में मांसाहार का प्रचलन उठसा गया है। आज भारत के उच्च द्विजवर्णों में मांसाहार नहीं किया

जाता यह जैन संस्कृति का ही पुण्य प्रभाव है। पूर्णतया निरामिष रहने वाली जाति जैन जाति ही है।

रात्रि भोजन का त्याग

जैन जाति अहिंसा की भावना से रात्रि-भोजन नहीं करती प्रायः जैन लोग सूर्य-छिपने से पहले ही भोजन से निवृत्त हो जाते हैं। रात्रि के समय भोजन करना जैनियों में निषिद्ध है। इसका कारण यह है कि रात्रि के समय अन्धकार होने से कई छोटे-छोटे जीव दृष्टिगत नहीं होते। वे भोजन की सामग्री पर बैठ जाते हैं और भोजन के अन्दर मिल कर पेट में चले जाते हैं। इससे उन जीवों की भी हिंसा होती है और खाने वाले को भी अनेक अनर्थों का अनुभव करना पड़ना है। स्वाथ्य की दृष्टि से भी रात्रि भोजन वर्जनीय है। रात्रि में हृदय और नाभिकमल संकुचित हो जाते हैं अतः भोजन का पचाव अच्छी तरह नहीं हो पता। शरीरशास्त्र के वेत्ता रात्रि भोजन को बल बुद्धि और आयु का नाश करने वाला बतलाते हैं। महात्मागांधी जीने भी रात्रि में भोजन करना अच्छा नहीं समझा था। लगभग ४० वर्ष से जीवनपर्यन्त रात्रि-भोजन के त्याग के व्रत को गांधी जी बड़ी दृढता से पालन करते रहे। यूरोप गये तब भी उन्होंने रात्रिभोजन नहीं किया। जैनधर्म का रात्रि भोजन न करने का नियम वैज्ञानिक आध्यात्यिक और स्वास्थय की दृष्टि को लिये हुए है। जैन लोग प्रायः रात्रि में भोजन नहीं करते। यह नियम भी उनकी अहिंसा की भावना का पोषण और परिचायक है।

दया और दान

जैन संस्कृति में दया और दान का बहुत अधिक महत्त्व है। अहिंसा की भावना को व्यावहारिक एवं सामाजिक रूप देने के लिए दया और दान की आवश्यकता रहनी है। इसलिये जैन समाज में इन दोनों का अत्यधिक प्रचलन है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है जैन दया और दान के अप्रतिम उपासक हैं। संसार के दुखो को मिटाने के लिए, दुखियों के दुख को दूर करने के लिच, मूक-पशुओं की रक्षा और हिफाजत के लिए, गरीबों की सहायना के लिए और पीड़ितों की पीड़ा निवारण करने के लिए जैन लोग सब से अधिक प्रयत्न करते हैं। जीवदयाकी ओर जैनियोंकी स्वाभाविक अभिरुचि है इसलिए अनेक जीव-दया प्रचारक संस्थाएँ जैनियों की ओर से संचालित होती हैं। भारत में होने

वाले पशुवध को रोकने के लिए यह जाति यथाशक्य प्रयास करती आई है और कर रही है। इसी तरह जैनजाति प्रत्येक क्षेत्र में मुक्तहस्त से दान देती आई है। जैनजाति की उदारता विख्यात है। इस जाति ने न केवल अपनी सामाजिक सीमा में ही दान के प्रवाह को आबद्ध किया है प्रत्युत प्रत्येक क्षेत्र को अपने दान-वीर से सिञ्चित किया है। राष्ट्र के सन्मुख जब जब कोई संकट आया है, जब जब आर्थिक सहायता की उसे अपेक्षा रही है तब तब इस जाति ने मुक्तहस्त से विपुल द्रव्य का दान किया है। राष्ट्रीय, सामाजिक, शैक्षणिक और अन्यान्य क्षेत्रों में इस जाति ने उदारतापूर्वक द्रव्यराशि वितरित की है। अनेक युनिवरसिटियों, कालेजों, स्कूलों और पुस्तकालयों तथा अन्य लोकोपयोगी संस्थाओं में जैनियों के द्वारा दिया गया दान उल्लेखनीय है। प्रकृति के प्रकोप के कारण जब २ किसी प्रान्त पर कोई संकट आया तब तब इस जाति ने उसे निवारण करने में पूरा २ सहयोग दिया। जैनजाति की यह दानशीलता उसकी विशाल एवं उदार मनोवृत्ति की सूचना देती है। संक्षेप में यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि साम्य भावना पर प्रतिष्ठित होने से जैन संस्कृति में दया दान का वही महत्व है जो शरीर में प्राण का है। दया और दान जैन संस्कृति के प्राण हैं।

स्वावलम्बन

जैनधर्म की वैज्ञानिक दृष्टि ईश्वर को शुद्ध परमात्मा के रूप में स्वीकार करती है परन्तु उसे सृष्टि का कर्त्ता और हर्त्ता नहीं मानती। उसका मन्तव्य है कि विशुद्ध परमात्मा सृष्टि के सर्जन या विसर्जन के प्रपञ्च में नहीं पड़ सकता यह सृष्टि प्रवाह अनादिकाल से प्रवाहित है और अनन्तकाल तक प्रवाहित रहेगा। इस वैज्ञानिक विचारणा के कारण जैनपरम्परा में वह परावलम्बता और अकर्मण्यता न आ सकी जो ईश्वर को कर्त्ता-हर्त्ता मानने वालों में आगई है। जैन संस्कृति में प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दुख के लिए, अपने अभ्युदय या पतन के लिए, अपने उत्कर्ष या अपकर्ष के लिए स्वयं उत्तर दायी है। सच्चा जैन अपने पर आई हुई विपत्ति के समय घबराकर परमात्मा को कभी नहीं कोसता। वह अपने ही कर्मों को इसके लिए जवाबदार समझता है। वह मानता है कि मेरे ही किये हुए शुभ या अशुभ कर्मों का परिणाम मुझे ही भोगना पड़ता है। मैंने पहले अशुभ कर्म किये हैं अतः उसके परिणामस्वरूप यह संकट मुझ पर

आया है। ऐसा समझ कर उसे शान्ति पूर्वक सहन करता है और भविष्य में सावधान रहने की प्रेरणा प्राप्त करता है तात्पर्य यह है कि जैन संस्कृति व्यक्ति को पुरुषार्थ की प्रेरणा करती है। वह प्रारब्धवागिनी या किसी अन्य शक्ति पर अवलम्बित नहीं है। वह तो व्यक्तिमात्र को अपने पुरुषार्थ के द्वारा अभ्युदय करने की शिक्षा देने वाली श्रमप्रधान संस्कृति है।

धर्म व्यवस्था के साथ ही साथ समाज व्यवस्था, राज व्यवस्था, उद्योग, कला आदि व्यवस्था के द्वारा कोई भी संस्कृति चमक उठती है। संस्कृति के विकास में इन सब चीजों का महत्व होता है। जैनधर्म की अहिंसा की आध्यात्मिक भावना ने समाज व्यवस्था, राजव्यवस्था, उद्योग और कला कौशल को भी अपने रंग में रंग दिया है। जैन संस्कृति ने इन्हें अपना नया रूप दिया है।

जैनधर्म के अनुसार समाज व्यवस्था में जन्म जात ऊँच नीच की भावना को कोई स्थान नहीं है। जाति भांति के भेद को जैनधर्म ने कभी प्रधानता नही दी है। प्रत्येक, जाति वर्ग औ सम्प्रदान का व्यक्ति जैन हो सकता है। जो भी व्यक्ति जैनधर्म के प्राण भूत सिद्धान्तों में विश्वास रखता है, उन्हें अपनाना है, फिर चाहे वह किशी भी जाति या देश का हो वह जैन है। जैन संस्कृति में दसके लिए नहीं स्थान है जो किसी जैनकुल में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति का है। इस विपय का विस्तृत वर्णन अलग प्रकरण में स्वतंत्र रूप से किया जाएगा।

इसी तरह जैनाचार्यों ने राजनीति में भी अहिंसा का पुट दिया है। जैनाचार्यों ने राजा के कर्तव्य, उसके अधिकार आदि २ वातों पर प्रकाश डालने वाले विविध सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण किया है। भद्रवाहुसंहिता अर्हन्नीति आदि ग्रन्थों से राज कर्तव्य का निरूपण है। उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि जैन संस्कृ में राजा परमेश्वर का अंश है इस भावना को कोई स्थान नहीं है। भारत में जो जो जैन राजा हो गये हैं उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अहिंसा का प्रचार किया है। उनके समय में प्रजा समृद्ध थी, वलवान थी और सव तरह से सुख शान्ति का अनुभव करती थी। इससे यह स्पष्ट है कि जैन राजनीति जनताका कल्याण करनेवाली सिद्ध हुई है।

उद्योग के क्षेत्र में जैन समाज बहुत अ   बढ़ा हुआ है। इतिहास यह बात बाताता है कि जैन जाति सदा से अपने पुरुषार्थ और व्यापार के कारण जीवित रही है। ब्राह्मण,बौद्ध मुसलमान मराठा आदि जातियाँ राज्य का आश्रय पाकर फलीफूली हैं और राज्याश्रय के अभाव में इन्हें काफी सहन करना पड़ा है। परन्तु जैनजाति सदा से अपने उद्योग के बल से टिकी रही है। संख्या में अपेक्षाकृत बहुत अल्प होने पर भी जैन लोगों का भारत में जोप्रभुत्व है वह इस जाति की उद्योग परायणता और व्यापार कुशलता का परिणाम है। भारत के उद्योग और वाणिज्य के विकास में जैन जाति ने बहुत बड़ा भाग लिया है। जैनजाति ने उद्योग और व्यवसाय के चुनाव में भी अहिंसक भावना को स्थान है। जैनलोग ऐसा व्यापार नहीं करते जिसमें भारी हिंसा होती हो। जैनधर्म में पन्द्रह कर्मादान (महापाप के कारण) बताये गये हैं। इन कर्मादानों का परित्याग करना जैन श्रावक का कर्त्तव्य है। अतः प्रायः जैन व्यापारी ऐसे व्यापार का चुनाव करते हैं जिसमें विशेष हिंसा नहीं होती है।

कला के क्षेत्र में भी जैन समाज ने नवीनता का संचार किया है। अपनी अहिंसक भावना को पत्थर और चित्रों में अंकित कर जैन जाति ने भारतीय कला को नूतनरूप दिया है। इसका भी विशेष उल्लेख यथास्थान किया जायगा।

इस तरह हम देखते हैं कि धर्म, समाज, राजनीति, उद्योग, कला आदि सब क्षेत्रों में जैन जाति की अपनी विशिष्ट विशेषताएँ हैं जिनके कारण जैन संस्कृति खूब फली-फूली है। संक्षेप में यही जैन संस्कृति का परिचय है।

धार्मिक सिद्धांत

जैनधर्म एक सार्वभौम धर्म है। यह किसी चार दीवारी में बन्द या देशकाल की सीमाओं में सीमित रहने वाला नहीं है। यह तो प्रकृति की तरह सार्वत्रिक और सर्व कालीन है। यह पवन की तरह

सार्वभौम सिद्धान्त उनमुक्त हैं अतएव इसके सिद्धान्तों में व्यापकता है, महानता है, उदारता है और सार्वभौमिकता है। जिस प्रकार सत्य एक है, सनातन, है सर्वदेशीय है, सर्वकालीन है, और सदा एक रूप में रहने वाला है इसी तरह सत्य से ओतप्रोत जैन सदा एक रूप में रहने वाला, सनातन, सर्वव्यापी और सब परिस्थितियों में समान रूप से हितकारी है।

प्रोफेसर हेल्मुट ग्लाजेनाप (बर्लिन) ने जैनिज्म नामक जर्मन ग्रन्थ में लिखा है कि "ब्राह्मण धर्म में वेद और उपनिषदों को, कलियुग के कारण पुराणों को और तंत्रके प्रभाव से अन्यशास्त्रों को अपना रूप बदलना पड़ा है, बौद्धधर्म में नये सूत्रों का सूत्रपात हुआ, आर्यमार्गों का सिद्धान्त प्रकट हुआ और उसके द्वारा त्रिपिटक में गूँथा हुआ बुद्ध का उपदेश विस्तृत और परिपूर्ण हुआ; प्राचीन ईसाई धर्म में लिखे हुए प्रभुशब्द के अर्थ देवालय के सम्प्रदाय के कारण और उसके दिये हुए जीवन प्रणालि के नियम के कारण शिष्यों की अनुकूलता के अनुसार परिवर्त्तन होते गये परन्तु जैनधर्म के सिद्धान्त तो सबकाल में एक सरीखे ही रहे हैं। इस धर्म के निर्णित सिद्धान्त आज जिस रूप में दिखाई देते हैं उसी रूप में प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ में भी दिखाई देते हैं।"

उक्त विद्वान जर्मन प्रोफेसर ने जैनधर्म की एकरूपता और सनातनता का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। जैनधर्म के सिद्धान्त सनातन हैं इस लिए काल के परिवर्तनों के विरुध्द भी वे एक रूप में टिके रहे हैं। अनन्त ज्ञानी पुरुषों ने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा इन सिद्धान्तों का प्ररूपण किया है अतएव ये त्रिकाल-अबाधित, सर्वदेशीय और सनातन सत्य हैं।

जैनधर्म के सत्य सनातन सिद्धांतों के पालन करने का अधिकारी न केवल मानव ही प्रत्युत पशुपत्ती भी हो सकता है। जैनधर्म के सिद्धान्त किसी वर्ग विशेष की सम्पति नहीं हैं। उन पर किसी देश या जाति का एकाधिकार नहीं है। इन पर किसी विशिष्ट समाज का आधिपत्य नहीं है। कोई भी एक समुदाय इसका ठेकेदार नहीं है। यह तो हवा और जल की तरह है कि जो भी इसे ग्रहण करना चाहता है, स्वतन्त्रता पूर्वक ग्रहण कर सकता है। जाति

वर्ण आदि की रोक-टोक नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कोई भी हो वह इसका अधिकारी है। चाहे जिस देश में रहने वाला, चाहे जैसी भाषा बोलने वाला चाहे जिस कुल में जन्म लेने वाला, चाहे जैसे वय और लिंग वाला व्यक्ति इसे अंगीकार कर सकता है। जीव मात्र को इसे अपनाने की स्वतन्त्रता है। इसका कारण यह है कि जैनधर्म बाह्य धर्म न होकर आध्यात्मिक धर्म है। वह प्रत्येक जीव में अनन्त शक्ति रही हुई मानता है। प्रत्येक जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपनी अनन्त शक्ति को प्रकट कर सकता है। प्रत्येक प्राणी को विकास का जन्म सिद्ध अधिकार है। जैनधर्म की इस उदात्त दृष्टि के कारण वह सार्वभौम है और उसके सिद्धांत भी सार्वभौम हैं।

सार्वभौमिकता की कसौटी क्या है? इसका उत्तर यह है कि जो वस्तु सब जगह सबकाल में समान रूप से हित करने वाली है वह सार्वभौम है। जैनधर्म के सिद्धान्त इस कसौटी पर कसने से बिल्कुल खरे उतरते हैं अवश्य वे सार्वभौम हैं। जैनधर्म का अहिंसा का सिद्धान्त, उसका अपरिग्रह का सिद्धान्त, उसके व्रत-नियम और उसका आत्मसंयम सब जगह, सब काल में समान रूप से हितंकर है। दुनिया के आकाशमण्डल में घिरेहुए संकटके बादलोंको हटानेके लिए ये सिद्धांत प्रचण्ड वायुके समान हैं। आज विश्वका वातावरण अशांत और भयाक्रांत है। युद्धकी भीषण विभीषिका मुँह बाये हुए खड़ी है। दो-दो महायुद्धों की दानवी संहारलीला देख चुकनेपर भी युद्ध के दुष्परिणामोंके प्रति राष्ट्रों के नेता आँखमिचौनी कर रहे हैं। अब भी वे अपने पुराने मन्तव्यपर डटे हुए हैं। वही पशुबलकी वृद्धि, वही दूसरे के अधिकारों को हड़पने की दानवी लालसा, वही संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थ, शस्त्रों और संहारक साधनोंके आविष्कार की वही प्रतियोगिता, ये सब दुनिया को पहले से भी अधिक भयभीत कर रहे हैं।

विश्व-शांति

कहा जाता है कि दुनिया में शान्ति स्थापित करने के लिए महायुद्ध लड़े गये हैं। यदि कोई राष्ट्र अपनी शक्ति के उन्माद में विश्व की शान्तिको खंडित करने का प्रयत्न करे तो उसका विरोध करने के लिए और पुनः शान्ति स्थापन करने के लिए सैनिक शक्ति बढ़ाई जाती है। लेकिन यह सारा वाणी

का कौशल मात्र है। शान्ति स्थापन के बहाने अपने संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थों की पूर्त्ति का नाटक खेला जा रहा है। शान्ति की स्थापना के लिए यू० एन० ओ० जैसी संस्थाओं को जन्म दिया गया है परन्तु इससे शान्ति स्थापित होने की आशा करना दुराशा मात्र है। यह तो विश्वशान्ति और न्याय काएक नाटक मात्र है। यदि वास्तविक दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह सबल राष्ट्रों की स्वार्थ पूर्त्ति का साधन मात्र है। इसका कारण यह है कि सब राष्ट्रों के नायकों के मन में एक दूसरेके प्रति सशंक भावना है। राजनैतिक संधियाँ हो जानेपर भी मन में आशंकाएँ बनी रहती हैं अतः उन सन्धियोंका जिन्हें वे अपने हस्ताक्षरों से सुशोभित करते हैं रद्दी के टुकड़ों से अधिक महत्त्व नहीं होता। ये राजनैतिक वायदे सचाई और ईमानदारी से नहीं किये जाते। इनके पीछेतो केवल स्वार्थ और व्यक्तिगत लाभकी भावना काम करती है। ऐसी परिस्थितिमें कोई सम्भावना नहीं कि दुनियां में शान्ति स्थापित हो। शान्ति की स्थापना के लिए तो आवश्यक्ता है- राजनैतिक चालों की समाप्ति और अहिंसा की हार्दिक स्वीकृति।

आधुनिक राजनीति शान्ति-विज्ञान के सर्वथा विरुद्ध है। वर्तमान राजनीति में वह घातक तत्व है जिससे विश्व पर संकट के मेघ गिरे रहते हैं, आँसुओं की नदियाँ बहती रहती हैं और विश्व-शान्ति तलवार की धार पर लटकती रहती है। कार्यकारण का सर्व सम्मत सिद्धान्त यही है कि जो जैसा बोएगा वह वैसा पायेगा। हिंसा से हिंसा और द्वेष से द्वेष पनपते हैं। जो युद्ध हिंसा, द्वेष और क्रूरता से लड़े जाते हैं उनसे हिंसा, द्वेष और क्रूरता ही बढ़ती है। गत महायुद्ध के कारण आगामी महायुद्ध का बीजारोपण हो गया है। यह कार्यकारण की परम्परा इसी तरह चलती रही तो दुनिया में कभी शान्ति के दर्शन नहीं हो सकते।

यदि दुनिया को वास्तविक शान्ति की कामना है, यदि सब राष्ट्र सच्चे [हृद]य से शान्ति चाहते हैं, तो इसका एक मात्र उपाय है हिंसक साधनों की [क]मजोरी का स्वीकार और अहिंसा की अमोघ शक्ति का अंगीकार। जैन धर्म, विश्व-शान्ति का यही राजमार्ग प्रदर्शित करता है। इसको अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्त विश्व-शान्ति के अमोघ साधन हैं। इन दोनों सिद्धान्तों की ओर यदि दुनिया के राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित हो तो निस्संदेह दुनिया में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। आज के वातावरण में जो विश्व-

शान्ति स्वप्न के समान समझी जा रही है वह इन सिद्धान्तों के अनुसरण से प्रत्यक्ष हो सकती है।

आज के राष्ट्र भौतिक संहारक साधनों के पीछे जितनी शक्ति लगा रहे हैं, उसके पीछे जैसे जी-जान से जुट रहे हैं इसी तरह यदि अहिंसा और अपरिग्रह के पीछे अपनी शक्ति का प्रयोग करें, उसके लिए जी-जान से जुट पड़ें तो विश्व-शान्ति असम्भव नहीं है। हाँ, अभी जिन साधनों से शान्ति की आशा की जा रही है उनसे उसकी प्राप्ति सर्वथा असम्भव है। हजारों युद्ध लड़े जा चुके हैं तो भी शान्ति की झाँकी भी नहीं मिली। यह होते हुए भी दुनिया ने अभी यह नहीं समझा कि युद्ध से बरबादी होती है और मानव की उन्नति रुक जाती है। इसका कारण यही है कि बहुत विरले व्यक्ति ही अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाते हैं। प्रायः लोग अपनी त्रुटियों को दुहराते रहते हैं। यही कारण है कि विनाश की परम्परा को चालू रखनेवाले युद्ध अब भी होते रहते हैं। यह तो निश्चित है कि यदि यह परम्परा अधिक समय तक इसी रूप में चालू रही तो मानव-जाति का सर्वनाश हो जायगा। यदि इस सर्वनाश से मानव-जाति को अपनी रक्षा करना है तो उसे जैन-धर्म के शांति के स्रोत रूप सिद्धान्तों को अपनाना होगा। इसके सिद्धान्तों को अपनाने में ही सच्ची विश्व-शान्ति रही हुई है।

जीवन-ध्येय

जैन परम्परा के अनुसार जीवन का परम और चरम साध्य मोक्ष है। इस विषय में समस्त आस्तिक दर्शनों का एक ही मत है। गम्भीर चिन्ता, सूक्ष्म मनन और दीर्घकालीन अनुभव के पश्चात् विशिष्ट ज्ञानियों ने इस जीवन-ध्येय का निर्धारण किया है। उन्होंने यह परिपूर्ण परीक्षण के पश्चात अनुभव किया कि यह दृश्यमान बाह्य संसार ही सब कुछ नहीं है, इसके अतिरिक्त एक महान् अन्तर्जगत् का अस्तित्व है। यह बाह्य जगत तो उस अन्तर्जगत् की छत्रछाया है। इस अनुभव पर पहुंचने पर उन्होंने इस जीवन-ध्येय का निरूपण किया है।

इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि प्राणी मात्र सुख का अभिलाषी है। सुख प्राप्त करने के लिए प्रत्येक प्राणी में सहज अभिरुचि और प्रवृत्ति देखी जाती है। सुख-प्राप्ति का ध्येय एक होने पर भी सब प्राणियों की सुख संबंधी

कल्पना एक-सी नहीं होती । वह व्यक्तिशः भिन्न-भिन्न हुआ करती है। विकास की तरतमता के कारण प्राणियों की सुख संबंधी कल्पना को दो वर्ग में विभक्त किया जा सकता है । कुछ प्राणी ऐसे हैं जो भौतिक साधनों में सुख मानते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो भौतिक साधनों में सुख न मान कर आत्म-गुणों के विकास में सुख का अनुभव करते हैं । दूसरे शब्दों में सुख के दो रूप हैं—काम-सुख और मोक्ष-सुख । यद्यपि जगत् के अधिकांश व्यक्ति काम-सुख को ही सच्चा सुख मान कर उसके पीछे लट्टू हो रहे हैं मगर वह जीवन का सच्चा ध्येय नहीं हो सकता है । क्योंकि काम-सुख वास्तविक सुख नहीं है । प्राणी अपने अज्ञान के द्वारा उसमें सुख का आरोप करता है । जिन भौतिक साधनों के द्वारा प्राणी सुख का अनुभव करना चाहता है उन्हें प्राप्त करने पर भी उसे अतृप्ति बनी रहती है । चाहे जितने भौतिक साधन जुटा लिए जाँय तब भी अतृप्ति की अतृप्ति बनी रहती है । जहाँ अतृप्ति है वहाँ सुख कैसे हो सकता है ? निष्कर्ष यह है कि काम-सुख वास्तविक सुख नहीं वरन् सुखाभास है । वह जीवन का साध्य नहीं हो सकता । दूसरे प्रकार का सुख—मोक्षसुख—शाश्वत और स्वाधीन है । वह सुख अपने आप में से प्रकट होता है । उसका स्रोत आत्मा ही है । इसमें बाह्य पदार्थों की आकांक्षा नहीं होती अतः स्वतः सन्तोष प्रकट होता है । यही सच्चा आत्यन्तिक सुख है । यही आत्मा का सहज और मूल स्वरूप है । इस सहजानन्दमय आत्म-स्वरूप को प्राप्त करना ही मोक्ष है । इस सुख को प्राप्त करने के लिए जो प्रयास किया जाय वही सच्चा पुरुषार्थ है । निष्कर्ष यह है कि आत्मा के सहज-आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त करना ही प्राणी के जीवन का ध्येय होना चाहिए।

समान रूप से लोक में चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परन्तु वस्तुतः इनमें काम और मोक्ष ये दो तो पुरुषार्थ हैं और अर्थ एवं धर्म उसके साधन हैं । अर्थ के द्वारा काम सुख की प्राप्ति मानी जाती है जबकि धर्म के द्वारा मोक्षसुख की प्राप्ति होती है । मोक्ष रूपी जीवन-ध्येय की सिद्धि के लिए धर्म-पुरुषार्थ की अपेक्षा रहता है ।

'धर्म' का अर्थ बहुत व्यापक है । तदपि साधारणतया 'दुर्गतिं प्रसृतान् जन्तून् धारयतीति धर्मः " यह धर्म की परिभाषा की जा सकती है । दुर्गति की ओर जाते हुए जीवों को जो बचाता है वह धर्म है ।

मोक्षमार्ग

तात्पर्य यह है कि जो पतन से बचाता है और विकास की ओर ले जाता है वह सच्चा धर्म है। विकास की पराकाष्ठा मोक्ष है। आत्मा के इस महान् लक्ष्य की ओर जो ले जाय वह धर्म है। इस धर्म के स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहा गया है-" सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन् सम्यग्ज्ञान और सम्मक् चारित्र मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म।

सत्यश्रद्धा. सत्यज्ञान और सत्य आचारण की त्रिपुटी ही धर्म का मर्म इन तीनों का त्रिवेणी-संगम संसार-सागर से पार करने वाला धर्म-तीर्थ है।

सम्यग्दर्शन

सत्य तत्त्व पर अडोल श्रद्धा होना सम्पदर्शन है। यह मोक्ष रूपी महल की नींव है। इसके आधार पर सम्ययग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र टिकते हैं। इसिलिए यह मोक्ष का मूल कहा गया है। मोक्षपथके पथिकको अपने लक्ष्यके प्रति पर्वतकी तरह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए। इस पथपर चलने वाले साधक को अनेक सम-विषय परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है अतः उसके लक्ष्य भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है। यदि साधक की श्रद्धा विचलित हो जाती है तो उसकी दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। इसलिए इस पथ के पथिक को अपनी श्रद्धा का दीप सदा प्रज्वलित रखना चाहिए। यदि यह श्रद्धा-दीप प्रकाश करता रहा तो साधक सुगमता से इस पथ को पार कर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है। अतः सम्यग्दर्शन को मोक्ष का मूल माना गया है।

पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानना सम्यग ज्ञान है। सत्य-असत्य, तत्त्व-अतत्त्व जड़-चेतन, आत्मभाव-परभाव और हेय-उपादेय आदि का ठीक २ निर्णय करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है।

सम्यग्ज्ञान

ज्ञान के प्रकाश में प्राणी को आपने कर्त्तव्य और लक्ष्य का भान होता है इसके अभाव में प्राणी आत्मभाव में परभाव औए परभाव में आत्मभाव कर रहा है, यह आत्मा के पतन का मूल है। इस मूलको निर्मूल करने के लिए सम्यग्ज्ञान की आश्यकता है। तोते की तरह शब्द ज्ञान कर लेना ही ज्ञान का अर्थ नही है। जिस ज्ञान के द्वारा अध्यात्मिक विकास होता है वही सच्चा ज्ञान है। सम्यग्दर्शन के कारण

कल्पना एक-सी नहीं होती । वह व्यक्तिशः भिन्न-भिन्न हुआ करती है। विकास की तरतमता के कारण प्राणियों की सुख संबंधी कल्पना को दो वर्ग में विभक्त किया जा सकता है। कुछ प्राणी ऐसे हैं जो भौतिक साधनों में सुख मानते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो भौतिक साधनों में सुख न मान कर आत्म-गुणों के विकास में सुख का अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दों में सुख के दो रूप हैं—काम-सुख और मोक्ष-सुख । यद्यपि जगत् के अधिकांश व्यक्ति काम-सुख को ही सच्चा सुख मान कर उसके पीछे लट्टू हो रहे हैं मगर वह जीवन का सच्चा ध्येय नहीं हो सकता है । क्योंकि काम-सुख वास्तविक सुख नहीं है । प्राणी अपने अज्ञान के द्वारा उसमें सुख का आरोप करता है। जिन भौतिक साधनों के द्वारा प्राणी सुख का अनुभव करना चाहता है उन्हें प्राप्त करने पर भी उसे अतृप्ति बनी रहती है। चाहे जितने भौतिक साधन जुटा लिए जाँय तब भी अतृप्ति की अतृप्ति बनी रहती है। जहाँ अतृप्ति है वहाँ सुख कैसे हो सकता है ? निष्कर्ष यह है कि काम-सुख वास्तविक सुख नहीं वरन् सुखाभास है । वह जीवन का साध्य नहीं हो सकता। दूसरे प्रकार का सुख—मोक्षसुख—शाश्वत और स्वाधीन है । वह सुख अपने आप में से प्रकट होता है । उसका स्रोत आत्मा ही है । इसमें बाह्य पदार्थों की आकांक्षा नहीं होती अतः स्वतः सन्तोष प्रकट होता है । यही सच्चा आत्यन्तिक सुख है। यही आत्मा का सहज और मूल स्वरूप है । इस सहजानन्दमय आत्म-स्वरूप को प्राप्त करना ही मोक्ष है। इस सुख को प्राप्त करने के लिए जो प्रयास किया जाय वही सच्चा पुरुषार्थ है। निष्कर्ष यह है कि आत्मा के सहज-आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त करना ही प्राणी के जीवन का ध्येय होना चाहिए।

समान रूप से लोक में चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परन्तु वस्तुतः इनमें काम और मोक्ष ये दो तो पुरुषार्थ हैं और अर्थ एवं धर्म उसके साधन हैं। अर्थ के द्वारा काम सुख की प्राप्ति मानी जाती है जबकि धर्म के द्वारा मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। मोक्ष रूपी जीवन-ध्येय की सिद्धि के लिए धर्म-पुरुषार्थ की अपेक्षा रहता है।

'धर्म' का अर्थ बहुत व्यापक है। तदपि साधारणतया 'दुर्गतिं प्रसृतान् जन्तून् धारयतीति धर्मः" यह धर्म की परिभाषा की जा सकती है। दुर्गति की ओर जाते हुए जीवों को जो बचाता है वह धर्म है।

मोक्षमार्ग

तात्पर्य यह है कि जो पतन से बचाता है और विकास की ओर ले जाता है वह सच्चा धर्म है। विकास की पराकाष्ठा मोक्ष है। आत्मा के इस महान् लक्ष्य की ओर जो ले जाय वह धर्म है। इस धर्म के स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहा गया है-" सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन् सम्यग्ज्ञान और सम्मक् चारित्र मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग अर्थात धर्म।

सत्यश्रद्धा. सत्यज्ञान और सत्य आचारण की त्रिपुटी ही धर्म का मर्म इन तीनों का त्रिवेणी-संगम संसार-सागर से पार करने वाला धर्म-तीर्थ है।

सम्यग्दर्शन

सत्य तत्त्व पर अडोल श्रद्धा होना सम्पदर्शन है। यह मोक्ष रूपी महल की नींव है। इसके आधार पर सम्ययग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र टिकते हैं। इसिलिए यह मोक्ष का मूल कहा गया है। मोक्षपथके पथिकको अपने लक्ष्यके प्रति पर्वतकी तरह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए। इस पथपर चलने वाले साधक को अनेक सम-विषय परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है अतः उसके लक्ष्य भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है। यदि साधक की श्रद्धा विचलित हो जाती है तो उसकी दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। इसलिए इस पथ के पथिक को अपनी श्रद्धा का दीप सदा प्रज्वलित रखना चाहिए। यदि यह श्रद्धा-दीप प्रकाश करता रहा तो साधक सुगमता से इस पथ को पार कर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है। अतः सम्यग्दर्शन को मोक्ष का मूल माना गया है।

पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानना सम्यग ज्ञान है। सत्य- असत्य, तत्त्व-अतत्त्व जड़- चेतन, आत्मभाव- परभाव और हेय-उपादेय आदि का ठीक २ निर्णय करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है।

सम्यग्ज्ञान

ज्ञान के प्रकाश में प्राणी को आपने कर्त्तव्य और लक्ष्य का भान होता है इसके अभाव में प्राणी आत्मभाव में पर-भाव और परभाव में आत्मभाव कर रहा है, यह आत्मा के पतन का मूल है। इस मूलको निर्मूल करने के लिए सम्यग्ज्ञान की आश्यकता है। तोते की तरह शब्द ज्ञान कर लेना ही ज्ञान का अर्थ नही है। जिस ज्ञान के द्वारा अध्यात्मिक विकास होता है वही सच्चा ज्ञान है। सम्यग्दर्शन के कारण

ज्ञान में सम्यक्त्व आता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में परस्पर सहचर सम्बन्ध हैं। जैसे सूर्य का ताप और प्रकाश एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते इसी तरह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक दूसरे के बिना नहीं रहते। सम्यग्ज्ञान के बिना प्राणी अपने लक्ष्यका निर्धारण भी नहीं कर सकता। अतः लक्ष्यनिर्धारण और उसे प्राप्त करने के साधनोंको जाननेके लिए सम्यग्ज्ञान की आवश्यकता है।

सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन से जो वस्तुस्वरूप की प्रतीति होता है उसके अनुसार वर्ताव करना- तदनुकूल आचरण करना—सम्यक् चारित्र है।

सम्यक् चरित्र

केवल जानने से ही इष्ट सिद्ध नहीं होसकता, उसके लिए तदनुकूल पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। लक्ष्यको जानने और उसे प्राप्त करने के उपायों को समझनेसे लक्ष्य पर नहीं पहुँचा जा सकता है। उसके लिए तदनुकूल मार्ग पर चलना आवश्यक होता है। मोक्ष का जीवनध्येय बनाकर उस मार्ग पर चलने का पुरुषार्थ करना सम्यक् चरित्र है।

सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्मिलित परिपूर्णता से ही मोक्ष हो सकता है। केवल ज्ञान से, केवल दर्शन से, या अकेले चारित्र से मोक्ष नहीं हो सकता है। कतिपय ज्ञानवादी दर्शन ज्ञान से ही मुक्ति होना मानते हैं जब कि कतिपय क्रियावादी क्रिया से ही मोक्ष होना बतलाते हैं। यह एकान्तवाद जैनधर्म को अभीष्ट नहीं है। "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" यह जैनधर्म का सिद्धान्त है। क्रिया रहित ज्ञान पंगु है और ज्ञान रहित क्रिया अन्धी है। अतएव परस्पर निरपेक्ष ज्ञान और क्रिया कार्य साधक नहीं हो सकते। ये दोनों मिल कर ही मोक्ष के साधक होते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का अन्तर्भाव 'ज्ञान' में और सम्यक् चारित्र का समावेश 'क्रिया' में होता है। तात्पर्य यह है कि यथार्थ तत्व ज्ञान, उस पर अडोल श्रद्धा और तदनुकूल आचरण यही मोक्ष रूप जीवन ध्येय को प्राप्त करने के साधन हैं। यही मोक्ष का मार्ग है।

जैन दृष्टि के अनुसार आत्मा अपने मूल स्वरूप में स्फटिक के समान निर्मल, अनन्त ज्ञानमय, आनन्दमय और अनन्त शक्तिमय है। तदपि वह

आध्यात्मिक संग्राम और बोधि-लाभ

अनादि काल से राग-द्वेष और मोह के प्रबल आवरण से आवृत होने के कारण विभाव दशा को प्राप्त हो रहा है। मोह के प्राबल्य से आत्मा अपने स्वातन्त्र्य को खोकर कर्म पुद्गलों के आधीन हो रहा है। आत्मरूपी राजा अपने अतुल वैभव से वञ्चित होकर मोह-राजा के कारागार में कैद है। इस दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण आत्मा का इतना अधिक अधःपतन होगया है कि वह अपने स्वतन्त्र स्वरूप को भूल गया है और पर-पुद्गलों को ही अपना रूप समझने लगा है। यह पतन की पराकाष्ठा है।

आत्मा के प्रबलतम वैरी-मोह की दो प्रकार की शक्तियां हैं। प्रथम शक्ति से वह आत्मा को ऐसा बेजान बना देता है कि वह अपने स्वरूप को भूल जाता है और पर पदार्थों में आत्मबुद्धि करने लगता है। उसे स्वरूप पररूपका, अन्तर्भाव-बहिर्भाव का, और चेतन-अचेतन का भेद-ज्ञान नहीं होता इस लिए उसकी सब क्रियायें उन्मार्ग की ओर ले जाने वाली होती हैं। मोह की इस शक्ति को 'दर्शनमोह' कहते हैं। मोह की दूसरी शक्ति का नाम चारित्र मोह है जो स्वरूप दर्शन न हो जाने के बाद भी आत्मा को तदनुकूल प्रवृति करने से रोकती है। इन दोनों शक्तियों की प्रबलता और निर्बलता पर ही आत्मा के उत्थान और पतन का आधार है। इन दोनों में भी दर्शनमोह की प्रकृति विशेष रूप से आत्मगुणों की अवरोधिनी है। इसकी प्रबलता होते हुए दूसरी शक्ति कदापि मन्द नहीं हो सकती है। प्रथम शक्ति के मन्द मन्दतर और मन्दतम होने पर दूसरी शक्ति स्वयं मन्द होने लगती है अतः मोह की प्रथम शक्ति 'मिथ्यात्व' को नष्ट करने के लिए प्रथम प्रयत्न करना आवश्यक है इसके क्षीण होते ही स्वरूप का दर्शन हो जाता है। एक बार आत्मस्वरूप के दर्शन कर लेने पर बेड़ा पार होना निश्चित ही है। जिस जीवने एक बार अपने सत्य स्वरूप का अनुभव कर लिया वह अवश्य बन्धन से मुक्त होकर आत्मरमण में लीन होगा।

जिस प्रकार अग्निशिखा चाहे जितने नीचे स्थान पर जलाए जाने पर भी उर्ध्वगमन स्वभाव वाली है इसी तरह आत्मा भी चाहे जैसी अवस्था में होने पर भी उर्ध्वगामी स्वभाव वाली है। विकास करना प्रायः स्वभाव है। अतः जैसे पार्वात्य नदी का पत्थर चट्टानों के आघात प्रत्याघातों

को ..हन करता हुआ गोल सुन्दर आकृति का बन जाता है उसी तरह यह आत्मा भी विविध आघात प्रत्याघातों को झेलता हुआ जानते अजानते इतना सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है कि यह अपने वीर्योल्लास के कारण मोह के आवरण को कुछ अंश में शिथिल कर देता है। मोह के प्रभाव के कम होते ही आत्मा विकास की ओर अग्रसर होता है और रागद्वेष की तीव्रतम दुर्भेद्य ग्रन्थि तोड़ने की योग्यता कतिपय अंशो में प्राप्त कर लेता है। आत्मा की इस अल्प आत्मविशुद्धि को यथार्थ कृति करण कहा जाता है। इस करण के द्वारा आत्मा की स्वाभाविक शक्तियों के बीच घोर संग्राम होने लगता है। एक ओर रागद्वेष और मोह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर आत्मा को बन्धन में बांधे रखने का प्रयास करते हैं और दूसरी ओर विकासाभिमुख आत्मा उनके प्रभाव को कम करने के लिए अपने वीर्य का प्रयोग करता है। इस आध्यात्मिक संग्राम में कभी आत्मा की विजय होती है तो कभी मोह की। अनेक आत्मा ऐसे होते हैं जो लगभग ग्रन्थिभेद करने लायक बल प्रकट करके भी अन्त में रागद्वेष के तीव्रप्रहारों से आहत होकर अपनी पहली अवस्था में आ जाते हैं। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं जो न हार खाकर पीछे हटते हैं और न विजय लाभ ही करते हैं। कोई २ आत्मा ऐसे भी होते हैं जो अपने प्रबल पुरुषार्थ और अदम्य वीर्योल्लास के कारण रागद्वेष की निविडतम ग्रन्थि का भेदन कर डालते हैं और इस संग्राम में विजयी बनते हैं। शास्त्रीय परिभाषा में इस ग्रन्थि भेद को अपूर्व करण कहते हैं।

रागद्वेष की तीव्रतम ग्रन्थि का भेद हो जाने पर आत्मविशुद्ध और वीर्योल्लास की मात्रा जब बढ़ जाती है तब आत्मा मोह की प्रबलतम शक्ति दर्शनमोह पर अवश्य विजय प्राप्त करता है। इस विजयकारक आत्मशुद्धि को 'अनिवृत्ति करण' कहते हैं। इस करण में आत्मा में ऐसा सामर्थ्य पैदा हो जाता है कि वह दर्शन मोह पर विजय लाभ किये बिना नहीं रहता। दर्शन मोह पर विजय प्राप्ति करते ही आत्मा को स्वरूप दर्शन हो जाता है। वह अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वरूप को देखकर हर्ष विभोर हो जाता है। उसकी अनादि कालीन भ्रान्ति दूर हो जाती है और वह अपने आप में उस अकलंक ज्योति के दर्शन करता है जो स्फटिक के समान शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन और निर्विकल्प है। इस दुर्लभ अवस्था की प्राप्ति को शास्त्रीय भाषा में 'सम्यक्त्व' अथवा 'बोधिलाभ' कहते हैं।

यह सम्यक्त्व की मुक्ति का द्वार, धर्म का आधार, गुणरत्नों का भण्डार और संसार सागर से पार करने वाला है। इसके होने पर ही ज्ञान और क्रिया में सम्यक्पन आता है। यही श्रावक धर्म और साधु धर्म का मूल है। इसके होने पर ही जीव अन्तर्दृष्टा और मोक्षमार्ग का आराधक होता है।

सम्यग्दृष्टा आत्मा, रागद्वेष से अतीत, कर्मशत्रुओं को जीतने वाले, तीन लोक के पूजनीय और परम शुद्ध आत्माओं को अपने आराध्य देव मानता है। वह अपने सन्मुख ऐसे वीतराग अरिहन्त या अर्हत् का परम आदर्श रखता है। उसकी भक्ति करता हुआ वह आत्मा अपने में उन गुणों का विकास करता है। वह रागद्वेष में फँसे हुए, अनुग्रह निग्रह करने वाले, और संसार के प्रपञ्चों में लगे हुए देवताओं को अपना इष्टदेव नहीं मानता है। जो स्वयं विकार के वशवर्त्ती हैं, वे दूसरों के लिए आदर्श कैसे हो सकते हैं? अतः सम्यक्दर्शी आत्मा रागद्वेष से मुक्त, समस्त दोषों से रहित, शुद्ध स्वरूपी आत्माओं को अपना देव मानता है।

देव-गुरु और धर्म

भव बीजांकुर जनना रागाद्यः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनोवा नमस्तस्मै॥

भवरूपी वृक्ष के बीजांकुर समान राग आदि दोष जिसके क्षीण हो गये हैं वह चाहे ब्रह्मा हों चाहे विष्णु हों, चाहे शंकर हों अथवा जिन हों उन्हें वह नमस्कार करता है। वीतराग आत्मा को वह अपना आराध्य देव मानता है।

वीतराग परमात्मा के द्वारा बताये हुए मोक्षमार्ग पर जो चलते हैं, जो त्याग मार्ग के पथिक हैं, जो कनक-कामिनी के त्यागी हैं, जो स्वयं आत्मा को वीतराग बनाने का प्रयत्न करते हैं और दूसरों को भी वैसा उपदेश देते हैं वे निर्ग्रन्थ मुनि सच्चे गुरु पद के अधिकारी हैं। 'गुरु' शब्दका अर्थ हृदय के अन्धकार को दूर करने वाला होता है। जो व्यक्ति सत्यज्ञान और त्याग के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित है वही दूसरे के हृदय के अन्धकार को मिटाने की योग्यता रख सकता है। अतः सम्यग्दर्शी आत्मा ऐसे विशुद्ध आचरण सम्पन्न त्यागी गुरुओं को ही अपना गुरु मानता है।

सम्यग्दर्शी आत्मा धर्म रूपी रत्न का पारखी होता है। वह दुनिया में प्रचलित मत, सम्प्रदाय, मजहब आदि की अपने विवेक से परीक्षा करता है। अपनी कसौटी पर जो खरा उतरता है वही धर्म वह स्वीकार करता है। धर्म कसौटी है। जो दुःख से, दुर्गति से, और पतन से बचाकर आत्मा को ऊँचा उठाता है—आत्मा के मूल स्वरूप पर पहुँचता है वही धर्म है। जिन महान् विजेता आत्माओं ने, अपने अन्तरंग शत्रुओंको जीतकर, शुद्ध अवस्था प्राप्त करली है उन जिनदेवों के द्वारा प्ररुपित अनुभवमय मार्ग ही आत्मशुद्धि का वास्तविक मार्ग है। अतः सम्यग्दृष्टा आत्मा जिनधर्म-वीतराग धर्म का का अनुयायी होता है। वह त्याग, अहिंसा और संयम-मय धर्म को ही सत्य और सनातन धर्म मानता है। सच्चा सम्यादर्शी आत्मा किसी तरह का दुराग्रह नहीं रखता। वह जहाँ अहिंसा, सत्य, संयम और त्याग देखता है उसे अपनाने की कोशिश करता है। वह किसी पंथ, मजहब, सम्प्रदाय और मतके बंधन में बंधा नहीं रहता। उसे मत मजहब का पक्षपातनहीं होता। उसे सत्य का पक्षपात होता है। जहाँ सत्य और अहिंसा है वहाँ धर्म है। जहाँ सत्य और अहिंसा नहीं है, वहाँ धर्म नहीं है। इस प्रकार देव गुरु और धर्म का निर्णय करना व्यावहारिक सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन के द्वारा आत्मा स्वरूप की प्रतीति हो जाने के पश्चात् उस मूल स्वरूप को प्राप्त करने के लिये सम्यक चरित्र की आवश्यकता होती है। दीवार पर सुन्दर चित्र अंकित करने के लिये उसमें रही हुई विषमताको दूर करना आवश्यक होता है। इसलिए पहले दीवार को घिस घिस कर स्वच्छ और सम बनाया जाता है। इसी तरह आत्मा रूपी दीवार पर चरित्र का चित्र अङ्कित करने के लिए उसमें रही हुई मिथ्यात्व की विषमता को दूर करने की आवश्यकता होती हैं। मिथ्यात्व मेल के दूर होजाने के बाद आत्मा रूपी पृष्ट पर चारित्र का चित्रण सुचारु रूप से होता है। अतः जैनधर्म प्रथम सम्यक् दर्शन पर जोर देता है और उसके बाद सम्यक् चरित्र पर।

सम्यक् चारित्र के द्वारा जीव अनादिकालीन राग द्वेष-अज्ञान आदि के बन्धन को तोड़ कर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। इस सम्यक् चारित्र की साधना के लिए व्रत, नियम, ध्यान, तप आदि

का निरूपण किया गया है।

परिपूर्ण आत्म कल्याण के लिए पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अचौर्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य, और पूर्ण परिग्रह–निवृत्ति की आवश्यकता होती है। जो आत्मा उनकी परिपूर्ण अराधना का यत्न करता है

महाव्रत और अणुव्रत

वह सर्व विरत या साधु कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति से उनके परिपूर्ण अराधन की आशा नहीं की जा सकती है अतः जैनधर्म आंशिक आराधना की व्यवस्था की है। यह अधिक आराधना परिपूर्णता की ओर ले जानेवाली है क्रमशः आंशिक आराधना को विकसित करते हुए परिपूर्णता प्राप्त की जाती है। जो अहिंसा वृतों की पूर्णतया आराधना करते हैं वे महाव्रती कहे जाते हैं और जो आंशिक आराधना करते हैं वे अणुव्रति कहे जाते हैं। हिंसादि प्राप्त कर्मों का सर्वथा त्याग करने वाले साधु के व्रतों को महाव्रत कहते हैं और मर्यादित त्याग करने वाले श्रावक के व्रतों को अनुव्रत कहते हैं। महा व्रतों की अपेक्षा इन का क्षेत्र और विषय अल्प होने से अणुव्रत कहे जाते हैं।

अमृत का लेश मात्र भी हितकारी ही होता है इसी तरह धर्म की लेशमात्र आराधना भी हितकारिणी है। जिस व्यक्तिकी जिस प्रकार की शक्ति है उसके अनुसार उतने अंश में धर्माराधन करना उसके लिए कल्याण करने वाला है। प्रत्येक अवस्था में रहे हुए व्यक्ति को अपने विकास का अधिकार है और वह अपनी स्थिति के अनुसार विकास के साधनों को न्यूनाधिक रूप में स्वीकार कर सकत है। धर्म के विशाल क्षेत्र में प्रत्येक स्थिति के व्यक्ति के लिए अवकाश है अतः इस उदार दृष्टिकोण से धर्म की कई सौम्य आकृतियाँ बताई गई हैं। गृहस्थाश्रम का निर्वाह करते हुए गृहस्थ सम्पूर्ण अहिंसा और परिपूर्ण सत्य की आराधना करने में समर्थ नहीं हो सकता है अतः सम्पूर्ण अहिंसा आदि की आराधना को अपना लक्ष्य बनाकर मर्यादित अहिंसा प्रमुख अणुव्रतों के पालन करने की व्यवस्था की गई है। इससे जीवन के चाहे जिस क्षेत्र में होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार धर्म की आराधना करने का अवसर प्राप्त होता है। अतः जैनधर्म ने आगार धर्म और अनगार धर्म (श्रावक धर्म और साधु धर्म) की व्यवस्था की है।

अहिंसा का महान सिद्धान्त

अहिंसा का महान् सिद्धांत—जो आज विश्व-शांति का सर्वोत्तम साधन समझा जाने लगा है, जैनधर्म के उन्नायकों के द्वारा ही सर्व प्रथम विश्व के सामने प्रस्तुत किया गया है। जैनधर्म की यह महान् देन है, जो उसने विश्व को प्रदान की। अहिंसा के कल्याणकारी सिद्धान्त के प्रचारक और प्रसारक के रूप में जैनधर्म का यशगौरव सदा अक्षुण्ण रहेगा।

अहिंसा, वह निर्मल मन्दाकिनी है। जिसकी पवित्र और शीतल धारा पाप के ताप को नष्ट कर देती है। अहिंसा, वह अमृत की कनी है जो भीषण भव-रोग को निर्मूल कर देती हैं। अहिंसा, वह मेघ-धारा है जो दुःख-दावानल को शान्त करती है; अहिंसा वह जगज्जननी जगदम्बा है जो जगत् के जीवों की रक्षा करती है। अहिंसा वह भगवती है जिसकी आराधना से जगत् के जन्तु निर्भय और सुखी हो सकते हैं।

जैनधर्म में, आत्मस्वरूप की प्राप्ति का सबसे प्रधान साधन अहिंसा का आराधना मान गया है। जो प्राणी जितने अंश में अहिंसा की आराधना करता है उतने ही अंश में शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है। वीतराग आत्मा अहिंसा की उच्चतम कोटि पर पहुंचे हैं इसलिए वे शुद्ध आत्मस्वरूप में अवस्थित रहते हैं। व्यक्ति के जीवन में अहिंसा जितनी गहरी उतरी हुई होती है वह उतना ही आत्मिक दृष्टि से विकसित होता है। जो व्यक्ति जितनी हिंसा करता है या हिंसक भावना रखता है वह आत्मिक दृष्टि से उतना ही हीन होता है।

संसार के सब प्राणी जीवन के अभिलाषी हैं। सब को जीवन प्यारा है। कोई मरना नहीं चाहता सब मृत्यु से डरते हैं। सब सुखी रहना चाहते हैं। कोई दुःख नहीं चाहता मरने से दुःख होता है इसलिए कोई मरना नहीं चाहता। प्रत्येक प्राणी अपने जीवन को सबसे अधिक अनमोल मानता है। सब प्राणियों को जीने का समान अधिकार है। यह जान कर किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये। उसके प्राणों का हरण नहीं करना चाहिये, इतना ही नहीं परन्तु उसे किसी तरह का शारीरिक या मानसिक कष्ट न पहुँचाना चाहिये। यह अहिंसा की हिंसा-निवृत्ति रूप व्याख्या है।

संसार के समस्त जीवों के प्रति मैत्रीभाव रखना, सब जीवों को आत्मतुल्य समझना और विश्व-बन्धुत्व की भावनाका विकास करना विधिरूप अहिंसा है।

यह अहिसा ही परम धर्म है। आचारांग सूत्र में कहा गया है:—

"सव्वेपाणा, सव्वेभूया, सव्वेजीवा, सव्वेसत्ता न हंतव्वा, न अज्झावेयव्वा, न परिघेन्तव्वा, न उद्वेयव्वा, एसधम्मे सुद्धे, धुवे, निइए, सासए, सम्मेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए।"

किसी प्राणी भूत, जीव और सत्व को नहीं मारना चाहिये, उस पर आज्ञा नहीं चलानी चाहिए, उसे बलात् आपने अधीन नहीं रखना चाहिए, उसे किसी तरह का क्लेश-परिताप और उपद्रव नहीं पहुँचाना चाहिए। यह अहिंसा धर्म ही शुद्ध है, ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और लोक के ज्ञाता अनुभवियों के द्वारा प्ररूपित है। यह आत्मा को उस स्थिति पर पहुँचा देता है जो इसका चरम साध्य है।

वैसे तो संसार के प्रायः सब धर्मों ने न्यूनाधिक रूप में अहिंसा को स्वीकार किया है, परन्तु जैनधर्म ने अहिंसा पर जितना भार दिया है उतना और किसी धर्म ने नहीं। जैनधर्म की अहिंसा की व्याख्या जितनी व्यापक, उदार, विराट और विस्तृत है उतनी और किसी धर्म की नहीं। किसी २ धर्म के द्वारा सम्मत अहिंसा तो केवल मनुष्य तक ही सीमित है, किसी धर्म की अहिंसा अमुक २ पशुओं तक ही मर्यादित है, कोई धर्म अमुक २ बहाने से हिंसा का समर्थन भी करते हैं परन्तु जैनधर्म की अहिंसा न केवल मनुष्य या स्थूल पशु पक्षियों तक ही आबद्ध है अपितु उसमें पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के अव्यक्त चेतना वाले जीवों तक की हिंसा न करने पर भार पूर्वक विधान किया है। जैनधर्म की अहिंसा में किसी तरह का अपवाद नहीं है। उसकी दृष्टि में हिंसा, चाहे वह किसी भी निमित्त से की जाती हो क्षन्तव्य नहीं है। सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तुओं के प्रति भी अहिंसक रहने का जैनधर्म का मुख्य संदेश है। तात्पर्य यह है कि जैनधर्म ने अहिंसा के सिद्धांत को व्यापक और विशाल रूप दिया है।

जैनधर्म का प्राण और जैन संस्कृति का हृदय "अहिंसा" ही है। इसके आस पास ही अन्य सिद्धान्तों और आचार-विचारों का निरूपण किया

गया है। अहिंसा को केन्द्र मान कर ही अन्य बातों पर विचार किया गया है। जिन २ विचारों और आचारों से अहिंसा का पोषण होता है वे सब धर्म के अन्तर्गत हैं और आचार-विचार अहिंसा के विरोधी या बाधक हैं। वे सब अधर्म माने गये हैं। अहिंसा ही जैनधर्म के लिए वह कसौटी है जिस पर कस कर वह किसी आचार या विचार की सत्यासत्यता या ग्राह्यता-अग्राह्यता का निर्णय करता है। अहिंसा का सिद्धान्त ही जैनधर्म का मुख्य आधार है। अहिंसा की आराधना से ही जैनधर्म की आराधना है।

यह एक माना हुआ सत्य है कि अहिंसा की प्रतिष्ठा करने वाला यदि कोई है तो वह, जैनधर्म है। जैनधर्म के कारण संसार में अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई। यह भी उतना ही सत्य है कि अहिंसा के कारण ही जैनधर्म की विश्व में प्रतिष्ठा है। जैनधर्म ने अहिंसा की प्रतिष्ठा की और अहिंसा ने जैनधर्म की प्रतिष्ठा की। अहिंसा और जैनधर्म एक दूसरे में ओत प्रोत हैं।

जैनधर्म में अहिंसा व्रत को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। साधु और श्रावक के लिए पहला नियम अहिंसा का ही है। जैन श्रमण अपने पहले व्रत में मन, वचन और काया के द्वारा अहिंसा का पालन करता है। वह सब प्रकार के जीवों की हिंसा से सर्वथा निवृत्त हो जाता है। वह ऐसा कोई कार्य नहीं करता है जिससे किसी भी जीव को कष्ट पहुंचे। अहिंसा की सम्पूर्ण आराधना करना ही उसका ध्येय रहता है और यही उसका प्रयत्न होता है। जैन श्रावक भी अपने पहले व्रत में हलन-चलन करने वाले प्राणियों की जान-बूझकर हिंसा करने का त्याग करता है। सूक्ष्म स्थावर जीवों की हिंसा से बचना गृहस्थ के लिए कठिन है अतः सम्पूर्ण अहिंसा का लक्ष्य रखते हुए वह मर्यादित अहिंसाका व्रत अंगीकार करता है। वह संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। जीवन-व्यवहार में सूक्ष्म स्थावर जीवों की हिंसा अनिवार्य है अतः लाचारी मान कर वह रुक्ष भाव से जीवन-व्यवहार चलाता है। उसके परिणामों में हिंसा नहीं होती। इस तरह साधु हो या श्रावक—सब के लिए अहिंसा धर्म का पालन करना जैन-धर्म में अनिवार्य है।

जैनधर्म में अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन किया है। इसके अनुसार संसार में दो प्रकार के प्राणी हैं—एक व्यक्त चेतना वाले दूसरे अव्यक्त चेतना वाले। जिनकी चेतना व्यक्त है, जो चल फिर सकते हैं वे त्रस

कहलाते हैं। जिनकी चेतना-शक्ति अव्यक्त है, जो स्वेच्छापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने-आने में असमर्थ हैं वे स्थावर जीव कहे गये हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव स्थावर जीव हैं। जैन धर्म ही की यह विशेषता है कि वह पृथ्वी आदि में भी जीव मानता है। आधुनिक विज्ञान भी धीरे-धीरे इनकी चेतनता स्वीकार करता जा रहा है। पानी और वनस्पति में भी जीव है यह विज्ञान के द्वारा सिद्ध हो चुका है। किसी समय वनस्पति की सचेतनता भी संदिग्ध थी परन्तु विज्ञान ने अब यह सिद्ध कर दिया कि वनस्पति में भी अन्य प्राणियों की तरह चेतना है। विज्ञान अभी अपूर्ण है, वह किसी समय पृथ्वी, वायु, अग्नि आदि में चेतना सिद्ध करने में सफल हो सकेगा यह आशा रखना चाहिये। सर्व ज्ञानियों ने तो इन्हें सचेतन कहा ही है। अन्ततोगत्वा विज्ञान वही सिद्ध करनेवाला है जो ज्ञानीजन हजारों वर्ष पहले कह चुके हैं। अस्तु। तात्पर्य इतना ही है कि जैनधर्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति में भी जीव मानता है और यथासम्भव इन जीवों की हिंसा से बचने का भी विधान करता है। सम्पूर्ण त्यागी वर्ग के लिए तो इन सूक्ष्म जीवों की हिंसा से भी बचने का अनिवार्य विधान है। आंशिक—मर्यादित—त्याग करनेवाला गृहस्थ त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी होता है।

जैन धर्म अहिंसा की इतनी व्यापक व्याख्या करता है इससे कई लोग यह आक्षेप करते हैं कि जैन धर्म में प्रतिपादित अहिंसा अव्यवहारिक है।

अहिंसा की व्यवहारिकता

क्योंकि जैन सिद्धान्त के अनुसार सारा विश्व ही जीवमय है। जल में जीव हैं, स्थल में जीव हैं, आकाश जीवों से व्याप्त है, और सारे लोक में जीव भरे हुए हैं तो जीवन-व्यवहार करते हुए उन जीवों की हिंसा अनिवार्य है फिर अहिंसा व्यवहारिक कैसे हो सकती है? इसका समाधान यह है कि जैन धर्म वाह्य-क्रिया की अपेक्षा भावना पर विशेष बल देता है। यदि भावना में अहिंसा व्याप्त है तो वाह्य-रूप में अनिवार्य प्राणि-घात होने पर भी वह बन्ध का कारण नहीं होता है। जैन सिद्धान्त में हिंसा-अहिंसा की परिभाषा करते हुए यही कहा गया है—"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।" प्रमाद—विषय और कषाय के वशीभूत होकर जो प्राण-घात किया जाता है वह हिंसा कही जाती है। जिस प्रवृत्ति में कषाय है, प्रमाद है, उसमें चाहे द्रव्य प्राण-घात न भी हो तो भी वह हिंसक प्रवृत्ति ही है। इसके विपरीत यदि भावों में

कषाय नहीं है, प्रमाद नहीं है, मारने की भावना नहीं है, पूरी-पूरी सावधानी है इस पर भी यदि प्राण-वध हो जाय तो वह हिंसा कर्म-बन्ध का कारण नहीं है। वही प्राण-हिंसा, हिंसा है जिसके पीछे प्रमाद अर्थात् राग-द्वेष और असावधानी है। वीतराग दशा में भी गमनागमन के कारण सूक्ष्म जीवों की विराधना तो होती है लेकिन वह कर्मबन्ध का कारण नहीं होती है। शास्त्र में कहा गया है कि—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो पावकम्मं न बंधइ ॥ (दश वैकालिक सूत्र अध्ययन ४)

उपयोग पूर्वक—सावधानी (यतना) रखते हुए चलना चाहिए, उपयोगपूर्वक खड़ा रहना चाहिए, उपयोगपूर्वक बैठना चाहिए, उपयोग से शयन करना चाहिए, उपयोग से खाना चाहिए, उपयोग से बोलना चाहिए। उपयोग पूर्वक क्रियाएँ करनेवाला जीव पाप-कर्म का बन्धन नहीं करता है।

इस आगम-वाक्य से यह सिद्ध हो जाता है कि जिस क्रिया के पीछे राग या द्वेष है, जो आसक्तिपूर्वक की जाती है, जो प्रमादपूर्वक की जाती है वही क्रिया कर्मबन्ध का कारण है। जिस क्रिया में सतत उपयोग है, अनासक्ति है और विवेक है वह क्रिया कर्मबन्ध का कारण नहीं होती है। हिंसा अहिंसा का मूल आधार बाह्य क्रिया नहीं है अपितु भावना है। बाहर से जिस क्रिया में हिंसा दिखाई देती है उसमें अन्तरंग में अहिंसा की भावना होने से वह अहिंसक क्रिया हो सकती है। जैसे डाक्टर शुभ भावना से शस्त्र-चिकित्सा करता है और यदि संयोगवश उससे रोगी की मृत्यु भी हो जाय तो डाक्टर को उसकी हिंसा का दोष नहीं लगता है क्योंकि उसकी भावना उसे मारने की नहीं थी परन्तु उसे स्वस्थ करने की थी। सामयिक, संयम आदि क्रियाएँ अहिंसक क्रियाएँ हैं परन्तु उदाई राजा को मारनेवाले नाई ने ढोंग पूर्वक इन क्रियाओं का आश्रय लेकर राजा की हत्या की थी। तात्पर्य यह है कि हिंसा-अहिंसा का मूल आधार बाह्य-क्रिया नहीं किन्तु भावना है।

यदि भावना में—वृत्ति में—अहिंसा है तो बाह्य सूक्ष्म आरम्भ होने पर भी वह हिंसा नहीं कही गई है। मुनिजन अप्रमत्त और अनासक्त भाव से क्रियाएँ करते हैं अतः उन्हें आरम्भ-जन्य पाप नहीं लगता है। वे निरारम्भ

और अहिंसक कहे जाते हैं। इस तरह जैन धर्म यह कहता है कि सब जीवों के प्रति अहिंसक भावना रक्खो। यदि सत्यरूप में अहिंसक भावना आ जाती है तो सूक्ष्म जीवों की विराधना होने पर भी वह हिंसा नहीं है। हृदयपूर्वक अहिंसा की आराधना करनेवाला व्यक्ति यथासम्भव अधिक से अधिक जीवों के प्रति अहिंसक रहेगा। जिन जीवों की हिंसा का परिहार साध्य नहीं है उनके प्रति भी वह हृदय से तो अहिंसक ही रहता है। प्रवृत्ति से होनेवाली उनकी हिंसा के लिए वह अपनी कमजोरी और विवशता का अनुभव करता है। इस सकम्प प्रवृत्ति के कारण वह हिंसा उसके लिए बन्धन रूप नहीं होती है। अतः जैन धर्म में प्रतिपादित अहिंसा अव्यावहारिक नहीं है।

अहिंसा के महान् उपदेष्टा तीर्थंकरों ने अपने जीवन में अहिंसा-सिद्धांत का परिपूर्ण पालन कर उसकी व्यावहारिकता प्रदर्शित कर दी है। उन्होंने अपने आचरण के द्वारा अहिंसा को मूर्त्तरूप दिया और बाद में जगत् को उसका उपदेश दिया। जैन-मुनि अहिंसा की साधना कर के उसकी व्यवहारिकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट कर रहे हैं।

जैनधर्म ने अहिंसा की आराधना के हेतु विभिन्न भूमिकाएँ नियोजित की हैं। मुनि उच्चकोटि की अहिंसा की आराधना करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस कोटियों नहीं आ सकता है अतः जैनधर्म ने अहिंसा धर्म के आराधक की कई श्रेणियाँ बनाई हैं। गृहस्थ के लिए स्थूल हिंसा का त्याग करना ही आवश्यक बताया गया है। निरपराध त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना गृहस्थ का अहिंसा व्रत है।

जैनशास्त्रों में मुख्यतया हिंसा के दो भेद बताये गये है—प्रथम संकल्पी हिंसा और दूसरी आरम्भजा हिंसा। जान बूझकर मारने की भावना से किसी प्राणी को मारना संकल्पी हिंसा है—जैसे शिकारी और कसाई के द्वारा होने वाली हिंसा। मारने की भावना न होने पर भी जीवन व्यवहार के लिए आवश्यक अन्ननिष्पत्तिकरण, भवन निर्माण आदि २ कार्यों में होने वाली हिंसा आरम्भजा हिंसा है। आरम्भजा हिंसा भी दो प्रकार की है—सार्थक और निरर्थक। जो किसी आवश्यक प्रयोजन से की जाती है वह सार्थक हिंसा है और जो बिना प्रयोजन केवल मनोविनोद आदि के लिए की जाती है वह

निरर्थक हिंसा है। इनमें से श्रावक निरपराध त्रस जीवों को संकल्पी हिंसा का और निरर्थक आरम्भजा हिंसा का त्यागी होता है। वह अपराधी जीवों की संकल्पी हिंसा और सार्थक आरम्भजा हिंसा का त्यागी नहीं होता।

मनुष्य को अपनी, स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बीजन की, समाज व राष्ट्र की डाकू, लुटेरे, शत्रु आदि विरोधी प्राणियोंसे रक्षा करनी पड़ती है। ऐसी दशा में उत्तम बात तो यह है कि मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति के द्वारा शान्ति के साथ शत्रुओं का प्रतिरोध करे और अपना जीवन देकर भी आश्रितों की रक्षा करे। परन्तु यदि मनुष्य में शान्ति के साथ आत्मिक शक्ति के द्वारा प्रतिरोध करने का सामर्थ्य न हो तो उसके लिए उचित है कि वह शस्त्र द्वारा भी विरोधी शक्तियों के आक्रमण का प्रतिरोध करे। यदि अपनी, आश्रितमान एवं समाज व राष्ट्र की रक्षा करने में आक्रान्ता का संहार भी हो जाय तो भी गृहस्थ के अहिंसा अणुव्रत का भंग नहीं होता। क्योंकि उसकी भावना हिंसा करने की नहीं है। डाकू. लुटेरे व शत्रुओं के आक्रमण होने पर भय से कम्पित होकर उनके वश हो जाना या भाग जाना कदापि उचित नहीं है। भय—दुर्बलता है, कमजोरी है। भयभीत होने वाला व्यक्ति अहिंसाधर्म का पालन नहीं कर सकता है। अतः गृहस्थ के व्रत में इतनी छूट है कि वह अपराधी व विरोधी तत्त्वों को दण्डित कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति विरोध का साहसपूर्वक मुकाबला कर अपना उत्तरदायित्व निभा सकता है।

जैन श्रावक को अहिंसा की मर्यादा उसके जीवन व्यवहार में किसी तरह बाधक नहीं होती। अहिंसा की यह मर्यादा इतनी उदार है कि किसी भी श्रेणी का व्यक्ति इसे अपना सकता है। प्राचीन काल में बड़े २ चक्रवर्ती सम्राट् भी जैन श्रावक हो गये हैं। उनका श्रावकत्व उनके दायित्व का निर्वाह करने में बाधक रूप नहीं हुआ। राजा, मंत्री, सेनापति, पुलिस अधिकारी, डाक्टर, वकील, न्यायाधीश, व्यापारी, कृषक, नौकर-चाकर, शिल्पी इत्यादि प्रत्येक श्रेणी का व्यक्ति श्रावक हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा की इस मर्यादा में रहकर अपने जीवन व्यवहार का संचालन भली भांति कर सकता है। इसलिए जैनधर्म में प्रतिपादित अहिंसा को अव्यवहारी कहना सर्वथा मिथ्या है महात्मा गांधी ने कहा है कि:—

"अहिंसा के निरपवाद सिद्धांत के अन्वेषक महर्षि स्वयं महान् योद्धा थे। जब उन्होंने आयुध-बल की तुच्छता का भलिभांति अनुभव कर लिया, जब उन्होंने मानव-स्वभाव को भलीभांति जान लिया तब उन्होंने हिंसामय जगत् के सन्मुख अहिंसा का सिद्धांत उपस्थित किया। आत्मा सारे विश्व जीत सकती है। आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु आत्मा ही है। उसे जीत लिया कि सारा विश्व जीत लेने जितना सामर्थ्य आ जाता है, यह उन महर्षियों ने वताया इस लिये वे ही इसका पालन कर सकते हैं, ऐसा नहीं है। उन्होंने वताया कि बालक के लिए भी नियम तो यही है। वह भी इसका पालन कर सकता है। इस नियम का पालन केवल साधु सन्यासी ही करते हैं यह बात तो नहीं है। थोड़े-बहुत अंश में तो सब इसका पालन करते हैं। जो थोड़े अंश में भी पाला जा सकता है वह सर्वांश में भी पाला जा सकता है।"

गांधीजी के उक्त कथन से अहिंसा की व्यवहारिकता सिद्ध होजाती है।

अहिंसा का अवलम्बन लेने वाला आत्म बलिष्ट होता है। कायर व्यक्ति अहिंसा का अवलम्बन लेता है तो वह अहिंसा को लज्जित करता है। अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। अहिंसा तो सच्ची वीरता है। गांधीजी ने लिखा है कि—हम शांति, क्षमा को दुर्वल का शस्त्र गिन कर उस शस्त्र की कीमत को नहीं परखते हैं और उसे लज्जित करते हैं। यह तो मोहर को अठन्नी गिनकर काम में लेने के समान मूर्खता हुई। शान्ति व अहिसा वीर का शस्त्र है। वीर के हाथ में ही यह शोभा देता है। यह वीर का भूषण है।

जो लोग अहिंसा को कायरता वढ़ाने वाली कहते हैं वे उसके मर्म को नहीं समझते हैं। जिस समय भारत में अहिंसक धर्म के उपासक सम्राट् थे। उस समय भारत उन्नति के शिखर पर आरूढ था। उस समय उसमें यह शक्ति थी कि कोई उसपर आक्रमण नहीं कर सकता था। सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-काल है। भारत की अवनति का कारण अहिंसा नहीं है अपितु अनैक्य है। अहिंसा ने तो भारत को गौरव प्रदान किया है। अहिंसा ने भारत को पुनः स्वतन्त्र वनाया है। एक विशाल साम्राज्य से निःशस्त्र मुकाविला कर के और स्वतन्त्रता प्राप्त करके भारत ने अहिंसा का चमत्कार दुनियाँ को वता दिया है।

अहिंसा की आराधना और साधना के लिए जैनधर्म ने सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को आवश्यक माना है। अतः इन्हें अहिंसा के समान ही महत्व दिया है। भावना के बिना अहिंसा का पालन नहीं किया जा सकता है। अपरिग्रह में अहिंसा के बीज रहे हुए हैं। इसीलिए जैनधर्म ने अपरिग्रह पर भी विशेष भार दिया है। जैनधर्म निर्ग्रन्थ धर्म भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इसके उपदेशक त्यागी-मुनिजन सब प्रकार के परिग्रह से रहित होते हैं।

आज संसार का वातावरण इतना संक्षुब्ध है, इसका कारण परिग्रह ही है। परिग्रह हिंसा है। परिग्रह के वश में पड़े हुए मानव ने अपने हाथ से ऐसे दुःखों का निर्माण कर लिया कि अब वह स्वयं उनमें फँस कर परेशान हो रहा है और दूसरों को भी अशान्त बना रहा है। मानव इस अशांति का अन्त हिंसा से करना चाहता है। वह शस्त्र बढ़ा कर, परमाणु बम-उद्जन बम का आविष्कार कर और नवीन २ संहारक साधनों के अन्वेषण की होड़ कर संसार में शान्ति कायम करना चाहता है परन्तु यह ठीक इसी तरह असम्भव है जैसे आग को घी डाल कर शान्त करना। हिंसा का अन्त हिंसा से नहीं किया जा सकता है। अशान्ति के साधनों से शान्ति नहीं प्राप्त की जाति सकती है। यदि विश्व को शांति की अभिलाषा है तो वह केवल अहिंसा से ही प्राप्त हो सकती है। आज पश्चिमी दुनिया युद्ध के झंझावत से ग्रस्त है। न केवल पश्चिमी दुनिया ही बल्कि सारी दुनिया युद्ध के भय से संत्रस्त है। इस समय जैनधर्म का गगनभेदी सन्देश यही है कि "युद्ध से किसी समस्या का हल नहीं होता"। यदि शान्ति की चाह है तो अहिंसा ही उसकी राह है। यदि दुनिया ने शीघ्र ही इस मर्म को नहीं समझा तो मानव जाति का विनाश हो जायगा। इस विषम वातावरण में आवश्यक है कि जैनधर्म के अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्त का अनुशीलन किया जाय। ऐसा करने में ही मानव जाति का कल्याण है। अहिंसा भगवती की आराधना से ही विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है, सब संघर्षों का अन्त हो सकता है और सब समस्याओं का समाधान सुलभ हो सकता है।

भौतिकवाद की आँधी में फँसा हुआ विश्व अब अपने आपको सँभाले, इसी में कल्याण है। यह भौतिकवाद संसार को शांति देने वाला सिद्ध नहीं

हुआ और न हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि अब वह अपनी आंख खोले और आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो। अहिंसा का आध्यात्मिक सिद्धान्त उसकी सब विषम समस्याओं का सुगम समाधान करने की क्षमता रखता है। आवश्यकता है केवल उसके हार्दिक अनुशीलन की।

मानव जाति के स्थायी सुख स्वप्नों को पूर्ण करने वाली अहिंसा ही है, दुनिया इस सत्य को शीघ्रातिशीघ्र हृदयंगम करे।

सत्य और अहिंसा एक दूसरे के साधक हैं। अहिंसा की आराधना के लिए सत्य की आराधना आवश्यक है और सत्य की आराधना के लिए अहिंसा की आराधना आवश्यक है। अतः अहिंसा व्रत के

सत्यव्रतः— बाद दूसरा व्रत, सत्य-व्रत कहा गया है। जैन शास्त्रों में "सच्चं लोगम्मि सारभूयं" "सच्चं खु भगवं" इत्यादि कह कर सत्य की गहरी प्रतिष्ठा की गई है। शास्त्रकारों ने सत्य को भगवान् मान कर उसकी स्तुति की है। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार हो जाना भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है। भगवान् का साक्षात्कार होना अर्थात् अपने सम्पूर्ण संशुद्ध आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेना है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने वाले मुमुक्षु आत्मा को सत्य की आराधना करनी चाहिये। सम्पूर्ण सत्य की आराधना के लिए प्रयत्नशील गृहत्यागी साधक, क्रोध के वशीभूत होकर, भय से भयभीत होकर, हास-उपहास से प्रेरित होकर या लोभ के चक्कर में फँस कर किसी प्रकार का असत्य भाषण नहीं करता। वह मन, वाणी और कर्म से असत्य का सर्वथा परित्याग करता है। वह न तो स्वयं असत्य-भाषण करता है, न दूसरों से असत्य भाषण करवाता है और न असत्य भाषण करने वाले का अनुमोदन करता है। इस तरह त्यागी साधक तीन करण-तीन योग से असत्य का त्यागी होता है यह सत्य महाव्रत है।

संसार व्यवहार चलाने वाला गृहस्थ सम्पूर्ण सत्याराधन के लिए अपनी कमजोरी अनुभव करता है अतः वह मर्यादित रूप में सत्य-पालन की प्रतिज्ञा करता है। वह स्थूल मृषावाद का त्याग करता है। वह कम से कम ऐसे बड़े असत्य भाषण का तो पूर्णतया त्यागी होता है जिनसे महान् अनर्थ होने की सम्भावना रहती है। जिस असत्य-भाषण से किसी की भारी हानि

हो, कुल, जाति तथा धर्म को कलंक लगाता हो, देश में अशान्ति फैलती हो, शिष्ट समाज में अप्रतीति हो—ऐसे स्थूल मृषावाद का त्याग तो गृहस्थ साधक के लिए भी आवश्यक है। वर कन्या को गुण दोषों के सम्बन्ध में किसी को धोखा देने के लिए मिथ्या भाषण करना, गाय-बैल आदि चतुष्पद जीवों के गुण-दोषों के सम्बन्ध में मिथ्या भाषण करना, जमीन के लिए मिथ्या भाषण करना, धरोहर को हजम करने के लिए असत्य भाषण करना, बही खातों में या अन्यत्र झूठे लेख लिखना, झूठी साक्षी देना, किसी पर झूठा आरोप लगाना, गुप्त बातों को प्रकट करना, विश्वास घात करना, झूठी सलाह देना, झूठे दस्तावेज बनाना या जालसाजी करना आदि २ स्थूल मृषावाद हैं। गृहस्थ-श्रावक के लिए भी इनका त्यागी होना आवश्यक है। यह श्रावक का दूसरा अणुव्रत है।

सत्यव्रत के आराधन में विवेक का बहुत महत्व है। विवेक पूर्वक बोला हुआ वचन ही सत्य हो सकता है। विवेक के अभाव में कहा हुआ सत्य वचन भी असत्यरूप हो जाता है। विवेक सम्पन्न सत्यव्रत धारी व्यक्ति सत्य होने पर भी इस प्रकार का भाषण नहीं करता जिससे दूसरों को पीड़ा पहुंचती है। जैसे काणे को काणा कहना, चोर को चोर कहना, यद्यपि मिथ्या नहीं है तदपि पर पीड़ाकारी होने से सत्य नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिये कि वह सत्य, सत्य है जो अहिंसा का बाधक न हो। अहिंसा और सत्य परस्पर अबाधित होना चाहिये। जिस सत्य भाषण के करने से जीवों का घात होने की सम्भावना है वह भाषण कदापि नहीं करना चाहिये। जैसे मार्ग चलते हुए मनुष्य को शिकारी पूछे की क्या तुमने इधर से जाता हुआ मृग-झुण्ड देखा है? उस मनुष्य ने मृग-झुण्ड देखा है लेकिन यदि वह 'हाँ' कह कर मार्ग बताता है तो जीवों का घात होता है और यदि 'नहीं' कहता है तो झूठ का प्रसंग आता है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये? ऐसी स्थिति में ऐसा उत्तर देना चाहिये कि जिससे न तो प्राणी का घात हो और मिथ्या भाषण ही करना पड़े। यदि ऐसा उत्तर न बन पड़े तो मौन रहना चाहिये। अन्यथा अपवाद रूप से 'मैं नहीं जानता' ऐसा कहा जा सकता है परन्तु ऐसे प्रसंग पर पाप को प्रेरणा देने वाला सत्य वचन नहीं कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि व्रतधारी को विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिये।

सत्यव्रत के आराधक को हित, मित प्रिय और सत्य भाषण करना चाहिये। वृथा बकवाद से बचना चाहिये। अधिक बोलने से असत्य-भाषण की नौबत आ ही जाती है। इस लिए मितभाषी होना चाहिये। दूसरे के अन्तः करण पर मधुर असर करने वाले वचन बोलने चाहिये। किसी के दिल को दुःखाने वाले निन्दा-विकथा के शब्द चापलूसी अविवेक पूर्ण वचन अप्रासंगिक वचन आदि दोषों से बच कर हितकर मृदु प्रिय और परिमित भाषण करना चाहिये। सत्य और अहिंसा ही धर्म की आत्मा है। इन की निर्मल आराधना से आत्मा निर्मल बन जाती है। सत्य की महिमा अपरम्पार है।

त्यागी और गृहस्थ साधक का तीसरा व्रत अस्तेय-व्रत है। दूसरे के अधिकार में रही हुई वस्तु का उसकी स्वीकृति के बिना ग्रहण करना अदत्तादान कहलाता है। दूसरे के अधिकारों का अपहरण करना भी

अस्तेयव्रतः—

चोरी है। मन, वाणी और क्रिया से सूक्ष्म या स्थूल, अल्प मूल्यवाली या बहुमूल्य, सचित्त या अचित्त किसी प्रकार की वस्तु स्वामी की आज्ञा के बिना स्वयं ग्रहण न करना, दूसरों को ग्रहण करने की प्रेरणा न करना और ग्रहण करने वाले को अनुमोदन न देना सम्पूर्ण अस्तेय व्रत है। त्यागी साधक तीन करण तीन योग से—मनसा—वाचा—कर्मणा-कृत-कारित-अनुमोदन से इसका सर्वांश से पालन करने का प्रयास करता है। यह तीसरा महाव्रत है। गृहस्थ साधक इतनी सूक्ष्मता से इस का पालन नहीं कर सकता है, अतः वह स्थूल अदत्तादान का त्याग करने की प्रतिज्ञा लेता है।

स्थूल अदत्तादान वह है जिसके सेवन से व्यक्ति दुनिया की दृष्टि में चोर समझा जाता है, राजदण्ड का पात्र होता है और शिष्ट पुरुषों में लज्जित होना पड़ता है। दुष्ट अध्यवसाय और उपाय से किसी के अधिकारों को हड़प लेना स्थूल अदत्तादान है। सेंध लगाना, जेबकतरना, डाका डालना, ताला तोड़ कर माल निकाल लेना, मार्ग में मिली हुई वस्तु के स्वामी का पता होने पर भी उसे स्वयं रख लेना, किसी को धोखे में उतारना आदि २ स्थूल अदत्तादान हैं। आज कल चोरी करने के कई सभ्य उपाय भी निकल आये हैं। काला बाजार करना, अधिक मुनाफा कमाना, रिश्वत देना लेना, धन

को दवा कर दीवाला निकाला, असली वस्तु में नकली मिला कर उसे असली बताना, एक वस्तु बता कर दूसरी देना या लेना, कम देना, ज्यादा लेना, झूठे दस्तावेज लिखवा लेना, सार्वजनिक संस्थाओं के नाम पर या धर्म के नाम पर धन एकत्रित कर उसे नाम-बतौर खर्च करके शेष हड़प जाना, मिथ्या विज्ञापन द्वारा दूसरों का धन हरण करना आदि २ विविध उपायों के द्वारा सभ्य चोरी का अवलम्बन लिया जा रहा है। यह सब जघन्य प्रवृतियाँ स्थूल अदत्तादान हैं। गृहस्थ साधक के लिए भी इनका त्याग आवश्यक बताया गया है। अस्तेयव्रत की आराधना करने वाले गृहस्थ को विशेष कर निम्न-लिखित कार्यों का त्याग करना चाहिये। (१) चोरी का माल खरीदना (२) चोरी में सहायता करना (३) विरोधी राज्य की सीमा में जाना-आना अथवा राज्य की सुव्यवस्था के विरुद्ध कार्य करना (४) झूठे तोल-माप रखना (५) मिश्रण कर अशुद्ध चीजें बेचना आदि २।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वस्तु और अपना अधिकार जीवन तुल्य प्रिय होता है। उसका अपहरण हो जाने से जीव को बहुत दुख होता है। इसलिए दूसरे की वस्तु का किसी उपाय से अपहरण चोरी तो है ही परन्तु बड़ी भारी हिंसा भी है। अतः चोरी करना भयंकर पाप और हिंसा है। इससे बचने के लिए अस्तेय व्रत अंगीकार करना चाहिए।

ब्रह्म चर्य व्रत

ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है ब्रह्म—आत्मा में रमण करना यह आत्म रमण अन्तर्ध्यान और अन्तर्ज्ञान से हो सकता है। इसके लिए बाह्य पदार्थों से विमुख होना आवश्यक है। जब तक बाह्य पदार्थों में आसक्ति बनी रहती है तब तक अन्तर्ध्यान और अन्तर्ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिए बाह्य पदार्थों की ओर दौड़नेवाले मन और इन्द्रियों का संयम करना आत्म-रमण के लिए आवश्यक है। सब इन्द्रियों का मन, वाणी और कर्म से सर्वदा तथा सर्वत्र संयम करना ही ब्रह्म-चर्य है। इतना व्यापक अर्थ होते हुए भी सामान्य तौर से जननेन्द्रिय के संयम के अर्थ में यह शब्द रूढ़सा हो गया है। कामभोगों की ओर प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों का परिपूर्ण निग्रह करना, मन वचन और तन में लेश मात्र भी विषय विकार न आने देना तथा काम वासना पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त करना परिपूर्ण ब्रह्मचर्य है।

संसार के प्रायः सब धर्मों और धर्मशास्त्रों ने ब्रह्मचर्य का यशोगान किया है। जैन धर्म संयम प्रधान धर्म है अतः इसमें इस व्रत का बहुत ही अधिक महत्त्व है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा गया है कि "हे जम्बू ! यह ब्रह्मचर्य तप, नियम, ज्ञान दर्शन चारित्र सम्यक्त्व और विनय का मूल है। यम-नियम आदि गुणों का आधार है। जिस प्रकार पर्वतों में हिमवान प्रधान है इसी तरह सब यमनियमों में ब्रह्मचर्य प्रधान है तेजोमय है प्रशस्त है और गम्भीर है। ब्रह्मचर्य व्रत के आराधना करने पर तप विनय क्षमा गुप्ति मुक्ति आदि आराधना हो सकती है। यह सद्गुणों का मूल है।" "तवेसु उत्तमं बंभचेरं" कह कर इस व्रत की महानता प्रकट की गई है।

मन, वचन और कर्म के द्वारा परिपूर्ण ब्रह्मचर्य की आराधना करना मुनि धर्म है। इस कोटि पर पहुँचनेवाले विरले व्यक्ति होते हैं। गृहस्थ साधक के जीवन का लक्ष्य-विन्दु यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन का होता है परन्तु अपनी कमजोरी के कारण वह मर्यादित ब्रह्मचर्य स्वीकार करता है। अपनी विवाहिता पत्नी के साथ मर्यादित सम्भोग की छूट रख कर संसार भर की समस्त नारियों से अब्रह्म सेवन का त्याग करता है। वह स्वयं स्त्री संतोष व्रत अंगीकार करता है और अपनी पत्नी के साथ भी अमर्यादित अब्रह्म का परित्याग करता है। गृहस्थ के विवाह का उद्देश्य विषय वासना भोग विलास करना नहीं होता है अपितु अपनी निरंकुश विषयेच्छा पर अंकुश लगाना ही उसका पवित्र उद्देश्य होता है। इस उच्च आशय से विवाह के वन्धन में बंधकर विषयेच्छा को मर्यादित कर लेता है और सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के लक्ष्य विन्दु पर पहुँचने की शक्ति प्राप्त करने का अभ्यास करता है। जो व्यक्ति विवाह के आदर्श को समझता है वह अपनी पत्नि के प्रति अमर्यादित नहीं होता है फिर पर स्त्री का सेवन तो कर ही कैसे सकता है ? गृहस्थ साधक (श्रावक) स्वयं स्त्रीसन्तोष व्रत में इतना पक्का होता है कि यदि उसके सामने उर्वशी या रति के समान सौन्दर्य में उभराती हुई सुन्दरी खडी होकर रति की याचना करे तो भी वह अपने व्रत से विचलित नहीं होता है।

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले गृहस्थ को भी विशेषकर इन कार्यों का त्याग करना होता है:—(१) किसी रखैल के साथ सम्भोग

करना अथवा अल्पवय वाली स्वस्त्री के साथ विषय-सेवन करना (२) जिसके साथ अभी तक विवाह नहीं हुआ है केवल सगाई हुई ऐसी स्त्री के साथ विषय सेवन करना अथवा परस्त्री, अपरिणीता या वेश्या के साथ सम्भोग करना (३) अप्राकृतिक सम्भोग करना (४) लग्न करा देना या जातीय सम्बन्ध स्थापित करा देना (५) कामभोग की तीव्र अभिलाषा करना।

ब्रह्मचर्य की निर्मल आराधना के लिए त्यागी और गृहस्थ साधक को अपने आहार-विहार में सावधानी रखनी चाहिए। उसे ऐसा आहार कदापि नहीं करना चाहिए जो विषयविकारों को उत्तेजित करने वाला हो। आहार का विचार के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है। आहार सात्विक होता है तो विचार भी प्रायः सात्विक होते हैं और आहार यदि तामसिक होता है तो वह विचारों को भी तामसिक बना देता है। इसलिए ब्रह्मचारी साधक मद्य, मांस, मादक और विषयों के उत्तेजित करने वाली औषधियों का सेवन नहीं करता है। वह सात्विक आहार करता है और अपने विचारों को सदा पवित्र रखता है। विषय वासना की उत्पत्ति संकल्पों से होती है इसलिए मन में कभी बुरे विचार न लाना चाहिए। विषय विकारों को उत्तेजित करने वाले वातावरण से दूर रहना चाहिए। किसी पर स्त्री को बुरी नजर से न देखना चाहिए। यथा सम्भव स्त्री संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

कामुकता हिंसा है, अपराध है, आत्मा को अवनत करने वाली है। इसलिए आत्म विकास की अभिलाषी आत्मा इससे सदा बचकर रहती है। विषय वासना से बचकर आत्मा में रमण करने के लिए इस व्रत की अत्यन्त आवश्यकता है। यह चतुर्थ व्रत है।

अपरिग्रह का जैन आदर्श

परिग्रह वह भयंकर ग्रह है जिसने समस्त संसार को बुरी तरह पकड़ रक्खा है। यह वह भयंकर वन्धन है जिसमें सारी दुनियां बँधकर परेशान हो रही है। आत्मिक और विश्वशान्ति के लिए यह अत्यन्त घातक तत्व है। इसलिए जैनधर्म ने आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से अपरिग्रह को व्रतों में मुख्य स्थान दिया है। जैनधर्म के अपरिग्रह का आदर्श अत्यन्त भव्य

है। यह धर्म निर्ग्रन्थ धर्म भी कहा जाता है इसका कारण इस धर्म का अपरिग्रह के सिद्धान्त पर अधिक जोर देना ही है। इस धर्म के प्रधान पुरुष धन-जन आदि सांसारिक सम्बन्धों से मुक्त होकर आत्म साधनों में लीन रहते थे। वे संसार के बाह्यपदार्थों की ग्रन्थी से मुक्त थे अतः निर्ग्रन्थ कहलाते थे। ऐसे निर्ग्रन्थ अपरिग्रह के जीवित आदर्श थे।

निर्ग्रन्थ धर्मोपदेशकों ने परिग्रह में हिंसा के तत्त्वों का अवलोकन किया इसलिए उन्होंने अहिंसा की आराधना के लिए परिग्रह के त्याग को आवश्यक समझा। वस्तुतः परिग्रह हिंसा है, बन्धन है और अशान्ति का मूल है। जैन सिद्धान्तों में परिग्रह को मुख्य बन्धन कहा गया है। जैसा कि सूत्रकृताङ्ग सूत्र के आरम्भ में कहा गया है:—

बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा बंधणं परिजाणिया।
किमाह बंधणं वीरो किं वा जाणं तिउट्टइ ॥१॥
चित्तमंतमचित्तं वा परिगिज्झ किसामवि।
अन्नंवा अणुजाणाइ एवं दुक्खाण मुच्चइ ॥२॥

बन्धन को जानकर उसका छेदन करना चाहिए। ऐसा उपदेश दिये जाने पर जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं कि वीर भगवान् ने बन्धन का क्या स्वरूप बताया है और क्या जानकर जीव बन्धन को तोड़ता है? इस प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा है कि—परिग्रह ही बन्धन है, जो व्यक्ति द्विपद चतुष्पद आदि चेतन प्राणी को अथवा अचित्त स्वर्ण आदि पदार्थों को परिग्रह रूप से ग्रहण करता है, दूसरे को परिग्रह करने की अनुज्ञा करता है वह दुःख से मुक्त नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि परिग्रह को ही मुख्य बन्धन कहा गया है। परिग्रह को मुख्य बन्धन कहने का क्या आशय है, यह विचार करना चाहिए। साधारण लोग परिग्रह को पाप नहीं मानते इतना ही नहीं बल्कि उनकी दृष्टि में जो जितना बड़ा परिग्रह है वह उतना ही बड़ा पुण्यात्मा और आदरणीय भी है। आज के युग में लोग धनवानों को ही "बड़े आदमी" समझा करते हैं। परन्तु शास्त्रकार तो परिग्रह को पाप और बन्धन बता रहे हैं। परिग्रह का मूल और उसके परिणामों का विचार करने से यह स्वयं प्रतीत हो जाएगा

कि शास्त्रकारों ने परिग्रह को क्यों कर पाप और बन्धन कहा है। अतः यहाँ परिग्रह का विश्लेषण किया जाता है।

जैन शास्त्रानुसार जब मनुष्य भोगभूमि में था उस समय प्रकृतिप्रदत्त (कल्पवृक्षों के द्वारा दिये गये) साधनों के द्वारा उसका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता था। उस समय उसकी आवश्यकताएँ अल्प थीं और प्रकृति सम्पत्ति अधिक थी इस लिए उस समय किसी प्रकार का संगह नहीं किया जाता था। आखिर इस युग का अन्त आया। प्रकृति से अब निर्वाह नहीं होने लगा। कर्मभूमि का युग उपस्थित हुआ और मनुष्य को परिश्रम करना पड़ा। साथ ही मनुष्य की आवश्यकताएँ यहां तक बढ़ गई कि एक मनुष्य से सारी आवश्यकताएँ पूरी न हो सकती थीं इसलिए कार्य का विभाग किया गया। इस तरह मनुष्य सामाजिक प्राणी बन गया। सब मनुष्यों की योग्यता और रुचि बराबर नहीं थी। कोई परिश्रमी थे कोई आरामतलब। कोई बुद्धिमान थे, कोई साधारण; इसलिए आवश्यक था कि मनुष्यों के कार्यों में भेद हो। जो अधिक काम करते हैं वे बदले में अधिक प्राप्त करते उन्हें भोगोपभोग की सामग्री अधिक मिलने लगी। सामग्री अधिक देने का आशय तो यह था कि वह उस सामग्री का उपयोग करलें परन्तु धीरे धीरे उपभोग के बदले संग्रह की भावना बढ़ती गई। यहीं से परिग्रह बढ़ने लगा और दुनिया में अशान्ति का बीजारोपण हुआ।

यह संग्रह वृत्ति ही समाज में विषमता पैदा करनेवाली सिद्ध हु इससे समाज का एक वर्ग अधिकाधिक धन सम्पन्न होने लगा और दूसरा वर्ग उतरोत्तर कंगाल होने लगा। वह अपनी जीवनोपयोगी वस्तुओं को पाने में भी असमर्थ होगया। यह स्वाभाविक है कि अगर कहीं ढेर होगा तो अवश्य कहीं न कहीं खड्डा होगा। जब जीवनपयोगी पदार्थों का एक जगह संग्रह होने लगा तो दूसरे व्यक्ति भूखे मरने लगे। जब मुद्रा का प्रचार हुआ तब मुद्रा का भी संग्रह होने लगा। मुद्रा का संग्रह करना भी जीवन की सामग्री के संग्रह के समान ही हानिकर है क्योंकि इससे दूसरे लोग मुद्रा से वंचित रह जाते हैं तो वे क्या देकर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करे इस तरह संग्रह का परिणाम हुआ—समाजिक विषमता, कंगाली और उत्पीड़न।

अनुभवियों का कथन है कि जीवन के लिए आवश्यक समस्त पदार्थ प्रकृति इस परिणाम में उत्पन्न करती है कि जिससे सब की आवश्यकता की पूर्ति हो सके। ऐसा होते हुए भी संसार में नंगे-भूखे लोग दिखाई देते हैं इसका क्या कारण है ? इसका कारण है बढ़ी हुई संग्रह वृत्ति। कुछ लोग अपने पास आवश्यकता से अधिक पदार्थ संग्रह कर रखते हैं और दूसरे लोगों को उन पदार्थों के उपभोग से वंचित रखते हैं। इसी कारण लोगों को नंगा-भूखा रहना पड़ता है। एक ओर तो कुछ लोग अपने यहां अत्यधिक अन्न जमा रखते हैं जो सड़ जाता है और दूसरी ओर कुछ लोग अन्न के विना हाहाकार करते है। एक ओर पेटियों में भरे हुए वस्त्र पड़े-पड़े सड़ रहे हैं और दूसरी ओर लोग ठंड से मर रहे हैं। एक ओर कुछ लोगों के पास इतनी अधिक भूमि है कि जिस में कृषि करना उनके लिए बहुत कठिन है और दूसरी ओर कई लोगों को जमीन का थोड़ा सा टुकड़ा भी नहीं मिलता जिस पर खेती करके अपना पेट पाल सकें। कुछ लोगों के पास रुपयों का इतना अधिक संग्रह है कि उसे जमीन में गाड़ रखा है या तिजोरियों में बंद कर रखा है और दूसरी ओर लोग पैसे-पैसे के लिए तरस रहे हैं। इस विपम स्थिति के कारण रूस में कम्युनिज्म (साम्यवाद) का जन्म हुआ है। वस्तुतः किसी भी समाज या देश के लिए यह विपम परिस्थिति असह्य ही होती है। जिस व्यक्ति ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है उसे कम से कम से यह तो जन्म सिद्ध अधिकार होता है कि वह भर पेट भोजन खा सके, पर्याप्तवस्त्रों से वदन ढँक सके और रहने के लिए सुविधामय स्थान प्राप्त हो। वही राज्य सुराज्य या स्वराज्य है जिसमें प्रत्येक प्राणी को इस प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हों। परन्तु ऐसा सुराज्य आज कहीं दिखाई नहीं देता है इस का कारण यह परिग्रह-भावना ही है।

परिग्रह की भावना से पाप की परम्परा चलती है। परिग्रह के वश में पड़ा हुआ प्राणी संग्रह करके ही नहीं रुक जाता है परन्तु वह अपने किये हुए संग्रह की रक्षा के लिए या और संग्रह करने के लिए साम्राज्यवाद को जन्म देता है। इससे साम्राज्यवाद रूपी राक्षस पैदा होता है जिसके दांतों के नीचे करोड़ों मनुष्य पिस जाते हैं। करोड़ों मनुष्यों की स्वाधीनता लूट ली जाती है, उन्हें पशुओं की तरह परतंत्र रहना पड़ता है। संसार के कई देश पराधीन वनाये जाते हैं और अमानुषिक अत्याचारों के वल पर उनका

व्यापार नष्ट कर दिया जाता है। अफ्रिका और भारत पर विदेशियों द्वारा ढाये गये अत्याचार इसके उदाहरण हैं। तात्पर्य यह है कि पूंजीवाद के विकास के लिए साम्राज्यवाद होता है और बड़े बड़े साम्राज्यों का संचालन पूंजीवाद द्वारा हो रहा है। इस पर से यह प्रतीत हो जाता है कि परिग्रह क्यों पाप है। यह भयंकर से भयंकर पापों को जन्म देता है। इस लिए शास्त्र कारों ने परिग्रह को पाप और बन्धन का प्रधान कारण बताया है।

शास्त्रकार जहाँ परिग्रह से दुःख का होना प्रतिपादित करते हैं वहां हम देखते हैं कि संसार में सर्वत्र परिग्रह को ही सुख का एक मात्र साधन समझा जा रहा है। येन केन प्रकारेण धन संग्रह करने में ही मनुष्य ने सुख समझ रखा है। और इसके लिए ही संसार में धमाचौकड़ी मची हुई है। मनुष्य दुःखों की परवाह न करता हुआ धनोपार्जन में मशगूल हो रहा है। वह धन के लिए बड़े २ पर्वतों को लांघता है, समुद्र यात्रा करता है, विदेशों में भटकता है, नये नये कल कारखाने खोलता है और न जाने क्या क्या करता है। सांसारिक सुखोपभोग के साधनों को अधिक से अधिक संगृहीत करना, यही आज कल के मानव का लक्ष्य बिन्दु हो रहा है। यह तो स्पष्ट है कि इसके मूल में यह धारणा कार्य कर रही है कि इन बाह्य साधनों में ही सुख रहा हुआ है।

अपनी मानी हुई इस भ्रान्त धारणा के कारण मनुष्य सारी शक्ति लगा कर धन-दौलत, सोना-चाँदी, मोती-माणक-हीरे, बंगले, मोटर, बाग-बगीचे आदि जुटाने के लिए प्रयत्न करता है। वह इनमें सुख के दर्शन करना चाहता है परन्तु अफसोस है कि इन सब सामग्रियों के मिल जाने पर भी वह सुख से वंचित रहता है। जैसे-जैसे पदार्थों की प्राप्ति होती जाती है वैसे वैसे इच्छाओं और आकांक्षाओं का विस्तार होता जाता है। इसलिए पदार्थ-प्राप्ति में सुख का अनुभव नहीं होता अपितु अप्राप्त पदार्थ की कामना और उसका अभाव पीड़ित करता रहता है। यही परम्परा चलती रहती है और इच्छाओं का गुलाम बना हुआ व्यक्ति कभी सुख की झाँकी भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इस लिए कहा गया कि „इच्छा हु आगाससमा अणन्ता" इच्छा आकाश के समान अनन्त है। उसकी पूर्ती कदापि नहीं हो सकती। जिस प्रकार चालनी जल से कभी नहीं भरी जा सकती है इसी तरह इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो

सकती हैं। इच्छाओं की पूर्ति करके सुख पाने का प्रयत्न करना चालनी को जल से भर देने के प्रयत्न के समान निष्फल है।

संसार के समस्त अनुभवी मनीषी महर्षियों ने अपने ठोस ज्ञान के आधार पर यह सत्य तत्व प्ररूपित किया है कि यदि तुम्हें सुख की इच्छा है तो उसे कहीं बाहर न खोजो। वह बाह्य-वस्तुओं में नहीं है। वह है तुम्हारे अन्तरंग स्वरूप की प्रतीति में। उसे अपने अन्दर खोजो उसका साक्षात्कार करना चाहते हो तो आत्मदर्शन करो। वहीं तुम्हें सुख का स्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होगा। आत्मदर्शन करने के लिए यह भ्रान्ति मन से दूर करनी होगी कि सुख बाह्य पदार्थों में है। जब तक यह भ्रान्ति बनी रहेगी तब तक आत्मदर्शन नहीं हो सकता और आत्मदर्शन के बिना सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः बाह्य पदार्थों का मोह दूर करना—अपरिग्रही होना ही सुख और शान्ति का एक मात्र उपाय है। अपरिग्रह ही शान्ति का मूल है सुख का स्रोत है इसी लिये जैनधर्म ने अपरिग्रह को व्रतों में प्रधान स्थान दिया है।

आत्म शान्ति के साथ ही साथ विश्व में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए भी अपरिग्रह सिद्धान्त का पालन करना आवश्यक है। आज विश्व का वातावरण इतना संक्षुब्ध और अशान्त हो रहा है, युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं, साम्यवाद और साम्राज्यवाद का संघर्ष भयानक स्थिति पर पहुँच रहा है, और सारे विश्व में अशांति की ज्वाला धधक रही है इसका कारण मानव की अमर्यादित महत्वकांक्षा और लोलुपवृत्ति है। धनदौलत का लोभ, जमीन का लोभ, अधिकार की भावना और एकाधिपत्य के मोहने मानव मस्तिष्क को अशान्त कर रखा है। उसकी सारी शक्ति दूसरों के अपने अधीन करने के लिए संहारक शस्त्रास्त्रों का निर्माण में लगी हुई है। परमाणु बम के बाद उद्जन बम के आविष्कार ने दुनिया को और भी अधिक भयभीत बना दिया है। जब तक मानव अपनी इच्छाओं पर अंकुश नहीं लगा लेता है तब तक यह अशान्ति बनी रहने वाली है। जब तक दुनिया के राजनैतिक अथवा आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक विषमता बनी रहेगी तब तक क्रांतियाँ अवश्यंभावी हैं और तब तक दुनिया को संघर्ष की आग में झुलसना पड़ेगा। इस विषमता का कारण परिग्रह वृत्ति है।

यह मानना पड़ेगा कि एक ओर पहाड़ होगा तो दूसरी ओर खाई होगी। विश्व की सम्पत्ति जब एक जगह ढेर के ढेर रूप में संगृहीत होगी तो दूसरी तरफ उसका अभाव होगा। यह परिस्थिति शान्ति के लिए अत्यन्त भयावह है।

शरीर के आरोग्य के लिए यह आवश्यक है कि खून कहीं एक जगह एकत्रित न होकर सारे शरीर में प्रवाहित होता रहे। यदि खून कहीं एक जगह एकत्रित हो जाता है तो शरीर के दूसरे अवयव भी अशक्त हो जाते हैं और वह अवयव भी बेकार हो जाता है। इस तरह सारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है। इसी तरह संसार के शरीर में धनरूपी खून का दौरा समान रूप से होने पर ही उसका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। वह धन यदि कहीं इकट्ठा हो जाता है तो दूसरे लोग निर्धन हो जाते हैं और एकत्रित धन भी बेकार हो जाता है। इस लिए यह आवश्यक है कि धन का कहीं अमर्यादित संग्रह न हो। समाजवाद और साम्यवाद का भी यही सिद्धांत है। विश्व शांति के लिए इस सिद्धांत के पालन की अनिवार्य आवश्यकता है। जैनधर्म 'अपरिग्रहवाद' के द्वारा यही बात सिखाता है।

जो व्यक्ति संसार के समस्त पदार्थों पर से अपना ममत्व हटा लेता है और केवल आत्म साधना के लिए—जीवन निर्वाह के लिए अपनी कल्प मर्यादा के अनुसार अल्प से अल्प बाह्य साधन ग्रहण करता है वह अपरिग्रही है। अपरिग्रही होने के लिए मूर्छा का त्याग आवश्यक है। साधु, वस्त्र-पात्र आदि रखते हुए भी मूर्छा न होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं। पास में कुछ भी न होने पर भी यदि चित्त में लालसा है तो वहां परिग्रह है। परिग्रह का सम्बन्ध अन्तवृर्तियों में रही हुई आसक्ति से है। अतः आसक्ति का त्याग करना चाहिये। जैनधर्म ने अनगार साधुओं के लिए सर्वथा अपरिग्रही होना आवश्यक बताया है और गृहस्थों के लिए परिग्रह की मर्यादा करने और इच्छा का परिणाम करने का व्रत बताया गया है। यह परिग्रह परिमाण व्रत कहलाता है। गृहस्थ को निम्नलिखित वस्तुओं के परिग्रह की मर्यादा करनी चाहिए:—(१) धन और धान्य (२) सोना चांदी आदि (३) मकान, जमीन, जागीर आदि (४) नौकर-चाकर और पशु प्राणी और (५) घर के दूसरे

सामान। उक्त वस्तुओं की यावज्जीवन के लिए मर्यादा निश्चित कर लेनी चाहिये इस व्रत के साथ ही साथ जैन गृहस्थ भोगोपभोग के पदार्थों की भी मर्यादा करता है। इस मर्यादा का यदि विवेक पूर्वक ध्यान रखा जाय तो संसार में होने वाले संघर्ष का अन्त हो सकता है। आज दुनिया की सबसे बड़ी समस्या यह है कि एक तरफ करोड़ों लोगों के सामने रोटी का सवाल है जब कि दूसरी तरफ धन और साम्राज्य की अमर्याद महत्वाकांक्षा। इस समस्या का हल भगवान् महावीर के अपरिग्रह व्रत के पालन में है। इस सिद्धांत का अनुशीलन ही विश्व शांति का वास्तविक साधन हो सकता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप व्रतों की पुष्टि के लिए, गृहस्थ साधक के लिए ३ गुण व्रत और ४ शिक्षा व्रतों का विधान जैन धर्म ने किया है। उनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है:—

अणुव्रतों का पोषण करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहते हैं। इन गुण व्रतों में प्रथम गुणव्रत दिक्परिमाण व्रत है। इसमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, उर्ध्व और अधोदिशा में गमनागमन करने की मर्यादा की जाती है। सब दिशाओ में चारों ओर जीव हैं। अनेक तरह से इन दिशाओं में रहे हुए जीवों के प्रति पाप होता है। इसलिए इससे बचने के लिए क्षेत्र की मर्यादा बांधी जाती है। इस बाँधी हुई मर्यादा से बाहर जाकर हिंसादिपाप कर्मों का त्याग किया जाता है। क्षेत्र मर्यादा कर लेने से उससे बाहर होने वाले आरम्भ समारम्भों से सहज ही बचाया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि गमागमन की मर्यादा कर लेने से लोभ वृत्ति पर भी सहज अंकुश लग जाता है। तात्पर्य यह है कि यह दिग्व्रत अहिंसा और परिग्रह-परिमाण व्रत को पोषण देता है।

दिक्परिमाण व्रत

आनन्दभोग के साधन असंख्य हैं। कितनेक पदार्थ एक बार काम में लिये जा सकते हैं और कितनेक पदार्थ अनेक बार भी काम में आते है। जो पदार्थ एक बार काम में आता है वह भोग कहा जाता है जैसे अन्न, माला आदि। जो पदार्थ अनेक बार भी काम में आते हैं वे उपभोग कहे जाते हैं जैसे वस्त्र, भूषण आदि। भोगोपभोग के साधनों से आसक्ति को परिग्रह को और

भोगोपभोग परिमाण व्रत

हिंसा को उत्तेजन मिलता है अतः गृहस्थ को इनकी मर्यादा करनी चाहिए। यह मर्यादा एक दिन या अमुक समय के लिए भी की जा सकती है। इस भोगोपभोग की मर्यादा को भोगोपभोग परिमाण व्रत कहते हैं। इस व्रत के आराधन से आसक्ति कम होती है, त्यागभावना बढ़ती है और अहिंसा की भावना प्रबल बनती है। इस व्रत की आराधना से आत्मिक लाभ के साथ ही साथ समष्टिगत-सामाजिक-कर्त्तव्य का भी पालन होता है। इस दृष्टि से इस व्रत का विशेष महत्त्व है।

इसके अतिरिक्त दुनिया में कई अभक्ष्य पदार्थ खाने-पीने के काम में लिये जाते हैं, उनका विवेकी गृहस्थ को सर्वथा परित्याग करना चाहिए। मद्य, मांस, मधु, उम्बर आदि फल अनन्तकाय—कन्दमूलादि-अज्ञातफल, रात्रि भोजन, कच्चे दूध-दही या छाछ के साथ मिला कर दाल का खाना, वासीअन्न दो दिन से अधिक दिन का दही और रस चलित अन्न का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

भोगोपभोग परिमाण व्रत दो प्रकार का है:— (१) भोजन सम्बन्धी और (२) व्यापार सम्बन्धी। भोजन सम्बन्धी व्रत का स्वरूप ऊपर बताया गया है। व्यापार सम्बन्धी व्रत इस प्रकार है:—

गृहस्थ अपनी आजीविका के साधन का चुनाव करते हुए इसबात का ध्यान रखता है कि वह साधन महारम्भ-निष्पन्न (अधिकहिंसक) न हो। जिस व्यापार में अधिक हिंसा होती हो ऐसा व्यापार गृहस्थ को नहीं करना चाहिए। शास्त्रकारों ने पन्द्रह ऐसे व्यापार बताये हैं जो महापाप के कारण होनेसे कर्मादान कहे जातेहैं, जिनका त्याग करना गृहस्थ के लिए आवश्यक है वे पन्द्रह कर्मादान इस प्रकार हैं:— (१) अंगारकर्म (कोयले बनाने का व्यापार) (२) वनकर्म (३) शकट कर्म (४) भाटक कर्म (५) स्फोटक कर्म (६) दन्त वाणिज्य (७) लाक्षा वाणिज्य (८) रस वाणिज्य (९) केश वाणिज्य (१०) विष वाणिज्य (११) यंत्र-पीडन कर्म (१२ निर्लाछन कर्म (१३) दावाग्निकर्म (१४) सरोवरादि परिशोषण कर्म और (१५) असती-पोषण कर्म।

उक्त पन्द्रह कर्मादान कहे गये हैं। इन्हें उपलक्षण समझना चाहिये। इनके समान महाआरम्भवाले व्यवसाय गृहस्थ के लिए वर्जनीय हैं। अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह को लक्ष्य में रखकर व्यवसाय करना चाहिए।

अनर्थ दण्ड विरमण व्रत

मन की विविध प्रकार की वृत्तियां भी हिंसा को प्रेरणा देती रहती हैं। यह मानसिक हिंसा और बिना उपयोग से होने वाली हिंसा गृहस्थ के लिये वर्जनीय है। अप्राप्त भोगों की लालसा, प्राप्त भोगों को टिकाये रखने की चिन्ता, बुरे विचार, कुयुक्तियां आदि के अपध्यान से निष्प्रयोजन हिंसा होती है। कुतूहल से गीत, नृत्य, नाटक-सिनेमा देखना, कामशास्त्र में आशक्ति रखना, द्यूत-मद्य, आदि का सेवन करना, व पशुपक्षियों में परस्पर युद्ध कराना शत्रु के पुत्र-स्त्री आदि से वैर लेना, निरर्थक कथा करना, अत्यधिक निद्रा लेना, घी-तेल आदि वर्तनों को खुला रखना इत्यादि प्रमाद के आचरण से भी हिंसा होती है। पापकर्म का उपदेश देना भी हिंसा है। हिंसक शस्त्रास्त्रों और उपकरणों को अन्य को देना भी हिंसा का कारण है। उक्त निष्प्रयोजन हिंसाओं का परित्याग करना चाहिए। यह अनर्थ दण्ड विरमण व्रत है। यह अहिंसा व्रत को पुष्टि प्रदान करने वाला गुणव्रत है।

सामायिक व्रत

समता भावके विकास और अभ्यास के लिए, लिये हुए व्रतों की स्मृतिको ताजी रखनेके लिए, अनात्मभाव पर आत्मभाव की विजय सिद्धि के लिए तथा आत्मचिन्तन के लिए प्रतिदिन ४८ मिनट तक एकान्त शान्त स्थान में बैठकर सब प्रकारके पापमय व्यापारोंका परित्याग करना सामायिक व्रत है। ईश्वरोपासना और आत्मोपासना का यह उत्कृष्ट साधन है। आत्मा का साक्षाकार करने और उसकी अनुपम विभूति के दर्शन करने का यह चमत्कारिक प्रयोग है। यह बाह्य संसार के अशान्त वातावरण से दूर होकर अन्तर्जगत् के सुरम्य नन्दन वन में विहार करने का प्रवेश द्वार है। अशान्ति की ज्वालाओं से जलते हुए जीवों को शान्ति प्रदान करने के लिए यह शीतल मन्दाकिनी है।

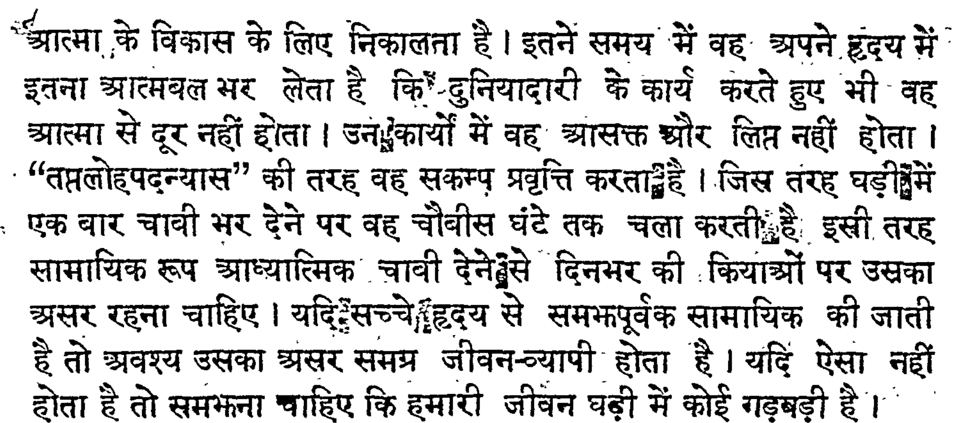
सामायिक की महिमा अपार है। यह वह अनमोल रत्न है जिसकी कीमत नहीं हो सकती। सारी दुनियां की सम्पत्ति की एकत्रित राशि से भी

इसका मोल नहीं हो सकता है। मगध का सम्राट श्रेणिक अपनी अपरिमित धनराशि से भी पूणिया श्रावक की एक सामायिक का मोल कर सकने में असमर्थ रहा। जिसने इस व्रत की साधना के द्वारा आत्मा के अनुपम सौन्दर्य और अलौकिक ऐश्वर्य का अनुभव कर लिया होता है वह संसार की समस्त सम्पत्ति को तृणतुल्य तुच्छ समझता है। आत्मा के ऐश्वर्य के सामने जड़ ऐश्वर्य का क्या मोल? हीरे के आगे काच की क्या कीमत? मोती के सामने गुंजाफल की क्या बिसात?

सम्पूर्ण सामायिक व्रती के जीवन में पाप-प्रवृत्ति होती ही नहीं। वह अहिंसा और सत्य का पूरा पुजारी होता है। इसे शास्त्रीय भाषा में 'परिपूर्ण सामायिक-चारित्र' कहते हैं। जो व्यक्ति ऐसा परिपूर्ण सामायिक चारित्र अंगीकार नहीं कर सकता है उसे उपर्युक्त अल्पकालीन सामायिक व्रत स्वीकार करना चाहिए। अल्पकालीन व्रत स्वीकार से भी जीवन में शान्ति का अनुभव होने लगता है तो यावज्जीवन सामायिक व्रत के स्वीकार से मिलने वाली शान्ति का क्या कहना।

मनुष्य का मन सदा एक सी स्थिति में नहीं रहता। उसकी विचार शक्ति सदा एक सा काम नहीं देती। इसलिए प्रलोभनों और संकटों के समय कार्याकार्य का बराबर निर्णय नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में अपनी दृढता को कायम रखने के लिए ऐसे व्रतों की आवश्यकता होती है। प्रतिदिन चिन्तन, मनन, वाचन और मन्थन के लिए नियमित रूप से थोड़ा समय निकालने से मानसिक दृढता बढ़ती है, विचार शक्ति का विकास होता है और विकारों का शमन होता है। सामायिक व्रत की इस दृष्टि से भी अत्यधिक उपयोगिता है।

गृहस्थ को अपने दैनिक जीवन व्यवहार में विविध प्रवृत्तियाँ करनी पड़ती हैं। उसका जीवन प्रायः प्रपञ्चमय होता है। अतः उसके लिए यह आवश्यक है कि वह थोड़ा समय ऐसा निकाले जिसमें वह अपने आध्यात्मिक जीवन का पोषण कर सके। दुनियादारी के कार्यों के लिए इतना समय निकाला जाता है तो आत्मिक कार्य के लिए ४८ मिनट का समय निकालना क्या अनिवार्य नहीं होना चाहिए? विवेकशील गृहस्थ अवश्य इतना समय



आत्मा के विकास के लिए निकालता है। इतने समय में वह अपने हृदय में इतना आत्मबल भर लेता है कि दुनियादारी के कार्य करते हुए भी वह आत्मा से दूर नहीं होता। उन कार्यों में वह आसक्त और लिप्त नहीं होता। "तप्तलोहपदन्यास" की तरह वह सकम्प प्रवृत्ति करता है। जिस तरह घड़ी में एक बार चावी भर देने पर वह चौबीस घंटे तक चला करती है इसी तरह सामायिक रूप आध्यात्मिक चावी देने से दिनभर की क्रियाओं पर उसका असर रहना चाहिए। यदि सच्चे हृदय से समझपूर्वक सामायिक की जाती है तो अवश्य उसका असर समग्र जीवन-व्यापी होता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो समझना चाहिए कि हमारी जीवन घड़ी में कोई गड़बड़ी है।

सामायिक व्रत का उद्देश्य यही है कि प्रतिदिन के अभ्यास से इतना आत्म-बल विकसित हो जाय—इतना समभाव पैदा हो जाय कि वह आत्मा दुनियादारी की प्रवृत्तियों को करते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि से हीन और क्षीण न हो। उसके आत्मिक और व्यावहारिक जीवन में असंगति न हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह स्थिति प्राप्त करना साधारण बात नहीं है। समभाव की साधना करना बच्चों का खेल नहीं है तो भी इसे प्राप्त करने का पुनः पुनः प्रयास करना चाहिए। इसीलिए यह व्रत शिक्षा व्रत कहा जाता है। शिक्षा का अर्थ है, अभ्यास। किसी भी विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए उसका पुनः पुनः अभ्यास करना अवश्यक होता है। गणित में निपुण होने के लिए प्रतिदिन कई प्रश्न हल करने होते हैं। सैनिक कृत्यों में दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन कवायद करनी होती है। इसी तरह आत्मिक बल के विकास के लिए, समभाव की साधना के लिए और विकारों की शान्ति के लिए पुनः पुनः अभ्यास की अवश्यकता होती है। इसलिए प्रतिदिन सामायिक रूप आत्मिक अभ्यास करने को कहा गया है इसे शिक्षाव्रत कहने का यही अभिप्राय है।

इस व्रत के समय गृहस्थ साधक भी लगभग त्यागी साधक की कक्षा का हो जाता है, केवल व्यापकता और प्रमाण में अन्तर रह जाता है। इस व्रत में मन-वचन और काया से सावद्य प्रवृत्ति करने-कराने के त्याग हो जाते हैं। इस अवस्था में मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भाव का विकास करना चाहिए। संसार के समस्त प्राणियों के प्रति मित्रता के भाव हों—किसी पर

द्वेष न हो, गुणी एवं साधुजनों को देखकर प्रमोद हो—उनके गुणों के प्रति अनुराग हो, दुःखी जीवों के प्रति हृदय में करुणा का संचार हो और सुख-दुःख में, शत्रु-मित्र में, योग-वियोग में, भवन या वन में समभाव रख सकने का सामर्थ्य हो, ऐसी भावना करनी चाहिए। ऐसा ही विचार, ऐसा ही वाचन और ऐसी ही प्रवृति होनी चाहिए। इस लक्ष्यको सामने रखकर यदि सामायिक व्रत स्वीकार किया जाय तो निस्संदेह आत्मा का अभ्युत्थान हो सकता है।

दिग्व्रत में आजीवन के लिए दसों दिशाओं में जाने-आने की मर्यादा की जाती है, उसमें बहुत विस्तृत क्षेत्र रखा जाता है। प्रति दिन उतने विस्तृत क्षेत्र में गमनागमन करने का प्रसंग नहीं आता है। अतः देशावकाशिक व्रत दिग्व्रत में रखे हुए क्षेत्र को एक दिन-रात के लिए यथा शक्य संक्षिप्त करना देशावकाशिक व्रत है। सातवें व्रत में द्रव्यादि के भोगोपभोग की जो मर्यादा की है उसके अन्दर रहते हुए उस दिन के लिए भोगोपभोग के साधनों को और भी संक्षिप्त किया जाता है। इस तरह यह व्रत ६–७ वें व्रत में खुली रही हुई मर्यादा को अमुक काल के लिए संक्षिप्त करने वाला व्रत है। इस व्रत के द्वारा मर्यादित क्षेत्र से बाहर होने वाले आस्रव और आरम्भ से बचाव होता है और लोभ, स्वार्थ, द्रोह अधिकार एवं सत्ता के विस्तार की भावना पर अंकुश लगता है। क्षेत्रमर्यादित होने से पाप-प्रवृत्ति भी मर्यादित हो जाती है।

पौषधोपवास व्रत

पर्व तिथियों के दिन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य–यों सब प्रकार के आहार का त्याग करना (निर्जल अनशन करना) स्नान, विलेपन-गंध, पुष्पमाला, अलंकार आदि का त्याग करना, अब्रह्म का सर्वथा त्याग करना, सावद्यप्रवृत्ति का सर्वथा परित्याग करना और आठों प्रहर धर्मचिन्तन करके आत्मा को पुष्ट करना पौषधोपवास व्रत कहलाता है। इस व्रत के आराधन से आत्मधर्म को प्रबल पुष्टि मिलती है, आत्मा के साथ पूरा सान्निध्य होता है और बहिर्मुखता कम होकर आत्माभिमुखता का विकास होता है। अधिक न बन सके तो अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, और अमावस्या को—महीने में चार दिन—पौषध करना ही चाहिए। यदि इतना भी न बन सके तो जितने शक्य हों उतने पौषध करने का व्रत लेना चाहिए।

अतिथि संविभाग व्रत

गृहस्थ में दान भावना का होना धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से अनिवार्य है। गृहस्थ यदि अपना और अपने परिवार का ही पालन करने वाला स्वार्थी हो तो वह पशुओं से उच्च, मानव कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता है। स्वार्थ की भावना को कम करने और परमार्थ की भावना का विकास करने के लिए गृहस्थ में दान का गुण अवश्य होना चाहिए। इसलिए इस व्रत में दान को स्थान दिया गया है।

जैनधर्म के धार्मिक आचारों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनमें से प्रत्येक व्रत में—आचार में अहिंसा और आत्मसंयम की गहरी भावना है। इसकी निर्मल आराधना में शाश्वत कल्याण अन्तर्हित है।



जैन तत्वज्ञान

भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वह दर्शन परम उच्चकोटि का और सर्वांग-सम्पन्न है। इसमें गंभीर तत्व-चिंतन है, अध्यात्मका सुन्दर निरूपण है, विश्वविद्या की विस्तृत विचारणा है और आत्मा-परमात्मा की तर्क-संगत मीमांसा है। इसमें न्याय विद्या और तर्क-विद्या का पर्याप्त विकास हुआ है।

प्रास्ताविक

तत्वज्ञान के सब अंगों का जितना व्यवस्थित विवेचन इस दर्शन में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि प्राचीन युग के तत्व चिन्तन का यदि कोई परिपक्व अमूल्य फल है तो वह जैन दर्शन है। जैन तत्वज्ञान इतना गहन, तलस्पर्शी और वैज्ञानिक है कि कोई भी निष्पक्ष विचारक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। जिन जिन विद्वानों ने पूर्वग्रह रहित होकर इसका अध्ययन किया है वे इसकी यथार्थ विचार-शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।

जैन दर्शन एक सर्वथा मौलिक दर्शन है। इसकी विचार पद्धति भी नितान्त मौलिक है। यद्यपि कतिपय विषयों में अन्यान्य दर्शनों से इसकी समानता है तदपि इसमें ऐसे विशिष्ट तत्त्व विद्यमान हैं जो इसकी स्वतंत्र विचार सरणी के प्रतीक हैं।

चिरन्तन काल से विश्व के समस्त विचारकों के लिए यह दृश्यमान विश्व एक गूढ पहेली रूप रहा है। इसके सम्बन्ध में नाना प्रकार के प्रश्न विचारकों के मस्तिष्क में उठते हैं। यह विश्व क्या है ? इसका निर्माण किसी ने किया है या यह शाश्वत है ? इस विश्व में दिखाई देने वाले पदार्थों के अतिरिक्त भी किन्ही अदृष्ट तत्वों की सत्ता है या नहीं ? ईश्वर है या नहीं ? यदि है तो उसका स्वरूप क्या है ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं ? यदि है तो उसका स्वरूप क्या है ? आत्मा और परमात्मा का क्या सम्बन्ध है ? विश्व में दिखाई देने वाले सुख-दुख का हेतु क्या है ? जगत वैचित्र्य का क्या कारण है ? मानव के जीवन का लक्ष्य-बिन्दु क्या है ? इत्यादि नाना प्रकार के प्रश्नों से ही तत्वविद्या का प्रारम्भ हुआ है। इन रहस्यों को जानने की अभिलाषा से ही तत्वविद्या का उद्गम हुआ है। यही तत्वज्ञान का विषय है।

संसार के विभिन्न विचारकों ने इन प्रश्नों के सम्बन्ध में अपने २ विचार प्रकट किये हैं। इन विचारकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह जाना जा सकता है कि कौन विचारक उक्त प्रश्नों का बुद्धिगम्य सुन्दर समाधान करता है। उक्त प्रश्नों के सम्बन्ध में जैन दर्शन का क्या दृष्टिकोण है, वह इनका क्या समाधान करता है, यह अन्य दर्शनों के साथ तुलना करते हुए संक्षेपसे इस प्रकरणमें स्पष्ट करनेका प्रयास किया जाता है:—

जन-दृष्टि से विश्व

जैन दृष्टि के अनुसार यह चराचर विश्व जड़ और जीव का—चेतन और अचेतन का—त्रिविध परिणाम मात्र है। ये दो तत्व ही समग्र विश्व के मूलाधार हैं। इन दोनों का पारस्परिक प्रभाव ही विश्व का रूप है। ये दोनों तत्व अनादि और अनन्त हैं। न कभी इनकी आदि हुई है और न कभी इनका निरन्वय विनाश होगा। इसलिये यह विश्व-प्रवाह अनादि-अनन्त है। यह पहले भी था, अब भी है और भविष्य में भी रहेगा। ऐसा कोई अतीत कालीन क्षण

नहीं था जिसमें विश्व का अस्तित्व न हो, और ऐसा कोई भावी क्षण नहीं होगा जिससें इस विश्व का अस्तित्व न रहेगा। यह सदा से हैं और सदा रहेगा। यद्यपि यह विश्व प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनन्त और शाश्वत है तदपि यह कूटस्थ नित्य नही है। इसमें प्रतिक्षण विविध परिवर्त्तन होते रहते हैं। विश्व का कोई भी पदार्थ कभी एक सी अवस्था में नह रहीं सकता है। उसमें प्रतिपल परिवर्त्तन होता रहता है; इसलिए यह विश्व परिणामी है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि कोई भी पदार्थ निरन्वय नष्ट नहीं होता और सर्वथा नवीन भी उत्पन्न नहीं होता है परन्तु उसका परिणाम होता रहता है। अर्थात् उसकी अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है। विश्व के सम्बन्ध में भी जैन दर्शन का यही मन्तव्य है कि यह कभी नवीन उत्पन्न नहीं हुआ और कभी इसका सर्वथा विनाश भी नहीं होता है। यह अनादि अनन्त होते हुए भी परिणमन-शील है। जड़ और चेतन की स्वतंत्र और परस्पराश्रित प्रवृत्ति से संसार का व्यवस्थित संचालन होता रहता है।

विश्व की रचना के सम्बन्ध में दुनिया के दार्शनिकों में अनेक तरह के विचार-भेद पाये जाते हैं। इस विषय में जितने २ विचार हो सकते हैं वे सब भारतीय दर्शन परम्परा में पाये जाते हैं। जीव, ईश्वर और प्रकृति के स्पष्ट भेद को मानने वाले एकेश्वरवाद से लेकर "यह विश्व तो स्वप्न तुल्य मिथ्या है—असत् है केवल ईश्वर ही सत् है इस प्रकार के मायावाद तक के विविध मतों का इस भारतीय दर्शन परम्परा में विकास हुआ है। इसमें से मुख्य २ मतों का यहाँ उल्लेख किया जाता है:—

सृष्टि कर्तृत्व वाद

"ग्रह-नक्षत्रों से सुशोभित इस अनन्त विश्व का कोई निर्माता अवश्य होना चाहिए। इस निर्माणकर्त्ता की आज्ञा से ही नियमित रूप से सूर्य-चन्द्र का उदय और अस्त होता है इसकी आज्ञा को मान कर ही वायु निरन्तर बहती रहती है, वर्षा होती है, पशु-पक्षी-तरु-लता-जीव-जन्तु नव जीवन पाते हैं और समय-समय पर शीत-उष्णता आदि ऋतुएँ अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। सृष्टि के आंगन में जो नियमबद्धता दृष्टिगोचर होती है, जो व्यवस्था दिखाई देती है और जो वैचित्र्य एवं नवीनता मालूम होती है वह किसी सर्जनहार के बिना नहीं

हो सकती है। इसलिए इस विश्व का कोई सृष्टा अवश्य होना चाहिए।" यह मान्यता न्यायदर्शन की है। वैशेषिकदर्शन भी इससे सहमत है। विविध वैष्णव और शैव सम्प्रदाय इस मान्यता के अनुयायी हैं। इसके अनुसार वे जगत् का युग युग में नवीन उत्पन्न होना और लय होना स्वीकार करते हैं। उनके मत से युग के आरम्भ में ईश्वर नवीन सृष्टि का सृजन करता है और युगान्त में उसका संहार करता है। इस वाद के अनुसार यह विश्व सादि और सान्त है।

पाश्चात्य सृष्टावाद

पाश्चात्य दर्शनों में भी इस प्रकार का सृष्टवाद है जो "थिइज्म" कहलाता है। इसके प्रतिपादन में वे इस प्रकार कहते हैं कि—"एक घड़ी को लीजिए। उसकी सूइयाँ और पुर्जे कितने नियमित रूप से अपना २ काम करते रहते हैं। इसे देखकर यह अवश्य ध्यान में आता है कि इस यंत्र का बनाने वाला कोई न कोई बुद्धिमान अवश्य है। इसके बिना यह यंत्र नहीं बन सकता है। घड़ी को देख कर उसके बनाने वाले की कल्पना हुए बिना नहीं रह सकती है। अच्छा, थोड़ी देर के लिए इस असीम-अनन्त आकाश की तरफ दृष्टिपात करो, इसमें कितने-कितने ग्रह-नक्षत्र अपनी २ मर्यादा में रह कर व्यवस्थित रूप से विचरण करते हैं। आकाश को ही नहीं, अपनी पृथ्वी को भी देखो। यह पृथ्वी एक दिन आग के गोले के समान थी। इस पर न जाने कितने संस्कार हुए तब यह मनुष्यों और प्राणियों के रहने के योग्य हुई। इस पर पैदा होने वाले अंकुर पत्र, पुष्प, फल, वृक्ष आदि के विकास-क्रम को देखो। क्या इस अविच्छिन्न विकास-क्रम में तुम्हें किसी परम बुद्धिशाली का हाथ नहीं मालूम होता है? मनुष्य और पशुपक्षियों के अंगोपाङ्गों को देखो, उनकी रचना में कितनी सूक्ष्मता से काम लिया गया है! वह कितनी अद्भुत है! इन सब की रचना करने वाला कोई बुद्धिमान रचयिता होना चाहिए। वह ईश्वर ही है। उस ईश्वर की अनन्त करुणा जगत्सृष्टि के रूप में प्रकाशित हो रही है।

भारतीय न्याय-वैशेषिक दर्शन परम्परा भी इसी से मिलती-जुलती युक्तियाँ उपस्थित करती हैं। उनकी प्रधान युक्ति यह है —

यह संसार एक कार्य है। पृथ्वी, पर्वत आदि कार्य हैं और निमित्त

वश ये उत्पन्न होते हैं। चूंकि ये निमित्त से उत्पन्न होते हैं इसलिए इनका कोई कर्त्ता अवश्य होना चाहिए। जैसे घड़ा निमित्त से उत्पन्न होने वाला है तो उसका बनाने वाला कुम्हार होता है इसी तरह पृथ्वी, पर्वत आदि कार्य हैं—निमित से उत्पन्न होने वाले हैं इसलिए इनका भी कोई बनाने वाला अवश्य होना चाहिए। पृथ्वी, पर्वत आदि कार्य हैं क्योंकि ये सावयव हैं-छोटे छोटे परमाणुओं की रचना है। परमाणुतो स्वयं अचेतन हैं इसलिए इनका संयोजक कोई चेतनाविशिष्ट बुद्धिमान कर्त्ता होना चाहिए। यह बुद्धिमान् कर्त्ता ईश्वर ही है। वह करुणावश सृष्टि की रचना करता है।

न्यायदर्शन की इस युक्ति पर विचार करना चाहिए कि यह कहां तक ठीक है। जैनाचार्यों ने इसका प्रबल विरोध किया है। यह संसार एक कार्य है, यह बात जैन दर्शन नहीं मानता। नैयायिक स्वयं भी यह मानते हैं कि द्रव्य की अपेक्षा यह नित्य है। पृथ्वी को वे भी 'नित्या परमाणु रुपा अनित्या कार्य रूपा' मानते हैं। पर्याय की अपेक्षा उत्पाद-विनाश होने मात्रसे कोई वस्तु कार्य रूप नहीं मानी जा सकती है। आत्मा में भी विविध परिणमन होता है, वह अवस्थान्तर को प्राप्त होने मात्र से कोई कार्य मान लिया जाय तो ईश्वर को भी कार्य मानना पड़ेगा क्योंकि उसके द्वारा किये जानेवाले सृष्टिसर्जन, संहार आदि से उसमें भी अवस्थान्तर की प्राप्ति तो होती ही है। ईश्वर को कार्य मानने पर उसके कर्त्ता की भी कल्पना करनी पड़ेगी। इस तरह यह परम्परा अनवस्था दोष का कारण होगी। इसलिए नैयायिकों ने जो जगत् को कार्य माना है और उसका कर्त्ता ईश्वर को बतलाया है, यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता।

ईश्वर कर्तृत्ववादी ईश्वर को अशरीरी दयालु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, नित्य और सम्पूर्ण मानते हैं। यदि ईश्वर को जगत्कर्त्ता माना जाता है तो उसके उक्त विशेषणों में बाधा उपस्थित होती है। ईश्वर यदि सृष्टि का निर्माण करता है तो उसे शरीर युक्त होना ही चाहिये। अशरीरी ईश्वर इस मूर्त्त संसार का निर्माण किस तरह कर सकता है? यदि यह कहा जाय कि ईश्वर समर्थ है इसलिए शरीर की कोई आवश्यकता नहीं वह अपने ज्ञान चिकर्षा (करने की इच्छा) और प्रयत्न के द्वारा निर्माण कर सकता है। इसके उत्तर में जैनाचार्य कहते हैं कि शरीर के बिना चिकीर्षा और प्रयत्न कैसे सम्भव हो सकते हैं। मुक्तात्मा की तरह यदि ईश्वर अशरीर है तो उसमें

प्रयत्न और चिकीर्षा कैसे रह सकते हैं? जहाँ इच्छा और प्रयत्न है वहाँ पूर्णता भी कैसे मानी जा सकती है? इसलिए ईश्वर को कर्त्ता मान लेने पर उसे सशरीरी भी मानना पड़ेगा। सशरीरी होने पर वह संसारी जीव जैसा सामान्य हो जाएगा। वह ईश्वर ही न रहेगा। यह बात कर्त्तव्य वादियों को इष्ट नहीं है।

'करुणा से प्रेरित होकर ईश्वर सृष्टि की रचना करता है' यह कथन भी मिथ्या ठहरता है। यदि ईश्वर सचमुच दयालु है और सर्व शक्तिमान भी है तो उसने इस दुःखमय सृष्टि की रचना क्यों की? क्यों न उसने एकान्त सुखी और समृद्ध विश्व की रचना की? सारे संसार का अवलोकन करो, कहीं सुख-शान्ति की छाया भी नहीं दिखाई देती। रोग, शोक, वियोग, संघर्ष, भूकम्प, उल्कापात, युद्ध, मृत्यु आदि नाना प्रकार के दुःखों से संसार दुःखी है। कहीं एक वृद्धा अपने जीवनाधार इकलौते पुत्र की मृत्यु पर विलाप कर रही है, कही एक षोडशी बाला असमय में ही अपने प्राण-प्रिय पति की मृत्यु के कारण पत्थर को पिघला देने वाला करुण क्रन्दन कर रही है, कही असंख्य प्राणि भूख के मारे बिल-बिला रहे हैं, कहीं भयंकर व्याधि फैली हुई है, कहीं युद्ध की ज्वाला में हजारों मानव भस्म हो रहे हैं, कहीं पृथ्वी फट पड़ती है, कहीं अति वृष्टि से परेशानी है तो कहीं वृष्टि का नामो-निशान न होने से भयंकर दुष्काल है? क्या इस प्रकार की सृष्टि किसी करुणामय और शक्ति सम्पन्न की कृति मानी जा सकती है? कदापि नहीं।

ईश्वर राग-द्वेष से रहित और समभावी माना जाता है। क्या राग द्वेष रहित ईश्वर, किसी प्राणी को सुखी और किसी को दुखी बना सकता है? यदि समभावी ईश्वर ने सृष्टि बनाई है तो एक निर्धन, दूसरा धनी; एक स्वस्थ दूसरा रोगी, एक राजा दूसरा रंक, एक स्वामी दूसरा सेवक क्यों है?

उक्त आक्षेपों का उत्तर देने का प्रयत्न करते हुए कर्तृत्ववादी कहते हैं कि:— "जीव जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। जो जैसा बोता है वह वैसा ही फल प्राप्त करता है। प्राणी अपने सुख-दुख के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है। कर्मफल अथवा अदृष्ट के कारण जन्म जन्मान्तर जीव भोगा-

यतन-शरीर आदि प्राप्त कर सुख-दुखादि का अनुभव करता है। ईश्वर दयालु है तदपि जीव को अपने अदृष्ट के कारण दुःख भोगने पड़ते हैं। बात यह है कि महाभूत आदि से देह का निर्माण होता है परन्तु किस प्रकार के भोग के योग्य देह करना यह अदृष्ट पर निर्भर है। महाभूत और अदृष्ट दोनों अचेतन हैं। इस लिए इन्हें सहायता करने के लिए और जीव को इसके कर्मों का फल देने के लिए एक सचेतन सृष्टा की आवश्यकता है यह कार्य ईश्वर करता है।"

इसके उत्तर में जैनाचार्य कहते हैं कि—ईश्वर में करुणा होने पर भी यदि वह जीवों के दुःखों को दूर नहीं कर सकता है और भोगायतन-देहादि का आधार अदृष्ट पर ही होतो फिर ईश्वर को बीच में डालने की आवश्यकता ही क्या है ? क्यों न यही माना जाय कि जीव अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुख पाता है। वह जैसा कर्म करता है उसके अनुसार स्वयं उसका फल प्राप्त कर लेता है। यदि यह कहा जाय कि अचेतन कर्म जीव को फल कैसे दे सकते हैं ? जीव स्वयं अपने अशुभ कर्मों का फल भोगना नहीं चाहता है इस लिए फल देने वाला तो ईश्वर मानना चाहिये। इसका उत्तर यह है कि जीव अपनी राग द्वेष रूप परिणति से कर्मपुद्गलों को अपने साथ सम्बद्ध कर लेता है। उन आत्मसम्बद्ध कर्मपुद्गलों में ऐसी शक्ति प्रकट हो जाती है कि वे जीव को उसके शुभाशुभ कर्मों का फल दे सकते हैं। जैसे नेगेटिव और पोजिटिव तारों में स्वतंत्र रूपसे विद्युत् पैदा करने की शक्ति नहीं है परन्तु जब वे दोनों मिल जाते हैं तो उनसे विद्युत् पैदा हो जाती है इसी तरह स्वतन्त्र कर्मपुद्गलों में जीव को सुख-दुख देने की शक्ति न होने पर भी जब वे आत्मा से सम्बद्ध हो जाते हैं तब उनमें ऐसी शक्ति प्रकट हो जाती है। अतः जीव के शुभाशुभ कर्म ही उसे सुख दुःख का भोग कराने में समर्थ हैं। इसके लिए ईश्वर को बीच में डालने की आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वर को इस प्रपंच में डाला जाता है तो उसके ईश्वरत्व में बाधाएँ आती हैं। ईश्वर का सच्चा स्वरूप नहीं रहने पाता है।

पाश्चात्य दर्शनकारों ने जगत् की नियम बद्धता और व्यवस्था के आधार पर उसे ईश्वरकर्तृक बताया है परन्तु यह भी ठीक नहीं है। यह तो जड़ पदार्थ सम्बन्धी व्यवस्था का फल है। ग्रह-नक्षत्रों का संचरण, प्राणियों

के अंगोपाङ्ग, वृक्ष के अंकुर, पत्र, पुष्प आदि जगत् की व्यवस्था में ईश्वर जैसे किसी व्यक्ति के हस्तक्षेप को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये सब कार्य तो जीव और जड़ पदार्थों के विविध परिणमन के फल मात्र हैं। जीव के विविध प्रकार, उनकी विविध अवस्था और समस्त विश्व में प्रवर्तित सुव्यवस्था को समझने के लिए तो कर्म का अविचल नियम ही पर्याप्त है। कर्मफल के नित्य नियम को तो ईश्वर कर्त्तृत्ववादी भी स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि ईश्वर कर्म के अविचल नियम के अनुसार ही कार्य करता है, वह भी इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता है सो कर्म की सत्ता ही अबाधित एवं सर्वोपरि रही। अतः ईश्वर को इस प्रपञ्च में न डाल कर कर्म की अबाधित सत्ता को ही स्वीकार करना चाहिये।

इस विषय में एक दूसरा प्रश्न पैदा होता है कि ईश्वर ने यह जगत् किसमें से बनाया ? अर्थात् सृष्टि रचना के पहले क्या अवस्था थी ? यदि यह कहा जाय कि सर्व शून्य था। उस शून्य में से ईश्वर के द्वारा इस सृष्टि की रचना की गई। तो यह कथन सर्वथा अयुक्त है क्योंकि शून्य से कोई वस्तु पैदा नहीं हो सकती है। यह सर्व सम्मत तत्व है कि सत् असत् नहीं हो सकता है और असत् कभी सत् नहीं हो सकता है। कहा भी है—

नासतो जायते भावो नाभावो जायते सतः

सर्वथा असत् पदार्थ कभी उत्पन्न नहीं होता और सत् का कभी सर्वथा अभाव नहीं होता। जैसे खर-विषाण असत् है तो वह कभी उत्पन्न नहीं हो सकता है और जो आत्मा आदि सत् हैं उनका कभी सर्वथा अभाव नहीं हो सकता है। यदि यह विश्व ईश्वर के द्वारा निर्मित होने के पहले सर्वथा असत् रूप था तो इसकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती है। यदि यह पहले भी सत् रूप था तो इसको उत्पन्न करनेवाला ईश्वर है, यह नहीं कहा जा सकता है। इस तरह यह सृष्टावाद या ईश्वर कर्त्तृत्व वाद युक्ति संगत सिद्ध नहीं होता है।

इस विश्व के सम्बन्ध में विशिष्टा द्वैतवादियों का कथन इस प्रकार है:—

विशिष्टाद्वैतवाद की मान्यता

"सृष्टिरचना के समय जीव और प्रकृति दोनों ईश्वर से पृथक् हुए और ईश्वर ने उन पर नियन्त्रण करना आरम्भ किया परन्तु मूल से ये ईश्वर के ही अंश हैं। ईश्वर बहुरूप होकर इन्हें प्रकटित करता है और पुनः अपने में समाविष्ट कर लेता है।"

उक्त विशिष्टाद्वैतवाद की मान्यता भी बुद्धिगम्य नहीं है। शुद्ध परमात्मा जगत् के रूप में किस तरह परिणित हो सकता है? चेतनरूप ईश्वर अचेतन प्रकृति के रूप में कैसे प्रकट हो सकता है? "एकोऽहं बहु स्याम" अर्थात् ईश्वर को इच्छा हुई कि मैं अकेला हूँ इसलिए बहुरूप होऊँ। यह इच्छा हुई और उसने मायाकी सृष्टि की और उससे यह संसार उत्पन्न हुआ। यह मान्यता भी बुद्धि संगत नहीं है। ईश्वर में इच्छा का सद्भाव बतलाना उसकी अपूर्णता प्रकट करना है। जहाँ अपूर्णता है वहीं इच्छा है। जहां पूर्णता है वहां किसी तरह की इच्छा नहीं हो सकती। ईश्वर तो पूर्ण है, कृतकृत्य है उसे किसी तरह की इच्छा नहीं हो सकती। अतः यह मान्यता भी असंगत है।

"ब्रह्म" ही वास्तविक तत्व है इसमें अतिरिक्त जो भी प्रतीत होता है वह सर्व असत् है-मिथ्या है जगत् के नानाविध दृश्य ब्रह्म के ही रूपान्तर हैं। ब्रह्म ही उनमें प्रतिबिम्बित होता है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। जो कुछ भी दिखाई देता है वह स्वप्न के समान मिथ्या है। माया के द्वारा ऐसा आभास होता है। "वस्तुतः सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" (सारा जगत् ब्रह्ममय ही है)

अद्वैतवाद की मान्यता

यह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ब्रह्माद्वैत वाद है। इसके अनुसार तो विश्व की सत्ता ही उठ जाती है। यह तो विश्व को असत् बतलाता है। इस लिए उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं होता है।

पाश्चात्य दार्शनिकों में भी यह वाद पर्याप्त विकसित हुआ है। उनका मानना है कि जीव और ईश्वर को अलग २ मानने से ईश्वर का स्वरूप बहुत ही मर्यादित बन जाता है इसलिए वे ईश्वर के अतिरिक्त और किसी सत्ता या सत्त्व को स्वीकार नहीं करते हैं। इन दार्शनिकों को 'पान-थि इस्ट' कहा जाता है। प्राचीन ग्रीक दार्शनिक पामोनेडिस या इलियाटिक सम्प्रदाय के दर्शन में "पान थि-इज्म" का आभास मिलता है। प्लेटो के सिद्धान्तों को एरिस्टोटल ने जो नवीन रूप दिया है उसमें भी यही वाद भरा हुआ है। दार्शनिक चूडामणि स्पिनोजा वर्तमान युरोप का इस 'विश्वदेव वाद' का महान् प्रवर्त्तक

माना जाता है। सुप्रसिद्ध हीगेल, शोपनहार आदि जर्मन दार्शनिक 'विश्वदेव वादी' माने जाते हैं। 'विश्वदेव वाद' का मूल सूत्र इस प्रकार है—

"जीव या अजीव जगत् के सब पदार्थ एकान्त सत हैं और सत् मात्र ईश्वर का विकास या परिणतिरूप है—ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अलग २ जीव और पदार्थ भले ही मालूम हों परन्तु मूल में सब एक हैं। ईश्वरीय सत्ता के कारण सब सत्तावान् हैं; ईश्वर के प्राण के कारण सब प्राणवान् हैं। केवल एक ईश्वर है, दूसरा कुछ नहीं। जगत् पृथक है यह एक भ्रान्ति है।"

शंकराचार्य का 'एकमेमाद्वितीयं ब्रह्म' और उक्त पाश्चात्य दार्शनिकों का 'विश्वदेव वाद' बिल्कुल एक समान ही हैं। दोनों केवल ईश्वर को ही सत् मानते हैं और इस दृश्यमान जगत् को काल्पनिक कहकर असत्-मिथ्या-ठहराते हैं।

इस अद्वैतवाद और विश्वदेववाद की अनेक प्रसिद्ध दार्शनिकों ने आलोचना करके इसकी असंगति इस प्रकार प्रकट की है—"जगत् की वस्तुओं और भावनाओं का स्वरूप निश्चित करना ही तत्वविद्या का उद्देश्य है। विश्वदेववाद जगत् की प्रकृति निश्चित करने के स्थान पर जगत् को ही मूल से उड़ा देता है। इसकी संसार की यह व्याख्या कितनी विचित्र है। जगत् की वस्तुओं और भावनाओं की सत्यता मानने का भी यह निषेध करता है। यह बात कौन मान सकता है? जगत् के इतने सब पदार्थों में किसी प्रकार का भेद नहीं है, सब एक महासत्ता का विकास मात्र है—सब एक हैं, यह सिद्धान्त क्या प्रत्यक्ष-विरोध नहीं है? जीवों में यदि कोई भेद नहीं है, वस्तुतः सब जीव एक महामान्य के विकास मात्र हैं तो फिर "स्वाधीन इच्छा" का क्या अर्थ? फिर तो जीव जो शुभाशुभ कर्म करे उसके लिये कौन जवाबदार हो? कोई इसके लिए जवाबदार ही नहीं रहता है। पुण्य-पाप ही नहीं तो मुक्ति की क्या बात हो सकती है?"

जैनाचार्यों ने इस ब्रह्माद्वैतवाद और विश्वदेववाद का प्रबल खण्डन किया है। उनका कहना है कि जगत् की अनेकानेक वस्तुएँ और विविधताएँ

नवीन उत्पन्न होता है यह बौद्धदर्शन की मान्यता युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होती है। ऐसा मानने पर बन्ध मोक्ष व्यवस्था नहीं घटित हो सकती है। कृत प्रणाश और अकृतकर्मभोग का प्रसंग प्राप्त होता है। अर्थात् पूर्वक्षण तो शुभ या अशुभ कर्म करके निरन्वय नष्ट हो गया इसलिए उसे तो उस कर्म का शुभाशुभ फल नहीं मिल सका इसलिए उसके किये हुए कर्म का विनाश हो गया। और उत्तरक्षणमें शुभाशुभ कर्म किया नहीं है तदपि उसे उस कर्म का फल भोगना पड़ेगा इसलिए उसे अकृतकर्म भोग होगा। इसी तरह बंधा कोई और ही क्षण, और मुक्त हुआ दूसरा ही क्षण। यह सब अव्यवस्था एकान्त क्षणिकवाद में उपस्थित होती है। अतः बौद्धदर्शन का क्षणिक बाद भी युक्ति संगत नहीं है।

सांख्य दर्शन का मन्तव्य

सांख्य दर्शन के अनुसार भी यह विश्व अनादि अनन्त है। कोई इसका स्रष्टा या संहर्त्ता नहीं है। इसका मन्तव्य है कि पुरुष—आत्मा के साथ अचेतन तदपि क्रियाशील प्रकृति नामक शक्ति मिल गई है; ये दोनों ही मिल कर सब क्रियाएँ करते रहते हैं जिससे यह विश्व-प्रवाह चल रहा है और चलता रहेगा। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति बीज-रूप पदार्थ है उससे महत् अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है। बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है, फिर इन्द्रियाँ पञ्च-तन्मात्रा और पञ्च महाभूत आदि जड़ तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस तरह सांख्य दर्शन प्रकृति से ही विश्व संचालन होना मानता है। योग दर्शन की भी यही मान्यता है।

इस सम्बन्ध में जैन दर्शन की सांख्य दर्शन के साथ अधिक समानता है। यद्यपि जैन दर्शन न्यायवैशेपिक की तरह परमाणुवादी है, प्रकृतिवादी नहीं है तदपि प्रकृतिवादी सांख्यदर्शन के साथ उसकी अधिक समानता है। पं० सुखलालजी ने इस विपय में ऐसा लिखा है:—

"जैन परम्परा न्याय वैशेपिक की तरह परमाणुवादी है, सांख्ययोग की तरह प्रकतिवादी नहीं है तथापि जैन परम्परा सम्मत परमाणु का स्वरूप सांख्य परम्परा सम्मत प्रकृति के स्वरूप से जैसा मिलता है वैसा न्याय-वैशेपिक सम्मत परमाणु के स्वरूप के साथ नहीं मिलता, क्योंकि जैन सम्मत

परमाणु सांख्य सम्मत प्रकृति की तरह परिणामी है, न्याय-वैशेषिक सम्मत परमाणु की तरह कूटस्थ नहीं है। इसीलिए जैसे एक ही सांख्य सम्मत प्रकृति पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि अनेक भौतिक सृष्टियों का उपादान बनती है वैसे ही जैन सम्मत एक ही परमाणु पृथ्वी, जल, तेज आदि नाना रूप में परिणत होता है। जैन परम्परा न्याय वैशेषिक की तरह यह नहीं मानती कि पार्थिव, जलीय आदि भौतिक परमाणु मूल से ही सदा भिन्न जातीय हैं। इसके सिवाय और भी एक अन्तर ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जैन सम्मत परमाणु वैशेषिक सम्मत परमाणु की अपेक्षा इतना अधिक सूक्ष्म है कि वह अन्त में सांख्य सम्मत प्रकृति जैसा अव्यक्त बन जाता है। जैन परम्परा का अनन्त परमाणुवाद प्राचीन सांख्य सम्मत पुरुष-बहुत्वानुरूप प्रकृति बहुत्ववाद से दूर नहीं है।"

सांख्य दर्शन के साथ जैन दर्शन का उक्त साम्य होने पर भी कई विषयों में मौलिक मत-भेद है। इस प्रकार विश्व के सम्बन्ध में विविध दार्शनिकों के विचार यहाँ बताये गये हैं। जैन दृष्टि से यह जगत् जड़ और चेतन द्रव्यों का विविध परिणमन मात्र है। चेतन-द्रव्य अनादि काल से कर्म-पुद्गलों से बद्ध है इसलिए वह स्वकृत कर्मानुसार विविध रूप धारण करता है। जड़ पुद्गलों का नियमबद्ध व्यापार चलता ही रहता है। इस तरह जीव और अजीव ये दोनों तत्त्व अनादि अनन्त हैं। इसलिए सृष्टि की रचना का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। यह विश्व द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत—नित्य है क्योंकि किसी पदार्थ का निरन्वय विनाश कभी नहीं होता है; तथा पर्याय की अपेक्षा अनित्य है क्योंकि इसकी अवस्थाएँ प्रति पल बदलती रहती हैं। तात्पर्य यह है कि जैन दर्शन के अनुसार यह विश्व अनादि अनन्त होने के साथ ही साथ परिणामी भी है। जैन दर्शन का यह मन्तव्य सर्वाधिक वैज्ञानिक और बुद्धिगम्य है।

उपसंहार

जैन दृष्टि से ईश्वर:—

उक्त प्रकरण में यह बता दिया गया है कि जैनदर्शन विश्व को प्रवाह रूप से अनादि अनंत मानता है। वह पौराणिक या न्याय वैशेषिक दर्शन की तरह विश्वका

सृजन और संहार होना नहीं मानता है। इसलिए जैनदर्शन में विश्व-कर्त्ता या संहर्त्ता के रूप में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। जैनदर्शन के अनुसार ईश्वर जगन्नियन्ता और सृष्टि का स्रष्टा नहीं है, यह बात विस्तार पूर्वक गत प्रकरण में कही जा चुकी है।

जगन्नियन्ता और कर्त्ता-हर्त्ता के रूप में ईश्वर का अस्तित्व (सत्ता) न मानने के कारण कई लोग जैनदर्शन को अनीश्वरवादी समझने की भूल कर बैठते हैं और अपने मनमाने ढंग से उसे नास्तिक दर्शन कह देने का दुःसाहस भी कर डालते हैं। यदि ईश्वरवादी की परिभाषा यह हो कि जो ईश्वर को विश्व का कर्त्ता हर्त्ता माने, जो उसे विश्वका नियंत्रण करने वाला माने और जो यह माने कि उसकी आज्ञा के बिना वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है; तब तो निस्संदेह जैन दर्शन अनीश्वरवादी दर्शन है। परन्तु ईश्वरवादी की उक्त परिभाषा तो सही नहीं कही जा सकती है। वेदानुयायी कतिपय दर्शन परम्पराएँ भी ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता स्वीकार नहीं करती हैं। सांख्य, योग, मीमांसक आदि दर्शन जगत् को ईश्वर के द्वारा रचा गया नहीं स्वीकार करते हैं। यदि ईश्वरवादी और नास्तिक की उक्त परिभाषा मानी जाय तब तो इन परम्पराओं को भी नास्तिक मानना पड़ेगा। वस्तुतः ईश्वरवादी और और नास्तिक की यह परिभाषा सही नहीं है। ईश्वरवादी की सीधी और सही परिभाषा यही है कि जो ईश्वर में विश्वास रखता हो—जो ईश्वरके अस्तित्व को स्वीकार करता हो। इसके अनुसार जैनदर्शन ईश्वरवादी दर्शन है। वह ईश्वर का निषेध या अपलाप नहीं करता। वह मुक्तात्मा के रूप में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करता है।

जैनदर्शन के अनुसार जो आत्मा राग-द्वेष से सर्वथा रहित हो, जन्म-मरण से सर्वथा अलग हो, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो, और वह अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा, परमात्मा-ईश्वर है। प्रत्येक आत्मा में परमात्वतत्त्व रहा हुआ है। प्रत्येक जीवात्मा राग-द्वेष को नष्ट करके वीतराग भाव की उपासना के द्वारा परमात्मा बन सकता है। जैनदर्शन आत्मा और परमात्मा में मौलिक भेद नहीं मानता है। तात्विक दृष्टि से प्रत्येक जीव में ईश्वर भाव है जो मुक्ति के समय प्रकट होता है। जिस आत्मा ने राग-द्वेष की ग्रन्थी का छेदन कर दिया है और जो कर्म के बन्धन से मुक्त हो गया है ऐसा मुक्तात्मा

ही ईश्वर है और वही उपास्य है। मुक्तात्मा के अतिरिक्त और कोई स्वतंत्र ईश्वर-शक्ति है यह जैनदर्शन स्वीकार नहीं करता है।

जैनदर्शन की तरह योग दर्शन भी ईश्वर को कर्त्ता हर्त्ता न मानकर केवल उपास्य मानता है परन्तु ईश्वर को जीवात्मा से सर्वथा स्वतंत्र अलग कोटि का—सदा मुक्त—मानता है। वह जीवात्मा और परमात्मा में मौलिक भेद मानता है। उसके अनुसार परमात्मा सदा से मुक्त है। वह जीवात्मा की श्रेणी का नहीं है परन्तु सर्वथा स्वतंत्र—भिन्न है। जैनदर्शन का योग सम्मत ईश्वर के सम्बन्ध में यही मतभेद है। जैनदर्शन का मन्तव्य है कि जीवात्मा और परमात्मा में कोई मौलिक भेद नहीं है। जो आत्मा कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो गये हैं वे परमात्मा हैं और जो कर्मबन्धन से बन्धे हुए हैं वे जीवात्मा हैं। जीवात्मा जब कर्मों का समूल उन्मूलन कर देता है तब वही परमात्मा बन जाता है। तात्पर्य यह है कि योग दर्शन मुक्तात्मा और ईश्वर में भेद मानता है जब कि जैनदर्शन मुक्तात्मा को ही ईश्वर मानता है।

योगदर्शन की ईश्वर विषयक मान्यता से मिलते-जुलते अभिप्राय पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी व्यक्त किये हैं। सेंट ऑगस्टिन कहता है—"मनुष्य—बन्धन से बँधा हुआ मनुष्य—अल्पज्ञ और मोहाधीन मानव—कभी सम्पूर्ण सत्य की धारणा कर सकता है? कभी नहीं। जगत् की पृष्ठभूमि में सत्य का परिपूर्ण आदर्शरूप—आधार रूप "पूर्णसत्व" है इसीलिए पामर मनुष्य सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। यह पूर्णसत्व ही ईश्वर है।"

आन्सेलम नामक दार्शनिक कहता है कि-"पदार्थसमूह में एक क्रम देखा जाता है। व्यक्ति और जाति में उच्च उच्चतर-उच्चतम ऐसी तरतमता देखी जाती है, इस पर से ही एक परिपूर्णतम सत्व है यह सिद्ध होता है।" अन्य पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी नाना युक्तियों से यही बात कही है कि-मनुष्य अपूर्ण है, पामर है, सीमावद्ध है, अज्ञानमें भटकता है इस पर से एक महान् महिमा वान ईश्वर है- जो सब प्रकारसे पूर्ण है, महान् है, असीम है और ज्ञानरूप है। योगदर्शन भी इसी 'पूर्णसत्व' वाद का प्रचारक है।

सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल ने "ईश्वरासिद्धेः" कहकर इस प्रकार के एक अद्वितीय ईश्वर की सत्ताका निषेध किया है। जैनाचार्य भी

इस प्रकार के किसी एक अद्वितीय ईश्वर की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत से सब मुक्तात्माएँ ईश्वर ही हैं। जैनदर्शन यह स्पष्ट कहता है कि अनादि काल से कर्म के बन्धन से जीव अल्पज्ञ हो रहा है। ज्ञानावरणीय कर्म के कारण उसका ज्ञान आवृत है। इस आवरण के दूर होते ही जीव अनन्तज्ञान का अधिकारी होता है—सर्वज्ञ बनता है। कर्म बन्धन के कारण ही जीव अल्पज्ञ है। इस बन्धन के हटते ही जीव अपनी स्वाभाविक ज्ञानदशा को प्राप्तकर लेता है। तात्पर्य यह है कि जीवों का बन्धन और जीवों का मर्यादित ज्ञान यह सिद्ध करता है कि कर्मों से सर्वथा मुक्ति और सर्वज्ञता सम्भवित है। प्रत्येक जीवात्मा मुक्त हो सकता है और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन सकता है। आत्मा परमात्मा—परमेश्वर बन सकता है।

मीमांसक दर्शन सर्वज्ञता को असम्भवित मानता है। उसके मत से सर्वज्ञ कोई हो ही नहीं सकता। वह कहता है कि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान और अर्थापत्ति रूप प्रमाण पञ्चक से सर्वज्ञ का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। प्रत्यक्ष तो इन्द्रिय गोचर वस्तुओं को ही बता सकता है अतीन्द्रिय को नहीं। प्रत्यक्ष से कोई सर्वज्ञ दिखाई नहीं देता। कोई ऐसा अविनाभावी चिन्ह नहीं जिससे सर्वज्ञ का अनुमान किया जाय। अपौरुषेय आगम के सिवाय सब आगम अप्रमाण हैं अतः उनसे सर्वज्ञ की सिद्धि हो नहीं सकती। वेद रूप अपौरुषेय आगम से सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होती है। सर्वज्ञ-जैसी दूसरी कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती जिससे उपमान द्वारा सर्वज्ञ-सिद्धि हो सके। सर्वज्ञ का अस्वीकार करने से किसी ज्ञात पदार्थ का अस्वीकार करना नहीं पड़ता अतः अर्थापत्ति से भी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता है। यह मीमांसक दर्शन का मन्तव्य है। वह यह भी कहता है कि सर्वज्ञता का अर्थ क्या है? यदि सब पदार्थो का जानना सर्वज्ञता है तो यह कैसे बन सकता है? सर्वज्ञ सब पदार्थो को क्रम से जानता है या युगपत् जानता है? यदि क्रम से जानता है यह पक्ष स्वीकार किया जाय तब तो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के पदार्थ इतने हैं कि क्रमशः सब को जानना असम्भव है। एक एक को जानते हुए तो थोडे ही पदार्थ जाने जा सकते हैं और बहुत से वैसे ही रह जाते हैं। यदि कहो कि एक साथ सबको जान लेता है तो शीत उष्ण आदि परस्पर विरोधी पदार्थों का एक ही [क्ष]ण में ज्ञान कैसे हो सकता है? इसलिए सर्वज्ञता असम्भवित है।

मीमांसकों के इस कथन का जैनाचार्यों ने विस्तृत उत्तर दिया है। वे कहते हैं:- आँख में देखने की शक्ति है परन्तु वह अन्धेरे में देख नहीं सकती। जब अन्धकार दूर होता है तब आँख की शक्ति काम करने लगती है। आत्मा का व्यापार भी इसी तरह का है। उसमें जगत् के सब पदार्थों को जानने-देखनेकी शक्ति है-सर्वज्ञता इसका स्वभाव है परन्तु ज्ञानवरणीय कर्म के आवरण से यह शक्ति अवरुद्ध रहती है। जब तपश्चर्या, ध्यान आदिके द्वारा यह आवरण दूर हो जाता है तब आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव-सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार दर्पण में नानाविध पदार्थ यथास्थित रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं उसी तरह विशुद्ध आत्मा के ज्ञान रूपी दर्पण में जगत् के सकल पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं।

आत्मा में पदार्थ मात्र को जानने की शक्ति तो है ही। मीमांसक भी यह मानते हैं कि भूत, भविष्य, वर्त्तमान, दूर, अनागत आदि सब पदार्थों की प्रतीति होती है। आगम के द्वारा दूर २ के पदार्थों की उपलब्धि होना मीमांसक भी मानते हैं। तात्पर्य यह है कि आत्मामें पदार्थ मात्र को ग्रहण करने की शक्ति है, यह निर्विवाद है। शुद्ध स्वभाव वाला आत्मा सब पदार्थों को ग्रहण कर सकता है— जान सकता है।

योगिप्रत्यक्ष से सर्वज्ञता की प्रतीति होती है। अनुमान से भी सर्वज्ञता की सिद्धि होती है। वे अनुमान इस प्रकार हैं—सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञाता अवश्य होना चाहिए क्योंकि वे प्रमेय-ज्ञेय हैं। जो-जो प्रमेय होता है उसका प्रमाता-ज्ञाता-अवश्य होता है जैसे घटादि के ज्ञाता हम लोग। दूसरा अनुमान इस प्रकार है:—हमारे ज्ञान में तरतमता है तो इस ज्ञान का प्रकर्ष कहीं अवश्य होना चाहिए क्योंकि जहाँ तरतमता होती है तो उसका प्रकर्ष—पराकाष्ठा भी कहीं अवश्य होती है। जैसे सूक्ष्मता की पराकाष्ठा अणु में और महानता की पराकाष्ठा आकाश में पाई जाती है। इसी तरह ज्ञान की पराकाष्ठा कहीं पाई जानी चाहिए। वह सर्वज्ञ में पाई जानी चाहिए। हमारी अल्पज्ञता ही किसी की सर्वज्ञता की परिचायक है। इत्यादि प्रमाणों से सर्वज्ञ की सिद्धि होती है।

मीमांसकों के द्वारा प्रमाण रूप माने गये वेदों से भी सर्वज्ञता की

सिद्धि होती है वेद में कहा है—"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो वाहुरुत विश्वतःपात् स वेत्ति विश्वं न हि तस्यवेत्ता तमाहुरग्रयम पुरुषं महान्तम्।"

सर्वज्ञ के ज्ञान में सब पदार्थ क्रमशः नही बल्कि युगपत् प्रतिबिम्बित होते हैं। एक ही क्षण में परस्पर विरोधी पदार्थ इनके ज्ञान में प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। जैसे दर्पण में आग और जल युगपत् प्रतिबिम्बित हो इसमें कोई विरोध नहीं है इसी तरह सर्वज्ञ के ज्ञान में सारे जगत् के पदार्थ प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। इस तरह सर्वज्ञ की सत्ता प्रमाणों से सिद्ध होती है।

जैनदर्शन में, जो सर्वज्ञ हो जाता है वह ईश्वर हो जाता है। सर्वज्ञता वही प्राप्त कर सकता है जो रागद्वेष से अतीत हो चुका हो—जो सम्पूर्ण वीतराग हो चुका है। ऐसे वितराग या तो अर्हन् हो सकते हैं या सिद्ध। आचार्य हेमचन्द्रजी ने कहा है—

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्य पूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥

अर्थात्—शर्वज्ञ, राग-द्वेष को जितनेवाले, तीन लोक में पूजित और यथार्थ वक्ता अर्हन् देव परमेश्वर हैं।

ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म आत्मा के स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं इसलिए ये घाति कर्म कहलाते हैं। और वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गौत्र कर्म अघाति कर्म कहलाते हैं। जब आत्मा वीतराग हो जाता है तब उसके घातिकर्म नष्ट हो जाते हैं जिसके कारण उसमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और अनन्तवल-वीर्य प्रकट हो जाता है। घातिकर्म के क्षय से आत्मा जीवन्मुक्त हो जाता है। अर्हन् ऐसे ही जीवन्मुक्त होते हैं। जीवन्मुक्त सर्वज्ञ भी दो प्रकार के हैं—सामान्य केवली और तीर्थंकर। सामान्य केवली केवल अपनी ही मुक्ति साधना करते हैं जब कि तीर्थंकर स्वयं भी मुक्त होते हैं और दूसरे आत्माओं को भी मोक्ष का मार्ग वतलाते हैं इसलिए जैनधर्म के मूल नमस्कार मंत्र में प्रथम 'णमो अरिहंताणं' कहकर अर्हत् को नमस्कार किया गया।

अर्हन् अवस्था में शेष रहे हुए चार अघाति कर्म भी जब क्षीण हो जाते हैं तब आत्मा शरीर से सदा के लिए मुक्त होजाता है और विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है। शरीर आत्मविकास का साधन है। जब विकास की पराकाष्ठा हो जाती है तो शरीर कृतकृत्य होकर आत्मा से पृथक् हो जाता है। इस तरह कर्म और शरीर से मुक्त होकर आत्मा शुद्ध-बुद्ध सिद्ध बन जाता है। यही अवस्था आत्मा का मूलस्वभाव है। इस स्वभाव को प्राप्त कर लेने पर आत्मा शाश्वत रूप से लोक में अग्रभाग पर रहता हुआ सच्चिदानन्द स्वरूप में निमग्न रहता है। सिद्ध अथवा मुक्तात्मा का स्वरूप अनिर्वचनीय है। आचारांग सूत्र में इस विषय में ऐसा कहा गया है:—

"सव्वे सरा नियट्टन्ति, तक्का जत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया, ओए, अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने, से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, नसुक्किल्ले, न सुरभिगंधे न दुरभिगंधे, न तित्ते, कडुए, न कसाए, न अम्बिले, न महुरे, न कक्खडे, न मउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जइ अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि। से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे न फासे, इच्चेवेत्ति बेमि" (५–६)

उक्त सूत्र में मुक्तात्मा की दशा का वर्णन किया गया है। यह अवस्था ऐसी है कि शब्दों के द्वारा इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। शब्दों की वहाँ गति नहीं है। तर्क की वहाँ पहुंच नहीं है, कल्पनाएँ वहां तक नहीं उड़तीं और बुद्धि वहाँ तक नहीं दौड़ती। वह दशा केवल अनुभव-गम्य है। जिस प्रकार गूंगा आदमी गुड़ खाकर उसके रस का आस्वादन करता है लेकिन वह उसका वर्णन नहीं कर सकता है। इसी तरह यह अवस्था गूंगे के गुड़ की तरह अवाच्य है और केवल अनुभव गम्य है। शास्त्र, आगम, वेद, पुराण, श्रुतियां आदि "नेति नेति" कहकर उसके वर्णन में असमर्थता व्यक्त करते हैं। सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा भी उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं। यह विषय वाणी से अगोचर, कल्पनातीत और बुद्धि से परे है।

वाच्य वस्तु में आकार, वर्ण, गन्ध, रूप, रस और स्पर्श होते हैं।

मुक्त अवस्था में न आकार है, न वर्ण है, न गन्ध है, न स्पर्श है अतएव वह अवाच्य है। वह शुद्ध चैतन्य रूप, ज्योतिर्मय और सहजानन्द में लीन है।

मुक्त अवस्था में जीव सकल कर्म कलंक से रहित होता है अतएव वह एकरूप होता है। अथवा सब मुक्तात्माएँ समान होने से गुण सामान्य नय की विवक्षा से एक कहे जाते हैं। सब मुक्तात्मा ज्योति में ज्योति की तरह मिले हुए हैं इस अपेक्षा से वे एक भी कहे गये हैं। इस दृष्टिकोण से जैनदर्शन को एकेश्वरवादी भी कहा जा सकता है।

'अप्रतिष्ठानश्वेदज्ञ' शब्द उक्त सूत्र में आया है। इसका अर्थ टीकाकार ने 'मोक्षस्वरूप के ज्ञाता' किया है। जहां शरीर और कर्म न हो वह अप्रतिष्ठान, इस व्युत्पत्ति से यह अर्थ किया गया है। 'अप्रतिष्ठान' नामक नरक भी है। वह लोक के अधोभाग की सीमा है। उसके ज्ञाता अर्थात् समस्त लोकनाड़ी के स्वरूप के ज्ञाता हैं। दोनों ही अर्थों से यह प्रकट होता है कि सिद्ध आत्मा सम्पूर्ण ज्ञान मय हैं। वह सिद्धात्मा लोकान्त के एक कोस के छठे भाग क्षेत्र में अनन्त ज्ञान, दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व अव्याबाध सुख, अमूर्त्त, अगुरुलघु, अटल, अवगाहना और अनन्त वीर्य इन आठ गुणों से युक्त होकर शाश्वत रूप से रहते हैं।

शब्द, कल्पना, बुद्धि और तर्क की वहाँ गति नहीं है; इसका कारण यह है कि वहाँ संस्थान—आकार—नहीं है। मुक्त जीव न बड़ा है, न छोटा है, न गोल है, न त्रिकोण है, न चौरस है। वह वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से रहित है। अर्थात् अमूर्त्त है। 'न काऊ' कह कर यह बताया है कि मुक्त जीव शरीररहित है। वेदान्त वादी कहते हैं कि – "एक एव मुक्तात्मा तत्कायमपरे क्षीण क्लेशाः अनुप्रविशन्ति आदित्यरश्मयः इवांशुमन्तः"। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य में प्रविष्ट हो जाती हैं उसी तरह एक मुक्तात्मा के शरीर में दूसरे मुक्त होने वाले जीव प्रविष्ट हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि वेदान्त में मुक्तात्मा के शरीर होना माना गया हैं। वस्तुतः मुक्तात्मा देहरहित है। देह एक उपाधि है और मुक्त जीव उपाधि रहित हैं अतएव वह सशरीर नहीं हो सकते।

मुक्त जीव पुनर्जन्मा नहीं है। उनके कर्म रूपी बीज दग्ध हो चुके

है । अतः उससे भवरूपी अंकुर नहीं उत्पन्न हो सकता । मोक्ष में गया हुआ जीव पुनः संसार में जन्म नहीं लेता क्योंकि जन्म-मरण के चक्र से छूटने का नाम ही तो मोक्ष है। अगर पुनः जन्म होना शेष रह गया तो मुक्ति ही क्या हुई ? जैन दर्शन मुक्तात्मा का पुनः अवतार होना नहीं मानता ।

अवतार वाद

कई दर्शनों की यह मान्यता है कि जब दुनिया में पाप बढ़ जाता है और अपने धर्म की हानी होती है तब ईश्वर पुनः संसार में अवतार धारण करता है। यह मान्यता बुद्धिसंगत प्रतीत नहीं होती। क्योंकि जब कारणों का नाश हो जाता है तब कार्य का भी नाश होता है, यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। मुक्त अवस्था में ऐसा कोई कारण नही है जिससे पुनर्जन्म रूप कार्य हो। जिस प्रकार बीज के अत्यन्त दग्ध होनेपर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है इसी तरह कर्म रूपी बीज के जल जाने पर पुनः भवरूपी अंकुर कैसे फूट सकता है ? कहा है:—

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥

जहाँ जन्म है वहाँ मरण अवश्यंभावी है । जहा जन्म-मरण है वहाँ ईश्वरत्त्व कैसे संभव है ? अतः मुक्तात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता यह मान्यता ही तर्कसंगत प्रतीत होती है ।

मुक्तात्मा सब प्रकार के संग से रहित है। वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है । मुक्त जीव परिज्ञाता है । वह लोकालोक को जानता है, देखता है अतः संज्ञ ज्ञानदर्शन युक्त है । मुक्तात्मा अनुपमेय है । उनके ज्ञान और सुख की समानता करने वाला अन्य नहीं है अतएव उन्हें कोई उपमा से नहीं पहचाना जा सकता है वह अद्वितीय है । उनकी अरूपी सत्ता है वर्ण, गन्ध, आदि न होने से वाचक शब्द की गति नहीं है इसलिए "अपयस्स पयं णत्थि" कहा गया है । मुक्तात्मा इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है अतः अनिर्वचनीय है-अनुभवगम्य है ।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनदर्शन ईश्वर का क्या

स्वरूप मानता है। जैन सम्मत ईश्वर का स्वरूप शुद्ध वैज्ञानिक है। इसकी प्रशंसा करते हुए डॉ. आ. परटॉल्ड कहते हैं:—

"जैनों की ईश्वर विषयक मान्यता विचार शील प्राणियों के मनमें स्वाभाविक रूप से आ सके, ऐसी है। उनके मत से ईश्वर परमात्मा है मगर वह जगत् का स्रष्टा या नियन्ता नहीं। वह पूर्ण अवस्था में पहुंचा हुआ जीव होने से पुनः जगत् में नहीं आता अतः वह पूज्य और वन्दनीय है। जैनों की ईश्वर विषयक मान्यता सुप्रसिद्ध जर्मन महातत्त्वज्ञ नित्शे की 'सुपरमेन' अर्थात् मनुष्यातीत कोटि की मान्यता से मिलती-जुलती है। जैनधर्म की ईश्वर विषयक मान्यता में मुझे इस धर्म का उदात्त स्वरूप दिखाई दिया है। जो लोग जैनधर्म को अनीश्वर वादी समझकर उसके धर्मत्व पर आक्षेप करते हैं उनके साथ मेरा प्रबलतर विरोध है।"

उक्त वक्तव्य से जैनदर्शन सम्मत ईश्वर के स्वरूप की वैज्ञानिकता प्रकट हो जाती है। वास्तव में, जैनदर्शन जीवात्मा को परमात्म पद का अधिकारी घोषित करके यह भव्य प्रेरणा प्रदान करता है कि "हे जीवात्माओ! तुम भी स्वभावतः परमात्मा हो—शुद्ध हो, बुद्ध हो, उठो! जागृत बनो! कर्म की शृंखलाओं को अपने प्रबल पुरुषार्थ से तोड़ फेंको। तुम प्रबल पौरुष से अपने अन्दर रहे हुए ईश्वर भाव को प्रकट कर सकते हो। तुम और ईश्वर एक हो। तुममें और उसमें कोई मौलिक भेद नही है। अतः अपने परमात्म स्वरूप को प्रकट करने के लिए तत्पर बनो।"

सचमुच जैनदर्शन ने विश्व को ईश्वर के सम्बन्ध में सर्वथा नवीन प्रकाश प्रदान किया है।

जैन दर्शन में आत्मा का स्वरूप

विशाल विश्व के अनन्त पदार्थों का वर्गीकरण करते हुए जैन दर्शन ने मूल रूप में दो तत्त्व स्वीकार किये हैं। वे हैं—जीव और अजीव। जिसमें चैतन्य-शक्ति है वह जीव है और जिसमें चैतन्य का अभाव है वह अजीव है। इन दो तत्त्वों में ही चराचर विश्व के समस्त दृष्ट-अदृष्ट पदार्थों का समा-

वेश हो जाता है। प्रस्तुत प्रकरण में हमें यह विचारना है कि जैनदर्शन सम्मत जीव का स्वरूप क्या है? अन्य दर्शनों के साथ वह स्वरूप कहाँ तक मिलता है और कहाँ कहाँ इस विषय में विचार भेद हैं, यह उल्लेख भी यहाँ संक्षेप में किया जाएगा।

जैन दर्शन की तरह सॉंख्य और योग दर्शन ने 'पुरुष' के नाम से तथा न्याय-वैशेषिक और वेदान्त ने 'आत्मा' के नाम से जीव या आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया है। बौद्ध दर्शन विज्ञानप्रवाह से अतिरिक्त आत्मा या जीव की सत्ता स्वीकार नहीं करता है और चार्वाक दर्शन तो जड़द्रव्य के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं मानता है। इस तरह चार्वाक और बौद्ध दर्शन अनात्मवादी हैं और शेष आत्मवादी हैं। आत्मवादी दर्शनों में आत्मस्वरूप के विषय में जो विचारभेद हैं उनकी मीमांसा करने के पहले आत्मवादी दर्शनों की युक्तियों और उनकी संगति या असंगति पर विचार कर लेना उचित है।

आत्मा का निषेध

चार्वाकदर्शन पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप पञ्च महाभूतों को ही सत् मानता है। इसके सिवाय और कोई सत् पदार्थ वह नहीं स्वीकार करता है। जगत् के सब पदार्थ इन पाँच महाभूतों के सम्मिश्रण से ही उत्पन्न होते हैं यह उसकी मान्यता है। मनुष्यादि जीव चेतन हैं यह तो माने बिना नहीं चल सकता है। चैतन्य प्रत्यक्ष सिद्ध है इसलिए उसको अस्वीकार कैसे किया जा सकता है? परन्तु वह कहता है कि चैतन्य है इस लिए आत्मा होना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। चैतन्य तो भूतों का धर्म है। जब पञ्च महाभूत कायाकार परिणत होते हैं तो उनसे चैतन्य प्रकट होता है। जैसे मद्य के अंगों के मिलने पर उनसे मद शक्ति प्रकट होती है इसी तरह कायाकार परिणत भूतों से चैतन्य प्रकट होता है। जैसे जल से बुदबुद प्रकट होता है उसी तरह भूतों से चैतन्य प्रकट होता है। यह चार्वाक दर्शन का मन्तव्य है।

आज के युग के कतिपय जड़वादी भी इसी तरह का अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि "जैसे यकृत में से रस निकलता है उसी तरह मस्तिष्क

से चैतन्य उत्पन्न होता है अतः जड़पदार्थों से भिन्न आत्मा नामक कोई स्वतन्त्र पदार्थ है यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आत्म-सिद्धी

चार्वाक और आधुनिक जड़वादियों की उक्त मान्यता ठीक नहीं है। चैतन्यधर्म, जड़पदार्थों का कार्य नहीं हो सकता है। जड़ से जड़ पदार्थ की ही उत्पत्ति हो सकती है चैतन्य की नहीं। मद्य के अंगों से जो वस्तु प्रकट होती है वह जड़ ही होती है। यकृत से जो रस निकलता है वह भी जड़ है। इस तरह जड़ से जड़ वस्तु की उत्पत्ति तो हो सकती है परन्तु उससे विरुद्ध धर्म वाली वस्तु की उत्पत्ति कैसे संभवित है? भूतों में चैतन्य गुण नहीं है। क्योंकि पृथ्वी का गुण तो काठिन्य और आधार है, पानी का गुण द्रवत्व है, तेज का गुण पाचन है, वायु का गुण चलन है और आकाश का गुण स्थान देना है। ये गुण चैतन्य से भिन्न हैं। जिन पदार्थों में चैतन्य नहीं है उनके सम्मिलन से चैतन्य कैसे प्रकट हो सकता है? जैसे रुक्ष गुण वाली बालुका के समुदाय से स्निग्धत्व गुण युक्त तैल नहीं निकल सकता है इसी तरह जड़ भूतों के समुदाय से चैतन्य प्रकट नहीं हो सकता है। यह कहा जा सकता है कि किण्व (धान्य विशेष) उदक आदि मद्य के अंगों में अलग २ मादक शक्ति नहीं होने पर भी जब उनका संयोग होता है तो उनमें मद-शक्ति प्रकट हो जाती है उसी तरह भूतों में पृथक् पृथक् चैतन्य न होने पर भी जब शरीर के रूप में एकत्रित होते हैं तब उनसे चैतन्य प्रकट हो जाता है। यह कथन सर्वथा अयुक्त है। मद्य के अंगों में पृथक् २ मद-शक्ति नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। जो शक्ति प्रत्येक अंग में यदि आंशिक रूप में भी नहीं है तो वह समुदाय में कहाँ से आ सकती है? किण्व, उदक आदि में आंशिक मद शक्ति है। वे सब मद-शक्तियाँ मिलती हैं तभी मादकता पैदा होती है। पृथक् २ भूतों में चैतन्य माने बिना समुदित भूतों में चैतन्य आ नहीं सकता। पृथक् २ भूतों में चैतन्य नहीं है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। अतः चैतन्य भूतों का धर्म नहीं है बल्कि वह आत्मा का धर्म है। यह चैतन्य गुण ही आत्मा के अस्तित्व का द्योतक है।

दूसरी बात यह है कि यदि भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति मानी जाय तब तो किसी का मरण ही नहीं होना चाहिए। क्योंकि मृत-शरीर में भी

पञ्च भूतों की सत्ता रहती है तो उसमें भी चैतन्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यदि यह कहा जाय कि मृत शरीर में वायु और तेज़ नहीं होते अतः चैतन्य का अभाव है, यही मरण है, तो यह अयुक्त है क्योंकि मृत-शरीर में सूजन (शोथ) देखी जाती है जो वायु का सद्भाव सिद्ध करती है। इसी तरह उसमें मवाद का उत्पन्न होना देखा जाता है जो अग्नि का कार्य है। पंच भूतों के रहते हुए भी मृत-शरीर में चैतन्य नहीं पाया जाता, यही सिद्ध करता है कि चैतन्य भूतों का गुण नहीं है।

प्राणिमात्र को "मैं हूँ" ऐसा स्वसंवेदन होता है। किसी भी व्यक्ति को अपने अस्तित्व में शंका नहीं होती "मैं सुखी हूँ" "मैं दुखी हूँ" इत्यादि में जो "मैं" है वही आत्मा की प्रत्यक्षता का प्रमाण है। कहा जा सकता कि यह 'अहंप्रत्यय' तो शरीर का निर्देश करता है, अर्थात् सुख-दुख का अनुभव करने वाला तो शरीर है। यह कल्पना मिथ्या है। यदि उक्त ज्ञानों में 'अहं' से शरीर का निर्देश होता तो "मेरा शरीर" ऐसी प्रतीति नहीं होनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं अनुभव करता कि "मैं शरीर हूं"। सब को "मेरा शरीर" यह प्रतीति होती है। इससे मालूम होता है कि शरीर का अधिष्ठाता कोई और है। जैसे "मेरा धन" कहने से धन और धन वाला अलग २ मालूम होते हैं इसी तरह "मेरा शरीर" करने से शरीर और उसका स्वामी अलग २ प्रतीत होते हैं। जो शरीर का स्वामी है वही आत्मा है और वही अहं प्रत्यय से निर्दिष्ट है।

अनुमान प्रमाण से भी आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है। आत्मा का अस्तित्व है क्योंकि इसका असाधारण गुण चैतन्य देखा जाता है उसका अस्तित्व अवश्य होता है जैसे चक्षुरिन्द्रिय। आँख सूक्ष्म होने से साक्षात् नहीं दिखाई देती है लेकिन अन्य इन्द्रियों से न होने वाले रूप विज्ञान को उत्पन्न करने की शक्ति से उसका अनुमान होता है। इसी तरह आत्मा का भी भूतों में न पाये जाने वाले चैतन्य गुण को देखकर अनुमान किया जाता है।

आत्मा है क्योंकि समस्त इन्द्रियों के द्वारा जाने हुए अर्थों का संकलनात्मक (जोड़रूप) ज्ञान देखा जाता है। जैसे पाँच खिड़कियों के द्वारा

जाने हुए अर्थों का मिलाने वाला-जिनदत्त। "मैंने शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श को जाना" यह संकलनात्मक ज्ञान सब विषय को जानने वाले एक आत्मा को माने विना नहीं हो सकता है। इन्द्रियों के द्वारा यह ज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय एक एक विषय को ही ग्रहण कर सकती है। आँख, रूप को ही देख सकती हैं उससे स्पर्श नहीं जाना जा सकता। अतः इन्द्रियों के द्वारा सब अर्थों को प्रत्यक्ष करने वाला एक आत्मा अवश्य मानना चाहिए। जिस प्रकार पाँच खिड़कियों वाले मकान में बैठकर पांचों खिड़कियों के द्वारा दिखाई देने वाले पदार्थों का एक ज्ञाता जिनदत्त है इसी तरह पाँच इन्द्रियाँ रूपी खिड़कियों वाले शरीर-मकान में बैठकर आत्मा भिन्न २ विषयों को जानता है। शंका की जासकती है कि पदार्थों को जानने वाली तो इन्द्रियाँ है अतः उन्हें ही जानने वाली समझना चाहिए। उनसे भिन्न आत्मा को ज्ञाता मानने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि इन्द्रियाँ स्वयं पदार्थों को ग्रहण करने वाली नहीं हैं वे तो साधन हैं। जैसे खिड़कियाँ स्वयं देखती नहीं है परन्तु उनके द्वारा देखा जाता है इसी तरह इन्द्रियाँ स्वयं ज्ञाता नहीं हैं परन्तु ज्ञान में साधन मात्र है। इन्द्रिय के नष्ट हो जाने पर भी पूर्व दृष्ट पदार्थ का स्मरण होता है: यह स्मरण आत्मा को ज्ञाता माने बिना कैसे हो सकता है? जो मनुष्य पदार्थ को देखता है वही दूसरे समय में उस पदार्थ का स्मरण कर सकता है। दूसरा नहीं। देवदत्त के देखे हुए पदार्थ का यज्ञदत्त स्मरण नहीं कर सकता। यदि नेत्र के द्वारा पदार्थ को देखने वाला आत्मा नेत्र से भिन्न नहीं है तो नेत्र के नष्ट होने पर पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण कैसे हो सकता है? इससे स्पष्ट होता है कि इन्द्रियों के द्वारा वस्तु को साक्षात्कार करने वाला आत्मा अवश्य विद्यमान है।

उपमान, आगम, अर्थापत्ति आदि प्रमाणों से भी आत्मा की सिद्धी होती है। यह विषय बहुत विस्तृत है। संक्षेप में इतना ही समझना चाहिए कि चैतन्य आत्मा का धर्म है। इस चैतन्य धर्म के कारण आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। अतः चार्वाकों का अनात्मवाद—जड़वाद—युक्तिशून्य है।

चैतन्य जड़ पदार्थ का गुण नहीं है, इस विषय में बौद्धदर्शन जैन-

दर्शन से सहमत है। परन्तु ऐसा होते हुए भी वह आत्मा रूप सत् पदार्थ का अस्तित्व नहीं मानता है। वह पर्यायवादी दर्शन है।

बौद्ध दर्शन का विज्ञान-प्रवाह

पूर्वोत्तर पर्यायों को वह स्वीकार करता है परन्तु उन पूर्वोत्तर पर्यायों में अनुगत रूप से रहने वाले द्रव्य को वह नहीं स्वीकार करता है। स्थूल दृष्टान्त के रूप में यह कहा जा सकता है कि बौद्ध दर्शन मुक्ताहार के मोतियों को ही स्वीकार करता है उन मुक्ताओं में अनुगत रूप से रहे हुए सूत्र (डोरे) को नहीं मानता है। वह विज्ञान-प्रवाह को स्वीकार करता है परन्तु इस विज्ञान-प्रवाह में अनुगत रूप से रहने वाले किसी आत्म द्रव्य को स्वीकार नहीं करता है। "पूर्वज्ञान-क्षण, उत्तरज्ञान क्षण का कारण है; उत्तरज्ञान क्षण, पूर्वज्ञान क्षण का कार्य है। इस तरह ज्ञान प्रवाह में कार्य-कारण भाव रहता है। यह परस्पर भिन्न क्षणिक विज्ञान-समूह ही सत् है। इसके अतिरिक्त आत्मा या जीव जैसी कोई वस्तु नहीं है" यह बौद्ध दर्शन का मन्तव्य है।

बौद्ध दर्शन में वस्तुमात्र क्षणमात्र स्थायी है। अपने उत्पत्ति क्षण के दूसरे ही क्षण में वह निरन्वय नष्ट हो जाती है। इस क्षणवाद के कारण पूर्वोत्तर क्षण में टिके रहने वाले आत्मा द्रव्य को बौद्ध दर्शन ने अस्वीकृत कर दिया। परन्तु वास्तविक विचारणा करते हुए यह क्षणवाद टिक नहीं सकता है। यदि वस्तु एक क्षण ठहर कर दूसरे ही क्षण सर्वथा नष्ट हो जाती है तो "यह वही है" "मैं वही हूँ" इत्यादि अनुसन्धानात्मक ज्ञान नहीं होना चाहिये यह प्रतीति अवश्य होती है इसलिए क्षणवाद युक्ति युक्त नहीं है।

बौद्ध सम्मत विज्ञान-प्रवाह का पूर्वविज्ञान और उत्तरविज्ञान सर्वथा भिन्न माना जाता है यदि इन दो भिन्न विज्ञानों को जोड़ने वाला कोई एक सत् पदार्थ न हो तो क्षणिक विज्ञान समूह में क्रम, व्यवस्था और शृंखला कैसे घटित हो सकती है ? ऐसी शृंखला न हो तो स्मृति और प्रत्यभिज्ञान (यह वही है इस प्रकार का जोड़ रूप ज्ञान) कैसे हो सकते हैं ? सर्वथा भिन्न ज्ञान समूह में से एक के अनुभव की स्मृति दूसरे को कैसे हो सकती है ? तवआत्म वको माने विना इस प्रकार का स्मरण कभी सम्भव नहीं है।

अनुगत रूप से रहने वाले आत्मद्रव्य को न मानकर यदि केवल विज्ञान-प्रवाह ही स्वीकार किया जाता है तो धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक

आदि की व्यवस्था घटित नहीं हो सकती है । क्योंकि वह विज्ञान क्षण प्रथम समय में तो अपनी उत्पत्ति में मग्न रहता है, उस समय दूसरी क्रिया कर ही नहीं सकता और दूसरे क्षण में तो वह नष्ट ही हो जाता है तो क्रियाओं का अवकाश ही कहाँ रहा ? यदि क्रिया कर भी ले तो उसका फल-कैसे हो सकेगा ? प्रथम क्षण में तो वह क्रिया कर रहा है उसका फल तो अवान्तर क्षण में होना सम्भव है; दूसरे क्षण में तो वह नष्ट हो जाता है तो उसका फल कौन भोगेगा ? यदि यह कहा जाय कि नष्ट होने वाला विज्ञान अपने समान दूसरे विज्ञान को पैदा करके नष्ट होता है तो कृत-प्रणाश और अकृतकर्म भोग का दोष होता है। जिस विज्ञान ने शुभाशुभ कर्म किया है वह तो उसका फल भोगे विना ही नष्ट होगया और जिस विज्ञान को फल भोगना पड़ा उसने वह कार्य किया ही नहीं। तात्पर्य यह है कि क्षणिकवाद में या विज्ञान-प्रवाह वाद में शुभाशुभ क्रियाओं की संघटना भी नहीं हो सकती है। इसके विना कर्म व्यवस्था और लोक व्यवस्था भी नहीं वन सकती है। अतः यह विज्ञान-प्रवाह वाद असंगत है। अतः इस विज्ञान-प्रवाह में अनुगत रहने वाले आत्मद्रव्य की सत्ता स्वीकार करनी चाहिए।

अनात्मवादियों की मीमांसा कर चुकने और आत्मा की सिद्धि हो जाने के पश्चात् अब आत्म-स्वरूप का निरुपण करना समुचित है अतः सर्वप्रथम जैन दर्शन सम्मत आत्म स्वरूप का उल्लेख किया जाता है:—

आत्म-स्वरूप

जीवो उव ओगमओ, अमुत्तो, कत्ता, सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥

अर्थात् जीव उपयोग वाला और अमूर्त्त है। संसारस्थ आत्मा कर्त्ता, स्वदेह परिमाण, और भोक्ता, है । (कर्म रहित होने पर) स्वाभाविक ऊर्ध्वगति वाला जीव सिद्ध हो जाता है

इसको वादिदेवसूरि ने इन शब्दों में कहा है:—चैतन्यस्वरूपः, परिणामी, कर्त्ता, साक्षाद्भोक्ता, स्वदेह परिमाणः, प्रति क्षेत्रे विभिन्नः पौद्गालि कादृष्टवांश्चायम्। यह जैनदर्शन सम्मत आत्मा का लक्षण है। इन्हीं लक्षणों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना है

९१ आत्मा उपयोगमय अर्थात् ज्ञानमय है। ज्ञान आत्मा का असाधारण धर्म है। आत्मा ज्ञान का पिण्ड है। ज्ञान और आत्मा में धर्म और धर्मी का-गुण अथवा गुणी का-तादात्म्य सम्बन्ध है। आचारांग सूत्र में कहा गया है कि:—

उपयोग मय

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया

जो आत्मा है वही जानने वाला विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। यह सूत्र आत्मा और ज्ञान का अभेद बताता है। यह अभेद गुण और गुणी की अभेद विवक्षा से है। आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका असाधारण गुण है। गुण और गुणी में अभेद होता है।

कोई यह शंका कर सकता है कि यदि ज्ञान और आत्मा अभिन्न है तो एक ही वस्तु होना चाहिए। ज्ञान और आत्मा की भिन्न प्रतीति नहीं होनी चाहिए। इसका समाधान यह है कि यहाँ अभेद बताया गया है, ऐक्य नहीं। ज्ञान और आत्मा में-धर्म और धर्मी में अभेद है, ऐक्य नहीं है। अतएव यह शंका निर्मूल है।

आत्मा का लक्षण ज्ञान है। ज्ञान ही उसका असाधारण गुण है आत्मा को छोड़ कर ज्ञान अन्यत्र नही रह सकता और आत्मा कभी ज्ञान से सर्वथा रहित नहीं हो सकती। अतएव ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है।

सांख्य और वेदान्त दर्शन तो आत्मा को ज्ञानमय मानते हैं परन्तु नैयायिक (न्याय दर्शन) और वैशेषिक दर्शन ज्ञान को आत्मा का स्वरूप नहीं मानते। उनके मत से ज्ञान भिन्न वस्तु है और आत्मा भिन्न वस्तु है। न्याय दर्शन के अनुसार जीव जब मुक्त होता है तब बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार-इन नौ गुणों का आत्यन्तिक विनाश होता है। यदि वे ज्ञान और जीव को अभिन्न मानें तो मुक्त दशा में बुद्धि का नाश होने पर जीव के नाश का भी प्रसंग आ जाय। इस लिए वे जीव और ज्ञान को भिन्न २ मानते हैं।

नैयायिक-मान्यता

नैयायिकों और वैशेषिकों का उक्त कथन युक्ति संगत नहीं है। यदि ज्ञान को आत्मा से सर्वथा भिन्न मान लिया जाता है तो ज्ञान से आत्मा को

पदार्थ बोध ही नहीं हो सकता है। जैसे जिनचन्द्र किसी वस्तु को जानता है तो इससे ज्ञानचन्द्र का अज्ञान दूर नहीं होता क्योंकि जिनचन्द्र का ज्ञान, ज्ञानचन्द्र के ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। मतलब यह है कि जो ज्ञान जिससे सर्वथा भिन्न होता है उससे उसको ज्ञान नहीं हो सकता। यदि ऐसा न माना जाय तो एक व्यक्ति के ज्ञान से सब के अज्ञान की निवृत्ति हो जानी चाहिए। मगर ऐसा नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान के द्वारा ही अपने अज्ञान को नष्ट कर सकता है। दूसरे के ज्ञान से हमें वस्तु का बोध नहीं हो सकता क्योंकि उसका ज्ञान हमारी आत्मा से सर्वथा भिन्न है। इसी तरह यदि हमारा ज्ञान हमारी आत्मा से भी सर्वथा भिन्न है तो वह हमें भी कैसे ज्ञान करा सकता है? इसलिए यह मानना चाहिए कि ज्ञान आत्मा से सर्वथा भिन्न नहीं है लेकिन आत्मा का ही स्वरूप है।

यहाँ न्याय-वैशेषिकाचार्य कहते हैं कि आत्मा और ज्ञान भिन्नभिन्न तो हैं लेकिन वे समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं अतएव जो ज्ञान जिस आत्मा में समवाय सम्बन्ध से रहता है वह ज्ञान उसी आत्मा को पदार्थ का बोध करा देगा। दूसरी आत्मा को नहीं। यह कथन भी समाधान कारक नहीं है। क्योंकि समवाय सम्बन्ध नित्य सम्बन्ध को कहते हैं अर्थात् जो सम्बन्ध अनादि से है वह समवाय कहा जाता है। यह समवाय उनके मत से नित्य और सर्व व्यापक है। उनके मत में आत्मा भी सर्व व्यापक है। इससे प्रत्येक आत्मा के साथ ज्ञान का समवाय सम्बन्ध एक सरीखा होगा। जैसे आकाश नित्य और व्यापक है तो उसका सम्बन्ध सभी के साथ है, इसी तरह समवाय का सम्बन्ध भी सब के साथ है फिर प्रतिनियत ज्ञान का नियामक कौन होगा? अतएव यही मानना चाहिए कि आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है।

यहाँ शंका होती है कि आत्मा और ज्ञान में कर्तृ कारण भाव सम्बन्ध है। "मैं ज्ञान से जानता हूं" इसमें "मैं" से ज्ञाता मालूम होता है और 'ज्ञान' कारण मालूम होता है। जिनमें कर्तृ करण भाव सम्बन्ध होता है वे परस्पर भिन्न होते हैं, जैसे सुथार और कुठार। जैसे सुथार रूप कर्ता और कुठार रूप करण भिन्न २ मालूम होते हैं वैसे ही ज्ञान और आत्मा भी भिन्न२ होने चाहिए। इस का समाधान यह है कि जहाँ कर्तृ करण भाव होता है वहाँ भिन्नता ही होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है। एक वस्तु में भी कर्तृ करण भाव देखा जाता है

जैसे देवदत्त अपने आपको अपनी आत्मा से जानता है इसमें देवदत्त कर्त्ता भी है और करण भी है। "सांप अपने आपको अपने द्वारा लपेटने वाला भी सर्प है, लपेटा जाने वाला भी सर्प है और करण भी सर्प है। इस तरह एक ही पदार्थ में कर्तृ करण भाव सम्बन्ध हो सकता है। अतएव ज्ञान और आत्मा की अभिन्नता में कोई दोष नहीं है। ज्ञान, आत्मा का स्वरूप है, यह भलीभांति सिद्ध हो जाता है

अमूर्त

जैनदर्शन सम्मत आत्मा अमूर्त्त है। उसमें न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है। वह किसी भी आकृतिका नहीं है न वह गोल है, न लम्बा है, न चौड़ा है, न त्रिकोण है, न चौरस है। वह सब प्रकार के आकार से रहित है। आत्मा अमूर्त्त है अतएव वह इन्द्रियग्राह्य नहीं है। प्रायः सभी आत्मवादी दर्शनों ने आत्मा को अमूर्त्त माना है। आत्मा के इस अमूर्त्तत्व गुण के सम्बन्ध में सब दर्शन एक मत हैं।

आत्मा का कर्तृत्व

जैनदर्शन यह मानता है कि प्रत्येक आत्मा अपनी सृष्टि का स्वयं स्रष्टा है। वह अपने सुख दुःख के लिए स्वयं उत्तरदायी है। वह स्वयं अपने शुभाशुभ भाग्य का निर्माता है वह अपने कार्यों के द्वारा ही कर्म बन्धन में बँध कर सुख दुःख का अनुभव करता है और अपने ही पुरुषार्थ के द्वारा कर्म की बेड़ियों को तोड़ कर मुक्त कहा गया है किहो जाता है। इसी लिए कहा गया है कि—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाणय

आत्मा ही सुख-दुख का कर्त्ता और विकर्त्ता है।

सांख्यदर्शन का मन्तव्य

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष—आत्मा—नित्य, शुद्ध, असंग, निस्पृह अलिप्त और अकर्त्ता है। उसके अनुसार जगत् के व्यापारों के साथ पुरुष—का कोई सम्बन्ध नहीं है; प्रकृति ही सब कार्य करती है। आत्मा अमूर्त्त, नित्य और सर्वव्यापी है इस लिए वह कर्त्ता नहीं हो सकता है। वह न स्वयं क्रिया करता है और न कराता है। जिस प्रकार दर्पण प्रतिबिम्बित मूर्ति अपनी

स्थिति के लिए प्रयत्न नहीं करती है किन्तु प्रयत्न के बिना ही वह उस दर्पण में स्थिति रहती है इसी तरह आत्मा अपनी स्थिति के लिए प्रयत्न किये बिना ही स्थित रहता है। इसलिए आत्मा अकर्त्ता है। वास्तविक दृष्टि से आत्मा भोक्ता भी नहीं है परन्तु जपा-स्फटिक न्याय के अनुसार वह भोक्ता कहा जाता है। जैसे स्फटिकमणि के पास लाल फूल रख देने से वह मणि भी लाल प्रतीत होती है, वस्तुतः वह लाल नहीं अपितु शुक्ल है। इसी तरह बुद्धि उभय मुख दर्पणाकार है जिससे सुख-दुःख बुद्धि में संक्रांत होते हैं और उनका प्रतिबिम्ब शुद्ध स्वभाव वाले पुरुष पर पड़ता है। इस कारण पुरुष में वास्तविक भोग न होने पर भी वह उपचार से भोक्ता माना जाता है। यह सांख्य मत का अकर्तृत्ववाद है। सांख्यमत में आत्मा का स्वरूप इस प्रकार है—"अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा सांख्यनिदर्शने"।

सांख्यदर्शन की उक्त मान्यता जैन-न्याय आदि दर्शनों को मान्य नहीं है। जैनाचार्य स्पष्ट कहते हैं कि यदि आत्मा कर्त्ता और भोक्ता नहीं है तो यह बन्ध-मोक्ष व्यवस्था और धर्माधर्म निरुपण किस लिए है? आत्मा यदि अकर्त्ता है तो "मैं सुनता हूं" "मैं देखता हूँ" इत्यादि प्रतीति हुआ करती है, वह नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार की प्रतीति सबको होती है। अतः आत्मा का अकर्तृत्व अनुभव-विरुद्ध है। स्वयं सांख्य दर्शन भी ज्ञान को तो आत्माका-पुरुषका कार्य स्वीकार करता ही है। ऊपर जो जपा-स्फटिक न्याय के अनुसार आत्मा में भोक्तृत्व स्वीकार किया गया है वह आत्मा को परिणामी माने बिना घटित नहीं हो सकता है। जैसे स्फटिक में प्रतिबिम्ब पड़ता है तो स्फटिक में परिणाम-विकार-होना मानना पड़ता है। इसी तरह यदि सुख-दुख आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं तो इससे आत्मा में-पुरुष में-कुछ न कुछ परि-णाम विकार मानना पड़ेगा। पुरुष को एकान्त कूटस्थ नित्य मानने पर यह जपा-स्फटिकवत् भोक्तृत्व घटित नहीं हो सकता है। आत्मा को जब आंशिक भोक्ता माना जाता है तो उसे कर्त्ता मानना ही पड़ेगा क्यों कि जो कर्त्ता न हो, वह भोक्ता कैसे बन सकता है? अतः- आत्मा को कर्त्ता और भोक्ता मानना चाहिये। ऐसा माने बिना लोकव्यवस्था, बन्धमोक्ष व्यवस्था और धर्मानुष्ठान व्यवस्था नहीं बन सकती है।

जैनदर्शन आत्मा को किस अपेक्षा से किस २ भाव का कर्त्ता मानता

है इसका स्पष्टीकरण इस गाथा से हो जाता है:—

पुग्गल कम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु निच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धनया सुद्धभावाणं॥ (द्रव्यसंग्रह)

आत्मा व्यवहार दृष्टि से पुद्गल-कर्म समूह का कर्त्ता है, अशुद्ध निश्चय नय के अनुसार आत्मा रागद्वेषादि चेतन (भाव) कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध निश्चय नय के अनुसार वह अपने शुद्ध भाव समूह का कर्त्ता है। यह आत्मा का कर्तृत्व समझना चाहिए।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा सर्व व्यापक नहीं है; वह स्व स्व देह प्रमाण है। जिस जीव का जितना बड़ा या छोटा शरीर है उसमें ही उसकी आत्मा रही हुई है। जैसे दीप-ज्योति का संकोच और

स्वदेह परिमाणतत्व

विस्तार होता है उसी तरह आत्म-प्रदेशों में भी ऐसी शक्ति है वे देह-प्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाते हैं। अतः प्रदेशों की अपेक्षा समान होने पर भी कीड़ी की आत्मा इतने छोटे से शरीर में ही है और हाथी की आत्मा हाथी के शरीर में ही है।

जैनचार्यों ने कई युक्तियों से आत्मा का स्वदेह परिमाणत्व सिद्ध किया है। वे कहते हैं कि आत्मा स्वदेह-प्रमाण है क्यों कि उसका चैतन्य गुण शरीर व्यापी ही है। जिसका गुण जहाँ देखा जाता है वह वहीं रहता है अन्यत्र नहीं। जैसे घट के रूपादि गुण जहाँ पाये जाते हैं वहीं घट होता है, सर्वत्र नहीं। वैसे ही आत्मा का चैतन्य गुण शरीर में ही पाया जाता है अतः आत्मा को शरीर-व्यापी ही मानना चाहिए; सर्वव्यापी नहीं।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त आदि दर्शन आत्मा को सर्व व्यापक मानते हैं। न्यायाचार्य कहते हैं कि यदि आत्मा व्यापक पदार्थ न हो तो अनन्त दिग्देशवर्त्ती उपयुक्त परमाणुओं के साथ उसका संयोग नहीं हो सकता। और इस संयोग के बिना शरीर की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है। उसका उत्तर देते हुए जैनचार्यों ने कहा कि परमाणुओं को आकृष्ट करने के लिए आत्मा को व्यापक मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे चुम्बक दूर रहा हुआ ही लोहे को खींच सकता है उसी तरह आत्मा देह प्रमाण रहता हुआ भी दूरस्थ पुद्गलों को आकृष्ट कर सकता है। यदि कहा जाय कि इस तरह तो तीन लोक के परमाणु आत्मा के द्वारा आकृष्ट हो सकते हैं। तो शरीर कितना बड़ा बन जायगा ? यह दोष तो आत्मा के सर्वव्यापकत्व

में भी समान रूप से है। सकल परमाणुओं में व्यापक आत्मा सब परमाणुओं को आकृष्ट करें तो परिस्थिति वही आ सकती है। यदि अदृष्ट के कारण उपयोगी परमाणुओं का आकृष्ट होना ही मानते हो तो आत्मा के देह प्रमाणपक्ष में भी अदृष्ट के कारण ऐसा होना कहा जा सकता है।

नैयायिक यह कहते हैं कि यदि आत्मा को देह प्रमाण माना जाय तो आत्मा भी मूर्त्त हो जाएगी। यदि आत्मा मूर्त्त है तो शरीर में उसका प्रवेश कैसे हो सकेगा? क्योंकि एक मूर्त्त द्रव्य में दूसरे मूर्त्त द्रव्य का प्रवेश कैसे हो सकता? दूसरी बात यह है कि यदि आत्मा देह प्रमाण है तो बालक शरीर के बाद युवक शरीर के रूप में वह कैसे परिणत हो सकेगी? यदि वह बालक शरीर प्रमाण को छोड़कर युवक शरीर ग्रहण करती है तो वह शरीर की तरह अनित्य हो जाएगी। इत्यादि।

इसके उत्तर में जैनदर्शन कहता है कि मूर्त्तत्व का अर्थ यदि देह प्रमाणत्व से है तब तो यह हमें मान्य है। हम कथञ्चित् रूप से आत्मा को सावयव या मूर्त्त मानते हैं परन्तु मूर्त्तत्व का अर्थ रूपादिमान् हो तो हम यह कहते हैं कि असर्वगत या देह परिमाण होने से कोई मूर्त्त (रूपी) होना ही चाहिए, यह आवश्यक नहीं है। तुम्हारे मत में मन असर्वगत है फिर भी तुम उसे मूर्त्त नहीं कहते हो। शरीर में जैसे मन का प्रवेश होता है उसी तरह आत्मा के लिए भी समझ लेना चाहिए। भस्मादि मूर्त्त पदार्थ में जल आदि मूर्त्त पदार्थ का प्रवेश हो जाता है तो अमूर्त्त आत्मा का शरीर में प्रवेश कैसे नहीं होसकेगा? "बाल शरीर और युवक शरीर के क्रमशः त्याग और धारण करने से आत्मा अनित्य हो जाएगी" यह तुम्हारा कथन हमें मान्य है। हम कथञ्चित् रूप से आत्मा को अनित्य भी मानते हैं। प्रत्येक पदार्थ परिणामी है। साँप जैसे कुण्डावस्था को छोड़कर सरल अवस्था में आजाने पर भी वह सर्प ही है उसकी पर्याय में अन्तर अवश्य हुआ है; इसी तरह बाल-शरीर को छोड़कर युवक-शरीर धारण करने वाली आत्मा वही है पर उसकी पर्याय में परिवर्त्तन अवश्य होता है इस परिवर्त्तन की अपेक्षा आत्मा अनित्य है और द्रव्य की अपेक्षा नित्य है। अतः तुम्हारे द्वारा उपस्थित की गई आपत्ति निर्मूल है।

आत्मा को सर्वव्यापी मानने से सब आत्माओं का परस्पर एकीकरण हो जाने से प्रति व्यक्ति को होने वाला सुख-दुःख का पृथक् पृथक् अनुभव न हो सकेगा। आत्मा को सर्वव्यापी मानने पर एक व्यक्ति को सुख का अनुभव

होने पर सब को सुख का अनुभव होना चाहिए और एक के दुःख से सब को दुःख होना चाहिये। ऐसा होने पर धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक बन्ध-मोक्ष आदि की संगति नहीं बन सकती है। अतः आत्मा को स्वदेह परिमाण ही मानना चाहिये; सर्वव्यापक नहीं।

आत्मा स्वयं अपने कर्मों का भोक्ता है। जो कर्म करता है वही उसका साक्षात् भोक्ता है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि आत्मा अपने किये हुए कर्मों के अनुसार स्वयमेव सुख या दुःख का अनुभव करता है। कोई दूसरी ईश्वर जैसे शक्ति उसे कर्म का फल देती है, यह जैन दर्शन नहीं मानता है। इस विषय में 'ईश्वर' प्रकरण में विस्तार से कहा जा चुका है

भोक्ता

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा न तो एकान्त नित्य है और न एकान्त अनित्य। वह द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। पर्यायों का परिणमन होते रहने से आत्मा को परिणामी माना गया है। सांख्यदर्शन, और न्याय-वैशेषिक दर्शन आत्मा को कूटस्थ नित्य मानते हैं। जो कभी उत्पन्न न हो, कभी नष्ट न हो और स्थिर रहे अर्थात् जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो वह नित्य है। इस व्याख्या के अनुसार यदि आत्मा को नित्य मान ली जाय तो उसका नवीन शरीर धारण करना और पूर्व शरीर का त्याग करना नहीं बन सकता। इसके बिना जन्म-मरण नहीं घटित होता। जन्म-मरण के बिना इहलोक परलोक की व्यवस्था नहीं बनती। यदि आत्मा कूटस्थ नित्य है कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है तो ज्ञान-तप, धर्म आदि की क्या उपयोगिता रह जाती है? ये सब धर्म-कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। अतः आत्मा का कूटस्थ नित्यत्व युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। इसी तरह आत्मा को यदि सर्वथा अनित्य मान लिया जाय तो भी उक्त व्यवस्थाएँ घटित नहीं हो सकती हैं। यह बात बौद्ध विज्ञान-प्रवाह की चर्चा करते हुए पहले स्पष्ट की जा चुकी है। अतः आत्मा न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य ही है वह परिणमन शील है। परिवर्तनों के होते हुए भी वह द्रव्य रूप से नित्य है यही आत्मा का परिणामित्व है।

आत्मा का परिणामित्व

जैन दर्शन के अनुसार सकल विश्व में अनन्त आत्माएँ हैं। वह वेदान्त दर्शन की तरह अद्वैतवादी नहीं है। वेदान्त दर्शन का यह अभिप्राय है कि आत्मा एक और अद्वितीय है। उसके मत से प्रति क्षेत्र भिन्नत्व जो विविध जीव दिखाई देते हैं वे सब एक ही ब्रह्म के परिणाम या विवर्त्त हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त जीवात्माओं की पारमार्थिक सत्ता को वेदान्त दर्शन नहीं मानता।

जैनदर्शन इस आत्माद्वैतवाद को युक्तियुक्त नहीं समझता है। उसका मन्तव्य है कि यदि सब जीव मूल से एक ही होते, स्वतंत्र न होते तो एक जीव के सुख-दुःख से सब जीव सुखी या दुःखी होने चाहिए। एक जीव के बन्धन से सब बँधे हुए और एक जीव के मुक्त होने से सब मुक्त हो जाने चाहिए। परन्तु ऐसा होता हुआ अनुभव में नहीं आता। जीवों की भिन्न २ अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, अतः सब जीव भिन्न २ हैं। वेदान्त सम्मत आत्माद्वैतवाद का निषेध सांख्यदर्शन ने भी किया है। जैनों की तरह सांख्य दर्शन ने भी जीवों की विविधता को स्वीकार किया है।

एक दृष्टिकोण से इस आत्माद्वैतवाद को जैनदर्शन भी स्वीकार करता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिगत जीवों से लेकर सम्पूर्ण विकास प्राप्त सिद्धात्माओं में सत्ता, चैतन्य और आनन्द आदि कतिपय गुण सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इस गुण सामान्य की दृष्टि से यदि सब जीवों की एकता मानी जाती है तो वह यथार्थ है। परन्तु प्रत्येक आत्मा में कोई न कोई विशेषता है यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अतः जीवों की पृथक् २ सत्ता माननी चाहिए। इसलिए जैनदर्शन ने आत्मा को प्रतिक्षेत्रभिन्न कहा है।

आत्मा स्वभाव से शुद्ध और ज्योतिर्मय है परन्तु अनादि काल से वह कर्मपुद्गलों से बंधा हुआ होने से संसार में परिभ्रमण करता है। शुद्ध निश्चय नय के अनुसार आत्मा का स्वरूप सिद्धों आत्मा और कर्म के स्वरूप जैसा है। जीवात्मा और परमात्मा में भेद है वह कर्मकृति ही है। आत्मा के साथ किसी ज्ञान-सीमा से अतीत समय में कर्म का संयोग हो गया। यह कर्मसंयोग ही संसार और पुनर्जन्म का

कारण है। कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विचार स्वतंत्र प्रकरण में किया जाएगा। यहाँ तो इतना ही पर्याप्त है कि संसारी आत्मा कर्मों से संयुक्त है और वह जन्म-मरण करता रहता है। कर्म के कारण ही संसार में यह वैषम्य पाया जाता है ऐसे भी दार्शनिक हैं जो यह मानते हैं कि जब तक शरीर है तब तक उसमें आत्मा रहती है और शरीर के नष्ट हो जाने से आत्मा भी नष्ट हो जाती है। परलोक में गमनागमन करने वाली आत्मा को वे नहीं मानते। परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है। संसार का वैषम्य ही पुनर्जन्म और परलोक को सिद्ध कराता है।

तात्पर्य यह है कि जैनदर्शन के अनुसार आत्मा चैतन्यस्वभावी, अमूर्त्त, परिणामी, स्वदेहपरिमाण, कर्त्ता, साक्षाद् भोक्ता, संख्या से अनन्त और परलोक में गमनागमन करने वाला है। यह संसारी आत्मा का स्वरूप है। शुद्ध आत्मा तो सच्चिदानन्दमय है। वस्तुतः जैन आत्मविज्ञान अनुपम और वैज्ञानिक है।

कर्म का अविचल सिद्धान्त

कर्म और दार्शनिकसंसार:—

दार्शनिक संसार में कर्म का अखण्ड साम्राज्य है। विश्व के समस्त दार्शनिकों और विचारकों ने कर्म की प्रबल सत्ता को किसी न किसी रूप में अवश्यक स्वीकार किया है। कोई भी विचारक कर्म की सत्ता का अपलाप नहीं करता है। विविध बातों के सम्बन्ध में मतभेद होने पर भी कर्म की सत्ता के सम्बन्ध में सब दार्शनिक और तत्वचिन्तक एकमत हैं। इससे कर्म की निराबाध सत्ता प्रमाणित होती है। भारतीय तत्त्व-विचारकों ने कर्म के सम्बन्ध में पर्याप्त ऊहापोह किया है और उसकी विपुल शक्ति का अनुभव पूर्ण प्रतिपादन भी किया है। "कर्मणां गहना गतिः" कह कर इन्होंने कर्म की दुर्लंघ्य शक्ति का आभास करा दिया है।

सारे विश्वतंत्र के संचालन में कर्म की अगम्य शक्ति ही कार्य कर रही है। कर्म के कारण ही सूर्य प्रकाशित है, चन्द्रमा उद्योत करता है, हवा प्रवाहित होती है, वर्षा बरसती है, धान्य उत्पन्न होता है, वृक्षलता आदि फलते-

फूलते हैं और विश्व के समस्त कार्य व्यवस्थित और नियमित होते रहते हैं। संसार के रंगमंच पर देहधारियों को नचानेवाला सूत्रधार, कर्म ही है। इस के आगे किसी का कुछ वश नहीं चलता। इस प्रकार कर्म का अखण्ड शासन सारे विश्व पर चल रहा है। कोई भी प्राणी-जब तक वह कर्म के बन्धनों को तोड़ कर स्वतन्त्र नहीं हो जाता जब तक—कर्म के अविचल नियम से बच नहीं सकता। चाहे वह आकाश में चला जाय, दिशाओं के पार पहुँच जाय, समुद्र में घुस कर बैठ जाय, इच्छा हो वहाँ चला जाय परन्तु उसके कर्म उसे कहीं नहीं छोड़ते वे तो छाया की तरह उसके साथ ही रहने वाले है। इस प्रकार भारतीय तत्ववेत्ताओं ने कर्म की अविचल सत्ता को स्वीकार किया है।

ऐसा होते हुए भी कर्म-सिद्धान्त का जैसा स्पष्ट, सर्वाङ्ग पूर्ण और सुन्दर विवेचन जैनधर्म तथा जैनदर्शन में किया गया है वैसा और किसी भी दर्शन में नहीं किया गया है। मीमांसक दर्शन में इतना ही कहा गया है कि जो वैदिक कर्म-कांड करता है उसे स्वर्ग में सुखादि की प्राप्ति होती है। इसके सिवाय कर्म की प्रकृति उसका फल भोग आदि विषयों में उसने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। वेदान्त दर्शन भी ब्रह्माद्वैत वाद की सिद्धि करने में ही लगा रहा है उसने भी इस विषय में कोई विशिष्ट विवेचन नहीं किया। सांख्य और योग दर्शन के लिए भी यही बात है। वैशेषिक दर्शन में भी कर्म की तात्विक आलोचना नहीं है। ऐसा होते हुए भी जीव अपने कर्मों के कारण ही सुख दुःख आदि भोगते हैं, यह बात सब स्वीकार करते हैं। न्याय दर्शन, बौद्ध दर्शन और जैनदर्शन ने कर्म के विषय में ठीक २ विचार किया हैं। इनमें क्या २ साम्य और वैषम्य हैं यह दिक् सूचन करना यहाँ प्रसंगतः आवश्यक है।

न्यायदर्शन कर्म को पुरुषकृत मानता है और उसका फल भी होना चाहिए, यह भी स्वीकार करता है परन्तु उसका कहना है कि कई बार पुरुषकृत कर्म निष्फल भी होते देखे जाते हैं इसलिए वह कर्म और उसके फल के बीच में एक नवीन कारण—ईश्वर को स्थान देता है। उसका मन्तव्य है कि "कर्म अपने आप फल नहीं दे सकता है। यह निश्चित है कि फल कर्म के अनुसार ही होता है तदपि उसमें ईश्वर कारण है। जैसे वृक्ष बीज के अधीन है तदपि वृक्ष की उत्पत्ति में हवा, पानी, प्रकाश की आवश्यकता

रहती है, इसी प्रकार कर्म के अनुसार ही फल होता है तदपि फलोत्पत्ति में ईश्वर कारण है।" इस तरह न्यायदर्शन कर्म का साक्षात् फलभोग न मानते हुए ईश्वर को कर्मफल नियन्ता मानता है।

यह मान्यता बौद्ध और जैनदर्शन के विपरीत है। इन दोनों दर्शनों का मन्तव्य है कि कर्म-फल के लिए किसी दूसरी शक्ति के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं है। कर्म अपना फल अपने आप देता है। ईश्वर को इसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह कहा जा सकता है कि प्राणी बुरे कर्म तो कर लेता है परन्तु वह उसका फल भोगना नहीं चाहता अतः उसे कर्मफल देने वाली कोई दूसरी शक्ति माननी चाहिए। परन्तु यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि प्राणी के चाहने या न चाहने से कर्म अपना फल देते हुए नहीं रुक सकते हैं। प्राणी जब तक कर्म नहीं करता है वहाँ तक वह स्वतन्त्र है परन्तु जब वह कर्म कर चुकता है तो वह उस कृतकर्म के अधीन हो जाता है। अतः उसके न चाहने पर भी कर्म अपना फल उस पर प्रकट कर देता है। जैसे एक व्यक्ति गर्म पदार्थ खाकर धूप में खड़ा हो जाय और फिर चाहे कि मुझे प्यास न लगे तो उसके चाहने मात्र से प्यास लगे बिना नही रह सकती है। वे गर्म पदार्थ अपना असर बताए बिना नहीं रह सकते इसी तरह कर्म भी अपना फल दिये बिना नहीं रहते। अतः कर्म और कर्मफल के बीच में किसी और शक्ति का हस्तक्षेप उचित नहीं प्रतीत होता।

यह भी शंका की जा सकती है कर्म जड़ हैं इसलिए वे जीव को फल देने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? इसका समाधान यह है कि जीव के साथ कर्म जब सम्बद्ध होते हैं तब उनमें कर्म-फल देने की शक्ति उसी तरह प्रकट हो जाती है जैसे नेगेटिव और पोजिटिव तारों के मिश्रण से बिजली। अतः कर्म और उसके फल के लिए किसी तीसरी शक्ति की उसी तरह आवश्यकता नहीं है जैसे शराब का नशा लाने के लिए शराबी और शराब के अतिरिक्त किसी और व्यक्ति की। अतः जीव स्वयं अपने कर्मों का कर्त्ता है और स्वयं उसके फल का भोक्ता है यह मान्यता ही उचित और संगत है। न्यायदर्शन ने जो कर्म-फल के विषय में आपत्ति उपस्थित करते हुए कहा कि पुरुषकृत प्रयत्न कभी निष्फल भी जाते हुए देखे जाते हैं— इसका जैनाचार्यों ने सुन्दर समाधान किया है। उन्होंने कहा कि कर्म का फल कभी व्यर्थ नहीं होता है, इसका फल-जल्दी या देर से-कभी न कभी-अवश्य प्राप्त होता है।

कभी पापात्मा सुखी देखे जाते हैं और धर्मात्मा प्राणि कष्ट का अनुभव करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं इसका कारण 'कर्म का फल नहीं मिलना' नहीं है परन्तु यह उनके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों का फल समझना चाहिए। पापात्मा का सुखी देखा जाना उसके पूर्वकृत शुभकर्म का उदय है। वह अभी जो पाप कर रहा है उसका दुष्परिणाम उसे आगे भोगना पड़ेगा ही। इसी तरह जो धर्मात्मा अभी दुःखी देखा जाता है यह उसके पूर्वकृत अशुभ कर्म का परिणाम समझना चाहिए। अभी के किये हुए धर्मानुष्ठान का फल उसे भविष्य में अवश्य प्राप्त होगा। इस प्रकार कर्म और कर्मफल के कार्यकारण भाव में कोई दोष नहीं आता है। इस व्यवस्था के लिए कर्म और कर्मफल के बीच में ईश्वर को डालने की कोई आवश्यकता नहीं है।

"कर्म में स्वयं फल देने की शक्ति है" इस विषय में जैनदर्शन और बौद्धदर्शन एकमत हैं तदपि कर्म के स्वरूप के विषय में इनमें महत्वपूर्ण भेद हैं। बौद्धदर्शन के अनुसार कर्म केवल पुरुषकृत-प्रयत्न ही नहीं है अपितु एक विश्व व्यापी नियम है। अर्थात् बौद्ध कर्म को कार्यकारण भाव के रूप में मानते हैं। जबकि जैनदर्शन कर्म को स्वतंत्र पुद्गल द्रव्य मानता है। जीव की तरह कर्म भी स्वतंत्र जड़ पदार्थ है। जैनदर्शन के अनुसार कर्म-वर्गणा के पुद्गल सारे लोक में ऊपर-नीचे, आस पास, इधर-उधर सब जगह-भरे हुए हैं। जीव अपनी विभाव परिणति के द्वारा उन कर्म-पुद्गलों को अपने साथ सम्बन्धित कर लेता है जिनके कारण उसका मूल शुद्ध स्वरूप विकृत हो जाता है। इस प्रकार जैनदर्शन कर्म को जीव विरोधी गुण वाला जड़ द्रव्य मानता है। इस जीव सम्बद्ध कर्म शक्ति के द्वारा सारा विश्व-प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। यही संसार का मूल स्रोत है। यही आत्मा और परमात्मा के भेद का कारण है।

जैनदर्शन और कर्मः—

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा का वास्तविक मौलिक स्वरूप अनन्त ज्ञानमय, अनन्तदर्शनमय, अनन्त सुखमय, अनन्त शक्तिमय और शुद्ध ज्योतिर्मय है। वह स्फटिक मणि की तरह निर्मल और प्रकाशस्वभाव वाली है। परन्तु अनादि काल से वह विभावदशा को प्राप्त हो रही है। दर्शन मोह-अज्ञान के

कारण वह रागद्वेष रूप परिणति करता है। यह रागद्वेष की परिणति ही भाव कर्म है। यह आत्मगत संस्कार विशेष है। भाव कर्म के कारण आत्मा अपने आस पास चारों तरफ रहे हुए भौतिक परमाणुओं को आकृष्ट करता है और उन्हें एक विशेष स्वरूप अर्पित करता है। यह विशिष्ट अवस्था को प्राप्त भौतिक परमाणु-पुञ्ज ही द्रव्य कर्म या कार्मण शरीर कहा जाता है। यह कार्मण शरीर संसारवर्ती आत्मा के साथ सदा बना रहता है। आत्मा जब एक जन्म से दूसरे जन्म में जाती है तब भी यह सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ रहता है और यही स्थूल शरीर की भूमिका बनता है। परलोक या पुनर्जन्म का आधार रूप यही कार्मण-शरीर या कर्मतत्त्व है।

जैनदर्शन तात्त्विक दृष्टि से सब जीवात्माओं को समान मानता है फिर भी संसारवर्त्ती जीवात्माओं में जो भिन्नता और विविधता दृष्टिगोचर होती है उसका कारण यह कर्म ही है। कर्मों की भिन्नता के कारण जीवात्माओं में नानात्व पाया जाता है। तात्त्विक दृष्टि से सूक्ष्म निगोद के जीवों में भी वही अनन्तज्ञान-दर्शन मय आत्मा शक्तिरूप से विद्यमान है परन्तु उनकी शक्ति कर्मों के गाढ आवरण से अवरुद्ध है। यह आवरण जैसे २ हटता जाता है वैसे २ आत्मा का मूल स्वरूप प्रकट होता रहता है। कर्म कृत आवरण के वैविध्य से जीवों की अवस्था में भी वैविध्य पाया जाता है। इसलिए कोई आत्मा पृथ्वी काय में, कोई अप्काय में कोई अग्नि, वायु और वनस्पति काय में, कोई त्रस रूपमें–कोई पशुपत्ती की योनि में कोई मनुष्य की योनि में, कोई नरक और स्वर्ग योनि में नानाविध दुख–सुख का अनुभव करती है। आत्मा जैसे २ कर्म करती है उसीके अनुसार उसे भिन्न २ योनियों में भिन्न २ प्रकार के अच्छे या बुरे अनुभवों का वेदन करना पड़ता है।

पुनर्जन्म

यहाँ यह कहा जा सकता है कि आत्मा एक योनि से दूसरी योनि में जाती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है अतः यह कैसे माना जाय कि आत्मा परलोक में जाती है और उसका पुनर्जन्म होता है ? "जैसे दीवार पर अंकित चित्र दीवार के विना टिक नहीं सकता, न वह दूसरी दीवार पर जाता है और न वह दूसरी दीवार से आया है, वह दीवार पर ही उत्पन्न हुआ है और दीवार ही में लीन हो जाता है इसी तरह आत्मा भी शरीर में उत्पन्न होता है और

कभी पापात्मा सुखी देखे जाते हैं और धर्मात्मा प्राणि कष्ट का अनुभव करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं इसका कारण 'कर्म का फल न मिलना' नहीं है परन्तु यह उनके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों का फल समझना चाहिए। पापात्मा का सुखी देखा जाना उसके पूर्वकृत शुभकर्म का उदय है। वह अभी जो पाप कर रहा है उसका दुष्परिणाम उसे आगे भोगना पड़ेगा ही। इसी तरह जो धर्मात्मा अभी दुःखी देखा जाता है यह उसके पूर्वकृत अशुभ कर्म का परिणाम समझना चाहिए। अभी के किये हुए धर्मानुष्ठान का फल उसे भविष्य में अवश्य प्राप्त होगा। इस प्रकार कर्म और कर्मफल के कार्यकारण भाव में कोई दोष नहीं आता है। इस व्यवस्था के लिए कर्म और कर्मफल के बीच में ईश्वर को डालने की कोई ावश्यकता नहीं है।

"कर्म में स्वयं फल देने की शक्ति है" इस विषय में जैनदर्शन और दर्शन एकमत हैं तदपि कर्म के स्वरूप के विषय में इनमें महत्वपूर्ण है। बौद्धदर्शन के अनुसार कर्म केवल पुरुषकृत-प्रयत्न ही नहीं है अपितु ्श्व व्यापी नियम है। अर्थात् बौद्ध कर्म को कार्यकारण भाव के रूप ...ते हैं। जबकि जैनदर्शन कर्म को स्वतंत्र पुद्‌गल द्रव्य मानता है। जीव की तरह कर्म भी स्वतंत्र जड़ पदार्थ है। जैनदर्शन के अनुसार कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल सारे लोक में ऊपर-नीचे, आस पास, इधर-उधर सब जगह-भरे हुए हैं। जीव अपनी विभाव परिणति के द्वारा उन कर्म-उद्‌गलों को अपने साथ सम्बन्धित कर लेता है जिनके कारण उसका मूल शुद्ध स्वरूप विकृत हो जाता है। इस प्रकार जैनदर्शन कर्म को जीव विरोधी गुण वाला जड़ द्रव्य मानता है। इस जीव सम्बद्ध कर्म शक्ति के द्वारा सारा विश्व-प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। यही संसार का मूल स्रोत है। यही आत्मा और परमात्मा के भेद का कारण है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा का वास्तविक मौलिक स्वरूप अनन्त ानमय, अनन्तदर्शनमय, अनन्त सुखमय, अनन्त शक्तिमय और शुद्ध ज्योतिर्मय है। वह स्फटिक मणि की तरह निर्मल और

दर्शन और कर्मः–

प्रकाशस्वभाव वाली है। परन्तु अनादि काल से वह विभावदशा को प्राप्त हो रही है। दर्शन मोह-अज्ञान के

कारण वह रागद्वेष रूप परिणति करता है। यह रागद्वेष की परिणति ही भाव कर्म है। यह आत्मगत संस्कार विशेष है। भाव कर्म के कारण आत्मा अपने आस पास चारों तरफ रहे हुए भौतिक परमाणुओं को आकृष्ट करता है और उन्हें एक विशेष स्वरूप अर्पित करता है। यह विशिष्ट अवस्था को प्राप्त भौतिक परमाणु-पुञ्ज ही द्रव्य कर्म या कार्मण शरीर कहा जाता है। यह कार्मण शरीर संसारवर्ती आत्मा के साथ सदा बना रहता है। आत्मा जब एक जन्म से दूसरे जन्म में जाती है तब भी यह सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ रहता है और यही स्थूल शरीर की भूमिका बनता है। परलोक या पुनर्जन्म का आधार रूप यही कार्मण-शरीर या कर्मतत्त्व है।

जैनदर्शन तात्त्विक दृष्टि से सब जीवात्माओं को समान मानता है फिर भी संसारवर्त्ती जीवात्माओं में जो भिन्नता और विविधता दृष्टिगोचर होती है उसका कारण यह कर्म ही है। कर्मों की भिन्नता के कारण जीवात्माओं में नानात्व पाया जाता है। तात्विक दृष्टि से सूक्ष्म निगोद के जीवों में भी वही अनन्तज्ञान-दर्शन मय आत्मा शक्तिरूप से विद्यमान है परन्तु उनकी शक्ति कर्मों के गाढ आवरण से अवरूद्ध है। यह आवरण जैसे २ हटता जाता है वैसे २ आत्मा का मूल स्वरूप प्रकट होता रहता है। कर्म कृत आवरण के वैविध्य से जीवों की अवस्था में भी वैविध्य पाया जाता है। इसलिए कोई आत्मा पृथ्वी काय में, कोई अप्काय में कोई अग्नि, वायु और वनस्पति काय में, कोई त्रस रूपमें–कोई पशुपक्षी की योनि में कोई मनुष्य की योनि में, कोई नरक और स्वर्ग योनि में नानाविध दुख–सुख का अनुभव करती है। आत्मा जैसे २ कर्म करती है उसीके अनुसार उसे भिन्न २ योनियों में भिन्न २ प्रकार के अच्छे या बुरे अनुभवों का वेदन करना पड़ता है।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि आत्मा एक योनि से दूसरी योनि में जाती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है अतः यह कैसे माना जाय कि आत्मा परलोक में जाती है और उसका पुनर्जन्म होता है? "जैसे दीवार पर अंकित चित्र दीवार के बिना टिक नहीं सकता, न वह दूसरी दीवार पर जाता है और न वह दूसरी दीवार से आया है, वह दीवार पर ही उत्पन्न हुआ है और दीवार ही में लीन हो जाता है इसी तरह आत्मा भी शरीर में उत्पन्न होता है और

पुनर्जन्म

शरीर में ही लीन हो जाता है। न वह कहीं दूसरे लोक से आया है और न कहीं दूसरे लोक में जाता है" यह क्यों न मान लिया जाय? आत्मा परलोक से आती है और पुनः परलोक में जाती है इसका क्या प्रमाण है?

यह शंका करना ठीक नहीं है। आत्मा स्वरूप से अमूर्त है इसलिए वह दिखाई नहीं देती। यद्यपि कर्मों के कारण वह तैजस कार्मण शरीर युक्त होती है तदपि ये शरीर भी अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं देते हैं। इसलिए शरीर में प्रविष्ट होती हुई और निकलती हुई आत्मा दिखाई नहीं देती। दिखाई नहीं देने मात्र से उसका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता है। पितामह प्र-पितामह आदि दिखाई नहीं देते इससे उनका अभाव था ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है। सूक्ष्म शरीर युक्त होते हुए भी आत्मा आता जाता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता यद्यपि निम्न चिन्हों के द्वारा उसका आवागमन सिद्ध होता है:—

(१) प्रत्येक प्राणी को अपने शरीर का बड़ा अनुराग हुआ करता है। अभी अभी उत्पन्न हुआ लघु कीट भी अपने शरीर की सुरक्षा चाहता है घातक या बाधक कारणों के उपस्थित होते ही वह भागने लगता है। यह उसके शरीर के प्रति अनुराग को सूचित करता है। जिसे जिस विषय का अनुराग होता है वह उससे चिर परिचित और अभ्यस्त होता है। जन्म लेते ही शरीर के प्रति प्राणिमात्र को अनुराग देखा जाता है वह इस बात को सूचित करता है कि यह प्राणी शरीर-धारण करने का अभ्यस्त है। इसने इस जन्म के पहले भी शरीर धारण किये हैं तभी तो शरीर के प्रति इसने इतना अनुराग है। इससे सिद्ध हो होता है कि प्राणी ने जन्मान्तर में भी शरीर धारण किये हैं। इससे जन्मान्तर से आना सिद्ध होता है।

(२) आज के उत्पन्न हुए बालक में स्तन-पान की इच्छा देखी जाती है। यह इच्छा पहली इच्छा नहीं है क्योंकि जो इच्छा होती है वह अन्य इच्छा पूर्वक होती है जैसे दो तीन वर्ष के बालक की इच्छा। स्तन-पान की इच्छा भी इच्छा है इस लिए वह पहले पहल नहीं हुई किन्तु उसके पूर्व की इच्छा से उत्पन्न हुई है। जिसने जिस पदार्थ का उपयोग न किया हो उसे

उस विषय की इच्छा नहीं हो सकती। उसी दिनका पैदा हुआ बालक माता के स्तन-पान की इच्छा करता है। यदि उसने पहले स्तन-पान न किया होता तो उसे यह अभिलाषा नहीं हो सकती। नवीन बालक को स्तन-पान की इच्छा होती है इससे विदित होता है कि उसने पहले भी माता के स्तन का पान किया है। इससे जीव का परलोक से आना सिद्ध होताहै।

ऊपर दिया हुआ चित्र का दृष्टान्त संगत नहीं है क्योंकि वह वैषम्य युक्त दृष्टान्त है। चित्र अचेतन है अतः वह स्वयं गमनागमन नहीं कर सकता है। आत्मा तो सचेतन है वह गमनागमन कर सकता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति एक गांव में कुछ दिन रहने पर दूसरे गांव में जाकर रह सकता है इसी तरह आत्मा भी एक शरीर में अमुक काल तक रह कर फिर दूसरे शरीर में आ—जा सकती है।

(३) विश्व में पाया जाने वाला वैषम्य भी पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को सिद्ध करता है। इस जगत् में कोई प्रकाण्ड पण्डित है तो कोई मूर्ख-शिरोमणि। कोई अपार ऐश्वर्य का स्वामी है तो कोई दर-दर का भिखारी। कोई राजा है और कोई रंक, कोई रूप का भण्डार है तो कोई कुरूप, कोई सुन्दर स्वास्थ्य का आनन्द ले रहा है तो कोई रोगों का घर बना हुआ है, कोई ऊँचे २ प्रासादों में विलासमय अठखेलियों में लीन है तो किसी को फूस की झोंपड़ी भी नहीं मिलती। दुनिया का यह वैषम्य क्यों है? बिना कारण तो कोई कार्य होता नहीं, अतः इसका कारण है पूर्वकृत पुण्य और पाप। संसार में ऐसा भी देखा जाता है कि एक व्यक्ति बहुत धर्मात्मा है तदपि वह दुःखी है और एक पापात्मा पाप करते हुए भी सुखी है। धर्म का फल दुःख और पाप का फल सुख तो कभी हो ही नहीं सकता अतः यह सहज सिद्ध होता है कि धर्मात्मा प्राणी धर्म करते हुए भी पूर्व जन्मकृत पाप के कारण सुखी है। यह भी पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का प्रमाण है।

(४) गर्भस्थ प्राणी को सुख-दुःख होना भी पूर्वजन्म को सिद्ध करता है। क्योंकि गर्भ में तो उसने कोई पापकर्म या पुण्यकर्म नहीं किया, तो उसके सुख-दुःख का कारण क्या हो सकता है? माता पिता उसके सुख-दुःख के कारण नहीं हो सकते क्योंकि माता पिता के कार्यों का फल उसे भोगना

पड़े यह तो हो नहीं सकता। अन्य के कर्म का फल किसी को मिले यह तो हो नहीं सकता। यदि ऐसा हो तब तो सब व्यवस्था ही छिन्नभिन्न हो जाय। अतः गर्भस्थ प्राणी के सुख-दुःख का कारण उसके पूर्व जन्मकृत पुण्य-पाप हैं, यह सिद्ध होता है।

(५) कई २ छोटे बालकों में भी असाधारण प्रतिभा और विलक्षणता पाई जाती है। डाक्टर यंग दो वर्ष की अवस्था में पुस्तक पढ लेते थे। इस प्रकार की कई असाधारण बातें समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं। यह असाधारणता उनके पूर्व जन्म के संस्कारों का परिणाम है। इन प्रमाणों से आत्मा का परलोक में आवागमन सिद्ध होता है।

कर्मवादी समस्त दार्शनिकों ने पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान लेने पर कर्म और कर्मफल में कभी व्यभिचार (दोष) नहीं आ सकता है। किये हुए कर्म का फल कभी व्यर्थ नहीं होता है। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। इस तरह कर्मवाद यह सिखाता है कि प्राणी स्वयं अपने वर्त्तमान और भावी का निर्माता है। वर्तमान का निर्माण भूत के आधार पर और भविष्य का निर्माण वर्तमान के आधार पर होता है। तीनों काल की पारस्परिक संगति कर्मवाद पर अवलम्बित है।

कर्म और आत्मा के सम्बन्ध के विषय में विचारकवर्ग में नाना प्रकारके प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। कोई यह शंका करता है कि

कर्म का आत्मा के साथ सम्बन्ध

आत्मा तो अमूर्त्त है और कर्म मूर्त्त हैं, तो अमूर्त्त के साथ मूर्त्त का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? कोई यह प्रश्न करता है कि आत्मा का मूल स्वरूप तो शुद्ध-बुद्ध है तो उसके साथ कर्म का सम्बन्ध क्यों हुआ? कब हुआ? और कैसे हुआ? शुद्ध आत्मा के साथ यदि किसी तरह सम्बन्ध होना मान लिया जाय तब तो मुक्तात्मा के साथ भी कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं होगा? इस प्रकार के प्रश्नों का जैनाचार्यों ने सुन्दर उत्तर दिया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार चैतन्य-शक्ति अमूर्त्त है और शराब मूर्त्त है तदपि मूर्त्त शराब का अमूर्त्त चैतन्य शक्ति के साथ

सम्बन्ध होता है जिसके कारण शराब पीते ही चैतन्य शक्ति पर आवरण आ जाता है। इसी तरह आत्मा अमूर्त्त है और कर्म मूर्त्त हैं, तदपि मूर्त्त कर्मों से अमूर्त्त आत्म-शक्ति का आवरण हो जाता है। अमूर्त्त के साथ मूर्त्त का सम्बन्ध होना अघटित नहीं है

शुद्ध-बुद्ध आत्मा के साथ कर्म पुद्गल का सम्बन्ध क्यों हुआ, कब हुआ और कैसे हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर सभी तत्त्वविचारकों ने एक सा ही दिय है। सांख्ययोग दर्शन में प्रकृति-पुरुष का सम्बन्ध, वेदान्त दर्शन में माया और ब्रह्म का सम्बन्ध, न्यायवैशेषिक दर्शन में आत्मा और अविद्या, का सम्बन्ध, कैसे, कब और क्यों हुआ ? इसका उत्तर देते हुए वे सब विचारक यही कहते हैं कि इन दोनों का सम्बन्ध अनादि कालीन है क्योंकि इस सम्बन्ध का आदि चरणज्ञान सीमा के सर्वथा बाहर है। जैनदर्शन का भी यही मन्तव्य है कि आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक समय में आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध हुआ। यदि आत्मा और कर्म के सम्बन्ध की कोई आदि मान ली जाती है तो प्रश्न होता है कि उस सम्बन्ध के पहले आत्मा शुद्ध-बुद्ध था तो उसे कर्म क्यों कर लगे ? शुद्ध आत्मा को भी कर्म लग सकते हैं तो मुक्त होने के बाद भी कर्म लग सकते हैं यह मानना पड़ेगा। यह इष्ट नहीं है। अतः आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि कालीन है। एक बार प्रयत्न पूर्वक कर्मों को आत्मा से सर्वथा अलग कर देने पर पुनः कर्म क्यों नहीं लगते ? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण तत्वचिन्तकों ने इस प्रकार किया है कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध-पक्षपाती है। शुद्धि के द्वारा आत्मिक गुणों का सम्पूर्ण विकास हो जाने के बाद रागद्वेष-अज्ञान आदि दोष जड़ से उच्छिन्न हो जाते हैं अतः वे प्रयत्न पूर्वक शुद्धि प्राप्त आत्मा में स्थान पाने के लिए सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं।

कर्म और आत्मा का सम्बन्ध अनादि मानलेने पर भी यह शङ्का खड़ी होती है कि जो वस्तु अनादि है उसका अन्त कैसे हो सकता है ? आत्मा और कर्म का सम्बन्ध यदि अनादि है तो उसका अन्त नहीं हो सकता है और कर्मों का अन्त हुए विना मोक्ष नहीं हो सकता है। आत्मा और कर्म का अनादि सम्बन्ध मानने पर यह बाधा क्यों नहीं उपस्थित होगी ?

इसका समाधान करते हुए तत्वविचारकों ने कहा कि जो अनादि है वह अनन्त ही है ऐसा कोई नियम नहीं है। खान में स्वर्ण और मिट्टी का संयोग अनादि कालीन है तदपि अग्नि आदि के प्रयोग से उसका अन्त होता है। अतः अनादि होते हुए भी कोई वस्तु सान्त हो सकती है। कर्म और आत्मा का सम्बन्ध इसी प्रकार का है। वह अनादि होते हुए भी सान्त है। ज्ञान-ध्यान-तप आदि के द्वारा कर्म बन्ध से मुक्ति हो सकती है। अतः आत्मा और कर्म का सम्बन्ध आनादि-सान्त है। प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त हो सकता है। कर्म सम्बन्ध प्रवाह रूप से अनादि होते हुए भी व्यक्ति रूप से सादि भी है क्योंकि रागद्वेषादि की परिणति से कर्म वासना की उत्पत्ति जीवन में होती रहती है। अतः आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि-सान्त, सादि सान्त और अनादि अनन्त भी (भिन्न २ विवक्षाओं की अपेक्षा से) कहा जा सकता है। सामान्य रूप से यह सम्बन्ध अनादिसान्त माना जाता है।

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ

जैनदर्शन में कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ मानी गई हैं, वे इस प्रकार हैं:– (१) ज्ञानावरणीय कर्म (२) दर्शनावरणीय कर्म (३) वेदनीय कर्म (४) मोहनीय कर्म (५) आयुष्यकर्म (६) नाम कर्म (७) गोत्र कर्म और (८) अन्तराय कर्म।

ज्ञानावरणीय कर्मः– यह कर्म आत्मा के विशुद्ध ज्ञान का आवरण करता है। जिस प्रकार सूर्य मेघों से आच्छन्न हो जाता है इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म रूपी मेघों से आत्मा का ज्ञान-भानु आच्छन्न होता है। मेघ-पटल जितने घने होते हैं उतना ही सूर्य का प्रकाश मन्द होता है और मेघ-पटल जितने हल्के होते हैं उतना ही अधिक सूर्य का प्रकाश होता है। जीवों में पाया जाने वाला ज्ञान का तारतम्य इस कर्म के क्षयोपशम की विविधता के कारण है। जब यह कर्म सर्वथा दूर हो जाता है तब आत्मा का पूर्ण ज्ञातृ-स्वभाव प्रकट हो जाता है, वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहलाता है। चाहे जितने घने मेघों का आवरण होने पर भी सूर्य का प्रकाश इतना तो प्रकट ही रहता है कि जिससे रात्रि और दिन का भेद किया जा सके। इसी तरह ज्ञानावरणीय कर्मों का

बिलतम आवरण होने पर भी जीव में न्यूनतम ज्ञान तो अवश्य रहता है। यदि ऐसा न हो तो जीव-अजीव में कोई भेद न रहे। सूक्ष्मतम चैतन्य निगोद के जीवों में पाया जाता है। यह ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का घात करने से घाति कर्म कहा जाता है।

दर्शनावरणीय कर्मः— यह आत्मा के स्वाभाविक दर्शन गुण को आच्छादित करता है। जैसे द्वारपाल दर्शक को राजा के दर्शन करने से रोकता है इसी तरह यह कर्म भी आत्मा को दर्शन से वञ्चित करता है। यह भी घाति कर्म कहा जाता है।

वेदनीय कर्मः— यह कर्म आत्मा के अव्याबाध सुख स्वरूप को आच्छादित कर देता है। इसके प्रभाव से आत्मा बाह्य-सांसारिक-सुख या दुःख का अनुभव करता है। यह कर्म दो तरह का है-सातावेदनीय और असातावेदनीय। जिस कर्म के कारण जीव दुःख का अनुभव करता है वह असातावेदनीय है और जिसके कारण जीव को बाह्य- सांसारिक-साता की प्राप्ति हो वह सातावेदनीय है इसके स्वरूप को समझाने के लिए शहद से भरी हुई तलवार को चाटने का दृष्टान्त दिया गया है। जैसे शहद लिपटी तलवार को जीभ से चाटने से क्षणिक सुख-मिठास का अनुभव होता है परन्तु जिव्हा के कट जाने से बहुत काल तक दुःख उठाना पड़ता है। वैसे ही सांसारिक सुखोपभोग क्षणिक साता देने वाले हैं इनका परिणाम अन्ततः बड़ा दारुण है। यह अघाति कर्म कहा जाता है।

मोहनीय कर्मः— यह सब कर्मों का राजा है। यह अपनी शक्ति के कारण आत्मा को ऐसा बेभान बना देता है जिससे वह अपने मूल स्वरूप को भूल कर पर स्वरूप को अपना समझने लगता है। जैसे शराबी शराब पीने से बेभान हो जाता है इसी तरह इस कर्म के कारण आत्मा अपनी सुध-बुध भूल बैठता है। यह आत्मा की शुद्ध श्रद्धा-शक्ति को विकृत कर देता है। इसके कारण उसकी सब प्रवृत्तियाँ विपरीत हो जाती हैं। इस कर्म के दो रूप हैं:—दर्शनमोह और चारित्र मोह। दर्शनमोह के कारण शुद्ध-श्रद्धा नहीं हो सकती और चारित्रमोह के

कारण आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। जब आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ से इस कर्म को, इस मोहराज को परास्त कर देता है तो शेष कर्म हारे हुए राजा की सेना की तरह भाग जाते हैं। इसे दूर करने का प्रयत्न करना ही प्रथम पुरुषार्थ है। यह आत्मा के मूल गुण का घात करने से घाति कर्म कहा जाता है।

आयुष्यकर्मः—जैसे कैदी बेड़ी में जकड़ा रहता है इसी तरह इस कर्म के प्रभाव से जीवात्मा शरीर रूपी बेड़ी में बँधा रहता है। यह अघातिकर्म है।

नामकर्मः—जैसे चित्रकार नाना प्रकार के चित्र बनाता है इसी तरह इस कर्म के प्रभाव से जीव नाना प्रकार के शुभाशुभ रूप धारण करता है। शरीर, इन्द्रिय, गति आदि की प्राप्ति का कारण यह कर्म है। यह अघाति कर्म कहा जाताहै।

गोत्रकर्मः—जैसे कुम्भकार कभी छोटा वड़ा बनाता है कभी बड़ा घड़ा बनाता है इस तरह इस कर्म के प्रभाव से जीव कभी उच्च कहलाता है और कभी नीच कहलाता है। यह भी अघाति कर्म है।

अन्तराय कर्मः—यह आत्मा के अनन्त बल-वीर्य को अवरुद्ध करता है। आत्मा में अनन्त सामर्थ्य है परन्तु इस कर्म के कारण वह प्रकट नहीं होने पाता। जैसे २ इसका क्षयोपशम होता है वैसे २ जीव सामर्थ्य प्राप्त करता है। जैसे राजा किसी याचक पर प्रसन्न होकर कुछ देना चाहता है परन्तु भण्डारी उसे देने नहीं देता। उसी तरह आत्मा कुछ करना चाहता है परन्तु यह कर्म उसमें विघ्न उपस्थित करता है यह आत्मा के मूल गुण का घात करने से घाति कर्म कहलाता है।

इस प्रकार जैनदर्शन उक्त आठ मूल कर्मप्रकृतियाँ मानता है। इनके अवान्तर भेद-प्रभेद, इनकी स्थिति, इनका उदय-उदीरणा-बंध और सत्ता, इनका संक्रमण, स्थितिघात, रसघात, उद्वर्त्तन-अपवर्त्तन आदि २ बातों का जैनदर्शन ने खूब स्पष्टता के साथ वर्णन किया है। जैनसाहित्य में कर्मविषयक विवेचन ने पर्याप्त स्थान ले रक्खा है। कर्म के सम्बन्ध में जितनी स्पष्टता

जैनदर्शन ने की है वह और किसी ने नहीं की। जैनसाहित्य कर्म विवेचन से भरा हुआ है। अतः जैनों का कर्म सिद्धान्त प्रतिपादन अनुपम है। यह जैनदर्शन की एक महती विशेषता है।

कारण के बिना कार्य नहीं होता, यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है। अतः कर्मबन्ध का कारण क्या है, प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। जैनाचार्यों ने

कर्मबन्ध का मुख्य कारण आत्मा की विभाव परिणति को बताया

कर्म बन्ध के कारण है। आत्मा मोह-अज्ञान-के कारण राग द्वेष के चक्कर में पड़

और मुक्ति के उपाय जाता है जिससे वह द्रव्य कर्म परमाणुओं को अपनी ओर

आकृष्ट कर लेता है। राग और द्वेष ही कर्म बन्ध के मुख्य कारण हैं। कहा भी है-"रागो य दोसो दुवि कम्म बीयं"। संसार वृक्ष के लिए राग और द्वेष ही कर्म के बीज है। इसी को विशेष स्पष्टता के साथ कहते हुए कर्मबन्ध के पांच कारण भी बताये गये हैं-१ मिथ्यात्व (अशुद्धश्रद्धा) २ अविरति (त्याग न करना) ३ प्रमाद (असावधानता) ४ कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) और ५ अशुभ योग (अशुभ प्रवृत्ति)।

जैनदर्शन में कर्मबन्ध का मुख्य आधार वाह्यक्रियाओं को नहीं बल्कि भावनाओं को माना गया है बाहर से क्रिया यदि पापमय भी दिखाई देती हो तदपि उसमें यदि भाव-विशुद्धि है तो वह चिकने कर्म बन्धन का कारण नहीं होती। इसके विपरीत यदि भावों में मलिनता है तो ऊपर से अच्छी प्रतीत होने वाली क्रिया से भी पाप का ही बन्धन होता है। वाह्य क्रिया पुण्य-पाप की सच्ची कसौटी नहीं है। इसका आधार भावनाओं पर है। अतः "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" कहा गया है। जैनसाहित्य में प्रत्येक कर्म-प्रकृति के बन्ध-कारणों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। यहाँ उनका विस्तार भय से उल्लेख नहीं किया जाता है।

कर्म बन्ध के कारणों का प्रतिपादन करने के साथ ही साथ कर्मों के चक्कर से छुटकारा पाने के उपायों का भी जैनदर्शन ने स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। कर्म बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि नवीन आते हुए कर्मों को रोकने का प्रयत्न किया जाय और पुराने बँधे हुए कर्मों को ज्ञान, ध्यान, रूप आदि के द्वारा दूर किया जाय। नवीन

कर्मों के आगमन को रोकने का नाम "संवर" है और पुराने कर्मों को नष्ट करने का नाम "निर्जरा" है। संवर और निर्जरा के द्वारा जब आत्मा कर्म के बन्धनों को तोड़ डालता है तब वह मुक्त हो जाता है।

आत्मा को बन्धनों में बाँधने वाले मुख्यतया अज्ञान, राग और द्वेष हैं। इनके कारण ही आत्मा की यह बद्ध अवस्था है। इन कारणों को दूर कर देने से आत्मा मुक्त हो सकता है सम्यग्दर्शन (सत्यश्रद्धा) और मोक्षाभिमुख ज्ञान के द्वारा अज्ञान की निवृत्ति हो सकती है और मध्यस्थ भाव के कारण रागद्वेष का उन्मूलन हो सकता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र ही मोक्ष को प्राप्त करने का राजमार्ग है। सबसे पहले यह श्रद्धा होनी चाहिए कि "मैं इन सांसारिक पदार्थों से भिन्न हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप ज्ञानमय, दर्शनमय, सुखमय और शक्तिमय है। वे बाह्यपदार्थ मेरे नहीं हैं और मैं इनका नहीं हूँ।" इस प्रकार जब आत्मा की वास्तविक प्रतीति होती है तब सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन पूर्वक मोक्षाभिमुख चैतन्य प्रवृत्ति ही सम्यग्ज्ञान है। शुद्ध-श्रद्धा और शुद्ध ज्ञान के साथ कल्याण पथ का अनुसरण करना सम्यक् चारित्र है। शुद्ध-ज्ञान और शुद्ध क्रियाओं के बलपर यह जीव कर्म के बन्धनों से मुक्त हो सकता है। आत्मज्ञान और मध्यस्थभाव यही मुक्ति के मूल उपाय हैं। ध्यान, व्रत, नियम, तप आदि २ इन्हीं मूल कारणों के पोषक होने से उपादेय हैं।

जो आत्मा जितने अंश में मोह और रागद्वेष की परिणति को मन्द करता है वह उतना ही आत्मस्वरूप के निकट पहुँचता है। इस तर-तमता के कारण ही प्राणियों की विकसित या अविकसित अवस्थाएँ होती हैं। आध्यात्मिक विकास क्रम की अवस्था का जैन परम्परा में विशद वर्णन है। वह गुणस्थान के रूप में प्रसिद्ध है। इनका स्वतंत्र वर्णन अलग प्रकरण में किया जाएगा। जो आत्मा मोह और रागद्वेष को नष्ट कर डालता है वह मुक्तात्मा हो जाता है। वह ईश्वर हो जाता है। वह अपने मूल स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। उसमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहने पाता हैं। कर्मवाद का यह सिद्धान्त यह प्रेरणा करता है कि "हे आत्माओं! उठो, पुरुषार्थ करो, अपने प्रभुत्व के दर्शन करो और कर्म के बन्धनों को तोड़कर

परमात्म भाव को प्रकट करो। तुम स्वयं परमात्मा हो। आवश्यकता है उस पर आये हुए आवरण को अपने प्रबल पुरुषार्थ से चीर डालने की।" इस प्रकार कर्म का महान् सिद्धान्त पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वाला महामंत्र है।

कर्मवाद की व्यावहारिकता

कर्मवाद का सिद्धान्त व्यावहारिक जीवन में शान्ति का संचार करने वाला, वैराग्य के घने अन्धकार में प्रकाश की किरण चमका देने वाला और स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाने वाला गुरु भी है। मानव के जीवन में ऐसे भी अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें उसकी बुद्धि विचलित हुए बिना नहीं रहती। हर्ष और शोक के प्रसंगों में मानव क्रमशः उन्मत्त और अधीर हो उठता है। ऐसे प्रसंग पर उसकी बुद्धि को समतोल रखने के लिए कर्म के सिद्धान्त की महती उपयोगिता है। मानव जब यह जान लेता है कि मुझे प्राप्त होने वाला सुख दुःख मेरे ही शुभाशुभ कार्यों का परिणाम है, मैं ही मेरे शुभाशुभ निर्माण का निर्माता हूँ, इसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं है तो उसे एक प्रकार की शान्ति का अनुभव होता है। सुख के समय में संयम और दुःख के प्रसंग में आश्वासन की सीख देने वाला कर्मवाद ही होता है।

जो आत्मा कर्म सिद्धान्त के तत्त्व को हृदयंगम कर लेता है वह कभी अपने को प्राप्त होने वाले दुःख के लिए किसी दूसरे को नहीं कोसता है। वह दूसरे पर कभी आक्षेप नहीं करता है कि इसके कारण मुझे यह हानि उठानी पड़ी या दुःख सहन करना पड़ा। वह अपने दुःख के लिए अपने आपको उत्तरदायी मानता है। ऐसा करने से आत्म निरीक्षण करने की प्रेरणा मिलती है और दूसरों पर आक्षेप करने की अनुचित प्रवृत्ति से सहज ही मुक्ति मिलती है।

जब जीवात्मा को यह विश्वास हो जाता है कि मेरा उत्थान और पतन मेरे हाथों में ही है तब वह एकदम उत्साह और शौर्य से भर जाता है। निराशा का वातावरण दूर हो जाता है और अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। इस निर्माण कार्य में आने वाले विघ्न बाधाओं के सामने भी वह महान् हिमाचल की तरह अडोल रह सकता है। कर्मवाद जीवन में नवीन प्राण फूँक देता है। वह जीवन में ऐसा प्रकाश

भर देता है कि वह नवीन रूप में जगमगा उठता है। दुःख और नैराश्य से मुरझाया हुआ पौधा कर्मवाद से नव जीवन प्राप्त कर लहलहा उठता है। यह है कर्मवाद का व्यावहारिक उपयोग।

कर्मवाद जहाँ एक ओर व्यावहारिक शान्ति का मूल है वहाँ वह दूसरी ओर आत्मा को परमात्मा बनने की प्रेरणा करने वाला अनुपम तत्त्व है।

—❀ आध्यात्मिक विकास क्रम ❀—

(गुणस्थान)

जैनदर्शन का तत्वज्ञान-निरूपण सर्वतोमुखी है। तत्वज्ञान के प्रत्येक अंग का तलस्पर्शी विवेचन जैनदर्शन में प्राप्त होता है जहाँ यह बाह्य जगत् की समस्याओं पर प्रकाश डालता है वहाँ अन्तर्जगत् की गूढतम गुत्थियों को सुलझाने में भी उतना ही अग्रसर प्रतीत होता है। एक ओर यह व्यवहार का विवेचन करता है और दूसरी ओर निश्चय की गम्भीर विचारणा भी। एक ओर यह निवृत्ति का प्रतिपादन करता है वहीं यह प्रवृत्ति का विधान भी करता है एक ओर यह भौतिक द्रव्यों का वैज्ञानिक निरूपण करता है और दूसरी ओर अध्यात्मा के मार्मिक रहस्यों का उद्घाटन भी। इस प्रकार बाह्य जगत् और और अन्तर्जगत, निश्चय और व्यवहार, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भौतिक और आध्यात्मिक सब प्रकार के तत्त्वों का विशद और विस्तृत विवेचन जैनदर्शन में मिलता है। इस प्रकरण में जैनदृष्टि से आध्यात्मिक विकास क्रम पर विचार करता है।

जैनदर्शन में आत्मा के सम्बन्ध में पूरा २ विचार किया गया है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप क्या है? उसकी विभिन्न अवस्थाओं का हेतु क्या है? उसकी वैभाविक दशा क्यों कर हुई और उसकी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त करने का मार्ग कौनसा है? आत्मा का पतन और विकास का आधार क्या है? आत्मा का विकास क्रम किस प्रकार है? आदि आदि विविध प्रश्न प्रत्येक अध्यात्मविद्या के अभ्यासी के मस्तिष्क में स्वाभाविक रूप से उठते हैं। इन सब प्रश्नों का जैनदर्शन ने युक्तियुक्त समाधान किया है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा स्फटिक के समान निर्मल, सकल पदार्थों का ज्ञाता और परिपूर्ण-आनन्दमय है । मोह अज्ञान के कारण वह राग-द्वेष रूप विभाव परिणति करता है। जिसके कारण वह कर्म-बन्धनों से बँधजाता है। फलस्वरूप उसकी चेतना और अनन्त शक्ति पर घना आवरण आजाता है । यह आवरण जितना घना होता है उतनी ही आत्मिक शक्तियाँ मन्द हो जाती हैं और यह आवरण जितना हल्का होता है उतनी ही आत्मिक-शक्तियाँ प्रकट और तीव्र रहती हैं। कर्मों का आवरण जितने २ अंश में हटता जाता है उतने २ अंश में आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता जाता है और यह आवरण जैसे २ बढ़ता है वैसा २ आत्मा का शुद्ध स्वरूप तिरोहित होता जाता है। मोह जनित कर्मों के आवरण की तीव्रता या मन्दता के कारण आत्मा को विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ता है। जब आवरणों की तीव्रतम अवस्था होती है तब आत्मा निम्नतम अवस्था में रहता है और जब आवरण सर्वथा क्षीण हो जाते हैं तब आत्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में आ जाता है; यह उच्चतम अवस्था है। इन दोनों परकाष्ठाओं के बीच की संख्यातीत अवस्थाएँ हैं। सब का संक्षेप में वर्गीकरण करके जैनदर्शन ने चवदह सोपान बनाये हैं जिन पर चढ़कर आत्मा अपनी सर्वोच्च स्थिति पर पहुंच जाता है। आध्यामिक विकास के ये चवदह सोपान गुणस्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो जिस सोपान पर स्थित है उसके लिए ऊपर का सोपान उच्च है और नीचेका सोपान नीच है। इस तरह ये चवदह सोपान आत्मा के उत्तरोत्तर विकास के द्योतक हैं। गुणस्थान की परिभाषा भी यही की गई है; गुणों—आत्मिक शक्तियों के विकास की क्रमिक अवस्था कहते हैं गुणस्थान के चवदह भेद निम्न प्रकार से किये गये हैं:—

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान (२) सास्वादन गुणस्थान (३) मिश्र-गुणस्थान (४) अविरत समदृष्टि गुणस्थान (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त संयत गुणस्थान (७) अप्रमत्त संयत- गुणस्थान (८) निवृत्ति बादर गुणस्थान (९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुण. (११) उपशान्तमोह गुणस्थान (१२) क्षीणमोह गुणस्थान (१३) सयोगि केवली गुणस्थान और १४ अयोगि केवली गुणस्थान।

आत्मा का सर्वोपरी प्रतिद्वन्द्वी मोह है। जब तक मोह की प्रबलता है तब तक आत्मा विकासगामी नहीं हो सकता। मोह के निर्बल होते ही

आत्मा विकासोन्मुख होता है। अतः आत्मा के विकास और अविकास का आधार मोह की उत्कटता या निर्वलता है। मोह की प्रवलता और निर्वलता के तारतम्य पर ही यह आत्मा का विकास क्रम अवलम्बित है।

आत्मा को स्वरूप च्युत करने वाले मोह की दो प्रकार की शक्तियाँ हैं प्रथम शक्ति आत्मा को ऐसा बेभान बना देती है कि जिसके कारण वह अपना स्वरूप भूल जाता है, जड़ वस्तुओं को अपना समझ लेता है। इस शक्ति के कारण आत्मा विवेकहीन बन जाता है। दूसरी शक्ति आ को विवेक प्राप्त कर लेने पर भी-तदनुसार प्रवृत्ति करने नहीं देती। प्र शक्ति को 'दर्शन मोह' और दूसरी को "चारित्र मोह" कहते हैं। जब त दर्शन मोह की प्रवलता रहती है तब तक चारित्र मोह कभी निर्बल नह हो सकता। जब दर्शनमोह मन्द होने लगता है तो चारित्र मोह भी क्रमशः मन्द होने लगता है।

जिस आत्मा को मोह की ये दोनों प्रवल शक्तियाँ दृढ़ रूप से घेरे रहती हैं वह अधः पतित या अविकसित आत्मा प्रथम गुणस्थान का अधिकारी है। मोह की प्रवलता के कारण इस स्थिति में रहे हुए आत्माओं की आध्यात्मिक स्थिति बिल्कुल गिरी हुई होती है। इस स्थिति में रहा हुआ आत्मा भौतिक उत्कर्ष चाहे जितना क्यों न कर ले परन्तु आत्मिक दृष्टि से वह बिल्कुल गया बीता रहता है। उसकी प्रवृत्ति विपरीत दशा में होने के कारण वह तात्विक दृष्टि से व्यर्थ सी होती है। जैसे दिग्मूढ व्यक्ति इधर-उधर भटकता रहता है परन्तु वह अपना इष्ट स्थान प्राप्त नहीं कर सकता है, इसी तरह विवेकहीन आत्मा अपने मूलस्वरूप को भूलक पर-पदार्थों में आसक्ति करता है और उन्हें प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है परन्तु वह तात्विक सुख से वञ्चित रहता है। इस प्रकार विवेकहीन आत्मा लक्ष्य-भ्रष्ट होकर विपरीत दिशा में पुरुषार्थ करता है। इस भूमिका को 'बहिरात्मभाव' या 'मिथ्यात्व' कहते हैं। इस भूमिका में रहे हुए आत्माओं की स्थिति भी एकसी नहीं होती। किसी पर मोह का गाढतम, किसी पर गाढतर और किसी पर उससे भी कम प्रभाव होता है।

मोह की प्रवलतम शक्ति के द्वारा घिरे हुए आत्मा में भी आत्मिव शक्ति का न्यूनतम अस्तित्व तो रहता ही है। यदि ऐसा न हो तो आत्मत्व

का ही अभाव-प्रसंग उपस्थित हो जाय। इस न्यूनतम आत्म-गुण की अपेक्षा से ही इस भूमिका को भी गुणस्थान में परिगणित किया गया है। यह आत्मा की निम्नतम श्रेणी है।

आत्मा स्वभावतः शुद्धि की ओर अग्रसर होने वाली है अतः जानते या अजानते मोह का प्राबल्य कुछ कम होता है तब वह विकास की ओर अग्रसर होता है। जिस प्रकार पार्वात्य नदी का पत्थर आघात-प्रत्याघातों को सहन करता हुआ गोल मोल हो जाता है इसी प्रकार विविध दुःखों का संवेदन करते २ आत्मा में कुछ शुद्धि आ जाती है। उसका वीर्योल्लास कुछ बढ़ जाता है जिसके कारण वह राग-द्वेष की दुर्भेद्य ग्रन्थि को तोड़ने की बहुत-कुछ योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसे शास्त्रीय भाषा में 'यथाप्रवृत्ति करण' कहा जाता है।

ग्रन्थि भेद का कार्य बड़ा ही विषम है। जिस आत्मा ने एक बार अपने पुरुषार्थ का विकास कर इस राग-द्वेष की ग्रन्थि का भेदन कर दिया उसका बेड़ा पार हो गया। ग्रन्थि का भेदन हो जाने के बाद दर्शनमोह को शिथिल करने में देर नहीं लगती। दर्शनमोह के शिथिल होते ही चारित्रमोह की शिथिलता का रास्ता साफ हो जाता है। ग्रन्थि भेद के समय आत्मा की शक्ति और मोह की शक्ति के बीच संग्राम होता है कभी आत्मा मोह की शक्ति पर विजय पाता है तो कभी मोह आत्मा को धर-दबा लेता हैं। इस तरह कोई २ आत्मा तो मोह से हार खाकर पीछे हट जाते है, कोई २ न पीछे हटते हैं और न विजय ही पाते हैं और कोई मोह को हरा कर इस दुर्भेद्य ग्रन्थि का छेदन कर ही डालते हैं। इस ग्रन्थिभेद कारक आत्म-शुद्धि को "अपूर्व-करण" कहते हैं। ऐसी विशुद्ध परिणाम वाली अवस्था उस जीव ने पहले कभी नहीं प्राप्त की इसलिए वह 'अपूर्वकरण' के नाम से कही जाती हैं। इसके बाद आत्मा की शक्ति और बढ़ जाती है जिससे वह दर्शन-मोहनीय पर सर्वथा विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसे आत्म-परिणाम को "अनिवृत्तिकरण' कहते हैं। इसका आशय यह है कि ऐसा आत्मा सम्यक्त्व प्राप्तकिये विना—दर्शनमोह पर विजय प्राप्त किये विना—नहीं रहता। दर्शन मोह को पराजित करते ही प्रथमगुणस्थान छूट जाता है और आत्मा चतुर्थ गुणस्थान पर पहुँच जाता है।

मिथ्यात्व के दूर होते ही आत्मा को सत्यस्वरूप की प्रतीति हो जाती है, उसकी अब तक पर-रूप में स्वरूप की जो भ्रान्ति थी वह दूर हो जाती है, उसे लक्ष्य का ज्ञान हो जाता है और उसकी प्रवृत्ति सत्यमार्ग की ओर हो जाती है। उसकी अब तक की परपदार्थाभिमुखी बुद्धि आत्माभिमुखी हो जाती है। उसका बहिरात्मभाव छूट जाता है और अन्तरात्मभाव प्रकट हो जाता है। यह सत्य प्रतीति, यह विवेक-ज्ञान और यह आत्माभिमुखता ही मोक्ष का मूल द्वार है। उसे प्राप्त करते ही आत्मा को आध्यात्मिक शान्ति का सर्वप्रथम अनुभव होता है। यह विकासक्रम की चतुर्थ भूमिका है। बीच में रही हुई दूसरी भूमिका विकास की, उत्क्रान्ति की भूमिका नहीं हैं। इस भूमिका में वे ही आत्माएँ आती हैं जो चतुर्थ या आगे की भूमिकाओं से गिरती हैं। सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी मोहोद्रेक से आत्मा का पतन होता है। सम्यक्त्व के राजमार्ग से पतित होता हुआ जब तक मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक की बीच की अवस्था में जो आत्मशुद्धि रहती है वह दूसरी भूमिका है। प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा इसमें आत्मशुद्धि अवश्य कुछ अधिक होती है इसलिए इसे दूसरा स्थान दिया गया है। प्रथम गुणस्थान से निकलकर सीधा ही दूसरे गुणस्थान में आया नहीं जाता किन्तु ऊपर से गिरने वाला आत्मा ही इस भूमिका में आता है।

तीसरी भूमिका में आत्मा की वह दोलायमान अवस्था होती है जिसमें वह न तो तत्त्वज्ञान की निश्चित भूमिका पर होता है और न तत्त्व ज्ञान-शून्य निश्चित भूमिका पर। न तो वह तत्त्वातत्त्व का विवेक ही कर सकता है और न एकान्ततत्त्व को अतत्त्व रूप ही मानता है। जिस प्रकार शक्कर मिला हुआ दही न तो पूर्ण मीठा ही होता है और न खट्टा ही होता है किन्तु खट-मीठा होता है इसी तरह इस भूमिका में न तो तत्त्व का विनिश्चय ही होता है और न पूर्ण रूप से मिथ्या श्रद्धा ही। यह मिश्र गुणस्थान है। कोई विकासोन्मुख आत्मा प्रथम गुणस्थान से निकलकर सीधा तीसरे गुणस्थान से गिरकर इस गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार यह गुणस्थान उत्क्रान्ति और अपक्रान्ति करने वाले—दोनों प्रकार के आत्माओं का आश्रय होता है। इस भूमिका में स्थित आत्माओं की विशुद्धि में भी तरतमता होती है। सब की आत्म-विशुद्धि एक-सी नहीं होती। चतुर्थ भूमिका सम्यग्दृष्टि आत्मा की है जिसका वर्णन इन दो

भूमिकाओं से पहले किया जा चुका है।

चतुर्थभूमिका में आत्मा को निजस्वरूप का भान हो जाता है अतः वह विकासगामी आत्मा पौद्गलिक सुखों से ऊपर उठकर अपनी वास्तविक स्थित को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने लगता है दर्शनमोह को शिथिल करने के बाद स्वरूपदर्शन कर लेने पर भी जबतक चारित्रमोह को शिथिल न किया जाय वहाँ तक स्वरूप-स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है। अतः वह आत्मा चारित्र मोह को शिथिल करने का प्रयत्न करता है। जब वह आंशिक रूपमें इस शक्ति को शिथिल कर पाता है तो उसका और भी विकास हो जाता है। वह अंशतः परिणति का त्याग करता है जिसमें उसे विशेष आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। इस भूमिका को देशविरती कहते हैं। यह पाँचवीं भूमिका है।

इस भूमिका में लिये गये अल्पविरतित्व से प्राप्त होने वाली आत्मिक शान्ति से प्रेरित होकर विकासगामी आत्मा सम्पूर्ण विरती को धारण करने के लिए उत्साहित होता है। वह चारित्र मोह को और भी अधिक शिथिल करके पहले की अपेक्षा अधिक स्वरूप-स्थिरता प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह सर्व विरतिरूप संयम धारण करता है। पौद्गलिक भावों से सर्वथा आसक्ति हटा कर आत्म-स्वरूप की अभिव्यक्ति करने की दिशा में ही इसके सारे प्रयत्न होते हैं। यह सर्वविरति रूप छठा गुणस्थान है। इस अवस्था में पाँचवे गुणस्थान की अपेक्षा स्वरूप की विशेष अभिव्यक्ति होने पर भी प्रमाद जनित बाधाएँ उपस्थित होती हैं। विकास गामी आत्मा अपनी आत्मिक शान्ति में प्रमाद-जनित बाधा को भी सहन नहीं कर सकता अतः वह उसे भी दूर करने का प्रयत्न करता है। वह अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए ध्यान-मनन-चिन्तन के सिवाय अन्य सब व्यापारों का त्याग कर देता है। यह 'अप्रमत्तसंयत' नामक सातवीं भूमिका है। एक ओर आत्मा प्रमाद को नष्ट करने का प्रयत्न करता है और दूसरी ओर प्रमाद उसे अपने अधीन करना चाहता है। इस स्थिति में वह आत्मा कभी तो प्रमाद की तन्द्रा में और कभी अप्रमादकी जागृति में आता-जाता रहता है। अर्थात् वह आत्मा कभी छठे और कभी सातवें गुणस्थान में आता-जाता रहता है।

प्रमाद के साथ होने वाले संघर्ष में विकासगामी आत्मा अपना चारित्र-

बल विशेष प्रकाशित करता है तो वह प्रमाद पर विजय पाकर विशेष अप्रम बन जाता है। ऐसी अवस्था में वह ऐसी शक्ति-संचय की तैयारी करता है जिससे वह शेष रहे हुए मोह को नष्ट कर सके। मोह के साथ होने वा लड़ाई की तैय्यारी की इस भूमिका को आठवां गुणस्थान कहते हैं। पह कभी न हुई ऐसी आत्म-विशुद्धि इस गुणस्थान में हो जाती है। जिस कारण कोई आत्मा तो मोह के संस्कारों को क्रमशः दबाता हुआ आगे बढ़ जाता है और अन्त में उसे बिल्कुल उपशान्त कर देता है। कोई विशि आत्मा ऐसा भी होता है जो मोह की शक्ति को क्रमशः जड़मूल से उखाड़ता हु आगे चला जाता है और अन्त में उसे सर्वथा निर्मूल ही कर डालता है इस प्रकार आठवें गुणस्थान से आगे बढने वाले आत्मा दो श्रेणियों विभक्त हो जाते हैं। जो आत्मा मोह को दबाते हुए आगे बढ़ते हैं वे उपश श्रेणी वाले कहे जाते हैं और जो मोह को उखाड़ते हुए आगे बढ़ते हैं वे क्षप श्रेणी वाले कहे जाते हैं। उपशम श्रेणी वाला आत्मा नौवें और दसवें गु स्थान में मोह को उत्तरोत्तर उपशान्त करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान में जा है। वहां वह दबा हुआ मोह पुनः जागृत होता है और वह आत्मा को अवश नीचे गिरा देता है। ग्यारहवां गुणस्थान अधः पतन का स्थान है। इस गु स्थान में उपशम श्रेणी वाले आत्मा ही जाते हैं। जो आत्मा आठवें गुणस्थ से आगे मोह के संस्कारों को निर्मूल करते हुए आगे बढ़ते हैं वे नौवें औ दसवें गुणस्थान में मोह के संस्कारों को उत्तरोत्तर निर्मूल करते हुए सीधे बारह गुणस्थान में मोह को सर्वथा निर्मूल कर देते हैं। क्षपक श्रेणी वाले आत्म मोह को क्रमशः क्षय करते हुए इतना आत्मबल प्रकट कर लेते हैं कि वे उपश श्रेणी वाले आत्मा की तरह मोह से हार नहीं खाते हैं और उसको सर्व क्षीण करके बारहवीं भूमिका को प्राप्त कर लेते हैं। इस भूमिका को पाने वा आत्मा फिर कदापि नीचे नहीं गिरता है।

जो आत्माएँ ग्यारहवें गुणस्थान में मोह से हार खाकर नीचे गि जाती हैं वे चाहें गिरती २ प्रथम भूमिका पर ही क्यों न पहुँच जाएँ पर उनकी यह अधोगति कायम नहीं रहती। वे हारी हुई आत्माएँ समय पाव द्विगुणित उत्साह से शक्ति संचय करती हैं और क्षपक श्रेणी के द्वारा मो का सर्वथा क्षय भी कर डालती हैं।

बारहवीं भूमिका में मोह का सर्वथा क्षय होते ही आत्मा के दूसरे आवरण (घाति कर्म) भी उसी प्रकार तितर-बितर हो जाते हैं जैसे सेनापति के मरते ही दूसरे सैनिक इधर उधर भाग खड़े होते हैं। इस अवस्था में आत्मा की सभी मुख्य शक्तियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं। आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो जाता है। जिस प्रकार पूर्णिमा की निरभ्र रात्रि में चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलायें प्रकाशमान होती हैं वैसे इस स्थिति में आत्मा की सारी शक्तियाँ प्रस्फुटित हो जाती हैं। आत्मा को परमात्मभाव प्राप्त हो जाता है। यह तेरहवीं भूमिका है। इसमें विकास गामी आत्मा को पूर्ण आध्यात्मिक स्वराज्य प्राप्त हो जाता है।

इस स्थिति में चिरकाल तक रहने के बाद आत्मा दग्ध रज्जु के समान शेष रहे हुए अघाति कर्मों के आवरण को दूर करने के लिए शुक्ल ध्यान के तृतीय भेद सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति का आश्रय लेकर मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापारों को सर्वथा रोक देता है। सूक्ष्म क्रिया का भी सर्वथा उच्छेद कर वह सुमेरु की तरह निष्कम्प स्थिति को प्राप्त कर लेता है और देह-मुक्त हो जाता है। यह निर्गुण ब्रह्म स्थिति ही विकास की पराकाष्ठा है। यही सर्वाङ्गीण परिपूर्णता है। यही परम पुरुषार्थ की अन्तिम सिद्धि है। इसे पाकर आत्मा पूर्ण हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है और पूर्णतया स्वरूप लीन हो जाता है। यह विकास की सर्वोच्च भूमिका है।

आध्यात्मिक विकास क्रम का यह कितना सुन्दर निरूपण है।

उपर्युक्त चौदह भूमिकाओं का भी संक्षेप में वर्गीकरण करते हुए शास्त्रकारों ने केवल तीन अवस्थाएँ बतलाई हैं-(१) बहिरात्मभाव (२) अन्तरात्मभाव और (३) परमात्मभाव। जब तक आत्मा बाह्य पदार्थों में आनन्द मानता है, जब तक उसे आत्मा के वास्तविक स्वरूप की प्रतीति नहीं होती, जब तक उसकी दृष्टि बाह्य पुद्गलों की ओर रहती है तब तक बहिरात्मभाव अवस्था है। इस अवस्था में आत्मा का शुद्ध स्वरूप अत्यन्त आच्छन्न रहता है।

दूसरी अन्तरात्मभाव अवस्था में आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति तो नहीं होती किन्तु आत्मा को अपने स्वरूप का भान हो जाता है और

वह उस सत्य स्वरूप को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता रहता है।

तीसरी अवस्था में आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है। पहला, दूसरा और तीसरा गुणस्थान बहिरात्मदशा का चित्रण है। चौथे से बारहवें तक अन्तरात्मभाव का वर्णन है और तेरहवाँ चौदहवाँ गुणस्थान परमात्मभाव का प्रतिपादक है।

इस आध्यात्मिक विकास क्रम के द्वारा पाठक जन भी आत्म विकास की प्रेरणा प्राप्त करें। इतिशम्।

(चतुर्थ कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना के आधार पर)

— जैन धर्म का वैज्ञानिक द्रव्य-निरूपण —

जैनदर्शन जगत् के दार्शनिक और वैज्ञानिक तत्त्वों का समृद्ध भण्डार है, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इसका तत्त्वज्ञान और द्रव्य निरूपण नितान्त वैज्ञानिक और बुद्धिसंगत है। युगातीत प्राचीन काल में जैन विचारकों नें विश्व के दृष्ट और अदृष्ट पदार्थों के सम्बन्ध में जो निर्णय दिया है वह आज के वैज्ञानिक साधनों से समृद्ध युग की वैज्ञानिक कसौटी पर कसे जाने पर भी सत्य प्रमाणित होता है।

जैनधर्म के अनुसार इस विश्व में दो मूल अविनाशी और नित्य तत्व हैं। उनमें एक जीव है और दूसरा अजीव। अजीव तत्व के अन्तर्गत धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल-इन पाँच द्रव्यों का अन्तर्भाव होता है। एक जीव द्रव्य और पाँच अजीव द्रव्य—यों ६ द्रव्य कहे जाते हैं जिनकी पारिभाषिक संज्ञा 'षड्द्रव्य' है।

द्रव्य की परिभाषा करते हुए तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है "गुणपर्याय वत्द्रव्यम्" अर्थात जो गुण और पर्याय से युक्त होता है वह द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य में परिणाम पैदा करने की शक्ति है।

द्रव्य की परिभाषा

अर्थात् प्रत्येक द्रव्य परिणामी स्वभाव वाला है। अतः वह मूल स्वरूप में स्थिर रहता हुआ भी विविध रूपों में परिणत होता रहता है। जिस प्रकार स्वर्ण, अपने स्वर्णत्व को कायम रखता

हुआ भी नाना प्रकार के आभूषणों के रूप में उत्पन्न होता रहता है और नष्ट होता रहता है, हार को तोड़ कर कुण्डल बनाये जाने पर हार का नाश और कुण्डल का उत्पादन देखा जाता है परन्तु स्वर्ण तो दोनों दशा में कायम रहता है, इसी तरह द्रव्य भी अपने मूल स्वरूप में अवस्थित रहता हुआ भी नाना पर्यायों के रूप में परिणत होता रहता है। यही द्रव्य का परिणामित्व है।

भारतीय और पाश्चात्य दर्शनों में वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में दो विरोधी मत दिखाई देते हैं। एक पक्ष का कथन है कि पदार्थ ही सत्य तत्त्व है, इसके ऊपर जो परिवर्त्तन होते हुए दिखाई देते हैं वह असत् हैं और वह भ्रमणा है, वस्तु के आकार कोई महत्व नही है, जैसे घड़ा, सिकोरा आदि मिट्टी के बने हुए पदार्थ में सत्य वस्तु मिट्टी है न कि उनका आकार। आकार कुछ भी हो उसका महत्त्व नहीं है, मूल वस्तु तो मिट्टी है। छान्दोग्य उपनिषत् में आरूणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहता है:—

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं, स्याद्वाचाऽ ऽम्भणं विकारो वा नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम्"

अर्थात्–हे सौम्य। मिट्टी के एक पिण्ड से मिट्टी के बने हुए सब पदार्थ जान लिये जाते हैं, अलग २ नाम तो मात्र वाणी का विकास है, वस्तुतः मिट्टी सत्य पदार्थ है। उक्त मत वेदान्त, सांख्य आदि कूटस्थ नित्य वादियों का है।

दूसरा पक्ष कहता है कि—वस्तु जो में गुण दिखाई देता है वही सत्य है। इस गुण के मूल में कोई अचल पदार्थ हो ही नहीं सकता क्योंकि जगत में अचल वस्तु तो कोई है ही नहीं। संसार में सब क्षणिक और नश्वर है। यह मान्यता बौद्धदर्शन की है।

उक्त दोनों विरोधी मान्यताओं के बीच जैनदर्शन कुशल न्यायाधीश की तरह अपना मन्तव्य उपस्थित करता है कि वस्तु का मूल स्वरूप और उसके गुण आकार आदि दोनों ही सत्य हैं। मिट्टी भी सत्य है और उसका घटादि आकार भी सत्य है। स्वर्ण भी सत् है और उसके हार कुण्डलादि

रूप भी सत् हैं। इन दो विरोधी प्रतीत होने वाले—परन्तु वस्तुतः अविरोधी—तत्त्वों के सम्मिलन से ही वस्तु का यथार्थ स्वरूप बनता है। अतः जैनदर्शन यह कहता है कि पदार्थ के बाह्य आकार के उत्पन्न और नष्ट होने पर भी—उसके परिवर्तित होने पर भी—उसका मूल स्वरूप कभी नहीं बदलता है। जैसे अलंकारों में परिवर्त्तन होने पर भी सोना वही बना रहता है इसी तरह पर्यायों के बदलने पर भी द्रव्य वही बना रहता है। यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। अतः जैनदर्शन ने द्रव्य का जो स्वरूप बताया है वह तर्क और अनुभव-सिद्ध है।

द्रव्य, परिणमन शील है यह ऊपर बता दिया गया है। द्रव्य में परिणाम पैदा करने की जो शक्ति है उसे गुण कहते हैं। तथा गुण जन्य परिणाम को पर्याय कहा जाता है। द्रव्य में अनन्त गुण हैं जो उससे कभी अलग नहीं हो सकते। गुण द्रव्य से अलग नहीं होते और द्रव्य गुण से रहित कदापि नहीं होता। दोनों परस्पर अविभाज्य हैं। प्रत्येक गुण की भिन्न २ समयवर्त्ती त्रिकाल स्पर्शी पर्याय अनन्त हैं। द्रव्य और गुण कभी नष्ट नहीं होते और नवीन उत्पन्न भी नहीं होते अतः वह अनादि अनन्त हैं परन्तु पर्याय प्रतिक्षण उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं अतः वह अनित्य हैं। उदाहरण के लिए पुद्गल द्रव्य को लीजिए:— उसमें रूप, रस आदि अनन्त गुण हैं और नीला पीला खट्टा—मीठा आदि अनन्त पर्याय हैं। पुद्गल द्रव्य से रूप, रस आदि कभी अलग होने वाले नहीं हैं और रूप, रस आदि भी पुद्गल द्रव्य के बिना नहीं पाये जा सकते हैं। पुद्गल द्रव्य में रूप, रस आदि सदा रहते हैं परन्तु नील—पीत आदि उसकी पर्याय प्रतिक्षण बदलती रहती है। इसी तरह जीवद्रव्य में चेतना आदि गुण, तथा ज्ञान दर्शन रूप विविध उपयोगमय पर्याय हैं। जीवद्रव्य से चेतना गुण कभी अलग नह रह सकता है परन्तु उपयोग रूप पर्याय सदा बदलती हैं। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनदर्शन की द्रव्य की परिभाषा युक्ति संगत है।

षड्द्रव्यों में से चेतना वाला द्रव्य एक ही—जीव ही—है। शेष पांचों द्रव्य अचेतन जड़ हैं। जीवद्रव्य उपयोग लक्षण वाला, ज्ञाता, कर्त्ता, भोक्ता, और अमूर्त्त है। वह स्वदेह परिमाण है। वह अनन्त हैं।

जीव द्रव्य का स्वरूप वह एक दूसरे से पृथक् स्वतंत्र सत्ता वाला है। जो जीव परद्रव्य-कर्म-से मुक्त है वह शुद्ध ज्ञाता है; अशरीरी है, अपरिमित शक्ति वालाहै। जीवद्रव्य की स्वाभाविक ऊर्ध्व-गति है। इसका विस्तृत वर्णन 'जैन दृष्टि से जीव' नामक प्रकरण में किया जा चुका है। जैनदर्शन सम्मत जीव का स्वरूप सांख्य दर्शन के पुरुष से, वेदान्त के ब्रह्म से, न्याय-वैशेषिक दर्शन के आत्मा से और बौद्धों के विज्ञानप्रवाह से भी भिन्न है। जैन दर्शन का जीवतत्त्व निरूपण सबसे विलक्षण और अनुपम है।

चैतन्य शक्ति की तरतमता के आधार पर जैनधर्म ने जीव के दो मुख्य भेद माने हैं जो त्रस और स्थावर कहलाते हैं। जिनकी चेतना-शक्ति व्यक्त है, जो हलन चलन कर सकते हैं ऐसे जीव त्रस की श्रेणी में हैं। जिनका चैतन्य अव्यक्त है ऐसे पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पति काय के जीव स्थावर कहलाते हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में चेतना-शक्ति का सद्भाव जैनधर्म के अतिरिक्त और किसी दार्शनिक या धार्मिक परम्परा ने नहीं माना। जैन विचारकों के अतिरिक्त दुनिया के किसी विचारक ने आज की वैज्ञानिक शोध के पहले तक इसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। परन्तु आधुनिक विज्ञान ने वनस्पति आदि में अव्यक्त चेतना है, यह प्रमाण पुरस्सर सिद्ध कर दिया है। (बाइ-ओ लॉजी-प्राण विद्या) और (साइ-को-लॉजी- मानसशास्त्र) सम्बन्धी आधुनिक अन्वेषण के मूल बीज जैनदर्शन के एकेन्द्रियजीववाद और चैतन्य-निरूपण में छिपे हुए थे। जैनदर्शन जिन्हें पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु के एकेन्द्रिय जीव कहता है उन्हें आज के प्राणी तत्ववेत्ता M·crospic Or·ani·ms कहते हैं। वनस्पति में प्राण हैं वह हर्ष-शोक का अनुभव करती है, पौधे हँसते हैं और रोते भी हैं, इत्यादि विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस ने अपने प्रयोगों के द्वारा प्रत्यक्ष दिखा दिया है। अतः वनस्पति में जीव हैं इस विषय में अब किसी को सन्देह नहीं रहा। जो बात विज्ञान ने आज सिद्ध की है वही बात हजारों वर्ष पहले जैनधर्म कह चुका था।

जैनशास्त्रों में चेतना के तीन रूप बताये हैं:—कर्मफलानुभूति, कार्यानुभूति और ज्ञानानुभूति। स्थावर जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव—केवल कर्म फल का वेदन करते हैं। त्रस जीव—दो, तीन,

चार, पांच इन्द्रिय वाले जीव–अपने कार्य का अनुभव करते हैं। उच्च प्रकार के मनुष्य आदि जीव ज्ञान के अधिकारी होते हैं। सूक्ष्म निगोद के जीवों से लेकर मनुष्य तक के चैतन्य का क्रमिक विकास जैनधर्म में सुन्दर ढँग से प्ररूपित है।

पश्चात्य देशों में और भारत में भी जो लोग यह मानते थे कि मनुष्यों के अतिरिक्त और सब अचेतन यंत्र के समान हैं जैनधर्म ने हजारों वर्ष पहले इस बात का खण्डन किया था। आज के मानस शास्त्रियों ने दो सूत्र किये हैं (१) मनुष्य से भिन्न निम्न कोटि के प्राणियों में निम्न स्तर का चैतन्य पाया जाता है (२) जीवन और चैतन्य सहभावी है। ये दोनों सूत्र जैनधर्म के जीव विचार में प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैनदर्शन सम्मत जीव-वाद सर्वथा सत्य और वैज्ञानिक है। आज के विज्ञान ने जड़पदार्थ सम्बन्धी अन्वेषण विशेष रूप से किये हैं अतः जैन जड़-विज्ञान का थोड़ा सा विचार यहाँ किया जाना प्रासंगिक ही है।

'धर्म' शब्द का अर्थ प्रायः शुभ प्रवृत्ति से लिया जाता है परन्तु यहाँ यह अर्थ विवक्षित नहीं है। जड़द्रव्य में जिस धर्म तत्त्व की गणना है वह

जड़ द्रव्य धर्मास्तिकाय

एक नवीन ही अर्थ का द्योतक है। जीव और पुद्‌गल द्रव्य की गति में जो सहायक होता है वह धर्मद्रव्य है। इस अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। जैनदर्शन ने गति सहायक तत्त्व को धर्मास्तिकाय कहा है और उसे एक स्वतंत्र द्रव्य माना है। यह धर्म द्रव्य अमूर्त्त है, लोकाकाशव्यापी है, नित्य है और असंख्येय प्रदेशी है। प्रदेशों का समूह होने से यह 'अस्तिकाय' कहा जाता है अलोक में इसका अस्तित्व नहीं है।

जिस प्रकार जल मछलियों को तैरने में सहायता देता है इसी तरह धर्मद्रव्य जीव और पुद्‌गलों को गति करने में सहायक होता है। धर्मद्रव्य गति का उदासीन कारण है; यह गति का प्रेरक नहीं है। किसी भी स्थितिशील पदार्थ को चलाने की शक्ति धर्मद्रव्य में नहीं है परन्तु जो वस्तु गतिशील

। उसमें सहायता करना धर्मद्रव्य का कार्य है। इसीलिए यह द्रव्य निष्क्रिय ।ानां गया है द्रव्य संग्रह में कहा गया है कि "जिस प्रकार गतिमान मत्स्य की ।ति में जल सहायक है इसी तरह धर्म गतिशील जीव और पुद्गल द्रव्य की ।ति में सहायक है यह गतिहीन पदार्थ को चलाता नहीं है।" इसका अर्थ इतना ।ी है कि धर्मास्तिकाय किसी स्थिति प्राप्त जीव या पुद्गल को स्वयं चलित नहीं करता है परन्तु धर्मास्तिकाय के बिना उसी तरह जीव या पुद्गल की गति संभवित नहीं है जैसे जल के बिना मछलियों का तैरना। सरोवर का जल मछलियों को तैरने की प्रेरणा देने वाला नहीं है परन्तु तैरने वाली मछलियों के लिए सहायक है इसी तरह धर्मद्रव्य गति-प्रेरक नहीं है परन्तु गतिमान पदार्थों की गति में सहायक है।

इस गति सहायक धर्मतत्त्व को जैनदर्शन के अतिरिक्त और किसी दर्शनकार ने द्रव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया है। परन्तु इतने मात्र से इसकी अवास्तविकता नही मानी जा सकती है। जैनाचार्यों से इस द्रव्य की वास्तविकता प्रमाणित की है। जिस प्रकार सरोवर के अनेक मत्स्यों की युगपद् गति को देखकर उस गति के साधारण निमित्तरूप सरोवर के जल का अस्तित्व प्रतीत होता है इसी तरह जीव और पुद्गलों की युगपद् गति का भी कोई साधारण बाह्यनिमित्त होना चाहिए, यह सहज ही प्रतीत होता है क्योंकि इसके बिना गति रूप कार्य संभवित नहीं है। धर्मद्रव्य ही वह सर्व सामान्य वाह्य निमित्त है।

धर्मद्रव्य प्रत्यक्ष का विषय नहीं है अतः वह असत् है यह नहीं कहा जा सकता है। अनेक ऐसे पदार्थों की सत्ता माननी पड़ती है जो प्रत्यक्ष के विषय न हों। पदार्थ जब गतिशील और स्थितिशील दिखाई देते हैं तो जरूर कोई ऐसा द्रव्य होना चाहिए जो इनकी गति और स्थिति में सहायता करे। इस अनुमान से—युक्ति से—धर्मास्तिकाय के अस्तित्व और द्रव्यत्त्व की सिद्धि होती है।

यदि कोई यह शंका करे कि आकाश ही गति और स्थिति का कारण है अतः धर्मद्रव्य को अलग मानने की कोई आवश्यकता नहीं है, यह अयुक्त है क्योंकि आकाश का कार्य तो अवगाह देना—स्थान देना

है। गति में सहायता करना और स्थान देना दो पृथक् २ बातें हैं जो मूल से ही भिन्न होने से दो द्रव्यों के अस्तित्व को प्रकट करती हैं। दूसरी बात यह है कि आकाश द्रव्य तो लोक-अलोक में सर्वत्र है परन्तु गति तो लोकाकाश में ही होती है। यदि गति में सहायता देना आकाश का गुण होता तो जीव और पुद्गल अलोकाकाश में भी जा सकते। परन्तु ऐसा होता नहीं है। लोक में ही जीव और पुद्गल की गति होती है अतः आकाश का यह गुण नहीं हो सकता है। इसलिए धर्मद्रव्य की आवश्यकता है।

यदि कोई यह कहे कि अदृष्ट ही गति का कारण है तो यह भी युक्तिरहित है। क्योंकि जीव जो शुभाशुभ कर्म करता है उसके फल के रूप में ही अदृष्ट की कल्पना है। वह पुद्गलों की गति का कारण कैसे हो सकता है? अतः जीव और पुद्गलों की गति का कोई एक सर्व सामान्य आश्रय होना चाहिए। यह धर्मद्रव्य ही हो सकता है। अतः धर्मास्तिकाय की द्रव्यता प्रमाण से प्रमाणित होती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी गति और स्थिति के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। पहले जैनो आदि दार्शनिक धर्म (*Principle of motion*) को स्वीकार नहीं करते थे परन्तु इसके बाद न्यूटन जैसे विद्वानों ने गति तत्व का सिद्धान्त स्थापित किया। वैज्ञानिकों ने ईथर जैसा लोकव्यापी पदार्थ माना है, इसका आधार यही धर्मद्रव्य हो सकता है।

अधर्मास्तिकाय

जीव और पुद्गलों की स्थिति में जो सहायता करता है वह अधर्म द्रव्य है। यह भी लोकाकाश व्यापी, अमूर्त्त, असंख्य प्रदेशी और निष्क्रिय द्रव्य है। यह द्रव्य स्थितिशील पदार्थों की स्थिति में सहायक होता है किन्तु गतिशील जीव या पदार्थों को स्थित करना इसका कार्य नहीं है। यह स्थिति का उदासीन कारण है। जैसे वृक्ष की छाया पथिक को विश्राम करने में सहायक होती है इसी तरह अधर्म द्रव्य पदार्थ और जीव की स्थिति का एक बहिरंग कारण है। सब जीव और पौद्गलिक पदार्थों की स्थिति किसी एक साधारण बाह्य निमित्त की अपेक्षा रखती है क्योंकि ये सब जीव और पुद्गल एक साथ स्थितिशील दिखाई देते हैं। जैसे एक कुण्डे में अनेक बेरों की युगपत् स्थिति देख कर उस स्थिति के साधारण निमित्त रूप कुण्डे का अनुमान

होता है। इससे स्थिति सहायक अधर्म द्रव्य की सत्ता सिद्ध होती है। इस अधर्म तत्त्व को अंग्रेजी (—) में कहते हैं। ग्रीस के हेरेक्लिटस जैसे दार्शनिक इसके अस्तित्व को नहीं मानते थे परन्तु बाद में (—) के नाम से इसको प्रकारान्तर से स्वीकार किया गया।

आकाशास्तिकाय

आकाश द्रव्य का लक्षण जीव और अजीव द्रव्यों को अवगाह—स्थान देना है। जैसे दूध शक्कर को स्थान देता है या दीवार खूँटी को आश्रय देती है इसी तरह आकाश-द्रव्य संसार की समस्त वस्तुओं को आश्रय देने वाला है। आकाश द्रव्य अन्य सब द्रव्यों का आधार रूप है। वैसे तो सब द्रव्य अपने २ स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं तदपि आकाश सबको आश्रय देने वाला है क्योंकि सब की स्थिति आकाश में ही है। यह आकाश-द्रव्य अमूर्त, नित्य, सर्वव्यापक और अनन्त प्रदेशी है। यही एक ऐसा तत्त्व है जो लोक-अलोक में सर्वत्र व्याप्त है। धर्म, अधर्म, पुद्‌गल, काल और जीवद्रव्य तो लोकाकाश तक ही हैं, अलोक में आकाश के अतिरिक्त और किसी द्रव्य की सत्ता नहीं है। चतुर्दश रज्जु-प्रमाण लोकाकाश है, शेष सब अलोक है। यह महाशून्य रूप अलोक असीम और अनन्त है। इस अनन्त अलोक में यह लोक तो महासागर के एक बिन्दु के समान है।

सब भारतीय दार्शनिकों ने तो आकाश द्रव्य की सत्ता को स्वीकार किया है परन्तु पाश्चात्य विचारक केन्ट और हेगल इसे मानसिक व्यापार कह कर उड़ा देते हैं, किन्तु रसेल जैसे आधुनिक दार्शनिकों ने इस आकाश (स्पेस) की तात्त्विकता स्वीकार की है। आकाश एक सत्य पदार्थ है यह बात आइन्स्टीन ने भी स्वीकार की है। अतः आकाश-द्रव्य की तात्त्विकता सन्देहातीत और निश्चित है।

पुद्‌गलास्तिकाय

यह रूपी द्रव्य है। इसका आकार माना गया है। इसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पाया जाता है। पुद्‌गल में पूरण और गलन धर्म है। पूरण का अर्थ एक दूसरे से सम्मिश्रण करना और गलन का अर्थ विघटन करना है। मिलना और बिखरना पुद्‌गल का स्वभाव है। कृष्ण, नील, पीत, लाल और श्वेत ये पाँच वर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध रूप दो गन्ध, खट्टा, मीठा, तीखा, कषैला और

कडुआ ये पांच रस, और शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, गुरु, लघु, मृदु और कठोर ये आठ स्पर्श- इस प्रकार २० गुण पुद्गल द्रव्य के है ? जगत के समस्त रूपी पदार्थ पुद्गल ही हैं। पुद्गल के दो भेद हैं—अणु और स्कन्ध। अणु, पदार्थों का सबसे सूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत अंश है। उसकी उत्पत्ति केवल भेद से होती है। अणु ही सब रूपी पदार्थों का मूल है। अणुओं के मिलने और बिखरने से स्कन्ध बनते हैं। अणु और स्कन्धों से ही जगत के समस्त पदार्थ बने हैं। तात्पर्य यह है कि जगत् अणुसमुदाय मात्र है।

पुद्गल विविध रूपों में प्रत्यक्ष होता है:— शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत पुद्गल की पर्याय हैं।

पुद्गल द्रव्य का यह निरूपण पूर्ण वैज्ञानिक है। आज के विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह निरूपण बिल्कुल यथार्थ है। इसमें आधुनिक के विज्ञान के समस्त तत्व छिपे हुए हैं। आज का विज्ञान परमाणु की जैन शास्त्र वर्णित शक्ति को पूर्ण रूप से तो नहीं जान सका है परन्तु परमाणु बम के रूप में परमाणु की जिस शक्ति का उसने परिचय कराया है वह भी आश्चर्य चकित करने वाला है। परमाणु शक्ति का वर्णन करते हुए जैन शास्त्रों में कहा गया है कि वह एक समय में (समय के सूक्ष्मतम भाग में) लोक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा सकता है। पु गल की पूरण और विगलन शक्ति के आधार पर ही आज के विवध वैज्ञानिक अन्वेषण हुए हैं और हो रहे हैं। रेडियो सक्रियता, विघटन के सिद्धान्त तथा बंधकता की परिभाषा स्पष्ट ही पदार्थों के उपयुक्त पूरण और विगलन स्वभाव को साधित करती है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन शब्द को आकाश का गुण मानते हैं, वे शब्द को पौद्गलिक नहीं मानते हैं परन्तु हजारों वर्ष पहले जैन-विज्ञान इस बात का खण्डन कर चुका है और शब्द को पुद्गल की पर्याय मानता आ रहा है। आज के विज्ञान ने ग्रामोफोन, टेलिफ़ोन, रेडियो आदि यंत्रों से शब्द को पकड़ कर उसकी पौद्गलिकता सिद्ध कर दी है। छाया तथा अन्धकार को भी न्याय दर्शन पौद्गलिक नहीं मानता, वह इन्हें तेज—प्रकाश का अभाव रूप ही मानता है। परन्तु जैन दर्शन उनकी मान्यता का युक्तियुक्त खण्डन करके

इनकी पौद्‌गलिकता सिद्ध करता है। प्रकाश के सम्बन्ध में जैन विज्ञान की मान्यता विज्ञान से मिलती जुलती है। शब्द, अलोक, और ताप को पौद्‌गलिक मानकर जैन तत्त्वज्ञों ने अपनी वैज्ञानिकता का प्रमाण उपस्थित किया है।

पदार्थ की उत्पत्ति के विषय में जैन सिद्धान्त का परमाणुवाद आज के विज्ञान के विकास का आधार है। वैशेषिक दर्शन भी परमाणुवाद को ही मानता है। यूनानी दार्शनिकों ने भी इसे स्वीकार किया है। डाल्टन का अणु सिद्धान्त इसका ही स्पष्ट विवेचन है। अर्थात् पदार्थों का मूल, अणु है यह आज के विज्ञान का निर्णय है। विज्ञान के अनुसार भी पदार्थ, स्कन्धों से, स्कन्ध अणुओं से, और अणु परमाणुओं से बना है। जैन विज्ञान भी स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु के रूप में पदार्थ को चार विभागों में विभाजित करता है।

इस तरह जैन-विज्ञान के पुद्‌गल सम्बन्धी विवेचन को आधुनिक विज्ञान का पूर्वरूप कहा जा सकता है। जैन तत्वज्ञों ने सिद्धान्त के रूप में ही वह निरूपण किया है जबकि आधुनिक विज्ञान ने उसे प्रक्रियात्मक रूप दिया है। जैन विज्ञान के For Mul (गुरू) की प्रक्रिया ही आज का विज्ञान है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन जैन-विज्ञान का संशोधित और क्रमपरिवर्द्धित संस्करण ही, आज का विज्ञान है।

पदार्थों में परिवर्त्तन होने का कारण काल है। यह नवीन को पुराना करता है, पुराने को नया रूप देता है। पदार्थ-परिवर्त्तन में काल, मूलकर्त्ता नहीं होता किन्तु केवल सहायक होता है। जैसे कुम्भकार दण्ड के द्वारा चाक को गतिमान करता है। इसमें वह दण्ड चक्र को स्वयं गतिमान नहीं करता किन्तु गति में सहायता करता है इसी तरह काल भी पदार्थ के परिवर्त्तन का सहायक कारण है। वर्त्तना (वस्तु के अस्तित्व का कायम रहना), परिणमन, परिवर्त्तन, परिवर्धन, क्रिया, ज्येष्ठत्व–कनिष्ठत्व आदि का व्यवहार काल के कारण ही है। तत्त्वज्ञान की गम्भीर विचारणा के अनुसार काल अनादि–अनन्त, अखण्ड–अच्छेद्य प्रवाह है तदपि व्यवहार के लिए इसमें अनन्त समय माने हैं। विवक्षित एक समय ही वर्त्तमान काल का है शेष अतीत और अनागत काल के हैं।

काल द्रव्य

दूसरे द्रव्यों की तरह काल के संख्यात, असंख्यात या अनन्त प्रदेश

नहीं है। दूसरे द्रव्यों की तरह यह स्कन्ध रूप नहीं होता अतः इसे "अस्ति-काय" नहीं कहा गया है।

काल के सम्बन्ध में जैनाचार्यों में दो पक्ष चले आरहे हैं। एक पक्ष काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानता जब कि दूसरा पक्ष इसे स्वतन्त्र द्रव्य कहता है। काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानने वाले पक्ष का मन्तव्य यह है कि "जीव और अजीव द्रव्य का पर्याय प्रवाह ही काल है। जीवाजीव द्रव्य का पर्याय परिणमन ही उपचार से काल माना जाता है। समय, आवलिका, मुहूर्त दिन-रात आदि व्यवहार, या नवीनता प्राचीनता का या ज्येष्ठता-कनिष्ठता का व्यवहार जो काल साध्य बतलाया जाता है वह सब पर्यायों का संकेत मात्र है। वस्तु की अंतिम अति सूक्ष्म और अविभाज्य पर्याय को 'समय' कहते हैं। ऐसे असंख्यात पर्यायों के पुंज को 'आवलिका' कहते हैं। दो पर्यायों में जो पहले हुआ हो वह 'पुराण' और पीछे हुआ वह 'नवीन' कहलाता है। जो पहले पैदा हुआ हो वह 'ज्येष्ठ' और जो बाद में पैदा हुआ हो वह 'कनिष्ठ' कहलाता है। इस विचार से यह मालूम होता है कि उक्त सब कालसाध्य कही जाने वाली अवस्थाएँ जीव या अजीव द्रव्य की पर्याय ही हैं। जीव या अजीव द्रव्य अपने स्वभाव से ही अपनी २ पर्याय के रूप में परिणत होता रहता है। इस परिणमन के कारण रूप में किसी तत्त्वान्तर की प्रेरणा मानने की कोई आवश्यकता नहीं है अतः काल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है" किन्तु औपचारिक तत्व है।

दूसरे पक्ष का मन्तव्य है कि जिस प्रकार जीव-पुद्गल में गति-स्थिति करने का स्वभाव होने पर भी उस कार्य के लिए निमित्त कारण रूप से धर्मास्तिकाय—अधर्मास्तिकाय तत्व माने जाते हैं इसी प्रकार जीव-अजीव द्रव्य में पर्याय-परिणमन का स्वभाव होने पर भी उसके निमित्त कारण रूप से काल द्रव्य मानना चाहिए। यदि निमित्त कारण रूप से काल न माना जाय तो धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय मानने में कोई युक्ति नहीं। अतः काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानना चाहिये।

श्वेताम्बर परम्परा में उक्त दोनों प्रकार के मतों का उल्लेख है जबकि दिगम्बर परम्परा में केवल दूसरे पक्ष का ही उल्लेख मिलता है। दिगम्बर परम्परा में काल को अणुरूप माना गया है। उनका मन्तव्य इस प्रकार है:—

काल लोकव्यापी होकर भी धर्मास्तिकाय की तरह स्कन्ध नहीं है किन्तु अणुरूप है। इसके अणुओं की संख्या लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर है। वे अणु, गतिहीन होने से जहाँ के तहाँ अर्थात् लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित रहते हैं। इनका कोई स्कन्ध नहीं बनता है इससे इनमें तिर्यक् प्रचय होने की शक्ति नहीं है। इस कारण कालद्रव्य को 'अस्तिकाय' नहीं गिना है। तिर्यक् प्रचय न होने पर भी उर्ध्व प्रचय होता है इससे प्रत्येक कालाणु में लगातार पर्याय हुआ करते हैं। ये ही पर्याय 'समय' कहलाते हैं। एक एक कालाणु के अनन्त समय-पर्याय हुआ करते हैं। समय-पर्याय ही अन्य द्रव्यों के पर्याय का निमित्त कारण है। नवीनता-पुराणता, ज्येष्ठता-कनिष्ठता आदि सब अवस्थाएँ काल-अणु के समयप्रवाह की बदौलत ही समझनी चाहिए। पुद्गल परमाणु को लोकाकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक मन्दगति से जाने में जितनी देर होती है, उतनी देर में कालाणु का एक समयपर्याय व्यक्त होता है।

'काल' के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का ठीक ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। अभी तक वे काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानते हैं। जैनधर्म जिन कारणों से काल की सत्ता मानता है, वे ही कारण, और वे ही कार्य जो जैनाचार्यों ने काल के बताये हैं, आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है।

सुप्रसिद्ध फ्रेन्च दार्शनिक वर्गसन ने तो काल को Dynamic realify कहा है उसके मत के अनुसार काल का प्रबल अस्तित्व स्वीकार किये बिना नहीं चल सकता।

इस प्रकार जैनदर्शन सम्मत द्रव्यनिरूपण वैज्ञानिक सत्यसिद्ध होता है।

जैनधर्म: भौतिक जगत् और विज्ञान

"आज के भौतिक जगत् में वैज्ञानिक उन्नति के कारण प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य तथा सुखों की प्राप्ति और उसकी कामना ने प्रत्येक मानव-मस्तिष्क को मोह लिया है। फलस्वरूप मानव ने अपनी प्राचीनता को-स्वभाव को-छोड़कर नवीनता का पल्ला पकड़ना शुरु किया है। वह इसके पीछे पड़ कर धर्म-कर्त्तव्य-तत्त्व को भूल गया है। यह वास्तव में दुःसह परिस्थिति है। बेचारा साधारण मानव क्या जाने कि आज की उन्नति हमारे पूर्वजों के

अगाध ज्ञान एवं परिश्रम का ही फल है । प्राचीन काल के शब्दवेधी बाण का ही एक रूप हमें Sound Ragio की प्रक्रिया में मिलता है । आज की भाप से चलने वाले आटे की चक्की प्राचीन शास्त्रों में वर्णित पारा वाष्प यंत्रों का रूप ही प्रतीत होती है । पुराने पुष्पक विमान और आधुनिक हवाई जहाज क्या कोई भिन्न चीजें हैं ? फर्क सिर्फ इतना ही है कि प्राचीन लोगों को प्रक्रिया बद्ध और अंगों-पाङ्गादि के विश्लेषणात्मक ज्ञान की प्रणाली न ज्ञात हो; इसलिए उन ग्रन्थों में हमें इनका विशद विवेचन नहीं मिलता । पर इससे यह क्यों समझा जाय कि आज जो कुछ हो रहा है, उसके सामने पुरातन ज्ञान नगण्य है और इसीलिए हम उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगें । जिस आधुनिक भौतिकता के पीछे लोग दौड़ रहे हैं वह प्राचीन विचारों और शास्त्रवर्णित तथ्यों का नूतन संकरण ही है, ऐसा कहना चाहिये; कहना तो यह भी चाहिये कि यह संशोधित क्रमपरिवर्द्धित संस्करण है ।

हमारे धर्माचार्यों ने भौतिक जगत् की जिस वैज्ञानिक और तर्क संगत ढंग से वर्णना की है उसकी बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने प्रशंसा की है ।

जैनधर्म के अनुसार भौतिक जगत् जीव तथा पाँच प्रकार के अजीव [पुद्गल, धर्म. अधर्म, आकाश, काल] इस प्रकार छह द्रव्यों से बना है । इनमें समस्त चराचर जगत् व्याप्त है । पुद्गल द्रव्य से हम समस्त भौतिक पदार्थों और शक्तियों को लेते हैं जो दृश्य हैं । धर्म से गतिमाध्यम (पानी में मछली के समान गमन में सहायक), अधर्म में स्थिति माध्यम (पथिक के लिए वृक्ष-छाया के समान स्थिति में सहायक), आकाश में अन्य पाँचद्रव्यों का अधिकरण आधार-स्थान, एवं काल से जगन्नियंत्री शक्ति का अर्थ लेते हैं । जीव से आत्मा का ग्रहण होता है, जिसका स्वभाव चेतना है । दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि यह जगत् मूर्त्त (पुद्गल) एवं अमूर्त्त (अन्य पाँच) द्रव्यों से बना है । इन छह द्रव्यों में से काल को छोड़ कर बाकी पाँच अस्तिकाय हैं जिनमें सत्ता एवं विस्तार (Existence and Extence) दोनों पाये जाते हैं । काल द्रव्य में विस्तार [नाणोः] नहीं पाया जाता है ।

अ—द्रव्य लक्षण

जैनमत में द्रव्य का अर्थ उन मूलभूत वस्तुओं से है, जिनमें उत्पाद-

व्यय एवं ध्रौव्य साथ साथ पाये जाएँ और जिनके बिना जगत् की स्थिति में स्थिरता न हो। एक चीज में उत्पत्ति एवं विनाश के साथ ध्रौव्यत्व कैसे र सकता है? यह पूछा जा सकता। शास्त्रकारों ने "अर्पितानर्पिता सिद्ध (विविध दृष्टियों की अपेक्षा से) के द्वारा इस प्रश्न का उत्तर दिया है कटक-कुण्डल का दृष्टान्त इस विषय में सर्वगत है। द्रव्य का यह लक्षण उपर्युक्त छहों द्रव्यों में पाया जाता है। ये सब द्रव्य नित्य हैं, मौलिकरू में अवस्थित (अपरिवर्तित) हैं। अमूर्त द्रव्यों में मूर्त द्रव्य की उपपत्तिय नहीं पायी जाती हैं।

द्रव्य का उपर्युक्त लक्षण आधुनिक विज्ञान के आधार पर सिद्ध है विज्ञान के शक्ति स्थिति (Conservation of Energy) वस्तु-अविनाशित्व Law of Indestructibility of matter तथा शक्ति रूपान्तर Trans formation of energy आदि सिद्धान्त यह स्पष्ट बतलाते हैं कि नाशवान पदर्थों में भी ध्रौव्यत्व (Permanance) रहता है। डेमोक्राइटस का यह अभिमत ही इस विषय में काफी है:—

Nothing can never become something;
Somethig can never become anything"

ब—मूर्त द्रव्य—पुद्गल

"पूरणगलनान्वर्थसंज्ञत्वात् पुद्गलाः"

जो भेद, संघात अथवा उभय के कारण एक दूसरे के साथ योग या मिश्रण बनावें या विघटन पैदा करें, वे पुद्गल कहलाते हैं। पुद्गल मूर्त हैं। इसकी पहिचान रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से होती है। प्रत्येक पदार्थ में, जो पौद्गलिक कहलाते हैं, ये चारों एक साथ पाये जाते हैं। रूपादि से हम पदार्थों के गुणों (Properties) का परिचय प्राप्त करते हैं। जैसे स्पर्श से भार, कठिनत्व, उष्णता आदि, रूप से कृष्ण, नील इत्यादि। पाँच रूप, (कृष्ण, नील, पीत, लाल, श्वेत,) पाँच रस (आम्ल, मधुर, तिक्त, कटु और कषाय), दो गंध (सुगंध और दुर्गन्ध) एवं आठ स्पर्श (मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीतोष्ण-स्निग्ध-

रूप) इस प्रकार पुद्गल के २० गुण हैं। ये मूल गुण भी प्रत्येक संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त होते हैं। प्रत्येक में किसी न किसीप्रकार का रूप, रस, गंध, स्पर्श (या मिश्रण भी) पाया जाता है। जगत् के समस्त दृश्य पदार्थ पुद्गल ही तो हैं। शरीर, वचन, मन, प्राण एवं श्वासोच्छ्वास पुद्गल के कार्य हैं। जीव को सुख-दुःख, जीवन एवं मरण का अनुभव पुद्गल (कर्म) के कारण ही होता है। ये पुद्गल द्रव्य हैं क्योंकि इनमें 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य" पाया जाता है। कटक कुण्डल के दृष्टान्त का उल्लेख हो चुका है।

ये पुद्गल दस रूपों में प्रत्यक्ष हैं:—(१) शब्द (२) बंध (३) सौक्ष्म्य (४) स्थौल्य (५) संस्थान (६) भेद (७) तम (८) छाया (९) आतप और (१०) उद्योत। मूलरूप में पुद्गल के दो भेद हैं—अणु और स्कन्ध। अणु, पदार्थों का सबसे सूक्ष्म तथा अविभागी अंश है जो इन्द्रियातीत है। उसकी उत्पत्ति मात्र भेद से होती है। जैसे चाक को तोड़ते जाने पर इसका छोटे से छोटा टुकड़ा जो दिख न सके अणु कहलायेगा। यह सब पदार्थों का मूल है, अणुओं के मिलन तथा भेद से स्कन्ध बनते हैं। अणु तथा स्कन्धों से ही जगत् के समस्त पदार्थ बने हैं। तात्पर्य यह है कि जगत् अणुसमुदाय मात्र है।

पुद्गल के इस निरूपण को यदि हम वैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर कहते हैं तो हमें अपने आचार्यों की महत्ता का अनुभव होता है। पुद्गल के विषय में तो खासकर इनकी सूक्ष्म विवेचन शक्ति का पता लगता है, जो पूर्णतः वैज्ञानिक थी। पुद्गल के दो अर्थ हैं:—(१)पूरणात्मक (Combinatio al) और गलनात्मक Disintegrational) आज का विज्ञान भी पदार्थों में परस्पर सम्मिलन तथा बाह्य या आभ्यन्तर कारणों द्वारा विघटन की प्रवृत्ति सिद्ध करता है। कहना तो यह चाहिए कि तत्वों की इन्हीं प्रकृतियों के कारण विज्ञान ने आज समस्त जगत् को चकित कर दिया है। परमाणु बम, रेडियो-सक्रियता तथा विघटन (Dissociation, electrolytic etc) के सिद्धान्त Valency (बंधकता) की परिभाषा स्पष्ट ही पदार्थों के उपर्युक्त दोनों गुणों को साधित करती है। रेडियो-सक्रियता अंतरंग तथा बाह्य विघटन कारणों के फलस्वरू होती है युरेनियम का एक परमाणु तीन तरह की किरणें (a B. x. Rays) हमेशा प्रस्फुटित करता

रहता है, जिसके कारण वह रेडियम और अन्त में सीसा (Lead) में परिणत हो जाता है, जिसके गुण साधारण सीसा-धातु में मिलते हैं। स्पष्ट ही यह 'गलनार्थक' प्रवृत्ति है। Isolobes भी इस विषय में कुछ सहायता करते हैं। बंधकता की परिभाषा भी, इसी प्रकार पदार्थों में पूरकत्व शक्ति प्रदर्शित करती है।

यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि पुद्गल से हमारे आचार्यों ने पदार्थ (matter) तथा शक्ति (energy)-दोनों का ग्रहण किया है। जिसका अर्थ यह हुआ कि शक्ति भी भार आदि गुणों से सम्पन्न है। आज विज्ञान भी यह मानता है। शक्ति में भार एंव माप दोनों हैं। Energy is not weight'ess, but it has a definite mass. भार एवं शक्ति के क्या सम्बन्ध है, इस विषय में यह (Formula) गुरु प्रसिद्ध ही है:-

$$E = mass \times (Velocity\ of\ light)\ 2$$

तात्पर्य यह है कि पदार्थ और शक्ति-दोनों का एक ही से ग्रहण होता है और वे एक हैं।

विज्ञान के अनुसार वस्तु के विविध गुण हैं; जैसे पृथ्वी (solid) के भार (density) स्थितिस्थापकता (elasticity), तापयोग्यता (Heat Conductivity) आदि; जल (Liquid) के सानुता (viscocity) पृष्ठवितति (Surface tension) आदि; वायु (Gas) के प्रसरण प्रवृत्ति (Expansibility) आदि। स्पर्श के चार युगल (१) हल्का-भारी (२) मृदु कठिन (३) शीत-उष्ण (४) स्निग्धरूक्ष-स्पष्ट ही ये गुण बतलाते हैं। चार रस तो विज्ञान स्पष्ट ही मानता है।

Four tastes have been distinguished; salt sweet, sour and bitter. Sweet things are best appreciated at the tip of the tongue while bitter at the back"

E. E. Hewer

रसों की भिन्नता का कारण है, पदार्थों में 'हाइ ड्रो कार्बन्स' की विशेष स्थिति। गंध के विषय में तो कोई विवाद ही नहीं है।

रूप भी पदार्थ का सामान्य गुण है। रूप के पाँच प्रकारों के विषय में कुछ मतभेद है। विज्ञान सात रंग मानता है(VIBGOR)जिसमें श्वेत और काला नहीं है। श्वेत रूप सबका मिश्रण एवं कृष्ण रूप सब रूपों का का अभाव रूप है। परन्तु जैनधर्म कृष्ण, श्वेत सहित केवल पाँच रूप ही मानता है यदि हम विज्ञान के आधार को देखें —

Colour is a Sansation caused by the action of e yes in the part of retina Rays of different colour affect the eye differently and it is due to this difference in the occular sensation that the various colours are different ated. It is a mixture of three primary sensations (red blue and green) in different properties (Inter physics)

तो स्पष्ट जैनमत का निरुपण उचित है। यह तो सभी जानते हैं कि जब कोई भी पदार्थ गर्म किया जाता है और उसका तापमान बढ़ाया जाता है तो सबसे पहले वह वस्तु तापविकीरण (५००, oc) करती है। उस समय तक इसका रूप प्रकट नहीं होता इसलिए काला ही रहता। फिर रूप में परिवर्त्तन (लाल ७००, oc) पीला (१२००, oc) सफेद (१५००, oc) होता है यदि तापमान इससे अधिक किया जावे तो अन्त में नीला रंग प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक रूप में तो रूप पाँच ही हैं और वे ताप के ही परिवर्धितरूप हैं। अन्य तो इसके मिश्रण है, जैसे हरारंग, (सफेद लाल) यहाँ रूप से रंगने वाले रंग (Pigments) नहीं, अपितु, प्राकृतिक नेत्र सम्बन्धी रूप ही ग्राह्य हैं। इस प्रकार वस्तुगुणों के विषय में तो विज्ञान पूर्णरूप से मेल खाता है।

विज्ञान में भी, पुद्गल की तरह पदार्थ और शक्तियां विविध रूप में पाये जाते हैं, जैसे : ताप, विद्युत, (बंध) प्रकाश आदि। इन विविध रूपों का जैसा वर्णन जैनमत में है, विज्ञान अभी उस कोटि तक नहीं पहुँचा है। शरीर, वचन, मन, आदि के लिए विज्ञान पदार्थ मानता ही है। श्वासोच्छ्वास स्पष्ट ही भौतिक है।

we take oxygen from air and exhale Carbondi oxide.

carbon being the product of oxidetional digestion, which requires oxygen to escape out It is pure material-organism

पदार्थों की उत्पत्ति के विषय में वैशेषिक, जैन तथा यूनानी दार्शनिक ही विज्ञान की आधुनिक उन्नति के आधार हैं। डाल्टन का अणुसिद्धान्त इन्हीं का स्पष्ट विवेचन है। "Electron is the universal constituent of matter" यह विज्ञान का आज का निर्णय है, जो स्वयं ही जैनियों के परमाणु की व्याख्या है। जैनों का परमाणु विज्ञान का अविभाजित (?) (electron) है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ स्कन्धों (Molecules) से, स्कन्ध अणुओं (Atoms) से तथा अणु परमाणुओं (electrons) से बना है। जैनागम में भी इसी प्रकार पदार्थ को चार विभागों-स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु-में विभाजित किया गया है। इस तरह परमाणुवाद का सिद्धान्त पूर्णतया आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों पर स्थित है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान के पदार्थ और शक्ति दोनों पुद्गल द्रव्य से गृहीत होते हैं, इसलिए पुद्गल द्रव्य की सत्यता विज्ञान मानता ही है।

स—अमूर्तद्रव्य

ज्ञान और दर्शन जीव का लक्षण है। आत्मा में ही पुद्गल के माध्यम द्वारा सुख दुःख का अनुभव होता है। यह द्रव्य है क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यत्व इसमें पाया जाता है। आत्मा अपने परिमाण में हानि और वृद्धि (संकोच और विस्तार) करने की शक्ति रखता है। चींटी और हाथी के शरीर में समान प्रदेश वाली आत्मा निवास करती है। आत्मा की अनन्त शक्ति है। आत्माएँ अनन्त हैं। यह अमूर्त हैं। इसकी सत्ता इसके कार्यों से सिद्ध हो सकती है, प्रत्यक्ष नहीं।

आत्मा

प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवन मनोगति क्रियान्तरविकाराः
सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गम् (वै. सू.)

जिस प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश एवं कालादि अमूर्त्तिक के विषय में विज्ञानवेत्ताओं ने अन्वेषण किया है, उस प्रकार आत्मा के विषय में भी। परन्तु वे Ether या Field की तरह आत्मा के विषय में तथ्य नहीं निकाल सके हैं। उन्होंने आत्मा को जानने एवं पकड़ने के लिए कितनी ही चेष्टाएँ कीं परन्तु अभी तक सफल नहीं हुए हैं। पर इन स्रोतों से एक महत्त्वपूर्ण जैनतत्त्व (तैजस शरीर) की पुष्टि अवश्य हुई है। एक ऐसा यंत्र बनाया गया जिससे कोई भी चीज बाहर न जा सके। उसमें उत्पन्न होते समय और मरते समय प्राणियों का अनुवीक्षन किया गया। आत्मा नाम की कोई वस्तु तो ज्ञात नहीं हुई परन्तु यह पता चला कि-जब कोई जन्म लेता है तब उसके साथ कुछ विद्युत्चक्र (electric charge) रहता है, जो मृत्यु के समय लुप्त हो जाता है। पर प्रश्न यह है कि यह चार्ज नाश तो हो नहीं सकता, (Due to conservation of energy) तो फिर कहाँ जाता होगा ? अब लोग इस प्रश्न को हल करने के लिए एक दूसरा यंत्र बना रहे हैं। जिससे सम्भव है वे ऐसा कर सकें। यह शक्ति जिसे पता लगाने की चेष्टा की जा रही है, आत्मा नहीं हो सकती। क्योंकि वह तो अमूर्त्त है परन्तु इसकी तुलना तैजस शरीर (Electric body) से अवश्य की जा सकती है, जो आत्मा से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। आत्मा की खोज के प्रयास ने इस एक नये तथ्य की पुष्टि की है।

यह ठीक है कि वैज्ञानिकों ने आत्मा की सत्ता नहीं ज्ञात की है, पर आत्मा सम्बन्धी तत्त्वों के जानकार सर ओ. लोज के अनुवीक्षन ने आत्मा के अस्तित्व को निस्संदेह सिद्ध किया है।

"प्रोटोपालज्म" (Protoplasm is nothing but a viscous fluid which contains every living cell.) के सिद्धान्त तथा सर जगदीशचन्द्र वसु के पौधों सम्बन्धी आविष्कार ने आत्मा की संकोच-विस्तार वाली प्रवृत्ति सिद्ध कर दी है।

आकाश से हम हिन्दुओं का सृष्टि मूलभूत आकाश नहीं लेते, अपितु वह जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं काल द्रव्यों के लिए स्थान दे। आकाश का यह लक्षण है। अन्य द्रव्यों को अवकाश देना उसका

आकाश निरूपण कार्य है। यह द्रव्यों का अवगाहन में कारण है। अमूर्त्त होने से धर्मादि द्रव्य के एकत्र रहने में कोई विरोध नहीं आता

है। आकाश-नित्य, व्यापक और अनन्त है। यह दो प्रकार का है लोक और अलोक। लोकाकाश में ही शेष पाँच द्रव्य रहते हैं, अलोकाकाश में नहीं। इसलिए जगत् की सीमा है लोकाकाश पर्यन्त। इसके बाद आकाश तो है पर वहाँ लोक नहीं है। लोकाकाश के बाहर जीव जा भी नहीं सकते क्योंकि वहाँ धर्म और अधर्म द्रव्य नहीं हैं जो कि गति-स्थिति में सहायक हैं। आकाश स्वयं गति-स्थिति माध्यम नहीं हो सकता क्योंकि फिर (१) सिद्धों की मुक्ति स्थिति नहीं बनेगी (२) अलोकाकाश नहीं बनेगा (३) जगत् असीम हो जाएगा (४) उसकी स्थिरता एवं अनन्तता भी नहीं बनेगी। जगत् ससीम है। जगत् की स्थिति कालके कारण है धर्म अधर्म के कारण। आकाश के प्रदेश हैं।

यह सत्य है कि विज्ञान आकाश को एक स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानता। फिर भी आकाश में विद्यमान समस्त गुणों को स्वीकार करता है। लोकाकांश के विषय में H. Ward का यह अभिमत उल्लेख योग्य है।

" ......the total a ount of matter which exists is limited and that the total extent of the universe is finile. They do not conceive that there is limit beyond which no space exists"

लोकाकाश सीमित है। यदि आकाश में वस्तु हो तो गोलाकार रूप में उसका झुकाव होता है। वार्ड का कहना है कि लोकाकाश का घुमाव इस प्रकार है कि यदि एक प्रकाश किरण सीधी रेखा में चले तो वह अपने मूल बिन्दु पर पहुँचेगी जहाँ से वह शुरु हुई थी। शक्ति स्थिति भी असीम होने की स्थिति में नहीं बनेगा क्योंकि फिर एक बार की शक्ति अनन्त में विलीन हो जाएगी।

यह वास्तव में एक समस्या है कि लोकाकाश सीमित है और आकाश अनन्त है। परन्तु आइन्स्टीइन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त (Theory of Felativity) से यह बात स्पष्ट हो जाती है। एडिंग्टन इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त करता है :—

Einstine,s theory (of Relativity) now offers a way out of this dilemma "space is fintie but it has no end" finite bnt unbounded" is the usuai phrase.

आईंस्टाइन के अनुसार वस्तु की सत्ता आकाश के सीमा-परिमाण में कारण है। बिना वस्तु एवं समय के आकाश की कल्पना नहीं कर सकते। पदार्थ ही इनका आधार है पर जैनदर्शन में यहाँ मतभेद है। जैनधर्म का जगत् लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों में व्याप्त है और वह सम्पूर्ण जगत् का एक भाग (लोकाकाश) सीमित मानता है और उसके बाद ऊपर कुछ भी नहीं है। "आकाश की अपेक्षा लोक सीमित है पर काल की अपेक्षा निस्सीम है" यह सिद्धान्त स्पष्टतः जगत् को (अतएव आकाश को नित्य] अनादि-अनन्त बता रहा है। श्री एन. आर० सेक भी इसी मत में हैं।

तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक आकाश को शून्य नहीं मानते और इसीलिए अलोकाकाश को नहीं मानते। पर जैसा कि कहा है कि "ऐसे क्षण की सत्ता असम्भव है जिसके पूर्व कोई क्षण न बीता हो" के समान हम यह भी कह सकते हैं कि "यह असंगत है कि आकाश (लोक) के बाद शुद्ध आकाश न हो।

इस कथन से यह ज्ञात होगा कि आधुनिक विज्ञान आकाश के विषय में नित्यता, अनादि, अनन्तत्व, व्यापकत्व, एवं लोकाकाश (जगत्) सीमित स्वीकार करता है, पर यह स्पष्ट है कि उसे द्रव्य नहीं मानता।

इन दोनों द्रव्यों की सत्ता जगत् की स्थिति के लिये बहुत ही आवश्यक है। किसी भी एक के अभाव में गड़बड़ी फैल सकती है। धर्म और अधर्म से यहाँ पुण्य-पाप कारण नहीं अपितु गति-स्थिति-माध्यम लेना है। द्रव्यसंग्रह में इनका खुलासा इस प्रकार है:—

धर्म-अधर्म द्रव्यः—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी तोयं जहा।
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गल जीवाण ठाण सहयारी छाया जह पहियाणं॥

जीवों की गति स्थिति में सहायक (प्रेरक नहीं) होना इनका कार्य है। ये दोनों द्रव्य अजीव, अमूर्त्त, अतएव रूपादि रहित, निष्क्रिय, नित्य तथा

समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। ये गति-स्थिति में वाह्य या उदासीन कारण हैं मुख्य नहीं।

जगत् में यदि जीव, पदार्थ, एवं आकाश ये तीन ही मूल सत्तायें होतीं तो दुनिया का अस्तित्व ही न हो पाता, क्योंकि जीव, पुद्गल अनन्त आकाश में फैल जाते और उनका भान होना कठिन हो जाता। इसलिये जगत् की स्थिती सुदृढ़ बनाये रखने के लिये ये दोनों माध्यम आवश्यक हैं। मात्र धर्मद्रव्य होता तो भी जगत् का वर्तमान रूप असम्भव था और मात्र अधर्म ही होता तो परिवर्त्तन का लोप होने से लकवा जैसी परिस्थिति होती। मनुष्य न तो केवल वेगवान ही हो सकता है और न स्थिर ही। दोनों में रहना ही उसका स्वभाव है। धर्म तथा अधर्म के कार्य यद्यपि विरोधी हैं परन्तु उनका विरोध दृश्यमान नहीं है क्योंकि वे उदासीन हेतु हैं। स्वयं किसी को ये प्रेरित नहीं करते परन्तु जो गति-स्थिति करते हैं उनके लिये वे आवश्यक रूप से सहायक हैं।

कालेजों में जब प्रकाश (Light) का अध्यापन शुरू होता है तो बताया जाता है कि प्रकाश-किरणें शून्य में नहीं अपितु Ether of space के माध्यम से हमारे पास पहुँचती हैं। उस Ether (ईथर) के विषय में यह भी बताया जाता है कि यह कोई पदार्थ या दृश्य वस्तु नहीं है, सर्वत्र व्याप्त है तथा गमन में सहायक है। संक्षेप में वह 'गतिमाध्यम' है। आधुनिक ईथर के प्रायः सब गुण "धर्मद्रव्य" में हैं। कुछ समय पहले इसके विषय में विशेष पता नहीं था पर माइलर तथा निकेलसन-मोर्ले के प्रयोगों से अब स्पष्ट सिद्ध किया जा चुका है कि ईथर अमूर्त्त है और वस्तुओं से भिन्न है। पुराने समय के ये वाक्य "Ether must be something very diffrent form terrestrial substances" अब इस निश्चित धारा पर पहुँच चुके हैं।

Now-a-days it is agreed that ether is not a kind of mattr (रूपी पुद्गल). Being non material its properties are quite unique.

[Characters of matter such as mass, rigidity etc. never occurs in Ether]

ईथर की निष्क्रियता भी इन्हीं महाशयों के प्रयोगों से सिद्ध है। इस प्रकार धर्मद्रव्य में ईथर के समस्त गुण विद्यमान हैं—जैसे गति-माध्यमता, आकाश-व्यापित्व, अनन्तत्व, अमूर्त्त त्व अतः अपौद्गलिकत्व।

इसी प्रकार स्थिति–माध्यम (अधर्म द्रव्य) के विषय में वैज्ञानिक कई श्रेणी तक हमारे साथ हैं। आइज़क न्यूटन ने पेड़ से गिरते हुए सेब को देख कर तर्क किया-"यह नीचे क्यों गिरा ? फलस्वरूप 'आकर्षण-शक्ति' का सिद्धान्त प्रकट हुआ।

प्रत्येक पदार्थ जब ऊपर फेंका जाता है और गिरने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है तो वह एक शक्ति के द्वारा पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकृष्ट होता है। वही शक्ति उसके नीचे गिरने में कारण है। यह शक्ति वस्तुओं के भार के गुणन अथवा विपरीतदूरी के वर्ग के अनुपात में है। (F a mm/a-2)

न्यूटन का यह सिद्धान्त Heavenly Bodies के विषय में भी लागू होता है। इसके लिए गणित सम्बन्धी सूत्र भी काम में आ गये हैं। उस समय लोग यह शंका करते थे कि जब कोई शक्ति खींचती है तब वह सक्रिय तो अवश्य होगी अतएव वस्तुओं में भी क्रिया होगी। तब आस पास की वस्तुएँ क्यों नही बदलती दिखाई देती हैं ? उत्तर में क्रिया विरोधक शक्ति के मुकाबिले उस शक्ति को बहुत छोटी बताई गई। यदि वह आकर्षण शक्ति बड़ी हो तो चलन अवश्य होगा ही। तब फिर यह यह भी पूछा जा सकता है कि जब पदार्थ परस्पर आकृष्ट होते हैं तो एक दूसरे के ऊपर क्यों नहीं गिरते ? इसके उत्तर में यह कहा गया कि क्रिया की गति शक्ति की तरफ नहीं हैं, अपितु पृथ्वी के केन्द्र की तरफ है जैसे ऊपर फेंका हुआ पत्थर या बन्दूक की गोली नीचे गिरती है। और भी ऐसी बातों से सिद्ध है कि आकर्षण शक्ति जगत् की स्थिति में कारण है।

यहाँ यह ध्यान में रखने की बात है कि न्यूटन को स्वयं शक्ति के विषय में सन्देह था कि यह मूर्त्त है या अमूर्त्त ? साथ ही साथ वह इसे निष्क्रिय भी नहीं मानता था। पर आइन्स्टाइन के इसी विषय में नवीन मत के अनुसार यह शक्ति निष्क्रिय हो सकती है पर इसके स्पष्ट रूप का पता

अभी तक नहीं लग सका है। हावार्ड ने तो इस विषय में लिखा है :—

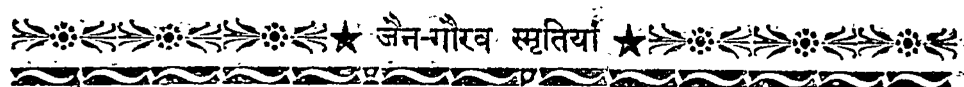
Gravitation is an absolute mystery. We cannot get any explanation of its nature.

इस प्रकार अधर्म द्रव्य के प्रायः सब गुण आइन्स्टाइन के इस नवीन आकर्षण शक्ति (Fie . of grav tat.on) में पाये जाते हैं। फिर भी वैज्ञानिक इसे स्वतन्त्र रूप में (Reaeity) स्वीकार नहीं करते। वे उसकी आवश्यकता अवश्य अनुभव कर रहे हैं और वर्त्तमान में वे इसे सहायक के रूप में 'अधर्मद्रव्य' की तरह स्थिति में कारण मानते हैं।

Ether और Field के स्वरूप में कार्य का भेद है, बाकी सब गुण समान हैं। इस लिए Ether से धर्मद्रव्य का ग्रहण होता है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य का भी Field से ग्रहण होना ही चाहिए (substitute for अधर्म)।

"द्रव्व परिवट्टरूवो जो, सो कालो हवइ" पदार्थों के परिवर्त्तन में काल कारण-स्वरूप है। यह उसके परिवर्त्तन में वैसे ही सहायक है जैसे कुम्हार के मिट्टी-बर्तन निर्माणचक्र में पत्थर। यह पत्थर चक्र में स्वयं गति पैदा नहीं करता अपितु गतिमान बनाने में सहायक मात्र होता है। काल भी द्रव्य है क्योंकि इसमें उत्पाद-व्यय ध्रौव्य पाये जाते हैं। व्यवहारकाल और निश्चयकाल इसी के आधार पर है। ध्रौव्यता वाचक पद 'वर्त्तना' है और उत्पाद-व्ययत्व सूचक पद 'समय' है। कालद्रव्य दो प्रकार का है। (१) निश्चय (२) व्यवहार। असंख्य, अविभागी कालाणु जो लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में व्याप्त हैं, निश्चयकाल है और 'समय' व्यवहार काल है। उन कालाणुओं में परस्पर बंध की शक्ति नहीं है जिससे मिल कर वे पुद्गल की तरह स्कन्ध बना सकें। वे "रयणाणं रासी" की तरह प्रत्येक आकाश प्रदेश में स्थित हैं। ये कालाणु अदृश्य, अमूर्त्त एवं निष्क्रिय हैं। काल में परस्पर बन्ध शक्ति का अभाव इसे अस्तिकायत्व से वञ्चित करता है। काल में अस्तित्व, (Exi- tence) तो है परन्तु कायत्व (विस्तरण-मिलन शक्ति-Ex'er tion) नहीं है। दो प्रकार के विस्तार विशेष सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। पर काल में प्रदेश के अभाव से मात्र ऊर्ध्व

काल द्रव्यः—



प्रचय ही पाया जाता है। व्यवहारकाल 'समय' परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व के आधार से लिया जाता है। यह अपने अस्तित्व के लिए निश्चय काल के अधीन होने से परायत्त है। व्यवहार और निश्चयकाल में यह विशेषता है कि प्रथम तो सादि-सान्त है जब कि द्वितीय अनन्त होता है। निश्चयकाल ध्रौव्यत्व का बोधक है।

कालद्रव्य के कार्यों के विषय में "वर्त्तना परिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य" यह सूत्र पूर्ण रूप से निर्देश करता है। इस सूत्र में निश्चय और व्यवहार दोनों का कार्य बताया गया है। यह वस्तुओं के अस्तित्व में, परिणमन में, परिवर्त्तन में, परिवर्धन में, क्रिया में, समय की अपेक्षा छोटा बड़ा (बाल-वृद्ध,युवक आदि) होने में सहायक है।

कालद्रव्य स्वयं भी परिवर्तित और परिवर्धित होता है जैसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी (उन्नतिशील और अवनतिशील) इसके परिवर्त्तन में स्वयं काल (निश्चय काल) कारण है। यदि काल के परिवर्त्तन में कोई दूसरा कारण हो तो अनवस्था हो जायेगी। अतः काल स्वतन्त्र द्रव्य है और परिवर्त्तन में सहायक होना इसका कार्य है।

सबसे छोटा काल प्रमाण 'समय' है। उसकी परिभाषा यह है—वह समय जो एक परमाणु या कालाणु अपने पास के दूसरे (Consecutiue) परमाणु के पास तक पहुँचने में लेता है "समय" कहलाता है। ऐसे अनन्त समयों में व्यवहार काल विभक्त है। जिस प्रकार भार का माप "परमाणु" और आकाश का "प्रदेश" है उसी तरह समय का माप 'विन्दु' है। सबसे बड़े काल का प्रमाण महाकल्प है जो उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी के समय का जोड है:—

सूक्ष्म तर्क उपस्थित किये हैं। जैसे "प्रतिक्षणमुत्पाद व्यय ध्रौव्यैकरूपः परिणामः........सहकारिकारण सद्भावे दृष्टः। यस्तु सहकारि कारणं स कालः।

काल द्रव्य के बिना जगत् का विकास रुक जाएगा। वस्तुओं की उत्पत्ति तथा विनाश समय के अभाव में आश्चर्यजनक लेम्प के अभाव में अलादीन के शानदार महल के समान होने लगेगा। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि न्याय-वैशेषिक दर्शनों के अतिरिक्त किसी भी भारतीय दर्शन में काल का उतना विशेष वर्णन नहीं किया गया है जितना जैनमत में, परन्तु ये दर्शन केवल जैनमत के व्यवहार काल तक ही रह गये हैं, आगे नहीं बढ़ सके हैं।

आधुनिक विज्ञान 'समय' के कार्यकलाप के आधार पर उसे द्रव्य रूप से मानने का अनुभव करने लगा है पर उसने अभी तक सिद्धान्त रूप में उसे स्वीकार नहीं किया है। एडिंग्टन का यह कथनः-Time is more physical reality than matter तथा हैनशा का यह वाक्य These four elements (Space, matter, time and medium of motion) are all separate in our minds We cannot imagine that one of them could depend on another or be converted into another. उपर्युक्त निर्देश में प्रमाण हैं।

भारतीय प्रो० एन० आर० सेन भी इसी मत में हैं। काल द्रव्य के अस्तित्व के विषय में जैनमत से ठीक मिलता हुआ तर्क फ्रेन्च दार्शनिक वर्गसन ने भी रखा है। उसके अनुसार भी "जगत् के विकास में काल एक खास कारण है। बिना काल के परिणमन और परिवर्त्तन कुछ भी नहीं हो सकते फलतः कालद्रव्य है।

कालद्रव्य के दो भेदों को वैज्ञानिक स्वीकार करने ही लगे हैं:—

Whatever maybe the time defuse (व्यवहार) the Astronomer royals time is "befecto" (निश्चय) Eddington.

एक प्रदेशी होने से ही कालद्रव्य में ध्रौव्यत्व है इसे भी वर्गसन स्वीकार करता है।

The continuity of time is due to the spatialisation or (absense of extensive magnitude of the durationel flow. काल का ऊर्ध्व प्रचयत्व (mono-dimeusionality) भी लोग स्वीकार करते हैं। आइन्स्टाइन का सिद्धान्त "लोकाकाशस्य यावन्तःप्रदेशः-तावन्तः कालाणवो निष्क्रियाः एकैकाकाशप्रदेशे, एकैकवृत्या लोकंव्याप्य स्थिताः" को पूर्णरूप से मानता है। यही एडिंग्टन के इस कथन से ज्ञात होता है।

You may be aware that it is revealed to us in Einstines theory that space and time are mixed in rather or stange way··· both space time vanish away in to nothing if there be no matter. We cannot conceive of them without matter. It is matter in which originate space and time and our univesrl of preception.

जैनधर्म में भी अलोकाकाश में भी पदार्थों के अभाव से कालाणु का अभाव है, जो इस मत की पुष्टि करता है। अकायत्व भी एडिंग्टन स्वीकार करता है:—

I shall use the phrase times arrow fo express this one way property of time which has no anolgue in space.

कालद्रव्य की अनन्तता भी आइन्स्टाइन की Ceylinder theory के आधार पर एडिंग्टन मानता है। The world in closed is space dimensions, but it is open at both ends t time dimensions.

कालाणु तो वर्त्तमान विज्ञान के भौतिक समय के World wide instants ही समझने चाहिए। काल के कार्य-कलापों को विज्ञान मानता ही है, यह स्पष्ट है।

जैनपौषधशाला कोल्हापुर

कानपुर: अद्वितीय मीना कारी का कलायुक्त जैन मन्दिर,

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म जिन कारणों से काल की सत्ता मानता है, वे ही कारण तथा वे ही कार्य जो हमारे आचार्यों ने काल के बताये हैं, आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है, पर जैसा कि शुरू में ही कहा गया है कि वह इसे स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानता।

—: उपसंहार :—

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जैनमत के षड्द्रव्यों (Subs tences or realities) को हम इन वैज्ञानिक नामों से ग्रहण कर सकते हैं:—

पुद्गल	पदार्थ और शक्ति	Matter and Energy
धर्म	गतिमाध्यम	Ether (of spice)
अधर्म	स्थितिमाध्यम	Field (of Grravitation) and electromandtism
अकाश		Space
काल		Time
आत्मा	जीव	Soul

आधुनिक विज्ञान इनमें से स्वतंत्र द्रव्य तो सिर्फ पुद्गल और धर्म को ही स्वीकार करता है परन्तु शेष को स्वतंत्र माने जाने का वैज्ञानिक अनुभव करने लगे हैं। इन द्रव्यों की सत्ता-सिद्धि के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों की असफलता के कारण हैं विज्ञान की भौतिकता और इन द्रव्यों की अमूर्तता। यंत्रादि के द्वारा अमूर्त द्रव्यों को न देखा ही जा सकता है और न मापा ही। इसलिए आत्मा आदि के अस्तित्व का पता अभी तक नही लग सका है

यदि आज का विज्ञान जैनसम्मत समस्त द्रव्यों को स्वीकार नहीं करता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह सब महत्त्वहीन है। हमें विज्ञान के संकुचित क्षेत्र (भौतिकता) पर भी तो अर्थात् उसकी असमर्थता पर भी ध्यान देना चाहिए। वैज्ञानिक लोग आज जिन चीजों का अभाव अनुभव कर रहे हैं एवं जिनके अभाव में वे बहुत सी प्राकृतिक क्रियाओं का हल नहीं

दे रहे हैं, वे हमारे शास्त्रों में वर्णित हैं। किसी भी अन्यमत के तत्त्वज्ञान के ग्रन्थों में गति-स्थिति-माध्यम (धर्म-अधर्म) का वर्णन नहीं है। काल द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता भी जैनधर्म की एक विशेष महत्ता प्रदर्शित कर रही है। वास्तव में जैन जगत् का षड्द्रव्य विवेचन पूर्णरूप से संगत एवं वैज्ञानिक है, यह पूर्ण आभास उपर्युक्त विवेचन से मिलता है।*

जैन विचार-पद्धति की मौलिकता—स्याद्वाद-

जैनदर्शन की विचार-पद्धति सर्वथा मौलिक है, दार्शनिक जगत् में इस मौलिक विचार-धारा ने एक नवीन दिशा का सूचन किया है। जैनदर्शन की इस मौलिक तत्त्वचिन्तन प्रणाली ने तत्त्वनिर्णय के लिये एक नवीन दृष्टि का सूत्रपात किया है। दार्शनिक जगत् के लिये जैनधर्म की यह देन अनुपम और अद्वितीय है।

स्याद्वाद, जैन तत्त्वज्ञान के भव्यभवन की सुदृढ़ पीठिका है। इस दृढ़ आधार पर ही जैनतत्त्वों का निरूपण किया गया है। स्याद्वाद के सुसंगत सिद्धान्त के द्वारा विविधता में एकता और एकता में विविधता का दर्शन करा कर जैनधर्म ने विश्व को नवीन दृष्टि प्रदान की है।

स्याद्वाद का सिद्धान्त एक वैज्ञानिक सत्य है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि पदार्थ में ऐसे अनेक गुण हैं जिनका मानव जगत को पूरा ज्ञान नहीं है। हम पदार्थों को जिस रूप में देखते हैं वही उनका पूरा स्वरूप नहीं होता वरन् उसमें अनेकों अप्रकट-गुण-शक्तियाँ विद्यमान हैं। विज्ञान का कार्य-क्षेत्र यथाशक्ति इन वस्तुधर्मों का अन्वेषण करना है। द्वितीय विश्व-युद्ध में भयंकर क्रांति मचा देने वाला अणु-बम इसका उदाहरण हैं। युद्ध के पूर्णाहुति काल के पहले अणुबम एक अज्ञात तत्व था। वह इस युद्ध के अन्त समय में प्रकट हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ कि दुनिया में पदार्थ तो उतने ही हैं परन्तु उनके अनेक अप्रकट गुण विज्ञान के आविष्कार और अन्वेषण

*प्रो० सी. आर. जन की Cosmology तथा प्रो. पद्मराजय्या के एक लेख के आधार पर।

से प्रकट हो रहे हैं। जैनदर्शन भी यही कहता है कि पदार्थ में अनन्त गुण हैं अतः ऊपर-ऊपर से दिखाई देने वाले वस्तु के स्वरुप को ही उसका सम्पूर्ण स्वरुप नहीं मान लेना चाहिए। पदार्थ के स्वरुप के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण ही सही है और दूसरे का दृष्टिकोण मिथ्या है, यह कहना सत्य की हत्या करना है। जब तक कोई व्यक्ति परिपूर्ण ज्ञाता नहीं हो जाता तब तक वह यह दावा नहीं कर सकता। अनन्तज्ञान हुए बिना एक भी पदार्थ का पूरा पूरा ज्ञान नहीं हो सकता है। एक पदार्थ का यदि पूरा पूरा ज्ञान हो जाता है तो वह सब पदार्थों का ज्ञाता भी हो जाता है। अतः जैनागमों में कहा गया है:—

जे एगं जाइए से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाइए से एगं जाणइ

इसी को दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया गया है:—

एकोभावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वेभावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एकोभावः सर्वथा तेन दृष्टः॥

साधारण व्यक्ति का पदार्थ विषयक ज्ञान अपूर्ण होता है अतः यदि वह अधूरे ज्ञान को पूर्ण ज्ञान के रूप में दूसरे के सामने रखता है तो वह अनधिकार चेष्टा करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना २ दृष्टिकोण व्यक्त करने का अधिकार है परन्तु अपने दृष्टिकोण को ही सर्वथा सत्य और दूसरे दृष्टिकोण को सर्वथा मिथ्या कहने का अधिकार उसे नहीं है। जैनधर्म का स्याद्वाद इसी बात को प्रकट करता है।

स्याद्वाद की आधार शिला पर खड़ा हुआ जैनधर्म यह कहता है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। दीप से लेकर आकाश तक की छोटी सी छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु में अनन्त धर्म रहे हुए हैं। उन अनन्त धर्मों का विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं से जब तक अवलोकन न किया जाय तब तक वस्तु का सत्य स्वरूप नहीं समझा जा सकता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से वस्तु का अवलोकन करना स्याद्वाद है। एक ही पदार्थ में भिन्न २ वास्तविक धर्मों को सापेक्षतया स्वीकार करने का नाम स्याद्वाद या अनेकान्तवाद है। जैसे एक ही पुरुष अपने भिन्न भिन्न सम्बन्धी जनों की अपेक्षा पिता, पुत्र और भ्राता

आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता है, इसी प्रकार अपेक्षाभेद से एक ही वस्तु में अनेक धर्मों की सत्ता प्रमाणित होती है। इस अपेक्षाभेद की उपेक्षा करने से वस्तु का स्वरूप अपूर्ण ही रह जाता है। वस्तु के किसी एक ही धर्म को लेकर उसका निरूपण किया जाय और उसे ही सर्वांश सत्य समझ लिया जाय तो यह विचार भ्रान्त ही ठहरेगा।

उदाहरण के लिये किसी एक पुरुष को लीजिए। उसे कोई पिता, कोई पुत्र कोई मामा और कोई भाई कह कर पुकारता है। इससे प्रतीत होता है कि उसमें पितृत्व, पुत्रत्व, पितृव्यत्व, मातुलत्व और भ्रातृत्व आदि अनेक धर्मों की सत्ता है। यदि उसमें रहे हुए पितृत्व धर्म की ओर ही दृष्टि रख कर उसे सर्वथा पिता ही मान बैठें तो बड़ा अनर्थ होगा। वह हर एक का पिता ही सिद्ध होगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वह पिता भी है और पुत्र भी। अपने पुत्र की अपेक्षा वह पिता है और अपने पिता की अपेक्षा वह पुत्र कहलाएगा। इस तरह भिन्न २ अपेक्षाओं से इन सभी संज्ञाओं का उसमें निर्देश किया जा सकता है। जैसे एक ही व्यक्ति में पितृत्व, पुत्रत्व आदि विरोधी धर्मों का पाया जाना अनुभव सिद्ध है उसी तरह एक पदार्थ में अपेक्षा भेद से अनेक विरोधी धर्मों की सत्ता प्रमाण-सिद्ध है।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु का स्वरूप एक समय में एक ही शब्द द्वारा सम्पूर्णतया नहीं कहा जा सकता है; इसी तरह उन अनन्तधर्मों में से किसी भी धर्म का अपलाप भी नहीं किया जा सकता है। अतः केवल एक ही दृष्टिबिन्दु से पदार्थ का अवलोकन न करते हुए भिन्न २ दृष्टिबिन्दुओं से उसका पर्यालोचन करना न्यायसंगत और वस्तु स्वरूप के अनुरूप है। यही स्याद्वाद का तात्पर्य है।

स्याद्वाद के अनुपम तत्त्व को न समझने के कारण विश्व में विविध धर्मों, दर्शनों, मतों, ग्रन्थों और सम्प्रदायों में विवाद खड़े होते हैं। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म को असत्य-मिथ्या-बतलाते हैं। वे अपने ही माने हुए धर्म को सम्पूर्ण सत्य मानकर दूसरे धर्म का तिरस्कार करते हैं। इस तरह विश्व में धर्म के नाम पर विवाद खड़े होते हैं। यह एकान्तवाद का दुष्परिणाम है। एकान्तवाद वास्तविकता से बहुत दूर होने के साथ ही अपूर्ण होता है, इतना ही नहीं वह अपूर्णता में पूर्णता का मिथ्या आरोप

करता है। इस बात को सरलता से समझाने के लिए पूर्वाचार्यों ने हाथी का दृष्टान्त बतलाया है। वह इस प्रकार है:—

कुछ जन्मान्ध व्यक्तियों ने हाथी का नाम सुना परन्तु हाथी कैसे होता, इस बात का उन्हें ज्ञान नहीं था। किसी समय उनके गाँव में हाथी आगया। वे हाथी का परिचय पाने के लिए उसे छूने लगे। वे सब एकसाथ हाथी के अलग २ अवयव छूने लगे। कोई हाथी के पाँवों के हाथ लगाता है, कोई सूँड पकड़ता है, कोई कान छूता है, कोई पेट टटोलता है, कोई पूंछ पकड़ता है। इस प्रकार अपने २ हाथ में आये हुए हाथी के अवयव को वे हाथी समझने लगे। जिसने हाथी का पाँव पकड़ा वह कहने लगा कि हाथी स्तम्भ समान केहै। सूँड पकड़ने वाला बोला कि हाथी मूसल के समान है। कान टटोलने वाला बोला कि हाथी सूप के समान है। पेट पर हाथ फेरने वाला बोला कि हाथी कोठी के समान है। पूँछ पकड़ने वाला बोला कि हाथी रस्से के समान है। इस प्रकार वे अन्धे अपनी २ बात को पूर्ण सत्य समझकर विवाद करने लगे और एक दूसरे को मिथ्या कहने लगे। ठीक यही हाल एकान्तवादी दर्शनों का है।

उक्त जन्मान्धों का कथन एक एक अंश में सत्य अवश्य है परन्तु जब वे अपनी ही धुन में एक दूसरे की बात काटने लगते हैं तब उन सबका कथन असत्य हो जाता है। हाथी को भलीभांति जानने वाला सूझता आदमी जानता है कि उन्होंने सत्य के एक-एक अंश को ही ग्रहण किया है और शेष अंशो को अपलाप कर दिया है। अगर ये लोग अपनी बात को ठीक समझते हुए अन्य को भी सत्य समझें तो इन्हें मिथ्या का शिकार न होना पड़े। अगर उक्त सब अंधे अपनी एक-एक-देशीय कल्पना को एकत्र करके हाथी का स्वरूप समझें तो उन्हें हाथी की सर्वाङ्ग सम्पूर्ण आकृति का ज्ञान हो सकता है। परन्तु अज्ञान और कदाग्रह के कारण वे एक दूसरे को मिथ्या कहकर स्वयं झूठ के पात्र बन रहे हैं। ठीक इसी तरह विश्व में प्रचलित विविध धर्मों के विषय में समझनी चाहिए।

सत्य सर्वत्र एक है, अखण्ड है और व्यापक है। इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के विवाद की गुन्जाईश नहीं है। तदपि धर्म के नाम पर विविध

मान्यतायें प्रचलित हैं और उनमें परस्पर में खींचातान भी है। इस धार्मिक विवाद का कारण केवल कदाग्रह है। संसार के विभिन्न पंथ और समुदाय सम्पूर्ण सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं लेकिन ज्ञान की अपूर्णता के कारण वस्तु के एक अंश को ही प्राप्त कर सकते हैं। इस अपूर्णांश को ही पूर्ण मान लेने से सब संघर्ष पैदा होते हैं।

जैनदर्शन का स्याद्वाद इन संघर्षों को समाप्त कर देता है। वह विश्व के समस्त धर्मों, दर्शनों, सम्प्रदायों और मान्यताओं का समन्वय कर देता है। वह विश्व को यह शिक्षा देता है कि जगत् के सब धर्म और दर्शन सत्य के ही अंश हैं। परन्तु जब एक अंश दूसरे अंश से न मिलकर उनका तिरस्कार करता है तब वह विकृत हो जाता है और सत्य मिटकर सत्याभास हो जाता है। यह एकान्तवाद की स्थिति भयंकर परिणामों को पैदा करती है। जो मत या पन्थ दूसरे सत्यांशों को पचाने की क्षमता रखता है वह उदार और संगठित बनकर पूर्णसत्य के मार्ग पर प्रगति करता है। स्याद्वाद यह सिखलाता है कि तुम वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोण से देखो। तुम अपनी दृष्टिकोण को सत्य समझो लेकिन जो दृष्टिकोण तुम्हे अपना विरोधी प्रतीत होता हो उसकी सत्यता को भी समझने की कोशिश करो। सम्पूर्ण वस्तुतत्त्व का अवलोकन करने के लिये सापेक्षदृष्टि होनी चाहिए। सापेक्षदृष्टि का तात्पर्य यह है कि जो वस्तु एक दृष्टि से जिस रूप में प्रतीत हुई हो उसे ही पूर्ण न मानकर दूसरे दृष्टिकोणों के लिये भी उसमें अवकाश हो। इसी सापेक्षवाद को पारिभाषिक शब्द में 'नयवाद' कहते हैं।

अनन्त-धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म को लेकर जो यथार्थ अभिप्राय होता है वह 'नय' है। एक ही वस्तु के प्रति विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं से उत्पन्न होने वाले विभिन्न अभिप्राय 'नय' कहे जाते है।

नयवाद

चूंकि वस्तु में अनन्त धर्म हैं अतः उसके सम्बन्ध में अनन्त प्रकार के अभिप्राय और विचार हो सकते हैं अतएव नय भी अनन्त हैं। सुप्रसिद्धतार्किक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर ने कहा है:—

'जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया'

जितने वचन-प्रकार हैं उतने ही नयवाद हैं। नयों के सम्बन्ध में यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि नय अपनी मर्यादा में ही सत्य होते हैं।

जब ये अपनी मर्यादा के बाहर होकर एक दूसरे के प्रतिषेधक हो जाते हैं तब ये असत्य हो जाते हैं और अमान्य ठहरते हैं। जो नय अपने विषय का ग्राहक होकर भी अन्य का निषेध नहीं करता है वह 'नय' कहलाता है। जो दूसरे का निषेध करने में प्रवृत्त होता है वह दुर्नय या नयाभास है। कहा है:—

अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्नयस्तन्निराकृतिः ॥

अर्थात्-प्रमाण वस्तु के अनेक रुपों को ग्रहण करता है; 'नय' वस्तु के एक अंश को ग्रहण करता है। नय दूसरे धर्मों की अपेक्षा रखता है। जो दूसरे धर्मों का निराकरण करता है वह दुर्नय है।

नयवाद सापेक्ष सत्य है। इस तत्त्व को सुबोधतया समझाने के लिए यह दृष्टान्त उपयोगी होगा। विशाल समुद्र की जलराशि में से थोड़ा सा पानी लीजिए। उस घड़े-भर पानी को न तो समुद्र कह सकते हैं और न असमुद्र ही कहा जा सकता है। यदि उस घड़े-भर पानी को ही समुद्र कह दिया जाय तो समुद्र का शेष जल असमुद्र हो जाएगा अथवा अनेक समुद्र मानने पड़ेंगे। ये दोनों प्रत्यक्ष-बाधित हैं इसलिए समुद्र के घड़े-भर पानी को हम समुद्र नहीं कह सकते। इसी तरह उसे असमुद्र भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि वह जल समुद्र का ही है। यदि समुद्र के घड़े-भर पानी में अल्प भी समुद्रता नहीं है तो वह शेष सब पानी में भी नहीं हो सकती; क्योंकि जो धर्म अंश में नहीं है वह समुदाय में भी नहीं हो सकता। जब समुद्र के घड़े भर पानी में समुद्रता नहीं है तो क्या कारण है कि वह शेष जल में मानी जाय? समुद्र के घड़े-भर पानी में भी समुद्रता है, अन्यथा वह समुद्र का जल नहीं कहा जा सकता है। तात्पर्य यह निकलता है कि घड़ा-भर पानी न तो समुद्र ही है और न असमुद्र ही, लेकिन समुद्र का अंश है। ठीक इसी तरह नय द्वारा गृहीत वस्तु का स्वरूप न तो पूर्ण वस्तु ही है और न अवस्तु ही; लेकिन वस्तु का अंश है। कहा भी है:—

नासमुद्रः समुद्रो वा समुद्रांशो यथैव हि।
नायंवस्तु न चावस्तु वस्त्वंशो कथ्यते बुधैः ॥

ऊपर कहा जा चुका है कि 'नय' वस्तु के एक अंश को ही ग्रहण करता है अतएव यह आंशिक और आपेक्षिक सत्य है। इस आपेक्षिक सत्य को ही पूर्ण सत्य मान कर जो वस्तु के अन्य अंशों का अपलाप करता है वह नयाभास हो जाता है। विश्व के एकान्तवादी दर्शन नयाभास के उदाहरण हैं।

पहले यह कहा गया है कि जितने वचन-प्रकार हैं उतने ही नयवाद हैं तदपि उन सबका वर्गीकरण करके जैनाचार्यों ने सात प्रकार के नय बताये हैं:—१ नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजुसूत्र (५) शब्द (६) समभिरूढ़ और (७) एवंभूत। इनमें से आदि के तीन नय द्रव्यार्थिक नय हैं और अन्त के चार नय पर्यायार्थिक हैं।

(१) नैगमनय—यह सामान्य और विषय का भेद किये बिना ही केवल द्रव्यमात्र को ग्रहण करता है।

(२) संग्रहनय—वस्तु के विशेष धर्म की तरफ लक्ष्य न रखता हुआ केवल सामान्य धर्म पर ही दृष्टि रखने वाला संग्रहनय है। यह विशेष धर्म का निषेध नहीं करता।

(३) व्यवहार—यह केवल विशेष गुण को लक्ष्य में रखकर ही द्रव्य को देखता है परन्तु सामान्य धर्म का अपलाप नहीं करता है।

(४) ऋजुसूत्र—पदार्थ की अतीत या अनागत स्थिति का विचार न कर केवल वर्त्तमान पर्याय को ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्रनय है।

(५) शब्द—पदार्थ के पर्यायवाची शब्द, लिंग वचन आदि की भिन्नता को गौण करके उन्हें एक ही अर्थ के वाचक मानने वाला शब्दनय है।

(६) समभिरूढ—पर्यायवाची शब्दों में भिन्नता ग्रहण करने वाला तथा लिंग-वचनादि के भेद से अर्थ-भेद मानने वाला समभिरूढनय है।

(७) एवंभूतनय—जब तक कोई पदार्थ निर्दिष्ट रूप के अनुसार क्रियाशील है तब तक ही वह उस शब्द से सम्बोधित किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

जैसे घड़ा जिस समय जल धारण की क्रिया कर रहा हो तभी वह घड़ा है अन्यथा नहीं। यह इस नय का अभिप्राय है।

नैगमनय की अपेक्षा से न्याय-वैशेषिकदर्शन, संग्रहनय की अपेक्षा से वेदान्तदर्शन, व्यवहारनय की अपेक्षा चार्वाकदर्शन और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से बौद्धदर्शन का मन्तव्य ठीक है परन्तु ये उक्त दर्शन अपने अपने मन्तव्य को ही एकान्त परिपूर्ण सत्य मान लेते हैं अतः सत्य का अंश भी विकृत हो जाता है और ये नयाभास के उदाहरण बन जाते हैं। बौद्धदर्शन वस्तु के अनित्यत्व धर्म को ही मानकर नित्यत्व का तिरस्कार करता है और सांख्यदर्शन वस्तु के कूटस्थ नित्यत्व को स्वीकार करके अनित्यत्व का अपलाप करता है। उक्त दोनों दर्शन अपने २ पक्ष के आग्रही हैं और एक दूसरे को मिथ्या कहते हैं लेकिन वास्तविक दृष्टि से दोनों ही अपूर्ण हैं। वस्तु में नित्यत्व और अनित्यत्व—दोनों धर्म पाये जाते हैं। अतएव वह नित्यानित्य है, यह कह कर जैनदर्शन का नयवाद उक्त दोनों विरोधी दृष्टिकोणों का समन्वय करता है।

जैनदर्शन का नयवाद द्वैत—अद्वैत, निश्चय-व्यवहार, ज्ञान-क्रिया, स्वभाव-नियति-काल-यदृच्छा-पुरुषार्थ आदि वादों का बड़ी कुशलता के साथ समन्वय करता है। जैनदर्शन, विभिन्न विचारों के पीछे रहेहुए विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं का अवलोकन करके समन्वय के सिद्धान्त के द्वारा परस्पर के मनोमालिन्य को दूरकर एकता स्थापित करता है नयवाद विचार दृष्टि के लिए अंजन का कार्य करता है जिससे दृष्टि का वैषम्य दूर हो जाता है। नयवाद प्रजा की दृष्टि को विशाल और हृदय को उदार बनाकर मैत्रीभाव का मार्ग सरल बना देता है। समस्त कलहों को शमन करके जीवन-विकास के मार्ग को सरल बनाने में नयवाद प्रधान और समर्थ अंग है। नयवाद के विमल जल से दृष्टि का प्रक्षालन हो जाने से राग-द्वेष का प्रचार बन्द हो जाता है। इस तरह आध्यात्मिक और व्यावहारिक—उभय दृष्टि से नयवाद विश्वहितङ्कर सिद्धान्त है। श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है:—

नयास्तव स्यात्पदलाञ्छना: स्युः रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः॥

हे जिनेन्द्र ! जिस प्रकार विविध रसों से सुसंस्कारित लोह-स्वर्ण आदि धातु अभीष्ट पौष्टिकता और स्वास्थ्य प्रदान करती हैं इसी तरह 'स्यात्' पद अंकित आपके नय अभीष्ट फल के प्रदाता हैं अतएव हितैषी आर्यपुरुष आपको नमस्कार करते हैं।

स्याद्वाद की समन्वय शक्ति को प्रदर्शित करते हुए प्रखरतार्किक श्री सिद्धसेन दिवाकर ने द्वात्रिंशिका स्तोत्र में कहा है:—

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः॥

हे नाथ ! जैसे सभी नदियाँ समुद्र में आकर सम्मिलित होती हैं इसी तरह विश्व के समस्त दर्शन आपके शासन में सम्मिलित हो जाते हैं। जिस प्रकार भिन्न २ नदियों में समुद्र नहीं दिखाई देता है इसी तरह भिन्न २ दर्शनों में आप नहीं दिखाई देते तथापि सब दर्शन समुद्र में नदियों के समान आपके शासन में समा जाते हैं।

स्याद्वाद के समन्वय तत्त्व की मीमांसा कर चुकने पर अब यह बताना आवश्यक है कि पदार्थ अनन्तधर्मात्मक कैसे है ? उसमें नित्यत्व और अनित्यत्व, सत्त्व और असत्व, सामान्य और विशेष, वाच्यत्व और अवाच्यत्व आदि विरुद्ध धर्म कैसे पाये जाते हैं ?

पदार्थों का व्यापक स्वरूप

विश्व के पदार्थों का भलीभांति अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि पदार्थमात्र उत्पत्ति, विनाश और स्थिति से युक्त है। तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में कहा है:—

"उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत"

पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति वाला है। जिसकी उत्पत्ति होती है, जिसका नाश होता है और जो ध्रुव रहता है वह पदार्थ है। जो उत्पन्न नहीं होता और ध्रुव नहीं रहता वह पदार्थ ही नहीं है यथा आकाश-कमल।

यह आशंका की जा सकती है कि जो उत्पन्न होता है वह भला ध्रुव कैसे रह सकता है ? इसका समाधान यह कि उत्पत्ति और विनाश, ध्रुवता के बिना नहीं हो सकते और ध्रुवता, उत्पत्ति एवं विनाश के बिना स्वतंत्र नहीं हो सकती। जहाँ हम वस्तु की उत्पत्ति और विनाश का अनुभव करते हैं वहाँ पर उसकी स्थिरता का भी अविकल रूप से भान होता है। तथा च जहाँ ध्रुवता का भान होता है वहाँ कथञ्चित् उत्पत्ति और विनाश अवश्य प्रतीत होते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की त्रिपुटी एक दूसरे के बिना नहीं रहती। उदाहरण के लिए एक स्वर्ण–पिण्ड को ही लीजिए।

प्रथम सुवर्ण-पिण्ड को गला कर उसका कटक (कड़ा) बना लिया गया। फिर कटक को तोड़ कर उसका मुकुट तय्यार किया गया। यहाँ स्वर्ण-पिण्ड के विनाश से कटक की उत्पत्ति और कटक के ध्वंस से मुकुट का उत्पन्न होना देखा जाता है परन्तु इस उत्पत्ति, विनाश के सिलसिले में मूलवस्तु स्वर्ण की सत्ता बराबर विद्यमान है। इससे यह सिद्ध हुआ कि उत्पत्ति और विनाश वस्तु के आकार–विशेष का–पर्याय का–होता है न कि मूलवस्तु का। मूलवस्तु तो लाखों परिवर्त्तन होने पर भी अपनी स्वरूप स्थिरता से च्युत नहीं होती। कटक, कुण्डलादि स्वर्ण के आकार विशेष हैं; इन आकार–विशेषों की ही उत्पत्ति और विनाश होना देखा जाता है। इनका मूलतत्व स्वर्ण उत्पत्ति और विनाश से अलग है। इस उदाहरण से यह प्रतीत हुआ कि पदार्थ में उत्पत्ति, विनाश और स्थिति ये तीनों ही धर्म स्वभावसिद्ध हैं।

किसी भी वस्तु का आत्यन्तिक विनाश नहीं होता। वस्तु की किसी आकृति-विशेष के विनाश से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह वस्तु सर्वथा नष्ट हो गई। आकृति के बदलने मात्र से किसी का सर्वथा नाश नहीं होता। जैसे बालदत्त बाल्यावस्था को छोड़कर युवा होता है और युवावस्था को छोड़कर वृद्ध होता है इससे जिनदत्त का नाश नहीं कहा जा सकता है। जैसे सर्प फणावस्था को छोड़कर सरल हो जाता है तो इस आकृति के परिवर्त्तन से उसका नाश होना नहीं माना जाता है। इसी तरह आकृति के बदलने से वस्तु का नाश नहीं हो जाता है। इसी प्रकार से कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन नहीं उत्पन्न होती है अतः जगत् के सब पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति–शील हैं, यह बात भलीभांति प्रमाणित हो जाती है। उत्पाद और

व्यय को 'पर्याय' और ध्रौव्य को 'द्रव्य' के नाम से कहा जाता है। इस तरह वस्तु का स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्यस्वरूप नित्य है और पर्यायस्वरूप अनित्य है कहा भी है।

"द्रव्यात्मनास्थितिरेव सर्वस्यवस्तुनः, पर्यायात्मना सर्वं वस्तूत्पद्यते विपद्यते वा"

द्रव्यरूप से सब पदार्थ नित्य हैं और पर्याय की अपेक्षा से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं अतएव अनित्य हैं।

समर्थविद्वान् श्री समन्तभद्राचार्य ने उत्पाद व्यव और ध्रौव्य को एक और ही युक्ति द्वारा प्रमाणित किया है। उन्होंने लिखा है:—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थं जनो याति सहेतुकम्॥

कल्पना करिये कि तीन व्यक्ति एक साथ किसी सुनार की दुकान पर गये। उनमें से एक को स्वर्णघट की, दूसरे को मुकुट की और तीसरे को केवल स्वर्ण की आवश्यकता है। वहाँ जाकर वे देखते हैं कि सुनार सोने के बने हुए घड़े को तोड़कर उसका मुकुट बना रहा है। सुनार के इस कार्य को देखकर उन तीनों मनुष्यों के मन में भिन्न २ प्रकार के भाव पैदा हुए। जिसे स्वर्णघट की आवश्यकता थी उसे शोक हुआ, जिसे मुकुट की आवश्यकता थी वह प्रसन्न हुआ और जिसे केवल स्वर्ण की ही आवश्कता थी उसे न हर्ष हुआ और न शोक। वह अपने मध्यस्थ भाव में रहा। यहाँ यह प्रश्न होता है कि यह भाव-भेद क्यों? अगर वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक न हो तो इस प्रकार के भावभेद की उपपत्ति कभी नहीं हो सकती। घटप्राप्ति की इच्छा से आने वाले पुरुष को घट के विनाश से शोक और मुकुटार्थी को मुकुट की उत्पत्ति का हर्ष और स्वर्णार्थी को न हर्ष और न शोक हुआ इससे यह प्रतीत होता है कि घट के विनाश काल में ही मुकुट उत्पन्न हो रहा है और दोनों अवस्थाओं में स्वर्णद्रव्य स्थित है तब तो उन तीनों को क्रमशः शोक, हर्ष और मध्यस्थ भाव हुआ। यदि घट—विनाश काल में

मुकुट की उत्पत्ति न मानी जाय तो घटार्थी पुरुष को शोक और मुकुटार्थी को हर्ष का होना दुर्घट-सा हो जाता है। इसी तरह घट-मुकुटादि स्वर्ण-पर्यायों में स्वर्णरूप कोई द्रव्य न माना जाय तो स्वर्णार्थी पुरुष के मध्यस्थभाव की उपपत्ति नहीं हो सकती है। परन्तु सुनार के एक ही कार्य से शोक, प्रमोद और माध्यस्थ तीनों भाव देखे जाते हैं ये निर्निमित्तिक नहीं हो सकते, इसलिए वस्तु के स्वरूप को उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य युक्त ही मानना चाहिए।

एक और भी लौकिक उदाहरण से पदार्थ उत्पाद-व्यय—ध्रौव्यात्मक सिद्ध होता है। वह इस प्रकार है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोऽत्ति दधिव्रतः
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम् ॥

जिस पुरुष को केवल दुग्ध ग्रहण का नियम है वह दही नहीं खाता, जिसको दधिग्रहण का नियम है वह दुग्ध का ग्रहण नहीं करता, परन्तु जिस व्यक्ति ने गौ-रसका त्याग कर दिया हो वह न दूध ही खाता और न दही ही। इस व्यावहारिक उदाहरण से दुग्ध का विनाश, दधि की उत्पत्ति और गोरस की स्थिरता ये तीनों ही तत्त्व प्रमाणित होते हैं। उपाध्याय यशोविजयजी ने लिखा है :—

उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ॥

अर्थात्—दूध जब दधि-रूप में परिणित होता है तब दूध का विनाश और दही का उत्पाद होता है परन्तु गोरस द्रव्य स्थिर रहता है। ऐसी अवस्था में कौन स्याद्वाद का निषेध कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से वस्तु उत्पाद-व्याय-ध्रौव्यात्मक है यह भलीभांति प्रमाणित हो जाता है।

उपर्युक्त कथन से वस्तु के दो रूप सिद्ध होते हैं-एक विनाशी और दूसरा अविनाशी। उत्पाद और व्यय विनाशी स्वरूप हैं और ध्रौव्य अविनाशी स्वरूप है। पारिभाषिक शब्दों में इसे "पर्याय" और "द्रव्य" कहा है। जैनदर्शन किसी भी पदार्थ को एकान्तनित्य अथवा एकान्तअनित्य

नहीं मानता है। वह सापेक्षरूप से वस्तु में नित्यता और अनित्यता रूप दोनों धर्मों को स्वीकार करता है। वस्तु के अविनाशीस्वरूप द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य है और विनाशीस्वरूप पर्याय की अपेक्षा वस्तु अनित्य है। अतएव वस्तु नित्यानित्य-उभयरूप-है।

वस्तु के इस अनेकान्त स्वरूप को न मान कर यदि केवल एकान्त नित्यवाद या अनित्यवाद स्वीकार किया जाय तो वस्तु का स्वरूप ही नहीं बनता है। पदार्थ का लक्षण अर्थक्रियाकारित्व है। यह लक्षण वस्तु को अनेकान्तात्मक मानने पर ही घटित हो सकता है। एकान्त नित्य और एकान्त अनित्य पदार्थ में अर्थक्रिया नहीं हो सकती। कूटस्थ नित्य पदार्थ में अर्थक्रिया नहीं हो सकती, क्योंकि क्रिया होने में परिणति की आवश्यकता होती है। जहाँ परिणति है वहाँ कूटस्थ नित्यता नहीं रह सकती है। सर्वथा अनित्य पक्ष में भी अर्थक्रिया घटित नहीं, क्योंकि पदार्थ प्रथम क्षण में तो अपनी उत्पत्तिमान है और दूसरे क्षण में सर्वथा नष्ट हो जाता है तो अर्थ-क्रिया कैसे बन सकती है? अतः अनेकान्त पक्ष में ही अर्थक्रिया और अर्थ व्यवस्था घटित होती है।

हमारा प्रत्यक्ष अनुभव भी पदार्थों की नित्यानित्यता को बतला रहा है। स्वर्णद्रव्य की कटकत-कुण्डल आदि और मृतिका द्रव्य की घट, कुण्डिका आदि विभिन्न पर्याय दृष्टिगोचर होती हैं। हम देखते हैं कि सोने का कड़ा कालान्तर में मुकुट बन जाता है और मुकुट टूटकर हार बन जाता है। इस तरह स्वर्णद्रव्य के आकार में उत्पाद-विनाश होता रहता है लेकिन स्वर्ण द्रव्य का ध्वंस नहीं होता। इसी तरह मिट्टी का घट बन जाता है, घट फूटकर कपाल (ठीकरी) बन जाता है लेकिन मिट्टी कायम रहती है। उसके मूल-रूप का कभी ध्वंस नहीं होता। पर्यायों की परिणति होती है, यह बात स्पष्ट है हि अतएव पदार्थ को पर्याय की अपेक्षा से अनित्य मानना चाहिए द्रव्य की अपेक्षा से पदार्थ नित्य है क्योंकि विभिन्न पर्यायों में द्रव्य का अनुगत रूप से प्रत्यक्ष भान हो रहा है अतएव वस्तु द्रव्यापेक्षा से नित्य और पर्यायापेक्षा से अनित्य है। पदार्थ का नित्यानित्य रूप ही वास्तविक है।

इसी तरह सामान्य-विशेष, सत्-असत्, वाच्य-अवाच्य, भेद-अभेद की विचारणा में भी पदार्थ उभयरूप ही है।

पदार्थ में रहे हुए एक धर्म को लेकर अधिक से अधिक सात प्रकार से निरूपण किया जा सकता है। यह सात प्रकार का विधिनिषेधमूलक प्रयोग सप्तभंगी कहलाता है। वस्तु के अस्तित्व धर्म को लेकर निम्न प्रकार से सात तरह के विधिनिषेधमूलक वाक्य प्रयोग हो सकते हैं :—

सप्तभंगी

(१) स्याद् अस्ति एव :—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से सत् है। वस्तुओं में भिन्न २ गुण-स्वभाव—होते हैं। इन भिन्न स्वभावों के कारण ही वस्तु भिन्न २ हैं। यदि ऐसा न माना जाय और एक वस्तु का धर्म दूसरे वस्तु में भी माना जाय तो पदार्थों में एकता आ जाएगी। यदि घट का स्वभाव पट में भी माना जाय तो घट और घट की भिन्नता नहीं रह सकती है। अतः घट का स्वभाव घट में और पट का स्वभाव पटमें रहता है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप की अपेक्षा से ही सत् है। अतः प्रथम वचन-प्रयोग "वस्तु कथञ्चिद् सत् ही है" यह बताया गया है।

(२) स्याद् नास्त्येव—वस्तु कथञ्चित् असत् रूप ही है। अर्थात् पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से वस्तु अभाव रूप ही है। यदि ऐसा न माना जाय तो एक ही वस्तु सर्वरूप हो जाएगी। यदि घट जिस प्रकार घटत्व रूप से है उसी तरह पट रूप से भी है ही तो घट और पट में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। यह इष्ट नहीं है। अतः घट पट रूप से नहीं ही है। घट स्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से है और परद्रव्य क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से नहीं है। स्व-द्रव्यादि की अपेक्षा से है यह प्रथम भंग में बताया। इस द्वितीय भंग में यह बताया गया है कि वस्तु परद्रव्यादि की अपेक्षा असत् रूप है।

(३) स्यादस्ति नास्ति—जब वस्तु में रहे हुए स्व-द्रव्यादिक की अपेक्षा से सत्व और परद्रव्यादिक की अपेक्षा से असत्व को क्रमशः प्रकट करने की विवक्षा है तब यह तृतीय भंग बनता है अर्थात् पदार्थ कथञ्चित् है और नहीं भी।

(४) स्याद् अवक्तव्य—पदार्थ में रहे हुए स्वद्रव्यादिक की अपेक्षा से सत्त्व को और परद्रव्यादिक की अपेक्षा से असत्त्व को एक साथ कहने

की विवक्षा है परन्तु इन दो विरोधी धर्मों को एक साथ प्रकट करने वाला कोई शब्द नहीं है इसलिए इसे 'अवक्तव्य' शब्द से प्रकट करते हैं। यह चतुर्थ भंग हुआ।

(५) स्याद् अस्ति अवक्तव्यं च—जब वस्तु में स्व-द्रव्यादि की अपेक्षा से असत्त्व और युगपत् सत्त्व-असत्त्व को प्रकट करने की इच्छा हो तब यह भंग बनता है।

(६) स्याद् नास्ति अवक्तव्यं च—जब वस्तु में पर द्रव्यादि की अपेक्षा से असत्त्व और युगपत् सत्त्व-असत्त्व को प्रकट करने की इच्छा हो तब यह भंग बनता है।

(७) स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्यं च—जब वस्तु में रहे हुए स्वद्रव्यादिक की अपेक्षा से सत्त्व औरपर द्रव्यादिक की अपेक्षा से असत्त्व धर्म को क्रमशः तथा उक्त दोनों धर्मों को युगपत् भी कहने की विवक्षा हो तब 'अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यंच' यह भंग बनता है

इन सातभंगों में मूलतः विधि-निषेध रूप दो भंग हैं। इन दो भंगों के मेल से तीसरा भंग बनता है। पहले और दूसरे भंग को युगपत् कहने की विवक्षा में चतुर्थ भंग बनता है। प्रथम और चतुर्थ के संयोग से पञ्चम; द्वितीय और चतुर्थ के संयोग से षष्ठ और तृतीय-चतुर्थ के संयोग से सप्तमभंग बनता है। वस्तु के एक धर्म को लेकर एक सप्तभंगी बनती है। वस्तु में अनन्त धर्म हैं अतः अनन्त सप्तभंगियाँ बन सकती हैं। परन्तु एक धर्म को लेकर तो सप्तभंगी ही बन सकते हैं। सप्तभंगी और स्याद्वाद के द्वारा ही वस्तु का सच्चा स्वरूप प्रतीत हो सकता है। इस विवेचन का सारांश यह है कि जैन दर्शन को वस्तु का एकान्त रूप अभिमत नहीं है वरन् उसकी दृष्टि में वस्तु का स्वरूप अनेकान्तमय है। अतः कहा गया है कि "अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम्"

अनेकान्तवाद के सुसंगत सिद्धान्त के रहस्य को भलीभांति न समझने के कारण जैनदर्शन के प्रतिद्वन्द्वी वेदान्त के आचार्य शंकर ने तथा अन्य विद्वानों ने इस सिद्धान्त पर अनुचित आक्षेप किये हैं और इसे अनिश्चितवाद, संशयवाद और उन्मत्तप्रलाप तक कह डाला है। शंकराचार्य ने स्याद्वाद के जिस स्वरूप का

आक्षेप-परिहार

खण्डन किया है वह जैनदर्शन को भी मान्य नहीं है। जैनदर्शन स्याद्वाद का जो स्वरूप मानता है उसे यदि वेदान्त के आचार्य सही रूप में समझने का प्रयत्न करते तो उन्हें उसके विरुद्ध लिखने का प्रसंग ही नहीं आता। शंकराचार्य ने स्याद्वाद के विरुद्ध शांकरभाष्य में यह लिखा है—

"न ह्येकस्मिन्धर्मिणि युगपत् सदसत्वादि विरुद्धधर्मसमावेशः सम्भवति शीतोष्णवत्"।

शीत और उष्ण की भांति एक धर्मी में परस्पर विरोधी सत्व और असत्व आदि धर्मों का एक काल में समावेश नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि जैसे शीत और उष्ण ये दोनों विरुद्ध धर्म एक काल में एक जगह पर नहीं रह सकते उसी तरह सत्व और असत्व का भी एक काल में एक स्थान पर रहना नहीं बन सकता; इसलिये जैनों का सिद्धान्त ठीक नहीं है।

शंकराचार्य ने जो शंका की है वही प्रायः सब स्याद्वाद के विरोधियों की मुख्य शंका और आक्षेप है। उनका कहना है कि जो नित्य है वह अनित्य कैसे? और जो अनित्य है वह नित्य कैसे? जो सत् है वह असत् नहीं हो सकता। जो एक है वह अनेक नहीं हो सकता। जो सामान्य रूप है वह विशेष रूप नहीं हो सकता। जो भिन्न है उसे अभिन्न कैसे कहा जा सकता है? ये परस्पर विरोधीधर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं? यह है स्याद्वाद पर किया जाने वाला मुख्य आक्षेप।

इस प्रकार के आक्षेप करने वालों ने जैनधर्म के स्याद्वाद के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना। वे स्याद्वाद का यही स्वरूप समझते रहे कि परस्पर विरोधी धर्मों को एक स्थान पर स्वीकार करने का नाम स्याद्वाद है। परन्तु "क्यों और कैसे"? इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। स्याद्वाद का अर्थ "परस्पर विरुद्ध धर्मों का एक स्थान पर विधान करना" नहीं है परन्तु अनन्त धर्मात्मक वस्तु में अपेक्षा-भेद से जो जो भेद रहे हुए हैं उनको उसी अपेक्षा से वस्तु में स्वीकार करने की पद्धति का, जैनदर्शन अनेकान्तवाद या स्याद्वाद के नाम से उल्लेख करता है। जैनदर्शन का स्याद्वाद यह नहीं कहता

है कि पदार्थ जिस अपेक्षा से नित्य है, सत् है, भिन्न है, उसी अपेक्षा से अनित्य भी है, सत् भी है और भिन्न भी है। जैनाचार्यों ने इस भ्रम को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में दूर करने का प्रयत्न किया है। जैनदर्शन अगर एक ही अपेक्षा से नित्य-अनित्य, सत्-असत्, भिन्न-अभिन्न आदि कहता तो जरूर विरोध दोष आता, लेकिन वह भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भिन्न २ धर्मों की सत्ता स्वीकार करता है इसमें विरोध की कोई गंध नहीं हो सकती।

जिस प्रकार एक ही व्यक्ति में पुत्रत्व और पितृत्व धर्म संसार स्वीकार करता है लेकिन वह एक ही अपेक्षा से नहीं किन्तु भिन्न २ अपेक्षाओं से। वह व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है। इस प्रकार उसमें पितृत्व और पुत्रत्व दोनों धर्म अविरोध रूप से पाये जाते हैं। इसमें विरोध का अवकाश ही कहाँ है ? विरोध तो तब होता जब उसे उसके पिता की अपेक्षा से भी पिता और पुत्र की अपेक्षा से भी पिता कहा जाता। अथवा उसके पुत्र की अपेक्षा से भी पुत्र कहा जाता। एक ही व्यक्ति की अपेक्षा पिता और पुत्र कहा जाता तो अवश्य विरोध होता। लेकिन विभिन्न अपेक्षा से जब विभिन्न धर्मों का कथन किया जाता है तब कोई विरोध नहीं होता है।

अपेक्षा-भेद से विरोधी धर्मों को एकत्र स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं आता है। जैसे "जिनचन्द्र छोटा भी है और बड़ा भी है" इस स्थल पर ज्ञानचन्द्र की अपेक्षा जिनचन्द्र में छोटापन और शान्तिचन्द्र की अपेक्षा बड़ापन देखा जाता है। एक ही जिनचन्द्र व्यक्तित्व में छोटापन और बड़ापन—ये दो विरोधी धर्म जैसे अपेक्षा-भेद से विद्यमान हैं इसी तरह अपेक्षा-भेद से नित्यानित्यत्व, सत्त्व-असत्त्व, एकत्व-अनेकत्व, सामान्य-विशेष आदि विरोधी धर्म भी अविरोध रूप से एकत्र रह सकते हैं। इसमें विरोध की कोई आशंका नहीं रहती।

जैनदर्शन जिस रूप से वस्तु में सत्त्व मानता है उसी रूप में उसमें असत्व नहीं मानता है; वह स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वस्तु में सत्व मानता है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से असत्व मानता है इसलिये अपेक्षा-भेद से सत्व—असत्व दोनों ही वस्तुओं में अविरोध रूप से रहते हैं। इसी तरह द्रव्यापेक्षा से नित्यत्व और पर्यायापेक्षा से अनित्यत्व भी अविरुद्धतया रह सकता है।

आधुनिक विज्ञान के आचार्यों और प्राध्यापकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अपेक्षावाद (The doctrine of Relativity) से ही वस्तु का स्वरूप यथार्थरूप से जाना जा सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्याद्वाद का सिद्धान्त वैज्ञानिक सत्य है और इस सिद्धान्त का उपदेष्टा जैनधर्म विश्वधर्म और वैज्ञानिकधर्म है। जैनधर्म के इस स्याद्वाद सिद्धान्त के व्यावहारिक रूप द्वारा संसार प्रगति के पथ पर प्रयाण कर सकता है।

जैनधर्म के विषय में भ्रान्त मान्यताएं

और उनका परिष्कार

जैनधर्म और उसके सिद्धान्तों के विषय में भारतीय और यूरोपीय अजैन वर्ग में कतिपय गलत धारणाएँ घर किये हुई हैं। आज से कुछ दायकों पूर्व तो अजैन जगत् में बहुत ही अधिक गलतफहमियाँ इस सम्बन्ध में थीं, परन्तु कुछ निष्पक्ष और गहन अभ्यासी विद्वानों के गवेषणा पूर्ण सत्प्रयत्नों से बहुत सी भ्रान्तियों का निराकरण हो गया है। डाक्टर हर्मन जेकोबी महोदय ने जैनधर्म के विषय में कतिपय तथ्यपूर्ण तत्वों का उद्घाटन किया जिसके कारण कतिपय भ्रमणाएँ दूर होगई हैं।

अजैन पाश्चात्य विद्वानों को जैनधर्म के सम्बन्ध में जो भ्रम हुआ इसका कारण यह है कि उन्होंने जैनधर्म के विषय में उसके मूलग्रन्थों या जैनाचार्यों से कुछ न लेकर ब्राह्मणग्रन्थों के आधार पर से ही अपना अभिप्राय बाँध लिया। जैनधर्म ने ब्राह्मणधर्म की यज्ञ यागादि हिंसक प्रवृत्तियों का और उसकी जातिगत श्रेष्ठता का सदा से विरोध किया है इसलिए ब्राह्मणधर्मानुयायी जैनधर्म को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानते आये हैं इसलिए उन्होने अपने ग्रन्थों में जैनधर्म और उसके सिद्धान्तों को विकृत रूप में चित्रित किया है। उस विकृत चित्रण के आधार पर ही ऊपर-ऊपर से ज्ञान करने वाले कई यूरोपीय लेखकों ने जैनधर्म के सम्बन्ध में गलत विचार बना लिये और वही उन्होंने अपने लेखों में व्यक्त किये। केवल दूसरे को दोष देने से ही काम नहीं चल सकता है; सत्य तो यह है कि जैनधर्म के आचार्यों विद्वानों ने ब्राह्मण और बौद्धधर्म की तरह अपने सिद्धान्तों के प्रचार की

और चाहिए वैसा ध्यान ही नहीं दिया। इसके कारण संसार जैनसिद्धान्तों के विषय में बहुत लम्बे समय तक अनभिज्ञ ही रहा। संक्षेप में यही कारण हैं कि जिनके कारण जैनधर्म के सम्बन्ध में कई भ्रान्त धारणाएँ लोगों में फैली हुई हैं। कारणों की विशेष गहराई में न उतरकर यहाँ यही बताना है कि जैन सिद्धान्तों के विषय में क्या २ भ्रामक मान्यताएँ फैली हुई हैं और उनका निराकरण क्या है।

सबसे बड़ी भ्रान्ति जैन-इतिहास के सम्बन्ध में है। कई विद्वानों की धारणा है कि जैनधर्म, बौद्धधर्म की शाखा है; कई यह मानते हैं कि यह हिन्दुधर्म की शाखा है। कई यह मानते हैं कि भ० महावीर ने जैनधर्म की स्थापना की; कई यह बतलाते हैं कि महावीर से पहले होने वाले पार्श्वनाथ जैनधर्म के आदि प्रवर्त्तक हैं। इस तरह जैनधर्म के सत्य-इतिहास के विषय में नाना भाँति की भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। यहाँ अतिसंक्षेप में इनका निराकरण करने का प्रयत्न किया जाएगा।

इतिहास-विषयकभ्रान्ति

जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा बतलाना तो इतिहास की सबसे बड़ी अज्ञानता है। इतिहास यह स्पष्ट कह रहा है कि बुद्ध के समय में जैनधर्म गौरव-मय स्थान पर आरूढ था। जैनधर्म के तेवीसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान् हुए हैं जिनकी ऐतिहासिकता अब निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है। ये पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर भगवान् महावीर से लगभग २५० वर्ष पहले हो चुके हैं। बुद्ध तो भगवान् महावीर के समकालीन हैं। बौद्ध ग्रन्थों में भी भगवान् पार्श्वनाथ का उल्लेख मिलता है। आज के बहुत से इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बुद्ध ने अपनी विचार-धारा में बहुत सा अंश अपने से पहले होने वाले भगवान् पार्श्वनाथ के धर्मचिन्तन से लिया है। यही कारण है कि श्रावक, भिक्षु आदि जैन परम्परा के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग बौद्ध-साहित्य में प्रचुरता से मिलता है।

बौद्ध और जैनधर्म ने एकसाथ वेद-विहित यज्ञों का निषेध किया, वेदों की प्रमाणता मानने से इन्कार किया और दोनों ने जाति-पाँति के भेदों को अमान्य घोषित किया तथा अहिंसा पर मुख्यरूप से भार दिया।

इन समानताओं के कारण कतिपय पाश्चात्य विद्वानों को यह भ्रम पैदा हुआ। परन्तु इस विषय में जर्मनी के सुप्रसिद्ध प्रो. हर्मन जेकोबी ने पर्याप्त अन्वेषण किया और फलस्वरूप उन्होंने अपना स्पष्ट अभिप्राय डंके की चोट घोषित किया कि "जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र धर्म है वह किसी की शाखा या अनुकरण नहीं है"। हर्ष का विषय है कि जेकोबी महोदय के इस मन्तव्य से कई पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी धारणाएँ संशोधित करली हैं। अब प्रायः सब यह स्वीकार कर लेते हैं कि जैनधर्म, बौद्धधर्म से प्राचीन है।

जेकोबी महोदय ने जैनधर्म को सर्वथा मौलिक और स्वतंत्रधर्म सिद्ध किया है उससे यह भी धारणा खण्डित हो जाती है कि जैनधर्म हिन्दुधर्म की एक शाखा है। जैनधर्म के इस काल के आदि तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव हैं जो संख्यातीत वर्ष पहले हो गये हैं। इन ऋषभदेव का नामोल्लेख और चरित्र-वर्णन वेदों में भी किया गया है। ऋग्वेद में भगवान ऋषभदेव की "तू अखण्ड पृथ्वीमण्डल का सार त्वचा रूप है, पृथ्वीतल का भूषण है, दिव्यज्ञान द्वारा आकाश को नापता है, हे ऋषभनाथ सम्राट्! इस संसार में जगरक्षक व्रतों का प्रचार करो" इन शब्दों में स्तुति की गई है। वेद, पुराण, योगवाशिष्ट, आदि २ प्राचीनतम ग्रन्थों में जैनतीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) आदि का उल्लेख मिलता है, इससे यह सिद्ध होता है कि जैनधर्म कम से कम वेदधर्म जितना प्राचीन तो है ही। आजकल ऐसी भी सामग्रियाँ पुरातत्वज्ञों को प्राप्त हुई हैं जो श्रमणसंस्कृति-जैनसंस्कृति-को ब्राह्मणसंस्कृति से भी अधिक प्राचीनता को प्रकट करती हैं।

बड़े २ इतिहासज्ञों और पुरातत्ववेत्ताओं ने अब यह मान लिया है है कि जैनधर्म एक प्राचीन और मौलिक धर्म है। इस सम्बन्ध में अजैन विद्वानों ने जो अभिप्राय व्यक्त किये हैं वे 'जैनधर्म की प्राचीनता' शीर्षक प्रकरण में देखने चाहिए। वहाँ इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यहाँ तो केवल दिक्—सूचन मात्र करना अभीष्ट है। उस प्रकरण को पढ़ लेने से उक्त सभी भ्रान्तियों का निराकरण हो जाता है। अतः उस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

जैन-इतिहास सम्बन्धी भ्रमणा के बाद जो महत्वपूर्ण भ्रान्ति फैली हुई है वह है जैनियों को या जैनधर्म को 'नास्तिक' समझना। अब इसपर थोड़ा सा दृष्टिपात कर लें।:—

जैनधर्म पूर्णतया आस्तिक है, उसे नास्तिक कहना सूर्य में कालिमा बताना है। आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा पर विचार करने से यह ज्ञात हो जाएगा कि जैनधर्म आस्तिक है या नास्तिक है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि के "अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः ।४।४।६०" इस सूत्र का अर्थ करते हुए भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में लिखा है "अस्ति परलोकः इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः, नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः" अर्थात् जो परलोक को मानता है वह आस्तिक है और जो परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। इस परिभाषा के अनुसार जैनधर्म आस्तिक धर्म है क्योंकि वह परलोक को मानता है, पुनर्जन्म को मानता है, पाप-पुण्य को मानता है, स्वर्ग-नरक-मोक्ष में विश्वास रखता है, ईश्वर का अस्तित्व मानता है। इतना होते हुए भी जैनधर्म को नास्तिक-धर्म कहना मताग्रह का दुष्परिणाम है या निरी अज्ञानता है।

आस्तिक-नास्तिक विचार

जैनधर्म ने ब्राह्मणधर्म के यज्ञ-यागों में होने वाली हिंसा का तीव्र विरोध किया और ये हिंसक यज्ञादि जिस आधार शिला-पर खड़े थे उन वेदों के प्रामाण्य को भी मानने से इन्कार किया। जैनधर्म का यह क्रांति-मूलक कदम ठोस तर्क और प्रमाण पर प्रतिष्ठित था अतः वेदधर्मानुयायियों ने इसकी युक्तियों का खण्डन करने के बजाय 'नास्तिको वेदनिन्दकः, कह कर उसका प्रभाव कम करना चाहा। जो वेद की निन्दा करने वाला है वह नास्तिक है, यह नास्तिकता की परिभाषा ठीक नहीं कही जा सकती है। किसीधर्म-विशेष के ग्रन्थ को न मानने से ही यदि नास्तिक कहा जाय तो सब नास्तिक ही ठहरेंगे। जैन भी कह सकते हैं कि जो जैनशास्त्रों को न माने वह नास्तिक है। अतः "नास्तिको वेदनिन्दकः" इसको कोई भी बुद्धिमान और निष्पक्ष व्यक्ति नहीं मान सकता है।

कई लोग यह कहते हैं कि जैनधर्म ईश्वर को नहीं मानता है। यह सरासर मिथ्या है। जैनधर्म परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को स्वीकार करता

है। जो रागद्वेष से सर्वथा अतीत हो चुका हो वह वीतराग-आत्मा शुद्ध-बुद्ध निर्विकार परमात्मा है, यह जैनधर्म मानता है। वह ईश्वर के विशुद्ध-स्वरूप को स्वीकार करता है। वह यह भी मानता है कि प्रत्येक आत्मा राग-द्वेष से मुक्त होकर परमात्मा बन सकता है। इस अवस्था में यह कहना कि जैनधर्म, परमात्मा की सत्ता को नहीं मानता सर्वथा मिथ्या है।

कई यह कहते हैं कि जैनधर्म ईश्वर को जगत् का स्रष्टा और नियन्ता नहीं मानता है अतः वह नास्तिक है। यह कथन भी युक्तिशून्य है। वस्तुतः ईश्वर में जगत्कर्तृत्व घटता ही नहीं है जगत् का कर्त्ता मानने पर ईश्वर में ईश्वरता ही नहीं रह पाती है। अतः जैनधर्म ईश्वर में जगत्कर्तृत्व का मिथ्या उपचार नहीं करता है, इस विषय में "जैनदृष्टि से ईश्वर" प्रकरण में विस्तार से प्रकाश डाला गया है अतः यहाँ पुनः पिष्टपेषण नहीं करना है। युक्ति के द्वारा जब ईश्वर में जगत्कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता है तो उसे न मानने से कोई नास्तिक कैसे कहा जा सकता है? कई वेदानुयायी सांख्य, मीमांसक आदि सम्प्रदाय भी जगत् को ईश्वरकर्तृक नहीं मानते वे तो नास्तिक नहीं और जैनधर्म इसी कारण नास्तिक है, यह कैसे कहा जा सकता है?

वस्तुतः नास्तिक और आस्तिक की परिभाषा जो भट्टोजी दीक्षित ने लिखी है वह प्रामाणिक और संगत है। इसके अतिरिक्त जो 'नास्तिक' की परिभाषाएँ बताई जाती है वे सब मताग्रह को सूचित करती है। जैनधर्म जैसा धर्म जो आत्मा को परमात्मा की ओर प्रगति करने की प्रेरणा देता है, जो सदाचार और नीति का प्रबल पोषक है, जो त्याग—संयम और तपश्चर्या को महत्व देता है और जो परलोक की व्यवस्था में पूरी २ श्रद्धा रखता है वह नास्तिक कैसे कहा जा सकता है। अतः जैनधर्म को निरीश्वरवादी और नास्तिक कहना भयंकर भूल करना है।

जैनधर्म का प्राण अहिंसा है। संसार में अहिंसाधर्म का प्रचार करने का सबसे अधिक श्रेय जैनधर्म को ही है। अहिंसा का जितना सूक्ष्म-निरूपण जैनधर्म ने किया है उतना और किसी ने नहीं।

जैन-अहिंसा पर आक्षेप

जैन तत्वचिन्तकों ने ही आध्यात्मिक और सांसारिक शान्ति के लिए अहिंसा की आवश्यकता का सर्वप्रथम अनुभव किया। दूरदर्शी जैन तत्वचिन्तकों ने हजारों वर्ष पहले यह

घोषित कर दिया है कि यदि शान्ति का कोई मार्ग है तो वह अहिंसा ही है। युद्ध की विभीषिकाओं से मानवसमाज थर्रा उठा है। आजके विचारकों ने इस स्थिति में अहिंसा की महती उपयोगिता को स्वीकार किया है। कुछ भी हो-अहिंसा, जैनधर्म की अमर देन है।

जैनधर्म के इस महान् सिद्धान्त पर कतिपय लोग यह आक्षेप लगाते हैं कि जैनियों की अहिंसा ने भारत को कायर और पुरुषार्थहीन बना दिया। जिसके कारण उसे (भारत को) पराधीनता भोगनी पड़ी। यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल और सरासर सत्य की हत्या करने वाला है। जैनधर्म की अहिंसा ने भारत को कायर या परतंत्र नहीं बनाया अपितु उसने कायरता और पराधीनता से उसे मुक्ति दिलाई है। इतिहास इस बात की साक्षी दे रहा है। भारत में जब तक अहिंसाधर्म का प्राबल्य रहा तब तक सर्वत्र अमन-चैन और सुख-शान्ति रही। भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल, चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे अहिंसा प्रेमी शासकों का समय ही तो कहा जाता है। भारत की पराधीनता का कारण राजाओं की पारस्परिक अनेकता (फूट) और विलास-प्रियता है न कि जैन-अहिंसा। जो लोग अहिंसा पर यह बिना सिर-पैर का आक्षेप करते हैं वे इतिहास से अनभिज्ञता प्रकट करते हैं और सत्य के साथ खिलवाड़ करते हैं।

स्व० महात्मा गांधी ने अहिंसा की शक्ति के बल पर भारत को सदियों से खोई हुई स्वतंत्रता प्रदान कराई, इस प्रत्यक्ष सत्य से कौन आँखमिचौनी कर सकता है? अहिंसा के इस प्रत्यक्ष चमत्कार के बाद भी भला कौन ऐसा होगा जो अहिंसा की शक्ति में विश्वास न करे। अतः इस प्रकार अहिंसा के सिद्धांत पर आक्षेप करने वालों को महात्मा गांधी ने महान् चुनौती दी है। लाला लाजपतराय जैसे व्यक्तियों को भी अहिंसा के विषय में गलतफहमी हो गई थी, जिसका महात्मा गांधी ने सुन्दर ढंग से निराकरण किया था। आज के गांधीवाद के युग में अहिंसा की शक्ति का सब को अनुभव होने लगा है। सब यही मानते हैं कि अहिंसा के द्वारा ही दुनिया में शांति की स्थापना हो सकती है। अतः अब इस विषय पर अधिक लिखना अनावश्यक ही है।

कई लोग जैन-अहिंसा पर यह आक्षेप करते हैं कि यह अव्यवहार्य

अहिंसा की अव्यावहारिकता पर विचार

है। जैनों ने अहिंसा के विषय में इतना अधिक बारीक काता है कि वह व्यवहार की चीज ही नहीं रह गई है" यह भी जैन-अहिंसा पर आक्षेप किया जाता है। निस्संदेह जैनधर्म ने अहिंसा के सम्बन्ध में खूब तलस्पर्शी विवेचन किया है परन्तु यह उसकी त्रुटि नहीं किन्तु गौरव की निशानी है। जैनधर्म को इस बात पर गौरव है कि उसने विश्व को शान्ति देनेवाली अहिंसा-संजीवनी पर सबसे अधिक भार दिया है। जैनधर्म ने अहिंसा को व्यापक-रूप दिया है। तदपि वह केवल आदर्श की वस्तु ही नहीं रह गई है अपितु वह व्यवहार साध्य भी है। जो लोग केवल ऊपर-ऊपर से ज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही इस प्रकार का आक्षेप करते हैं। जिन्होंने थोड़ी भी गहराई से जैनधर्म सम्मत अहिंसा का स्वरूप समझा है वे कह सकते हैं कि उक्त आक्षेप का कोई ठोस आधार नहीं है। जैनधर्म की अहिंसा की परिभाषा, उसका क्रमिक आराधन, आराधन करने वाले पात्रों की विविध श्रेणियाँ आदि २ बातों का जिन्होंने अध्ययन किया है उनके सामने यह अव्यावहारिकता का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता है।

'प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा' यह हिंसा की परिभाषा की गई है। प्रमाद के (अशुभविचार और आचार के) वशीभूत होकर किसी प्राणी को प्राणों से रहित करना हिंसा है यह उक्त सूत्र का भावार्थ है। इसमें वही हिंसा परिगृहीत है जो राग-द्वेष के वशीभूत होकर की जाती है। हलन-चलन, श्वासोच्छ्वास आदि के द्वारा होने वाली अनिवार्य हिंसा के कारण कर्म-बन्ध नहीं होता, वशर्ते कि उसमें राग-द्वेष की भावना न हो। जैन तत्वविचारकों ने जिस अहिंसा का प्रतिपादन किया है उसका उन्होंने स्वयं अपने जीवन में आचरण किया है। अपने आचरण के द्वारा उन्होंने इसकी व्यवहारिकता सिद्ध करदी है।

अहिंसा के आराधन की विभिन्न श्रेणियाँ जैनसिद्धान्तों में प्रतिपादित हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार क्रमशः उन्हें अपनाता हुआ पराकाष्ठा तक पहुँच सकता है। इस सुविधा के कारण प्रत्येक परिस्थिति का व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार इसे अपना सकता

है। जैनअहिंसा व्यवहार में किसी तरह बाधक नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जवाबदेहियों को निभाता हुआ अहिंसा की मर्यादा का पालन कर सकता है। अहिंसा के प्रकरण में पहले यह कहा जा चुका है कि कतिपय सम्राट, राजा, सेनापति, सैनिक, मंत्री, कोतवाल, पुलिस कर्मचारी, साहूकार, व्यापारी, नौकर-चाकर आदि सब श्रेणी के व्यक्ति जैन अहिंसा को अपनी २ शक्ति के अनुसार धारण करते हुए अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकते हैं। अतः जैन-अहिंसा को अव्यावहारिक बताना भी युक्ति-शून्य है।

प्रवत्ति-निवृत्ति

कतिपय लोगों की यह धारणा है कि जैनधर्म केवल निवृत्ति का ही निरूपण करने वाला धर्म है वह प्रवृत्ति का उपदेश नहीं देता। यह भी ठीक नहीं है। जैनधर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को महत्व देता है। 'असुहाओ विनिवत्ती सुहे पवित्ति जाण चरित्तं' अर्थात् अशुभ कार्यों से निवृत्ति करना और शुभ में प्रवृत्ति करना ही चारित्र है। जैन सिद्धान्त में समिति और गुप्ति का विधान है इसमें गुप्ति निवृत्ति रूप है और समिति प्रवृत्तिरूप है। अतः जैनधर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को महत्व प्रदान करता है।

जैनधर्म में जिस प्रकार आत्मकल्याण करने का विधान है उसी तरह पर-कल्याण की भावना भी ओतप्रोत है। जैन तीर्थङ्कर लोककल्याण के लिये ही तीर्थ की रचना करते हैं। लोककल्याण की भावना से ही वे उपदेश-धारा बहाते हैं। यदि उन्हें केवल आत्म-कल्याण ही इष्ट होता तो केवलज्ञान हो जाने के बाद उन्हें उपदेश देने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वे वन में ही रहकर मौन-जीवन व्यतीत कर सकते थे। परन्तु यह अभीष्ट नहीं है। इसका कारण यही है कि उनके उपदेश से दूसरे अनेकों प्राणियों का उद्धार होता है। अतः वे जनकल्याण के लिये उपदेश प्रदान करते हैं। वर्त्तमान में जैनमुनी भी संयम की साधना के द्वारा आत्म-कल्याण करने के साथ ही साथ ग्रामानुग्राम विचरण करके जनता को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। यह जनकल्याण की दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण है। जैन मुनियों का यह लोकोपकार अत्यन्त महत्वपूर्ण है सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को उन्नत बनाने में जैनमुनियों की प्रवृत्तियों का बड़ा भारी भाग है। अतः जैनधर्म को केवल निवृत्तिमय धर्म कहना भी

अनुचित है। यह धर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति को सामान रूप से महत्व देता है। आत्मकल्याण और जनकल्याण—दोनों ही इसके कार्यक्षेत्र हैं।

स्याद्वाद के सिद्धान्त पर भी लोग कई अनुचित आक्षेप करते हैं। कोई इसे विरोधीवाद, अनिश्चितवाद या संशयवाद कहते हैं तो कोई इसे केवल उपहास की वस्तु समझते हैं। परन्तु यह सब निरी अज्ञानता है। जिन्होंने इस महासिद्धान्त का गहराई से अध्ययन किया है वे जानते हैं कि जैनाचार्यों के दिमाग की यह मौलिक सूझ कितनी महत्वपूर्ण है। दार्शनिक और व्यावहारिक जगत् में इस सिद्धान्त की महती उपयोगिता है। वस्तुतत्व का यथार्थ निरुपण इसी महातत्व के आधार पर हो सकता है। अन्यथा वह निरूपण एकाङ्गी और अपूर्ण ही रह जाता है। इस तत्व के सम्बन्ध में "स्याद्वाद" प्रकरण मे पहले प्रकाश डाल दिया गया है अतः पाठकगण वहाँ देखकर इसकी लाक्षणिकता को समझें।

इस प्रकार इस छोटे से प्रकरण में उन खास२ आक्षेपों का वर्णन किया गया है जो आमतौर से जैनधर्म पर हुआ करते हैं। इन आक्षेपों में से प्रत्येक का सविस्तृत निराकरण तत्तद्विषयक प्रकरण में किया जा चुका है इसीलिए यहाँ विस्तार में न जाकर संक्षेप में दिक् सूचन मात्र किया गया पाठक गण विस्तार से जानना चाहें तो उन प्रकरणों को पढ़ने की प्रार्थना है। संक्षेप में यही पर्याप्त है कि जैनधर्म पर होने वाले उक्त सभी आक्षेप निराधार हैं। जिज्ञासु जन जैनधर्म के सिद्धान्तों को सही रूप में समझने का प्रयास करें, यही कामना है।

जैन धर्म और समाज

एक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि धर्म, आत्मा से सम्बन्धित वस्तु है, उसका सांसारिक व्यवहारों और व्यवस्थाओं से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। परन्तु साथ ही साथ "न धर्मो धार्मिकैर्विना" की अनुभवपूर्ण उक्ति की ओर भी दुर्लक्ष्य नहीं किया जा सकता है। इनमें से पहलीदृष्टि निश्चय-नय की अपेक्षा से है और दूसरीदृष्टि व्यवहारनय की अपेक्षा से है। वस्तुतः

इन दोनों दृष्टियों के सामञ्जस्य के आधार पर ही मोक्षमार्ग की ठीकठीक व्यवस्था बन सकती है।

निश्चय दृष्टि से धर्म, निस्संदेह, आत्मा की व्यक्तिगत-वस्तु है परन्तु व्यक्ति, समाज से पृथक् नहीं रह सकता है और समाज व्यक्ति के बिना नहीं बन सकता है इसलिए धर्म और समाज का सम्बन्ध भी आवश्यक और अनिवार्य है। व्यक्ति समाज की एक इकाई है और इकाईयों का समुदाय ही समाज है अतः व्यक्ति और समाज—दोनों, दोनों के अभिन्न अंग हैं। इसी तरह व्यक्तिगत होते हुए भी धर्म, सामाजिक रूप लिये बिना नहीं रह सकता है। अतः प्रत्येक धर्म का सामाजिक दृष्टिविन्दु भी होता है। कोई भी धर्म सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा नही कर सकता है। धर्म और समाज का गाढ सम्बन्ध होता है। धर्म के द्वारा समाज की सुव्यवस्था होती है और समाज के द्वारा धर्म का विकसित और विराट स्वरूप व्यक्त होता है। इस प्रकरण में हमें यह विचारना है कि जैनधर्म का सामाजिक दृष्टिबिन्दु क्या है। समाज-सम्बन्धी प्रश्नों का वह क्या समाधान करता है तथा वह किस प्रकार की समाज-व्यवस्था का निर्देशक है।

जैनधर्म का समाज-विषयक दृष्टिकोण भी साम्य पर प्रतिष्ठित है। उसके सामाजिक विधान में किसी जाति-विशेष का, वर्ग-विशेष का, या लिङ्ग विशेष का कोई महत्व नहीं है। वह ऐसी समाज-रचना का हिमायती है जिसमें जाति के कारण या लिंग के कारण कोई विशेष प्रभुत्व या आधिपत्य का अधिकारी न हो। उसके द्वारा निर्दिष्ट समाज-व्यवस्था में व्यक्ति मात्र को समानाधिकार है। कोई व्यक्ति जन्म से ही किन्हीं विशेष सामाजिक या धार्मिक अधिकारों का अधिकारी नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणों के अनुसार अपनी योग्यता के बलपर समाज में या धर्म के क्षेत्र में ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता है। जैनधर्म ऐसी समाज-रचना का निर्देशक है जिसमें न कोई शोषक हो और न कोई शोषित, न कोई अत्यधिक सम्पत्ति का उपभोक्ता हो और न कोई दीन-हीन या प्रताडित हो; अपरिग्रह व्रत का उपदेश देकर वह अत्यधिक संग्रह को सामाजिक और धार्मिक अपराध मानता है। इस तरह जैनधर्म आर्थिक समानता, धार्मिक समानता, जाति-पाँति की दीवार

को तोड़ डालने वाला होने से तथा नर-नारी के समान अधिकारों का प्ररूपक होने से सामाजिक समानता का पक्षपाती है। दूसरे शब्दों में जैनधर्म मानवीय समानता का सर्वप्रथम उद्घोषक है। इसी समानता के तत्व पर जैनधर्म की समाज-व्यवस्था का आधार है।

प्रत्येक युगप्रवर्त्तक जैन तीर्थङ्कर किसी जाति-वर्ण या सत्ता के आधार पर नहीं बल्कि केवल त्याग की भूमिका पर अपने चतुर्विध संघ के भव्य-भवन का निर्माण करते हैं। इस चतुर्विध संघ-भवन के द्वार प्रत्येक नर-नारी के लिए अभेदभाव से खुले रहते हैं। मानव-मात्र इसमें प्रवेश कर सकता है। त्याग की अमुक योग्यता के अतिरिक्त इसमें प्रवेश पाने के लिए कोई बन्धन नहीं है। त्याग की तरतमता के आधार से साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की रचना होती है।

जैन संघ व्यवस्था

जैन-शासन की यह संघ-व्यवस्था अनुपम है। संसार के और किसी धर्म में इस प्रकार की व्यवस्थित संघ-व्यवस्था नहीं है। राजतंत्र के समान सुदृढ और सुव्यवस्थित संघ-विधान इसके निर्माताओं की दीर्घदृष्टि और सामाजिक कुशलता का द्योतक है। इस सुसंगठित संघ-व्यवस्था के बल पर यह जैनधर्म अनेक विरोधी वातावरणों के बीच भी हिमाचल की तरह अडोल रह सका है।

जैनसंघ व्यवस्था में सब से महत्वपूर्ण तत्व है त्यागी और गृहस्थ वर्ग का पारस्परिक सम्बन्ध। जैनगृहस्थ, साधु-साध्वियों को पूज्य, वन्दनीय और आदरणीय मानता है परन्तु वह अन्धभक्त नहीं होता है। वह साधु-पुरुषों में रहे हुए चारित्र और अन्य सद्गुणों को वन्दन करता है; केवल वेश को नहीं। इसलिए जिस साधु-साध्वी के चारित्र में दोष होता है उसे वह वन्दना नहीं करता है; इतना ही नहीं अपितु गृहस्थों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे चारित्र में दोष लगाने वाले साधु-साध्वियों को साधुसंस्था से पृथक् कर सकते हैं। जैनागमों में श्रावकों को "अम्मा पिया समाणा" (माता-पिता के समान) कहा गया है। इसका तात्पर्य यही है कि श्रावक जन साधु-साध्वियों के चारित्र पालन में सहायक होते हैं। और उनके चारित्र ।

संरक्षण करते हैं। जैसे माता-पिता संतान का पालन करते हैं और उसका संरक्षण करते हैं इसी तरह श्रावक जन भी साधुजनों के संयम-पालन में सहायक और संरक्षक होते हैं। इसलिए एक ओर जहाँ साधुजन श्रावकों के के गुरू हैं वहीं दूसरी ओर श्रावक जन साधुओं के लिए 'माता-पिता के समान' हैं। इस पारस्परिक अंकुश के कारण जैन श्रमण संस्था अत्यन्त पवित्र रही है। बौद्ध संघ में इस प्रकार की व्यवस्था न होने से कालान्तर में बौद्धभिक्षुओं में गहरी शिथिलता प्रविष्ट होगई जिसका परिणाम अन्ततोगत्वा यह आया कि भारत की भूमि से उसे विदा लेनी पड़ी। भगवान् महावीर ने अपनी सुदूरदर्शिता के कारण संघ की सुदृढ व्यवस्था की। इस व्यवस्था के फल स्वरूप जैनधर्म हजारों संकटों से पार होकर भी सुरक्षित रह सका है। इस चतुर्विध संघ व्यवस्था का तथा जैनसाधु-साध्वियों के आचार-विचार का आध्यात्मिक महत्व तो है ही परन्तु उनका सामाजिक महत्त्व और भी विशेष है।

संघ का सामाजिक महत्त्व

जैनसंघ में श्रमणवर्ग का प्रभुत्व है। जैनसंघ की उन्नति का सारा श्रेय प्रायः श्रमणवर्ग को ही है। इनके तप और त्याग के बल पर, इनकी अप्रतिम प्रतिभा के आधार पर और इनके पुरुषार्थमय प्रचार के कारण जैन शासन की चतुर्मुखी उन्नति हुई है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि सकल संघ का दारमदार श्रमण वर्ग पर ही है। जैन श्रमण वर्ग ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में पाद-विहार करके त्याग, तप, अहिंसा और नैतिकता के प्रसार में असाधारण योग दिया है। यह एक ऐसा निस्वार्थ और निःशुल्क प्रचारक वर्ग है जो समाज के नैतिक धरातल को सदा से ही ऊँचा उठाने के लिये प्रयत्नशील रहा है। कोई व्यक्ति यह मानने से इन्कार नहीं कर सकता कि जैन साधु-संस्था ने भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने के ग्रामों में घूम घूम कर आध्यात्मिक जागृति का पवन फूँकने के साथ ही साथ जनता में नवीन सामाजिक चेतना का संचार किया। मद्य-मांस से निवृत्ति, सप्त कुव्यसनों का त्याग, व्यभिचार की अप्रतिष्ठा, ब्रह्मचर्य का बहुमान, नैतिक सदाचार आदि २ वातावरण तैयार करने में और समाज के लिये हितकर तत्वों को लोक—मानस में उतारने में इस श्रमण संस्था का मुख्य हाथ रहा है।

अहिंसा की भूमिका तय्यार करने में तो जैन साधुओं का ही मुख्य रूप से प्रयत्न रहा है। यदि जैन परम्परा के द्वारा तय्यार किया हुआ अहिंसा का वातावरण महात्मा जी को नहीं मिला होता तो उनका अहिंसा का प्रयोग शुरू होता या नहीं होता, वह इतना सफल होता या न होता, यह विचारणीय प्रश्न है। सप्त व्यसन के त्याग कराने का कार्य अविच्छिन्न रूप से साधुसंस्था करती आ रही है। इसका असर हिंसक प्रकृति वाले बाह्य अगन्तुक मुसलमानों पर भी हुआ। इस विषय में हीरविजयसूरी, जिनचन्द्र, भानुचन्द्र आदि मुनियों के उपदेश के फल स्वरूप अकबर, जहाँगीर आदि बादशाहों के जीव-हिंसा निषेधक फरमान ही प्रमाण हैं।

जैन साधु केवल अपने मर्यादित क्षेत्र में ही नहीं विचरण करते थे अपितु वे चारों तरफ पहुँचे हैं। कोई कोई महा प्रतिभासम्पन्न मुनि राज-सभाओं में पहुँचे हैं और राजाओं और नरेशों को अपने चारित्र और ज्ञान के बल से प्रभावित किया है। मंत्री, सेनाधिपति और राजवर्गीय लोगों के बीच पहुंच कर उन्होंने अपना संदेश सुनाया है। इसी तरह निम्न से निम्न-कोटि में गिने जाने वाले व्यक्तियों को भी उन्होंने धर्म और कर्त्तव्य का बोध-पाठ दिया है। सम्राट् और राजा महाराजाओं के महलों से लेकर गरीबों की झोंपड़ियों तक उन्होंने ने अपना उपदेश-प्रवाह प्रवाहित किया था। इस तरह जैन श्रमण वर्ग ने जनता के नैतिक और व्यावहारिक जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में कोई प्रयत्न अधूरा न छोड़ा। उन्होंने, घूम घूम कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया है और कर्त्तव्य का भान कराया है। इस तरह जैन श्रमणों ने आध्यात्मिकता के साथ ही साथ सामाजिक सुख-शान्ति के विकास में महत्वपूर्ण सक्रिय भाग अदा किया है। जैन संघ का यह सामाजिक महत्व है।

चतुर्विध संघ के मुख्य नायक श्रमण हैं। इनका कार्य अपने आध्यात्मिक अभ्युदय के साथ २ दूसरों को धर्ममार्ग बतलाना, संघ के हित के लिए प्रवृत्ति करना, श्रावक वर्ग को धर्म जागृति की प्रेरणा देना आदि २ हैं। ये गुरुपद आसीन होते हैं। श्रावक वर्ग का कार्य अपने मर्यादित व्रतों का पालन करना, धर्मशासन के अभ्युदय के विविध प्रवृत्तियाँ करना, त्यागीवर्ग को संयम-निर्वाह में सहायता देना, उनके संयम की देखरेख

रखना आदि २ हैं। ये दोनों वर्ग एक दूसरे से पूरक हैं। ये दोनों मिल कर धमशासन को सुचारु रूप से संचालित कर सकते हैं। ये दोनों वर्ग अपने २ दायित्व को समझते हुए उसका निर्वाह करते चलें तो संघ में महान् शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस सम्मिलित संघ का इतना अधिक महत्व है कि यह तीर्थङ्करों द्वारा भी वन्दित किया जाता है। नन्दीसूत्र के आरम्भ में विविध उपमाओं द्वारा संघ की स्तुति की गई है। श्रमण और श्रावक वर्ग का परस्पर सहयोग जिन-शासन का अभ्युदय करने वाला है। इसीलिए भगवान् महावीर ने इस प्रकार की सहयोग पूर्ण संघ-व्यवस्था का निर्माण किया है।

भगवान् के संघ रूपी मुक्ताहार के साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप अनमोल मोती हैं। ये सब मोती जब परस्पर में मिले हुए रहते हैं तो हार के रूप में कितने सुशोभित प्रतीत होते हैं!

भगवान् महावीर ने इस चतुर्विध संघ व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक अत्यन्त और नितान्त आवश्यक गुण का प्रतिपादन किया है; वह है स्वधर्मिवात्सल्य। इसके होने से ही तो यह व्यवस्था सजीव रह सकती है और इसके अभाव में यह निर्जीव सी हो जाती है। इसलिए इस संघ व्यवस्था का प्राण स्वधर्मिवात्सल्य कहा जा सकता है अपने सहधर्मियों के साथ वत्सलता का व्यवहार करना, उनके दुःख में सहानुभूति प्रकट करना और उसे मिटाने में यथाशक्ति सहयोग देना प्रत्येक जैन का कर्तव्य है। साधु समुदाय में भी इस वात्सल्य की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। इसके अभाव में जिन शासन आज छिन्न भिन्न हो रहा है। यह परिस्थिति भयावह है। प्रत्येक जैन का कर्त्तव्य है कि वह वात्सल्य को भाव अपनाकर भगवान् महावीर के संघ को एक अखण्ड रूप प्रदान कर उनके प्रति अपनी सच्ची भक्ति का परिचय दे। भगवान् के संघ की सच्ची शक्ति वात्सल्य में है। यह वत्सलता ही सामाजिक जीवन को सुख शान्तिमय बनाने की कुञ्जी है। भगवान् महावीर के इस वात्सल्यमय संघ की सदा विजय हो। जैनं जयति शासनम्।

साम्य की सुदृढ़ भूमिका पर खड़ा हुआ जैनधर्म साम्यमूलक समाज-व्यवस्था का मूल प्रवर्तक है। वह मानवमात्र को धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकार प्रदान करता है। वह किसी व्यक्ति या जाति विशेष को जन्म से ही कोई महत्व नहीं देता अपितु वह गुणों को आदर देता है। वह गुणपूजक है, जातिपूजक नहीं। अतः जैनधर्म की दृष्टि में वह व्यक्ति उच्च है जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, तप आदि का पालन करता है, चाहे वह किसी भी जाति या कुल में पैदा हुआ हो। इसी तरह वह व्यक्ति नीच है जो हिंसादि क्रूर कर्म करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, दुराचार का सेवन करता है और नाना प्रकार के दुर्गुणों का तथा दुर्व्यसनों का शिकार होता है। जैनधर्म की दृष्टि में दुराचारी ब्राह्मण की अपेक्षा सदाचारी चाण्डाल उच्च माना गया है। तात्पर्य यह है कि जैनधर्म में ऊँचनीचका आधार मनुष्य के कार्य हैं, जाति नहीं। अपने कार्यों के द्वारा ही मानव ऊँचा बन सकता है और अपने कार्यों के द्वारा ही नीचा बन सकता है। जन्मगत या जातिगत ऊँचनीचता को जैनधर्म में कतई स्थान नहीं है।

जैनधर्म और वर्ण व्यवस्था

जातिवाद का प्रचार तो ब्राह्मणत्व के अभिमान का परिणाम मात्र कहा जा सकता है। ब्राह्मणसंस्कृति के मूल स्वरूप में भी स्पृश्यास्पृश्य की या ऊँचनीच की भावना नहीं रही थी। मूल स्वरूप में तो वहाँ भी गुण-कर्म के अनुसार कार्य-विभाजन ही किया गया था ताकि सब सामाजिक सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। समाजतन्त्र के संचालन के लिए कार्य-विभाजन आवश्यक है और वही वर्ण व्यवस्था के द्वारा किया गया था परन्तु उसमें ऊँचनीच की या छूआछूत की भावना को कतई स्थान नहीं दिया गया था। सामाजिक दृष्टिकोण से शुद्धि का कर्म भी उतना ही आवश्यक और महत्व है जितना कि पण्डिताई का कार्य। इस लिए पण्डिताई करने वाला ब्राह्मण ऊँचा है और शुद्धि करने वाला भंगी नीचा है यह क्योंकर माना जा सकता है? मतलब यह है कि वर्णव्यवस्था के मूल में ऊँचनीच या स्पृश्यास्पृश्य का भेद नहीं था। यह तो अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के उद्देश्य से ब्राह्मणों का प्रचारित किया हुआ स्वार्थपूर्ण विधान है। ब्राह्मण संस्कृति के नायकों ने जातिवाद का दुर्ग खड़ा किया और उसकी

सहायता से अपने आपको उच्च घोषित किया। जबतक किसी वर्ग को निम्नतम घोषित न किया जाय तबतक उन्हें अपनी उच्चता सुरक्षित नहीं जान पड़ी इसलिए उन्होंने सेवा करने वाले वर्ग को नीच घोषित कर दिया। उस समय ब्राह्मणों के हाथ में समाजतंत्र और राजतंत्र था इसलिए उसकी सहायता से उन्होंने ऐसे २ विधान बना लिए जिससे ब्राह्मण वर्ग को जन्मतः श्रेष्ठ और शूद्र को जन्मतः नीच मान लिया गया। साथ ही ब्राह्मण वर्ग को सुविधाएँ दी जाने लगीं और शूद्र वर्ग को सुविधाओं से वंचित कर दिया गया। यह वैषम्य इस सीमा तक पहुँच गया कि जिस मार्ग पर ब्राह्मण चलता हो उस पर शूद्र को चलने का अधिकार नहीं है; शूद्रों को धर्मशास्त्र सुनने और पढ़ने का अधिकार नहीं है; उन्हें धर्मस्थानों में और सार्वजनिक स्थानों में भी जाने का अधिकार नहीं हैं; सार्वजनिक भोजनालयों में भोजन करने का उन्हें अधिकार नहीं और यहाँ तक कि सार्वजनिक कूओं से जल भरने से भी वे वंचित कर दिये गये। भगवान् महावीर की धर्म-क्रान्ति के पूर्व जातिगत वैषम्य ने बहुत बुरा रूप धारण कर लिया था। जाति का अभिमान करने वाले ब्राह्मणों ने शूद्रों पर अमानुषिक अत्याचार करने में मानवीय सीमा का भी उल्लंघन कर दिया था। यदि किसी राह चलते शूद्र के कान में वेद के शब्द पड़ जाते तो धर्म के ठेकेदारों के द्वारा उसके कानों में उकलता हुआ सीसा गलवाकर भरवा दिया जाता था। कितना घोर अत्याचार! धर्म के नाम पर कितना घोर अधर्म !! इन सब बातों के मूल में जातिवाद का भूत काम कर रहा था।

जैनधर्म ने प्रारम्भ से ही ब्राह्मणों के इस जातिवाद का विरोध किया था। श्रमण भगवान् महावीर ने तो जातिवाद के दुर्ग को धराशायी करने के लिये प्रबल आन्दोलन किया। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि "समस्त मानव जाति एक है। मानव मानव के बीच जातिगत भेद की दीवार खड़ी करना नितान्त पाखण्ड है। मानव समाज के किसी वर्ग को धार्मिक या सामाजिक अधिकारों से वञ्चित रखना भंयकर पाप है। छूआछूत की भावना मानवता के लिए कलंक रूप है। जो धर्म किसी मानव को अस्पृश्य बतलाता है वह धर्म नही वरन् धर्म का ढोंग है। जिस प्रकार हवा, पानी, सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की चांदनी और वृक्ष की छाया आदि प्राकृतिक पदार्थों पर प्राणिमात्र का

अधिकार है उसी प्रकार धर्म और ईश्वर की आराधना का अधिकार भी प्राणिमात्र को है। धर्म किसी की ठेकेदारी की वस्तु नहीं है। वह किसी की पैतृकसम्पत्ति नहीं है। वह तो सबका है और सब उसके हैं। धर्म और ईश्वर किसी की जातपाँत को नहीं देखते। जो लोग धर्म और ईश्वर की पवित्रता के नाम पर मानव जाति के किसी वर्ग को धर्माराधन एवं ईश्वराराधन से बलात् वञ्चित रखते हैं वे ईश्वर और धर्म के द्रोही हैं और साथ ही समाज के द्रोही भी हैं। नीचों को ऊँचा उठाना, अपवित्रों को पवित्र बनाना, यही तो धर्म का कार्य है। यदि नीचों को ऊँचा उठाने में—अपवित्रों को पवित्र बनाने में धर्म अपवित्र हो जाता है तो वह धर्म ही किस काम का है ? यदि अछूतों के छू लेने से और उनके दर्शन कर लेने से भगवान् अपवित्र हो जाते हैं तो ऐसे भगवान् दूसरों को क्या पवित्र कर सकते हैं ? वस्तुतः यह भगवान् और धर्म की ओट में अपने स्वार्थों को पोषण देने की योजना मात्र है। यह जातिवाद मानवता के लिये कलंक रूप है। अतः इस मिथ्याभिमान को दूर कर मानव मात्र को गले लगाना चाहिए।"

भगवान् महावीर ने यह भी संदेश दिया कि "घृणा पापों से होनी चाहिए पापियों से नहीं। मनुष्य घृणा का पात्र नहीं है। उसके दुष्कर्मों के प्रति घृणा होनी चाहिए परन्तु उसके प्रति नहीं। पापियों के प्रति घृणा न करते हुए उन्हें प्रेम के साथ पापकर्मों से छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। धर्म तो पतित-पावन है। वह पापियों और पतितों का उद्धार करने वाला है। यदि पापियों से या पतितों से घृणा की जाती है तो उनके उद्धार का मार्ग ही कौनसा रह जाता है ? अतः जैनधर्म यह संदेश देता है कि पापियों और पतितों से घृणा न करो। सद्भावना के द्वारा उनके हृदय का परिवर्तन करो। जो धर्म पापियों के प्रति भी घृणा न करने का संदेश देता है वह धर्म किसी मानव को अछूत कैसे समझ सकता है ? अतः जैनधर्म की दृष्टि में कोई भी मानव अस्पृश्य नहीं है। जैनधर्म स्पृश्यास्पृश्य के भेद से ऊपर उठा हुआ है।

भगवान् महावीर के समवसरण (व्याख्यान सभा) में श्रोताओं के लिये कोई भेदभाव नहीं था। सब वर्ण और जाति के लोग समान रूप से साथ साथ बैठकर उनके उपदेशामृत का पान करते थे। मनुष्य तो क्या पशु-

पक्षी तक वैरभाव को छोड़कर उस दिव्यवाणी का श्रवण करते थे। भगवान् के समवसरण में पूर्ण साम्यवाद का साम्राज्य था। देव और सम्राट भी, चाण्डाल और अन्य निम्न गिने जाने वाले व्यक्ति भी एक साथ बैठ सकते थे। किसी को भी उस धर्मसभा में किसी तरह का संकोच नहीं होता था। भगवान् महावीर के दरबार में जाति का महत्व नहीं था किन्तु सद्गुणों का महत्व था।

जैनागमों में जातिगत उच्च-नीच भावना की तीव्र आलोचना की गई है। जाति का अभिमान करने वालों को खूब लताड़ सी बताई गई है। आठ प्रकार की मदों में जातिमद को सर्वप्रथम स्थान देकर उसे अधःपतन का कारण बताया है। जो व्यक्ति जातिमद में आकर ऐंठने लगते हैं और दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वे भयंकर पाप करते है और उसका दुष्परिणाम इस लोक या परलोक ये उन्हें भोगना पड़ता है। आचारांग सूत्र में कहा गया है:—

से असइं उच्चगोए, असइं नीयागोए, नो हीणे नो अइरित्ते, नोऽपीहए इइ संखाय को गोयावाई को माणवाई ? कांसी वा एगे गिज्झा ?

अर्थात्-जीव अनेक बार उच्च गोत्र में, अनेक बार नीच गोत्र में उत्पन्न होता है इसलिये नीचकुल में जन्म लेने से कोई हीन नहीं हो जाता है और उच्चकुल में जन्म लेने से कोई ऊँचा नही हो जाता है। यह जानकर कौन गोत्र का अभीमान करे और कोन गोत्र को महत्व देगा। उच्च गोत्र पाकर कोई आसक्ति न करे।

उत्तराध्ययन सूत्र में जयघोष-विजयघोष के अध्ययन में स्पष्ट कर दिया गया है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता है परन्तु सच्चा ब्राह्मण वह है जो किसी की हिंसा नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, सदाचार का पालन करता है और तप-त्याग मय जीवन व्यतीत करता है। इस तरह वहाँ गुण के अनुसार ही ब्राह्मणत्व माना गया है न कि जाति या जन्म मात्र से। वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में जैन दृष्टिकोण निम्नलिखित गाथा से स्पष्ट हो जाता है :—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।

(उत्तराध्ययन २५, ३३)

अर्थात्—जन्म की अपेक्षा से सब मनुष्य समान हैं। कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र होकर नहीं आता। वर्णव्यवस्था तो मनुष्य के अपने स्वीकृत कर्त्तव्यों से होती है। मनुष्य अपने कर्त्तव्यों से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है। कर्त्तव्य के बल पर ब्राह्मण शूद्र हो सकता है। और शूद्र ब्राह्मण हो सकता है।

जैन श्रमणसंघ में हरिकेशी और मेतार्य मुनि का महत्वपूर्ण स्थान है। हरिकेशी जन्म से चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए थे। मेतार्य मुनि भी हीन गिनेजाने वाले कुल में उत्पन्न हुए थे। तदपि जैनधर्म ने इन नीच गिनेजाने वाले कुलों में उत्पन्न होने वालो को भी श्रमणसंघ में महत्व-पूर्ण स्थान प्रदान किया। इससे ही स्पष्ट है कि जैनधर्म में जातिवाद को कतई महत्व नहीं है।

हरिकेशी मुनि के त्यागी और तपस्वी जीवन से बड़े २ सम्राट् भी उन्हें अपना गुरु मानते थे और भक्तिभाव पूर्वक उनके चरण-कमलों का स्पर्श करते थे। एक देवता तो उनके तप से इतना प्रभावित हो गया था कि वह सदा इनके समीप ही रहने लगा था। उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णन किया गया है कि हरिकेशी मुनि एक बार जात्यभिमानी ब्राह्मणों के धर्म वाटक में भिक्षार्थ गये। ब्राह्मण- कुमारों ने उनका तिरस्कार किया। उसका दुष्परिणाम उन्हें भोगना पडा। उस समय हरिकेशी मुनि ने उन ब्राह्मण गुरुओं और ब्राह्मणकुमारों को ब्राह्मणत्व, यज्ञ आदि का सच्चा स्वरूप समझाया। वे सब मुनि का उपदेश सुनकर प्रभावित हुए। ब्राह्मण गुरुओं के द्वारा हरिकेशी मुनि को भिक्षा- दान देने के उपलक्ष में देवताओं ने दिव्यवृष्टि की और "अहो दानं महादानं" की घोषणा की। इसको लक्ष्य में रखकर भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है।

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो न दीसई जाइविसेस कोवि।
सो वाग पुत्तो हरिएस साहू जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥

अर्थात्-प्रत्यक्ष में जो कुछ महत्व दिखाई देता है वह तप-गुण-का है। जाति की कोई विशेषता नहीं है। चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने पर भी हरिकेशी मुनि को कितनी उच्चसमृद्धि की प्राप्ति हुई। तप और त्याग के कारण हरिकेशी मुनि को जो महत्व मिला वह महत्व क्या जाति मात्र से ब्राह्मण होने वाले को मिल सकता है? कदापि नहीं।

हरिकेशी जैसे तपस्वी आध्यात्मिक चाण्डाल कुलोत्पन्न मुनि को जात्यभिमानी और छूआ-छूत में लीन हुए ब्राह्मणों के धर्म वाटों में भेज कर जैन परम्परा ने गांधीजी द्वारा समर्थित मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश के मूलबीज का सूत्रपात किया है। सम्भवतः गांधीजी को हरिजनों के मन्दिर प्रवेश की योजना के लिये जैन परम्परा के इस उदाहरण से प्रेरणा मिली हो। कुछ भी हो, जैनधर्म ने हजारों वर्ष पहले ही आध्यात्मिक और सामाजिक समस्याओं का वह सुन्दर समाधान किया है जिसका कुछ अंश लेकर आज के युग के सर्वोत्तम महापुरुष माने जाने वाले व्यक्ति नें संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया है।

सिद्धान्ततः जैनधर्म जातिवाद का कट्टर विरोधी रहा है परन्तु ब्राह्मणों के निकट एवं दीर्घकालीन सम्पर्क के कारण कालान्तर में जैनधर्मानुयायियों पर भी जातिवाद का प्रभाव पड़े विना न रह सका। एक तरफ जैनसम्प्रदाय ने ब्राह्मणसम्प्रदाय पर वर्ण-बन्धन को शिथिल करने वाला प्रभाव डाला और दूसरी ओर ब्राह्मणसम्प्रदाय ने जैनसम्प्रदाय पर किसी अंश तक वर्ण-बन्धन स्वीकार करने का प्रभाव डाला। इस तरह भारत के आँगन में अति प्राचीनकाल से अविच्छिन्न रूप से बहने वाली दो विचार-धाराओं का परस्पर में प्रभावित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतः आज के जैनधर्मानुयायी वर्ग में जातपाँत और छूआछूत की भावना दिखाई दे रही है वह उसकी मौलिक नहीं अपितु ब्राह्मणों के जातिवाद के दृढाग्रह की छाप मात्र है।

जैन बन्धुओं को यह समय लेना चाहिए कि छूआछूत का झगड़ा उनका अपना नहीं है परन्तु यह तो उनके पड़ौसी वेदधर्मानुयायियों के घर का है। उनके सम्पर्क के कारण और अपनी कमजोरी के कारण यह अपने

घर में भी घुस आया है। इस बलात् आये हुए विकार को प्रसन्नता पूर्वक निकाल देने में ही सच्ची शोभा और गौरव है। जैनधर्म तो गुण पूजक है और वह गुणों के अनुसार ही ऊँच-नीच भाव को स्वीकार करता है। जैन सिद्धान्त कहता है कि पाँचवे गुणस्थान और इसके आगे के गुणस्थान में उच्चगोत्र का ही उदय होता है इसका अर्थ यही हुआ कि सदाचारी गृहस्थ उच्च गोत्र वाला है चाहे वह किसी भी जाति में जन्मा हो। जो सदाचारी नहीं है वह नीच गोत्र वाला है चाहे वह किसी भी ब्राह्मणादि जाति में भी क्यों न पैदा हुआ हो। सारांश यही है कि जैनधर्म गुणों के आधार पर समाज रचना के सिद्धान्त का समर्थक है।

जैनसंघ में नारी का स्थान

आधुनिक युग में नारी की समस्या भी एक प्रमुख सामाजिक समस्या बनी हुई है। बीसवीं शताब्दी के नये युग में यह समस्या भी नये रूप में विचारणा की अपेक्षा रखती है। चारों तरफ के वातावरण में स्वतंत्रता की अद्भुत लहर व्याप्त हो गई है अतः सोये हुए नारी-समाज में भी नवीन चैतन्य का परिस्पन्दन हुआ है। वह भी वातावरण से प्रभावित हुई है। अतः यह विचारना आवश्यक है कि नारी का समाजिक महत्त्व क्या है? उसका कार्यक्षेत्र क्या है? उसे पुरुषों के समान ही सब अधिकार हैं या नहीं? आदि काल में नारी का समाज में क्या स्थान रहा है? मध्य-काल में उसकी स्थिति क्या हो गई? वर्तमान में उसका क्या उपयुक्त स्थान है? तथा जैनधर्म ने नारी को क्या स्थान दिया है?

सृष्टि के संचालन में नर और नारी का समान हिस्सा है। पुराणों में अर्द्ध-नारीश्वर की कल्पना की गई है जो इसी बात की प्रतीक है कि नर और नारी मिल कर परिपूर्णता को प्राप्त होते हैं। नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। नर अपने आप में पूर्ण नहीं है और नारी भी अकेली अपने आप में पूर्ण नहीं है। दोनों अलग २ निरपेक्ष अवस्था में अपूर्ण हैं और जब दोनों सापेक्ष होकर मिल जाते हैं तो उनमें सांसारिक पूर्णता आजाती है। इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि नर और नारी दोनों समकक्ष हैं। कोई किसी से कम नहीं है और कोई किसी से श्रेष्ठ या उच्च होने का दावा नहीं

कर सकता है। जिसप्रकार सिक्के की दोनों बाजुओं का महत्त्व समान है इसीतरह नर और नारी का सामाजिक महत्त्व भी समान है।

मानवता की अमरवेल (बालक-बालिकाएँ) नारियों के द्वारा सिञ्चित-पालित होकर फलती-फूलती है इसलिए नारियों का सामाजिक महत्त्व पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक आँका जा सकता है। भगवान् ऋषभदेव ने कर्मयुग के आदिकाल में ब्राह्मी-सुन्दरी नामक अपनी पुत्रियों को सर्वप्रथम शिक्षण दिया। इस बात पर गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् ऋषभदेव ने नारियों का सामाजिक महत्त्व विशेष समझा था। वस्तुतः समाज-व्यवस्था में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। क्योंकि नारियों की गोदी में पलकर ही समाज, देश और संसार का संचालन करने वाले नर-वीर तय्यार होते हैं। नारियाँ ही शक्ति की प्रतिमा हैं। इनके द्वारा ही समाज, राष्ट्र और विश्व को शक्ति प्राप्त होती है। राष्ट्र और विश्व के नायकों को तय्यार करने वाल मातायें ही तो हैं। इतिहास और समाजशास्त्र इस बात का साक्षी है कि संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्हें बचपन में अपनी माता के द्वारा विशिष्ट प्रकार के संस्कार प्राप्त हुए जो उन्हें महापुरुष बनाने वाले सिद्ध हुए। इस दृष्टि से नारियाँ शक्ति की सरिताएँ हैं। इसलिए उनका सामाजिकमहत्त्व पुरुषों की अपेक्षा भी विशेष गुरुतर है। एक अंग्रेजी विद्वान् ने नारी के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

The one that shakes the cradle rules the world

अर्थात् जो पालना झुलाती है वह दुनिया पर शासन करती है। सचमुच यह वाक्य लिखने वाला समाजशास्त्र का पारंगत विद्वान् रहा होगा। नारी की महत्ता के सम्बन्ध में एक लेखक ने लिखा है:—

"नारी आदिशक्ति है, जनसृष्टि की जननी है और संसार पालन करने वाली अन्नपूर्णा है। नारी काली-महाकाली है साथ ही वह कल्याणी और वरदानी है। नारी की कोमलता में कठोरता और कठोरता में कोमलता छिपी है। नारी दुनिया के भीषण मरुस्थल में कलकल निनाद करती हुई, शीतल सुधामय जल प्रवाहित करती हुई परमपावनी सरिता है। वह सृष्टि के उपवन की सर्वोत्तम सुगन्धित कलिका है। नारी तीर्थङ्करों की जननी,

पैगम्बरों की प्रसविनी और अवतारों की माता है। नारी जगज्जननी और जगदम्बा है। वह लक्ष्मी है, सरस्वती है, सिद्धि है और सर्वशक्तियों की निधि है। इस भीषण और कठोर संसार में प्रेम, वात्सल्य, क्षमा, सहनशीलता आदि सुकुमारभावों को प्रकट करने वाली नारी ही है। नारी की प्रतिष्ठा में संसार की प्रतिष्ठा है।"

भारत के अतीत स्वर्णमय युग में नारी की अतिशय प्रतिष्ठा थी। उस समय 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के सिद्धान्त का पालन किया जाता था। वस्तुतः जहाँ नारी की पूजा-प्रतिष्ठा है वहाँ देवता-दिव्य शक्तिसम्पन्न पुरुषों का निवास होता है। प्राचीन भारत में नारी की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण थी इसीलिए उस समय का भारत उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था। रोम का इतिहास भी यह बताता है कि जब तक वहाँ नारियों का सन्मान रहा वहाँ तक वह गौरव के साथ मस्तक ऊँचा रख सका परन्तु ज्योंही वहाँ नारी की अवगणना होने लगी त्योंही उसके पतन का आरम्भ भी होने लगा।

प्राचीन भारत में नारी जाति का जितना सन्मान था, मध्ययुग में उसका उतना ही अधिक अपमान हुआ। पुरुषों ने स्त्री को दासी, भोग्या और सेविका मान कर उस पर कड़ा पहरा लगा दिया। धीरे २ समाज में नारी की कोई आवाज न रही और सारी सत्ता पुरुषों ने हथिया ली। पुरुषों ने अपनी सुविधा के अनुसार सामाजिक नियमों की रचना करली और नारी जाति को गाढ बन्धन में बाँध दी। मध्ययुग में नारी की भरपेट निन्दा की गई। उसे अबला, माया की मूर्त्ति, अविश्वसनीया, चंचला और न जाने क्या २ कह दिया गया और उसे विकास के सब साधनों से वंचित कर दियागया। उसकी शिक्षा भी 'स्त्री शूद्रौ नाधीयेताम्' कह कर रोक दी गई। परिणाम यह आया कि स्त्री सचमुच अबला, मूर्ख और परतंत्र बन गई। पुरुषों के इस प्रकार के विधान का परिणाम यह हुआ कि वे स्वयं निर्बल हो गये। नारी को अबला बनाकर वे स्वयं निर्बल बन गये। नारी को चारदीवारी में कैद कर वे स्वयं गुलामी में कैद हो गये। नारी को अपना खिलौना बनाने से वे दूसरे के खिलौने बन गये। नारी के पतन का समय भारत के पतन का काल सिद्ध हुआ। इस

प्रकार नारी के अतीत और मध्ययुग के इतिहास की रूपरेखा बता देने पर अब यह विचारें कि जैनधर्म की दृष्टि में नारी का क्या स्थान है।

जैनसंघ में नारी को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। जैनधर्म ने उसे परम और चरमपुरुषार्थ— मोक्ष की सिद्धि करने की अधिकारिणी मानी है। नारी जाति को इतना उच्चतम अधिकार तक दे देने से वह अन्य समस्त अधिकारों की अधिकारिणी तो स्वयमेव हो जाती है। जिसमें मोक्ष प्राप्त करलेने की योग्यता मानली गई उसमें प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य की योग्यता अपने आप ही मानी हुई है। मतलब यह हुआ कि जैनधर्म नारी को पुरुषों के समान ही सब अधिकार प्रदान करता है साम्य-मूलक जैनधर्म आत्मविकास और व्यवहार में लिंगभेद को महत्व नहीं देता। वह तो गुण पूजक है। जहाँ भी गुण है वहाँ जैनधर्म की आदर दृष्टि है। कालिदास की यह उक्ति—"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग नच वयः" जैनधर्म के आदर्शों के अनुकूल है।

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने संघ में नारी को भी पुरुषों के समान ही स्थान दिया है। इतना ही नहीं उनके शासन में साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की संख्या विशेष रही है। बुद्ध ने अपने संघ में स्त्रियों को स्थान नहीं दिया था। प्रथम उन्होंने स्त्री जाति को भिक्षु पद के लिए अयोग्य निर्धारित किया था परन्तु बाद में अपने प्रधान शिष्य 'आनन्द' के आग्रह से उन्होंने पुरुषों के समान स्त्रियों को भी अपने भिक्षु-संघ में लेने की अनुमति दे दी थी। जैनधर्म ने तो आरम्भ से ही स्त्रियों को आत्मविकास का सर्वाधिकार प्रदान किया है। भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को अपने संघ में स्थान दिया। भगवान महावीर ने चन्दनबाला को अपने साध्वी संघ की सर्वाधिकारिणी बनाया। भगवान् महावीर के संघ में छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं।

जैनसंघ में इन महासतियों को इतना उच्चस्थान प्राप्त है कि प्रातः काल उठकर प्रत्येक जैन यह मंगलाचरण करता है :—

ब्राह्मी चन्दन बालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा।

कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥

इस श्लोक से मंगलमूर्त्ति महासाध्वियों के नामों का निर्देश किया गया है। इन मंगल मूर्त्तियों से मंगल की कामना की गई है। प्रातःकाल इन पवित्र नारियों का कीर्त्तन किया जाता है, इसपर से यह स्पष्ट है कि जैनसंघ में नारियों का कितना ऊँचा स्थान है।

सिद्धान्ततः जैनधर्म में नारियों को पुरुष के समान ही सब अधिकार दिये हैं। परन्तु मध्ययुग के नारी-विरोधी वातावरण का प्रभाव जैनधर्मानुयायी वर्ग पर भी पड़े बिना न रह सका। सिद्धान्ततः नारी की सर्वतोमुखी योग्यता को स्वीकार करने पर भी व्यवहार में जैन जनता भी नारी की अवगणना के दोष से मुक्त न रह सकी। नारी-शिक्षण की ओर उपेक्षा-बुद्धि पैदा हो गई और वे केवल घरेलू कार्यों तक ही सीमित बना दी गई। जिनभगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी-सुन्दरी को सर्वप्रथम शिक्षिण देकर नारी-शिक्षा को पुरुष-शिक्षा की अपेक्षा भी अत्यधिक आवश्यक बताया उन्हीं के अनुयायीवर्ग ने स्त्री शिक्षण के प्रति घोर उपेक्षा प्रारम्भ कर दी यह कितनी शोचनीय बात है ?

मध्ययुग में "स्त्री को शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है" इस मनोकल्पित भ्रान्त सिद्धान्त का व्यापक प्रचार किया गया था। साधारण लोगों की यह धारणा बन गई कि "एक घर में दो कलम नहीं चल सकती।" जहाँ शास्त्र यह विधान कर रहे हैं कि स्त्रियाँ केवल ज्ञान प्राप्तकर मोक्ष की अधिकारिणियाँ हुई हैं वहाँ उक्त बात कैसे संगत हो सकती है ? यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जैनाचार्यों ने दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग पढ़ने का अधिकार स्त्रियों को क्यों नहीं दिया है ? यह शंका यथार्थ है वस्तुतः दृष्टिवाद के पठन का निषेध प्रायिक है। प्रत्येक स्त्री के लिए निषि ही है ऐसा नहीं है। जो स्त्रियाँ समर्थ हैं, उसे ग्रहण कहने की योग्यता वाली हैं उसका अध्ययन कर सकती हैं। जब स्त्री को केवल ज्ञान हो सकता है त क्या कारण है कि दृष्टिवाद का अध्ययन न करसके। केवल ज्ञान व अधिकारिणी मानने पर दृष्टिवाद का निषेध करना ठीक वैसा ही है जै किसी को रक्षा के लिए रत्न सौंप देने के बाद कहना कि तुम कौड़ी व

रक्षा नहीं कर सकते। किन्हीं २ आचार्यों ने स्त्री में तुच्छत्व, अभिमान, मतिमन्दता, इन्द्रियचाञ्चल्य आदि मानसिक दोष बतला कर तथा किन्हीं ने शारीरिक अशुद्धि के कारण को आगे करके इस निपेध का समर्थन किया है परन्तु वस्तुतः यह तत्कालीन परिस्थिति का प्रभावमात्र है। वैदिक सम्प्रदाय के स्त्री तथा शूद्र को वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी बतलाने के अनुकरण से ही यह बात जैन सम्प्रदाय में भी आगई हो, ऐसा प्रतीत होता है। वस्तुतः पारमार्थिक दृष्टि से इस प्रकार का निपेध नहीं किया जा सकता है जैनसंघ स्त्रियों के प्रति उतना ही उदार है जितना वह पुरुषों के प्रति है।

जैनशास्त्रों में नारी की प्रतिष्ठा का पर्याप्त वर्णन है। आवश्यकता है उसे व्यावहारिक रूप देने की। यदि सचमुच हमें विकास करना है, यदि भावी प्रजा का भव्य निर्माण करना है; और यदि सर्वतोमुखी प्रगति करना है तो नारी को शिक्षित और समुन्नत करने की ओर पूरा लक्ष्य दिया जाना चाहिए। विकास की समस्त सुविधाएँ उन्हें प्रदान करनी चाहिए। समाज सुधार की मूलजड़ नारी की चेतना है। जब तक नारियाँ अशिक्षित और असंस्कारी हैं तब तक किसी प्रकार के सामाजिक सुधार की आशा करना दुराशामात्र हैं। स्त्री- शिक्षण और सुसंस्कारों के अभाव में कौटुम्बिक जीवन और सामाजिक जीवन कलुपित बना हुआ है। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे कुटुम्बों में शान्ति, सुव्यवस्था और प्रेम का वातावरण बने तो यह आवश्यक है कि नारी जागरण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय। नारी यदि जागृत है, कर्त्तव्य की भावना से ओतप्रोत और सुसंस्कारी है तो वह कुटुम्ब, जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व को नवचेतना प्रदान कर सकती है। वह सर्वोदय की नींव है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "जो जातियाँ नारियों का आदर करना नहीं जानतीं वे कदापि उन्नत नहीं हो सकतीं। यदि हम यह चाहते हैं कि स्त्रियाँ सिंह के समान बच्चों को जन्म दें तो क्या हमें उन्हें सिंहनी नहीं बनाना चाहिए? सियारनी सिंह के बच्चे को जन्म दे सकती है? कदापि नहीं।"

नारी जागरण और शिक्षण से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हमारे समाज की स्त्रियाँ पश्चिम की सभ्यता का अन्धानुकरण करने लग जाएँ। आज की कतिपय जागृत और शिक्षित समझी जानेवाली महिलाएँ

पश्चिमी सभ्यता के प्रवाह में वही जा रही हैं। यह वांछनीय नहीं है। इसमें भारतीय नारी की शोभा नहीं है। नारियों को अपने सामने अपने प्राचीन स्वर्णमय अतीत का आदर्श होना चाहिए। स्त्री और पुरुष में प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिए। दोनों सहयोगी और मित्र तुल्य होने चाहिए। नर, पति-स्वामी और मालिक रहे और नारी, पत्नी-स्वामिनी और मालकिन हो। शिक्षा वही सच्ची शिक्षा है जो सुसंस्कारों को जन्म दे। हमारी गृहदेवियाँ सच्चे अर्थ में शिक्षिता और संस्कारी बनें यह अभीष्ट है।

उपसंहार में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि सामाजिक भव्य निर्माण के लिए नारियों की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए। प्राचीन जैनसंघ में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है उसी के अनुसार हमें नारियोंको महत्व प्रदान कर सर्वोदय की नींव डालनी चाहिए।

प्रमुख जैन जातियां

जैनधर्म अनादि है, जैनधर्म में जाति या वर्णवाद का क्या स्वरूप है आदि विषयों पर पिछले पृष्ठों में पूर्ण प्रकाश डाला जा चुका है।

जैनधर्म प्रचारकों का सदा एक मात्र ध्येय रहा है– "प्राणी मात्र को बुराईयों से बचाकर महान' बनाना। उन्होंने अपने सिद्धान्तों और उसके अनुयाइयों को किसी जाति नामक विशेष समूह में संगठित करने का या अनुयाइयों की संख्या बढ़ती हुई दिखाई दे ऐसी प्रवृत्ति या प्रयत्न की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। वे प्रवृत्ति मार्ग से एकदम दूर मात्र निवृत्ति मार्ग के ही पथिक व पथ प्रदर्शक रहे।

अतः जैनधर्म पालकों को किसी जाति विशेष की चाहर दिवारी में संकुचित नहीं किया जा सकता। 'जैन' शब्द एक विशिष्ट धार्मिक सिद्धान्त के अनुयायी का प्रतिबोधक है। किन्तु काल क्रमानुसार एक समय जातिवाद प्रमुखता में आया और जैनाचार्य उससे विलग न रह सके। आज भारत में कई ऐसे बड़े २ जाति समूह हैं जो शतांश में या मुख्य रूप से जैनधर्मानुयायी हैं। यदि उन समूहों को 'जैनजाति' के नाम से पहिचाना

जाय तो असंगत न रहेगा। यहाँ ऐसे बड़े २ जाति समूहों का ही उल्लेख किया जाता है।

जैनधर्मानुयायी जातियों में मुख्य रूप से ओसवाल, पोरवाल, खंडेलवाल अग्रवाल, पल्लीवाल; श्रीमाल, जायसवाल, बघेरवाल, हूमड़, नरसिंहपुरा आदि मुख्य हैं।

इन सब जातियों की उत्पत्ति के इतिहास पर यदि ध्यानपूर्वक विचारा जाय तो यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि ये सब जातियाँ "महाजन" शब्द की पर्यायवाची हैं। आज भी मोटे रूप में इन जाति वालों को 'महाजन' ही कहा जाता है। सन् १९५१ में होने वाली जनगणना में इन जातियों को 'महाजन जाति' में ही समावेशित माना है।

इन जातियों की उत्पत्ति का वास्तविक इतिहास क्या है इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रामाणिक प्रमाणों का अभाव है। फिर भी पुरातत्ववेत्ताओं की शोध खोज से जो कुछ सामग्री प्रकाश में आई है वह भं विश्वसनीय है।

ओसवाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो मान्यता प्रसिद्ध है हमारी राय में वह न केवल इस जाति की ही उत्पत्ति का कारण नहीं है बल्कि उसका मूल नाम 'महाजन संघ' है।

भारतीय इतिहास में एक समय ऐसा आया जब धर्म कलह तथा प्रतिस्पर्द्धा (होड़ा होड़ी) का कारण बनरहा था। ऐसे समय विक्रम संवत से करीब ४०० वर्ष पूर्व वीर संवत् ७० में भगवान् पार्श्वनाथ के ७ वे पट्टधर जैनाचार्य श्रीमद् प्राभसूरीश्वरजी में समस्त विश्व को जैनधर्मानुयायी बनाने की महात्वाकांक्षा का प्रदुर्भाव हुआ हो यह संभव है।

इस सम्बन्ध में प्राप्त कथानक यह है कि जैनधर्म का प्रचार करते हुए आचार्य श्री अपने ५०० शिष्यों सहित आबू पहाड़ से होते हुए उपकेश प्रदेश में पधारे। इस क्षेत्र में उन्हें शुद्ध भिक्षा प्राप्त करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

अतः शिष्य समुदाय ने इस क्षेत्र से शीघ्र वापस लौट जाने की आचार्य श्री से प्रार्थना की। आचार्य श्री भी सहमत हो गये। कहते हैं ऐसे अवसर पर उस प्रदेश की अधिष्ठायिका चामुंडादेवी ने प्रकट होकर आचार्य श्री से इसीक्षेत्र में विचरण कर उस अनार्य प्रदेश के उद्धार करने की प्रार्थना की। तब आचार्य श्री ने अपने शिष्यों से कहा-जो साथ रहना चाहें रहें बाकी वापस लौट जाँय। इस पर करीब ३५ शिष्य आचार्य श्री के साथ रहे। इन मुनियों के साथ आचार्य श्री चार २ मास की विकट तपस्या अंगीकार कर समाधि में लीन हो गये। इस बीच देवयोग से एक दिन वहाँ के राजा उपलदेव के पुत्र त्रिलोकसिंह को रात में एक भयङ्कर सर्प ने डस लिया। इस राजपुत्र का एकदिन पूर्व मंत्री उहड़देव की कन्या से विवाह हुआ था। राजकुमार की इस असामयिवक मृत्यु से सारे शहर में हाहाकार मच गया। सब प्रयत्न करने पर भी कोई उपचार न हो सका। अन्त में रथी सजा कर स्मशान यात्रा को ले जाने लगे तब किसी ने राजा से उक्त आचार्य श्री से उपचार कराने का परामर्श दिया। सब की सलाह में राजकुमार की रथी आचार्य श्री के पास लाई गई। आचार्य श्री के शिष्य वीर-धवल ने आचार्य श्री के चरणों का प्रक्षालन कर राजकुमार पर छिड़क दिया राजकुमार चेतन हो उठा। सर्वत्र प्रसन्नता फैल गई। राजा ने प्रसन्न हो कई अमूल्य हीरे जवाहरातों के आभूषण आचार्य श्री के चरणों पर समर्पित किये, पर त्यागियों को इस द्रव्य और वैभव से मोह न था। उन्होंने राजा को प्रतिबोध दिया कि इस नगरी के सब लोग मिथ्यात्व मार्ग तथा सप्त-व्यसन आदि कुटेवों को छोड़कर शुद्ध आचारवान बनें तथा जैनधर्म अंगीकार करें जिससे सब का कल्याण हो। उपस्थित जनसमूह ने हर्पनाद द्वारा यह स्वीकार किया। इस प्रकार उस समय आचार्य श्री ने उस विशाल जनसमूह को 'जैनधर्म' में दीक्षित कर उस समूह का नाम "महाजन संघ" स्थापित किया। तथ्या यह है कि इस प्रकार जैनचार्य ने एक समूह विशेष का उद्धार कर उसका नामकरण "महाजन संघ" के रूप में किया।

यह चमत्कारिक समाचार बिजली की तरह आस पास के प्रदेशों में दूर २ तक फैला और सब की श्रद्धा आचार्य श्री के प्रति बढ़ी, इस प्रकार इन प्रदेशों में 'जैनधर्म' के अनुयायियों की संख्या अधिकाधिक बढ़ने लगी।

इस क्रांतिकारी परिवर्तन से जैन धर्मावलम्बियों की संख्या ही बढ़ी हो ऐसा नहीं; किन्तु इस 'महाजन संघ' में समावेशित व्यक्ति को भी महान् लाभ हुए। शुद्ध आचरण बन जाने से उनकी विचार शक्ति प्रखर हो उठी; विचार शक्ति प्रखर होने से वे उन्नति मार्ग के पथिक बने। अपनी उन्नति हेतु अनेक मार्ग इन्हें दिखाई दिये। कई बड़े बड़े राज्य पदों पर प्रतिष्ठित हुए तो कई व्यापारार्थ विदेशों में निकल पड़े। इस प्रकार जहाँ २ ये गये वहाँ के निवासियों ने इन्हें इनकी मातृभूमि के नाम से पुकारना प्रारम्भ किया। जैसे ओसियाँ से ओसवाल, प्राग्वट से पोरवाडा, खंडेला से खंडेलवाल, अग्रोहा से अग्रवाल पाली से पल्लीवाल, बघेरा से बघेरवाल, आदि २।

भारतीय इतिहास और राजनीति में जैन जाति

भारतीय इतिहास में जैनों का राजनीतिक महत्त्वः—

जैसे भारतीय संस्कृति के निर्माण में जैनधर्म और उसके साहित्य का महत्वपूर्ण भाग है वैसे ही भारतीय इतिहास में भी जैन जाति का गौरवमय स्थान है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल जैन-राजाओं का आदर्श युग था। जैन-नरेशों और महामात्यों ने अपनी राजनीतिक कुशलता और शूरवीरता के द्वारा भारत के भव्य इतिहास का निर्माण किया है। ऐतिहासिक काल-परिधि से भी अति सुदूर प्राचीनकाल से लेकर आज तक के राजनीतिक क्षेत्र में जैनजाति का योग-दान जैसा-वैसा नहीं है अपितु उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है।

राजनीति के आद्यप्रवर्त्तक भगवान् ऋषभदेव और सर्वप्रथम चक्रवर्ती भारत के उस प्राचीनकाल को अलग रखकर भी क्रमबद्ध प्राप्त होने वाले

इतिहास पर निष्पक्ष और शुद्ध प्रामाणिक शैली से अनुशीलन करने से यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा कि जैनजाति के नरवीरों ने भारतीय राजनीति और इतिहास को अपने बुद्धि-कौशल, रण-चातुर्य, आत्मत्याग और बलिदानों के द्वारा अनुप्राणित किया है।

जैनश्रावक आध्यात्मिक आराधना करता हुआ जहाँ छोटे से छोटे प्राणी की रक्षा और अहिंसा का ध्यान रखता है वहाँ वह अपना कर्त्तव्य और दायित्व निभाने के लिये तलवार धारण कर रणसंग्राम में वीर सेनानी की तरह जूझ भी सकता है। वह अपने कर्त्तव्य और राष्ट्र की पुकार पर सर्वस्व अर्पण कर सकता है। वह आत्म—बलिदान और कुर्बानियों के द्वारा अपने देश के गौरव को सुरक्षित रख सकता है। जैनवीरों ने अपने कार्यों के द्वारा यह सिद्ध करके बता दिया है। मगध के जैननरेश बिम्बिसार (श्रेणिक) आदि यदि सुदृढ़ विशाल साम्राज्य का संगठन कर भारत की शक्ति को प्रबल न बनाते तो महान् विजेता सिकन्दर को भारत-भूमि में पद-प्रसार करते हुए कौन रोक सकता था? स्वाधीनता के अमरपुजारी वीरशिरोमणि महाराणा प्रताप को यदि भामाशाह जैसे स्वामीभक्त, देशभक्त जैनमंत्री का सहयोग न प्राप्त होता तो मेवाड़ का, राजस्थान का और भारतवर्ष का गौरव कौन जाने, सुरक्षित रह सकता या नहीं? यदि कुमारपाल और आचार्य हेमचन्द्र जैसे जैन न होते तो गुजरात की गरिमा ऐसी हो सकती या नहीं, यह संशयास्पद हो जाता। क्या पूर्व, क्या पश्चिम, क्या उत्तर और क्या दक्षिण—भारत के सब प्रदेशों में फैली हुई इस जाति ने स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लिया है। बिहार, उड़ीसा, बंगाल उत्तर प्रदेश, पंजाब राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा दक्षिणी भारत में जैनजाति ने सफल राजनीति का संचालन किया था। इन समस्त प्रदेशों का इतिहास जैनों की गौरव-गाथा को प्रकट करता है।

जैनधर्म कई शताब्दियों तक कतिपय राज्यों का राष्ट्रीय धर्म रहा है। मगध का साम्राज्य जैन नरेशों के अधीन कई शताब्दियों तक रहा। महाराजा श्रेणिक (बिम्बिसार), अजातशत्रु (कोणिक), नन्दिवर्धन, चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक, सम्प्रति आदि जैन नरेशों ने मगध पर शासन किया

और उसकी मुख्य-समृद्धि का विस्तार किया। वैशाली के गण सत्ताक राज्य के प्रमुख महाराजा चेटक जैनश्रावक थे। कलिंग के प्रसिद्ध सम्राट् महा मेघवाहन खारवेल जैनधर्म के प्रबल प्रचारक नरेश थे। जैनधर्म कलिंग का राष्ट्रीय धर्म बना हुआ था। मालव प्रांत के प्रसिद्ध राजा चण्डप्रद्योत और उनका पुत्र पालक जैनधर्मानुयायी थे। विक्रमादित्य पर कालकाचार्य को दृढ़ प्रभाव पड़ा था। सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य को अपनी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित कर लिया था। गुजरात में परमार्हत कुमारपाल ने जैनधर्म का राष्ट्रीय धर्म घोषित किया था। राजस्थान के कतिपय भागों में जैन मंत्रियों और दीवानों ने महत्वपूर्ण कार्य करके जैनधर्म का गौरव बढ़ाया। दक्षिणभारत में कई शताब्दियों तक जैनधर्म गंग और राष्ट्रकूट वंश के नरेशों का राजधर्म रहा। इस तरह भारतीय इतिहास के भव्य निर्माण में जैनजाति का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है।

मुगल शासनकाल में और अंग्रेजी शासकों के समय में भी जैन नरवीरों ने अपना राजनीतिक महत्व अपनी प्रतिभा और दूरदर्शिता के बल पर बनाये रक्खा। भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में भी जैनवीरों ने असाधारण योग प्रदान किया है। तन से, मन से और धन से जैनवीरों ने स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने में पूरा २ सहयोग प्रदान किया।

तात्पर्य यह है कि प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के भारतीय इतिहास में और भारतीय राजनीति में जैनजाति का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। जैनवीरों की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, शूरवीरता और आत्मबलिदान के कारण भारत के उज्ज्वल इतिहास का निर्माण हुआ है। यही विषय इस प्रकरण में क्रमशः उल्लिखित करने का प्रयत्न किया जाता है।

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् और उनका पदानुसरण करने वाले कतिपय पौर्वात्य विद्वान् भी यह मानते आ रहे हैं कि प्रजातन्त्र शासनप्रणालि को जन्म देने का श्रेय बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय राज-

गणसत्ताक प्रजातन्त्र नीतिज्ञों को है। उनके मत के अनुसार भारत में सदा से ही राजा की निरंकुश शासन-व्यवस्था रही है परन्तु यह उक्त विद्वानों की केवल भ्रान्तधारणा ही है। आज से छब्बीस शताब्दियों

के पूर्ववर्ती भारत में प्रजातन्त्र प्रणालि पर चलने वाले गणराज्यों का अस्तित्व था। निष्पक्ष ऐतिहासिक अन्वेषण करनेवाले विद्वानों ने प्रायः एक मत से स्वीकार करलिया है कि प्राचीन भारत में गणतन्त्रों (प्रजातंत्रों) की व्यवस्था विद्यमान थी।

उक्त भ्रान्तधारणा का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि भारत की संस्कृति, इतिहास, समाज-व्यवस्था आदि की जानकारी का मुख्यआधार इन विद्वानों ने वैदिकसाहित्य को ही माना। भारतवर्ष में हजारों वर्षों से वैदिक, जैन और बौद्धधर्म साथसाथ फले-फूले हैं। भारत की प्राचीन संस्कृति के साङ्गोपाङ्ग ज्ञान के लिए इन तीनों धर्मों के साहित्य के परिशीलन की आवश्यकता है। इसके विना जो निर्णय किया जाता है वह अपूर्ण और वास्तविकता से वञ्चित हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भारत के इतिहास और संस्कृति के सम्बन्ध में जो भ्रान्तधारणाएँ फैली हुई हैं इसका एक मुख्य कारण यह भी है। सहस्रों वर्षों से भारत के आँगन में फले-फूले जैनधर्म के विस्तृत और विशाल साहित्य की उपेक्षा करके भारत के प्राचीन सांस्कृतिक स्तर के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँच जाना निस्संशय भयंकर भूल करना है। भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन, इतिहास, समाज व्यवस्था आदि की जानकारी के लिए प्राचीन जैनागमों का महत्व निर्विवाद है। यह खेद का विषय है कि उनका सांगोपाङ्ग अनुशीलन नहीं हो पाया; अन्यथा बहुत कुछ आश्चर्योत्पादक नवीनतथ्य प्रकाश में आते। वैदिक साहित्य में राजा को ईश्वरीय अंश मानकर शासन की सम्पूर्ण सत्ताएँ प्रदान की गई हैं। वहाँ राजा के एकछत्र शासनप्रणालि का प्रभुत्व है। उसी के आधार पर उक्त विद्वानों ने यह भ्रान्त धारणा बनाली। यदि वे जैन और बौद्धसाहित्य का भी गहरा अनुशीलन करते तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि पचीस सौ छब्बीस सौ वर्ष पूर्व भी भारत में गणराज्यों की सत्ता विद्यमान थी। वैशाली का गणतंत्र उस समय का अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली राज्य था। काशी और कौशल के मल्ली और लिच्छवीक्षत्रियों का एक संगठित प्रजातन्त्रात्मक शासनतन्त्र था जिसका नाम "वज्जियन या वृजिगण राज्य" था। वे क्षत्रियकुल अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजते थे और वे सब 'राजा' कहलाते थे। इस राष्ट्रसंघ (गणराज्य) का एक प्रमुख होता था।

बौद्ध साहित्य के अनुसार वज्जीसंघ लिच्छवियों का ही गणतंत्र था। यह जाति बुद्ध के समय एक अत्यन्त शक्तिशाली जाति थी और इसकी राजधानी वैशाली थी। परन्तु जैन आगम "निरया वलियाओ" के अनुसार यह गणतन्त्र केवल लिच्छवियों का ही नहीं था अपितु मल्लों और लिच्छवियों का सम्मिलित संगठन था। वज्जियन गणराज्य के अतिरिक्त भी शाक्य, कोलिय, मोरीय इत्यादि अनेक गणराज्य थे परन्तु उन सबमें वृजिराष्ट्रसंघ मुख्य था। इस वज्जियन गणराज्य के अध्यक्ष वैशालीनरेश चेटक थे। शासन कार्य सञ्चालन के नौ लिए लिच्छवि गणराजा मल्ली और नौ राजा चेटक के साथ रहते थे।

तत्कालीन राज्यों में वैशाली का यह गणराज्य अत्यन्त सम्पन्न और शक्तिशाली था। इसका श्रेय इस संघ के सुयोग्य अध्यक्ष महाराजा चेटक को है। राजा चेटक अपने शौर्य के लिए विख्यात थे। उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व का महत्व इसी से आँका जा सकता है कि वे एक विशाल गणराज्य के प्रमुख थे। इनकी अध्यक्षता में वैशाली के इस गणराज्य ने इतनी शक्ति और समृद्धि प्राप्त करली थी कि उसकी प्रशंसा बुद्ध को भी अपने मुख से करनी पड़ी थी। ये महाराजा चेटक, भगवान् महावीर के व्रतधारी श्रावक थे। भगवान् महावीर के इस महान् उपासक ने अपनी व्रतमर्यादा का निर्वाह करते हुए एक विशाल गणराज्य का बड़ी कुशलता के साथ नेतृत्व किया।

महाराजा चेटक—गण राज्य के प्रमुख के रूप में

महाराजा चेटक के परिवार के सम्बन्ध में जो विवरण मिलता है उससे विभिन्न राज्यों और राजाओं के पारस्परिक सम्बन्ध, नीति और सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। आवश्यक चूर्णिमें उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि "वैशाली नगरी में हैहय वंश में राजा चेटक का जन्म हुआ था। भिन्न २ रानियों से इनके सात पुत्रियाँ हुईं जिनके नाम इस प्रकार थे।—१ प्रभावती, २ पद्मावती, ३ मृगावती, ४ शिवा, ५ ज्येष्ठा ६ सुज्येष्ठा और चेलणा। प्रभावती का विवाह वीतभय के (सिन्धु सौवीर के) राजा उदायन के साथ, पद्मावती का चम्पा के राजा दधिवाहन के साथ, मृगावती का कौशाम्बी के शतानिक के साथ, शिवा का उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत के साथ और ज्येष्ठा का कुण्डग्राम के सिद्धार्थराजा के पुत्र तथा वर्धमान

स्वामी के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के साथ हुआ था। सुज्येष्ठा और चेल्लणा तब तक कुमारी ही थीं।

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराजा चेटक ने सिन्धु-सौवीर जैसे दूरवर्ती देश से सम्बन्ध स्थापित किया, मालव देश से सम्बन्ध स्थापित किया, अपने राज्य की पश्चिमी सीमा से संलग्न वत्सदेश के राजा शतानिक के साथ और दक्षिणी सीमा पर स्थित अंगदेश के दधिवाहन राजा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। यद्यपि वैशाली गणराज्य और मगध की सीमाएँ मिलती थीं तो भी मगध के साथ चेटक ने पहले कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा। तत्कालीन मगधसम्राट् श्रेणिक ने सुज्येष्ठा के रूप और यौवन की ख्याति से आकृष्ट होकर उससे विवाह के लिये राजा चेटक के पास प्रस्ताव भेजा, परन्तु चेटक ने उसे अस्वीकृत कर दिया। कालान्तर में श्रेणिक ने अपने दूतों के द्वारा सुज्येष्ठा को अपनी ओर आकृष्ट किया और उसकी सम्मति से सुरंग के द्वारा उसके हरण की योजना तैयार की परन्तु, भाग्यवशात् वह सुज्येष्ठा की छोटी बहन चेल्लणा को ही ले जा सका। सुज्येष्ठा वहीं पीछे रह गई। इस घटना से सुज्येष्ठा को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने दीक्षा धारण कर ली १। मगध-सम्राट् श्रेणिक पहले बौद्ध धर्मावलम्बी था परन्तु चेल्लणा ने उसे जैनधर्म का महत्त्व हृदयंगम कराना आरम्भ किया और फलस्वरूप श्रेणिक ने जैनधर्म अंगीकार कर लिया था। चेटक जैसे महाश्रावक की सुपुत्री होने से चेल्लणा में जैनधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी इसीलिये वह श्रेणिक को भी जैन धर्मानुयायी और भगवान् महावीर का परमभक्त बनाने में समर्थ हो सकी। इसप्रकार महाराजा चेटक और उनके सब जामाता नृपतिगण भगवान् महावीर के उपासक थे।

महाराजा श्रेणिक के पश्चात् चेल्लणा से उत्पन्न पुत्र कोणिक मगध का सम्राट् हुआ। कोणिक के छोटे भाई हल्ल और वेहल्ल को महाराजा श्रेणिक ने अपने जीवन काल में सेयणग हाथी और अट्ठारसवंक हार दिया था। कोणिक की पत्नी पद्मावति ने इन्हें प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। कोणिक ने अपने भाइयों से हार और हाथी की माँग की। हल्ल, वेहल्ल ने उत्तर दिया कि

१ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र में इसका वर्णन है।

आधा राज्य हमें देना स्वीकार करो तो हम हार और हाथी दे सकते हैं। कोणिक ने उनकी बात पर ध्यान न देकर अपनी माँग को ही पुनः-पुनः दोहराया। दोनों भाइयों ने स्वतंत्र रहने में खतरा समझ कर अपने नाना राजा चेटक का आश्रय ले लिया और वे वैशाली में ही रहने लगे।

राजा कोणिक ने राजा चेटक के पास दूत भेजकर कहलाया कि हार, हाथी और हल्ल-वेहल्ल को हमें सौंप दो। राजा चेटक ने अपने गणराज्य के नौ मल्ली और नौ लिच्छवि राजाओं ने परामर्श किया। उन सबने मिलकर यह निर्णय किया कि कोणिक अन्याय कर रहा है; हल्ल-वेहल्ल का पक्ष न्याययुक्त है और उन्होंने हमारा आश्रय लिया है अतः उनकी सुरक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। गणराज्यों से परामर्श करने के पश्चात् चेटक ने कोणिक को कहलाया कि—"राजा श्रेणिक और मेरी पुत्री चेल्लना के पुत्र होने से तुम भी मेरे दोहित्र हो और हल्ल-वेहल्ल भी राजा श्रेणिक और चेल्लना के पुत्र होने से मेरे दोहित्र हैं। इसलिए मेरेलिए तीनों समान हैं। राजा श्रेणिक ने अपने जीवन काल में हल्ल-वेहल्ल को हार और हाथी दिये थे इसलिए यदि तुम आधा राज्य उन्हें देना स्वीकार करो तो हार, हाथी और हल्ल-वेहल्ल को तुम्हें लौटा दूँगा।"

कोणिक ने इसे न मानकर युद्ध की घोषणा की और वैशाली पर आक्रमण कर दिया। वैशाली के गणराज्य ने न्याय की रक्षा के लिए कोणिक की चुनौती स्वीकार करली और नौ मल्ली नौ लिच्छवि राजाओं ने मगध के विशाल सैन्य के मुकाबले में अपनी सेनाएँ रण मैदान में उतार दीं। अन्याय का प्रतिरोध करना गणराज्य का ध्येय था, तो भला वे कोणिक के द्वारा किये जाने वाले अन्याय को कैसे सहन कर सकते थे। दोनों ओर की सेनाएँ रणमैदान में उतर पड़ीं। भयंकर युद्ध हुआ। लम्बे समय तक यह विनाशकारी संग्राम चलता रहा। इसमें भयंकर नरसंहार हुआ। इसमें अन्ततोगत्वा कोणिक की जीत हुई। वैशाली का पतन हो गया। परिणाम कुछ भी क्यों न आया हो, भारत के इस प्रसिद्ध गणराज्य ने अन्याय के प्रतिरोध में कोई कसर न रक्खी। वैशाली के पतन के साथ ही इस सुप्रसिद्ध वज्जियन संघ का भी अन्त हो गया।

इस दुःखान्त परिणाम के बावजूद भी महाराजा चेटक और उनके गणराज्य की कीर्त्ति न्याय के रक्षण के लिए कियेगये बलिदानों के कारण इतिहास में अमर रहेगी। महाराजा चेटक और उनका गणराज्य भारतीय इतिहास का सुनहरा पृष्ठ है।

ईसा पूर्वकी छठी शताब्दी के राजनैतिक भारत में मगध राज्य का बहुत अधिक प्रभाव था। मगध के शासक ही उस समय सर्वोपरि शक्तिसम्पन्न समझे जाते थे। एक तरह से वे ही भारत के भाग्य विधाता थे। मगध के जैन सम्राट् उस समय मगध में शिशुनाग वंश के राजाओं का राज्य बिम्बिसार था। इनकी राजधानी राजगृह थी। मगध का सर्वप्रथम सम्राट् बिम्बिसार, अपर नाम श्रेणिक हुआ। मगध साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ बना देने में सम्राट् श्रेणिक के व्यक्तित्व की महता है। उनके ही प्रयत्नों और पुरुषार्थ से मगध का साम्राज्य भारत का मुकुट बन गया। सिकन्दर महान् ने जब ३०२ ई. पूर्व भारत पर आक्रमण किया तब उसे विदित हुआ कि मगधराज ही महाप्रबल भारतीय राजा है। मगध को इतना शक्तिशाली बनाने का श्रेय महाराजा श्रेणिक को ही है। सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता मि विन्सेण्ट स्मिथ ने अपनी OX FO D HISTORY OF INDIA (आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया) में लिखाहै :—

The first great king of this time was bimbi sara or SRENIKA. He was probably a Jain.

अर्थात् उस समय का सर्वप्रथम महान् राजा बिम्बिसार अथवा श्रेणिक था। वह बहुत सम्भवतः जैन था।

श्रेणिक अपने प्रारम्भिक जीवन में बौद्ध थे परन्तु महाराजा चेटक की की पुत्री चेलना के प्रभाव से वह जैन होगये थे। यह चेलना श्रेणिक की पट्टरानी थी। महाराजा श्रेणिक भगवान् महावीर के परम उपासक बन गये थे। भगवान् महावीर के दर्शन के लिए वे अपनी राजकीय समृद्धि के साथ जाया करते थे। भगवान् महावीर से उन्होंने कई प्रश्नोत्तर किये थे और क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन गये थे। उन्होंने अपने राज्य में कई बार अमारि-घोषणा करवाकर प्राणिमात्र को अभयदान दिया था।

जैनअहिंसा के उपासक होते हुए भी उन्होंने अपने राजकीय कर्त्तव्य का दायित्व बराबर निभाया। बाबू कामताप्रसाद जी ने लिखा है कि "एक-बार गान्धार देश के राजा सात्यकि ने दूत भेजकर उन्हें (श्रेणिक को) कहलाया कि भारत पर इससमय महासंकट के बादल उमड़ पड़े हैं। ईरानियों ने हम पर धावा कर दिया है—हमारे अकेले के बूते का काम नहीं है कि उनको मार भगाएँ और स्वदेश की रक्षा करें। आइए, आप हमारा हाथ बटाइये।" महाराजा श्रेणिक यह संदेश पाकर एकदम तय्यार हो गये और उन्होंने ईरान के बादशाह को हराकर भगा दिया और उसके देश में भारतीयता की धाक जमा दी" इस प्रकार महाराजा श्रेणिक ने भारत को विदेशियों के जुएतले आने से बचा लिया। भारत को विदेशी आक्रमणों से बचाने में महाराजा श्रेणिक की सच्ची महत्ता रही हुई है। श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के प्रयत्न से पारस्य में जैनधर्म का प्रचार हो गया। इस प्रकार महाराजा श्रेणिक मगध के प्रथम जैनसम्राट् हुए। इनके शासनकाल में जैनधर्म का बहुत व्यापक प्रभाव फैला।

श्रेणिक के बाद उनका पुत्र कोणिक मगध का सम्राट् बना। इसने मगध का साम्राज्य और भी अधिक विस्तृत किया। इसने तत्कालीन वैशाली के

अजातशत्रु-कोणिक

वज्जियन गणराज्य को हराकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इसका वर्णन 'गणराज के प्रमुख महाराजा चेटक' के प्रकरण में कर चुके हैं। कोणिक को 'अजात शत्रु' कहा जाता है। इसकी शूरवीरता की चारों ओर खूब ख्याति फैली हुई थी। बड़े बड़े योद्धा भी इससे थर-थर कांपते थे। यह कोणिक अपने जीवन के आरम्भ काल में बड़ क्रूरकर्मा था। इसने अपने पिता श्रेणिक को वन्दी बना कर कैदखाने में डाल दिया था। परन्तु बाद में इसे बहुत पश्चाताप हुआ और वह स्वयं कुठार लेकर अपने पिता के वन्धनो को तोड़ने के लिए गया। दुर्भाग्यवश श्रेणिक ने समझा की यह मेरा वध करने के लिये आ रहा है अतः पुत्र को पितृहत्या के कलंक से बचाने के लिये उसने आत्महत्या करली। कोणिक को इससे भयंकर पश्चाताप हुआ और उसने पितृवध के पापको धोने के लिये प्रयत्न भी किये।

अपने उत्तर जीवन में भगवान् महावीर के प्रति इसकी गहरी भक्ति हो गई थी। औपपाति सूत्र से उसकी भक्ति का परिचय मिलता है। प्रतिदिन भगवान् महावीर के कुशल समाचार जानकर फिर अन्न-जल ग्रहण करने का उसका उग्र नियम था। यह नियम ही उसकी भगवान् महावीर के प्रति अगाधभक्ति का परिचय देने के लिये प्रर्याप्त है। अजातशत्रु कोणिक ने अपने शासन काल में जैनधर्म का प्रचार करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था। भगवान् महावीर का निर्वाण इसी के शासनकाल में हुआ था।

अजातशत्रु के बाद शिशुनाग वंश में ऐसे पराक्रमी राजा न रहे जो मगध राज्य को अपने अधिकार में सुरक्षित रखते। अतः नन्दवंश के राजा ने मगध पर अपना अधिकार कर लिया। इसवंश के अधिकांश राजा जैन-धर्मानुयायी थे, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। किन्तु सम्राट् नन्दिवर्धन के विषय में यह निश्चित है कि वह जैन राजा थे ※। नन्दिवर्धन महापराक्रमी राजा थे। इन्होंने कई लड़ाइयाँ लड़कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। मगध पर (४४९-४०९ ई० पू०) ४० वर्ष तक उन्होंने राज्य किया। इस अवधि में उन्होंने अवन्तिराज को परास्त किया, दक्षिणपूर्व व पश्चिमीय समुद्रतटवर्त्ती देश जीते, उत्तर में हिमालय वर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त की और काश्मीर को अधिकार में लिया। कलिङ्ग पर भी उसने धावा किया और उसमें भी सफल हुआ। इस विजय के उपलक्ष में वह कलिंग से श्री ऋषभदेव की मूर्ति पाटलिपुत्र ले आया था।

नंदवंश और जैनधर्म

महाराजा श्रेणिक ने ईरानियों को भारत में आने से रोक दिया था। परन्तु बाद में मौका पाकर उन्होंने तक्षशिला के पास अपना पाँव जमा लिया था। परन्तु नन्दिवर्धन से ई. पू. ४२५ में ईरानियों को भारत की सीमा से बाहर निकाल दिया था। इस प्रकार सम्राट् नन्दिवर्धन से भारत में जमने वाले विदेशी राज्य का अन्त करके भारत के गौरव की रक्षा की। इस दृष्टि से सम्राट् श्रेणिक और नन्दिवर्धन का नाम भारतीय इतिहास में सदा अमर रहेगा।

※ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० ४५-४६

नन्दराजाओं के राज्यकाल में भी जैनधर्म फला-फूला। अन्तिम 'नन्दराज' से मौर्यवंश के सम्राट् चन्द्रगुप्त ने राज्य छीनलिया। समाट् चन्द्रगुप्त और इनके मंत्री चाणक्य भी जैन थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य

नन्दवंश के बाद मगधसाम्राज्य के अधिकारी मौर्य्यवंशी राजा हुए। प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त भारतीय इतिहास के सबसे अधिक प्रसिद्ध महाराजाधिराज हैं। इन्होंने अपने बाहुबल से पेशावर से कलकत्ता और सुदूर दक्षिण की सीमा तक अपना राज्य फैलालिया था। इन्होंने सिकन्दर के पीछे रहे हुए प्रान्तीय यूनानी शासक को हिन्दुस्तान के सीमाप्रान्त से दूर भगाया था। जब पुनः सिल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया तो चन्द्रगुप्त ने उसे बुरी तरह हराया और सन्धि करने पर बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्य अफगानिस्तान तक बढ़गया और सिल्यूकस की पुत्री से उनका विवाह भी होगया। भारत और यूनान का गहरा सम्बन्ध भी इनके राज्य में स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्त जैसे सम्राट् ने भारतीय स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रक्खा। यह महान् प्रतापीसम्राट् प्रख्यात श्रुतकेवली जैनाचार्य श्री भद्रबाहु का शिष्य था। इसके मंत्री चाणक्य भी जैनधर्मानुयायी श्रावक "गनी" का पुत्री था। "गनी" जैनधर्म का कट्टर अनुयायी योद्धा था। चाणक्य की सहायता से सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने प्रयत्नों में सफल हो सके।

यह महान् प्रातापी सम्राट् जैनधर्म का ऊपर-ऊपर से ही पालन करने वाला नहीं था बल्कि जैनधर्म के अहिंसा और त्याग के सिद्धान्त भी इसकी रग-रग में उतरे हुए थे। इसीलिए अपने पराक्रम से उपार्जित विशाल साम्राज्य का परित्याग करके वे निर्ग्रन्थ जैन-मुनी बन गये। त्याग का कितना भव्य उदाहरण !

उत्तरीभारत में इस समय बारहवर्षी-भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रमण निर्ग्रन्थों को यथाविधि आहार मिलने में कठिनाई होने लगी। इसलिए श्रीभद्रबाहु स्वामी के नेतृत्व में एक विशाल साधुसंघ ने दक्षिण-भारत की ओर प्रयाण किया। उत्तरी भारत में जो साधु-समुदाय रहा उसके नायक

जर्नल आफ दी बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसाइटी भा. १२ पृष्ठ २४५

श्री भद्रबाहु स्वामी के शिष्य श्री स्थुलिभद्र बनाये गये। चन्द्रगुप्त भी अपने पुत्र को राज्य सौंपकर भद्रबाहु के समीप मुनि-दीक्षा लेकर उनके साथ दक्षिण की ओर चले गये। वहाँ श्रमणबेलगोला पहुँचने पर भद्रबाहु स्वामी को ऐसा मालूम हुआ कि अब मेरा अन्तिम समय नजदीक है अतः वे वहीं ठहर गये। मुनि चन्द्रगुप्त भी अपने गुरु की सेवा में यहीं रहे। वहीं रहकर चन्द्रगिरि पर्वत पर इन दोनों महापुरुषों ने समाधिमरण प्राप्त किया।

प्रायः अधिकांश विद्वान् और इतिहासवेत्ता यह मानते हैं कि सम्राट् चन्द्रगुप्त जैनधर्म का उपासक था। मैसूर प्रांत के श्रमणबेलगोला के चन्द्रगिरि पर्वत पर प्राप्त शिलालेखों के अनुसन्धान से इतिहासकारों ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के जैनत्व को स्वीकार कर लिया है। प्रसिद्ध इतिहासकार मिश्रबन्धुओं ने अपने "भारतवर्ष का इतिहास" ग्रन्थ के पृष्ठ १२१ पर लिखा है:—

"संसार का सबसे पहला सम्राट् न केवल युद्ध में अप्रतिभ विजयी था वरन् शासनप्रणाली में भी पूरा उन्नायक था। संसारीपने में पड़कर आपने भारी साम्राज्य बनाकर दिखलादिया और फिर त्याग का ऐसा उदाहरण दिखाया, कि पचास वर्ष से पहले ही अतुल वैभव को लात मारकर साधारण जैनभिक्षु का पद ग्रहण करलिया। इस सम्राट्श्रेष्ठ का शौर्य, प्रबन्ध और त्याग, तीनों ही मुक्तकंठ से सराहनीय हैं।"

मैसूर राज्य के प्राचीन शिलालेखों व ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करने के बाद मैसूरराज्य के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष और प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता मि० वी० लुइस् राइस ने लिखा है कि "चन्द्रगुप्त के जैन होने में कोई सन्देह नहीं है।"

मिस्टर टामस लिखते हैं:—

That chaudragupta was a member of the Jain community, is taken by their writers as a matter of course, and treaped as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentary evidence to this effect is of comparativel yearly date and apparently

absoved from suplcion. The testimony of megasthenes would like-wise seem to imply that chandra gupta submitted to the devotional teaching of the sramanas as opposed the doctrine of the Brahmanes.❀

अर्थात् 'चन्द्रगुप्त जैन समाज के व्यक्ति थे', यह जैन ग्रन्थकारों ने एक ऐसी स्वयंसिद्ध और सर्वप्रसिद्ध बात के रूप में लिखा है कि जिसके लिए उन्हें कोई अनुमान प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रही ? इस विषय में लेखों के प्रमाण बहुत प्राचीन और साधारणतः सन्देह रहित हैं। मेगस्थनीज़ के कथन से भी झलकता है कि चन्द्रगुप्त ने ब्राह्मणों के विरोध में श्रमणों (जैनमुनियों) के धर्मोपदेश को अंगीकार किया था।

इसी प्रकार इतिहास वेत्ता विन्सेन्ट स्मिथ ने भी लिखा है :—

I am now disposed to believe that the tredion probably is true in its main outline and that chandragupta really abdicated and became a jain ascetic. +

अर्थात् मुझे अब विश्वास हो गया है कि जैनियों के कथन बहुत करके मुख्य २ बातों में यथार्थ हैं और चन्द्रगुप्त सचमुच राज्य त्यागकर जैनमुनि हुए थे।

मैसूर प्रान्त के श्रमणबेलगोल नामक स्थान से प्राप्त शिलालेखों से चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में ही नहीं वरन् जैन व भारतीय इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। इसका विस्तृत वर्णन जानने के लिए प्रोफेसर श्री हीरालाल जैन एम. ए. पी. एच. डी. द्वारा सम्पादित "जैन शिलालेख संग्रह भा० १ का अवलोकन करना चाहिये।

उपर्युक्त ऐतिहासिज्ञों के मन्तव्यों से भली भांति सिद्ध हो जाता है कि इतिहासप्रसिद्ध यह सर्वप्रथम महाराजाधिराज सम्राट् चन्द्रगुप्त जैन थे। चन्द्रगुप्त के पुत्र सम्राट् बिन्दुसार भी अपने पिता के समान ही जैनधर्म के

❀Early faith of. Asoka 23. Journal of the royal. Asiaticsociety Vo.9,P.116

+V. Smiths E. H. P. 146.

प्रतिभक्ति रखते थे। इन के पुत्र अशोक; तथा उसके पौत्र सम्प्रति के शासन काल में जैनधर्म की खूब उन्नति हुई। मौर्यकाल के अन्त समय तक मगध के राजवंश में जैनधर्म की प्रधानता रही।

भारतीय इतिहास में अशोक अपने महान्व्यक्तित्व के कारण "अशोक महान्" के रूप में सुविख्यात है। मौर्यवंश का यह सम्राट् अपने पितामह सम्राट् चन्द्रगुप्त के समान ही परमप्रतापी,

सम्राट् अशोक का महातेजस्वी, दूरदर्शी और प्रियदर्शी था। इसने अपनी

जैनत्त्व

शूरवीरता के द्वारा मगधसाम्राज्य का खूब विस्तार किया था। अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तारक होने में अशोक की जितनी महत्ता है उससे कहीं अधिक महत्ता उसके धर्मप्रचारक होने के कारण है। अशोक की महत्ता और विशेषता यही है कि वह राजनीति में दूरदर्शी होने के साथ ही साथ 'देवनां प्रिय पियदंसी' के रूप में विश्व-विख्यात हुआ। अशोक अपने पूर्वज चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार की तरह जैनधर्मानुयायी सम्राट् था।

अशोक के सम्बन्ध में आमतौर पर यह धारणा फैली हुई है कि वह बौद्धमतानुयायी था और उसने भारत और विदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार किया था। परन्तु बौद्धग्रन्थों के अतिरिक्त इस बात का समर्थन करने वाले पुष्ट-प्रमाणों का अभाव है। केवल बौद्धग्रन्थों, स्तूपों और अन्य बौद्ध सामग्री के आधार पर ही विद्वानों ने अपना यह निर्णय बांध लिया है, परन्तु यदि अधिक गहराई में जाकर देखें और ऐतिहासिक तथ्यों की शोध में कृतभूरि परिश्रम पुरातत्वज्ञों की सम्मतियाँ मालूम करें तो ऐसी कई बातों पर नवीन ही प्रकाश पड़ता हुआ प्रतीत होगा। भारतीय इतिहास की ऐसी कई बातें हैं जो कुछ और रूप में प्रचलित हैं और जिनका वास्तविक रूप कुछ और ही है। ज्यों ज्यों पुरातत्त्वरसिक निष्पक्षविद्वान् प्राचीन शिलालेखों और प्रमाणों की शोध करते जा रहे हैं त्यों त्यों नवीनसत्य प्रकाश में आते जा रहे हैं। अशोक को बौद्ध मतानुयायी मानने की धारणा भी ऐसी धारणा है जिसका कोई पुष्ट आधार नहीं है।

कतिपय ऐतिहासिक विद्वानों ने अशोक के बौद्धत्व को अस्वीकार किया है। डा. फ्लीट १, प्रो. मैकफैल २, मि मोनहन ३, और मि. हेरस ४

ने अशोक को बौद्ध नहीं माना है। प्रो० कर्न जैसे बौद्धधर्म के प्रखर विद्वान् अशोक का जैन होना बहुत कुछ सम्भव मानते हैं। उन्होंने लिखा है :—

His (Asoka's) ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of heretical Jain than those of the Buddhists. (Indian Anti, Vo. P. 5. 205)s

अर्थात्—अशोक की जीवरक्षा सम्बन्धी आज्ञाएँ बौद्धों की अपेक्षा जैनों की शिक्षाओं से अधिक मिलती है।

वस्तुतः अशोक ने अपने शासनकाल में पशुओं की रक्षा के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है। म० बुद्ध के समय में मांसभोजन का प्रचार अधिक था किन्तु अशोक ने यज्ञादि धार्मिक कार्यों के साथ २ भोजन के लिए भी पशुहिंसा बन्द दी थी। शिकार खेलने पर उसने प्रतिवन्ध लगा दिया था। प्रीति-भोज और उत्सवों में भी कोई मांस नहीं परोस सकता था। घोड़ों, बैलों, और बकरों को बधिया करना भी उसने बन्द करा दिया था। पशुओं की रक्षा और चिकित्सा का प्रबन्ध भी उसने पिंजरापोल के ढङ्ग से किया था। जैनों की तरह उसने कई वार अमारिघोष कराया था। अशोक का यह पशुओं की रक्षा के प्रति दियागया ध्यान उसके जैनत्व को सिद्ध करता है। बौद्धधर्म में पशुरक्षण पर इतना अधिक भार नहीं दिया गया है जितना कि अशोक ने दिया है। इसीलिए कर्न महोदय ने उक्त मन्तव्य प्रकट किया है।

मि. टॉमस ने जोरदार शब्दों में अशोक को जैनधर्मानुयायी बताया है। ❀ वह अशोक को उसके राजकाल के २७ वें वर्ष तक जैनधर्मानुयायी ही प्रकट करते हैं। उनका मत है कि अशोक के शासन प्रवन्ध में और शिलालेखों में बौद्धधर्म की कोई भी खास बात नहीं है १। मि. राइस २ और प्राच्य

१ जनरल र. ए. सो. १६०६ पृ० ४६१-४६२; २ अशोक, पृ० ४८; ३ अर्लीहिस्ट्री ऑफ बंगाल पृ० २१४। जनरल ऑफ दी मीथिक सोसाइटी, भा १७ पृ० १७२-२७२।

विद्या महार्णव पण्डित नगेन्द्रनाथ वसु भी अशोक को एक समय जैन प्रकट करते हैं ३।

कल्हणकवि विरचित राजतरङ्गिणी में, जो कि ग्यारहवीं शताब्दी में रची हुई है यह उल्लेख किया गया है कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का (जिनशासन का) प्रचार किया था। वह श्लोक इस प्रकार है :—

यः शान्ति वृजिनो राजा प्रयन्नो जिनाशासनम्।
शुष्कलेऽत्र वितस्तात्रौ तस्तारस्तूपमण्डले ॥ (राज० अ. १)

इस श्लोक में 'जिनशासन' शब्द स्पष्टतः जैनधर्म का द्योतक है। तदपि कतिपय विद्वान् इसे बौद्धधर्म के लिए प्रयुक्त मानते हैं। परन्तु यह मानना असंगत है। बौद्धधर्म में 'जिन' शब्द का प्रयोग क्वचित् ही हुआ है और जैनधर्म का नामकरण तक इस शब्द से हुआ है अतः 'जिनशासन' स्पष्टतः जैनधर्म का सूचक है। राज तरंगिणी में अन्यत्र काश्मीर के राजा मेघवाहन को जैनों के समान हिंसा से घृणा करने वाला लिखा है। इस उल्लेख से भी स्पष्ट है कवि कल्हण ने 'जिन' शब्द जैन के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है।

अबुलफजल ने "आइने अकबरी" में काश्मीर का हाल लिखा है। उससे भी इस बात का समर्थन होता है कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया था।

अशोक ने अपने सप्तम स्तम्भलेख में कहा है कि उसके पूर्वजों ने धर्मप्रचार करने के प्रयत्न किये परन्तु वे पूर्ण सफल नहीं हुए। यदि अशोक को बौद्ध अथवा ब्राह्मण मत का प्रचारक माने तो उसका धर्म वही नहीं ठहरता है जो उसके पूर्वजों का था। सम्राट् चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार ने जैन-धर्म का प्रचार करने का प्रयत्न किया था। अतः अशोक का अपने पूर्वजों के धर्म के प्रति श्रद्धा और उसका प्रचारक होना स्वाभाविक है। जिस धर्म का प्रचार करने में उसके पूर्वजों को उतनी सफलता नहीं मिली उसी का प्रचार

❀ इन्डियनएन्टी क्वेरी भा. २० पृ. २४३.

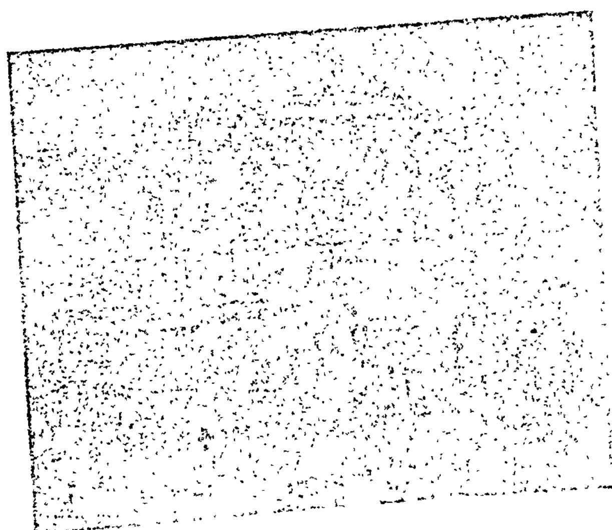
१. मेन्युल आफ बुद्धिज्म पृ. ११२,

२. मसूर एन्ड कुर्ग,

३. हिन्दी विश्वकोष भा, पृ. ३५०,



ऐरोला की गुफा में भगवान् महावीर का मन्दिर



अजंटा में स्थित जैन मन्दिर का द्वार मंडप

करने में अशोक को जो सफलता मिली, उस पर वह हर्ष और गौरव प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त अशोक ने धर्मलिपियों में जो शिक्षाएँ मानव-समाज को दी हैं वे जैनधर्म के विशेष अनुकूल हैं। "जीवित प्राणियों की हिंसा न की जाय, मिथ्यात्ववर्धक सामाजिक रीतियों को नहीं अपनाना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, अल्पव्ययता और अल्पभाण्डता (अल्पपरिग्रह) का अभ्यास करना अच्छा है, संयम और भावशुद्धि का होना आवश्यक है" इत्यादि शिक्षाएँ जैनधर्म के पाँच अणुव्रतों के अनुकूल हैं। तथा इन धर्म-लिपियों में कई ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कियागया है जो जैनधर्म में अधिकतर व्यवहृत होते हैं। श्रावक, प्राण, आरम्भ-अनारम्भ, संबोधि, कल्प आदि शब्द उल्लेखनीय हैं। इससे अशोक का जैनधर्म और उसके सिद्धान्तों से परिचित होना सिद्ध होता है।

अशोक अपने जीवन के आरम्भकाल में जैन था। यह तो स्वयं बौद्धग्रन्थों से सिद्ध होता है १। कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि अशोक पहले जैन था परन्तु बाद में यह बौद्ध हो गया था। यह बात पुष्टआधारहीन प्रतीत होती है। यह बात अवश्य है कि अशोक अपने जीवन के पूर्वार्ध में जैनधर्म का परम्परागत अनुयायी था और बाद के जीवन में वह सब धर्मों के प्रति उदार और समभाववाला हो गया था। उसके पितामह और पिता जैनधर्मानुयायी थे अतः वह जैनधर्म के संसर्ग से वञ्चित रहा हो यह तो बन नहीं सकता। जैनधर्म के जो संस्कार उसके अन्दर विद्यमान थे वे कलिङ्ग को विजय करने में होनेवाले भीषण संहार से एकदम जागृत हो उठे। कलिङ्ग के युद्ध में होनेवाली लाखों प्राणियों की हिंसा का विचार करते २ उसका हृदय स्वयमेव विदीर्ण होने लगा। उसे अपने आप पर घृणा और ग्लानि उत्पन्न हो गई। उसे अपने राज्यविस्तार के लिए लड़े जानेवाले युद्धों के लिये पश्चात्ताप होने लगा। उस युद्धजनित पाप को धोने के लिये कुछ कर मिटने की साध उसके हृदय में जाग उठी। उसका ध्यान अपने पितामह चन्द्रगुप्त के आत्मोद्धार की घटना पर गया और तब से उसने धर्मप्रवृत्तियों में अपना शेष जीवन लगादेने का निश्चय किया। इसका धर्मप्रचार इसी

१ स्मिथ, अशोक पृ० २३

भावना का परिणाम है। परम्परागत जैनधर्मानुयायी होने पर भी जैन सम्प्रदाय तक सीमित न रहकर उसने तत्कालीन सब धर्मों का आदर किया। ब्राह्मण, बौद्ध, आजीविक, जैन आदि सब धर्मों के साथ उसने सम्पर्क स्थापित किया और सब धर्म वालों को सुविधाएँ प्रदान कीं। दिल्ली के स्तम्भ पर अंकित उसकी आज्ञा को पढ़ने से मालूम होता है कि उसने अपने महात्माओं को आदेश दिया है कि वे सब धर्मवालों की देखरेख रक्खें और उन्हें सुविधाएँ प्रदान करें। एक शिलालेख में अशोक ने लिखाया है कि मैंने सब सम्प्रदायों का विविधप्रकार से सत्कार किया है। *

इस प्रकार वह अपने जीवन के उत्तरकाल में इतना उदार हो गया था कि उसे किसी भी सम्प्रदाय का नहीं माना जा सकता है। वह सम्प्रदाय से ऊपर उठकर अहिंसा और मानवहित के कार्यों का व्यापक प्रचार करना चाहता था। वह अपने इस महान् कार्य में बहुत कुछ सफल हुआ है। अशोक के द्वारा प्रचारित अहिंसा और अन्य बहुमूल्य शिक्षाएँ जैनधर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं, इसका कारण यही है कि वह परम्परागत जैनधर्मानुयायी था। कुछ भी हो, अपने इस धर्म-प्रचार के अनूठे कार्य के कारण वह सबका प्रिय बनगया और प्रियदर्शी की सार्थक उपाधि उपार्जित की। इस दृष्टि से अशोक का महत्त्व विश्व के आधुनिक इतिहास में अनुपम है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि धर्मविजय अहिंसाधर्म की विजय है। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए बाबू कामताप्रसाद जैन का "जैनधर्म और सम्राट् अशोक" नामक निबन्ध पठनीय है। इस छोटे से प्रकरण में भी उक्त निबन्ध के आधार पर यत्किञ्चित् प्रकाश डाला गया है।

सच पूछा जाय तो यह विषय अत्यन्त महत्त्व का है अतः इसके सम्बन्ध में और भी निष्पक्ष अन्वेषण की आवश्यकता है। जैनविद्वानों और श्रीमन्तों का यह कर्त्तव्य है कि वे ऐतिहासिक अन्वेषण की ओर विशेष रूप से ध्यान दें। जैनसम्प्रदाय की उपेक्षा, साहित्यसृजन व प्रकाशन की मंदरुचि और व्यापक प्रचारयोजना के अभाव के कारण उसे कई

* छठे स्तम्भ लेख में।

अमूल्य निधियों से वञ्चित होना पड़ा है। यदि जैनविद्वान और श्रीमान् अन्वेषण की प्रवृत्ति पर पूरा २ ध्यान दें, तो वे संसार को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक बातों पर नवीनप्रकाश प्रदान करने में समर्थ हो सकते हैं।

सम्राट् सम्प्रति

सम्राट् अशोक का पुत्र कुणाल अन्ध होने से उसका (कुणाल) पुत्र सम्प्रति शासक बना। इस समय आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति दो आचार्य हुए। आर्य महागिरि ने जिनकल्प अंगीकार किया और वे संघ से अलिप्त रहे। आर्य सुहस्ति ने स्थविरकल्प अंगीकार किया और इस सम्राट् सम्प्रति को प्रतिबोध दिया। सम्राट् सम्प्रति अत्यन्त प्रभावशाली और धर्म प्रभावक नरेश थे। इनके विषय में यह कहाजाता है कि सवालाख नवीन जिनालय बनाये, तेरह हजार जीर्ण मन्दिरों का उद्धार किया और सात सौ दानशालाएँ स्थापित कीं। सम्राट् सम्प्रति ने धर्मप्रचार के लिए अनार्य देशों में भी धर्मोपदेशक भेजे थे। इस महान् धर्मप्रचारक सम्राट् ने ऊँच-नीच-सबको जैनधर्मानुयायी बनाये थे। अरब, ईरान आदि विदेशों में भी इसने जैनधर्म का प्रचार किया था। जिनालय बनाने और प्रचार करने के अदम्यउत्साह के लिए इस सम्राट् की अत्यन्त ख्याति है। सम्राट् सम्प्रति ने उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। उस समय उज्जयिनी जैनों का मुख्य केन्द्रस्थान बन गया था। सम्राट् सम्प्रति का उल्लेख बौद्धों के दिव्यावदान नाम के ग्रन्थ में आता है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने राजस्थान के इतिहास (प्रथम भाग) के पृष्ठ ९४ पर लिखा है:—

"...इस पर से अनुमान होता है कि मौर्यदेश कुणाल के दो पुत्र दशरथ और सम्प्रति में विभक्त हो गया हो। पूर्वविभाग दशरथ के और पश्चिमी विभाग सम्प्रति के अधिकार में रहा हो। सम्प्रति की राजधानी कहीं पाटलिपुत्र और कहीं उज्जैन लिखी हुई मिलती है। परन्तु यह माना जासकता है कि राजपूताना, मालवा, गुजरात और काठियावाड़-इन देशों पर सम्प्रति का राज्य रहा होगा और उसने अपने समय में अनेक जैन-मन्दिरों का निर्माण कराया होगा। तीर्थकल्प में यह भी लिखा है कि परमार्हत सम्प्रति ने अनार्य देशों में भी विहार (मन्दिर) बनवाये थे।"

इसी तरह उन्होंने इस इतिहास के पृष्ठ १०-११ में यह भी लिखा है:—

"अजमेर जिले के वर्ली नामक ग्राम में वीरसंवत् ८४ (वि. सं पूर्व ३८६ = ई. सं पूर्व ४५३) का एक शिलालेख मिला है (जो अजमेर के म्युजियम में सुरक्षित है) उस पर से अनुमान होता है कि अशोक के पहले भी राजपूताने में जैनधर्म का प्रसार था। जैन लेखकों का मत है कि राजा सम्प्रति ने जो अशोक का वंशज था, जैनधर्म की बहुत उन्नति की और इसके आसपास के प्रदेशों में कितने ही जैनमन्दिर बनाये।"

इस प्रकार सम्राट् बिम्बिसार (श्रेणिक) से लेकर सम्प्रति तक मगध साम्राज्य में जैनधर्म की प्रधानता रही। मौर्यकाल के अन्त समय तक मगध में जैनधर्म का प्रभुत्व रहा। चीनयात्री ह्वेनसाँग (Hiuen Tsiag) ने ईस्वी सन् छह सौ उनतीस (६२९) में भी वैशाली, राजगृह नालन्दा और पुण्ड्रवर्धन में अनेक निर्ग्रन्थों को देखने का उल्लेख किया है। इस प्रकार एक लम्बे समयतक मगधप्रदेश में जैनधर्म का प्रभुत्व बना रहा।

उड़ीसा प्रान्त में अत्यन्त प्राचीनकाल से जैनधर्म का प्रचार था। श्रीयुत जायसवाल महोदय ने लिखा है कि "मगधराज नन्दिवर्धन कलिंग से ऋषभदेव की जैनमूर्त्ति मगध ले आया था। इस पर कलिङ्ग सम्राट् खारवेल से यह मालूम होता है कि ई. सं. पूर्व ४५८ वर्ष में और विक्रम सं. पूर्व ४०० में उड़ीसा में जैनधर्म का इतना प्रचार था कि भगवान् महावीर के निर्वाण के ७५ वर्ष बाद ही वहाँ जैनमूर्त्तियाँ प्रचलित हो गई थीं। .... खारवेल के समय से पूर्व भी खण्डगिरि (उदयगिरि) पर्वत पर अर्हन्तों के मन्दिर थे क्योंकि उनका उल्लेख खारवेल के लेख में आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनधर्म कुछ शताब्दियों तक उड़ीसा का राष्ट्रीयधर्म रहा है।" यह उड़ीसा प्रान्त ही कलिंग देश है। कलिंग पर चेदिवंश के राजाओं का शासन था। इनमें महाराजा महामेघ वाहन खारवेल सबसे अधिक प्रभावशाली हुए। ये अपने अतुल्य पराक्रम के कारण 'कलिङ्ग चक्रवर्त्ती' के रूप में सुविख्यात हुए।

कलिङ्ग चक्रवर्त्ती महाराजा खारवेल जैनधर्मानुयायी थे यह तो प्रायः सर्वमान्य बात है। उड़ीसा में खण्डगिरि की हाथीगुफा में से महाराजा खारवेल का उत्कीर्ण कराया हुआ शिलालेख प्राप्त हुआ है। इस लेख का आरम्भ इस प्रकार हुआ है :— नमो अरहंतानं [।] नमो सव सिधानं [।] ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवसवधनेन पसथ सुभ लखणेन चतुरन्त लुठित गुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेलेन।

इस लेख का अत्यधिक ऐतिहासिकमहत्व है। ऐतिहासिक घटनाओं और जीवन चरित्र का पूरा वर्णन प्रकट करने वाला भारतवर्ष का यह सवप्रथम शिलालेख है। इस शिलालेख में दी हुई घटनाओं से यह निस्संदेह सिद्ध हो जाता है कि सम्राट् खारवेल स्वयं जैनधर्मानुयायी और जैनधर्म प्रचारक थे तथा इनके पहले भी कलिङ्ग में जैनधर्म का प्रचार था। अशोक के आक्रमण के कारण कलिङ्ग तहस-नहस होगया था, नगर विरान हो गये थे, असंख्य कलिंगवासी युद्ध के मैदान में काम आगये थे, कई बन्दी बना लिये गये थे; धर्मध्यान करने वाले साधुगण भी हैरान होगये थे। यह बात अशोक के शिलालेख से भी प्रकाट होती है और इस लेख से भी प्रकट होती है। इस दुर्दशाग्रस्त कलिंग का पुनरुद्धार खारवेल ने किया। उसने कलिंग के फीके पड़े हुए ऐश्वर्य को पुनः चमकाया। उसने कई उपाश्रय बनवाये। भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया और प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

खारवेल केवल धार्मिक ही नहीं थे अपितु शौर्य की अप्रतिभ मूर्त्ति भी थे। वह पच्चीस वर्ष की युवावस्था में सम्राट् बने थे। उनमें अद्वितीय पौरुष और उत्साह था, अतः उन्होंने कई देशों पर विजय प्राप्त की। देश-विदेश में उनके विजय-गौरव से दिशाएँ गूँज उठीं। वह आन्ध्र महाराष्ट्र और विदर्भ को अपनी छत्रछाया में लाये। उस समय के प्रसिद्ध राजा दक्षिणेश्वर शातकर्णि को युद्ध में परास्त कर अपना लोहा जमाया। जिस मगध राज्य ने कलिंग को निस्तेज बना दिया था उसके विरुद्ध उन्होंने युद्ध घोषित कर दिया। खारवेल के प्रताप से घबराकर मगधराज मगध को छोड़ कर मथुरा की तरफ भाग गये। खारवेल ने मगध के गंगाजल में अपने हाथियों को स्नान कराया, उनकी तृषा शान्त की। नन्दिवर्धन भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति

कलिङ्ग से पाटलिपुत्र उठा ले गया था उसे खारवेल पुनः कलिंग में ले आये और साथ ही साथ मगध की विपुल द्रव्यराशि भी कलिंग में ले आये। इस प्रकार उन्होंने मगध से पुराना बदला लिया। उनका राज्य नर्मदा और महानदी से कृष्णा तक फैल गया था। उत्तरापथ से लेकर पाण्ड्य चेल देशों तक उनकी पताका उड़ थी। विदेशी शासक डेमिट्रियस भी इनके प्रताप से डरकर भाग खड़ा हुआ। स्वर्गपुर की गुफा से जो शिलालेख प्राप्त हुआ है उसमें खारवेल को सार्वभौम चक्रवर्ती कहा गया है।

सम्राट् खारवेल ने जो शौर्य अपने राज्य-विस्तार में प्रकट किया वही उन्होंने धर्म विस्तार में भी दिखलाया। उनके लेख से ही यह प्रकट होता है। नं० १४-१५-१६-१७ उनके धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं अतः उनका भाषानुवाद यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

(१४)........सियों को वश में किया। तेरहवें वर्ष में पवित्र कुमारी* पर्वत पर जहाँ (जैनधर्म का) विजयचक्र सुप्रवृत्त है, प्रक्षीणसंसृति (जन्ममरण से अतीत) कायनिषीदी (स्तूप) पर (रहने वाले) पाप बताने वालों (पापज्ञापकों) के लिए व्रत पूरा हो जाने के बाद मिलने वाली राजवृत्तियाँ कायम कर दीं। पूजा में रत उपासक खारवेल ने जीव और शरीर की श्री की परीक्षा कर ली (जीव और शरीर का भेद जानलिया)।

(१५)........सुकृतिश्रमण सुविहित शत दिशाओं के ज्ञानी, तपस्वी ऋषि संघी लोगों का........अरिहंत की निषीदी के पास, पहाड़ पर उत्तम स्थानों से निकल कर लाये हुए, अनेक योजनों से लाये गये...... सिंहप्रस्थवाली रानी सिन्धुला के लिए निश्रय............(१६)........ घंटयुक्त (०) वैडूर्यरत्न वाले वाले स्तम्भ स्थापित किये पचहत्तर लाख के (खर्च) से। मौर्यकाल में उच्छिन्न चोयट्ठि (चौसठ अध्याय वाले) अंगसप्तिक के चतुर्थ भाग को पुनः तय्यार करवाया। यह क्षेमराज, वृद्धिराज, भिक्षुराज धर्मराज, कल्याण देखते-सुनते और अनुभव करते।

* यह खण्डगिरि-उदयागिरि का नाम है जहाँ यह लेख है।

(१७)············ है गुण विशेष कुशल, सब पन्थों का आदर करने वाले, सब (प्रकार के) मन्दिरों की मरम्मत कराने वाले, अस्खलित रथ और सैन्य वाले चक्र (राज्य) के धुर (नेता), गुप्त (रक्षित) चक्रवाले प्रवृत्त चक्रवाले राजर्षिवंशविनिःसृत राजा खारवेल ।

उक्त लेखों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि सम्राट् खारवेल ने धर्मक्रियाओं के आचरण के द्वारा भेद विज्ञान (आत्मा और शरीर के, जड़ और चेतन की भिन्नता का सम्यग् ज्ञान) प्राप्त कर लिया था । उन्होंने धर्म प्रभावना का कार्य करते हुए कुमारी पर्वत पर सकल जैनसंघ को एकत्रित किया था और सब तरफ के जैनसाधु और श्रावक वहाँ एकत्रित हुए थे । एकत्रित संघ समुदाय ने अंग सप्तिक (सात अंगों) के चतुर्थ भाग का पुनरुद्धार किया था ।

सम्राट् खारवेल के दो रानियाँ–सिन्धुला और वज्रघरवाजी थी। इन्होंने भी जैन श्रमणों के लिए उपाश्रय, गुफाएँ और मन्दिर बनवाये थे । ये रानिया भी जैनधर्म परायणा थीं ।

खारवेल की एक दूसरी विशेषता यह थी कि स्वयं जैन होते हुए भी वे सब धर्मों का आदर करते थे । ब्राह्मणों को उन्होंने विपुलदान दिया था । वेदानुयायी और बौद्ध धर्मानुयायी वर्ग को भी उन्होंने सुविधाएँ और सहायता प्रदान की थी । खारवेल सर्वप्रिय सम्राट् थे । विभिन्न धर्म वालों ने भी इनका गुणगान किया है । ये सम्राट् बड़े प्रजा-परायण थे । इन्होंने प्रजा कल्याण के लिए विपुल द्रव्य का सदुपयोग किया था, तालाब खुदवाये थे, पानी की नहरें बन्द पड़ी थीं उन्हें पुनः प्रारम्भ की थीं, नवीन घरों का निर्माण और प्राचीन गृहों का उद्धार किया था, उत्सव और धर्मसभाएँ आयोजित की थीं । तात्पर्य यह है कि खारवेल प्रजावत्सल, धर्मपरायण और महान् प्रभावक सम्राट् हुए । भारतीय इतिहास में उनके समान सम्राट् ये ही हैं । इस महान् सम्राट् ने जैनधर्म का गौरव बढ़ाया ।

सम्राट् खारवेल के बाद भी बहुत लम्बे समय तक कलिंग में जैनधर्म का प्रभुत्व बना रहा । चीनी यात्री हुेनसांग जो सातवीं शताब्दी

६२६-६४४) में भारत आया था—ने लिखा है कि "कलिंग जैनधर्म का
ख्य स्थान है"। इस पर से मालूम होता है कि खारवेल के कई शताब्दियों
बाद भी कलिंग में जैनधर्म का परिबल टिका रहा था।

उत्तर भारत में जैनधर्म का प्रचार प्राचीन काल से ही रहा है। उस
मय भारत में जैनधर्म के मुख्य दो केन्द्र थे। एक तो मथुरा दूसरा
उज्जैन। मथुरा से मिले हुए शिलालेख जो ई. पू. दूसरी शताब्दी से लेकर ई. सं० की पाँचवीं शताब्दी तक के हैं—यह प्रमाणित करते हैं कि सुदीर्घकाल तक मथुरा नगर जैनधर्म का मुख्य केन्द्र बना हुआ था। मथुरा के कंकाली टीले से स विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जैनधर्म का दूसरा केन्द्रस्थल मालव ान्त की राजधानी उज्जैन रहा। भगवान् महावीर के समय में वहाँ का ाजा चण्डप्रद्योत था। सिन्धु सौवीर के प्रसिद्ध जैन राजा उदायन के साथ ण्डप्रद्योत का संग्राम हुआ था। चण्डप्रद्योत भी भगवान् महावीर का भक्त ौर अनुयायी था। इसके बाद प्रसिद्ध जैन सम्राट् सम्प्रति ने उज्जैन को पनी राजधानी बनाया था। सम्प्रति के समय में मालव प्रान्त में जैनधर्म ी विपुल उन्नति हुई। इसके बाद के समय भी इस प्रसिद्ध नगरी के विषय ं जैनग्रन्थों में विगतवार वर्णन मिलता है।

मालव प्रान्त के जैन नृपति

ईसा पूर्व की पहली शताब्दी में उज्जैन में गर्दभिल्ल राजा राज्य करता ा। इसने कालकाचार्य की बहन साध्वी सरस्वती का अपहरण कर किया था। कालकाचार्य ने गर्दभिल्ल को बहुत समझाया कि वह इस प्रकार का अन्याय न करे परन्तु उसने एक न मानी। तब कालकाचार्य ने अपनी बहन को इस अन्याय से मुक्त करने के लिए और अन्यायी को अन्याय का फल चखाने के लिए सिन्ध के शक राजा को प्रेरित किया और उसकी सहायता से वे गर्दभिल्ल को पदभ्रष्ट कर अपनी बहन को मुक्त करने में सफल हुए। शक राजा उज्जैन में रहकर शासन करने लगे। जैनधर्म का प्रभाव जम गया और कालकाचार्य के चरण कमल में सब लोग भ्रमरों की तरह मंडराने लगे।

आचार्यकालक

कतिपय वस्तुस्थिति की उपेक्षा करने वाले और जैनधर्म से द्वेष रखने वाले लोग आचार्य कालक पर देशद्रोह का कलंक लगाते हैं और उन्हें कल्पित वीभत्स रूप में चित्रित करते हैं परन्तु कोई भी निष्पक्ष विचारक आचार्य कालक के इस कार्य को अन्याय नहीं ठहरा सकता। भारतीय संस्कृति के अनुसार परस्त्री का अपहरण भयंकर अन्याय और भीषणतम अपराध है। भारतभूमि में स्त्रियों के शीलरक्षण उच्च और पवित्र कार्य माना गया है। गर्दभिल्ल इस सीमा तक अन्यायी बन गया कि वह साध्वी सरस्वती को बलात् अपनी रानी बनाने के लिये उठा ले गया। भला, इस कार्य से किस भारतीय संस्कृति के आदर्शों के पुजारी का हृदय विक्षुब्ध हुए बिना न रहेगा? ऐसे दुष्टाशय नृपति को पदभ्रष्ट करने में देशद्रोह नहीं अपितु न्याय और व्यवस्था की सुरक्षा है। पक्षपात के चश्मे को दूरकर यदि विचार किया जाय तो आचार्य कालक का यह कार्य देशद्रोह नहीं किन्तु भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा करने वाला प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा।

गर्दभिल्ल के बाद राज्य करने वाले शक शासक को परमप्रतापी महाराजा विक्रमादित्य ने हराकर उज्जैन पर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

सम्राट् विक्रमादित्य

इनका समय ई० पू० ५७-५८ है। इनके नाम पर चलने वाला विक्रम संवत् उत्तरभारत में बहुत प्रसिद्ध है। शकों को पराजित करने के कारण इनका बहुत महत्त्व है। श्री सिद्धसेन दिवाकर ने अपनी प्रकाण्ड पाण्डित्य-प्रतिभा से इस महान् सम्राट् को अपना शिष्य बनाया था।

ऐसा कहा जाता है कि विक्रमादित्य को शालिवाहन ने पदभ्रष्ट कर दिया और उसके बाद उसने अपना शक संवत् (शालीवाहन संवत्) चलाया। यह आन्ध्रवंश का था। इसके बाद में दक्षिण में

शालीवाहन

एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। यह भी जैन राजा थे।

गोपगिरि (ग्वालियर) में राज्य करने वाले कन्नौज के राजा आम को जैनसाधु बप्पभट्ट ने जैन धर्मानुयायी बनाया। बाल्यवस्था में आम के पिता

कन्नौज के राजा आम

यशोवर्मा ने राजकीय खटपट के कारण उसको (आम को) और उसकी माता को देश निकाला दे दिया था। बप्पभट्ट ने उसे भविष्यवाणी की थी तू राजा होगा। इससे जब वह राजा हुआ तो उसने बप्पभट्ट का बहुत सन्मान किया और जैनधर्म स्वीकार किया। बप्पभट्ट ने लक्ष्मणावती के राजा धर्म के दरबारी कवि वाक्पति को जिसने 'गरुड़ वहो' नामक प्रख्यात प्राकृत काव्य लिखा जैन धर्मानुयायी बनाया था।

मुंज–भोज

जैन सुविख्यात राजा मुञ्ज और भोज भी धारा नगरी में सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता रखते हुए शासन करते थे। कथाओं के अनुसार ये भी जैनधर्म का पालन करने वाले भूपति कहे जाते हैं।

इस प्रकार संयुक्तप्रांत, काश्मीर, पंजाब, आदि उत्तर-भारत में और मध्यभारत में जैनधर्म का प्रचार हुआ। राजपूताना और मध्य-भारत के संस्कारी जीवन पर जैनधर्म की बहुत गहरी छाप पड़ी है। जैन गृहस्थों के व्यापारी, धनिक और आचार-विचार सम्पन्न होने के कारण उनकी नगरी में और राज दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा जमी रही है। अनेक जैनधर्मानुयायी गृहस्थों ने राज्य-शासन में बहुत ही महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया है। राजस्थान में जैनधर्म का अत्यन्त गौरव पूर्ण स्थान है अतः उसका स्वतन्त्ररूप से आगे उल्लेख किया जायगा।

गुजरात के जैनराजा और जैनधर्म

गुजरात के जैन राजा और जैनधर्म

जैनधर्म का सौराष्ट्र और गुर्जरभूमि के साथ अति प्राचीनकाल का सम्बन्ध है भगवान् अरिष्टनेमि ने इस भूमि में तपश्चर्या करके निर्वाण प्राप्त किया। इस भूमि में आये हुए गिरनार और शत्रुञ्जय पर्वत पर से संख्यातीत आत्माओं ने निर्वाण प्राप्त किया इस प्रकार इतिहासकाल के प्रारम्भ होने के पहले से ही जैनधर्म का सौराष्ट्र के साथ सम्बन्ध सिद्ध होता है। इतने प्राचीनकाल की विचारणा छोड़ कर ईसा की पाँचवी शताब्दी के बाद होने वाले मुख्य २ राजाओं का ही यहाँ उल्लेख किया जाएगा।

गुप्तराजाओं के बाद गुजरात में वल्लभीवंश के क्षत्रिय राजा हुए। इस वंश में कई वीरनरेश जैनधर्मानुयायी हुए। पांचवीं शताब्दी में राजा शिलादित्य ने जैनधर्म ग्रहण किया था। इनकी राजधानी का नाम वल्लभी था।

वीर निर्वाण संवत् ९८०-९९३ तदनुसार ईस्वी सन् ५१०-५२३ में देवर्द्धिक्षमाश्रमण के नेतृत्व में वल्लभीपुर में श्वेताम्बर साधुओं का संघ एकत्रित हुआ और बारह वर्षीय दुष्काल के कारण अस्त-व्यस्त बने हुए आगमों को व्यवस्थित किया। अब तक आगमों की मौखिक परम्परा चली आती थी परन्तु क्रमशः स्मृति-मान्द्य आदि का विचार कर संघ ने आगमों को लिपिबद्ध किये। इस प्रकार गुजरात की भूमि में ही पवित्र जैनागम पुस्तकारूढ़ हुए। इससे यह प्रमाणित होता है कि उस काल में भी गुजरात की भूमि में जैनों का अत्यधिक प्रभाव था।

गुजरात में विविध वंश के राजा जैनधर्म के छत्रधर हो गये हैं। चावड़ा वंश के महापराक्रमी राजा वनराज (७२०-७८० ई० सन्) जैन धर्मानुयायी थे। बाल्यावस्था में जैनसाधु शीलगुणसूरी ने इसे आश्रय देकर पालन-पोषण करवाया था। इन सूरी के प्रभाव से वनराज जैन बना था। जब वनराज ने वि० सं० ८०२ में अणहिल्लपुर पाटण बसाया तब जैन मंत्रों से विधिविधान किया गया। इसके पहले पंचासर में उसकी राजधानी थी। यहीं शील गुणसूरि ने (चैत्यवासी) वनराज का अभिषेक किया था। वनराज ने पंचासर में पार्श्वनाथ का मंदिर बनवया। वनराज ने अपने प्रधान मंत्री का पद चांपा नाम के जैन-वणिक् को दिया था और उसने पावागढ़ के पास चांपानेर नगर बसाया। वनराज के राजतिलक करने वाली श्री देवी भी जैन थी। वनराज ने श्रीमालपुर से नीना सेठ को पाटण में लाकर उसके पुत्र लहिर नामक श्रावक को दण्डनायक (सेनापति) बनया था। उसके दूसरे मंत्री जांब भी श्रीमाली जैन थे। दण्डनायक लहिर वनराज के बाद होने वाले तीन राजाओं के समय तक दण्डनायक रहा। इसका पुत्र (परम्परा में: ?) वीर हुआ जिसका पुत्र विमल मंत्री हुआ जिसने आबू पर विमल वसही का निर्माण करवाया। चावड़ा वंशी राजाओं ने जैनधर्म को विकासित किया

वनराज चावड़ा

जैनधर्म को प्रधानरूप से अपनानेवाले और प्रधानता देनेवाले गुर्जरनरेश तो चौलुक्य (सोलंकी) वंशी हुए । इस वंश की स्थापना करनेवाला राजा मूलराज (९६१–९९६) मूलतः शैव

सोलंकी वंश के राजा

धर्मानुयायी था परन्तु उसने भी जैनमंदिर बनवाया था। मूलराज के पुत्र चामुण्डराज ने श्री वीरगणि नाम के साधु के आचार्यपद महोत्सव अतिआडम्बर और धूमधाम से किया था। इस वंश में भीमदेव, कर्ण, सिद्धराज, जयसिंह, कुमारपाल आदि राजा हुए। सिद्धराज, जयसिंह और कुमारपाल के समय में गुजरात उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरुढ हुआ।

भीमदेव प्रथम (१०२२–१०६४) का विश्वासपात्र दण्डनायक विमल मंत्री था। विमल मंत्री के पूर्वज महामात्य नीनु, तत्पुत्र लहिर, तत्पुत्र वीर थे । वीर के दो पुत्र महामात्य नेढ और

विमल मंत्री:—

विमल। सोलंकीवंश के राजाओं के ये वहुधा महामात्य होते आये हैं । विमलमंत्री श्रीमाल कुल के पोरवाड़ (प्राग्वाट) जाति के जैन वाणिक् थे। यह बड़े वीर योद्धा थे । उस समय आबू का राज्य धंधुक (धंधुराज) करता था। वह भीमदेव का सामन्त था। भीमदेव और धंधुक के बीच वैमनस्य होने से वह परमार राजा भोज के वहाँ चला गया। अतः भीमदेव ने विमल को आबू का दण्डाधिपति बनाया। वीमलमंत्री ने विक्रम संवत् १०८८ (ई० सं० १०३२) में आबू पर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। यह 'विमल वसही' के नाम से अपनी अद्भुत शिल्पकला के लिए विश्वविख्यात है । सूक्ष्म पच्चीकारी की दृष्टि से संसार भर में इसके समान और कोई कृति नहीं है। यह अपनी कारीगरी के कारण विश्वभर के कलाप्रेमियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। इसकी प्रशंसा करते हुए जेम्स टॉड ने लिखा है कि "इससे बढ़कर भारत भर में कोई मन्दिर नहीं है । ताजमहल के सिवाय कोई भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता है।" इस भव्यकृति के कारण विमलमंत्री सदा अमर रहेंगे।

'सिद्धराज' की उपाधि धारण करनेवाला महाराजा जयसिंह चौलुक्य

वंश का प्रतापी राजा हुआ है। इसका राज्यकाल विक्रम सं० ११५० से ११९९ तक है। इसके राज्यकाल में गुजरात का वैभव अपनी सर्वोच्च चोटी पर पहुँचा था। उसने अपने पराक्रम के कारण बर्बरक को जीतकर सिद्धराज की उपाधि प्राप्त की थी। उसने मालवा पर आक्रमण किया। बारह वर्ष तक लड़ाई चलती रही। अन्ततः मालवा गुजरात के अन्तर्गत हुआ। इसी तरह मेवाड़ के प्रसिद्ध चित्तौड़-गढ़ का किला तथा आसपास का प्रदेश, वांगड़ देश (बांसवाडा-डूंगरपुर) सोरठ, महोबा तथा अजमेर आदि प्रदेशों पर भी विजय प्राप्त की थी।

सिद्धराज जयसिंह

सिद्धराज बहुत लोकप्रिय, न्यायी, विद्यारसिक और जैनों का अत्यन्त सन्मान करनेवाला राजा था। कलिकालसर्वज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य का यह प्रच्छन्न शिष्य था ऐसा कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैसे यह राजा प्रकट रूपसे अन्ततक शैव धर्मावलम्बी रहा परन्तु जैनाचार्यों के प्रति इसका बहुत ही अधिक सन्मान था। मलधारी अभयदेवसूरि के उपदेश से सिद्धराज ने अपने समस्त राज्य में पर्युषण तथा एकादशी आदि दिनों में अमारि-घोष करवाया था। मलधारी अभयदेव ने अपने अन्तिम समय में ४७ दिन का अनशन किया तब सिद्धराज कई बार उनके दर्शन के लिए जाता था। वह धर्मकथा सुनने और उनसे वार्तालाप करने मुनि के उपाश्रय में आया करता था। श्री चन्द्रसूरि ने अपनी मुनि सुव्रत चरित्र-प्रशस्ति में यह भी लिखा है कि सिद्धराज ने अभयदेवसूरि के शिष्य हेमचन्द्रसूरि (हेमचन्द्राचार्य से भिन्न) के कहने से सारे राज्य के जैनमन्दिरों पर कनकमय कलश चढ़ाये तथा धंधुका, साचोर आदि स्थानों में अन्यतीर्थियों की तरफ से जिनशासन को होने वाली बाधाओं का निवारण करवाया।

सिद्धराज ने जैनाचार्यों के प्रभाव से प्रभावित होकर कतिपय भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। सिद्धपुर (सं० ११५२ में) बसाने के बाद वहाँ उसने सुविधिनाथ तीर्थङ्कर का मंदिर तथा किसी २ के मत से महावीर जिनमन्दिर बनवाया। वहाँ चार जिनप्रतिमायुक्त सिद्धपुरविहार और पाटन में राजविहार कराया।

सिद्धराज की प्रेरणा से आचार्य हेमचन्द्र ने अपना प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ लिखा जिसे उन्होंने "सिद्ध हैमव्याकरण" नाम दिया। जब यह सवा-लाख श्लोकप्रमाण पञ्चाङ्गपूर्ण व्याकरण ग्रन्थ तय्यार हो गया तो इसे राजा की सवारी के हाथी पर रखकर छत्र और चँवर के साथ राजा की सभा में ले जाया गया। विद्वानों के पास से उसका पठन कराकर उसे राजकीय सरस्वतीकोष में आदर पूर्वक स्थापित किया गया। सिद्धराज के समय साहित्य श्री खूब की समृद्धि हुई।

सिद्धराज के मंत्री अधिकांश जैन ही थे। दण्डनायक के पद को भी जैनवणिक् ही सुशोभित करते थे। कर्णदेव के समय से जैनमहामात्य मुंजाल मंत्री का कुशलता पूर्वक कार्य करते थे। यह मंत्री गुजरात के चाणक्य कहलाये।

मुंजाल के अतिरिक्त शान्तु, उदयन, अशुक, वाग्भट्ट, आनन्द और पृथ्वीपाल, सिद्धपाल के जैनमहामंत्री थे। सिद्धराज ने वनराज के श्रीमाली मंत्री जाँब के वंशज सज्जन को सौराष्ट्र का दण्डाधिप (जिलाधीश) बनाया था। इससे अपनी कुशलता के द्वारा सोरठ सूबे की आमदनी व्यय करके गिरनार के जीर्ण-शीर्ण काष्ठमय मन्दिर का उद्धारकर रमणीय नयामन्दिर बनवा दिया था। सिद्धराज को गिरनार पर ले गया था और उसे कुशलता से प्रसन्नकर जीर्णोद्धार में खर्च की हुई रकम की अनुमति लेली। महामंत्री आशुक की प्रेरणा से जयसिंह ने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की और उसकी पूजा के लिए बारह गाँवों की वृत्ति प्रदान की। इसके बाद उसने गिरनार के नेमिजिनेश्वर की यात्रा की थी। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि सिद्धराज की सभा में सं० ११८१ में श्री वादिदेवसूरि (श्वेताम्बर आचार्य) और कुमुदचन्द्र (दिगम्बराचार्य) में शास्त्रार्थ हुआ था। उसमें वादि देवसूरि की विजय हुई थी। सिद्धराज ने देवसूरि को जो जयपत्र और तुष्टिदान के रूप में एक लाख स्वर्ण मोहर देना चाहा परन्तु जैनसाधु के आचार के अनुसार अस्वीकार्य होने से आंशुक महामात्य की सम्मति से सं० ११८३ में सिद्धराज ने उस में से जिन-प्रासाद बंधवाया तथा वैशाख शुक्ला १२ को उसमें ऋषभदेव की प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

कुमारपाल एक आदर्श जैन नृपति था। इसका जन्म विक्रम संवत् ११४९ में हुआ था। चौलुक्य वंश के राजा भीमदेव के एक पुत्र क्षेमराज, तत्पुत्र देवप्रसाद, तत्पुत्र त्रिभुवनपाल और तत्पुत्र परमार्हत नरेश कुमार कुमारपाल हुआ। सिद्धराज जयसिंह के न चाहने पर भी भाग्य और पुण्य की प्रबलता तथा आचार्य हेमचन्द्र और मंत्री उदयन * की सहायता से सब विघ्न-बाधाओं को पार कर वि. सं० ११७७ में यह राजासिंहासन पर आरूढ़ हुआ। राज्याभिषिक्त होने के पश्चात् दस वर्ष तक राज्य की सुव्यवस्था करने, उसकी सीमा बढ़ाने और दिग्विजय कर बड़े २ राजाओं को अपने आज्ञानुवर्त्ती बनाने में यह लगा रहा। वह अपने समय का अद्वितीय विजेता और वीरराजा था। उसने अपने राज्य का खूब विस्तार कर लिया था। श्री हेमचन्द्राचार्य ने महावीर चरित में बताया है कि उसकी आज्ञा का पालन उत्तर दिशा में तुर्किस्तान, पूर्व में गंगानदी, दक्षिण में विन्ध्याचल और पश्चिम में समुद्र पर्यन्त के देशों में होता था।

कर्नल टॉड साहब को चित्तौड़ के किल्ले में राणा लक्ष्मणसिंह के मन्दिर में संवत् १२०७ का एक शिलालेख मिला था जिसमें कुमारपाल के लिए लिखा था कि "महाराजा कुमारपाल ने अपने प्रबल पराक्रम से सब शत्रुओं का दलन करदिया। उसकी आज्ञा को सब देशों ने मस्तक पर चढ़ाई। उसने शाकंभरी (साँभर) के राजा को अपने चरणों में झुकाया था। उसने खुद शस्त्र धारण कर सवालक्ष (देश) पर्यन्त चढ़ाई कर सब सरदारों को अपने वश में किया था। सालपुर (पंजाब) तक को उसने अपने अधीन किया था।" उसके सैन्य ने कोंकण के सिल्हार वंश के राजा मल्लिकार्जुन को भी जीता था। उक्त सब प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि कुमारपाल का राज्य कितना विस्तृत था। भारतवर्ष में इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने वाले राजा बहुत कम ही हुए हैं।

कुमारपाल पहले तो शैवधर्मानुयायी था परन्तु आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से जैनधर्म के प्रति उसकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। अन्ततः

* उदयन— मूलतः मारवाड़ निवासी श्रीमाल गौत्रीय जैन थे।

संवत् १२१६ के मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को प्रकट रूप से जैनधर्म की गृहस्थ-दीक्षा स्वीकार की। उसने अपने राज्य में दया का व्यापक प्रचार किया।

द्वयाश्रय

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने द्वयाश्रय महाकाव्य में उल्लेख किया है कि "राजा कुमारपाल अपनी प्रजा के सुख दुःख जानने के लिये वेश बदल कर नगर में पर्यटन करता था। एक दिन उसने एक मनुष्य को ५-७ बकरे कसाई के यहाँ ले जाते हुए देखा। इससे उनके दिल में विचार आया कि मैं प्रजापति कहलाता हूँ, यदि मैं इसके लिये कुछ न करूँ तो मुझे धिक्कार है"। उसने राजभवन आकर आज्ञापत्र निकाला—"जो झूँठी प्रतिज्ञा करेगा उसको दंड मिलेगा, जो परस्त्री लम्पट होगा उसे विशेष दंड मिलेगा और जो जीव हिंसा करेगा उसे सबसे अधिक कठोर दंड मिलेगा"। इस आज्ञापत्र को उसने अपने सारे राज्य में पालन करने के लिए भिजवाया।

प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदी ने लिखा है कि "कुमारपाल की अमारिघोषणा से यज्ञयाग में भी मांस बलिदान रुक गया और अन्न का हवन प्रारम्भ हो गया। लोगों के जीवन में दया का विकास हुआ और मांस भोजन इतना निषिद्ध हो गया कि सारे हिन्दुस्थान में एक या दूसरी रीति से केवल थोड़े से हिन्दु ही मांस का प्रयोग करते हैं किन्तु गुजरात में तो उसकी गंध भी सहन नहीं की जा सकती है।

कुमारपाल का जीवन, जैनधर्म स्वीकार करने के बाद धर्मपरायण जीवन हो गया था। अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में उसने जो बत्तीस दाँतो के द्वारा मांसभक्षण किया था उसके प्रायश्चित्त के रूप में उसने बत्तीस भव्य जिनमंदिर बनवाकर पाप-शोधन किया। उसने साथ बार शत्रुंजय-गिरनार आदि जैनतीर्थों की यात्रा की थी। जहाँ जीर्ण मन्दिर थे उनका उद्धार कराया। कहा जाता है कि १६०० जीर्णोद्धार और १४४४ नये जिनमन्दिरों पर कलश चढ़ाये थे।

उसने सबसे प्रथम पाटन में 'कुमार विहार' नामक २४ जिन का मन्दिर बँधवाया। तदनन्तर अपने पिता त्रिभुवनपाल के स्मरणार्थ 'त्रिभुवन विहार'

नामक ७२ जिनालयवाला विशाल मन्दिर बनवाया। इनके अतिरिक्त उसने सैकड़ों विहार और मन्दिर बनवाये जिनमें तारंगा पर्वत पर बँधायाहुआ अजितनाथ जी का मंदिर विशेषतः उल्लेखनीय है। आबू पर भी उसने महावीर का मंदिर बनवाया था। वह प्रतिदिन श्रद्धालु श्रावक की तरह जिन-पूजा करता था और अष्टान्हिका महोत्सव धूमधाम से मनाता था।

कुमारपाल अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। उसने अनाथ और असमर्थ व्यक्तियों के लिये एक सत्रागार बंधवाया था जहाँ सबके भोजन वस्त्रादि की समुचित व्यवस्था होती थी। एक पौषधशाला बनावाई थी, साहित्य की उन्नति के लिये कुमारपाल ने विपुल द्रव्यराशि व्यय से इक्कीस ज्ञान-भाण्डारों की स्थापना की और राजकीय पुस्तकालय के लिये जैन आगम-ग्रन्थों और हेमचन्द्र विरचित योग शास्त्र-वीतराग स्तव आदि की स्वर्णाक्षरों में प्रतिलिपी करवाई थी। ऐसा कुमारपाल प्रबन्ध में उल्लेख है।

तात्पर्य यह है कि कुमारपाल का जीवन एक आदर्श राजा का जीवन था। टॉड साहब ने लिखा है—"कुमारपाल ने जैनधर्म का अति उत्कृष्टता से पालन किया और समस्त गुजरात को उसने एक आदर्श जैनराज्य बनाया।" संवत् १२३० में ८० वर्ष की अवस्था में परमार्हत कुमारपाल का स्वर्गवास हो गया। कुमारपाल को परमार्हत बनाने का श्रेय कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य को है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि कुमारपाल ने उदयन को महामात्य का पद दिया। उदयन का ज्येष्ठपुत्र वाग्भट (बाहड़) योद्धा भी था और साहित्य निपुण भी। उदयन के बाद वाग्भट को ही कुमारपाल ने महामात्य बनाया था। इस वाग्भट्ट ने अपने पिता उदयन की इच्छानुसार शत्रुंजय के मुख्य काष्ठमय मन्दिर को पक्का पत्थर का बनवाया और पाटन से संघ ले जाकर आचार्य हेमचन्द्र के हाथ से प्रतिष्ठा कराई। इसमें एक करोड़ साठ लाख रुपये खर्च हुए। उदयन के दूसरे पुत्र दण्डनायक अम्बड़ ने भरौंच में शकुनिकाविहार (मुनि सुव्रतस्वामी का चैत्य) नामक प्राचीन तीर्थ का उद्धार कर भव्य जैनमन्दिर बनवाया।

श्रीमाली जैन राणिग के पुत्र आम्रदेव (अंबड़, आम्रभट्ट) को कुमारपाल ने सौराष्ट्र का दण्डनायक बनाया था। इसने सं० १२२२ में गिरनार पर चढ़ने के लिए सोपान (पगथिये) बनवाये।

इस प्रकार कुमारपाल के समय में जैनधर्म की चतुर्मुखी उन्नति हुई। जैननरेशों, जैनमंत्रियों और जैनयोद्धाओं ने भारत के भव्य इतिहास का निर्माण किया है, यह उक्त विवरण से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है।

सोलङ्की कुल की एक शाखा 'बाघेला' थी। इसका प्रथम राजा अर्णोराज हुआ। लवणप्रसाद, वीरधवल, वीसलदेव, अर्जुनदेव, सारंगदेव और कर्णदेव इस वंश के राजा थे। इनकी जैनधर्म से सहानुभूति थी। इनमें वीरधवल बड़ा पराक्रमी राजा था। यह धोलका का राजा था। वीरधवल और वीसलदेव मालवा के राजा मुंज और भोज की तरह अपनी सभा में पंडितों को रखते थे। इन्हीं वीरधवल के मंत्री वस्तुपाल थे। तेजपाल इनके कनिष्ठ भ्राता थे। इस भ्रातृयुगल की कीर्तिकौमुदी से गुजरात का और साथ ही साथ जैनधर्म का मुख समुज्ज्वल हुआ है। गुजरात के ये दो वणिक् बन्धु अपने सद्गुणों और सत्कृत्यों से जितने यशोभागी हुए उतना यश प्राप्तकरनेवाले पुरुष भारत के ऐतिहासिक मध्यकाल में बहुत ही विरल दृष्टिगोचर होते हैं।

महामंत्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल

इनके पिता का नाम अश्वराज और माता का नाम कुमारदेवी* था। अश्वराज, सिद्धराज जयसिंह के मंत्री सोम के पुत्र थे। कुमारदेवी

*ऐसा कहा जाता है कि कुमारदेवी आभु मंत्री की बालविधवा कन्या थी। किसी समय पाटन में भट्टारक हरिभद्र सूरि के व्याख्यान में कुमारदेवी आई। उसके सामने आचार्य बारबार देखने लगे। इससे मंत्री अश्वराज का ध्यान उसकी ओर गया। मंत्री ने एकान्त में आचार्य को उस स्त्री के सामने देखने का कारण आग्रह पूर्वक पूछा। तब आचार्य ने कहा कि इष्टदेवता ने हमें कहा कि इस स्त्री की कुक्षि से सूर्य-चन्द्र के समान दो तेजस्वी सन्तान शासन प्रभावक होने वाली हैं। इससे मैं तत्सम्बन्धी सामुद्रिक लक्षण देख रहा था। इस तत्त्व को जानकर दूरदर्शी मंत्री अश्वराज ने शासन हित के लिए तत्कालीन समाज-नियम के विरुद्ध भी किसी तरह उसके साथ विवाह कर लिया और उससे 'वस्तुपाल' 'तेजपाल' का जन्म हुआ समकालीन किसी भी ग्रन्थ में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

आभु नाम के मंत्री की कन्या थी। अश्वराज और कुमारदेवी ने ज्योतिरिन्द्र के समान इन तेजस्वी वीर नररत्नों को जन्म देकर जैनधर्म की महती प्रभावना की। इन दो पोरवाड़ जाति के जैन वणिकों ने अपने पुरुषार्थ के द्वारा अतिविपुल द्रव्यराशि उपार्जित की और पानी की तरह उसे शुभ कार्यों में लगा दी।

वस्तुपाल और तेजपाल दोनों जहाँ महामात्य, सेनापति, अर्थव्यवस्थापक थे वहीं प्रचण्ड योद्धा, महादानी और धार्मिक भी थे। वस्तुपाल में यह और भी विशेषता थी कि वह स्वयं कवि, लेखक और विद्वान् था, तथा विद्वानों को मुंज और भोजराजा की तरह आश्रय देनेवाला भी था।

'वस्तुपाल' 'तेजपाल' की राजनीति कुशलता के कारण वीरधवल के राज्य का अभ्युदय हुआ। उसके राज्य का सारा ऐश्वर्य महामात्य वस्तुपाल के पास था और राज्य का समस्त मुद्रा-व्यापार तेजपाल के हाथ में था। इनके मंत्रित्वकाल में इन्होंने लाटदेश के अधीन रहे हुए खम्भात बन्दर को स्वाधीन बनाया।

दक्षिण के राजा सिंह ने वीरधवल के राज्य पर आक्रमण करने के लिये सेना भेजी वह भँरोच तक आ पहुँची, अतः उसका सामना करने के लिये लागवयप्रसाद और वीरधवल दोनों पिता-पुत्र सेना लेकर पहुँचे। उधर वे संग्राम में लगे हुए थे इधर भडोंच के राजा शंख ने खम्भात दूत भेजकर वस्तुपाल को कहलाया कि 'वीरधवल की इस लड़ाई में विजय होना कठिन है। खम्भात तो हमारी कुलक्रमागत सम्पत्ति है अतः यह हमें सौंपकर शेषपर तुम स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करो। वीरधवल ने तो तुम्हें एक शहर दिया जबकि मैं तुम्हें देश का प्रधान बना दूँगा। मेरे पराक्रम के सामने तुम वणिक् टिक भी नहीं सकोगे"। वस्तुपाल ने उसके संदेश का मुँहतोड़ जवाब देते हुए यह भी कहलाया कि—मैं वणिक् हूँ परन्तु तलवार रूपी तराजू से रण रूपी बाजार में कैसे काम लेना यह मैं भलीभांति जानता हूँ। शत्रुओं के मस्तकरूपी माल खरीदता हूँ और बदले में उन्हें स्वर्ग देता हूँ। जो शंख सिन्धुराज का सच्चा पुत्र हो तो उसे रणमैदान में आने के लिये कहना"। इसके बाद दोनों में प्रचण्ड युद्ध हुआ। स्वयं वस्तुपाल शस्त्रधारण कर रणमैदान में गया। शंख वस्तुपाल को अजेय मानकर युद्ध के मैदान से भाग गया।

तेजपाल ने महीतट के घुघुल नामक राजा के साथ युद्ध करके उसे वीरधवल की आज्ञा में उपस्थित किया था।

कच्छ के भद्रेश्वर का राजा भीमसिंह जब आक्रमण करने आया तब इन दोनों भाइयों ने उसके साथ डटकर लोहा लिया। अन्ततः सन्धि हो गई। इस प्रकार इन महामात्यों ने यह सिद्ध करदिया कि "क्षत्रिय ही युद्ध कर सकते हैं वणिक् नहीं यह केवल भ्रम है"।

ये दोनों बन्धु विपुल धनराशि के स्वामी थे। उन्होंने इस द्रव्यराशि को मुक्तहस्त से धार्मिक और सार्वजनिक सुकृत्यों में लगाया। आचार्य जिनविजय जी ने लिखा है कि:—

"पूर्वकालीन जैन जितने धर्मप्रिय थे उतने ह राष्ट्रभक्त भी थे और और जितने राष्ट्रभक्त थे उतने ही प्रजावत्सल भी थे। उनकी विपुल लक्ष्मी का लाभ धर्म, राष्ट्र और प्रजागण समान रूप से लेते थे। वे साधर्मिक वात्सल्य भी करते थे और प्रजा को भी प्रीतिभोज देते थे। वे जैन मन्दिर भी बंधवाते थे और सार्वजनिक स्थान भी। वे जैनमुनियों का जिस भावना से सम्मानित करते थे उसी भावना से ब्राह्मण विद्वानों का भी आदर करते थे। शत्रुंजय और गिरनार की यात्रा के साथ वे सोमनाथ की यात्रा भी करते थे और द्वारका भी जाते ।"

मध्ययुग के इतिहासकाल में जितने भी समर्थ श्रावक हो गये हैं उन सब में वस्तुपाल सबसे महान् था। उसने जैनधर्मस्थानों के अलावा लाखों रूपये जैनेतर धर्मस्थानों के लिये खर्च किये थे। सोमेश्वर, भृगुक्षेत्र; शुक्लतीर्थ, वैद्यनाथ, द्वारिका, काशी, विश्वनाथ, प्रयाग और गोदावरी आदि अनेक हिन्दू तीर्थस्थानों की पूजा आदि के लिये लाखों का दान किया था। सैकड़ों ब्रह्मशालाएँ और ब्रह्मपुरियाँ बनवाई थीं, अनेक सरोवरों और विद्यामठों का का निर्माण किया था, अनेक ग्रामों के चारों ओर चारदिवारी बनवाई थी, सैकड़ों शिवालयों का निर्माण किया था। सहस्त्रों वेदपाठी ब्राह्मणों को वार्षिक अजीविका बाँध दी थी, मुसलमानों के लिये अनेक मस्जिदें भी बनवादी थीं। उसने हजारोंरूपये खर्च करके गुजरात की शिल्पकला के सुन्दरतम नमूने के रूप में एक उत्कृष्ट खुदाई के काम का आरसपत्थर का

तोरण बनवाकर इस्लाम के पाक-धाम मक्का शरीफ को अर्पण किया था। अपने धर्म में अत्यन्त चुस्त होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति ऐसी उदारता बताने वाला, अन्य धर्मस्थानों के लिए इस ढंग से लक्ष्मी का उपयोग करने वाला उसके समान अन्य कोई पुरुष भारतवर्ष के इतिहास में मुझे तो दृष्टिगोचर नहीं होता। जैनधर्म ने गुजरात को वस्तुपाल जैसा असाधारण सव-धर्मसमदर्शी और महादानी महामात्य का अनुपम पुरस्कार दिया है"

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण में श्री शैल (श्री पर्वत काँची के पास) पश्चिम में प्रभास, उत्तर में केदार और पूर्व में काशी तक में कोई भी देवालय कोई भी धर्म या विद्या की संस्था ऐसी न थी जिसे वस्तुपाल-तेजपाल की बादशाही सहायता न मिलती हो। सोमेश्वर महादेव के मन्दिर में प्रतिवर्ष दसलाख और काशी के विश्वनाथ के मन्दिर में प्रतिवर्ष एक लाख की भेंट चढ़ाई जाती थी। हिन्दुस्थान में पवित्र गिना जानेवाला और जाननेयोग्य ऐसा कोई स्थान या संस्था न थी जहाँ वस्तुपाल-तेजपाल की सहायता न पहुँची हो। इससे इन महामात्यों की दानवीरता का परिचय मिलता है।

तीर्थकल्प में जिनप्रभसूरि ने वस्तुपाल संकीर्तन में बताया कि-सवा लाख जिनबिम्ब कराने में शत्रुंजय तीर्थ में १८ क्रोड़ छियानवे लाख, गिरनार तीर्थ में १२ क्रोड़ ८० लाख, आबू की लूणवसहि में १२ क्रोड़ ५३ लाख खर्च किये। उसने ६८४ पौषध शाला, ५०० दन्तमय सिंहासन, ५०५ समवसरण, ७०० ब्राह्मणशाला, ७०० सत्रागार (दानशाला), ७०० मठ बनवाये। ३००२ शिवायतन, १३०४ शिखर-बंध जैन प्रासाद, २३०० जीर्ण चैत्योद्धार, किये। अठारह क्रोड़ के व्यय से तीन बड़े २ सरस्वती भण्डार स्थापित किये। ५०० ब्राह्मणों का वेदपाठ सदा चलता रहता था। वर्ष में तीनबार वह संघपूजा करता था। उसके यहाँ डेढ हजार तटिक कार्पटिक भोजन करते थे। उसने तेरह तीर्थयात्राएँ संघपति बनकर की थीं। उसने ८४ तालाब बंधवाये, ४६४ से अधिक कुएँ बावडियाँ, ३२ पाषाणमय किले, २४ दन्तमय जैनरथ, २००० साग के रथ कराये। ६४ मसजिद बंधवायीं। सब मिलकर ३०० क्रोड़, १४ लाख १८ हजार आठ सौ द्रव्य व्यय किये।

सम्भव है यह कुछ काव्यमय अलंकारिक वर्णन हो परन्तु इसपर से उसके महादानी होने की कल्पना सहज ही दिमाग में आसकती है।

लूणवसहि

तेजपाल के पुत्र लूणसिंह और स्त्री अनुपमा देवी के स्मरणार्थ आबू के पहाड़ पर देलवाड़ा ग्राम में विमलवसहि के पास उसके ही समान भव्य, कलामय और विस्मय उत्पन्न करने वाला लूणवसहि नामक नेमिनाथ भगवान् का सुन्दर मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर के गूढमण्डप के मुख्य द्वार के बाहर नौ चौकियों में दरवाजे के दोनों तरफ उत्तम पच्चीकारी के कलात्मक दो गवाक्ष (गोखड़े) अपनी दूसरी स्त्री सुहडा देवी के स्मरणार्थ बनवाये। तथा अपने अन्य कुटुम्बी जनों के स्मरणार्थ वहाँ अनेक छोटे-बड़े मन्दिर आदि का निर्माण किया। वस्तुपाल के लीलादेवी और वेजलदेवी का नाम की दो पत्नियाँ थी। अपने सर्व कुटुम्ब की स्मृति के रूप में इन युगल-बन्धुओं ने करोड़ों रुपये खर्च करके आबू के श्रेष्ठतम मन्दिरों का निर्माण कराकर शिल्प-कला को नवजीवन प्रदान किया। इन मन्दिरों की अद्भुत रचना देख देख कर देश-विदेश के लोग चकित से रह जाते हैं। ये भव्य मन्दिर इनके निर्माताओं के अपरिमित ऐश्वर्य महान् औदार्य विराट धर्मश्रद्धा एवं कलाप्रेम के अमर प्रतीक हैं।

वस्तुपाल का- विद्या मण्डलः—

लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति का एक साथ पाया जाना सचमुच ही आश्चर्य का विषय है। इनका एक व्यक्ति में पायाजाना अतिदुर्लभ है। तदपि वस्तुपाल में इन तीनों का अद्भुत सामञ्जस्य था। वे वीर-योद्धा निपुण राजनीतिज्ञ, और अपरिमित लक्ष्मी के स्वामी होने के साथ-साथ परम विद्वान् और महाकवि थे। इनका बनाया हुआ नरनारायणानन्द महाकव्य महाकवि माघ के शिशुपालवध से समानता करने वाला है। सूक्तियों की रचना में इन्हें गजब की शक्ति और प्रतिभा प्राप्त थी। एक समकालीन कवि ने इन्हें 'कुर्चालसरस्वती' (दाढ़ीवाली सरस्वती) की उपमा प्रदान की है। एक दूसरे कवि ने उन्हें 'सरस्वती कण्ठाभरण' की पदवी प्रदान की है। "वाग्देवीसूनु" और "सरस्वतीपुत्र" ये भी इनके उपनाम रहे।

वस्तुपाल स्वयं महाकवि ही न थे अपितु कवियों और विद्वानों के

परम आश्रयदाता भी थे। कवियों के आश्रयदाता होने से ये 'लघुभोज' कहलाते थे। इन्होंने एक विद्यामंडल बनाया था जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक, मदन, यशोवीर और अरिसिंह आदि थे। इनके निकट सम्पर्क में आये हुए कवि और पंडितों में अमरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, नरचन्द्र सूरि नरेन्द्रप्रभसूरि बालचन्द्र सूरि, जयसिंह सूरि तथा माणिक्यचन्द्र आदि जैन साधुओं के नाम गिनाये जा सकते हैं। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में गुजराज में जो मूल्यवान् संस्कृतसाहित्य रचा गया है वह मुख्य रूप से वस्तुपाल के विद्यामण्डल का और वस्तुपाल के स्वयं के आश्रय और उत्तेजना का परिणाम है। साहित्य को समृद्ध बनाने और कवियों को पुरस्कृत करने में वस्तुपाल ने लाखों रुपयों का सदुपयोग किया था। अठारह क्रोड़ के द्रव्य से उन्होंने भडौंच, खम्भात और पाटन में ज्ञान-भण्डार स्थापित किये थे। इन प्रवृत्तियों से वस्तुपाल की विद्याप्रियता, साहित्य रसिकता और सरस्वती की सच्ची आराधना का परिचय मिलता है।

वस्तुतः वस्तुपाल-तेजपाल ने लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति के सामञ्जस्य से जैनधर्म और गुजरात को अपूर्व गौरव प्रदान किया है। ऐसे नर वीरों को जन्म देकर जैनधर्म ने संसार की बहुमूल्य सेवा की है। इन नर वीरों के वर्णन से स्पष्ट हो गया है कि गुजरात में जैनधर्म को कितना गौरव प्राप्त हुआ है।

दक्षिणभारत के जैनराजा और जैनधर्म

विन्ध्याचल पर्वत से उस ओर का प्रदेश दक्षिणभारत ही समझा जाता है वैसे ठेट दक्षिणभारत तो चोल, पाण्ड्य, चेर आदि देश ही कहलाते हैं। दक्षिणभारत में जैनधर्म का प्रचार इतिहास काल के प्रारम्भ होने से बहुत प्राचीनकाल से ही हो चुका था। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली को दक्षिणभारत का राज्य मिला था। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। सम्राट् भरत उनके ज्येष्ठभ्राता थे। बाहुबली ने भरत की आज्ञा में रहना अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझा। दोनों भाइयों ने

सम्भव है यह कुछ काव्यमय अलंकारिक वर्णन हो परन्तु इसपर से उसके महादानी होने की कल्पना सहज ही दिमाग में आसकती है।

लूणवसहि

तेजपाल के पुत्र लूणसिंह और स्त्री अनुपमा देवी के स्मरणार्थ आबू के पहाड़ पर देलवाड़ा ग्राम में विमलवसहि के पास उसके ही समान भव्य, कलामय और विस्मय उत्पन्न करने वाला लूणवसहि नामक नेमिनाथ भगवान् का सुन्दर मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर के गूढमण्डप के मुख्य द्वार के बाहर नौ चौकियों में दरवाजे के दोनों तरफ उत्ताम पच्चीकारी के कलात्मक दो गवाक्ष (गोखड़े) अपनी दूसरी स्त्री सुहडा देवी के स्मरणार्थ बनवाये। तथा अपने अन्य कुटुम्बी जनों के स्मरणार्थ वहाँ अनेक छोटे-बड़े मन्दिर आदि का निर्माण किया। वस्तुपाल के लीलादेवी और वेजलदेवी का नाम की दो पत्नियाँ थी। अपने सर्व कुटुम्ब की स्मृति के रूप में इन युगल-बन्धुओं ने करोड़ों रूपये खर्च करके आबू के श्रेष्ठतम मन्दिरों का निर्माण कराकर शिल्प-कला को नवजीवन प्रदान किया। इन मन्दिरों की अद्भुत रचना देख देख कर देश-विदेश के लोग चकित से रह जाते हैं। ये भव्य मन्दिर इनके निर्माताओं के अपरिमित ऐश्वर्य महान् औदार्य विराट धर्मश्रद्धा एवं कलाप्रेम के अमर प्रतीक हैं।

लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति का एक साथ पाया जाना सचमुच ही आश्चर्य का विषय है। इनका एक व्यक्ति में पायाजाना अतिदुर्लभ है।

वस्तुपाल का-
विद्या मण्डलः—

तदपि वस्तुपाल में इन तीनों का अद्भुत सामञ्जस्य था। वे वीर-योद्धा निपुण राजनीतिज्ञ, और अपरिमित लक्ष्मी के स्वामी होने के साथ-साथ परम विद्वान् और महाकवि थे। इनका बनाया हुआ नरनारायणान्द महाकव्य महाकवि माघ के शिशुपालवध से समानता करने वाला है। सूक्तियों की रचना में इन्हें गजब की शक्ति और प्रतिभा प्राप्त थी। एक समकालीन कवि ने इन्हें 'कुर्चालसरस्वती' (दाढ़ीवाली सरस्वती) की उपमा प्रदान की है। एक दूसरे कवि ने उन्हें 'सरस्वती कण्ठाभरण' की पदवी प्रदान की है। "वाग्देवीसूनु" और "सरस्वतीपुत्र" ये भी इनके उपनाम रहे।

वस्तुपाल स्वयं महाकवि ही न थे अपितु कवियों और विद्वानों के

परम आश्रयदाता भी थे। कवियों के आश्रयदाता होने से ये 'लघुभोज' कहलाते थे। इन्होंने एक विद्यामंडल बनाया था जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक, मदन, यशोवीर और अरिसिंह आदि थे। इनके निकट सम्पर्क में आये हुए कवि और पंडितों में अमरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, नरचन्द्र सूरि नरेन्द्रप्रभसूरि बालचन्द्र सूरि, जयसिंह सूरि तथा माणक्यचन्द्र आदि जैन साधुओं के नाम गिनाये जा सकते हैं। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में गुजरात में जो मूल्यवान् संस्कृतसाहित्य रचा गया है वह मुख्य रूप से वस्तुपाल के विद्यामण्डल का और वस्तुपाल के स्वयं के आश्रय और उत्तेजना का परिणाम है। साहित्य को समृद्ध बनाने और कवियों को पुरस्कृत करने में वस्तुपाल ने लाखों रुपयों का सदुपयोग किया था। अठारह क्रोड़ के द्रव्य से उन्होंने भडौंच, खम्भात और पाटन में ज्ञान-भण्डार स्थापित किये थे। इन प्रवृत्तियों से वस्तुपाल की विद्याप्रियता, साहित्य रसिकता और सरस्वती की सच्ची आराधना का परिचय मिलता है।

वस्तुतः वस्तुपाल-तेजपाल ने लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति के सामञ्जस्य से जैनधर्म और गुजरात को अपूर्व गौरव प्रदान किया है। ऐसे नर वीरों को जन्म देकर जैनधर्म ने संसार की बहुमूल्य सेवा की है। इन नर वीरों के वर्णन से स्पष्ट हो गया है कि गुजरात में जैनधर्म को कितना गौरव प्राप्त हुआ है।

दक्षिणभारत के जैनराजा और जैनधर्म

विन्ध्याचल पर्वत से उस ओर का प्रदेश दक्षिणभारत ही समझा जाता है वैसे ठेट दक्षिणभारत तो चोल, पाड्य, चेर आदि देश ही कहलाते हैं। दक्षिणभारत में जैनधर्म का प्रचार इतिहास काल के प्रारम्भ होने से बहुत प्राचीनकाल से ही हो चुका था। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली को दक्षिणभारत का राज्य मिला था। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। सम्राट् भरत उनके ज्येष्ठभ्राता थे। बाहुबली ने भरत की आज्ञा में रहना अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझा। दोनों भाइयों ने

युद्ध की तय्यारियाँ कर लीं। मंत्रियों के परमार्थ से व्यर्थ संहार न हो अतः दोनों भाइयों का ही युद्ध नियत हुआ। दोनों अखाड़े में उतर पड़े। भरत बाहुबली को पराजित न कर सके अतः उन्होंने क्रोध में आकर बाहुबलि पर चक्र चलादिया लेकिन वह भी कामयाब न हुआ। भरत को सहसा विवेक की सुध आई। दोनों भाई गले मिले। बाहुबलि इस घटना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने राजपाट छोड़ दिया और आत्मसाधना के लिए वन में चले गये। इन्होंने आत्मविजय करके मोक्ष प्राप्त किया। इन बाहुबली की ध्यानमय दशा की ५७ फीट ऊँची भव्य मूर्त्ति श्रवणवेलगोला में अपूर्व छटा प्रदर्शित कर रही है। पुराने ग्रन्थों में और भी अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे दक्षिण भारत में जैनधर्म का अति प्राचीनकाल से प्रचार था, यह प्रमाणित होता है। पौराणिक बातों को छोड़कर ऐतिहासिक युग पर ही अब विचार करते हैं।

अब विद्वान लोग धीरे २ इस बात पर आ रहे हैं कि भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व भी जैनसंस्कृति का प्रचार था। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में उत्तरी भारत में भयंकर दुष्काल पड़ा तब भद्रबाहु स्वामी का अपने विशाल श्रमणसंघ के साथ दक्षिण भारत की ओर प्रयाण करना भारतीय इतिहास की एक प्रामाणिक घटना है। इस पर से यह प्रतीत होता है कि उनसे पहले भी दक्षिण भारत में जैनधर्म का अच्छा प्रचार था। जैनसंघ की इस दक्षिण यात्रा से वहाँ जैनधर्म को और भी अधिक फूलने-फलने का अवसर मिला।

दक्षिणभारत के मुख्य २ राजवंशों ने जैनधर्म को अपनाया था। गंग, राष्ट्रकूट, कदम्ब, पाण्ड्य, चोल, चेर, पल्लव, चौलुक्य, होय्सल, कलचूरी आदि राजवंश जैनधर्मावलम्बी या जैनधर्म के हितैषी रहे।

गंगवंश के राजाओं ने मैसूर में ईसा की दूसरी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक शासन किया। इस वंश की स्थापना जैनाचार्य श्री सिंहनन्दि की सहायता से हुई थी। इससे इस वंश के सब राजा जैनधर्मानुयायी ही हुए। इस वंश के प्रथम नरेश माधव कोंगणिवर्मा हुए। इनके समय में जैनधर्म ही राजधर्म था।

गंगवंशः—

इस वंश की स्थापना के सम्बन्ध में कहा जाता है कि-उज्जैन के राजमहीपाल ने सूर्यवंशी राजा पद्मनाभ को युद्ध में हराया। पद्मनाभ के दो पुत्र ददिग और माधव दक्षिण में चले गये। पेरूर में इन्होंने जैनाचार्य सिंहनन्दि के दर्शन किये। आचार्य ने इन्हें अपनी शरण में ले लिया। आचार्य की कृपा से ये राज्याधिकारी बन गये। आठवीं शताब्दी में यह राजवंश उन्नति के शिखर पर पहुँच गया।

इस वंश के प्रथम नरेश माधव के बाद ददिग का पुत्र किरियमाधव गादी पर बैठा और इसके बाद अनेक राजाओं ने राज्य किया। ये सब जैनधर्मानुयायी नरेश थे। इनमें मारसिंह राजा बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी हुआ। इसने राठौड़राजा कृष्णराज तृतीय के लिए उत्तर भारत के प्रदेश को जीता था इसलिए यह गूर्जरराज भी कहलाता था। किरातों, मथुरा के राजाओं, बनवासी के अधिकारी आदि को रणक्षेत्र में परास्त किया था। नीलाम्बर के राजाओं को नष्ट करने के कारण यह 'बोलम्बकुलान्तक' कहलाता था। रणवीर होने के साथ ही यह धर्मवीर भी था। इसने कई स्थानों पर मन्दिर बनवाये थे।

उक्त मारसिंह और रायमल्ल चतुर्थ के मंत्री और सेनापति समरधुरन्ध वीरमार्तण्ड, परमप्रतापी चामुण्डराय थे। इन्होंने जैनधर्म का खूब प्रभाव बढ़ाया। रणकौशल और राजनीति नैपुण्य के कारण ये मंत्री और सेनापति दोनों का कार्यभार सम्भालते थे।

चामुण्डराय

ये सिद्धान्तचक्रवर्त्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य और श्री अजितसेन स्वामी के शिष्य थे। ये शास्त्ररसिक थे। इन्होंने स्वयं ग्रन्थ की रचना की है। रण-व्यस्तता और राजनीति का दायित्व होते हुए भी ग्रन्थरचना के लिए समय निकालना सचमुच विलक्षण सद्गुण है। इनका सबसे श्रेष्ठतम यह कार्य जो इनकी कीर्तिगाथा को संसार में अमर बनाये हुए है—वह है श्रमणबेलगोला के विन्ध्यागिरि पर श्री गोमटेश्वर की विशाल मूर्त्ति की स्थापना। मूर्त्ति संसार की सर्वोत्कृष्ट मूर्त्ति मानी जाती है। इसकी ऊँचाई ५७ फीट की है। एक ही पत्थर से निर्मित इतनी विशाल और सुन्दर मूर्त्ति संसार में और कहीं नहीं है। (विशेष वर्णन कला और कलाधाम प्रकरण में किया जावेगा)

अपने दूत बादशाह ऑगस्टस के पास भेजे थे। उनके साथ
पाण्ड्यवंशः— एक जैन श्रमण भी यूनान गये थे। इस उल्लेख से तत्कालीन राजा का जैन और प्रभावशाली होना प्रकट है। पांड्य राजाओं की राजधानी मदुरा जैनियों का केन्द्र बन चुकी थी। तामिल ग्रन्थ नालिदियर के सम्बन्ध में यह कहाजाता है कि उत्तर भारत में दुष्काल पड़ने पर आठ हजार जैनसाधु पांड्य देश में आये थे। जब वे वापस जाने लगे तो पांड्य नरेश ने उन्हें वहीं रखना चाहा। फिर किसी समय उन्होंने पांड्य नरेश की राजधानी को छोड़ दिया। चलते समय प्रत्येक साधु ने एकएकताडपत्र पर एकएक पद्य लिख दिया। इन पद्यों के समुदाय से यह 'नालिदियर' ग्रन्थ बना। तामिल साहित्य में 'कुरल' नामक नीति ग्रन्थ सबसे बढ़कर समझा जाता है। यह तामिल वेद कहलाता है। यह अहिंसा सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है। इसके रचयिता कुन्दकुन्दाचार्य हैं। तामिल विद्वान् प्रो० ए० चक्रवर्त्ती का कहना है कि "तामिल भाषा के नैतिक साहित्य में जैनाचार्यों का प्रभाव विशेष रीति से द्योतित होता है। 'कुरल' और 'नालिदियर' नामक दोनों महाग्रन्थ उन जैनाचार्यों की कृति हैं जो तामिल में बस गए थे।" चतुर्थ पांड्यराज उग्रपेरुवलूटी (सन् १२८ से १४०) के राजदरबार में कुरल ग्रन्थ पढ़ा गया था। ईसा की पांचवीं शताब्दी तक पांड्यवंश के राजाओं के द्वारा जैनधर्म की उन्नति होती रही। परन्तु छठी और सातवीं शताब्दी में शैवों और वैष्णवों की वृद्धि से जैनधर्म को भारी धक्का लगा। पल्लव देश के महेन्द्रवर्मा नामक जैननरेश ने शैवधर्म स्वीकार कर लिया और सुन्दरपांड्य ने अपने धर्म परिवर्त्तन के साथ आठ हजार जैनों का वध कर डाला। इसके बाद १२५० में बारकुर नगर के जैनराजा भूत[illegible]। इसके बाद अन्य राजा भी जैन हुए जिनमें वीरपांड्य प्रसि[illegible] १४३१ [illegible] देव की विशालकाय मूर्त्ति कारकल में स्थ[illegible]।

पल्लव वं[illegible] काञ्चीपुर [illegible] थे
जैनों का केन्द्र [illegible] के राजा [illegible]
[illegible] चन्द्र.चा। [illegible]
पल्लव वंशः [illegible] जब [illegible]
[illegible] ८५. अ. [illegible]

प्रियता, और विद्या में श्रेष्ठ थी। इस वंश का महेन्द्रवर्मा राजा प्रसिद्ध हुआ। यह पहले कट्टर जैन था परन्तु बाद में शैव हो गया था।

कलचूरी:— सन् ११२६ से ११८६ तक दक्षिणभारत में इस वंश का प्रधान रहा है। इस वंश का विज्जलदेव नामक राजा प्रसिद्ध जैनवीर था।

कलभ्रवंश:- यह वंश मूल में द्राविड़ था और कर्णाटक प्रदेश उसका स्थान था। पाँचवीं सदी में इस वंश के राजाओं ने पाण्ड्य, चोल और चेर राज्यों को अपने आधीन करलिया था। इस वंश के सब राजा जैनधर्म के अपूर्व प्रभावक थे।

चोलवंश यद्यपि मूलतः यह राजवंश भी जैनधर्मानुयायी था परन्तु बाद में वह शैव हो गया था। कुर्ग व मैसूर के मध्यवर्त्ती प्रदेश पर राज्य करने वाले चंगल वंशी राजा पक्के जैनधर्मानुयायी थे। इनकी उपाधि- महामाण्डलिक मण्डलेश्वर थी। इनमें राजेन्द्र, मादेवन्ना आदि प्रसिद्ध राजा हैं।

चेरवंश यह वंश भी प्राचीनकाल से जैनधर्म का उपासक था। एलिन और राजराजव पेरुमल इस वंश के राजा थे जो जैनधर्म के भक्त थे।

शिलाहारवंश इस वंश के राजा जैनधर्म के अनन्य भक्त थे। इनकी राजधानी कोल्हापुर में थी। उस वंश का पाँचवाँ राजा "झंझा" इतना प्रसिद्ध था कि उसका वर्णन अरब इतिहासज्ञ मसूदी ने लिखा है। इन राजाओं के बनाये हुए कई एक भव्य जैनमन्दिर आज भी मौजूद हैं।

सन् १३२६ में होयसल राजाओं को मुसलमानों ने नष्ट कर दिया था तब दक्षिण भारत में एक महान् क्रान्ति हुई जिसके फलस्वरुप "विजय नगर-साम्राज्य" का जन्म हुआ। इस साम्राज्य में मुख्य हाथ ब्राह्मणधर्म का था तदपि इसके राजागण जैनधर्म के प्रति सहानुभूति रखते थे। राजकुमार 'उग्र' जैनधर्म में दीक्षित हुए थे। देवराज द्वितीय ने विजयनगर में जैनमन्दिर बनवाया था। राजा हरिहरद्वितीय के सेनापति 'इरुगप्प' जैनी थे। इनके दूसरे सेनापति 'वैचप्प' थे। इन्होंने कोंकण के युद्ध में बहुत वीरता बताई थी।

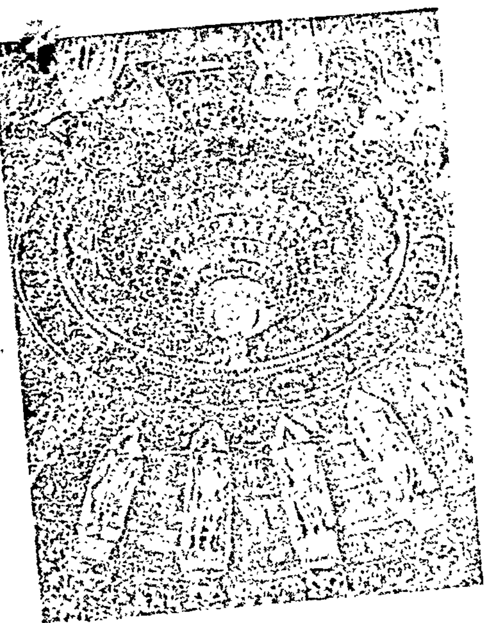
को नयाजीवन प्रदान किया और उन्होंने मेवाड़ के गौरव की रक्षा की। इस तरह की अनेक घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों पर उल्लिखित हैं जिनसे प्रतीत होता है कि राजस्थान के भव्य इतिहास में जैनजाति का कितना बड़ा महत्व है। जैनजाति के नररत्नों ने राजस्थान के राजवंश का जो गौरव बढ़ाया है उसके उपलक्ष में उन्हें मिले हुये विशेषाधिकारों के आज्ञापत्रों से यह प्रकट होता कि इनकी सेवाओं का उस समय कितना भारी महत्व रहा है। इन जैन वीरों के उज्ज्वल चरित्रों और शभकृत्यों से राजस्थान का इतिहास देदीप्यमान बना है।

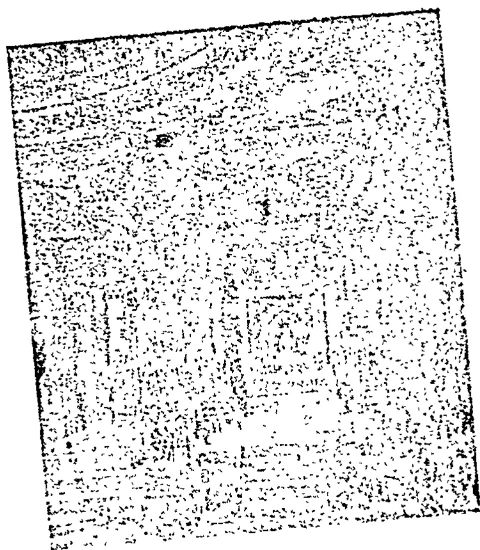
कर्नल जेम्स टॉड ने सन् १८२६ में Anna's of Rajasthan" जेम्स टॉड का अभिप्राय एकएक में लिखा है:—

The number and power cf these sectarians (Jains) are little known to europeans who take it for granted that they are few and dispersed. To prove the extent of their religious and political power it will sufficient to remarks that the pontiff of the khartargachha, one of the many branches of the faith, has 11,000 clericail dissciples scattered over India; that a single community, the oswal, numbers 100,000 families; and that more than half the mercantile wealth of India passes through the hands of the Jain laity.

Rajasthan and saurashtra are the cradles of the Jain faith and three of their sacred mounts namely, Abu, Palitana and Girner, are in these contries. The ocifiers of the state and revenue are chiefly of the Jain liaty, as are the majority of the bankars from lahore to the ocean. The chief magistrate and assessors of justice in uderpuu and most of the towns of Rajasthan, are of tuis sect.......

Mewar has, from the most remote period afforded a refuge to the followers of the jain faith, which was the





आबू के प्रसिद्ध जैनमन्दिरों में शिल्प कला (कोराई) के दो दृश्य ।

राणकपुरजी (मारवाड़) के आश्चर्यकारी कलापूर्ण जैनमन्दिर

r.ligion of valabhi, the first capital of Ranas ancestors, and many monuments attest the support fhis family has granted to its professors in all the vicissitudes of their fortunes.

The many ancient cities, where this regili^n was fostered have inscriptions which evince their prosperity in these contries with whose history their own is interwoven. In fine, the necrological records of the Jains bear witness to their having occupied a distinguished place in Rajput society; and the previleges they still enjoy prove that they are not overlooked."

टॉड साहब के उक्त कथन का सारांश यह है कि-यूरोपनिवासियों को जैनजाति की संख्या और उसकी शक्ति के विषय में बहुत कम ज्ञान है। इस जैनजाति की धार्मिक और राजनैतिक शक्ति का परिचय देने के लिये इतना कहना ही प्रर्याप्त है कि इस धर्म की अनेक शाखाओं में से एक खरतर गच्छ के धर्माधिकारी (आचार्य) के ग्यारह हजार शिष्य हैं जो सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं; इसकी एक ओसवाल जाति में ही एक लाख कुटुम्ब हैं। भारत की आधी से अधिक सम्पत्ति जैनजाति के हाथ में है।

राजस्थान और सौराष्ट्र जैनधर्म के केन्द्र हैं। इसके पवित्र पार्वात्य मन्दिरों में से आबू, पालिताना और गिरनार इन्हीं प्रदेशों में हैं। राजस्थान के अधिकांश राज्यधिकारी जैनजाति के ही हैं। लाहौर से लेकर समुद्र के किनारे तक इस जाति के अधिकांश व्यक्ति प्रायः बैङ्कर्स हैं। उदयपुर और राजस्थान के अन्य नगरों के प्रधान न्यायाधीश और न्यायालय के अधिकांश अधिकारी जैन ही हैं।

मेवाड़ के राज्यवंश ने अति प्राचीनकाल से जैनधर्म के अनुयायियों का सन्मान किया है। राणावंश के पूर्वजों की प्राचीन राजधानी वल्लभी-का राजधर्म जैनधर्म ही था। आज भी कतिपय स्मृति लेख यह प्रमाणित करते हैं कि इस राजवंश ने जैनों को कतिपय विशेषाधिकार वंशपरम्परा तक के लिए प्रदान किये हैं।

भारत के प्राचीन नगरों में इस प्रकार के अवशेष प्राप्त हैं जो इनकी समृद्धि को सूचित करते हैं। कई इसप्रकार के लेख मौजूद हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि राजपूत नरेशों ने जैनियों को बहुत ऊँचास्थान प्रदान किया था। इन क्षत्रिय राजाओं ने जैनियों को कई विशेषाधिकार प्रदान किये जिनका लाभ वे अभी तक उठा रहे हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि राजस्थान में उनका कितना महत्व था।"

उक्त कथन से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि राजस्थान में जैन जाति का अत्यन्त गौरवमय स्थान रहा है और आजकल भी है। इस जाति ने अपना आचार विचार और रहन-सहन का प्रभाव राजस्थान की समस्त जनता पर डाला है। आजकल जैनजाति की अधिक जनसंख्या राजस्थान, मध्यभारत और गुजरात-काठियावाड़ में ही है, भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा इन प्रांतों में अहिंसा धर्म का विशेष प्रभाव पड़ा है इसका कारण जैन जाति ही है। आइये, अब हम राजस्थान के इतिहास-प्रसिद्ध कतिपय जैन वीरों के जीवन की संक्षिप्त झाँकी का अवलोकन करें:—

राजस्थान की मुकुट-मणि, स्वतंत्रता देवी की आराध्य भूमि, भारत सिरमौर और वीर-प्रसवा मेवाड़भूमि के इतिहास पर दृष्टिपात कीजिये।

मेवाड़ राज्य के जैनवीर

भारतवर्ष में मेवाड़ ही ऐसा प्रदेश रहा है जो मातृभूमि की आजादी के लिये सर्वस्व होम कर भी आन और बान पर सदा दृढ़ रहा। इसके पीछे देश व स्वामी के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले वीर दीवान और सेनापतियों के रूप में दानवीर भामाशाह, आशासाह, संघवी दयालदास, दीवान मेहता अगरचन्दजी आदि का महान् बल रहा है। हिन्दु-कुलसूर्य राणा प्रताप के साथ-दानवीर भामाशाह का नाम शरीर और आत्मा की तरह सदा सम्बद्ध रहेगा। सचमुच जैनजाति के महापुरुष देश के लिये आत्मा रूप थे। मेवाड़ राज्य के इतिहास की पंक्ति २ जैन देशभक्तों की अपूर्व स्वामी-भक्ति, देशप्रेम और वीरता से अनुरंजित है।

मेहता जालसीः—

जिस समय समस्त मेवाड़ अलाउद्दीन खिलजी के आधीन हो चुका, उसकी ओर से चित्तौड़ का शासन सोनगरा मालदेव करता था, मेवाड़

निवासी देश छोड़कर बिखर चुके थे, ऐसे कठिन समय में महाराणा हमीर ने केलवाड़ा में डेरा डालकर सैनिक संगठन किया और मेहता जालसी के प्रयत्न से चित्तौड़ पर पुनः अधिकार स्थापित किया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्व० श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने "राजपूताने के इतिहास" में आपके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं:—"चित्तौड़ का राज्य प्राप्त करने में राणा हमीर को जाल (जालसी) मेहता से बड़ी सहायता मिली, जिसके उपलक्ष में उन्होंने उसे अच्छी जागीर दी और प्रतिष्ठा बढ़ाई।"

महाराणा हमीर के बाद, महाराणा कुम्भा, राणा साँगा और राणा रतनसिंह के समय में कई जैनवीर मुत्सुद्दी और दीवान हुए। राणा सांगा के समय में तोलाशाह दीवान रहे। राणा रतनसिंह के समय में तोलाशाह के पुत्र सुप्रसिद्ध कर्माशाह दीवान रहे। इन कर्माशाह ने सत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया था।

वीर आशाशाह:—

महाराणा रतनसिंह के पश्चात् कुछ सरदारों के सहयोग से दासीपुत्र बनवीर ने चितौड़ पर अपना अधिकार करलिया। उस समय मेवाड़ के भावी राणा उदयसिंह अबोध बालक थे। बनबीर इन्हें मारने के प्रयत्न में था। उदयसिंह पन्ना नामक धाय की गोद में पोषित हो रहे थे। एक दिन रात के समय बनवीर हाथ में तलवार लेकर उदयसिंह को मारने के लिये चला। पन्ना धाय ने खबर पाते ही उदयसिंह को छिपादिया और उनकी जगह अपने कलेजे की कोर के समान पुत्र को सुलादिया। इस महान् त्याग और स्वामी भक्ति के कारण पन्ना मेवाड़ के इतिहास में सदा के लिये अमर हो गयी। किस देश के इतिहास में इतना सुंदर आदर्श विद्यमान है ? दुष्ट बनवीर ने उदयसिंह के धोखे में पन्नाधाय के पुत्र की नृशंस हत्या कर डाली। इसके पश्चात् पन्नाधाय मेवाड़ के भावी महाराणा बालक उदयसिंह की सुरक्षा के लिये कई स्थानों पर गई परन्तु दुष्ट बनवीर के डर से किसी ने राजकुमार को शरण देना स्वीकार नहीं किया। इसके पश्चात् वह कमलमेर (कुम्भलमेर) पहुँची। आशाशाह नामक ओसवाल वंशीय जैन वहाँ का अधिकारी था। पन्ना आशाशाह से मिली। उसने पहुँचते ही राजकुमार को आशाशाह की गोद में रख दिया और कहा "अपने राणा की रक्षा कीजिए।" आशाशाह

अवाक् रह गये। उनकी हिम्मत न हुई कि वह राजकुमार को आश्रय दें किन्तु उनकी माँ यह देखकर तड़फ कर बोली "स्वामी का हित साधन करने के लिए सच्चे सेवक विघ्न-बाधाओं से नहीं डरते। राणा समरसिंह का पुत्र तुम्हारा स्वामी है। विपत्ति में पड़कर आज तुम्हारा आश्रय चाहता है, इसे आश्रय देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करो।"

आशाशाह ने माँ का कहना शिरोधार्य किया और निश्शंक होकर राजकुमार को अपने यहाँ पर रख लिया। जब उदयसिंह बड़ा हुआ तो आशाशाह की सहायता से, बनवीर से युद्ध कर उसने अपना अधिकार चित्तौड़ पर स्थापित कर लिया।

बनवीर ने एकबार फिर महाराणा उदयसिंह को राज्य छोड़ने के लिए बाध्य किया और उदयसिंह को अर्बुद के अंचल में (जहाँ आजकल उदयपुर है) रहना पड़ा। ऐसे कठिन समय में मेहता जालसी के वंशज मेहता चील की सहायता से वीर आशाशाह ने पुनः उदयसिंह को सिंहासनारुढ किया। इस प्रकार आशाशाह और उनकी वीराङ्गना माता ने राणावंश को मिटने से बचाया। इससे स्पष्ट है कि मेवाड़ राज्य की रक्षा में जैनवीरों का कितना बड़ा हाथ रहा है।

दानवीर भामाशाहः—

मातृभूमि के लिये अपने स्वामी के श्री चरणों में सर्वस्व अर्पण कर देने वाले दानवीर भामाशाह का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। संसार के इतिहास में यह एक अनुपम घटना है।

दानवीर भामाशाह के पिता भारमलजी, कावड़िया गोत्रीय ओसवाल जैन थे और महाराणा उदयसिंह के दीवान थे। महाराणा उदयसिंह के बाद जब उनके सुपुत्र विश्वविख्यात, महान् देशभक्त, महाराणा प्रताप राज्याधिकारी बने तब भी भामाशाह उनके दीवान रहे।

स्वतंत्रता के दिव्य पुजारी, क्षत्रियवंश की उज्ज्वलता के महान् संरक्षक, आत्म-गौरव के मूर्तिमान अवतार महाराणा प्रताप का नाम संसार में कौन नहीं जानता है? बच्चे २ की जबान पर महाराणा प्रताप का पवित्र

नाम चढ़ा हुआ है। संसार के अणु-अणु पर इस वीरप्रताप के महान् प्रताप की छाप अंकित है। इस महान् क्षत्रियविभूति ने वनवन की खाक छानी, पर्वतों और गुफाओं में निवास किया, ऐश-आराम और राज्य-पाट को तृण की तरह तुच्छ समझकर छोड़ दिया, परन्तु कभी किसी की अधीनता स्वीकार न की। आपत्तियों के भयंकर झंझावातों में यह वीर महायोद्धा हिमाचल की तरह अडोल रहा। ऐसे महान् दृढ स्वाभिमानीराणा प्रताप के जीवन में भी एक बार ऐसी घटना घटी जिसने राणा जी के लौहहृदय को भी कँपा दिया। इस अवस्था में उनके दिल में मुगलों से समझौता करलेने का विचार हठात् हो आया; पर धन्य हैं उनके मंत्री भामाशाह जिन्होंने ऐसे अवसर पर महाराणा प्रताप के गौरव की रक्षा और उनके उज्ज्वल चरित्र में कालिमा का जरा भी दाग न लगने दिया।

जिस समय राणा प्रताप मेवाड़ की राज्यगादी पर आरूढ हुए उस समय अकबर जैसे कूटनीतिज्ञ मुगल सम्राट् का भारत पर पूरा २ आधिपत्य हो चुका था। अकबर की कुटिल-नीति ने सन्धि के बहाने प्रायः सब राजपूत राजाओं को अपनी ओर कर लिया था। कई राजपूत नरेशों ने अपनी बहनें और कन्याओं का विवाह भी मुगलों — यवनों के साथ कर दिया था। यहीं तक नहीं इन गौरवहीन क्षत्रियों ने स्वाभिमानी राणा प्रताप को भी भ्रष्ट करने के कई प्रयत्न किये। एक बार अकबर के साथ अपनी बहन का व्याह करने वाले अम्बेर (जयपुर) के राजा मानसिंह अतिथि के रूप में राणाजी के यहाँ आये। महाराणा ने उनका यथोचित सत्कार किया किन्तु भोजन के समय उनके साथ ही नहीं, उनके पास तक बैठने में इस स्वाभिमानी ने अपना नैतिक पतन समझा। मानसिंह ने इसे अपना अपमान समझा और उसने राणा जी से बदला लेने का संकल्प किया।

राजा मानसिंह इस समय अकबर का सबसे अधिक माननीय कर्मचारी था। उसने अकबर को राणाजी के विरुद्ध उकसाया। अकबर तो इस ताक में था ही। वह राणाजी के राज्य को छीनना नहीं चाहता था; उसकी एक मात्र प्रबल इच्छा थी कि राणा प्रताप एक बार मुझे बादशाह शब्द से सम्बोधित करदें और अपना मस्तक झुकादें। अकबर की यह मनोकामना पूर्ण नहीं हो रही थी। अतः इस अवसर से लाभ उठाकर उसने

मानसिंह के नेतृत्व में एक विशाल सेना मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजी। सन् १५७६ में हल्दीघाटी के मैदान में महाराणा प्रताप ने इस विशाल सेना का दृढता के साथ मुकावला किया। असंख्य मुगल सेना के सामने राणा प्रताप की मुट्ठीभर सेना कहाँ तक टिक सकती थी? उदयपुर महाराणा के हाथ से निकल गया और राणाजी ने मेवाड़ के जंगलों की राह ली।

राजमहलों से बाहर कभी जमीन पर पैर न धरनेवाली महारानीजी अपने नन्हें २ बच्चों के साथ जंगल के कँटीले और पत्थरीले बीहड़ पथ की पथिक बनी थीं। जंगल में डरावने पहाड़ों के बीच और भयावनी रात्रियों में, शेरव्याघ्रों की गर्जना के बीच सुकोमलाङ्गी महारानी ने अपने छोटे २ बच्चों के साथ कैसे दिन बिताये होंगे? परन्तु इन सब भयंकर विपत्तियों में भी महाराणा अपनी आन-शान और बान पर पहाड़ की तरह दृढ़ रहे। उनकी विपत्तियों की पराकाष्ठा हो गई। घास की रोटियाँ उन्हें खाने को मिलती थीं, वह भी पूरी नहीं। एक दिन वह क्या देखते हैं कि उनकी छोटी बच्ची के हाथ से एक वनबिलाव रोटी छीनकर भाग गया है और बच्ची भूख के मारे चिल्ला रही है। महारानी के पास दूसरी रोटी नहीं जो उसे दी जा सके। इस घटना ने महाराणा के लोह हृदय को हिला दिया। धैर्य का महासागर विक्षुब्ध हो उठा। वे अधीर हो उठे। उन्होंने मेवाड़ छोड़ देने का निश्चय किया।

जब यह खबर भामाशाह को लगी तो उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। वे महाराणा का मेवाड़ छोड़ना कैसे सह सकते थे? उनके मस्तिष्क में तो मेवाड़ के सिंहासन पर पुनः महाराणा को आसीन करने की कल्पनाएँ और योजानाएँ काम कर रही थीं। अतः भामाशाह शीघ्र ही अपनी समस्त धन-सम्पत्ति गाडियों में भरवाकर उस जंगल की ओर चल पड़े जहाँ राणाजी वनवासी बने हुए थे। वहाँ पहुँचते ही वे महाराणा के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने कहा—"अन्नदाता! यह सारा धन आपका ही दिया हुआ है। आपके ही दिए हुए अन्न से यह शरीर बना है अतः यह शरीर और यह सारा धन आपकी सेवा में समर्पित है। इसे स्वीकार कीजिये और पुनः सैनिक संगठन करिए। आप यदि मेवाड़ छोड़ देंगे तो

इसकी विमल कीर्ति नष्ट हो जायगी। अतः यह विचार छोड़ दीजिए और देश को पुनः स्वतंत्र बनाइये।"

राणा प्रताप गद्‌गद् हो उठे। वे कुछ भी न बोल सके। महाराणा का क्षात्र-तेज पुनः चमक उठा। उन्होंने सेना एकत्रित कर मातृभूमि को स्वतंत्र करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड ने लिखा है कि "मंत्रीश्वर भामाशाह के द्वारा राणाजी को अर्पित किया गया वह धन इतना था कि उससे २५ हजार सैनिकों का १२ वर्षों तक पूरा खर्च चलाया जा सकता था।"

महाराणाजी ने इस महान् सहायता के वल पर मुगलों पर आक्रमण कर दिया और मेवाड़ भूमिके अधिकांश भाग को अपने आधीन कर लिया। एक वार फिर मेवाड़ पर राणा प्रताप की विजय पताका फहरा उठी। दान-वीर भामाशाह के सर्वस्व त्याग ने मेवाड़ देश के गौरव को अखण्ड वनाये रखा।

केवल मेवाड़ के इतिहास में ही नहीं वरन् भारतवर्ष के इतिहास में महाराणा प्रताप और दानवीर भामाशाह के उज्ज्वल चरित्र सदा अमर रहेंगे। इनकी गौरव गाथाओं के विना भारत का इतिहास अपूर्ण ही रहता है।

मेवाड़ के महाराणा आज तक ओसवाल जैनकुल भूषण भामाशाह के वंशजों का उपकार मानकर पूर्ण सन्मान प्रदान करते हैं। भामाशाह के वंशजो को आज भी राज्य और जातान्यात में पूरा २ सन्मान प्राप्त है। सबसे पहिले तिलक भामाशाह के वंशजों के ही होता है।

दानवीर भामाशाह महाराणा प्रताप के शुरु समय से, महाराणा अमर-सिंह के राज्यकाल में ३ वर्ष तक दीवान के सर्वोच्च पद पर आसीन रहे। अंत में यह महान् आत्मा संवत् १६५६ माघ शुक्ला एकादशी को ५१ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारी। भामाशाह के भाई ताराचन्द जी भी वड़े वीर हुए हैं। हल्दीघाटी के युद्ध में इन्होंने जो जोहर वताये वे इतिहास प्रसिद्ध हैं। भामाशाह के पुत्र जीवाशाह और उनके पुत्र अक्षयराज भी वाद के

राणाओं के दीवान-पद को अलंकृत करते रहे। भामाशाह की कीर्ति सदा अमर बनी रहेगी।

संघवी दयालदास बड़े रणकुशल और राजनीतिज्ञ थे। ये महाराणा राजसिंह के दीवान थे। यह समय वह था जब औरंगजेब के अत्याचार से त्राहि त्राहि मची हुई थी। तलवार के बल मुसलमान बनाये जाते थे संघवी दयालदास और हिन्दुओं को बहुत ही मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। हिन्दुसंस्कृति और महिलाओं के सतीत्व पर आक्रमण हुआ करते थे। औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाने का विचार किया जिससे चारों तरफ असंतोष की ज्वाला धधक उठी। महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब को एक पत्र लिखा और उसे ऐसा न करने की सूचना की। इस पर वह क्रुद्ध हो उठा और उसने संवत् १७३६ में मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए विशाल सेना भेजी। राणा राजसिंह ने बड़ी वीरता से इस आक्रमण का मुकाबला किया। इस युद्ध में संघवी दयालदास ने बहुत रणकुशलता और वीरता बतलाई। महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब की सेना को परास्त कर दिया। राणाजी ने इस आक्रमण का बदला लेने के लिए संघवी दयालदास को एक बड़ी फौज देकर मालवे पर चढ़ाई करने भेजा। मालवा उस समय यवनों के अधिकार में था। इस चढ़ाई के सम्बन्ध में कर्नल जेम्स टॉड ने जो वर्णन लिखा है वह बड़ा ही सुन्दर है अतः हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं :-

राणा जी के दयालदास नामक एक अत्यन्तसाहसी और कार्य चतुर दीवान थे। मुगलों से बदला लेने की प्यास उनके हृदय में सर्वदा प्रज्वलित रहती थी। उन्होंने शीघ्र चलने वाली घुड़सवार सेना को साथ लेकर नर्मदा और वेतवा नदी तक फैले हुए मालवा राज्य को लूट लिया। उनकी प्रचण्ड भुजाओं के बल के सामने कोई भी खड़ा नही रह सकता था। सारंगपुर, देवास, सिरोज, माँडू, उज्जैन और चन्देरी इन सब नगरों को उन्होंने अपने बाहुबल से जीत लिया। विजयी दयालदास ने इन नगरों को लूटकर वहाँ जितनी यवन सेना थी, उसमें से बहुतसों को मार डाला। इस प्रकार बहुत से नगर और गाँव इनके हाथ से उजाड़े गये। इनके भय से नगर निवासी यवन इतने व्याकुल हो गये थे कि किसी को भी अपने बन्धु बान्धव के प्रति प्रेम न रहा, अधिक क्या कहें, वे लोग अपनी प्यारी स्त्री

तथा पुत्रों को भी छोड़ २ कर अपनी २ रक्षा के लिए भागने लगे। जिन सम्पूर्ण सामग्रियों को ले जाने का कोई उपाय उनकी दृष्टि में न आया अन्त में उनमें आग लगाकर चले गये। अत्याचारी औरंगजेब हृदय पर पत्थर को बाँधकर निराश्रय राजपूतों के ऊपर पशुओं के समान आचरण करता था। आज उन लोगों के ऐसे सुअवसर को पाकर उस दुष्ट को उचित प्रतिफल देने में कुछ भी कसर नहीं की। संघवी दयालदास ने हिन्दुधर्म से वैर रखने वाले बादशाह के धर्म से भी पल्टा लिया। काजियों के हाथ पैरों को बाँधकर उनकी दाढीमूंछों का मुंडा दिया और उनकी कुरानों को कुँए में फेंक दिया। दयालदास का हृदय इतना कठोर होगया था कि उन्होंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार किसी भी मुसलमान को क्षमा नहीं किया। तथा मुसलमानों के राज्य को एक वार मरूभूमि के समान कर दिया। इस प्रकार देशों को लूटने और पीड़ित करने से जो विपुल धन इकट्ठा किया, वह अपने स्वामी के धनागार में दे दिया और अपने देश की अनेक प्रकार से रक्षा की। विजय के उत्साह से उत्साहित होकर तेजस्वी दयालदास ने राजकुमार जयसिंह के साथ मिलकर चित्तौड़ के अत्यन्त ही निकट बादशाह के पुत्र अजीम के साथ भयंकर युद्ध करना आरम्भ किया। इस युद्ध में राठौड़ और खीची वीरों की सहायता से वीरवर दयालदास ने अजीम की सेना को परास्त कर दिया। पराजित अजीम प्राण बचाने के लिए रणथंभोर को भागा। परन्तु नगर में आने के पहले ही उसकी बहुत हानि हो चुकी थी, क्योंकि विजयी राजपूतों ने उसका पीछा करके उसकी बहुत सी सेना को मार डाला था। जिस अजीम ने एक वर्ष पूर्व चित्तौड़ नगरी का स्वामी बन अकस्मात् उसको अपने हाथ में कर लिया था, आज उसका उचित फल दिया गया।*

संघवी दयालदास युद्ध करने में अपने शत्रु के प्रति जितने कठोर थे उतने ही युद्धोपरान्त शरण में आये हुए के प्रति उदार थे। वे बड़े धर्मिष्ठ भी थे। धार्मिक नित्यक्रिया में कभी नहीं चूकते थे। आपने राजसमुद्र के पास-

*यह उद्धरण 'ओसवाल जाति का इतिहास' पृ० ७५ से उद्धृत किया गया है जो इसके लेखकों ने टॉड राजस्थान द्वितीय खण्ड अध्याय १२ पृष्ठ ३६६-३६८ से लिया है।

वाली पहाड़ी पर किलेनुमा आदिनाथ जी का भव्य मन्दिर बनवाया। जैन मुनियों और यतियों पर उनकी गहरी श्रद्धा थी। उन्होंने अपने मन्त्रित्व काल में राणाजी से यतियों की सहायता के लिए एक फरमान भी जारी किया था। जिसमें निम्न बातें थीं :—

(१) प्राचीनकाल से जैनियों के मन्दिरों और स्थानों को अधिकार मिला हुआ है कि उनकी सीमा में जीववध न हो। उनके हक्क की सीमा में कोई भी जीववध न करे।

(२) जो जीव वध के लिए इनके स्थान के पास से ले जाया जायगा वह अमर हो जायगा।

(३) जो जैनियों के उपाश्रय में शरण ग्रहण कर लेगा वह चाहे राजद्रोही, लुटेरा और कारागृह से भागा हुआ अपराधी ही क्यों न हो, उसे राजकर्मचारी नहीं पकड़ सकेंगे।

(४) फसल में कूँची (मुठ्ठी), कराना की गुट्ठी, दान की हुई भूमि, धरती और अनेक नगरों में उनके बनाये हुए उपाश्रय कायम रहेंगे।

(५) यतिमान को १५ बीघे धान की भूमि के और २५ बीघे मालेटी के दान कियेगये हैं। नीमच और निम्बाहेड़ा के प्रत्येक परगने में हरएक यति को इतनी ही पृथ्वी दी गई है।

इस फरमान को देखते ही पृथ्वी नाप दी जाय और देदी जाय और कोई मनुष्य यतियों को दुःख नहीं दे। उस मनुष्य को धिक्कार है जो उनके हकों का उल्लंघन करता है। हिन्दु को गौ और मुसलमान को सुअर और खुदा की कसम है। संवत् १७४६ महासुदी ५ ई० सन् १६६३। शाह दयाल मंत्री।

इस प्रकार दयालदास मेवाड़ के इतिहास में एक पराक्रमी योद्धा और कुशल राजनीतिज्ञ हो गये हैं। मेवाड़ में इनका गौरवशील चरित्र सदा स्मरणीय रहेगा।

मेहता अगरचन्दजीः—



संवत् १७६२ में जब मेवाड़ के राजसिंहासन पर महाराणा अरिसिंह आरूढ हुए तब भारत में सर्वत्र अराकता फैली हुई थी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद यवनों का जोर कमजोर हो गया। दक्षिण में मरहठे जोर पड़कने लगे और जगह २ लूटमार करने लगे। अन्य हिन्दु राजा अपना २ राज्य बढ़ाने की चिन्ता में थे। राजपूताने के राजाओं में फूट थी।

महाराणा अरिसिंह की तेज प्रकृति के कारण मेवाड़ के कई बड़े २ सरदार राणाजी से असंतुष्ट थे। इन्हीं असंतुष्ट सरदारों ने सिन्धिया को मेवाड़ पर आक्रमण करने का निमंत्रण भेजा और स्वयं ने भी उसका साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि महाराणा को सिन्धिया से समझौता करना पड़ा और ६४ लाख रुपया देना निश्चित हुआ, जिनमें से ३३ लाख तो दे दिये गये और बाकी के लिए नीमच, निम्बाहेड़ा आदि का क्षेत्र रहन रखदिया गया। ऐसी कठिन परिस्थिति में मेहता अगरचन्द जी महाराणा अरिसिंह जी के दीवान बनाये गये। मेहता जी बड़े बुद्धिमान थे। वैसे ही रणकौशल में भी सिद्धहस्त थे। उन्होंने मेवाड़ की तत्कालीन गिरती हुई परिस्थिति को बड़ी सावधानी से सम्भाला और मेवाड़ में पुनः शान्ति स्थापित की। माण्डलगढ़ पर विद्रोही सरदारों का कब्जा था अतः मेहता जी ने उनके साथ युद्ध करके माण्डलगढ़ को मेवाड़ में मिलाया। महाराणा जी ने मेहताजी को वहाँ का शासक बनाया और हमेशा के लिए वह उन्हें जागीर के रूप में सौंप दिया।

इसके बाद एकबार फिर सिन्धिया ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और मेहता जी कैद करलिये गये, तब भी आप बड़ी चतुराई से भाग

निकले । एक बार शाहपुरा नरेश ने विद्रोह किया और जहाजपुर जिला दवा लिया । इस पर मेहता जी को शाहपुरा पर आक्रमण करना पड़ा। बड़ी घमासान लड़ाई हुई और अन्त में मेहता जी की विजय हुई । जहाजपुर उदयपुर में मिला लिया गया । इस लड़ाई में मेहता जी की शारीरिक अवस्था बिगड़ गई । उनके शरीर में कई गहरे घाव लगे थे । अन्त में संवत् १८५७ में आप स्वर्गवासी हो गये ।

मेहता अगरचन्द्र जी एक कुशल राजनीतिज्ञ, रणकुशल और स्वामी-भक्त व्यक्ति हुए । मेवाड़ रक्षा और विस्तार में इनका जो हाथ रहा है वह उक्त पंक्तियों से स्पष्ट ही है ।

सोमचन्द गांधी

महाराणा भीमसिंहजी के समय में आप प्रधान थे । आपने मेवाड़ की भलाई के लिए भिन्न २ छोटी २ जागीरों के सरदारों में पड़ी हुई फूट को मिटा कर एकता स्थापित की । जयपुर, जोधपुर आदि से मेलकर मरहठों के विरुद्ध एक मजबूत मोर्चा कायम किया और संवत् १८४४ में जयपुर और जोधपुर की सेना द्वारा मरहठों को पराजित किया । गांधीजी ने इसी अवसर पर मेहता मालदास जी को कोटा और मेवाड़ का संयुक्त सेनापति बनाकर मरहठों पर हमला करने भेजा ।

सेनापति मेहता मालदास

मेहता मालदास जी ओसवाल समाज के शिशोदिया गोत्रीय मेहता थे । सेनापति बनकर आपने निकुम्ब, निम्बाहेड़ा आदि स्थानों पर अपना अधिकार किया । जब आप जावद पहुँचे तो मरहठों से जोरदार मुकाबला करना पड़ा । विजय मालदास जी की ही रही और मरहठे मेवाड़ को छोड़कर भाग गये ।

संवत १८४४ में महारानी अहल्याबाई की सिन्धिया सेना ने फिर मेवाड़ पर हमला किया तब मन्दसौर के हर्कियाखाल पर फिर मेवाड़ी और मरहठी सेनाओं की मुठभेड़ हुई । इस युद्ध में मेहता मालदासजी वीरगति को प्राप्त हुए ।

महाराणा भीमसिंह जी के समय में मेहता देवीचन्दजी एक स्वाभिमानी और देश की रक्षा करने वाले हितैषी प्रधान हुए । आपके समय

★में मेवाड़ और ब्रिटिश सरकार के मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए। कर्नल डॉट उदयपुर के ब्रिटिश सरकार की ओर से पोलिटिकलए एजेन्ट बनकर आये।

आपके बाद मेहता रामसिंह जी और मेहता शेरसिंह जी मेवाड़ के दीवान रहे। आप दोनों का कार्यकाल भी बड़ाम हत्त्व पूर्ण रहा। मेहता रामसिंह जी बड़े राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे।

सेठ जोरावरमलजी बाफना:—

जिस समय अंग्रेज राजपूताने की रियासतों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे उस समय सेठ जोरावरमल जी बाफना का जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर, इन्दौर, उदयपुर आदि रियासतों में बड़ा प्रभाव था। सन् १८१८ में जब कर्नल टॉड राजपूताने के पोलिटिकल एजेन्ट बनकर उदयपुर आये तब उन्होंने सेठ जोरावरमलजी को दीवान बनाकर इन्दौर से उदयपुर बुलाने की महाराणा को सम्मति दी, क्योंकि सेठ बाफना जी अर्थ विशेषज्ञ और चतुरशासक थे। मेवाड़ की बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्था के सुधार के लिये ऐसे व्यक्ति की परम आवश्यकता थी। हुआ भी ऐसा ही। सेठ जोरावर-मल की चतुराई से मेवाड़ का कई लाख का कर्जा सम करदिया गया। महाराणा स्वरूपसिंह जी के समय में मेवाड़ रियासत पर करीब २० लाख का कर्ज था जिसमें से अधिकांश सेठ जोरावरमलजी का था। इस ऋण को मिटाने के लिये सेठजी ने एकबार अपनी हवेलीपर महाराणा सा० को निमंत्रित किया और जैसे महाराणा सा० ने चाहा वैसे ही करजा निपटालिया। महाराणा जी ने इससे प्रसन्न होकर आपको कुण्डाल गांव जागीरी में दिया। इसी प्रकार आपने अन्य कर्ज भी अदा करा दिये। इन कार्यों से आपका काफी नाम हुआ। आप १८५३ में स्वर्गवासी हुए।

बाद के अन्य ओसवाल जैन दीवानः—

भारत के स्वतंत्र होने पूर्व तक मेवाड़ राज्य का दीवान पद प्राय: ओसवाल जैनों के द्वारा ही अलंकृत होता आया है। श्री मेहता गोकुलचन्द्रजी कोठारी केशरीसिंहजी, कोठारी छगनलालजी, मेहता पन्नालालजी, मेहता फतेहराजजी, सिंघी बच्छराजजी, मेहता भोपालसिंहजी, मेहता जगन्नाथसिंहजी, कोठारी बलवन्तसिंहजी, मेहता तेजसिंहजी, आदि आदि बड़े

राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी दीवान रहे जिनके संचालन में मेवाड़ राज्य ने अच्छी समृद्धि प्राप्त की।

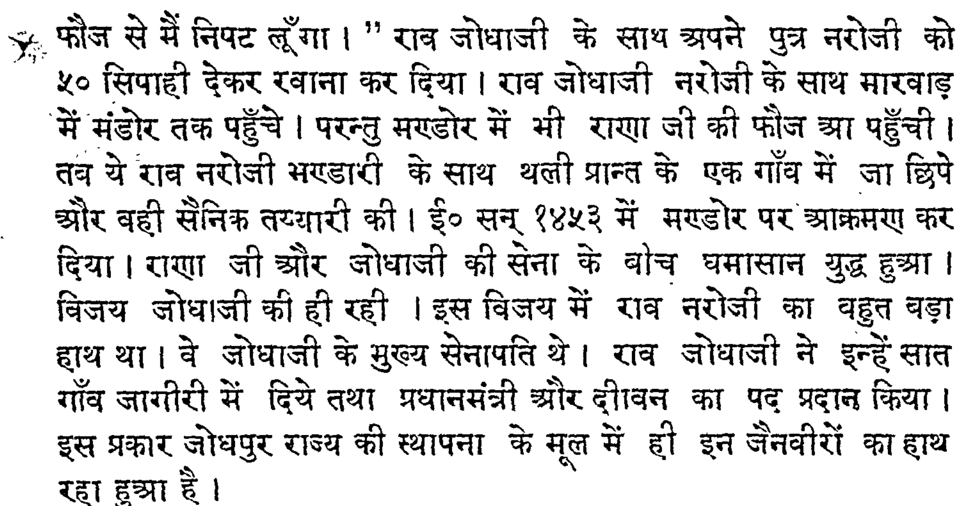
इस तरह मेवाड़ राज्य के इतिहास में जैनवीरों के द्वारा किये गये राजनैतिक और सामरिक, आर्थिक और परमार्थिक कृत्यों के द्वारा यह प्रमाणित हो जाता है कि जैनवीरों ने इस राज्य के निर्माण, रक्षण और समृद्धि में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया है। इन वीरों ने जिस प्रकार अपनी बुद्धि का उपयोग देश के लिए किया उसी तरह वीर योद्धाओं की तरह ये रण मैदान में भी उतरे हैं और विजय श्री प्राप्त की है। इन वीरों ने यह सिद्ध कर दिया कि 'जैन' जैसे अपने बुद्धिबल से राज्यशासन का संचालन कर सकते हैं वैसे ही रण-मैदान में वीरता पूर्वक जूझ सकते हैं। तात्पर्य यह है कि मेवाड़ राज्य के इतिहास में जैनजाति का अत्यन्त गौरवमय स्थान रहा है और वर्त्तमान में भी है।

जोधपुर जैनियों का केन्द्रस्थान है। इस राज्य के इतिहास के प्रथम पृष्ठ के साथ ही जैनवीरों की गौरवगाथाएँ जुड़ी हुई हैं। जोधपुर राज्य की स्थापना राव जोधाजी ने की। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी इनका उदयकाल है। राव जोधाजी चित्तौड़ में अपने पिता के मारे जाने पर मेवाड़ छोड़कर सात सौ सिपाहियों के साथ मारवाड़ की ओर चल पड़े। मेवाड़ की फौज ने इनका पीछा किया। इनके अधिकांश सैनिक मारे गये। केवल बचे हुए सात सैनिकों को लेकर राव जोधाजी जीलवाड़ा नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ राव समरोजी से उनकी भेंट हुई।

जोधपुर राज्य के जैनवीर

ये दोनों नरवीर मूलतः चौहान वंश के थे परन्तु जैनाचार्यों ने इनके पितामह या प्रपितामह को जैनधर्म में दीक्षित किया था। ये ओसवाल भण्डारी के नाम से विख्यात हुए। ये दोनों बड़े रणकुशल और वीर थे। इनके सहयोग से ही राव जोधाजी जोधपुर राज्य की नींव डालने में समर्थ हो सके। जीलवाड़ा में जब राव जोधाजी इनसे मिले तो इन्होंने उन्हें ढाढस बँधाया और कहा कि "आप मारवाड़ की ओर आगे बढ़ते जाइये। राणा जी की

राव समरोजी और नरोजी भण्डरी



फौज से मैं निपट लूँगा।" राव जोधाजी के साथ अपने पुत्र नरोजी को ५० सिपाही देकर रवाना कर दिया। राव जोधाजी नरोजी के साथ मारवाड़ में मंडोर तक पहुँचे। परन्तु मण्डोर में भी राणा जी की फौज आ पहुँची। तब ये राव नरोजी भण्डारी के साथ थली प्रान्त के एक गाँव में जा छिपे और वही सैनिक तय्यारी की। ई० सन् १४५३ में मण्डोर पर आक्रमण कर दिया। राणा जी और जोधाजी की सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। विजय जोधाजी की ही रही। इस विजय में राव नरोजी का बहुत बड़ा हाथ था। वे जोधाजी के मुख्य सेनापति थे। राव जोधाजी ने इन्हें सात गाँव जागीरी में दिये तथा प्रधानमंत्री और दीवान का पद प्रदान किया। इस प्रकार जोधपुर राज्य की स्थापना के मूल में ही इन जैनवीरों का हाथ रहा हुआ है।

जोधपुर राज्य के विस्तार में इस भण्डारी परिवार का बड़ा भारी सहयोग रहा है। राव नरोजी के बाद भण्डारी नाथाजी, उदोजी, पन्नोजी, रायचन्दजी, ईसरदास जी, भाना जी आदि ने प्रधान पद पर बड़ी कुशलता के साथ कार्य किया। भण्डारियों के साथ २ सिंघवी और मणोत परिवारों का भी जोधपुर राज्य के विकास में बड़ा हाथ रहा है।

जब विक्रम संवत् १६७७ में महाराजा गजसिंह जी को मुगल सम्राट् द्वारा जालोर का परगना का प्राप्त हुआ तब मुणोत जयमल जी वहाँ के शासक बनाये गये। सं० १६७८ में सांचोर का परगना भी आप मुणोत जयमल जी ही के शासन में दिया गया। मुणोत जयमल जी बड़े कुशल शासक सिद्ध हुए। आपने राज्य की रक्षा के लिए कई लड़ाइयाँ लड़ीं। आज बड़े उदार भी थे। सं० १६८७ के दुष्काल में आपने एक वर्ष तक समस्त जनता को अन्नदान दिया।



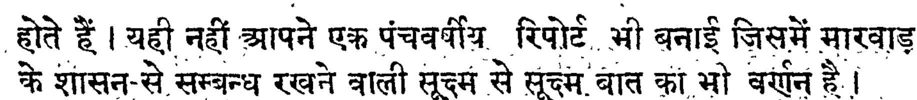
मुणोत नैणसी



आप मुणोत जयमल जी के पुत्र थे। आप न केवल एक चतुर शासक और बुद्धिमान दीवान ही हुए हैं परन्तु भारतीय साहित्य संसार में भी आपका गौरवपूर्ण स्थान है। संवत् १७१४ में महाराजा जसवन्तसिंह जी ने आपको अपना दीवान बनाया। महाराजा जसवन्त सिंह जी को मुगलसम्राट् औरंगजेब कभी किसी प्रान्त का और कभी किसी प्रान्त का शासक बना कर भेजता था तथा लड़ाइयों में जाना पड़ता था अतः महाराजा का प्रायः बाहर ही रहना होता था। मुणोत नैणसी जैसे कुशल और बुद्धिमान दूरदर्शी के हाथों जोधपुर प्रदेश का शासन उन्हें सुरक्षित लगता था।

उस समय औरंगजेबी अत्याचार और षडयंत्रों का बड़ा जोर था। राज्य में उपद्रव होते रहते थे। नैणसी ने बड़ी चतुराई से शान्ति स्थापन का कार्य किया। आपको कई लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ी थीं। रावत नाराण सोजत के गाँवों में लूटमार कर रहता था उसे नैणसी ने दबाया। संवत् १७१५ में औरंगजेब से महाराजा की अनबन हो गई। इस कारण जैसलमेर रावल ने फलौदी पौकरण पर चढ़ाई की तब मुणोत नैणसी ने बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया और विजयी रहे।

आपने अपने राज्य की मर्दुम शमारी (जनगणना) भी कराई। भारतीय इतिहास में जनगणना की प्रथा के प्रारम्भकर्त्ता आप ही मालूम



होते हैं। यही नहीं आपने एक पंचवर्षीय रिपोर्ट भी बनाई जिसमें मारवाड़ के शासन-से सम्बन्ध रखने वाली सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का भो वर्णन है।

संवत् १७२५ के आसपास महाराजा से आपकी अनबन हो गई। महाराजा ने इन पर एक लाख रुपयों का दण्ड किया। परन्तु स्वाभिमानी नैणसी ने देने से इन्कार कर दिया। इस पर ये और इनके भाई सुन्दरदास कैद में रखे गये। इन पर बड़ी सख्ती की गई। अन्त में १७२७ (वि-सं) भाद्रपद १३ को इन्होंने पेट में कटार मार कर स्वर्ग की राह ली। इस घटना से महाराजा को बड़ाभारी पश्चात्ताप हुआ।

नैणसी चतुरशासक होने के साथ ही एक साहित्यिक भी थे। आपके द्वारा लिखी हुई "मुणोत नैणसी की ख्यात" भारतीय साहित्य, इतिहास और पुरात्त्व के सम्बन्ध में एक बहुमूल्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में राजपूताना, मालवा, गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ और मध्यप्रदेश के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कई महत्वपूर्ण बातें संगृहीत हैं। डिंगल भाषा होने के कारण ग्रन्थ का समझना कठिन है। हाल ही में काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने इस महान् ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। इस प्रकाशन से नैणसी की प्रतिभा से साहित्यसंसार चकित हो उठा है।

आपके भाई सुन्दरदास जी बड़े बहादुर थे। नैणसी के पुत्र कर्मसी भी एक इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हुए। संवत १७१८ से १७२३ तक ये महाराजा जोधपुर की ओर से हाँसी, हिसार जिले के शासक रहे। आपके बाद इस मुणोत परिवार में संग्रामसिंह जी, भगवतसिंह जी, रावत जी ठाकुर सूरतराम जी, ठाकुर सवाईराम जी, दीवान ज्ञानमल जी आदि बड़े प्रख्यात हुए हैं।

भण्डारी खींवसीजीः-

आप एक महान् कूटनीतिज्ञ हुए हैं। मुगल सम्राटों पर भी आपका बड़ा प्रभाव था। जब जब भी जोधपुर की हितरक्षा का सवाल आता था तब २ आप बड़ी कुशलता से मुगल सम्राटों से अपने हक़ में फैसला करवा लेते थे। औरंगजेब के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हुआ। इससे तत्कालीन जोधपुर नरेश अजितसिंह जी ने दीवान भण्डारी खींवसी के

सहयोग से बड़ा लाभ उठाया। यही नहीं, उस समय तो मुगल बादशाहों के बनाने बनाने–बिगाड़ने में भी भण्डारी जी का बड़ा हाथ रहता था। संवत् १७७६ में बादशाह फरुखशियर के मारे जाने पर दिल्ली की षडयंत्रकारी स्थिति को सम्भालने और शाहजादा मुम्मदशाह को तख्त पर बैठाने में आप ही का हाथ था। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में आपने कई उल्लेखनीय कार्य किये।

रायभण्डारी रघुनाथ सिंह जी

महाराजा अजितसिंह जी के राज्यकाल में दीवान पद पर रहकर आपने कई वीरता भरे कार्य किये। महाराजा प्रायः दिल्ली रहते थे। उनके नाम पर कुछ समय तक रघुनाथ जी ने मारवाड़ का शासन किया। आपके सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रसिद्ध है:-

करोडां द्रव्य लुटायो, हौदा ऊपर हाथ।
अजे दिली रो पातशा राजा तू रघुनाथ॥

महाराजा अजितसिंह आप पर बड़े प्रसन्न थे। फारसी तवारीखों में भी आप की ख्याति का उल्लेख मिलता है। आपके बाद भण्डारी अनोपसिंह जी, रतनसिंह जी, पौमसिंह जी, सूरतराम जी आदि बड़े २ प्रसिद्ध दीवान और सेनापति हुए हैं। भण्डारी रतनसिंह जी सं १७९३ से ९७ तक मुगल सम्राट् की ओर से अजमेर और गुजरात के शासक (Governor) रहे हैं।

शमशेर बहादुर शाहमल जी लोढा :—

आप जैन ओसवाललोढ़ा थे। महाराजा विजयसिंह जी ने सं० १८४० में आप को फौज का कमान्डर इन्चीफ (मुसाहिब) बनाया। सं० १८४६ में आपने गोड़वाड़ के एक युद्ध में बड़ा जौहर दिखाया और महाराजा द्वारा शमशेरबहादुर की पदवी प्राप्त की। इनके समय से ही जोधपुर के लोढा परिवार को 'राव' की पदवी मिली। इसी परिवार में उदयकरण जी लोढा भी प्रतापी वीर हुए है। आपके सेनापतित्व में अमरकोट की विजय हुई।

सिंघी भींवराजजी:—

जोधपुर के सेनानायकों (Commander in Chif) में सिंघी जेठमल जी और सिंघी भींवराज जी के नाम और काम उल्लेखनीय हैं। संवत् १८३४ में जब मरहठों की फौज जयपुर के ढूंढाण- आम्बेर इलाकों में लूट मचा रही थी तब भण्डारी भींवराज जी ने १५००० सेना को साथ लेकर मरहठों का मुकाबला किया और उन्हें बुरी तरह हरा दिया। तत्कालीन जयपुर नरेश ने जोधपुर नरेश को एक पत्र लिखा था— "भींवराज जी हों और हमारी आम्बेर रहे।" अर्थात् भींवराज जी की बदौलत ही आम्बेर की रक्षा हुई।

सिंघी इन्द्रराजजी:—

जिस समय महाराजा मानसिंहजी ने जोधपुर का शासनभार सम्भाला, उस समय भारत में अराजकता फैली हुई थी। मुगल साम्राज्य अन्तिम साँस ले रहा था। मरहठे लूटमार में व्यस्त थे। राजस्थान के नरेशों में फूट पड़ी हुई थी। ऐसे विकट समय में सिंघी इन्द्रराजजी अवत्तीर्ण हुए।

एक घरेलू मामले को लेकर जोधपुर व जयपुर नरेशों में बड़ी अनबन हो गई और जोधपुर नरेश मानसिंह जी ने सं १८६२ में जयपुर पर चढ़ाई करदी। अजमेर में दोनों ओर की सेनाएँ इकट्ठी हुईं। जोधपुर के श्री इन्द्रराज जी और जयपुर के रतनलालजी ने आपसी सुलह द्वारा इस व्यर्थ के नरसंहार को रोकने का प्रयत्न किया और अन्त में इन्दौर नरेश को बीच में रखकर दोनों में सुलह करवा दी। परन्तु कुछ दिनों के बाद ही यह सन्धि भंग हो गई। ध खे से जयपुर नरेश जगतसिंह जी ने मारवाड़ पर चढाई कर दी। गांगोली घाटी पर दोनों का मुकावला हुआ। इसमें जयपुर वालों की जीत रही। मारोठ, मेड़ता, परवतसर, नागौर, पाली और सोजत पर जयपुर का अधिकार हो गया। किले के सिवाय जोधपुर पर भी जयपुर का अधिकार हो गया।

ऐसे कठिन समय में सिंघी इन्द्रराज जी की राजनीतिज्ञता व वीरता ने बड़ा कमाल कर दिखाया। सिंघी जी तथा भण्डारी गंगारामजी दोनों मेड़ता की ओर गये और सेना का संगठन प्रारम्भ किया। पिण्डारी नेता अमीरखाँ को द्रव्य लोभ से अपनी ओर किया तथा इसकी सहायता से जयपुर पर आक्रमण कर दिया। कई मास तक युद्ध चलता रहा। टोंक के पास फागी स्थान पर जमकर युद्ध हुआ। अन्त में विजय सिंघी जी की ही हुई। जयपुर नरेश इससे घबरा उठे और जोधपुर छोड़ भागे। जयपुर पर भी जोधपुरी सेना का कब्जा हो गया, इस प्रकार विजय पताका लिए सिंघी इन्द्रराजजी जोधपुर पहुँचे और पुनः मानसिंह जी को महाराजा बनाया।

जब सिंघी इन्द्रराज जी जयपुर से जोधपुर लौटे तो उन्हें प्रधान का पद और जागीरी देकर सन्मानित किया। सिंघी इन्द्रराजजी की वीरता भरी कई कहानियाँ हैं जिससे स्पष्ट है कि, आपने प्राणों की बाजी लगा कर भी जोधपुर-राज्य की सदा सुरक्षा की। जोधपुर की सुरक्षा के लिए ही अमीरखाँ के हाथों से आपका प्राणान्त भी हुआ। सिंघी जी की इस प्रकार की मृत्यु से महाराजा मानसिंह जी को बड़ा धक्का लगा।

जोधपुर के इतिहास में सिंघी जी का नाम सदा अमर रहेगा। महाराजा मानसिंह जी इस दुःख को कभी नहीं भूल सके। आज भी मारवाड़ी में महाराजा मानसिंह जी द्वारा इन्द्रराज के सम्बन्ध में लिखा गया निम्न दोहा प्रसिद्ध है।—

इन्दा वे असवारियाँ उण चौहट्टे अम्बेर।
धिण मंत्री जोधाणरा जैपुर कीनी जेर॥

आपके बाद आपके पुत्र फतेहराज जी को प्रधान पद प्राप्त हुआ और जागीर देकर पुरस्कृत किया गया।

मेहता अखेचन्दजी

जोधपुर की रक्षा के लिये मेहता अखेचन्दजी को भी कई प्रकीर्ण लड़ाईयाँ लड़नी पड़ी थी। कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि—"अखेचन्दजी

का सामर्थ्य बहुत प्रबल था। दरबार को वे ही वे दीखते थे। रियासत में एक समय इनका प्राबल्य था।" इस प्रकार जोधपुर का आद्योपान्त इतिहास जैन वीर दीवानों और सेनापतियों के मातृभूमि प्रेम और वीरता भरी गाथाओं से भरा पड़ा है।

बीकानेर के इतिहास के जैनवीर

बीकानेर का इतिहास भी ओसवाल जैन महापुरुषों की गौरव गाथाओं से भरा पड़ा है। जोधपुर की तरह बीकानेर राज्य निर्माण और विकासक्रम में पद पद पर जैनों का हाथ पाते हैं। जोधपुर संस्थापक राव जोधाजी के बड़े पुत्र राव बीकाजी राज्य विस्तार की अभिलाषा से अपने साथ बच्छराज जी नामक एक ओसवाल मुत्सद्दी को सलाहकार के रूप में लेकर सेनासहित मण्डोर से उत्तर की ओर आगे बढ़े। अपूर्व भुजबल से वे निरन्तर विजय पाते रहे और सन् १४८८ को उन्होंने बीकानेर की नींव डाली। बच्छराजजी को उन्होंने मंत्री बनाया। राव बीकाजी को बीकानेर बसाने में श्री बच्छराज जी ने बड़ी भारी सहायता दी थी। मंत्री बच्छराजजी कुशल राजनीतिज्ञ और महान् वीर थे। राव बीकाजी ने अपने इस परम सहायक की स्मृति में "बच्छासार" नामक गाँव भी बसाया।

मंत्रीश्वर बच्छराजजी के बाद करमसिंहजी और नगराजजी बच्छावत मंत्री बने। जिस समय बीकानेर की राज्यगादी पर महाराजा जैतसिंहजी थे, तब जोधपुर के राजा मालदेव ने बीकानेर पर चढ़ाई की और अपना अधिकार कर लिया। उस समय मंत्रीश्वर नगराजजी ने बड़ी बुद्धिमानी से मुगलसम्राट् शेरशाह की मदद से पुनः बीकानेर का राज्य जैतसिंहजी के पुत्र महाराजा कल्याणसिंहजी को दिलाया। इस प्रकार ओसवाल जैनमंत्री के सहयोग से बीकानेर का खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त हुआ।

महाराव लखनसी वैद:—

बच्छावतों के बाद बीकानेर की दीवानगिरी ओसवाल वैद वंश के मुत्सद्दियों के हाथ में रही। बीकानेर बसाने के समय बच्छावतों के साथ लखनसी वैद की भी बड़ी मदद रही है। कहते हैं कि बीकानेर के २७ मोहल्लों में से १४ मोहल्ले आपके द्वारा बसाये हुए हैं। राव लखनसी की कई पीढियों तक दीवानगिरी इसी वैदवंश के हाथ में रही और इनमें कई नामाङ्कित व्यक्ति हुए।

मंत्रीश्वर मेहता करमचंदजी बच्छावत—



बीकानेर की दीवानगिरी करीब २०० वर्ष तक वच्छावत वंशपरम्परा के हाथ में रही। नगराजजी के वाद संग्रामसिंहजी और उसके वाद राव रायसिंहजी के समय में संग्रामसिंहजी के पुत्र महता कर्मचन्दजी मंत्री बनाये गये।

इतिहास में महता कर्मचन्द जी वच्छावत राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। तत्कालीन दिल्ली सम्राट् अकबर पर आपका वड़ा प्रभाव पड़ा। सम्राट् के आप प्रमुख परामशदाताओं में से थे। जीवन का अन्तिम समय आपने दिल्ली में ही विताया। इसका कारण यह था कि महाराजा रायसिंह की प्रकृति वड़ी उड़ाऊ थी अतः इनके अनवन हो गई थी। अविवेकी रायसिंहजी ने इनके परिवार के साथ भयंकर धोखा किया था। वह इस वंश को ही मिटा देना चाहते थे।

मंत्रीश्वर करमचन्दजी बड़े धार्मिष्ठ थे। आपने ही सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरी का सम्राट् अकवर को परिचय कराया जिस पर से सम्राट् अकवर ने आचार्य श्री को विशेष निमंत्रण भेजा था और लाहौर में दोनों की ऐतिहासिक भेंट हुई। आचार्य श्री के उपदेश से प्रभावित होकर उसने सारे राज्य में जैनियों के मुख्य २ पर्वों पर जीवहिंसा न करने का फरमान जारी किया।

सं० १६३५ में जब दुष्काल पड़ा तब भी मंत्रीश्वर ने पूरे वर्ष तक सैकड़ों कुटुम्बों का भरण-पोषण किया।

महाराव हिन्दूमलजी वैदः—

महाराव हिन्दूमलजी वैद एक महान् दूरदर्शी और प्रतिभा सम्पन्न वीर पुरुष हुए। सं० १८८४ में आप बीकानेर के वकील की हैसियत से दिल्ली भेजे गये। वहाँ आपने बड़ी बुद्धिमानी से बीकानेर के हितों की रक्षा की। जिससे प्रसन्न हो तत्कालीन नरेश रत्नसिंहजी ने आपको अपना दीवान बनाया और आपकी वंशपरम्परा को महाराव की उपाधि दी। श्री हिन्दूमल जी ने बीकानेर पर भारत सरकार द्वारा लिया जाने वाला २२ हजार रूपया सालाना का फौजी खर्च समाप्त कराया। बीकानेर और भावलपुर के बीच सरहद सम्बन्धी झगड़ों में भी आपकी बुद्धिमानी से बीकानेर को बड़ी अच्छी जमीनें हाथ लगीं। इस तरह आपने कई ऐसे कार्य किये हैं जिनसे बीकानेर राज्य का बहुत हित हुआ है।

आपके भाई मेहता छोगमलजी और पुत्र महाराव हरिसिंहजी भी बड़े प्रभावशाली मुत्सद्दी रहे। बीकानेर नरेशों ने इस परिवार को समय २ पर जो रुक्के भेंट किये हैं उनसे इस परिवार के प्रति राज्य की अपार श्रद्धा प्रकट होती है।

दीवान अमरचन्द जी सुराणाः —

दीवान अमरचन्दजी सुराणा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ई० सन् १८०५ में भटनेर के हाकीम जापात खाँ के उपद्रवों को शान्त करने के लिए अमरचन्द जी को भेजा गया। पाँच मास की अनवरत लड़ाई के बाद आपने भटनेर को अपने कब्जे में किया। इस बहादुरी से प्रसन्न होकर महाराजा ने आपको दीवान बनाया। इसी तरह सं० १८७२ में चुरु के ठाकुर के उपद्रवों को शान्त करने में भी आपने बड़ा कौशल दिखाया।

इस तरह बीकानेर के इतिहास में बच्छावत वैद-और सुराणा परिवार की गौरव गाथाएँ गुंथित हैं।

अजमेर के गवर्नर धनराज सिंघीः—

सन् १७८७ में अजमेर पुनः महाराजा विजयसिंह के अधिकार में आ चुका था। आपने ओसवाल सिंघी गौत्रीय धनराज सिंघी को अजमेर का गवर्नर नियुक्त किया। इस समय वहाँ की राजनैतिक स्थिति बड़ी विषम थी। मरहठे यद्यपि पराजित कर दिये गये थे। पर छिपे तौर से उनकी तैयारियाँ जारी थीं और कुछ ही महीनों बाद उन्होंने फिर मारवाड़ पर आक्रमण कर मेड़ता और पाटन पर अधिकार जमा लिया। अजमेर पर भी धावा बोला। धनराजजी के पास मरहठों के मुकाबले कम सेना थी तदपि वे बराबर मुकाबले में डटे रहे। इस बीच महाराज विजयसिंह जी ने धनराजजी को कहला भेजा कि अजमेर मरहठों को सौंप कर जोधपुर चले आओ। पर स्वाभिमानी सिंघी जी को यह आज्ञा अच्छी नहीं लगी। उन्होंने आत्मसमर्पण की अपेक्षा मरना अच्छा समझा। अपने हाथ में पहनी हुई हीरे की अंगूठी का हीरा निकाल कर उसे खा गये। इस तरह वे अपने स्वाभिमान और कर्त्तव्य पालन के लिए बलिवेदी पर चढ़ गये। मरने से पहले वे एक संदेश दे गये कि—"मेरी मृत्यु के उपरान्त ही मरहठे अजमेर में प्रवेश कर सकते हैं पहले नहीं।"

इस प्रकार राजस्थान के इतिहास में जैनजाति के नर-वीरों का अत्यन्त गौरव-मय स्थान रहा है। राजस्थान के राजनैतिक अभ्युदय में इनका सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मुगल सम्राट् और जैनमुनी

अकबर बड़ा दूरदर्शी और विचार-शील शासक था। उसकी धार्मिक उदारनीति ही उसकी दूरदर्शिता की द्योतक है। उसकी मान्यता थी कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ अच्छाई अवश्य है अतः वह उसे आदर की दृष्टि से देखता था। वह अपने दरबार में सब धर्मों के अच्छे २ विद्वानों को निमंत्रित करता था और उनके साथ धार्मिक चर्चा करता था।

धार्मिक तत्त्वों पर स्वतंत्र रूप से चर्चा और विचार हो सके इसके लिए अकबर ने फतहपुर सीकरी में इवादतखाना (प्रार्थनागृह) की स्थापना की थी। इस स्थान पर विविध धर्मों के प्रतिनिधि विचार विमर्श करते थे। जैनमुनियों को अत्यन्त आदर पूर्वक निमंत्रित करके अकबर ने उनके साथ धार्मिक चर्चा की थी। और कई मुनियों को अपने दरबार के प्रतिष्ठित विद्वानों में सर्वोच्च स्थान दिया था। प्रसिद्ध इतिहास लेखक वि० स्मिथ ने लिखा है कि—"अकबर पर सब धर्मों की अपेक्षा जैनधर्म का और जरथोस्ती धर्म का अधिक प्रभाव पड़ा था।"

वि. स्मिथ अपने 'Akbar' (अकबर) नामक ग्रन्थ में पोर्टुगीज पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) का ता. ३-७-१५९५ का पत्र उद्धृत किया है, इसमें बताया गया कि "He follows the seet of the Jains (Veritie) अर्थात् अकबर जैनधर्म का और उसके व्रतों का पालन करता है।" इसके बाद कई जैनसिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। अकबर ने जैनधर्म में से प्राणी वध का त्याग, मांसाहार का त्याग, पुनर्जन्म की मान्यता, कर्मसिद्धान्त आदि को अपनाया था और उसने जैनाचार्यों का सन्मान करके उनके तीर्थस्थानों को उनके अधीन कर दिये थे तथा उनके उपदेश के जीवरक्षा के फरमान जारी किये थे।

सम्राट् अकबर पर जैनधर्म की जो अमिट छाप पड़ी इसका सारा श्रेय सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजय सूरि और उनके विद्वान् शिष्यों को है।

श्री हीरविजय सूरि और अकबर

श्री हीरविजय सूरि जैनशासन के महा प्रभावक, अद्वितीय विद्वान् और परम प्रतापी आचार्य हुए हैं। आपने अपनी दिव्य प्रतिभा से अकबर और अन्य राजाओं पर अपना अखण्ड प्रभाव स्थापित किया था। आपने अपने महान् प्रताप से जैनशासन का उद्योत किया था।

आचार्य श्री हरिविजयसूरि की विद्वत्ता और प्रतिभा की कीर्त्ति दूर २ तक फैल चुकी थी। ऐसे समय में बादशाह अकबर ने फतहपुर सीकरी में

मोक्षसाधक धर्म का विशेष परिचय प्राप्त करने की इच्छा से एक विद्वद् मण्डल का आयोजन किया था। हीरविजयसूरि की फैलती हुई कीर्ति से आकृष्ट होकर सम्राट् अकबर ने उन्हें अत्यन्त सन्मान के साथ आमंत्रित किया।

अकबर ने गुजरात के सूबेदार साहिबखाँ को फरमान भेजा कि हीरविजयसूरि को अत्यन्त आदर और सन्मान के साथ, सब प्रकार की सुविधाएँ, जो वे चाहें प्रदान कर यहाँ भेजने का प्रबन्ध करो। साहबखान ने अहमदाबाद के श्रावकों को बुलाकर फरमान बताया। श्रावक आचार्य श्री के पास गंधार बन्दर गये। आचार्य श्री ने दीर्घदृष्टि से विचार किया कि बादशाह आदरपूर्वक निमंत्रण देता है तो उसे प्रतिबोध देकर जैनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए। यह विचार कर आचार्य श्री ने फतहपुरसीकरी की ओर विहार किया। सीकरी पदार्पण पर धूमधाम के साथ आचार्य श्री का फतहपुरसीकरी में प्रवेश कराया गया। बादशाह के मंत्री अबुलफजल ने उनका सत्कार किया। वह अपने घर भी उन्हें ले गया और उनसे बातचीत कर अत्यन्त प्रभावित हुआ।

इसके बाद बादशाह के दरबार में सूरीश्वर निमंत्रित किये गये। सूरीश्वर ने जैनसाधु के आचार-विचार का परिचय कराया और जैनसिद्धान्तों का ऐसा सुन्दर निरूपण किया कि सम्राट् उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ। बादशाह ने परीक्षा के लिए अपने अमुक जन्मग्रह का फल पूछा। उसके उत्तर में सूरीश्वर ने कहा कि आत्मार्थी जैनसाधु फलादेश कभी नहीं कहते। इससे बादशाह और भी अधिक प्रसन्न हुआ।

इसके बाद बादशाह के पुत्र (सलीम-जहाँगीर) ने एक पेटी में से पुस्तकें बाहर निकाल कर भेजीं। आचार्य ने पूछा ये जैन-पुस्तकें आपके पास कैसे आईं ? इस पर शाह ने कहा पद्मसुन्दर नामक उनका मित्र था जिसने बाराणासी के ब्राह्मण को वाद में जीता था, उस मित्र का अवसान हो जाने से सब पुस्तकें हमें प्राप्त हुईं। आप इन्हें स्वीकार करें। बादशाह के अति आग्रह से वे पुस्तकें आपने स्वीकार कीं और एक भण्डार में स्थापित कर दीं। (पद्मसुन्दर भी जैन साधु था ऐसा

प्रतीत होता है) इसके बाद बादशाह ने द्रव्य, हाथी, अश्व आदि की भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की परन्तु निस्पृह जैनमुनी अपने आचार के अनुसार इन्हें ग्रहण नहीं करते, ऐसा उत्तर दिये जाने पर भी कुछ न कुछ स्वीकार करने का बादशाह ने अत्याग्रह प्रदर्शित किया। तब सूरीश्वर जी ने कैदियों को मुक्त करने की, पींजड़ों में बन्द पक्षियों को छोड़ने की और पर्युषण के आठ दिनों में राज्यभर में प्राणीवध न हो ऐसी भावना प्रकट की। बादशाह ने आठ दिन नहीं बल्कि चार दिन अपनी तरफ से मिलाकर बारह दिन के लिए सम्पूर्ण राज्यभर में जीवहिंसा न की जाने के फरमान जारी कर दिये। अपनी सही और मोहर के साथ फरमान की ६ प्रतिलिपियाँ सारे साम्राज्य में पालन कराने के लिए भेज दी गई।

इसके बाद सूरीश्वरजी के शिष्य श्री शान्तिचन्द्र गणी के कहने से अमर तालाब-जिसे बादशाह ने बडे शौक से बनवाया था- आचार्य श्री को अर्पण कर दिया अर्थात् वहाँ मछलियाँ मारने की मनाई कर दी गई। बादशाह ने साथ ही अब से शिकार न खेलने की प्रतीज्ञा कर ली। आइने अकबरी में अकबर की कहावतों में यह लिखा है—"राज्य के नियमानुसार शिकार खेलना बुरा नहीं है तथापि पहले जीवरक्षा का ख्याल रखना अत्यन्त आवश्यक है।"

बादशाह अकबर ने यह भी घोषित किया कि सब पशु-प्राणी मेरे राज्य में मेरे समान सुखी रहे ऐसा मैं प्रयत्न करूँगा। नवरोज के दिन 'अमारीघोष' करवाऊँगा। अकबर बादशाह ने इस प्रसंग पर श्री हीरविजयसूरि को 'जगद्गुरू' की उपाधि प्रदान की। सूरीश्वर के कथनानुसार उसने बन्दियों को मुक्त किये, पक्षियों को छोड़ दिये और मछलियों को मारने की मनाई कर दी।

इसके पश्चात् बादशाह के मान्य जौहरी दुर्जनमल ने सूरिजी से से कई जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। दिल्ली प्रदेश में विचरण कर सूरिजी ने अनेक उपकार के कार्य किये और अनेक अनार्यों ने भी मांसादि न खाने की प्रतीज्ञा ली। इसके बाद अपने शिष्य उपाध्याय शान्तिचन्द्र को बादशाह के पास रखकर आचार्य पाटन की ओर पधारे।

तीन वर्ष बाद सं १६४५ में जब शान्तिचन्द्र उपाध्याय ने अपने गुरुवर्य के दर्शन के लिए जाने की इच्छा की तब बादशाह ने अपनी तरफ से सूरिजी को भेंट करने के लिए निम्न फरमान जारी कर दिये :—

(१.) जजिया नामक कर को गुजरात से दूर करने का फरमान।

(२.) पर्युषण आदि के बारह दिन तक जीवहिंसा न करने के फरमान जारी किये थे उनमें इतने दिन और स्वेच्छा से बढ़ा दिये—सब रविवार, सूफी लोगों के सब पर्व दिन, ईद के दिन, संक्रान्ति की सब तिथियाँ, अपना जन्म-मास, मिहिर के दिन, नवरोज के दिन, अपने तीनों पुत्रों के जन्म दिन, मोहर्रम महीने का दिन, इस प्रकार वर्ष में कुल ६ मास और ६ दिन सारे साम्राज्य में किसी प्रकार की जीवहिंसा न की जाय।

भानुचन्द्र-सिद्धिचन्द्रः—

ये दोनों हीरविजयसूरि के शिष्य थे। उपाध्याय भानुचन्द्र मुनि ने अकबर को "सूर्यसहस्र नाम" संस्कृत में सिखलाये। भानुचन्द्र की प्रतिभा से बादशाह बड़ा अनुरंजित हुआ था। इनके कहने से अकबर बादशाह ने शत्रुञ्जय की यात्रा पर जो कर लिया जाता था वह बन्द कर दिया। इस युगल जोड़ी ने बाण की कादम्बरी पर सुन्दर टीका लिखी है उसकी प्रशस्ति में इसका उल्लेख किया गया है। सिद्धिचन्द्र ने अपने कौशल से बादशाह को प्रसन्न करके सिद्धाचल पर मन्दिर बनाने की निषेधाज्ञा को रद्द करवाया ये मुनि बड़े बुद्धिमान थे। ये शतावधानी भी थे। इनके अवधान प्रयोग देखकर बादशाह ने इन्हें "खुशफहेम" की उपाधि प्रदान की थी।

विजयसेन सूरिः—

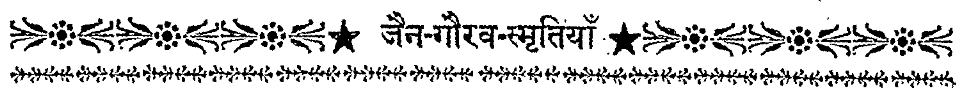
ये हीरविजयसूरि के प्रधान शिष्य थे। अकबर पर आपका भी बड़ा प्रभाव था।

आप वादविद्या में बड़े निपुण थे। अकबर की सभा में इन्होंने ३६६ ब्राह्मणवादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किये इससे बादशाह ने इन्हें "सवाई विजयसेन" की उपाधि प्रदान की।

'युगप्रधान' जिनचन्द्र सूरिः—

बीकानेर के सुप्रसिद्ध मंत्री कर्मचन्दजी बच्छावत अकबर के दरबार में रहा करते थे। इनके सम्पर्क के कारण अकबर को खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि के दर्शन और उनसे वार्तालाप करने की इच्छा हुई। बादशाह के आग्रह से कर्मचन्दजी आचार्य श्री की सेवा में गये और उन्हें लाहौर पधारकर बादशाह को प्रबोध देने की प्रार्थना की। जीवदया और शासन की प्रभावना का कारण समझ कर आचार्य श्री लाहौर आये। बादशाह अकबर ने आपका बहुत सम्मान और स्वागत किया। बादशाह के आग्रह से आपने लाहौर में ही चतुर्मास किया। आचार्य श्री का अकबर पर गहरा प्रभाव पड़ा। आचार्य श्री के कहने से उसने द्वारका और शत्रुञ्जय आदि सब जैनतीर्थों की व्यवस्था कर्मचन्दजी बच्छावत को सौंप दी और उसका लिखित फरमान आजमखाँ को दिया और कहा कि सब जैनतीर्थ कर्मचन्द जी को सौंप दिये हैं; उनकी रक्षा करो। इससे शत्रुञ्जय पर नवरंगखाँन ने जो भंग किया था उसका निवारण हुआ। अकबर जब काश्मीर जाने लगा तब उसने आचार्य श्री का 'धर्मलाभ' लिया। इसकी स्मृति में आषाढ़ शुक्ला ६ से लेकर सात दिन पर्यन्त सारे साम्राज्य में जीवहिंसा न करने के फरमान निकाल कर ग्यारह सूबों में भेज दिये। सम्राट् अकबर की इस अमारि घोषणा से उसके अधीनस्थ राजाओं ने भी अपनी २ सीमा में किसी ने पन्द्रह दिन, किसी ने २० दिन और किसी ने महीने दो महीने के लिए अमारिघोष करवाया। बादशाह के आग्रह से आचार्य श्री के शिष्य मानसिंह काश्मीर पधारे। वहाँ अनेक सरोवरों के जलचर प्राणियों को अभदान दिलवाया।

संवत् १६४६ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को अकबर ने जिनचन्द्रसूरि को 'युगप्रधान' की पदवी प्रदान कर सन्मानित किया और उनके शिष्य मानसिंहसूरि को आचार्य पद प्रदान कर 'जिनसिंह सूरि' नाम से सम्बोधित किया। इस प्रकार अकबर पर इन आचार्य श्री का भी गहरा प्रभाव पड़ा था।



जहाँगीर बादशाह और जिनचन्द्रसूरि:-

संवत् १६६६ के जहाँगीर बादशाह ने ऐसा हुक्म निकाल दिया था कि सब धर्मों के साधु देश से बाहर चले जाँय। इससे जैनमुनिमण्डल में भी भीति फैल गई। तब जिनचन्द्र सूरि ने पाटन से आगरा आकर बादशाह को समझाया और इस हुक्म को रद्द करवाया।

शाहजहाँ और शान्तिदास सेठ:-

सेठ शान्तिदास एक राजमान्य जौहरी और प्रतिष्ठित श्रीमंत व्यापारी थे। इनकी कई पेढियाँ सूरत आदि बड़े २ शहरों में चलती थी। ये ओसवाल जैन थे। जहाँगीर के राज्य में सं० १६७८ में बीबीपुर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ का सुन्दर भव्य मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। सं० १६८२ में मुक्तिसागर मुनी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई गई। यह स्थापत्य का एक उच्च कोटि का नमूना था। जब औरंगजेब को अहमदाबाद की सूबागिरी मिली तब उसने मन्दिर को बहुत क्षति पहुँचाई और उसे मस्जिद का रूप दे दिया। शान्तिदास ने शाहजहाँ से प्रार्थना की। उसने शहाजदा दाराशिकोह के हाथ का फरमान (सं० १७०१, हीजरी १०५८) भेजा जिसमें लिखा गया था कि मन्दिर शान्तिदास को सौंपो। मस्जिद की आकृति निकाल डालो। उसमें से जो सामान निकाला गया है वह वापस कर दो।" इन्हीं शान्तिदास सेठ के वंशजों के हाथ में अहमदाबाद की नगर शेठाई चली आ रही है। एक ऐतिहासिक कुटुम्ब के रूप में गुजरात के इतिहास में शान्तिदास के कुटुम्ब का बहुत ऊँचा स्थान है।

मुरादबक्ष और बादशाह औरंगजेब ने शान्तिदास को शत्रुञ्जय का प्रदेश उसकी दो लाख की आय के साथ पुरस्कार में दिया। इसी तरह अहमदशाह ने पारसनाथ पर्वत जगत सेठ महताबराय और इनके वंशजों को दे दिया जिससे जैन निर्विघ्न रूप से वहाँ की यात्रा कर सकें।

श्री उ. दो. बोरदिया ने History and Litrature of Jainism में पृष्ठ ७५ पर लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजी ने जैनकवि रामचन्द्र सूरि को

हुमूल्य भेंट प्रदान की थी। तथा सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने (१३५१-३८८) श्रीपाल चरित्र के कर्त्ता रत्नशेखर को बहुत सन्मान प्रदान केया था।

सारांश यह है कि संवत् १६१३ से १७१३ तक की भारत की शान्ति की शताब्दी में अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में जैनधर्म की प्रतिष्ठा बढ़ी। सबसे अधिक छाप सम्राट् अकबर पर पड़ी। वह जैनसिद्धान्तों में इतना रस लेता था कि लोग यह शंका करते थे कि सम्राट् गुप्तरूप से जैनधर्म का पालन करता है। अकबर के अहिंसा विषयक फरमान इस बात की पुष्टि करते है। अबुलफजल और बदाउनी के लेखों से भी यही ध्वनित होता है। सं० १६३५ से लेकर १६६१ तक (अकबर के मरणकाल तक) जैनमुनियों का अकबर के साथ गाढ सम्पर्क रहा। भानुचन्द्र उपाध्याय अकबर के मरणकाल तक उसके दरबार में रहे थे।

हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय, सिद्धचन्द्र उपाध्याय और जिनचन्द्रसूरि जैसे महाप्रतिभासम्पन्न जैनमुनियों ने अपनी प्रतिभा के बलपर मुगल बादशाहों को प्रभावित करके सचमुच जैनधर्म की की महती प्रभावना और सुरक्षा की है। जैनइतिहास में इनका नाम स्वर्णाक्षरों से सदैव के लिए अङ्कित रहेगा।

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के जैनवीर

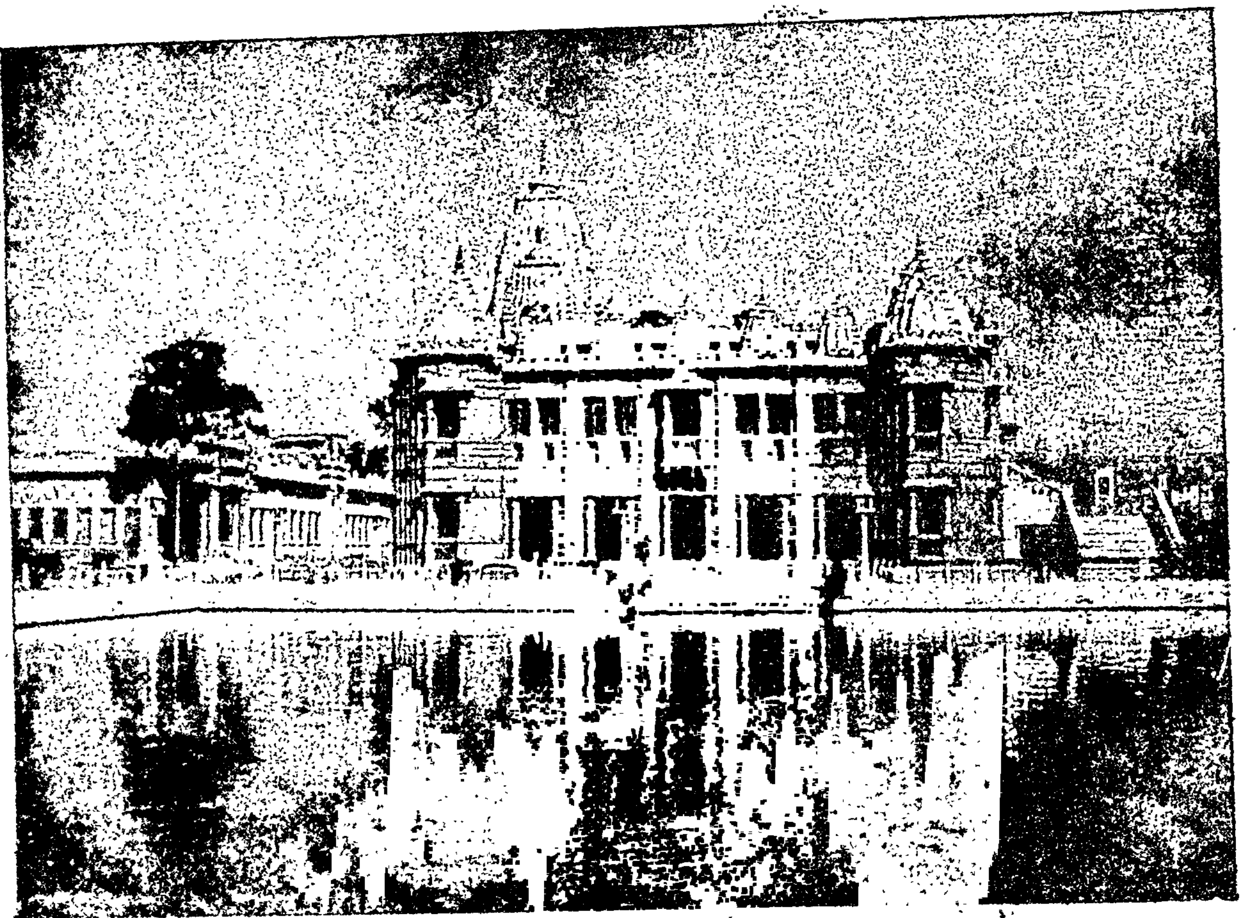
गुलाम भारत को आजाद बनाने में जैनसमाज, उसके अहिंसा के उसूलों और स्वार्थ त्यागकर देशसेवा को अपनाने वाले जैनवीरों का स्थान भी विशेष गौरव पूर्ण रहा है। देशभक्ति की इस परम्परा को जयपुर में स्व० अर्जुनलालजी सेठी के "जैनवर्धमान विद्यालय" ने उस सुदूर भूत में ही ऐसा घनीभूत किया की क्रान्ति की वल्लरी को वहीं से अमरबेल बन कर दिल्ली के लार्ड हार्डिन्ज बम काण्ड से लेकर अजमेर के डोंगरा-शूटिंग-काण्ड तक परिव्याप्त होते देखा गया। स्व० चन्द्रशेखर आजाद के हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र दल ने देश के प्रथम कोटि के जैन राजनीतिज्ञ पं० अर्जुनलालजी सेठी की वृद्धावस्था तक उनका प्रश्रय पाया था। सेठीजी राजस्थान में राजनैतिक

चेतना और क्रान्ति के महान् पोषक थे और उनका जैनविद्यालय क्रान्तिकारियों का आश्रयगृह तथा राष्ट्र में फैलने वाली आग की चिनगारी सुलगाने वाली आगपेटी बना हुआ था, राष्ट्र में स्वतंत्रता प्राप्तिहेतु हुए कई क्रांन्तियों की विचारणा यहीं बैठकर हुई।



अमरशहीद पं० अर्जुनलालजी सेठी

सेठीजी कोरे राजनीतिज्ञ ही नहीं थे किन्तु जैनधर्म के सिद्धान्तों व क्रियाओं के भी वे कठोर पालक थे। जेल के प्रतिबंधनों में भी वे जिनप्रतिमा दर्शन बिना भोजन नहीं करने का अपना नियम नहीं छोड़ सके और अनशन किया। उन्होंने जिन प्रभु की स्तुति में काव्य रचनाएँ भी कीं। वे सत्य के उपासक थे—सम्प्रदायवादी नहीं। उन्होंने जिन प्रभु की स्तुति रचना के साथ राम, कृष्ण और मुसलमानों के पैगम्बरों को भी अपनी स्तुति में स्मरण किया है। इस सर्वतोमुखी नेता की सत्य और स्पष्ट निष्ट विचार धारा से राजस्थान की राजनीति के सेठों के आसन काँप उठे—थैलिकों के बल इनकी राजनैतिक हत्या के षड्यंत्र रचे गये और उनका अंतिमकाल बड़े संकटों में बीता। स्वतंत्र भारत में यह अध्याय विचारकों के आँखों में 'आँसू' लाये बिना न रहेगा। जैनसमाज भी तब अपने इस हीरे का सही मूल्यांकन न कर सका पर आज सेठीजी जैनसमाज के थे यह जैनसमाज के लिये बड़े गौरव का विषय बन गया है। राष्ट्र को आज ऐसे सपूतों का वियोग अखरता है। आज उनकी चिर-स्मृति में अजमेर म्यूनीसिपैलिटी अपने शहर के मुख्य रास्ता 'मदारगेट' का नाम "अर्जुनलाल सेठी सड़क" रखकर फूली नहीं समाई।



दि० जैन मन्दिरजी बेलगछिया, कलकत्ता

सेठीजी के सुदीर्घ क्रान्तिकारी इतिहासकाल में अनेक जन-युवकों ने क्रान्तिकारी कार्यों में अपने आपको झोंका लेकिन उनका कोई लेखा उपलब्ध नहीं है।

क्रान्तिकारी की चरम सफलता ही यह है कि वह सबकुछ करघर के भी अज्ञात रह जाय।

सन् ४२ का हमारी आजादी का अन्तिम आन्दोलन आसाम प्रान्त में श्री छगनलाल जैन, एम. ए., विशारद को सामने लाता है। श्री. जैन भूमिगत रहे, पकड़ में न आये और तोड़ फोड़ एवं समस्त प्रकार के गुप्त क्रान्तिकारी क्रियाकलापों को प्रगति देते रहे। यह जैन-युवक वहाँ से अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड फेंकने में कुछ भी उठा नहीं रख रहा था। यह भी उस आसाम में जसकी सीमा से नेताजी की आजाद हिन्द फौज भी आही लगी ही थी।

कलकत्ते के स्व० पद्मराज जैन को कौन भूल सकता है? आपने १९०२ में अमरावती में लोकमान्य तिलक को अपने यहाँ ठहरा कर कई महीनों तक बरार प्रान्त में जन जागरण का सुयोग दिया। उनके साथ सूरत कांग्रेस में गये।

सन् १९२० की कलकत्ता कांग्रेस से ही आप महात्मा गांधी के साथी बने।

विदेशी वस्त्र बहिष्कार से लेकर तिलक स्वराज्य कोष में लाखों रुपये आपके प्रयास से एकत्र हुए। सन् २१ के असहयोग आन्दोलन में आप वहीं से एक साल के लिए तत्कालीन देशभक्तों के स्वर्ग-जेल हो आये।

सन् ३०-३१ का सत्याग्रह संग्राम श्री पद्मराज जैन की सुयोग्य सुपुत्री श्रीमती इन्दुमती गोयनका का सिंहनी रूप सामने लेकर आया। आप पहली सत्याग्रह नारी थीं जिन्होंने जेल जाने की परम्परा आरम्भ की। इन्दुमती बहन को अपने पूज्य पिता श्री पद्मराज जैन की सन् २१ की असहयोग आन्दोलन की देशभक्ति सन् ३१ के सत्याग्रह संग्राम के लिए

विसारत में मिली थी। आपने पुलिस वालों को देशभक्ति सिखानी शुरू की और इसी अपराध में ६ महीने के लिए जेल भेज दी गई। उस समय इन्दुमती की आयु केवल १५ वर्ष की थी और गर्भवती आप अलग थीं। इस कच्ची अवस्था में आजादी भी वह धुन बहुत कम बहनों में पाई गई।

बनारस के सरदारसिंहजी महनोत की धर्म पत्निश्रीमती सज्जनदेवी महनोत भी सन् ३०-३१ के आन्दोलन में कलकत्ते में जेल गईं और कई बार गईं। यहाँ तक की सन् ४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल और सन् ४२ की नजरबन्दी भी आपकी देशभक्ति की लगन को प्रमाणित करती हुईं आईं और चली गईं। सन् ४६ में देश का स्वराज्य लेकर ही सज्जन बहन मुनोत जेल से बाहर आईं।

सरदारसिंह महनोत की भतीजी देवीबहन भी सन् ३० के सत्याग्रह संग्राम में अपनी चाची सज्जनदेवी और सहेली सरस्वतीदेवी के साथ काम करती रहीं। भारत-माता की मुक्ति के लिए यह जैन-बाला उस अल्प आयु में दो बार जेल हो आई। देवी बहन के रहन-सहन की सरलता और विचारों में ओज भरा था। तब कौन जानता था इनका ससुराल भी प्रसिद्ध देशभक्त पूनमचंदजी रांका के परिवार में नियोजित है। श्रीमती देवीरांका पूनमचंद जी रांका के छोटे भाई को ब्याही गई। नागपुर जाकर भी देश-सेवा में लगी रहीं और अब स्वर्गीय हो चुकी हैं।

अजमेर के सुप्रसिद्ध काँग्रेसी श्री जीतमलजी लूणिया स्वयं देशभक्त रहे। आपकी पत्नी श्रीमती सरदार बाई लूणिया सन् १९३२ की ८ अगस्त को एक जुलूस का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार हुई।

इन दृष्टान्तों से ही दुनिया देख सकती है कि भारत के स्वातंत्र्य संग्राम में जैन-समाज की देन क्या कुछ कम रही होगी ? जिसके पर्दा-लुंठित स्त्री-समाज ने ऐसा सतत सजीव नेतृत्व दिया और वर्षों तक का कठोर कारावास पाया।

कलकत्ते के राष्ट्रीय जीवन में श्री विजयसिंह जी नाहर सर्वप्रथम हैं। आपने कानून का अध्ययन छोड़ कर सन् ३० के आन्दोलन को आत्मा

र्पण किया। इसमें १०-१२ बार आपके निवास स्थान की तलाशियाँ ली गईं। सन् ४२ में विजयसिंह जी सुरक्षा बन्दी बनाये गये। सन् ४५ तक शाही कैदी रहे। आज भी कलकत्ता के राजनैतिक जीवन के आप प्राण हैं।

श्री० भंवरमल जी सिंघी सन् ४२ में अपनी अगस्त क्रान्ति संबंधी गति-विधियों के कारण नवम्बर में नजरबन्द कर दिये गये। सन् ४५ में बिमारी के कारण रिहा हुए तो ऐसे कि बंगाल में घुस न सकें।

श्री सिद्धराज जी ढड्डा ने भी सन् ४२ के आन्दोलन में नजरबन्दी भोगी और तब से सतत कांग्रेस को सर्म्पित जीवन बिताते हुए राजस्थान के उद्योनमंत्री पद को प्राप्त किया।

सुजानगढ़ के कलकत्ता प्रवासी बैरिस्टर डालमचन्द जी सेठिया ने सन् ४२ के प्रचण्ड विद्रोही डा० राममनोहर लोहिया को छ महीने तक अपने घर में छिपाये रखने का सफल साहस किया। श्री जयप्रकाश नारायण और अन्य क्रांतिकारियों को भी इसी प्रकार अपने यहाँ रखने के साहस पूर्ण कार्य के कारण सेठिया जी को खुद ५४ दिन की जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी।

बालासोर-प्रवासी लक्ष्मणगढ़ के जैन-गौरव श्री० ज्वालाप्रसाद सरावगी भी सन् ४२ की अगस्त क्रान्ति में जेल गये।

भागलपुर के श्री अगरचन्द्र जी जैन भी सन् ३०-३२ और ४२ के दोनों आन्दोलनों में देश की आजादी की कामना से जेल-यात्रा का पुण्य लाभ करते रहे।

आगरा के भारत विख्यात जैन-गौरव सेठ अचलसिंह जी की ३० साल की देशभक्ति व कांग्रेस निष्ठा को कौन नहीं जानता? सन् ४२ में आपको भी दो वर्षों के लिए नजरबन्द रहना पड़ा था।

वर्धा प्रवासी और फुलेरा के पास के उग्रावास के निवासी के श्री. चिरंजी लाल जी जैन सन् २१ से लगातार राष्ट्रीय आन्दोलनों में काम

आते रहे। नागपुर के देश प्रसिद्ध झण्डा सत्याग्रह में आप जेल गये और सन् ३० के आन्दोलन में भी।

नागपुर के श्री. पूनमचन्द जी रांका पुराने देशभक्त और स्व० महात्मा गांधी के प्रियजनों में से हैं। आपने सन् २० के सत्याग्रह संग्राम से स्वराज्य मिलने तक ६-७ बार जेल यात्रायें की। अपनी निजी धन-राशी का उल्लेखनीय भाग भी आपने देशसेवा के कामों में लगाया है। राष्ट्रतपस्वी रांका जी की धर्मपत्नी श्रीमती धनवती बाई रांका भी देश के स्वातंत्र्य संग्राम में जेल हो आई हैं और कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में भाग लेती हैं।

जामनेर के सेठ राजमल जी ललवाणी का नाम भी देशभक्तों में मुख्य है। अमरावती के श्री रघुनाथमल कोचर भी सन् ३२ से कांग्रेस का कार्य करते रहे और सन् ४१ के आन्दोलन में दो दो बार जेल गये।

धामन गाँव के श्री सुगनचंदजी लूणावत भी कई बार जेल गये और अपनी देश भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं।

जैन-समाज के राष्ट्र-गौरव व्यक्तियों में अहमदनगर के श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया का विशिष्ट स्थान है। श्री फिरोदिया जी सन् १६ से कांग्रेस के साथ रहे हैं। सन् ४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में ६ महीने और सन् ४२ की क्रान्ति में २१ महिने का कारावास आपको मिला।

राष्ट्र-भारती की अर्चना में अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले जैन युवक-युतियों की कमी नहीं है। यदि सबके केवल नाम मात्र भी गिनाएँ जाँय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। हमने ऊपर खिचड़ी के कुछ चाँवल नमूने के तौर पर सन् ४२ के आन्दोलन में से ही कुछ चरित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रच्छन्न क्रान्तियुग का प्रारम्भिक आभास भी छाती फुला देने वाला है।

जैन-वीरों ने राष्ट्र की आजादी के लिये अपना तन, मन और धन सब कुछ दिया। जैन युवक और युवतियाँ स्वातंत्र्य संग्राम में झूझीं।

वह भी एक निराला इतिहास होगा काश! यदि कोई इन शहीदों की कुरबानियों को लेखबद्ध करे।

जैन-साहित्य और साहित्यकार

जैनधर्म ने विश्व-साहित्य की समृद्धि में असाधारण योग प्रदान किया है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में जैनाचार्यों ने अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है। जब हम जैन-साहित्य की विस्तीर्णता, समृद्धता और भव्यता की ओर दृष्टिपात करते हैं तो उसके निर्माता समर्थ आचार्यों की प्रकाण्ड विद्वत्ता और अथक परिश्रम का ध्यान आता है और उनके प्रति श्रद्धा से हृदय भर जाता है। इन जैनाचार्यों के द्वारा निर्मापित साहित्य, विश्वसाहित्य की बहुमूल्य निधि है। प्राकृत भाषा में लिखा गया इस कोटि का साहित्य जैनधर्म ने ही प्रस्तुत किया है।

भगवान् महावीर ने प्रचलित लोकभाषा का आदर कर प्राकृत (अर्धमागधी) में उपदेश प्रदान किया। बाद में जैनचार्यों ने प्रान्तीय भाषाओं को भी साहित्य का रूप प्रदान किया। तामिल और कन्नड़ का

साहित्य तो जैनाचार्यों के ग्रन्थों से ही समृद्ध हुआ है। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि "अपभ्रंश साहित्य की रचना और सुरक्षा में जैनों ने सबसे अधिक काम किया है।" जैनाचार्यों ने जैसे प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्य की रचना की वैसे ही विद्वद्‌योग्य संस्कृत भाषा में भी उन्होंने प्रकाण्ड पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। निष्पक्ष साहित्यवेत्ताओं का मन्तव्य है कि यदि उपलब्ध संस्कृत साहित्य में से जैन साहित्य को अलग करदिया जाय तो संस्कृत साहित्य नितान्त फीका हो जाता है।

भारतीय संस्कृति व इतिहास के अध्ययन के लिए जैनसाहित्य का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना भारतीय इतिहास और संस्कृति का सर्वाङ्ग और समुचित ज्ञान नहीं हो सकता। जैनसाहित्य इतिहास-संस्कृति और पुरातत्त्व सम्बन्धी विपुल सामग्री प्रदान करता है। इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से जैनग्रन्थों का बड़ा ही महत्त्व है।

जैनसाहित्य अति समृद्ध और विशाल है। उसका पूरा २ परिचय और इतिहास इस निबन्ध की छोटीसी परिधि में नहीं दिया जा सकता है। इस विषय के लिए तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ की आवश्यकता है। यहाँ तो केवल अतिसंक्षेप में उसके मुख्य २ साहित्य और साहित्यकारों के विषय में उल्लेख किया जाता है। काल की दृष्टि से निम्न विभागों में विभक्तकर यह वर्णन किया जायगा :—

(१) आगमकाल।
(२) संस्कृत साहित्य का उदयकाल।
(३) संस्कृत साहित्य का उत्कर्ष-काल और भाषासाहित्य का उदय।
(४) आधुनिककाल।

१ आगमकाल

जैनधर्म के आधार और प्रमाणभूत ग्रन्थ 'आगम' कहे जाते हैं। ब्राह्मणधर्म में वेदों का जो महत्त्व है वही जैनपरम्परा में आगमों का है। ब्राह्मणपरम्परा अपने वेदों को अपौरुषेय मानती है। जैनधर्म ऐसा नहीं

मानता है। उसके आगम किसी अदृष्ट व्यक्ति के बनाये हुए नहीं हैं अपितु पुरुष-प्रणीत हैं। जिस पुरुष ने रागद्वेष और अज्ञान पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त करली है उस वीतराग पुरुष के द्वारा उपदिष्ट तत्त्व ही आगम है। जिन्होंने राग और द्वेष का निर्मूल उन्मूलन कर वीतरागता प्राप्त की है, वे जिन हैं और उनका उपदेश ही जिनागम है। वीतराग और सर्वज्ञ होने के कारण उनके वचनों में दोष की सम्भावना नहीं, पूर्वापर विरोध नहीं और युक्तिबाध भी नहीं होता। अत. जिनोपदेश ही मुख्यतया जैनागम है।

जिनेन्द्र भगवान् उपदेश देकर कृतकृत्य हो जाते हैं। वे ग्रन्थरचना नहीं करते। ग्रन्थरचना तो उनके शिष्य गणधर करते हैं।

अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गन्थन्ति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए त ओ सुत्तं पवत्तइ॥

(आवश्यक निर्युक्ति)

अर्थात्—जैनागमों के अर्थोपदेष्टा स्वयं तीर्थङ्कर हैं और सूत्र प्रणेता चतुर्दश पूर्वधर गणधर होते हैं अतः जैनागम तीर्थङ्कर प्रणीत कहे जाते हैं।

इस तरह जैनपरम्परा अपने आगमों को पुरुषप्रणीत मानकर अपनी वैज्ञानिकता द्योतित करती है जबकि ब्राह्मणपरम्परा वेदों को अपौरुपेय मानकर अपनी काल्पनिकता को प्रकट करती है।

जैनागम वीतराग-पुरुष प्रणीत होने पर भी अनादि-अनन्त हैं। ऐसा कोई समय नहीं था जिसमें द्वादशाङ्गी गणिपिटक न रहा हो, ऐसा कोई समय नहीं है जिसमें यह गणिपिटक नहीं है और ऐसा कोई समय नहीं होगा जिसमें यह नहीं रहगी। यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है। इसका कारण यह है कि सत्य सदा एकसा ही है। देश, काल और दृष्टि के भेद से उसका आविर्भाव विविध रूप में होता है तदपि इन विविध रूपों में भी मूल तत्त्व-सनातन सत्य एक ही रहता है। अतः तीर्थङ्करों का उपदेश अर्थरूप से एक सा ही होता है। सब तीर्थङ्कर एक ही-समान अर्थ का प्ररूपण करते हैं। इस अपेक्षा से जैनागम अनादि अनन्त है। तीर्थङ्कर-परम्परा की अपेक्षा जैनगम अनादि-अनन्त है और एक तीर्थङ्कर की अपेक्षा जैनगम सादि-सान्त भी है।

श्रमणभगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे। इनमें से नौ तो भगवान् की उपस्थिति में ही निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम और पञ्चम गणधर श्री सुधर्मास्वामी विद्यमान थे। वर्तमान तीर्थ श्री सुधर्मा से ही प्रवर्त्तित है,और वर्तमान द्वादशाङ्गी के सूत्ररूप के प्रणेता भी सुधर्मास्वामी हैं द्वादशाङ्गी के नाम इस प्रकार हैं।

(१) आचाराङ्ग (२) सूत्रकृताङ्ग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (६) ज्ञातृधर्मकथाङ्ग (७) उपासकदशाङ्ग (८) अन्तकृद् दशाङ्ग (९) अनुत्तरौपपातिक (१०) प्रश्न व्याकरण (११) विपाक और (१२) दृष्टिवाद।

बारहवें दृष्टिवाद के अन्दर १४ पूर्व भी समाविष्ट हैं। चौदह पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) उत्पादपूर्व—इसमें द्रव्य की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का विषय है।
(२) अग्रायनीयपूर्व—इसमें मूलतत्व, द्रव्य आदि का विषय है।
(३) वीर्यप्रवादपूर्व—इसमें द्रव्य, महापुरुष और देवों की शक्ति का विषय है।
(४) अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व—इसमें वस्तु निर्णय के सात प्रकार, नय प्रमाण आदि का विषय है।
(५) ज्ञानप्रवादपूर्व—इसमें सत्यज्ञान और मिथ्या ज्ञान सम्बन्धी वर्णन है।
(६) सत्यप्रवादपूर्व—इसमें सत्य और असत्य वचन सम्बन्धी विवेचन है।
(७) आत्मप्रवादपूर्व—इसमें आत्मा सम्बन्धी वर्णन है।
(८) कर्मप्रवादपूर्व—इसमें कर्मों की चर्चा है।
(९) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व—इसमें कर्मक्षय सम्बन्धी विवेचन है।
(१०) विद्याप्रवादपूर्व—विद्या सिद्धी का वर्णन इस पूर्व में है।
(११) कल्याणवाद पूर्व या अवन्ध्यपूर्व—इसमें ६३ उत्तम पुरुषों के जीवन-प्रसंग का उल्लेख है।
(१२) प्राणवादपूर्व—इसमें औषधी सम्बन्धी उल्लेख है।
(१३) क्रियाविशालपूर्व—इसमें संगीत, वाद्य आदि कला और धर्मक्रियाओं का वर्णन है।

(१४) लोकबिन्दुसार—इसमें लोक, धर्मक्रिया और गणितसम्बन्धी विवेचन है।

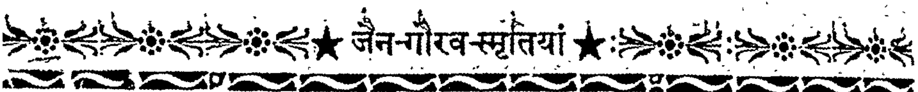
वैसे तो समस्त जैनागमों का 'दृष्टिवाद' में ही अवतार हो जाता है किन्तु दुर्बलमति पुरुष और स्त्रियों के लिये उसके आधार से अलग अलग ग्रन्थों की रचना होती है। श्री जिनभद्र क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य में कहा है:—

जइविय भूयावाए सव्वस्स व ओमयस्स ओआरो।
निज्जूहणा तहावि हु दुम्मेहे इत्थीय (गाथा. ५५१)॥

अर्थात्-यद्यपि दृष्टिवाद में सकल वाङ्मय का अवतार हो जाता है-सब विषयों का समावेश हो जाता है तदपि मन्दमति के स्त्री-पुरुषों के लिएशेप अंगों की रचना की जाती है।

उक्त विवेचन से यह प्रतीत हो जाता है कि सकल श्रुत का मूलाधार गणधर-ग्रथित द्वादशाङ्ग हैं परन्तु इनके अतिरिक्त कतिपय अंगवाह्यग्रन्थ भी आगम रूप से प्रमाणभूत माने जाते हैं। अंगवाह्य ग्रन्थों की रचना स्थविरों के द्वारा की जाती है। ये स्थविर दो प्रकार के होते हैं- चतुर्दशपूर्वधारी (श्रुतकेवली) और दशपूर्वधारी। चतुर्दशपूर्वधारी की इतनी योग्यता मान्य है कि वे जो कुछ कहेंगे वह जिनागम से विरुद्ध नहीं होगा। जिनक्तो विपयों को संक्षिप्त या विस्तृत करके तत्कालीन युग के अनुकूल ग्रन्थरचना करना उनका प्रयोजन होता है। इनके द्वारा रचितग्रन्थों का प्रामाण्य स्वतः नहीं किन्तु गणधर प्रणीत आगमों के साथ अविसंवादी होने से है। जैन अनुश्रुति के अनुसार ऐसे चरमश्रुतकेवली श्री भद्रवाहु स्वामी हुए हैं। इनके वाद श्री स्थूलिभद्र ने यद्यपि चौदह पूर्वो का अध्ययन किया तदपि उन्होंने अन्त के चार पूर्वो की मूलमात्र वाचना ली। अतः वे अर्थ की दृष्टि से तो दशपूर्वी ही थे। जैनमान्यतानुसार चतुर्दशपूर्वधर और दशपूर्वधर नियमतः सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः उनके ग्रन्थों में आगम विरोधी वातों की सम्भावना नहीं होती अतः उनके रचित आगम भी प्रमाण कोटि में गिने जाते हैं।

अंगवाह्य आगम ग्रन्थों के सम्बन्ध में सब जैनसम्प्रदाय एकमत नहीं हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बरमूर्त्तिपूजक और स्थानकवासी सम्प्रदाय इस विपय



में भिन्न २ मान्यताएँ रखते हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार चौदह अंग बाह्य आगम हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:-

(१) सामायिक (२) चतुर्विंशति स्तव (३) बन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) वैनयिक (६) कृतिकर्म (७) दशवैकालिक (८) उत्तराध्ययन (९) कल्पव्यवहार (१०) कल्पाकल्पिक (११) महाकल्पिक (१२) पुण्डरीक (१३) महापुण्डरीक और (१४) निशीथिका।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार वर्त्तमान में द्वादशाङ्ग और अंगबाह्य ग्रन्थ भी सब विच्छिन्न हो गये हैं। परन्तु श्वेताम्बर परम्परा ऐसा नहीं मानती। उसके मन्तव्य के अनुसार द्वादशाङ्ग और अंगबाह्य ग्रन्थों में परिवर्त्तन-परिवर्धन होते हुए भी वे प्रायः सुरक्षित हैं और आज भी उपलब्ध हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय निम्न २१ अंगबाह्य आगमों का प्रामाण्य स्वीकार करता है:-

– १२ उपाङ्ग– १ औपपातिक, (२) राजप्रश्नीय (३) जीवाभिगम (४) प्रज्ञापना (६) सूर्यप्रज्ञप्ति (७) चन्द्रप्रज्ञप्ति (५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (८) निरयावली (९) कल्पावतंसिका (१०) पुष्पिका (११) पुष्पचूलिका (१२) वृष्णिदशा।

४ छेद—व्यवहार, बृहत्कल्प, निशीथ और दशाश्रुतस्कन्ध

४ मूल—उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोग

१ आवश्यक सूत्र।

इस प्रकार दृष्टिवाद (जो कि विच्छिन्न हो चुका है) के अतिरिक्त ग्यारह अंग और उक्त २१ अंगबाह्य सूत्र कुल बत्तीस आगम वर्त्तमान में सुरक्षित हैं; ऐसी स्थानकवासी और तेहरपन्थ सम्प्रदाय की मान्यता है।

श्वेताम्बरमूर्तिपूजक सम्प्रदाय की मान्यतानुसार अंगबाह्य आगम इस प्रकार हैं।

१२ उपांग—औपपातिक आदि पूर्वोक्त

१० प्रकीर्णक—(१) चतुःशरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) भक्तपरिज्ञा (४) संस्तारक (५) तण्डुलवैचारिक (६) चन्द्रवेध्यक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान और (१०) वीरस्तव ।

६ छेदसूत्र—निशीथ (२) महानिशीथ (३) व्यवहार (४) दशाश्रत स्कन्ध (५) वृहत्कल्प और (६) जीतकल्प ।

४ मूलसूत्र—(१) उत्तराध्ययन (२) दशवैकालिक (३) आवश्यक और (४) पिण्डनियुक्ति ।

२ चूलिकासूत्र—(१) नन्दीसूत्र और (२) अनुयोगद्वार ।

उक्त प्रकार से ३४ अंगवाह्य आगम और दृष्टिवाद के अतिरिक्त ग्यारह अंग कुल पैंतालीस आगम वर्त्तमान में उपलब्ध हैं यह श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता है ।

अंगवाह्य आगमों के रचयिता

समस्त अंगग्रन्थ तो गणधर सुधर्मा प्रणीत हैं, इस विषय में कोई विवाद नहीं है । अंगवाह्य आगमों के प्रणेता के सम्बन्ध में थोड़ा सा मतभेद पाया जाता है । कोई २ उपाङ्ग आदि को भी गणधर प्रणीत मानते हैं जब कि किन्ही का मन्तव्य है कि गणधर तो द्वादशाङ्गी की ही रचना करते हैं । अन्य उपाङ्ग आदि भिन्न २ स्थविरों की रचना है । प्रज्ञापना उपाङ्ग के रचयिता आर्य श्याम हैं । उनका दूसरा नाम कालकाचार्य (निगोद व्याख्याता) हैं । इन्हें वीर निर्माण सं० ३३५ में युगप्रधान का पद मिला और वे उस पद पर वीर नि० ३७६ तक बने रहे । अतः इसी काल की रचना प्रज्ञापना है । शेष उपाङ्गों के कर्त्ता गणधर हैं या अन्य स्थविर हैं । यह विवादास्पद है । कोई २ इन्हें गणधरकृत मानते हैं और कोई २ स्थविरकृत ।

नन्दीसूत्र की रचना देववाचक (देवर्धिगणि) की है । अनुयोग द्वार आर्यरक्षित के द्वारा (विक्रम की दूसरी शताब्दी में) रचा गया है । दशवैकालिक के रचयिता शय्यम्भव हैं । इनके गृहस्थ अवस्था के पुत्र मनक की आयु अत्यल्प शेष (छः मास शेष) जानकर उसे संक्षेप में धर्म का

ज्ञान कराने के लिए पूर्वों में से उद्धृत कर इन समर्थ आचार्य ने दशवैकालिक की रचना की है। इन आचार्य को वीर नि० सं० ७५ में युगप्रधान पद मिला और ये वीर नि० सं० ९८ तक उस पद पर रहे। अतः दशवैकालिक की रचना का समय विक्रम पूर्व ३९५ और ३७२ के बीच का है। इसकी चूलिकाएँ बहुत सम्भव है कि बाद में जोड़ी गई हों।

छेदसूत्रों में दशाश्रुत, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्रों की रचना भद्रबाहु ने की है अतएव इनका रचना-काल वीरनिर्वाण संवत् १७० से अर्वाचीन नहीं हो सकता। अर्थात् विक्रम संवत् ३०० के पहले बन चुके थे। महानिशीथ सूत्र की वर्त्तमान संकलना आचार्य हरिभद्रसूरि की है। आवश्यक सूत्र के रचयिता या तो गणधर हैं या उनके समकालीन कोई स्थविर। क्योंकि जहाँ पठन का अधिकार आता है वहाँ "सामाइयाणि एकादसंगाणि" पाठ आता है इससे मालूम होता है कि उस समय में भी सर्वप्रथम आवश्यकसूत्र पढ़ाया जाता था। इससे इसका रचना-काल अंगकालीन ही समझा जाना चाहिए। अतः इसकी रचना विक्रम पूर्व ४७० के पहले हो चुकी थी। पिंडनियुक्ति दशवैकालिक की नियुक्ति का अंश है अतः इसके रचयिता भद्रबाहु हैं। प्रकीर्णकों की रचना के विषय में यह कहा जा सकता कि इनकी रचनावालभी वाचना तक--समय २ पर हुई है। आतुरप्रत्याख्यान और चतुःशरण आदि वीरभद्रगणि ने (लगभग वि० सं० ४७० में) रचे ऐसा कहा जाता है। लेकिन नन्दीसूत्र में चतुः शरण और भक्त परिज्ञा का उल्लेख नहीं है इससे उक्त कथन की संगति नहीं प्रतीत होती।

भगवान् महावीर के पश्चात् उनके गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम और श्रीसुधर्मा तथा सुधर्मा के शिष्य श्री जम्बू केवलज्ञानी हुए। अतः वीर निर्वाण की

आगमों की वाचनाएँ:— प्रथम शताब्दी में तो सब सिद्धान्त अपने मूलस्वरूप में अवस्थित रहे। सिद्धान्त ग्रन्थ उस समय लिपिबद्ध नहीं किये गये बल्कि कंठस्थ ही धारण किये जाते थे। गुरु अपने शिष्यों को कंठस्थ वाचना देते थे। इस तरह आगमों की परम्परा विद्यावंश की अपेक्षा से अविच्छिन्न रूप से कुछ समय तक चलती रही। आगमों की भाषा लोकभाषा-प्राकृत होने से उस पर देशकाल का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। श्रमण भिन्न २ देश में विचरते थे। अतः

ालानुक्रम से भिन्न २ भाषा के संसर्ग से तथा दुष्काल आदि के कारण से ागमों की अक्षरशः सुरक्षा न हो सकी। स्मृतिभ्रंश आदि कारणों से श्रुत ा ह्रास होने लगा। चरमकेवली जम्बू के बाद श्वेताम्बरपरम्परा के अनु-ार आचार्य प्रभाव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय और भद्रबाहु श्रुत ्वली (सम्पूर्णश्रुत के ज्ञाता) हुए, जब कि दिगम्बर परम्परा के अनुसार ेष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु श्रुतकेवली हुए। वीर नेर्वाण की इस दूसरी शताब्दी में आगम ग्रन्थों में दुष्कालादि के कारण अस्त ्यस्तता आगई थी। नन्दराजा के शासनकाल में (मगध देश में) बारह ार्षी भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रमणों को आहारादि की प्राप्ति में भी कठिनाई ोती थी इससे स्मृतिभ्रंश होने लगा। आगमों के लुप्तप्राय होने की आशंका होने लगी। अतः सुभिक्ष होने पर वीरात् १६० के आसपास पाटलिपुत्र में में जैनश्रमणसंघ एकत्रित हुआ। एकत्रित श्रमणों ने दुष्काल के कारण अस्त-व्यस्त हुए आगमों को व्यवस्थित किये परन्तु उनमें से किसी को दृष्टिवाद का अस्खलित ज्ञान नहीं रह गया था। उस समय दृष्टिवाद के ज्ञाता श्री भद्रबाहु स्वामी थे परन्तु वे बारह वर्ष के लिये विशेष प्रकार के योग का अव-लम्बन लिये हुए थे और वे नेपाल देश में थे। अतः श्रमण संघ ने स्थूलिभद्र को कई साधुओं के साथ दृष्टिवाद की वाचना लेने के लिए नेपाल भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा।

भद्रबाहु स्वामी ने स्थूलिभद्र को दशपूर्वों का अध्ययन कराया। इसके बाद स्थूलिभद्र ने अपनी श्रुतलब्धि ऋद्धि का प्रयोग किया इससे भद्रबाहु ने आगे पढ़ाना स्थगित कर दिया। स्थूलिभद्र के बहुत अनुनय करने पर उन्होंने शेष रहे हुए चार पूर्वों की केवल वाचना दी परन्तु अर्थ नहीं बताया तथा साथ ही यह भी सूचना की कि तुम किसी दूसरे को इन चार पूर्वों की वाचना भी न देना। इस तरह स्थूलिभद्र तक चवदह पूर्व का (वाचना की अपेक्षा) ज्ञान रहा। अर्थ की अपेक्षा से तो भद्रबाहु स्वामी के समय तक अर्थात् वीर निर्वाण संवत् १७० तक ही सम्पूर्ण दृष्टिवाद रहा। इसके बाद सम्पूर्ण दृष्टिवाद का ज्ञान विच्छिन्न हो गया। श्री भद्रबाहु स्वामी का स्वर्गवास वीर नि० १७० में हुआ। दिगम्बर परम्परा के अनुसार श्रुतकेवली का लोप वीर निर्वाण सं० १६२ में हुआ।

ज्ञान कराने के लिए पूर्वों में से उद्धृत कर इन समर्थ आचार्य ने दशवैकालिक की रचना की है। इन आचार्य को वीर नि० सं० ७५ में युगप्रधान पद मिला और ये वीर नि० सं० ९८ तक उस पद पर रहे। अतः दशवैकालिक की रचना का समय विक्रम पूर्व ३९५ और ३७२ के बीच का है। इसकी चूलिकाएँ बहुत सम्भव है कि बाद में जोड़ी गई हों।

छेदसूत्रों में दशाश्रुत, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्रों की रचना भद्रबाहु ने की है अतएव इनका रचना-काल वीरनिर्वाण संवत् १७० से अर्वाचीन नहीं हो सकता। अर्थात् विक्रम संवत् ३०० के पहले बन चुके थे। महानिशीथ सूत्र की वर्त्तमान संकलना आचार्य हरिभद्रसूरि की है। आवश्यक सूत्र के रचयिता या तो गणधर हैं या उनके समकालीन कोई स्थविर। क्योंकि जहाँ पठन का अधिकार आता है वहाँ "सामाइयाणि एकादसंगाणि" पाठ आता है इससे मालूम होता है कि उस समय में भी सर्वप्रथम आवश्यकसूत्र पढ़ाया जाता था। इससे इसका रचना-काल अंगकालीन ही समझा जाना चाहिए। अतः इसकी रचना विक्रम पूर्व ४७० के पहले हो चुकी थी। पिंडनिर्युक्ति दशवैकालिक की निर्युक्ति का अंश है अतः इसके रचयिता भद्रबाहु हैं। प्रकीर्णकों की रचना के विषय में यह कहा जा सकता कि इनकी रचनावालभी वाचना तक--समय २ पर हुई है। आतुरप्रत्याख्यान और चतुःशरण आदि वीरभद्रगणि ने (लगभग वि० सं० ४७० में) रचे ऐसा कहा जाता है। लेकिन नन्दीसूत्र में चतुः शरण और भक्त परिज्ञा का उल्लेख नहीं है इससे उक्त कथन की संगति नहीं प्रतीत होती।

भगवान् महावीर के पश्चात् उनके गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम और श्रीसुधर्मा तथा सुधर्मा के शिष्य श्री जम्बू केवलज्ञानी हुए। अतः वीर निर्वाण की प्रथम शताब्दी में तो सब सिद्धान्त अपने मूलस्वरूप में अवस्थित रहे। सिद्धान्त ग्रन्थ उस समय लिपिबद्ध नहीं किये गये बल्कि कंठस्थ ही धारण किये जाते थे। गुरु अपने शिष्यों को कंठस्थ वाचना देते थे। इस तरह आगमों की परम्परा विद्यावंश की अपेक्षा से अविच्छिन्न रूप से कुछ समय तक चलती रही। आगमों की भाषा लोकभाषा-प्राकृत होने से उस पर देशकाल का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। श्रमण भिन्न २ देश में विचरते थे। अतः

आगमों की वाचनाएँ:—

ालानुक्रम से भिन्न २ भाषा के संसर्ग से तथा दुष्काल आदि के कारण से ागमों की अक्षरशः सुरक्षा न हो सकी। स्मृतिभ्रंश आदि कारणों से श्रुत ा ह्रास होने लगा। चरमकेवली जम्बू के बाद श्वेताम्बरपरम्परा के अनु-ार आचार्य प्रभाव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय और भद्रबाहु श्रुत वली (सम्पूर्णश्रुत के ज्ञाता) हुए, जब कि दिगम्बर परम्परा के अनुसार वेष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु श्रुतकेवली हुए। वीर निर्वाण की इस दूसरी शताब्दी में आगम ग्रन्थों में दुष्कालादि के कारण अस्त व्यस्तता आगई थी। नन्दराजा के शासनकाल में (मगध देश में) बारह वर्षी भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रमणों को आहारादि की प्राप्ति में भी कठिनाई होती थी इससे स्मृतिभ्रंश होने लगा। आगमों के लुप्तप्राय होने की आशंका होने लगी। अतः सुभिक्ष होने पर वीरात् १६० के आसपास पाटलिपुत्र में में जैनश्रमणसंघ एकत्रित हुआ। एकत्रित श्रमणों ने दुष्काल के कारण अस्त-व्यस्त हुए आगमों को व्यवस्थित किये परन्तु उनमें से किसी को दृष्टिवाद का अस्खलित ज्ञान नहीं रह गया था। उस समय दृष्टिवाद के ज्ञाता श्री भद्रबाहु स्वामी थे परन्तु वे बारह वर्ष के लिये विशेष प्रकार के योग का अव-लम्बन लिये हुए थे और वे नेपाल देश में थे। अतः श्रमण संघ ने स्थूलिभद्र को कई साधुओं के साथ दृष्टिवाद की वाचना लेने के लिए नेपाल भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा।

भद्रबाहु स्वामी ने स्थूलिभद्र को दशपूर्वों का अध्ययन कराया। इसके बाद स्थूलिभद्र ने अपनी श्रुतलब्धि ऋद्धि का प्रयोग किया इससे भद्रबाहु ने आगे पढ़ाना स्थगित कर दिया। स्थूलिभद्र के बहुत अनुनय करने पर उन्होंने शेष रहे हुए चार पूर्वों की केवल वाचना दी परन्तु अर्थ नहीं बताया तथा साथ ही यह भी सूचना की कि तुम किसी दूसरे को इन चार पूर्वों की वाचना भी न देना। इस तरह स्थूलिभद्र तक चवदह पूर्व का (वाचना की अपेक्षा) ज्ञान रहा। अर्थ की अपेक्षा से तो भद्रबाहु स्वामी के समय तक अर्थात् वीर निर्वाण संवत् १७० तक ही सम्पूर्ण दृष्टिवाद रहा। इसके बाद सम्पूर्ण दृष्टिवाद का ज्ञान विच्छिन्न हो गया। श्री भद्रबाहु स्वामी का स्वर्गवास वीर नि० १७० में हुआ। दिगम्बर परम्परा के अनुसार श्रुतकेवली का लोप वीर निर्वाण सं० १६२ में हुआ।

इस प्रकार प्रथम वाचना के समय चार पूर्व न्यून पर १२ अंग व्यवस्थित किये जाकर श्रमणसंघ में प्रचारित किये गये। इस समय से अब संघ में दशपूर्वधर ही रह गये। इस दशपूर्वी-परम्परा का अन्त आचार्य वज्र के साथ हुआ। आचार्य वज्र का स्वर्गारोहण विक्रम सं० ११४ (वीरात् ५८४) में हुआ। दिगम्बर परम्परा के अनुसार दशपूर्वी का विच्छेद आचार्य धर्मसेन के साथ वीरात् ३४५ में हुआ। आचार्य वज्र के बाद आर्यरक्षित हुए। इन्होंने अनुयोगों का विभाग कर दिया। कालक्रम से श्रुतज्ञान का ह्रास होता गया। आर्यरक्षित भी सम्पूर्ण नौ पूर्व और दशम पूर्व के २४ यविक मात्र के अभ्यासी थे। आर्यरक्षित भी अपना पूरा ज्ञान दूसरे को न दे सके। उनके शिष्यसमुदाय में से केवल दुर्बलिका पुष्पमित्र ही सम्पूर्ण नौ पूर्व पढ़ने में समर्थ हुआ किन्तु अभ्यास न करने कारण नवमपूर्व को वह भूल गया। इस प्रकार उत्तरोत्तर पूर्वगत ज्ञान का ह्रास होता गया और वीर निर्वाण के एक हजार वर्ष बाद ऐसी स्थिती हो गई कि एक पूर्व का ज्ञाता भी कोई न रहा। दिगम्बरों की मान्यतानुसार वीर निर्वाण सं० ६८३ में ही पूर्व ज्ञान का विच्छेद हो गया।

माथुरी वाचनाः—

प्रथम वाचना के बाद भी आगमों के अस्त-व्यस्त होने के प्रसंग आते ही रहे। वीरात् २९१ में सम्प्रति राजा के समय भी दुष्काल हुआ। इसके बाद वीरात् नौवीं शताब्दी में स्कन्दिलाचार्य के समय में पुनः बारह वर्ष का अति भयंकर दुर्भिक्ष हुआ। इससे अपूर्व सूत्रार्थ का ग्रहण और पठित का पुनरावर्तन प्रायः अत्यन्त दुष्कर हो गया। बहुत सा अतिशययुक्त श्रुत भी विनष्ट हो गया। तथा अंग उपाङ्ग आदि का भी परावर्तन न होने से भावतः विनष्ट हो गया। दुर्भिक्ष के बाद मथुरा में स्कान्दिलाचार्य के सभापतित्व में वीर निर्वाण सं० ८२७ से ८४० के बीच श्रमणसंघ एकत्रित हुआ और जिसे जो याद था वह कहा। इस प्रकार कालिक श्रुत और पूर्व गत श्रुत को अनुसन्धान द्वारा व्यवस्थित करलिया गया। मथुरा में यह संघटना हुई अतः यह माथुरी वाचना कही जाती है। स्कान्दिलाचार्य के युगप्रधानत्व में होने से यह स्कान्दिलाचार्य का अनुयोग कहा जाता है।

वालभी वाचनाः—

जिस समय मथुरा में आचार्य स्कन्दिल ने आगमों को व्यवस्थित करने का कार्य किया उसी समय वल्लभी में नागार्जुनसूरि ने भी श्रमणसंघ को एकत्रित करके आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। जैन-कालगणना में लिखा है कि "जिसकाल में मथुरा में आर्य स्कन्दिल ने आगमोद्धार करके अपनी वाचना शुरू की उसी काल में वलभी नगरी में नागार्जुन सूरी ने भी श्रमण संघ एकत्रित किया और दुर्भिक्ष वश नष्टावशेष आगमसिद्धान्तों का उद्धार शुरु किया। वाचक नागार्जुन और एकत्रित संघ को जो-जो आगम और उनके अनुयोगों के उपरान्त प्रकरण ग्रन्थ याद थे वे लिख लिये गये और विस्तृत स्थलों को पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना दी गई।"

इसके सम्बन्ध में लोकप्रकाश और समाचारी शतक में यह कहा गया है कि देवर्द्धिगणि की प्रमुखता में वलभीपुर में जो शास्त्र लेखन हुआ है वही वालभी वाचना है। कई आचार्यों की यह परम्परा से मान्यता चली आ रही है। परन्तु नागार्जुन को नन्दीसूत्र में 'वाचक' विशेषण देकर देवर्धिगणि ने वन्दन किया है इससे नागार्जुन ही वालभी वाचना के प्रवर्त्तक विशेषतया सम्भवित हैं।

वीरनिर्वाण संवत् ९८०(वि० सं० ५१०) में वलभीपुर में भगवान् महावीर के २७ वें पट्टधर श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में पुनः श्रमण संघ एकत्रित हुआ। उस समय आचार्य स्कन्दिल का और आचार्य नागार्जुन की वाचनाओं का समन्वय किया गया और उन्हें लिखकर पुस्तकारूढ कियागया। उक्त वाचनाओं में रहे हुए भेद को मिटा कर यथाशक्य करूप दिया गया और महत्वपूर्ण भेदों को पठान्तर के रूप में संकलित एक लिया गया। इसीलिए मूल और टीका में "वाचनान्तरे पुनः" "नागार्जुनीयास्तु पठन्ति" आदि उल्लेख मिलते हैं। इस समय में आगमों में वार वार आने वाले शब्दों को व विषयों को वार वार न लिख कर 'जाव' शब्द से

देवर्द्धिगणि का पुस्तकालेखनः—

संक्षिप्त किया गया और एक सूत्र का दूसरे सूत्र में अतिदेश किया गया। इसीलिए उपांगों का अतिदेश अगों में भी पाया जाता। वर्त्तमान में आगम ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनका अधिकांश स्वरूप इसी समय में स्थिर हुआ।

इसी समय में देवर्द्धिगणि ने नन्दीसूत्र की संकलना की। इसमें सब आगमों की सूची दी है। इसको देखने से प्रतीत होता है कि इस पुस्तका-लेखन के बाद भी कई आगम विनष्ट हुए हैं। नन्दीसूत्र में प्रश्नव्याकरण अंग का जैसा वर्णन किया गया है उसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि उपलब्ध प्रश्नव्याकरण बाद की नवीन रचना है। वालभी वाचना के बाद यह अंग कब नष्ट हो गया और कब नवीन जोड़ा गया यह कुछ नहीं कहा जा सकता। यह कहा जा सकता है कि अभयदेव की टीका, जो कि बारहवीं शताब्दी के आरम्भ की है—उसके पहले कभी इसकी रचना हुई है इस तरह नन्दी की सूची में दिये गये कई आगम भी नष्ट हुए हैं।

आगमों की टीकाएं

आगमों पर प्राकृत और संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखी गई हैं। प्राकृत भाषा में की गई टीकाएँ नियुक्ति, भाष्य और चूर्णि के नाम से प्रसिद्ध हैं। नियुक्तियाँ और भाष्य पद्यमय हैं और चूर्णियाँ गद्यमय। नियुक्तियों के रचयिता श्रीभद्रबाहु हैं। कोई २ यह मानते हैं कि नियुक्तियों के रचयिता श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु हैं जब कि किन्ही का मन्तव्य है कि ये भद्रबाहु द्वितीय, जो विक्रम की पाँचवीं या छठी शताब्दी में हुए हैं—के द्वारा निर्मित हैं। भद्रबाहु ने आचारांग, सूत्रकृताङ्ग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प, व्यवहार, आवश्यक, सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित पर नियुक्तियाँ बनाई हैं। इसके अतिरिक्त पिण्डनियुक्ति और ओघनियुक्ति भी इन्हीं की रचना है।

आगमों के विषय को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए भाष्य लिखे गये हैं। श्री संघदास गणी और जिनभद्र प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं। श्री संघदास गणी ने बृहत्कल्प भाष्य और श्री जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य लिखा है। इसमें आगमिक तत्वों का तर्कसंगत विवेचन किया गया है। दार्शनिक चर्चा का ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर जिनभद्र ने न लिखा हो। इनका समय सातवीं शताब्दी है।

चूर्णिकारों में जिनदास महत्तर प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नन्दीसूत्र की तथा अन्य सूत्रों पर चूर्णियाँ लिखी हैं।

आगमों पर की गई संस्कृत टीकाओं में सबसे प्राचीन आचार्य हरिभद्र की टीका है। उनका समय वि० ७५७ से ८५७ के बीच का है।

संस्कृत टीकाएं

आचार्य हरिभद्र के बाद दशवीं शताब्दी में शीलांक सूरि ने आचारांग और सूत्रकृताङ्ग पर संस्कृत टीकाएँ लिखी। इनके बाद प्रसिद्ध टीकाकार शान्त्याचार्य हुए जिन्होंने उत्तराध्ययन पर विस्तृत टीका लिखी है। इसके बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध टीकाकार अभयदेव हुए जिन्होंने नौ अंगों पर टीकाएँ लिखीं। अभयदेव का समय वि० सं० १०७२ से ११३५ है। आगमों पर टीका करने वालों में सर्वश्रेष्ठ स्थान आचार्य मलयगिरि का है। इनका समय बारहवीं शताब्दी है। ये आचार्य हेमचन्द्र के समकालीन थे। मलयगिरि की टीकाओं में प्राञ्जल भाषा में दार्शनिक विवेचन मिलता है। कर्म, आचार, भूगोल, खगोल आदि सब विषयों पर इतना सुन्दर विवेचन अन्य टीकाओं में नहीं है। अतः मलयगिरि की टीकाओं का विशेष महत्व है। मलधारी हेमचन्द्र ने भी आगमों पर टीका लिखी है।

संस्कृतभाषा का समय जब बीत गया और वह केवल साहित्य की भाषा ही रह गई तब देशी अपभ्रंश अर्थात् प्राचीन गुजराती भाषा में बालावबोध टब्बों की रचना हुई। बालावबोध की रचना करनेवाले कई हुए हैं परन्तु लोंकागच्छ के धर्मसिंह मुनि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बालावबोधों में आगमों का संक्षिप्त अर्थ किया गया है।

आगमों पर विदेशी विद्वान्:—

जैनागमों पर लिखने वाले विदेशी विद्वानों में जर्मनी के प्रोफेसर वेबर, विन्टर निट्स, हर्मन जेकोबी, हॉर्नल, शुब्रिंग आदि मुख्य हैं। वेबर ने sacred litrature of the Jains में जैनागमों पर स्वतंत्र विवेचन किया है। (यद्यपि उसमें कतिपय बातें आपत्तिजनक भी हैं।) प्रो० विन्टरनिट्स ने A History of Indianlitrature में जैनागमों के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत ठीक २ लिखा है।

डॉ. हर्मन जेकोबी ने जैनधर्म और उसके साहित्य के सम्बन्ध में खूब अन्वेषण किया है। इस महापण्डित के अनवरत परिश्रम और प्रयत्नों से जैनधर्म के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण हुआ है। जैनागमों के अनुवाद और उनकी मीमांसा में इन विद्वान् का परिश्रम सराहनीय है। इन्होंने लिखा है कि–

"जैनों के आगम सूत्र Classical संस्कृत साहित्य से अधिक प्राचीन हैं, तथा इन में कितनेक तो उत्तर बौद्धों (महायानी) के प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ के साथ समानता करने वाले हैं।"

प्रो. हॉर्नल ने उपासकदशाङ्ग का मूलपाठ संशोधित कर उसका अंग्रेजी अनुवाद किया है। वह उसकी उपयोगी प्रस्तावना और नोंध सहित तथा अभयदेव की टीका समेत बिब्लिओथेका इंडिका बंगाल, कलकत्ता तरफ से सन् १८८५ में प्रकाशित हुआ है। श्री शुब्रिंग महोदय ने भी आचारांग आदि आगमों के संस्करण प्रकट किये हैं।

जैनागम अत्यन्त गहन और विस्तृत हैं। इनके सम्बन्धमें विशेष अन्वेषण की आवश्यकता है। भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने अभी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। आज के युग में इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि विद्वगद्गण बौद्ध ग्रन्थों की तरह जैनागमों पर भी लक्ष्य दें तो कई नवीन तथ्यों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

अब तक जिन आगमों का वर्णन किया गया है। वे श्वेताम्बर परम्परा को ही मान्य हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के मन्तव्य के अनुसार अंगादि आगम विच्छिन्न हो गये हैं। अतः यह परम्परा अंगों-विशेषकर दृष्टिवाद-के आधार बनाये ग्रन्थों को आगम रूप से स्वीकार करती है। आगम

दिगम्बर सम्प्रदाय के आगम

में षट्खण्डागम, कषायपाहुड, और महाबन्ध हैं। षट्खण्डागम की रचना पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों द्वारा की गई है। कषायपाहुड़ की रचना आचार्य गुणधर द्वारा हुई है। महाबन्ध के रचयिता आचार्य भूतबलि हैं। इसके अतिरिक्त यह सम्प्रदाय कुन्दकुन्द नाम के महाप्रभावक आचार्य के द्वारा बनाये गये समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, नियमसार आदि ग्रन्थों को

आगम रूप में स्वीकार करती है। आचार्य कुन्द कुन्द का समय अभी निश्चित नहीं हो पाया है। विद्वानों में इनके समय के विषय में मतैक्य नहीं है। डा. ए. एन. उपाध्ये उनको ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए मानते हैं जबकि मुनि कल्याणविजयजी उन्हें पाँचवी-छठी शताब्दी से पूर्व नहीं मानते। गुणधर, पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य का समय विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी है।

(२) प्राकृत साहित्य का मध्य और संस्कृत साहित्य का उदयकाल

(विक्रम संवत् के प्रारम्भ से, सं. १००० तक)

जैनाचार्यों ने सर्वतोमुखी साहित्य रचना से संस्कृत साहित्य को अति समृद्ध बनाया है। उसकाल में चर्चित और प्रचलित प्रत्येक विषय पर जैनाचार्यों ने संस्कृतभाषा में साहित्यसृजन किया है। उसकी संक्षिप्त झांकी ही यहाँ अंकित की जाती है। संस्कृतसाहित्य का उल्लेख करने से पूर्व उससे पहले के महत्त्वपूर्ण प्राकृतसाहित्य और उसके रचयिताओं का थोड़ासा सूचन करना आवश्यक है। इसके बाद संस्कृत-साहित्य की ओर दृष्टिपात करेंगे।

परम्परा के अनुसार आर्यमंगु, वृद्धवादी, सिद्धसेन दिवाकर और पादलिप्त सूरि विक्रम राजा के समकालीन कहे जाते हैं। पादलिप्त सूरि ने तरंगवती नामक कथाग्रन्थ प्राकृत जैनमहाराष्ट्री भाषा में रचा।

पादलिप्त सूरि

पादलिप्त ने ज्योतिष् करण्डक (प्रकीर्णक) पर प्राकृत भाषा में टीका लिखी है। तथा जैन नित्य कर्म, दीक्षा, आदि पर निर्वाण कालिका का नामक ग्रन्थ की संस्कृत में रचना की।

आधुनिक विद्वान पादलिप्तसूरी का समय विक्रम की दूसरी सदी होने का अनुमान करते हैं। इस दूसरी और तीसरी सदी में दिगम्बर आचार्य गुणधर, पुष्पदंत,भूतबलि आचार्यों ने कषायपाहुड, षट्खण्डागम की रचना की।

विमलसूरी:—

इन आचार्य ने प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ 'पउमचरियम्' (पद्म चरित्र-जैन रामायण) की रचना की। इस ग्रन्थ की रचना वीरात् ५३० विक्रम सं. ६० में होने का उल्लेख मूलग्रन्थ में मिलता है। तदपि इसकी रचना शैली और भाषा पर से हर्मन जेकोबी इसे चतुर्थ शताब्दी से अधिक प्राचीन नहीं बताते हैं।

शिवशर्म सूरी:—

ये आचार्य प्रसिद्ध कर्म विषयक प्राकृत ग्रन्थ "कम्मपयडी" के कर्त्ता हैं। इन्होंने शतक नामक कर्मग्रन्थ (प्राचीन छः कर्म ग्रन्थ में से पञ्चम) की भी रचना की है। इन आचार्य का समय अनिश्चित है। इनके लिये विक्रम की तीसरी सदी का अनुमान किया जाता है।

उमास्वाति

जैनवाङ्मय में सर्वप्रथम प्राञ्जल संस्कृत के लेखक, वाचक उमास्वाति ने संस्कृत भाषा में जैनतत्वज्ञान का संदोहन रूप तत्वार्थाधिगम सूत्र की रचना की। इस ग्रन्थ पर भाष्य का निर्माण किया। उसकी प्रशस्ति से प्रतीत होती है कि ये उच्चनागरी शाखा के थे, न्यग्रोधिका ग्राम में पैदा हुए थे। इनकी माता वत्सगोत्र की थी, नाम उमा था। इनके पिता कौभीषणी गोत्र के थे और नाम स्वाति था। उन्होंने कुसुमपुर में यह ग्रन्थ रचा। ये वाचक-मुख्य शिव श्री के प्रशिष्य और ग्यारह अंग के ज्ञाता घोषनंदि मुनि के शिष्य थे।

उमास्वाति का समय भी विवादास्पद और अनिश्चित है। कोई इन्हें विक्रम संवत् पूर्व का मानते हैं, कोई विक्रम संवत् १ से ८५ के बीच का मानते हैं तथा कोई विक्रम की तीसरी चौथी सदी का मानते हैं

इन महान् आचार्य का श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में समान रूप से सन्मान है। इस महाग्रन्थ के ऊपर दोनों परम्पराओं में अनेक टीकाओं की रचना हुई है। एक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ को केन्द्र मान कर जैनदार्शनिकसाहित्य को उत्तरवर्त्ती जैन विद्वानों ने पर्याप्त पल्लवित किया है। छठी शताब्दी के दिगम्बराचार्य पूज्यपाद

ने इस पर सर्वार्थसिद्धि नामक टीका रची। अठवीं-नौवीं सदी में तो इस पर टीकाओं की भरमार हुई है।

तत्वार्थ पर इतनी टीकाएँ लिखे जाने कारण यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में सब प्रकार के विषयों का सुन्दर ढंग से संकलन कर निरूपण किया गया है। तत्वविद्या, आध्यात्मिकविद्या, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान, भूगोल-खगोल आदि समस्त विषयों पर इसमें निरूपण है।

श्रावकप्रज्ञप्ति, प्रशमरति, जम्बूद्वीपसमास, क्षेत्रविचार, पूजा-प्रकरण आदि ग्रन्थ भी उमास्वाति रचित हैं। ये उत्कृष्ट प्रकरण-रचयिता (करीब ५०० प्रकरण कर्त्ता) कहे जाते हैं।

श्री सिद्धसेन दिवाकरः—

श्री सिद्धसेन दिवाकर सचमुच जैनसाहित्याकाश के दिवाकर हैं। ये महान् तार्किक और गम्भीर स्वतंत्र विचारक आचार्य जैनसाहित्य में एक नवीनयुग के प्रवर्त्तक हैं। जैन साहित्य में इनका वही स्थान है जो वैदिक साहित्य में न्यायसूत्र के प्रणेता महर्षि गौतम का और बौद्ध-साहित्य में प्रखर तार्किक नागार्जुन का है।

सिद्धसेन दिवाकर के पहले जैन वाङ्मय में तर्क शास्त्रसम्बन्धी कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं था। आगमों में ही प्रमाणशास्त्र सम्बन्धी प्रकीर्ण-प्रकीर्ण बीजरूप तत्त्व संकलित थे। उस समय का युग तर्क प्रधान न होकर आगम प्रधान था। ब्राह्मण और बौद्धधर्म की भी यही परिस्थिति थी परन्तु जब से महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र की रचना की तब से तर्क का जोर बढ़ने लगा। सब धर्माचार्यों ने अपने २ सिद्धान्तों को तर्क के बल पर संगठित करने का प्रयत्न किया। उस युग में ऐसा करने से ही सिद्धान्तों की रक्षा हो सकती थी। युगधर्म को पहचान कर आचार्य सिद्धसेन ने आगमों में बीज रूप से रहे हुए प्रमाणनय के आधार पर 'न्यायावतार' ग्रन्थ की संस्कृत भाषा में रचना कर तर्कशास्त्र का प्रणयन किया। न्यायावतार में केवल ३२ अनुष्टुप् श्लोकों में सम्पूर्ण न्यायशास्त्र के विषय को भर कर गागर में सागर भर दिया है।

न्यायावतार के अतिरिक्त आपकी दूसरी रचना 'सन्मतितर्क' है। इसमें तीन काण्ड हैं। पहले काण्डमें नय सम्बन्धी विशद विवेचन किया

गया है। दूसरे काण्ड में पाँच ज्ञानों की चर्चा की गई है। यह ज्ञान-विचारणा विशुद्ध तर्क के आधार पर की गई है।

सन्मति तर्क में नयवाद के निरूपण के द्वारा आचार्य ने सब दर्शनों और वादियों के मन्तव्य को सापेक्ष सत्य कह कर अनेकान्त की सांकल में कड़ियों की तरह जोड़ दिया है। इन्होंने सब दर्शनों को अनेकान्त का आश्रय लेने का सचोट उपदेश दिया है। आचार्य ने स्पष्ट कहा है कि जहाँ अनेकान्त है वहीं सम्यग् दर्शन है और जहाँ एकांत हैं वहाँ मिथ्या दर्शन है। इस प्रकार अनेकांत की तर्क संगत स्थापना करने वाले प्रथम आचार्य सिद्धसेन ही हैं।

सिद्धसेन जैसे प्रसिद्ध तार्किक और न्यायशास्त्र के प्रतिष्ठापक थे जैसे एक स्तुतिकार भी थे। इन्होंने बत्तीस द्वात्रिंशिकाओं की रचना की, ऐसा कहा जाता है किन्तु वर्त्तमान में २२ बत्तीसियाँ ही उपलब्ध हैं। इनकी उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं में से ७ द्वात्रिंशिकाएँ स्तुतिमय हैं। इन स्तुतियों से यह झलकता है कि भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञान के प्रति इनकी अपार श्रद्धा थी। आचार्य श्री के प्रौढपाण्डित्य के कारण इन स्तुतियों में भक्ति के साथ ही साथ जैनधर्म के तत्त्वज्ञान का सुन्दर संकलन और संगुम्फन भी हो गया है। श्वेताम्बर साहित्य में संस्कृतभाषा में पद्यात्मक प्रौढ ग्रन्थों के प्रथम प्रणेता आप ही हैं।

इन आचार्य की समकक्षता में रखे जा सकने वाले आचार्य समन्तभद्र हुए हैं। आचार्य समन्तभद्र दिगम्बर परम्परा में और सिद्धसेन दिवाकर श्वेताम्बर परम्परा में हुए हैं। वैसे इन दोनों आचार्यों का दोनों सम्प्रदायों में अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान है। दोनों परम्पराओं के उत्तरकालीन आचार्यों ने अपने २ ग्रन्थों में इनके वचनों को प्रमाण रूप से उद्धृत किये हैं।

सिद्धसेन के जीवन के सम्बन्ध में जानने के लिए प्रभावक चरित्र का ही अवलम्बन लेना होता है। इसके अनुसार ये विक्रमराजा के ब्राह्मण पुरोहित देवर्षि के पुत्र थे। माता का नाम देवश्री था। जन्मस्थान विशाला (अवन्ती) है। सिद्धसेन बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि थे अतः उन्होंने सर्वशास्त्रों में निपुणता प्राप्त की। वादविवाद करने में अद्वितीय होने से तत्कालीन समर्थवादियों में इनका ऊँचा स्थान था। इन्हें अपने पाण्डित्य

का बड़ा अभिमान था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे वाद में पराजित करेगा उसका मैं शिष्य बन जाऊँगा। वाद में वादियों को पराजित करते २ ये वृद्धवादि नामक जैनाचार्य से मार्ग में ही मिले और उन्हें वाद करने की चुनौती दी। आचार्य ने कहा-सभ्य के बिना हारजीत का निर्णय कौन करेगा ? अपनी अहंकारमय वाग्मिता के कारण उन्होंने वहाँ जो ग्वाले थे उन्हें सभ्य मान लिया। वृद्धवादी ने कहा-अच्छा बोलो। तब सिद्धसेन ने संस्कृत में बोलना शुरू किया। ग्वाले कुछ न समझे। इसके बाद वृद्धवादी ने अपभ्रंश भाषा में –देशीभाषा में सभ्यों के अनुकूल उपदेश दिया। ग्वालों ने वृद्धवादी की विजय घोषित कर दी। इसके बाद राजा की सभा में भी वाद हुआ उसमें भी सिद्धसेन पराजित हो गये। फलतः वे वृद्धवादी के शिष्य बन गये। दीक्षा के बाद उनका नाम कुमुदचन्द्र रक्खा किन्तु वे सिद्धसेन दिवाकर के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

डॉ० सतीशचन्द्र अपनी न्यायावतार की भूमिका में लिखते हैं कि "विक्रम के नौ रत्नों में 'क्षपणक' का निर्देश मिलता है वह सिद्धसेन के लिये ही होना चाहिए।" इस पर से इनका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी प्रतीत होता है। परन्तु इनकी संस्कृत भाषा का स्वरूप देखते हुए इनका काल विक्रम की चौथी-पाँचवी शताब्दी सिद्ध होता है।

भद्रबाहु द्वितीयः—

इनका समय विक्रम की पांचवी या छठी शताब्दी है। इन्होंने आगमों पर निर्युक्तियों की रचना की है। ग्यारह निर्युक्तियाँ इनकी रची हुई है। इस पाँचवी-छठी शताब्दी में दिगम्बर आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार ग्रन्थ की रचना की। शिवनंदि यापनीय ने आराधना, सर्वनन्दि ने लोक-विभाग, यति वृषभाचार्य ने तिलोयपन्नति की रचना की।

पूज्यपादः—

इसी समय पूज्यपाद (देवनन्दि-जिनेन्द्र बुद्धि) ने तत्वार्थसूत्र पर सर्वार्थसिद्धि नामक टीका लिखी। जैनेन्द्र व्याकरण, शब्दावतार न्यास, समाधितन्त्र, वैद्यकशास्त्र, मंत्र-यंत्रशास्त्र, अर्हत्प्रतिष्ठालक्षणसारसंग्रह, जैनाभिषेक, शान्त्यष्टक और दशभक्ति इष्टोपदेश भी आपकी रचनाएँ हैं।

देवर्धिगणि क्षमाश्रमण

ये आचार्य विक्रम की छठी शताब्दी में हुए हैं। इन्होंने आग
को पुस्तकारूढ किये। वीर निर्वाण सं० ६८० (वि. सं. ५१०) में इन
अध्यक्षता में वलभीपुर में आगमों का आलेखन हुआ था। इन्होंने नन्
सूत्र की रचना की। इनके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

मल्लवादी:—

ये आचार्य सिद्धसेन के समकालीन थे। वादप्रवीण होने से इनका
ाम मल्लवादी था। इन्होंने नयचक्र (द्वादशार) नामक अद्भुत दार्शनिक
न्थ की रचना की। इनके इस ग्रन्थ का श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो
म्पराओं में समान रूप से सन्मान है।

इस ग्रन्थ में सब वाद एक दूसरे की युक्तियों से खण्डित हो जाते
यह बताकर आचार्य ने अनेकान्तवाद के द्वारा सब वादों की संगति
ट की है। इस नयचक्र पर सिंहक्षमाश्रमण ने १८००० श्लोक प्रमाण
ृत टीका लिखी है। ये सिंहक्षमाश्रमण सातवींसदी के विद्वान् माने
हैं। मल्लवादी ने सिद्धसेन दिवाकर के सन्मति तर्क की वृत्ति भी लिखी
श्री हेमचन्द्राचार्य ने सिद्धहेम शब्दानुशासन में 'तार्किक शिरोमणी' के
में इनका उल्लेख किया है। प्रभावक चरित्र में उल्लेख किया गया है कि
े शीलादित्य राजा की सभा में बौद्धों को वाद में पराजित किया था।
ग्रन्थ में इनका समय वीर निर्वाण सं० ८८४ (वि० सं० ४१४)
गया है।

र्षि महत्तर:—

इन आचार्य ने पंचसंग्रह नामक प्रसिद्ध कर्म विषयक ग्रन्थ की रचना
था इसी ग्रन्थ पर ६००० श्लोक प्रमाण टीका रची है। इनका समय
ी शताब्दी है।

क्षमाश्रमण:—

इन आचार्य ने वसुदेवहिण्डी नामक चरितग्रन्थ प्राकृत भाषा में
ी संघदास क्षमाश्रमण ने 'पंचकल्प महाभाष्य' नामक आगमिक
ा है। ये प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं। श्री धर्मसेन गणी इन ग्रन्थों के
इनके सहयोगी रहे हैं।

जिनभद्र क्षमाश्रमण:—

ये आचार्य 'भाष्यकार' के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन्होंने विशे-पावश्यक भाष्य की रचना की और उस पर टीका भी लिखी है। यह भाष्य ग्रन्थ जैनप्रवचन में मुकुट-मणि के समान माना जाता है। इन्होंने आगमिक परम्परा पर दृढ़ रहकर भाष्य की रचना की है। आगमों की बातों को तर्क और युक्ति के आधार से सिद्ध करने का सर्वप्रथम प्रयास इन्हीं आचार्य ने किया है। आगम परम्परा के महान् संरक्षक होने से ये जैनवाङ्मय में आगमवादी या सिद्धांतवादी की पदवी से विभूषित और विख्यात हैं। ये आचार्य जैनागमों के रहस्य के अद्वितीय ज्ञाता माने जाते थे। इनको "युग-प्रधान" का सन्माननीय पद प्राप्त था।

जीतकल्पसूत्र बृहत्संग्रहणी, बृहत्क्षेत्रसमास और विशेषणवर्ती नामक ग्रन्थ भी इन्हीं आचार्य के द्वारा रचे गये हैं। जैन पट्टावली के आधार इनका समय वीर नि० सं० ११४५ (विक्रम सं० ६७५) माना जाता है। यह तो निश्चित है कि ये हरिभद्रसूरि के पहले हुए हैं क्योंकि हरिभद्र ने इनका उल्लेख किया है। जिनभद्र क्षमाश्रमण का जैनशास्त्रकारों में अग्रगण्य स्थान है।

मानतुंगाचार्य:—

ये आचार्य थाणेश्वर के राजा हर्ष के समकालीन हैं। इतिहासवेत्ता गौ० ही० ओझा ने राजपूताने का इतिहास नामक ग्रन्थ के प्रथमभाग पृष्ठ १४२ पर लिखा है कि—"हर्ष का राज्याभिषेक वि० सं० ६६४ में हुआ। वह महाप्रतापी और विद्वत्प्रेमी था। उसके समय में प्रसिद्ध कादम्बरीकार बाण-भट्ट हुए। जिन्होंने हर्षचरित भी रचा है तथा सूर्यशतक के कर्त्ता मयूर आदि उसके दरबार के पंडित थे। जैनविद्वान् मानतुंगाचार्य (भक्तामरस्तोत्र के कर्त्ता) भी उस राजा के समय में हुए ऐसा कथन मिलता है" इन आचार्य ने जैनियों के प्रिय ग्रन्थ भक्तामरस्तोत्र की रचना की।

कोट्याचार्य इन्होंने विशेषावश्यक भाष्य पर टीका की रचना की है।

सिद्धसेनगणी—

ये आचार्य सिंहगणी (सिंहसूर) के प्रशिष्य और भास्वामि के शिष्य थे। इन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र पर टीका रची। ये आगम प्रधान विद्वान् थे। कोई

२ इन्हें देवर्धिगणि के समाकालीन मानते हैं। पं० सुखलालजी ने इन्हीं सिद्धसेन को 'गन्धहस्ति' पद विभूषित सिद्ध किया है।

जिनदास महत्तरः—

ये आचार्य आगमों पर चूर्णि लिखने वाले प्रसिद्ध चूर्णिकार हुए हैं। इन्होंने शक सं० ५९८ अर्थात् वि० सं ७३३ में नन्दीसूत्र, निशीथसूत्र, तथा अनुयोगद्वार सूत्र पर चूर्णि की रचना की है।

समन्तभद्रः—

ये आचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय में अनन्त प्रभावशाली हुए हैं। ये सिद्धसेन दिवाकर की तुलना के आचार्य हैं। सिद्धसेन के सम्बन्ध में लिखते हुए इनके विषय में पहले लिखा जा चुका है। इन्होने आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, रत्नकांडश्रावकाचार और स्वयंभू स्तोत्र की रचना की है। इन ग्रंथ रत्नों को देखने से इनकी अनुपम प्रतिभा का परिचय मिलता है। ये स्याद्वाद के प्रतिष्ठायक आचार्य हैं। अनेक युक्तियों के द्वारा इन्होंने अन्यवादियों के सिद्धांतों का खण्डन कर अनेकान्त का युक्तिपूर्वक मंडन किया है। इनकी सर्व श्रेष्ठ कृति आप्तमीमांसा है। 'हम अर्हन्त की ही स्तुति क्यों करते हैं, दूसरे की क्यों नहीं करते ? इस प्रश्न को लेकर उन्होंने आप्त की मीमांसा की है। इन्होंने वाह्य आडम्बर था ऋद्धि को आप्त की कसौटी न मान कर जिसके मोहादि दोषों का सर्वथा अभाव होगया हो और जो सर्वज्ञ हो गया हो वही आप्त है, यह बड़े अनूठे ढंग से प्ररूपित किया है। इनके समय के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हो पाया है। ये जैनधर्म और जैनसाहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं।

आचार्य हरिभद्र

(महान् सुधारक और साहित्यकार)

आचार्य हरिभद्रसूरि जैनधर्म के इतिहास और साहित्य में एक नवीन युग के पुरस्कर्त्ता हैं। ये न केवल प्रथम पंक्ति के साहित्यकार ही थे अपितु एक प्रवल धर्मोद्धारक भी थे। इनके समय में चैत्यवास की जड़ खूब गहरी जम चुकी थी। जैनमुनियों का शुद्ध आचार शिथिल हो गया था उस स्थिति में सुधार करने के लिये ही हरिभद्रसूरि जैसे महाप्रभावशाली आचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। शिथिलाचार के विरुद्ध इन आचार्य ने तीव्र आन्दोलन किया

महान् सुधारक होने के साथ ही साथ ये आचार्य महान् साहित्य-निर्माता हुए हैं। जैनसाहित्य को समृद्ध वनाने में इनका उल्लेखनीय योग रहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में तत्वज्ञान, दर्शनशास्त्र कथासाहित्य, और विविध विषयक तलस्पर्शी विवेचन करने वाले दो चार ग्रन्थ ही नहीं लिखे किन्तु १४४४ प्रकरणों के कर्त्ता के रूप में आपकी सर्वविश्रुत प्रसिद्ध है। इन आचार्य की साहित्यिक कृतियाँ इस प्रकार हैं।

आगमिक कृतियाँ :— १ अनुयोगद्वार वृत्ति, २ नन्दी लघुवृत्ति, ३ प्रज्ञापनासूत्र-व्याख्या, ४ आवश्यक लघुटीका ५ आवश्यक वृहतटीका, ६ ओघनिर्युक्ति वृत्ति, ७ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका, ८ जम्बूद्वीप संग्रहणी, ९ जीवाभिगम लघु वृत्ति, १० तत्वार्थ-सूत्र लघु वृत्ति, ११ पंच नियंठी, १२ दशवैकालिक लघुवृत्ति, १३ दशवैकालिक-वृहत् वृत्ति, १४ नन्द्यध्ययन टीका, १५ पिण्डनिर्युक्ति वृत्ति, १६ प्रज्ञापना प्रदेश-व्याख्या।

दार्शनिक कृतियाँ :—१७ अनेकान्त जय पताका सटीक, १८ अनेकान्त वाद प्रवेश, १९ न्यायप्रवेश (दिङ्नाग) टीका, २० षड्दर्शन समुच्चय, २१ शास्त्र वार्त्ता समुच्चय २२ अनेकान्त प्रघट्ट (अनुपलब्ध) २३ तत्वतरंगिणी, २४ त्रिभंगीसार, २५ न्यायावतार वृत्ति, २६ पञ्चलिंगी, २७ द्विजवदन चपेटा, २८ परलोकसिद्धि, २९ वेद-बाह्यता निराकरण, ३० षड्दर्शनी, ३१ सर्वज्ञसिद्धि ३२ स्याद्वाद कुचोद्य परिहार, ३३ धर्मसंग्रहणी, ३४ लोकतत्वनिर्णय।

योगसम्बन्धी कृतियाँ :— (३५) योगदृष्टि समुच्चय (३६) योगबिन्दु (३७) योग-शतक, ३८ योगविंशति, ३९ षोडशक।

चरित्र कथा :— ४० समराइच्च कहा, ४१ मुनिपति चरित्र, ४१ यशोधर चरित्र ४३ वीरांगद कथा, ४४ कथाकोश, ४५ नेमिनाथ चरित, ४६ धूर्त्ताख्यान। भूगोल :— ४७ लोक बिन्दु ४७ क्षेत्रसमास वृत्ति।

प्रकरण :—४९ अष्टक प्रकरण, ५० उपदेश प्रकरण, ५१ धर्म बिन्दु प्रकरण, ५२ पंचाशक, ५३ पंच वस्तु सटीक, ५४ पंचसूत्र टीका, ५५ श्रावक प्रज्ञप्ति, ५६ अर्हन् श्री चूडामणि, ५७ उपदेश पद, ५८ कर्मस्तव वृत्ति, ५९ कुलकानि, ६० क्षमावल्ली बीजम, ६१ चैत्य वन्दन भाष्य, ६२ चैत्यवन्दन वृत्ति,

शास्त्र को पल्लवित किया। "दिग्नाग के समय से बौद्ध और बौद्धेतर प्रमाण शास्त्र में जो संघर्ष चला उसके फलस्वरुप अकलंक ने स्वतंत्र जैनदृष्टि से अपने पूर्वाचार्यों की परम्परा का ध्यान रखते हुए जैनप्रमाणशास्त्र का व्यवस्थित निर्माण और स्थापन किया"। इनके बनाये हुए ग्रन्थ इस प्रकार हैं- अष्टशती, लघीयस्त्रय, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय और तत्वार्थ की राजवार्तिक टीका।

विद्यानन्दः---

विक्रम की नौवीं शताब्दी में दिगम्बराचार्य विद्यानन्द हुए। इन्होंने 'अष्टसहस्त्री' नामक प्रौढ ग्रन्थ लिखकर अनेकान्तवाद पर होने वाले आक्षेपों का तर्कसंगत उत्तर दिया है। तत्त्वार्थसूत्र पर श्लोकवार्तिक नाम से टीका लिखी है। आप्तपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, सत्यशासन परीक्षा, युक्त्यनुशासनटीका, श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र, विद्यानन्द महोदय (अनुपलब्ध) ग्रन्थ भी आपके हैं।

उद्योतनसूरी (दाक्षिण्यांक सूरी):---

इन आचार्य ने वि० सं० ८३४ में "कुवलयमाला" नामक प्रसिद्ध कथा प्राकृतभाषा में बनाई। चम्पू ढंग की यह कथा प्राकृतसाहित्य की अमूल्य निधि है।

आचार्य जिनसेनः—इन्होंने हरिवंश पुराण की रचना की।

वीरसेन-जिनसेनः----

इन दिगम्बर आचार्यों ने धवला और जयधवला नामक विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। दिगम्बर परम्परा में इनका बड़ा महत्व है। धवला और जयधवला के वीस हजार श्लोकों का निर्माण वीरसेन ने किया। जय धवला के शेष चालीस हजार श्लोक उनके शिष्य जिनसेन ने लिखे हैं। जिनसेन ने पार्श्वाभ्युदयकाव्य भी लिखा है। जिनसेन और इनके शिष्य गुणभद्र ने मिलकर आदिपुराण और उत्तरपुराण की रचना की।

धनंजय.—इन्होंने धनंजय नाम माला नामक कोश ग्रन्थ लिखा है। द्विसंधान काव्य (राघव-पाण्डवीय) तथा विपापहार स्तोत्र इनकी रचनाएँ हैं।

शीलाङ्काचार्य

संवत् ९३३ में इन आचार्य ने आचारांग सूत्र पर तथा वाहरीगणि की सहायता से सूत्रकृताङ्ग पर संस्कृत में टीकाएँ रचीं। जीवसमास पर वृत्ति भी लिखी। शीलाचार्य ने दस हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत गद्य में ५४ महापुरुषों के चरित्र लिखे हैं (चउपन्नमहापुरिस चरियं)। ये शीलाचार्य और शीलाङ्काचार्य एक ही हैं या अन्य हैं यह अनिश्चित है। इसी नाम के कई आचार्य हुए हैं।

सिद्धर्षिसूरिः—

ये महान् जैनाचार्य हुए हैं। इन्होंने 'उपमितिभव प्रपञ्च कथा नामक' विशाल रूपक ग्रन्थ की रचाना की है। यह रूपक ग्रन्थ समस्त भारतीय ही नहीं अपितु संसार भर के रूपक ग्रन्थों में सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसका साहित्यिक महत्व बहुत अधिक है। जेकोबी महोदय ने इसकी बहुत प्रशंसा लिखी है।

इन सिद्धर्षि ने चन्द्रकेवलि चरित्र को प्राकृत से संस्कृत में परिवर्त्तित किया। न्यायावतार पर संस्कृत टीका लिखी। वि० सं० ९७४ में इन्होंने धर्मदास गणिकृत प्राकृत उपदेशमाला पर संस्कृत विवरण लिखा है।

अनन्त वीर्य

इन्होंने अकलंक के सिद्धिविनिश्चय ग्रन्थ की टीका लिख कर अनेक विद्वानों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

माणिक्य नंदीः---

अकलंक के ग्रन्थों के अधार पर इन्होंने 'परीक्षामुख' नामक न्याय ग्रन्थ की रचना की है। इस पर प्रभाचंद्राचार्य ने 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' नामक प्रौढ और विशाल टीका लिखी है।

देवसेन—

इन्होंने दर्शनसार, आराधनासार, तत्वसार, लघुनयचक्र, बृहन्नयचक्र, आलाप पद्धति और भावसंग्रह ग्रन्थ लिखे हैं। कवि पम्प ने आदिपुराण चम्पू, विक्रमार्जुन विजय तथा कवि पोन्न ने शांति पुराण ग्रन्थ लिखा है।

३ संस्कृत साहित्य का उत्कर्ष तथा अपभ्रंश का उदय
(विक्रम संवत् १००१ से १७०० तक)

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी से पहले २ प्राकृत भाषा का प्राधान्य रहा। विक्रमी के पाँचवीं शताब्दी तक तो प्रायः प्राकृत में जैनसाहित्य रचा जाता रहा। उसके बाद संस्कृत भाषा का उदय होने लगा। पाँचवीं सदी से दसवीं सदी तक प्राकृत और संस्कृत दोनों में साहित्य रचना होती रही। इस युग में जैनतर्कशास्त्र का प्रणयन और प्रतिष्ठापन हुआ अतः संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन मिलता रहा। ग्यारहवीं शताब्दी से संस्कृत साहित्य का उत्कर्ष होने लगा। अबतक की भाषा सरल और स्वाभाविक थी परन्तु त्यों त्यों संस्कृत भाषा दुरूह और अलंकारमय होती गई। लम्बे २ समास वाली भाषा लिखना पांडित्य का सूचक समझा जाने लगा। दसवीं सदी की पूर्णाहुति तक प्रायः जैनागम और प्रमाण शास्त्र पर ही अधिक रूपों से ग्रन्थ लिखे जाते रहे परन्तु इसके बाद तर्क, काव्य कोष, वैद्यक, ज्योतिष्, नीति, व्याकरण अदि सर्वाङ्गीण साहित्य की रचना हुई। अत्यन्त संक्षेप में मुख्य २ साहित्य और साहित्यकार का यहाँ उल्लेख किया जाता है :—

तर्कपञ्चानन अभयदेव सूरि :—

ये प्रद्युम्नसूरि के जो वैदिक शास्त्रों के पारगामी और वाद-कुशल थे। शिष्य थे। अभयदेव सूरि को न्यायवनसिंह और तर्कपञ्चानन की उपाधि प्राप्त थी। इन्होंने सिद्धसेन दिवाकर के सन्मति तर्क पर पच्चीस हजार श्लोक प्रमाण वादमहार्णव नाम से विस्तृत टीका लिखी है। इसमें इन महान् दार्शनिक ने दसवीं शताब्दी तक के प्रचलित सब पक्ष प्रतिपक्षों और मतमतान्तरों का उल्लेख करके अनेकान्त की स्थापना की है। यह टीका अत्यन्त विस्तृत होने से इसे इससे पूर्ववर्त्ती सकल दार्शनिक ग्रन्थों का संदोहन कह सकते हैं। इन आचार्य का समय १०५४ से पूर्व ही सिद्ध होता है।

प्रभाचन्द्र

आपने प्रमाण शास्त्र पर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' लिखा। ये दिगम्बर परम्परा के आचार्य हुए हैं। आपने आचार्य अकलंक की कृतियों का

दोहन करके व्यवस्थित पद्धति से इस प्रौढ दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। इन्होंने न्यायमुकुदचन्द्र नामक टीका लघीयस्त्रय ग्रन्थ पर लिखी है।

श्वेताम्बर परम्परा में सिद्धसेन ने और दिगम्बर परम्परा में समन्तभद्र ने जैन न्यायशास्त्र का बीजारोपण किया था उसे श्वेताम्बरीय हरिभद्र, मल्लवादी और अभयदेव ने तथा दिगम्बरीय अकलंक, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र ने पर्याप्त पल्लवित किया। यहाँ तक के समय को न्यायशास्त्र का विकास युग कहा जा सकता है।

कवि धनपाल :—

धनपाल, धाराधीश राजा मुंज का अति माननीय राजपण्डित था। मुंज के बाद राजा भोज ने इन्हें सिद्धसारास्वत, कवीश्वर और कूर्चाल सरस्वती की उपाधि प्रदान की थी। ये कवि पहले वेदधर्मानुयायी थे परन्तु अपने भाई शोभनमुनि के संसर्ग से इन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था और महेन्द्रसूरि से गृहस्थ दीक्षा अंगीकार की थी। इन महाकवि धनपाल की उत्कृष्ट रचना 'तिलक मंजरी' नामक कथा है। कवि धनपाल ने स्वयं लिखा है कि—राजा भोज स्वयं सर्वशास्त्रों का ज्ञाता होने पर भी जैनशास्त्रों में वर्णित कथाओं को सुनने का अति चाव रखता था। अतः उस निर्मल-चरित्र वाले भोज के विनोद के लिए यह तिलकमंजरी नामक स्फुट और अद्भुत रस वाली कथा रची। राजा भोज स्वयं विद्वान् था। आचार्य हेमचन्द्र ने तिलक मंजरी के पद्यों को उच्चकोटि के मानकर अपने काव्यानुशासन के उदाहरण के रूप में दिये हैं। कवि धनपाल ने 'पाइलच्छी नाम माला' नामक कोप ग्रन्थ भी रचा है।

शान्तिसूरि :—

ये पाटन से धनपाल की प्रेरणा से धारा नगरी में आये थे। राजा भोज ने इनका सत्कार किया था। उसकी सभा के पण्डितों को जीतने से भोज ने इन्हें 'वादिवेताल' की उपाधि दी थी। इन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र पर सुन्दर टीका लिखी जो 'पाइअटीका' के नाम से प्रसिद्ध है।

जिनेश्वरसूरि :—

ये वर्धमानसूरि के शिष्य थे। पाटन में दुर्लभ राजा के समय में

चैत्यवासियों का जोर था। जिनेश्वरसूरि ने राजा के सरस्वती भण्डार से दशवैकालिकसूत्र निकाल कर उसे बताया कि साधु का सच्चा आचार यह है; चैत्यवासियों का आचार शास्त्रानुकूल नहीं है। राजा ने 'खरतर' (कठोर आचार पालने वाले) की उपाधि उन्हें प्रदान की। तब से खरतरगच्छ की स्थापना हुई। प्रमालक्ष्म सटीक और पंचलिंगी प्रकरण इनके बनाये हुए ग्रन्थ हैं।

बुद्धिसागर सूरी:—

उक्त जिनेश्वरसूरी के सहोदर और सहदीक्षित बुद्धिसागरसूरी ने सं० १०८० में पञ्चग्रन्थी व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत शब्दों की सिद्धि के लिए पद्यगद्य रूप ७००० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ जाबालिपुर में रचा।

नवांगी वृत्तिकार अभयदेव

उक्त जिनेश्वरसूरी के शिष्य अभयदेवसूरी और जिनचन्द्रसूरी हुए। इन अभयदेव सूरी ने आचारांग और सूत्रकृताङ्ग को छोड़कर शेष नौअंग-सूत्रों पर संस्कृतभाषा में टीका लिखी। औपपातिक और प्रज्ञापना की टीका तथा संग्रहणी गाथा १३३ रची। जिनेश्वर कृत षट्स्थानक पर भाष्य, हरिभद्र के पंचाशक पर वृत्ति और आराधककुलक नामक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं। इनका स्वर्गवास ११३५ में कपड़वंज में हुआ। जिनचन्द्रसूरी ने "संवेगरंगशाला" की रचना की।

चन्द्रप्रभसूरी

इन्होंने पौर्णमिक गच्छ की सं० ११४९ में स्थापना की। दर्शन-शुद्धि और प्रमेय रत्नकोश नामक ग्रन्थ रचे। वार्धमानाचार्य—ये नवांगवृत्तिकार अभयदेव के शिष्य थे। इन्होंने मनोरमा चरित्र तथा आदिनाथ चरित्र की प्राकृत भाषा में और धर्मरत्नकरण्ड वृत्ति की रचना की। जिनवल्लभसूरि:—खरतरगच्छ के आचार्यों में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। सिद्धराज जयसिंह के समय इन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ। अभयदेवसूरि के बाद ये उनके पट्टधर हुये। इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं:— सूक्ष्मार्थ सिद्धान्त-विचार, आगमिकवस्तुसार, षडशीति, पिण्डविशुद्धि प्रकरण, प्रतिक्रमण समाचारी, अष्टसप्ततिका, पौषधविधिप्रकरण संघपट्टक, धर्मशिक्षा, द्वादश-

शतक, प्रश्नोत्तरशतक शृंगारशतक, स्वप्नाष्टक विचार, चित्रकाव्य, अजित शान्तिस्तव, भावारिवारणस्तोत्र, जिनकल्याणक स्तोत्र, वीरस्तव आदि लगभग स्तोत्र, प्रशस्तियाँ आदि। इनका स्वर्गवास ११६७ हुआ।

जिनदत्तसूरिः—ये जिनवल्लभ सूरि के शिष्य और पट्टधर थे। इन्होंने नेक क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मानुयायी बनाये। ये खरतरगच्छ प्रभावक आचार्य हुए। ये "दादा गुरु" के नाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। जमेर में इनका स्वर्गवास हुआ। स्थानीय दादावाड़ी इन्हीं का स्मारक है। नके बनाये हुए ग्रन्थ इस प्रकार हैं—गणधरसार्धशतक, गणधर सप्तति, कालस्वरूप कुलक, विंशिका, चर्चरी, सन्देहदोलावलि, सुगुरुपारतन्त्र्य, पार्श्वविघ्नहरस्तोत्र, विघ्नविनाशिस्तोत्र, अवस्थाकुलक, चैत्यवन्दनकुलक, और उपदेशरसायन।

जिनभद्रसूरि— ये भी जिनवल्लभसूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'अपवर्ग-नाममाला' कोष की रचना की।

बृहद्गच्छीय हेमचन्द्रः—

इन आचार्य ने नाभेयनेमि द्विसंधान काव्य की रचना की। यह ऋषभदेव और नेमिनाथ दोनों को समानरूप से लागू होता है अतः द्विसंधान काव्य कहा जाता है। देवभद्रसूरि—ये नवाँगी टीकाकार अभयदेव के शिष्य थे। इन्होंने आराहणासत्थ, वीरचरियं, कहारयण कोस, पार्श्वनाथ चरित्र की रचना की।

मुनि चन्द्रसूरिः—ये बृहद्गच्छ के यशोभद्र और नेमिचद्र के शिष्य थे। ये बड़े तपस्वी थे और सौवीर (काञ्जी) पीकर रहे जाते इसलिए 'सौवारपायी' भी कहे जाते हैं। इनकी आज्ञा में पांच सौ श्रमण थे। इन्होंने निम्न ग्रन्थ और टीकायें लिखी हैं। सूक्ष्मार्थसार्धशतक चूर्णि सूक्ष्मार्थविचारसार चूर्णि, आवश्यकसप्तति, कर्मप्रकृतिटिप्पन, अनेकान्तजयपताकावृत्ति टिप्पन, नैषधकाव्य पर टीका, देवेन्द्रनरेन्द्रप्रकरण पर वृत्ति, उपदेशपद का टिप्पन, ललितविस्तरा की पञ्जिका, धर्मबिन्दु की वृत्ति, अंगुल सप्तति, वनस्पति-सप्तति, गाथाकोश, अनुशासनांकुश, कुलक, उपदेशामृत कुलक, प्राभातिक-

स्तुति, आदि लगभग छोटे २ प्रकरण ग्रन्थ लिखे हैं। ये प्रसिद्ध वादिदे सूरि के गुरु थे।

वादी देवसूरिः—इनका जन्म गुर्जरदेश के मदाहृत ग्राम में प्राग (पोरवाड़) वणिक कुल में सं० ११४३ में हुआ था। सं० ११५२ में नौ व की अवस्था में इन्होंने दीक्षा धारण की और ११७४ में आचार्य पद प आरूढ हुए। ये आचार्य वादकुशल होने से वादी की उपाधि से सम्मानित हैं। सिद्धराज की सभा में इन्होंने दिगम्बराचार्य श्री कुमुदचन्द्र से शास्त्रा कर विजय प्राप्त की थी। सिद्धराज ने इन्हें जयपत्र और लक्ष स्वर्णमुद्रा तुष्टिदान देना चाहा परन्तु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। महामंत्री आशु की सम्मति से सिद्धराज ने इस द्रव्य से जिनप्रसाद करवाया। ये आचा बड़े नैयायिक थे। इन्होंने न्यायशास्त्र का 'प्रमाणनयतत्वालोक' नामक सूत्रग्रन्थ लिखा और उस पर स्याद्वादरत्नाकर नामक वृहत्काय टीका लिखी। इसमें इन्होंने अपने समय तक की समस्त दार्शनिक चर्चाओं का संग्रह कर दिया है तथा अन्य वादियों की युक्तियों का सचोट उत्तर दिया है। इसकी भाषा काव्यमय और आह्लादक है। न्यायग्रन्थों में इसका उच्चस्थान है। इनका स्वर्गवास सं० १२२६ में (कुमारपाल के समय में) हुआ।

सिंह-व्याघ्रशिशुः—

वादीदेव के समकालीन आनन्दसूरि और अमरचन्द सूरी हुए। ये नागेन्द्रगच्छ के महेन्द्रसूरी-शान्तिसूरि के शिष्य थे। बाल्यावस्था से ही वाद प्रवीण होने से तथा कई वादियों को वाद में पराजित करने से सिद्ध ाज ने इन्हें क्रमशः 'व्याघ्रशिशुक' और 'सिंह शिशुक' की उपाधि दी थी। मरचन्द सूरी का सिद्धान्तार्णव ग्रन्थ था लेकिन वह उपलब्ध नहीं है। तीशचंद्र विद्याभूषण का अनुमान है कि तार्किक गंगेश उपाध्याय ने ने तत्वचिन्तामणि ग्रन्थ में व्याप्ति के सिंह व्याघ्र-लक्षण में इन्हीं दोनों उल्लेख किया हो। आनन्दसूरि के पट्टधर हरिभद्रसूरि को "कलिकाल " की उपाधि थी। इन्होंने तत्वप्रबोध आदि अनेकों ग्रन्थों चना की थी।

मलधारी हेमचन्द्रः----

ये मलधारी अभयदेव के शिष्य थे। ये अत्यन्त प्रभावक व्याख्याता थे। सिद्धराज जयसिंह इनके व्याख्यानों को बड़े ध्यान से सुनता था। और इनकी प्रेरणा से जैनधर्म के लिये उसने कई हितकारी कार्य किये थे। इनकी परम्परा में हुए राजशेखर ने प्राकृत द्व्याश्रयवृत्ति (सं० १३८७) में लिखा है कि ये प्रद्युम्न नामक राजसचिव थे और अपनी चार स्त्रियों को छोड़ कर अभयदेव के शिष्य बने थे। ये आचार्य हेमचन्द्र बड़े विद्वान और साहित्य निर्माता थे। इनके ग्रन्थों का प्रमाण लगभग एक लाख श्लोक का है। इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं:--विशेषावश्यक भाष्य की बृहद्वृत्ति, आवश्यक-टिप्पनक, अनुयोगद्वार वृत्ति, जीव समास वृत्ति, नंदीसूत्र टिप्पनक, शतकनामा कर्मग्रन्थ पर वृत्ति, उपदेश माला सटीक (१४००० श्लोक) भवभावना सटीक (१३००० श्लोक) प्रमाण। विशेषावश्यक भाष्य की बृहद्वृत्ति में इनके सात सहायक थे—अभयकुमार गणि, धनदेव, जिनभद्र, लक्ष्मण, विबुधचन्द्र आनन्द, श्री महत्तरा साध्वी और वीरमती गणिनी साध्वी।

श्री चन्द्रसूरिः----

ये मलधारी हेमचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने संग्रहणी रत्न और मुनि-सुव्रत चरित्र (१०९९४ गाथा) की रचना की। हेमचंद्र के दूसरे शिष्य विजयसिंह सूरि ने धर्मोपदेशमाला विवरण (१४४७१६ लोक प्रमाण) लिखा। हेमचन्द्र के तीसरे शिष्य विबुधचन्द्र ने 'क्षेत्रसमास' तथा चतुर्थ शिष्य लक्ष्मण गणी ने 'सुपासनाह चरिय' लिखा।

कवि श्रीपालः----

सिद्धराज जयसिंह की विद्वत्सभा के सभापति कविराज श्रीपाल थे। ये पोरवाड़ वैश्य जैन थे। इन्होंने एक दिन में 'वैरोचन पराजय' नामक महाप्रबन्ध बनाया जिससे सिद्धराज ने इन्हें 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि दी थी। इनके ग्रन्थ सहस्रलिंग सरोवर प्रशस्ति, दुर्लभ सरोवर प्रशस्ति, रुद्रमाल प्रशस्ति, और आनन्दपुर प्रशस्ति हैं।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र, न केवल जैनधर्म की अपितु अतीत भारत की भव्य विभूति हैं। भारतीय साहित्याकाश के ज्योतिर्धरों में हेमचन्द्र सचमुच चन्द्र के समान है। ये संस्कृत-प्राकृत-साहित्य संसार के सार्वभौम चक्रवर्त्ती कहे जा सकते हैं। कलिकालसर्वज्ञ की उपाधि इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। पिटर्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें Dcean of kuowledge ('ज्ञान के महासागर') की उपाधि से अलङ्कृत किया है। साहित्य का कोई भी अंग अछूता नहीं है जिस पर इन महाप्रतिभा सम्पन्न आचार्य ने अपनी चमत्कृतिपूर्ण लेखनी न चलाई हो। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, वैद्यक, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र राजनीति, योगविद्या, ज्योतिष, मंत्रतन्त्र, रसायन विद्या आदि पर आपने विपुल साहित्य का निर्माण किया। कहा जाता है कि इन्होंने साढ़े तीन क्रोड़ श्लोकप्रमाण ग्रन्थों की रचना की थी। वर्त्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों का प्रमाण इतना नहीं है इससे प्रकट होता है कि दूसरे ग्रन्थ विलुप्त हुए होंगे। तदपि उपलब्ध ग्रन्थों का प्रमाण भी विस्मय पैदा करने वाला है। इन आचार्य को आज के युग के अनुरूप भाषा में 'जीवितविश्वकोष' की उपाधि दी जा सकती है।

जीवन परिचय :—

गुर्जर प्रान्त के धन्धुकाग्राम में एक मोढ वणिक् दम्पति के यहाँ सं. ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को इनका जन्म हुआ। पिता का नाम चाचदेव और माता का नाम चाहिनी देवी था। इनका बाल्य नाम चांगदेव था। एक दिन आचार्य देवचन्द्रसूरि धंधुकामें आये। उनके उपदेश श्रवण हेतु चांगदेव भी अपनी माता के साथ उपाश्रय में गया। बालक के शुभलक्षणों से आचार्य ने जान लिया कि यह बालक आगे चलकर महा प्रभावक होगा अतः उन्होंने उसके माता-पिता को शासन की प्रभावना के लिए बालक को उन्हें सौंप देने के लिए समझाया। हर्षातिरेक और पुत्रप्रेम से गद्‌गद् होकर माता ने उस बालक को आचार्य श्री को सौंप दिया। आचार्य उसे लेकर खम्भात पधारे। यहाँ जैनकुल भूषण मंत्री उदयन शासन के रूप में नियुक्त थे। थोड़े समय तक वहाँ रखने के बाद सं. ११५४ में इन्हें

दीक्षा दी गई और सोमचन्द्र नाम रक्खा गया। सं० ११६६ में आचार्य पद प्रदान किया और 'हेमचन्द्र सूरि' नाम रक्खा। इस समय इनकी अवस्था केवल २१ वर्ष की थी।

हेमचन्द्राचार्य विचरते २ गुजरात की राजधानी पाटन में आये। पाटन नरेश सिद्धराज जयसिंह इनकी विद्वत्ता से मुग्ध हो गया। अपनी विद्वत्सभा में इन्हें उच्च स्थान प्रदान किया और इन पर असाधारण श्रद्धा रखने लगा। धीरे २ सिद्धराज की सभा में इनका वही स्थान हो गया जो विक्रमादित्य की सभा में कालिदास का और हर्ष की सभा में बाणभट्ट का था। नरेश सिद्धराज जयसिंह की विशेष विनति पर आचार्य श्री ने एक सर्वाङ्ग सम्पन्न वृहत्-व्याकरण की रचना की में इस व्याकरण का नाम "सिद्धहैम" रखा। जो सिद्धराज और आचार्य श्री के पुण्य संस्मरणों का सूचक है।

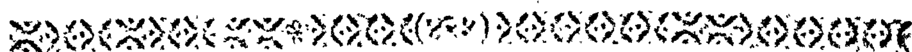
आचार्य श्री का सिद्धराज पर बड़ा प्रभाव था। यद्यपि सिद्धराज शैव था तदपि इन आचार्य श्री के प्रभाव से उसने जैनधर्म के लिए कई उपयोगी कार्य किये जिसका वर्णन "गुजरात के जैनराजा और जैनधर्म" शीर्षक में किया जा चुका है।

सिद्धराज के बाद पाटन की राजगद्दी पर कुमारपाल आया। कुमारपाल के संकट दिनों में आचार्य श्री ने ही उसे संरक्षण और आश्रय दिया था। राज्यारूढ होने पर कुमारपाल ने आचार्य श्री से जैनधर्म अंगीकार कर लिया और अपने सारे राज्य में अमारिघोषणा करवादी। कुमारपाल आचार्य हेमचन्द्र को अपना गुरु मान कर सदा उनका कृतज्ञ और भक्त बना रहा। आचार्य श्री ने भी उसे 'परमार्हत' के पद से सम्बोधित किया। कुमारपाल का राज्य आदर्श जैनराज्य था।

आचार्य श्री की मुख्य २ साहित्यक रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

-: सिद्ध हैम व्याकरण :-

"सिद्ध हैम व्याकरण" के ८ अध्याय हैं। प्रथम सात में संस्कृत भाषा का सम्पूर्ण व्याकरण आगया है। और आठवें अध्याय में प्राकृत, शौरसेनी,



मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची और अपभ्रंश-इन षड्भाषाओं का व्याकरण है। प्रथम सात अध्यायों की सूत्र संख्या ३५६६ हैं और आठवें अध्याय में १११६ सूत्र हैं। सम्पूर्ण मूलग्रन्थ ११०० श्लोक प्रमाण है। इस पर आचार्य श्री ने दो वृत्तियाँ लिखी हैं। बृहद् वृत्ति १८००० श्लोक प्रमाण है और छोटी ६००० श्लोक प्रमाण है। धातुज्ञान के लिए धातु पारायण ५००० श्लोक प्रमाण है। उणादि सूत्र २०० श्लोक प्रमाण हैं। ललित छन्दों में रचित लिंगानुशासन तीन हजार श्लोक प्रमाण टीका से युक्त है। इस व्याकरण पर आचार्य श्री ने बृहन्न्यास नामक विस्तृत विवरण ८४००० श्लोक प्रमाण लिखा था किन्तु दुर्भाग्य से वह उपलब्ध नहीं है। उसका थोड़ा सा भाग पाटन और राधनपुर के भण्डारों में है ऐसा सुना जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण कृति १ लाख २५ हजार श्लोक प्रमाण है। इस व्याकरण की रचना में आचार्य श्री की प्रकर्षप्रतिभा का पद-पद पर परिचय मिलता है।

काव्य कृतियाँ– अपने व्याकरण में आई हुई संस्कृत शब्दसिद्धि और प्राकृत रूपों का प्रयोगात्मक ज्ञान कराने के लिए संस्कृत द्व्याश्रय और प्राकृत द्व्याश्रय नामक दो उत्कृष्ट महाकाव्यों की आचार्य श्री ने रचना की है। काव्य कला की दृष्टि से दोनों श्रेष्ठ कोटि के महाकाव्य हैं। संस्कृत काव्य पर अभयतिलक गणि ने सतरह हजार पांचसौ चहोत्तर श्लोक प्रमाण टीका लिखी है और प्राकृत काव्य पर पूर्णकलश गणि ने चार हजार दो सौ तीस श्लोक प्रमाण टीका लिखी है। गुजरात के इतिहास की दृष्टि से भी इन काव्यों का पर्याप्त महत्त्व है।

कोष ग्रन्थ :– व्याकरण और काव्य रूप ज्ञानमन्दिर के स्वर्णकलश के समान चार कोष ग्रन्थों की आचार्य हेमचन्द्र ने रचना की है। अभिधान चिन्तामणि में ६ काण्ड हैं। अमर कोष की शैली का होने पर भी उसकी अपेक्षा इसमें प्रौढ शब्द दिये गये हैं। इस पर दस हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है। दूसरा कोश 'अनेकार्थ संग्रह' है। इसमें एक ही शब्द के अधिक से अधिक अर्थ दिये गये हैं। इस पर भी स्वोपज्ञ वृत्ति है। तीसरा कोश "देशी नाम माला" है। इसमें प्राचीन भाषा के ज्ञान हेतु देशी शब्द हैं। चौथा कोष निघण्टु है जिसमें वनस्पतियों के नाम और भेदादि

बताये गये हैं। यह कोष यह बताता है कि आयुर्वेद में भी आचार्य श्री की अव्याहतगति थी।

छन्दशास्त्र-पर 'छन्दोऽनुशासनम् अनुपम कृति है।

काव्यानुशासनम्:—इसमें साहित्य के अंग, रूप, रस, अलंकार, गुण, दोष, रीति आदि का मर्मस्पर्शी विवेचन किया गया है। इस पर 'अलंकार चूडामणि' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति है तथा अलंकार वृत्तिविवेक नाम दूसरी स्वोपज्ञ टीका भी है।

योगशास्त्र:—इसका दूसरा नाम आध्यात्मोपनिषद् है। इस पर बारह हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका है। इसमें आध्यात्मिक योग निरूपण के साथ २ आसन, प्राणायाम, पिण्डस्थ, पदस्थ आदि ध्यानों का निरूपण भी किया गया है।

कथाग्रन्थ:—समुद्र के समान विस्तृत और गम्भीर 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' और 'परिशिष्टपर्व' आपकी महान् कथा कृति है। इसका परिमाण चौतीस हजार श्लोक प्रमाण है। इसमें २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, और ९ प्रतिवासुदेवों के चरित्र वर्णित हैं। यह महाकाव्य कहा जा सकता है। परिशिष्ट पर्व में भगवान् महावीर से लेकर युगप्रधान वज्रस्वामी तक का इतिहास उल्लिखित है। ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करने वाला यह मुख्य ग्रन्थ है।

न्यायग्रन्थ:—प्रमाणमीमांसा और दो 'अयोग व्यवच्छेदिका' तथा 'अन्ययोग व्यवच्छेदिका' रूप स्तुतियाँ आपकी दार्शनिक कृतियाँ हैं। आचार्य श्री ने अपने समय तक के विकसित प्रमाण शास्त्र की सारभूत बातें लेकर प्रमाणमीमांसा की सूत्रबद्ध रचना की है। इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी है। यह ग्रन्थ पांच अध्याय में विभक्त था परन्तु प्रथम अध्याय और दूसरे अध्याय का प्रथम आन्हिक ही उपलब्ध है। न्याय-ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का बड़ा महत्त्व है। अपनी रची हुई न्याय विषयक दो द्वात्रिंशिकाएँ बड़ी सुन्दर हैं। उदयनाचार्य ने कुसुमाञ्जलि में जिस प्रकार ईश्वर की स्तुति रूप में

न्यायशास्त्र को गुम्फित किया है इसी तरह आचार्य हेमचन्द्र ने भी महावीर की स्तुति रूप में इनकी रचनाएं की हैं। श्लोकों की रचना महाकवि कालिदास की शैली का स्मरण कराती हैं। अन्ययोगव्यवच्छेदिका पर मल्लिषेण सूरी ने स्याद्वादमंजरी नामक प्राञ्जल टीका लिखी है।

नीतिग्रन्थ में अर्हन्नीति आपके द्वारा रचित कही जाती है परन्तु इसमें सन्देह है क्योंकि यह आपकी प्रतिभा के अनुरूप कृति नहीं है।

इस प्रकार व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, आयुर्वेद, नीति आदि विषयों पर आपका पूर्ण अधिकार होने से तथा सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी होने से आपका नाम 'कलिकालसर्वज्ञ' बिल्कुल यथार्थ सिद्ध होता है।

आचार्य श्री ने साहित्य सेवा के अतिरिक्त भी जैनधर्म की महती प्रभावना की है। कहा जाता है कि आपने डेढ लाख मनुष्यों को जैन धर्मानुयायी बनाया था। श्रीमद् राजचन्द्र ने लिखा है कि आचार्य श्री चाहते तो अपनी प्रतिभा के बल पर अलग सम्प्रदाय स्थापित कर सकते थे परन्तु यह उनकी उदारता और निस्पृहता थी कि उन्होंने जैनधर्म को ही दृढ़, स्थायी और प्रभावशाली बनाने में ही अपनी समस्त प्रतिभा का सदुपयोग कया। अन्त में ८४ वर्ष की आयु में सं० १२२९ में गुजरात की ही नहीं समस्त भारत की यह असाधारण विभूति अमर यश को छोड़कर दिवंगत हो गई।

जैनसंसार और संस्कृत-प्राकृत संसार में आचार्य हेमचन्द्र का नाम यावच्चन्द्र दिवाकरौ अमर रहेगा। आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ने कहा है:— "ई० सन् १०८९ तक के वर्ष कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र के तेज से देदीप्यमान हैं।" जैनधर्म और भारतीयसाहित्य के इस महान् ज्योतिर्धर से भारतीय साहित्य का इतिहास सदा जगमगाता रहेगा।

रामचन्द्र सूरी:—

श्री हेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे। काव्य, न्याय और व्याकरण के पारगामी विद्वान् होने से थे 'त्रैविद्यवेदी' के विशेषण से विभूषित थे।

सिद्धराज जयसिंह ने इन्हें 'कवि कटारमल्ल' की उपाधि प्रदान की थी। विद्वानों का अनुमान है कि इन्होंने सौ प्रबन्धों की रचना की था अतः 'प्रबन्ध-शतकर्त्ता' कहलाये। श्री जिनविजय जी ने लिखा है कि "प्रबन्धशतं द्वादशरूपक नाटकादिस्वरूपज्ञापकं" इस उल्लेख से यह मालूम होता है कि 'प्रबन्धशत' नामक बारह रूपक और नाटक आदि के स्वरूप को प्रकट करने वाला ग्रन्थ उन्होंने रचा था।

इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं:— द्रव्यालङ्कार स्वोपज्ञ वृत्ति युक्त, व्यतिरेक द्वात्रिंशिका, सिद्धहेम न्यास (५३००० श्लोक प्रमाण), सत्य हरिश्चन्द्र नाटक, निर्भयभीम व्यायोग, राघवाभ्युदय, यदुविलास, रघुविलास, नलविलास, मल्लिकामकरन्द, रोहणी मृगाङ्क, वनमाला, सुधाकलशकोश, कौमुदीमित्रानंद, नाट्यदर्पण सटीक कुमारविहार शतक, युगादिदेव द्वात्रिंक, प्रासाद द्वात्रिंशिका, मुनीसुव्रत द्वात्रिंशिका, आदिदेवस्तव, नाभिस्तव, सोलहस्तवन।

हेमचन्द्राचार्य के शिष्यमण्डल में रामचन्द्रसूरि के अतिरिक्त गुणचन्द्र गणी, महेन्द्रसूरि, वर्धमान गणी, देवचन्द्र मुनी, यशश्चन्द्र, उदयचन्द्र, बालचन्द्र आदि अनेक विद्वान् शिष्य थे। गुणचन्द्र गणी द्रव्यालंकार और नाट्यदर्पण की रचना में रामचन्द्रसूरि के सहयोगी रहे।

महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थ संग्रहकोश पर 'अनेकार्थ कैरवाकर कौमुदी' टीका लिखी। वर्धमान गणी—ने कुमारविहार शतक पर व्याख्या और 'चन्द्रलेखा विजय' नाटक लिखा। बालचन्द्रगणि ने मानमुद्रा भंजन नाटक और 'स्नातस्या' स्तुति लिखी। रामभद्र (देवसूरि संतानीय जयप्रभसूरि के शिष्य) ने इसी समय "प्रबुद्ध रौहिणेय" नाटक लिखा।

राजा अजयपाल के जैनमंत्री यशःपाल ने 'मोहपराजय' नाटक लिखा। आचार्य मल्लवादी ने 'धर्मोत्तर टिप्पनक' नामक दार्शनिक टीका ग्रन्थ लिखा। धारानगरी के आम्रदेव के पुत्र नरपति ने 'नरपतिजय चर्चा' नामक शकुनग्रन्थ लिखा। प्रद्युम्न सूरि ने वादस्थल नामक चर्चाग्रन्थ लिखा। जिनपति—सूरी इन्होंने प्रद्युम्नसूरि कृत 'वादस्थल' का खण्डन करने के लिए 'प्रबोध्यवादस्थल' लिखा। तीर्थमाला, संघपट्टक बृहद् वृत्ति और पंचलिंगी विवरण ग्रन्थ भी लिखे।

रत्नप्रभसूरीः—

ये प्रसिद्धवादी वादीदेवसूरि के शिष्य थे। इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'स्याद्वादरत्नाकरावतारिका' है जो स्याद्वाद रत्नाकर में प्रवेश करने के लिए सहायक रूप में लिखी। इसमें इतनी सुन्दर भाषा में न्याय का शुष्क विषय प्रतिपादित किया गया है कि पढ़ते २ काव्य का आनन्द आता है : स्याद्वाद रत्नाकर की अपेक्षा 'अवतारिका' का प्रचलन अधिक हुआ। इन्होंने प्राकृत भाषा में नेमिनाथ चरित्र सं. १२३३ में लिखा। १२३८ में धर्मदास कृत उपदेशमाला पर दोघट्टी वृत्ति लिखी।

महेश्वरसूरि (वादीदेवसूरि के शिष्य) ने पाक्षिकसप्तति पर सुखप्रबोधिनी टीका लिखी। सोमप्रभसूरि-ने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक ग्रन्थ लिखा। हेमप्रभसूरि-ने 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' पर वृत्ति लिखी। परमानन्दसूरि (वादिदेवसूरि के प्रशिष्य) ने खण्डनमण्डन टिप्पन लिखा। देवभद्र ने प्रमाणप्रकाश और श्रेयांसचरित्र लिखा। सिद्धसेन (देवभद्र के शिष्य) ने प्रवचन सारोद्धार (नेमिचन्द्र कृत) पर तत्वज्ञान-विकाशिनी टीका, सामाचारी पद्मप्रभ चरित्र और स्तुतियाँ लिखीं। महाकविआसडः- इस महाकवि को कविसभाश्रृंगार की उपाधि थी। इन्होंने कालिदास के मेघदूत पर टीका लिखी तथा उपदेश कंदली, विवेक मंजरी और कतिपय स्तोत्र लिखे।

नेमिचन्द्रश्रेष्ठीः- इन्होंने 'सट्ठिसय' नामक ग्रन्थ प्राकृत में रचा। 'उपदेश रसायन' और 'द्वादशकुलक' पर विवरण लिखे, नेमिचन्द्र-इन्होंने प्रवचन सारोद्धार की विषमपद व्याख्या टीका, 'शतक कर्मग्रन्थ' पर टिप्पनक और कर्मस्तव पर भी टिप्पनक लिखे।

तिलकाचार्य- इन्होंने जीतकल्प वृत्ति, सम्यक्त्व प्रकरण की टीका (पूर्ण की), आवश्यनियुक्ति, लघुवृत्ति, दशवैकालिक टीका, श्रावक प्रायश्चित्त-समाचारी, पौषध प्रायश्चित्तसमाचारी, वन्दनकप्रत्याख्यान लघुवृत्ति, श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्र लघुवृत्ति, और पाक्षिक सूत्रावचूरि ग्रन्थ लिखे हैं।

वस्तुपालः—

वणिक् कुल-भूषण मन्त्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल ने साहित्य और साहि-

त्यकारों को खूब प्रोत्साहन दिया। वस्तुपाल स्वयं विद्वान् था। नरनारायणानन्द काव्य की स्वयं रचना की थी। उसने अपना विद्यामण्डल बना रखा था। इस महा साहित्यरसिक की विद्याप्रियता के कारण उसकाल में साहित्य की खूब समृद्धि हुई।

अमरचन्द्रसूरि—

संस्कृत साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इनके ग्रन्थों की कीर्ति जैनसमाज में ही अपितु ब्राह्मण समाज में भी प्रख्यात है। 'इनके बाल भारत' और कवि कल्पलता नामक ग्रन्थ ब्राह्मण समाज में विशेष प्रख्यात थे। ये महाकवि, राजा वीसलदेव के दरबार के सम्माननीय विद्वान थे। इनकी रचनाएँ कल्पलता सटीक, कविशिक्षावलि, काव्यकल्पलतापरिमल सटीक पद्मानन्दकाव्य (जिनेन्द्र चरित्र), कलाकलाप, बाल भारत, छन्दोरत्नावलि, अलंकार प्रबोध, सूक्तावलि और स्यादिशब्दसमुच्चय।

बालचन्द्रसूरिः—

इन्होंने वस्तुपाल की प्रशंसा में वसन्तविलास नामक महाकाव्य की रचना की। करुणावज्रायुध नाटक-उपदेश कंदली पर टीका तथा विवेकमंजरी पर टीका भी इनकी रचनाएँ है। जयसिंहसूरि-ने वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्तिकाव्य, और हम्मीरमदमर्दननाटक लिखा। उदयप्रभसूरि-ने सुकृतकल्लोलिनी, धर्माभ्युदय महाकाव्य, नेमिनाथ चरित्र, आरम्भसिद्धी (ज्योतिषग्रन्थ), षडशीति और कर्मस्तव पर टिप्पन, उपदेशमाला कर्णिका टीका आदि ग्रन्थ लिखे।

नरचन्द्रसूरिः—

इन्होंने वस्तुपाल के आग्रह से 'कथारत्न सागर' ग्रन्थ की रचना की। इनके ग्रंथ इस प्रकार हैः—प्राकृतदीपिका प्रबोध, कथारत्नसागर, अनर्घराघव टिप्पन, न्यायकंदली (श्रीधर) टीका, ज्योतिः सार और चतुर्विंशति जिन स्तुति। इनके शिष्य नरेन्द्रप्रभ ने अलंकार महोदधि की रचना की। इनके गुरु श्री देवप्रभसूरि ने पाण्डव चरित्र, मृगावती चरित्र और काकुत्स्थकेलि ग्रंथों की रचना की। माणिक्यचन्द्रसूरि ने 'पार्श्वनाथ चरित्र', शांतिनाथ चरित्र और 'काव्यप्रकाश संकेत' लिखे।

पण्डित आशाधरः—

इसी तेरहवीं शताब्दी में दिगम्बर सम्प्रदाय में पंडित आशाधर नामक

संस्कृत-प्राकृत तथा तथा अपभ्रंश में जिनप्रभसूरि ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। इन आचार्य ने दिल्ली में शाह महम्मद को प्रतिबोध दिया था।

ठक्कर फेरु:- सं. १३७२ में धंध के कुल में परम जैनचन्द्र ठक्कर के पुत्र फेरु ने वास्तुसार नामक ग्रन्थ रचा। ज्योतिष, पदार्थविज्ञान आदि पर आपके ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

मेरुतुंग :—

नागेन्द्रगच्छ के चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य मेरुतुङ्ग सूरि ने सं. १३६१ में वर्धमानपुर में प्रबन्धचिन्तामणि तथा विचारश्रेणी स्थविरावली लिखे। इसमें इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है। पाश्चात्य विद्वानों ने इन ग्रन्थों को विश्वसनीय माना है। गुजरात के इतिहास के लिए तो यह एक आधारभूत ग्रन्थ गिना जा सकता है।

इसी प्रकार सुधाकलश, सोमतिलक, राजशेखरसूरि, रत्नशेखर, जयशेखर सूरि, मेरुतुङ्ग आदि बड़े विद्वान् साहित्यकार हुए हैं जिनकी कृतियाँ क्रमशः संगीत, दर्शन, प्रबन्ध, कोप, चरित्र विषयक कई ग्रन्थ रचे हैं। स्थानाभाव से विशेप परिचय नहीं दे पा रहे हैं।

इस शताब्दी में देवसुन्दरसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए। इन्होंने अनेक ताडपत्रीय प्रतियों को कागज पर लिखवाया। इनके अनेक विद्वान् शिष्य हुए।

मंडनमंत्री—श्रीमाल जातीय संघवी गौत्रीय श्री मण्डन मंत्री मण्डपदुर्ग (माण्डु) के शासक के मंत्री थे। ये उच्चकोटि के विद्वान् थे। व्याकरण, अलंकार, साहित्य, संगीत आदि में अत्यन्त परगामी विद्वान् थे। मण्डन में लक्ष्मी और सरस्वती का विचित्र सामञ्जस्य था। मण्डन मंत्री के रचे हुए ग्रन्थ इस प्रकार हैं:—

सारस्वतमण्डन (व्याकरण ग्रन्थ) काव्यमण्डन, कविकल्पद्रुम, चम्पूमण्डन, कादम्बरीमण्डन, चन्द्रविजय, अलंकारमण्डन, शृङ्गारमण्डन, संगीतमंडन और उपसर्गमण्डन।

मण्डन की तरह उनके काका देहड़ के पुत्र धन्यराज या धनद भी अच्छे प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने भर्तृहरिशतकत्रय की तरह शृंगारधनद, नीतिधनद और वैराग्यधनद की रचना की।

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुणरत्न ने षष्टिशतक पर टीका, तपोरत्न ने उत्तराध्ययनलघुवृत्ति, सोमदेव गणि ने कथा महोदधि और सिद्धान्तस्तव टीका, चरित्रवर्धन ने सिन्दूरप्रकर टीका तथा रघुवंश की शिशुहितैषिणी टीका। सोमधर्म गणि, गुणाकर सूरी, उदयधर्म, सर्वसुन्दर सूरी, मेघराज, साधुसोम, ऋषिवर्धन, धर्मचन्द्र गणि, हेमहंस गणि, ज्ञानसागर, शुभशील, राजवल्लभ, भावचन्द्र सूरी आदि ग्रन्थकर्त्ता हुए। रत्नमण्डन गणि ने उपदेशतरंगिणी और प्रबन्धराज (भोजप्रबन्ध) की रचना की। प्रतिष्ठासोम ने सोमसौभाग्य काव्य लिखा।

सं० १५४४ में बृहत्खरतरगच्छीय जिनसागरसूरी के शिष्य कमलसंयम उपाध्याय ने उत्तराध्ययन सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि नाम की वृत्ति रची। सं० १५४९ में कर्मस्तव विवरण तथा सिद्धान्त सारोद्धार पर सम्यक्त्वोल्लास टिप्पन लिखा। उदयसागर ने उत्तराध्ययन दीपिका लिखी। हर्षकुल गणि ने सूत्रकृताङ्गदीपिका, वाक्यप्रकाश, और बन्धहेतूदयत्रिभंगी लिखे। लक्ष्मीकल्लोल ने आचारांग अवचूर्णि और ज्ञातासूत्र लघुवृत्ति लिखी।

उदयसौभाग्य ने हैमप्राकृत वृत्ति, ढुंढिका पर व्युत्पत्ति दीपिका लिखी। श्रुतसागर—(१५५० के लगभग) तत्त्वार्थवृत्ति श्रुतसागरी टीका, तत्त्वत्रय प्रकाशिका, षट्प्राभृत टीका, औदार्यचिन्तामणि सटीक, यशस्तिलक चन्द्रिका, व्रतकथा कोष, जिनसहस्र टीका, आदि ग्रन्थ लिखे।

ज्ञानभूषण भट्टारक—ने सिद्धान्तसार भाष्य, तत्त्वज्ञान तरंगिणि, पञ्चास्तिकाय टीका, नेमिनिर्वाण काव्यपंजिका, परमार्थोपदेश, दशलक्षणोद्यापन, भक्तामरोद्यापन और सरस्वतीपूजा ग्रन्थ लिखे।

इस शताब्दी में आगमों और अन्य ग्रन्थों पर भाषा में बालावबोधों (टब्बों) की रचना हुई। पार्श्वचन्द्र और उनकी शिष्यपरम्परा ने बालाव-

बोधों की रचना की। गुजराती कवितासाहित्य और लोककथासाहित्य की समृद्धि हुई।

सत्तरहवीं शताब्दी के मुख्य प्रभावकपुरुष जगद्गुरु श्री हीरविजय-सूरि हुए जिन्होंने अकबर बादशाह पर गहरी छाप डाली। इनके विद्वान् शिष्य भानुचन्द्र उपाध्याय तत् शिष्य सिद्धिचन्द्र उपाध्याय, आदि ने साहित्यरचना के द्वारा संस्कृतसाहित्य की समृद्धि की।

श्री धर्मसागर उपाध्याय, विजयदेवसूरि, ब्रह्ममुनि, चन्द्रकीर्ति, हेम-विजय, पद्मसागर, समयसुन्दर, गुणविनय, शांतिचंद्र गणि, भानुचंद्र उपाध्याय, सिद्धिचंद्र उपाध्याय रत्नचन्द्र, साधुसुन्दर, सहजकीर्ति गणि, विनयविजय उपाध्याय, वादिचन्द्र सूरि, भट्टारक शुभचन्द्र, हर्षकीर्ति आदि अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं ने इस शताब्दी के साहित्य श्री को समृद्ध बनाया।

कवि बनारसीदास जी :—

इस शताब्दी में प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुए। इन्होंने हिन्दी भाषा में अनेक ग्रन्थों का पद्यमय अनुवाद किया। इन्होंने समयसार नाटक नामक ग्रन्थ हिन्दी पद्यों में बनाया। यह ग्रन्थ बड़ा अपूर्व है इसका श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में खूब सन्मान है। यह वेदान्तियों को भी आनन्द देने वाला ग्रन्थरत्न है। इसके अतिरिक्त अध्यात्मबत्तीसी आदि ग्रन्थों की इन्होंने रचना की।

इस शताब्दी में संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों पर बालावबोध टब्बों की रचना भी हुई। धर्मसिंह मुनि ने २७ सूत्रों की गुजराती गद्य में बालावबोध टब्बों के रूप में टीका लिखी। गुजराती गद्यसाहित्य, काव्यसाहित्य, लोककथासाहित्य, उर्मिगीत, भावानुवाद, ऐतिहासिक साहित्य, युद्धगीत, रूपक, संवाद, बारहमासा आदि साहित्य की सब धाराओं का प्रवाह अस्खलित रूप से इस शताब्दी में प्रवाहित हुआ। इस समय भक्तिमार्ग का भी उदय और विकास हो चुका था।

मुसलमान शासकों के समय में भी जैनविद्वानों की सरस्वती आराधना का क्रम यथावत् चलता रहा। इस सतरहवीं शताब्दी में और इसकी

पूर्ववर्त्ती शताब्दियों में भी जैनमुनियों ने अपनी प्रतिभा से मुस्लिम शासकों पर भी अपना अमिट प्रभाव डाला। अतः इस काल में भी उनकी साहित्याराधना का प्रवाह अमोघ रूप से प्रवाहित होता रहा। गुजराती साहित्य के विकास में जैनमुनियों का असाधारण योग रहा है यह सब गुजराती साहित्यवेत्ता स्वीकार करते हैं।

४ आधुनिक काल.

यशोविजय युगः—

आनन्दघनः—

इस युग में प्रसिद्ध योगिराज और अध्यात्मयोगी श्री आनन्दघन जी हुए। इनकी मुख्य प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर थी। पहले ये लाभानन्द नाम के श्वेताम्बर मुनि के रूप में थे बाद में अध्यात्मयोगी पुरुष आनन्दघन के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अपनी आध्यात्मिकता की झाँकी स्वनिर्मित चौबीसियों में प्रतिबिम्बित की है। इनकी चौबीसियों में जो आध्यात्मिक भाव हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इनके अनेक पद 'आनन्दघन बहोत्तरी' में दिये गये हैं उनमें आध्यात्मिक रूपक, अन्तर्ज्योति का आविर्भाव, प्रेरणामय भावना और भक्ति का उल्लास व्याप्त होता हुआ दिखाई देता है। आनन्दघन जी जैनधर्म की भव्य विभूति हैं।

यशोविजय जी :—

अठारहवीं शताब्दी में हरिभद्र और हेमचन्द्र की कोटि में गिने जा सकने वाले महा प्रतिभासम्पन्न विद्वान श्री यशोविजयजी हुए। ये प्रखर नैयायिक, तार्किक शिरोमणि, महान शास्त्रज्ञ, प्रतापशाली समन्वयकार, उच्च कोटि के साहित्यकार, आचार सम्पन्न प्रभावक मुनि और महान सुधारक थे। ये हेमचन्द्र द्वितीय कहे जा सकते हैं।

इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। पं० सुखलालजी ने लिखा है कि—"इन के (यशोविजय जी के) समान समन्वयशक्ति रखनेवाला, जैन-जैनेतर ग्रन्थों का गम्भीर दोहन करने वाला, प्रत्येक विषय के तल तक पहुँच कर, समभाव पूर्वक अपना स्पष्ट मन्तव्य प्रकट करने वाला, शास्त्रीय और लौकिक

भाषा में विविध साहित्य की रचना कर अपने सरल और कठिन विचारों को सब जिज्ञासुओं तक पहुँचाने की चेष्टा करने वाला और सम्प्रदाय में रह कर भी सम्प्रदाय के बंधनों की परवाह न कर जो उचित मालूम हो उसपर निर्भयता पूर्वक लिखने वाला, केवल श्वेताम्बर-दिगम्बर समाज में ही नहीं बल्कि जैनेतर समाज में भी उनके जैसा कोई विशिष्ट विद्वान हमारे देखने में अबतक नही आया।......केवल हमारी दृष्टि से ही नहीं परन्तु प्रत्येक तटस्थ विद्वान् की दृष्टि में भी जैनसम्प्रदाय में उपाध्यायजी का स्थान, वैदिक सम्प्रदाय में शंकराचार्य के समान है।"

इनका जन्म सं० १६८० में हुआ। गुरु का नाम नयविजय था। ८ वर्ष की अवस्था में काशी व आगरा में रहकर उच्चकोटि का ज्ञान उपार्जन किया। इसके बाद की अपनी सारी अवस्था तक साहित्यसृजन में लगे रहे। इन्होंने प्राकृत, संस्कृत और गुजराती भाषा में विपुल ग्रन्थ राशि की रचना की। न्याय, योग, अध्यात्म, दर्शन, धर्म, नीति, खण्डन मण्डन, कथा-चरित्र, मूल और टीका-प्रत्येक विषय पर अपनी प्रौढ लेखनी चलाई। काशी में रहते हुए इन्हें 'न्यायविशारद' की उपाधि दी गई थी। इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं।

अध्यात्मः—अध्यात्ममत परीक्षा, अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद्, आध्यात्मिकमतदलन (स्वोपज्ञ टीका) उपदेश रहस्य, ज्ञानसार, परमात्म पञ्चविंशतिका, परमज्योति पञ्चविंशतिका, वैराग्य कल्पलता, अध्यात्मोपदेश ज्ञानसार व चूर्णि। दार्शनिकः—अष्टसहस्री विवरण, अनेकान्त व्यवस्था ज्ञानबिन्दु, जैनतर्कभाषा. देवधर्म परीक्षा, द्वात्रिंशत द्वात्रिंशिका, धर्मपरीक्षा, नयप्रदीप, नयोपदेश, नयरहस्य, न्यायखण्ड खाद्य, न्यायालोक, भाषा रहस्य वीरस्तव, शास्त्रवार्त्ता समुच्चय टीका, स्याद्वाद कल्पलता, उत्पादव्ययध्रौव्य-सिद्धि टीका, ज्ञानार्णव, अनेकान्तप्रवेश, आत्मख्याति, तत्त्वालोक विवरण, त्रिसूत्र्यालोक, द्रव्यालोकविवरण, न्यायबिन्दु, प्रमाणरहस्य, मंगलवाद वादमाला, वादमहार्णव, विधिवाद, वेदान्तनिर्णय, सिद्धान्त तर्क परिष्कार, सिद्धान्तमंजरी टीका, स्याद्वाद मंजूषा, द्रव्यपर्याय युक्ति। आगमिकः— अराधक विराधक चतुर्भङ्गी, गुरुतत्त्व विनिश्चय, धर्मसंग्रह टिप्पन, निशाभक्त प्रकरण, प्रतिमाशतक, मार्गपरिशुद्धि, यतिलक्षणसमुच्चय, सामाचारी प्रकरण, कूपदृष्टान्त विशदीकरण, तत्वार्थ टीका और अस्पृशद् गतिवाद।

योग—योगविंशिका टीका, योगदीपिका, योगदर्शन विवरण।

अन्यग्रन्थ—कर्मप्रकृति टीका, कर्मप्रकृति लघुवृत्ति, तिङन्तान्वयोक्ति, अलंकार चूड़ामणि टीका, काव्यप्रकाश टीका छन्दश्चूड़ामणि शठप्रकरण ऐन्द्रस्तुति चतुर्विंशतिका, स्तोत्रावलि, शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तोत्र, समीका-पार्श्वनाथ स्तोत्र, आदि जिनस्तवन, विजयप्रभसूरि स्वाध्याय और गोडी, पार्श्वनाथ स्तोत्रादि।

उपर्युक्त विशाल ग्रन्थराशि को देखने से ही प्रतीत हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी कितने प्रौढ विद्वान थे। ये अनुपम विद्वान, प्रखर न्यायवेत्ता, योगवेत्ता, अध्यात्मयोगी, समयज्ञ और महासुधारक थे। इनका स्वर्गवास १७४३ में हुआ। ये जैनसाहित्य के इतिहास में प्रथमकोटि के साहित्यकारों में रखे जाने योग्य साहित्यसेवी हुए हैं।

विनयविजय उपाध्यायतथा मेघविजय उपाध्याय--

ये यशोविजयजी के समकालीन हैं। इन्होंने आगमिक, दार्शनिक व्याकरण, काव्य और स्तुति सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। श्री मेघविजय उपाध्याय व्याकरण, न्याय, साहित्य के अतिरिक्त आध्यात्मिक और ज्योतिर्विद्या में भी प्रवीण थे इन्होंने महाकवि माघ के माघकाव्य के प्रत्येक श्लोक का अंतिम पद लेकर शेष तीन पादों की विषयबद्ध रचना करके देवानन्दाभ्युदय महाकाव्य की रचना की। इसी तरह नैषध के प्रतिश्लोक का एक चरण लेकर शांतिनाथ चरित्र काव्य की रचना की। सबसे अधिक चमत्कृति पूर्ण इनका सप्तसंधान महाकाव्य है। इसका प्रत्येक श्लोक ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, रामचन्द्र और कृष्ण इन सात महापुरुषों को समान रूप से लागू होता है। कितनी चमत्कार पूर्ण काव्य कृति। काव्य के अतिरिक्त चन्द्रप्रभा व्याकरण, कथा चरित्र ज्योतिष के मेघमहोदय, रमल शास्त्र, हस्तसंजीवन टीका सहित, मंत्रतंत्र, अध्यात्म और स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया।

इनके बाद यशस्वत् सागर, लक्ष्मीवल्लभ, आदि अनेक साहित्य लेखक हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में नयचन्द्र, पद्मविजयगणि, क्षमाकल्याण-

उपाध्याय, बीसवीं शताब्दी में विजयराजेन्द्रसूरि और न्यायविजय जी जैसे महा विद्वान् साहित्यिक हुए। उन्नसवीं, बीसवीं शताब्दी में संस्कृत-प्राकृत साहित्य सृजन की गति मंद हो गई और हिंदी, गुजराती आदि भाषाओं में विशेष रूप से साहित्य-सृष्टि हुई। गुजराती और हिंदी भाषा के साहित्य-विकास में उन्नीसवीं बीसवीं सदी के जैनमुनियों का मुख्य रूप से योग रहा है।

चिदानंद जी कवि रायचन्द्र, विजयानंदसूरि, वीरचंद गाँधी, आत्माराम जी म०, शतावधानी रत्नचन्द्र जी म० आदि २ प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक हुए हैं।

वर्तमान में कई साहित्यकार जैनसाहित्य लेखन का अच्छा कार्य कर रहे हैं। जिसे जैनसाहित्यसागर का मंथन कहा जा सकता है। विशिष्ट विद्वानों में पं० सुखलाल जी, पं० बेचरदास जी, मुनि जिनविजयजी, डॉ० हीरालाल जी, राव जी नेमचन्दशाह, श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, डॉ० बूलचन्दजी, श्री अगरचन्द जी नाहटा श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार, श्री परमेष्ठीदासजी, पं० कैलाशचन्दजी, पं० चैनसुखदासजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्थान संकोच से सबके परिचय नहीं दे पा रहे हैं जिसका हमें खेद है।

जैनसाहित्य और साहित्यकारों के सम्बध में विशेष जानकारी प्राप्त करने के जिज्ञासु पाठकों को श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई का 'जैन साहित्य नो इतिहास' ग्रंथ देखना चाहिये। उक्त प्रकरण में हम तो केवल विहंगावलोकन मात्र ही कर पाये हैं।

जैनसाहित्य की सर्वाङ्गीणता

जैन साहित्य-सरिता का प्रवाह सर्वतोमुखी रहा है। इस सर्वतोमुखी प्रवाह ने भारतीय-साहित्य के प्रत्येक प्रदेश को सिञ्चित और पल्लवित किया है। जैनलेखकों ने केवल अपने धार्मिकतत्त्वों का निरूपण और समर्थन करने वाला साहित्य ही नहीं लिखा है अपितु भारतीय वाङ्मय के प्रत्येक अंग व्याकरण, कोष, छन्द, अलंकार आदि पर भी अधिकारपूर्ण लेखनी चलाई

है। तत्त्वनिरूपण, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, नाटक, छन्द, अलंकार, कथा, इतिहास, नीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, भूगोल, खगोल, मंत्रतन्त्र, स्तोत्रयोग, अध्यात्म आदि सकल विषयों पर जैनविद्वानों ने अधिकारपूर्ण साहित्य प्रस्तुत किया है।

प्राचीन जैनसाहित्य इतना समृद्ध है कि उसका वर्णन इस ग्रन्थ के इन कतिपय पृष्ठों में नहीं किया जा सकता है तदपि उल्लिखित विषयों पर पिछले पृष्ठों में नमूने की तौर पर मुख्य २ प्रसिद्ध लेखकों और ग्रन्थों का दिग्दर्शन और नामनिर्देश किया गया है। इतने उल्लेखमात्र से भी जैन साहित्य की सर्वाङ्गीणता और सर्वव्यापकता का स्थूल परिचय सहज ही में प्राप्त किया जा सकता है।

तत्त्वनिरूपण:—

इस विषय पर तो जैनाचार्य और जैनविद्वान लिखें यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैनाचार्यों ने जैनधर्म के तत्त्वों को निरूपण करने वाला विपुल ग्रन्थराशि का निर्माण किया है। गणधररचित मूल जैनागम और अन्य श्रुत केवलियों के रचे हुए आगमों के अतिरिक्त इनके गूढ़ मर्म को स्पष्ट करने वाले सैंकड़ों नहीं हजारों ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। व्यवस्थित शैली से तत्त्वनिरूपण करने वाला प्राचीन ग्रन्थराज उमास्वाति रचित तत्वार्थाधिगम सूत्र है। बाद के आचार्यों ने इस ग्रन्थ पर बड़ी २ टीकाएँ लिखकर जैनधर्म के मर्म को प्रकट किया है।

न्याय :—

जैनन्याय के प्रथम प्रवर्त्तक श्री सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य समन्तभद्र हैं। सिद्धसेनदिवाकर ने न्यायावतार और समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा लिखकर जैनन्याय और तर्कशास्त्र की मूल प्रतिष्ठा की। जैनाचार्यों ने इस विषय में इतना अधिक और इतना सुन्दर साहित्य रचा है कि वह विश्व के दार्शनिक इतिहास की मूल्यवान निधि बन गया है। जैनदर्शन का स्याद्वादसिद्धान्त दार्शनिक संसार के लिए महत्त्वपूर्ण अन्वेषण है। न्याय विषय पर लिखे गये साहित्य पर भी पिछले पृष्ठों में

विस्तृत वर्णन दिया जा चुका है। जैनदर्शन और दार्शनिकों के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए विद्याभूषण डॉ सतीशचन्द्र द्वारा लिखित Medieval School of Indian Logic. नामक ग्रन्थ देखना चाहिए।

व्याकरण :---

शाकटायन, देवनंदि पूज्यपाद, हेमचन्द्र, रामचन्द्रसूरि आदि प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं। महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण में शाकटायन का उल्लेख किया है। पूज्यपाद देवनंदि ने जैनेन्द्र व्याकरण लिखा है। इस पर नौवीं-बारहवीं शताब्दी के बीच में हुए आचार्य अभयनंदि ने बारह हजारश्लोक प्रमाण महावृत्ति लिखी। श्रुतकीर्ति ने तैंतीस हजार श्लोक प्रमाण पञ्चवस्तु प्रक्रिया लिखी। प्रभाचन्द्र ने सोलह हजार श्लोक प्रमाण शब्दाम्भोज भास्कर न्यास लिखा। हेमचन्द्राचार्य ने सिद्धहैमव्याकरण की रचना की। इनके अतिरिक्त रामचन्द्रसूरि, शाकटायन द्वितीय, मलयागिरी आदि जैनाचार्यों ने व्याकरण-शास्त्र पर बड़े २ ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्र तो अपभ्रंश के पाणिनि के रूप में विश्वविख्यात हैं।

काव्य :---

जैनाचार्यों ने विपुल प्रमाण में काव्य और महाकाव्यों की रचना करके संस्कृतसाहित्य को चारचाँद लगा दिये हैं। जैनाचार्यों के द्वारा रचे गये महाकाव्य कालिदास, हर्ष माघ और बाण के ग्रन्थों से किसी तरह कम नहीं हैं। श्री हर्ष के नैषध चरित महाकाव्य के साथ स्पर्धा करने वाला देव विमलगणी का हीरसौभाग्य महाकाव्य. कालिदास के रघुवंश की समानता करने वाला हेमविजयगणि का विजयप्रशस्तिकाव्य, जैनेतर पंचकाव्यों से टक्कर लेने वाले जैनकाव्य जैसेकि जयशेखर का जैनकुमारसंभव, वस्तुपाल का नरनारायणानन्द काव्य, बालचन्द्रसूरि का वसंतविलास मेरुतुङ्ग सूरि का जैनमेघदूत, कविहरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय, कवि वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण, मुनिभद्र का शान्तिनाथ चरित्र, अभयदेव का जयंत विजय आदि २ मुख्य हैं। अठारहवीं शताब्दी के मेघविजय उपाध्याय ने सप्तसंधान महाकाव्य लिखा जिसका प्रत्येक श्लोक सात महापुरुषों पर समान रूप से लागू होता है।

कोष :—

हेमचन्द्राचार्य का अभिधानचिन्तामणी कोष इस विषय में सर्वश्रेष्ठ रचना है। हेमचन्द्र ने 'अनेकार्थसंग्रह सटीक' देशी नाम माला, निघण्टुशेष आदि कोशग्रन्थ भी लिखे हैं। इनके शिष्य महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थसंग्रह पर अनेकार्थ कैरवाकरकौमुदी टीका लिखी है। धनंजय ने धनंजयनाममाला नामक कोश, सुधाकलश ने 'एकाक्षर नाममाला' लिखी है। इसके अतिरिक्त शिलोच्छकोष आदि अनेक कोश हैं। बीसवीं शताब्दी में राजेन्द्रसूरि ने अभिधान राजेन्द्र के नाम से विस्तृत कोश (जिन्हें विश्व-कोष कहा जा सकता है) ग्रन्थ की रचना की है। पाइअसद्दमहण्णवो और अर्धमागधी कोश इस शताब्दी के कोश ग्रन्थ हैं।

नाटकः—

इस क्षेत्र में भी जैनाचार्यों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। हेमचन्द्राचार्य के शिष्य रामचन्द्रसूरि ने रघुविलास, नामक नाटक लिखा। हस्तिमल्ल ने मैथिलीकल्याण, विक्रांत कौरव; सुभद्राहरण, अंजना पवनजय नामक नाटक लिखे। हरिश्चन्द्र ने 'जीवंधर' नाटक लिखा। जयसिंह सूरि ने हमीरमदमर्दन नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा। यशःपाल की मोहराज पराजय, रामचन्द्र का प्रवुद्ध रौहिणेय विजयपाल का द्रौपदी स्वयंवर बालचंद्र के करुणा वज्रायुध नाटक आदि कई नाटक ग्रन्थ जैनसाहित्यकारों द्वारा रचित हैं। छन्द-अलंकार—इस विषय में भी आचार्य हेमचंद्र, वाग्भट्ट जयकीर्ति ने तथा यशोविजयजी ने कई ग्रन्थ लिखे।

कथाः—

जैनकथासाहित्य बहुत विस्तृत और अगाध है। इस विषय में जैनाचार्यों की देन बड़ी अद्भुत है। प्राचीनकाल की कथाओं को आज तक टिकाये रखने का अधिकांश श्रेय जैनमुनियों और साहित्यकारों को है, यह प्रायः सब पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान स्वीकार करते हैं। प्रो० विन्टर नीट्स ने जैनकथासाहित्य और उसकी भारतीय साहित्य को देन' इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। विस्तार भय से यहाँ हम उसे नहीं देते हैं। जैनागमों, निर्युक्तियों, भाष्यों और चूर्णियों में अनेक प्रसंगोपात्त कथाएँ उल्लिखित हैं।

इनके अतिरिक्त जीवनचरित्र और प्रबन्धों के रूप में भी विशाल साहित्य है। त्रिपष्ठिशलाका पुरुषचरित्र, आदिपुराण, उत्तरपुराण, (प्राकृत में) पद्म-चरित्र आदि उत्तमपुरुषों के चरित्र ग्रन्थ हैं। प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग-आचार्य निर्मित) और प्रद्युम्नसूरि का प्रभावक चरित्र ग्रन्थ जैनधर्माचार्यों के जीवनचरित्र पर खूब प्रकाश डालता है। जैनसिद्धांतों और गम्भीर तत्वों को समझाने के लिए जैनाचार्यों ने कई कथाएँ, आख्यायिकाएँ और दृष्टांत आदि लिखे हैं। रास, कथा, जीवनचरित आदि से जैनसाहित्य भरा पड़ा है। संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, तामिल तेलगू, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं में विविध प्रकार के कथा ग्रन्थों की रचना जैनाचार्यों ने की है।

इतिहास :—

जैनाचार्यों के ग्रन्थों, उनके अन्त में दी गई प्रशस्तियों और पट्टावलियों से भारतवर्ष के इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है। डॉ सतीशचन्द्र विद्या-भूषण ने कहा है कि "ऐतिहासिक संसार में तो जैनसाहित्य विश्व के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। जैनों के बहुत से प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। ऐसे ग्रन्थ और उपाख्यान जिन्हें भिन्न २ सम्प्रदाय के जैनों ने अनेक तीर्थंकर धर्मगुरु और तत्कालीन घटनाओं के उल्लेख के साथ सुरक्षित रखे हैं। वे पुरातत्त्व सम्बन्धी निर्णय करने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं।"

हेमचन्द्राचार्य का त्रिपष्ठिशलाका चरित्र का परिशिष्टपर्व, जिनसेन और गुणभद्र आदिपुराण एवं उत्तरपुराण, प्रभाचन्द्र और प्रद्युम्नसूरि का प्रभावक चरित्र मेरुतुङ्ग का प्रबन्धचिन्तामणि और राजशेखर का प्रबन्ध कोश आदि २ ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालने वाले हैं।

नीति और उपदेश :—

जैनाचार्यों ने केवल जैनधर्म का प्रचार ही नहीं किया किन्तु उन्होंने सर्वसामान्य के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बहुत प्रयत्न किये हैं। उन्होंने मानवसमाज को विविध प्रकार से नीति की शिक्षा दी है और नीति विषयक साहित्य सर्वसाधारण लोकभोग्य भाषा में लिख कर प्रचारित किया है। धर्मदासगणि की उपदेशमाला, अमितगति का सुभाषित सन्दोह, पुरुषार्थ

सिद्धयुपाय हेमचन्द्रसूरि (मलधारी) की उपदेशमाला सटीक, उपदेशकन्दली विवेकमंजरी आदि मुख्य हैं। दक्षिण भारत में वेद के तुल्य माने जाने वाले कुरल और नालदियर नामक नीतिग्रन्थ जैनाचार्यों की रचना है।

राजनीति और अर्थशास्त्र---

इस विषय में भी जैनाचार्यों ने सुन्दर निरूपण किया है। मुख्यरूप से सोमदेव का नीतिवाक्यामृत राजनीति और अर्थशास्त्र का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समकक्ष है। जैनपरम्परा के अनुसार तो चाणक्य जो कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के रचयिता माने जाते हैं। एक जैनगृहस्थ थे। वे चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री थे। परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् इस विषय में शंकाशील हैं कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री चाणक्य हैं या यह बाद की शताब्दियों का ग्रन्थ है। यह जैन की रचना है इस विषय में भी सन्देह ही है। सोमदेव का नीतिवाक्यामृत कौटिल्यअर्थशास्त्र के समकक्ष होता हुआ भी अपनी कतिपय विशेषताएँ रखता है। नीति को प्रधानता देते हुए और अर्थशास्त्र का गम्भीर विवेचन है। विन्टरनिट्स ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

इस विषय का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ आचार्य हेमचन्द्र का लघ्वर्हन्नीति शास्त्र है। यह आचार्य हेमचन्द्र के वृहदर्हन्नीतिशास्त्र-का सार है।

गणितः-- इस विषय पर भी जैनाचार्यों ने पर्याप्त लिखा है। केशवदेव के पौत्र और पुष्पदन्त के भतीजे श्रीपति भट्ट जो विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं--उन्होंने गणिततिलक और बीजगणित नामक ग्रन्थ लिखे। सोलहवीं सदी में सिंहतिलक ने लीलावती वृत्तियुक्त और गणिततिलकवृत्ति लिखी। गणित और संख्या के विषय में जैनागमों में भी पर्याप्त वर्णन है। ई. स. की नौवीं शताब्दी में महावीर नामक गणितज्ञ ने गणितसारसंग्रह लिखा जिसका अंग्रेजी में अनुवाद भी हुआ है।

ज्योतिष--इस विषय पर विपुल जैनसाहित्य है। दस पयन्नों में ज्योतिष-करण्डक नामक पयन्ना है इस पर पादलिप्तसूरि ने टीका लिखी।

तवालोक नामक सुंदर ग्रन्थ लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि ग्रंथ उच्चकोटि के अध्यात्म के प्ररूपक हैं। संगीत, शिल्प, अष्टाग निमित्त आदि के विषय में भी जैनाचार्यों ने खूब लिखा है। मलधारी राजशेखर के शिष्य सुधाकलश ने संगीतपनिषद् और संगतिसार क्रमशः १३८० और १४०६ वि० सं० में लिखे। मण्डनमंत्री ने संगीतमण्डन ग्रन्थ लिखा। प्रतिष्ठा, स्थापत्य, मूर्त्तिनिर्माण आदि के विषय में सैंकड़ों कल्पग्रंथ विद्यमान हैं। विज्ञान के सम्बंध में जैनागमों में और द्रव्य निरूपक ग्रंथों में विपुल सामग्री भरी हुई है। ठक्कर फेरु ने द्रव्यसार आदि इस विषयक ग्रंथ भी लिखे हैं। जैनपदार्थ विज्ञान आधुनिक विज्ञान से अधिकांश मिलता हुआ है। उक्त विवरण से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि जैन साहित्य केवल धार्मिक साहित्य ही नहीं अपितु सर्वाङ्ग सम्पन्न साहित्य है।

भारतीय भाषाओं को जैनधर्म की देन

प्रांतीय भाषाओं को भी जैनधर्म की महत्त्वपूर्ण देन है। अपभ्रंश भाषा ही सब प्रांतीय भाषाओं की जननी है। अपभ्रंश भाषा में सबसे अधिक लिखने वाले और उसे साहित्य का रूप देने वाले जैनाचार्य ही हैं। दक्षिणभारत की कन्नड, तामिल और तेलगू भाषाओं को साहित्य का रूप जैनाचार्यों ने ही दिया है। दिगम्बर जैनाचार्यों ने कन्नड भाषा में खूब साहित्य लिखा है। श्री वद्धदेव (तुम्बुलूराचार्य) ने कन्नड भाषा में तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पर ९६००० श्लोकप्रमाण टीका लिखी है। हिन्दी और गुजराती साहित्य के आद्यप्रणेता जनाचार्य ही हैं। राजस्थानी में भी जैनाचार्यों ने कई ग्रंथों का निर्माण किया है। इस तरह भारतीय विभिन्न भाषाओं में नैतिक, धार्मिक और औपदेशिक साहित्य का निर्माण करने का श्रेय जैन साधकों को विशेष रूप से प्राप्त है।

हिन्दी भाव और भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश की पुत्री है। अपभ्रंश साहित्य जो कुछ भी आज उपलब्ध है वह जैनों की बहुत बड़ी देन है। राहुलजी ने लिखा है—"अपभ्रंश के कवियों का विस्मरण करना हमारे लिये हानि की वस्तु है। ये ही कवि हिन्दी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे। हमारे

विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के यही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं जैनों ने अपभ्रंश साहित्य की रचना और उसकी सुरक्षा में सबसे अधिक काम किया है।"

जब से भगवान् महावीर के द्वारा लोकभाषा को आदर दिया गया तब से ही लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा कायम हो सकी। हमारे देश की भाषा का प्रश्न भी इसी आधार-बिन्दु पर हल किया गया है और हिन्दी को राष्ट्र भाषा का रूप मिल सका है।

प्राचीन भारतीय साहित्य को जैनों के द्वारा दिये गये महत्त्वपूर्ण योगदान के सम्बन्ध में प्रोफेसर बुलहर का निम्न कथन नितांत यथार्थ है:—

"In grammer, in astronomy as well as in all branches of belles petters the achievements of the Jains have been so great that even their opponents have takan notice of them and that same of their works are of importance for European science even to day. In it south of India, where they have also promoted the development of these languages The Canarese, Tamil and Telugu literary languages rest on the foundations created by the Jain monks Though this activity has led them far away from their particular aims, Yet it has secured for them an important place in the histoay oi Indian literature and civilisation".

"व्याकरण, खगोल और साहित्य की सब शाखाओं में जैनों के कार्य इतने विशाल हैं कि उनके प्रतिद्वन्द्वियों ने भी उनकी प्रशंसा की है। इनके साहित्य का कतिपय भाग आज भी पाश्चात्य विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। दक्षिणभारत की भाषाओं को साहित्य का रूप देने का और इन्हें विकसित करने का कार्य जैनमुनियों ने किया है। यद्यपि ऐसा करने में उनके उद्देश्यों में कुछ क्षति हुई तदपि इससे भारतीय साहित्य और संस्कृति में उनका महत्वपूर्ण स्थान सुरक्षित हो गया है।"

विदेशी जैन साहित्यकार

भारतीय प्राचीन धर्म-त्रिवेणी में से वैदिक और बौद्ध साहित्य की ओर विद्वानों और संशोधकों ने जितना लक्ष्य दिया है उतना जैन धर्म के साहित्य की ओर नहीं दिया। यही कारण है कि वे विद्वान् और संशोधक भारतीय संस्कृति और साहित्य के सम्बन्ध में ठीक ठीक निर्णय पर नहीं पहुँच सके। यह पहले कहा जा चुका है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य का वर्त्तमान रूप इन तीन धर्मसरिताओं का सम्मिश्रण का परिणाम है। इनमें से किसी एक की भी उपेक्षा करने से भारतीयसंस्कृति का सच्चा स्वरूप नहीं समझा जा सकता है। हर्ष का विषय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विदेशी संशोधकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और तब से जैन-साहित्य और संस्कृति के संबंध में विदेशी विद्वानों ने अन्वेषणात्मक साहित्य प्रस्तुत करना आरम्भ किया है। अस्तु।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने सर्वप्रथम इस संबंध में जानकारी प्राप्त करना आरम्भ किया। एच. टी. कोलब्रुक ने (१७६५-१८३७) जैनधर्म के संबंध में कुछ विस्तृत जानकारी प्राप्त कर उसे अपने मौलिक ग्रंथ में प्रकाशित की। भारतीय विद्या के अनेक विषयों में सर्व प्रथम चंचुपात करने वाला यही विदेशी विद्वान है। कोलब्रुक के दिये गये वर्णन को हॉरेस हेमन विलसन ने विस्तृत कर पूर्ण किये। बहुत लम्बे समय तक इन दोनों विद्वानों के लेख ही जैन-धर्म के सम्बन्ध में यूरोप में प्रमाणभूत माने जाते रहे। जैन-ग्रन्थ का सर्व प्रथम अनुवाद करने का सन्मान संस्कृत डॉइच शब्दकोश के सम्पादक ओटो बोटलिंक को प्राप्त है। इन्होंने रियु के साथ मिलकर हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि का जर्मन अनुवाद ई. स. १८४७ में किया। ई. स. १८४८ में जे. स्टिवनसन ने कल्पसूत्र और नवतत्त्व के अंग्रेजी भावान्तर किये। तत्पश्चात् संस्कृत भाषा के आचार्य अलब्रेस्ट वेबर ने १८५८ में शत्रुञ्जय माहात्म्य में से और १८६६ में भगवती सूत्र में से कुछ सुन्दर अंश संकलित करके अनूदित किये। इन वेबर महोदय ने श्वेताम्बर जैनागमों और अन्य ग्रन्थों में कुछ गहन प्रवेश कर संशोधन का मार्ग खोल दिया। इससे प्रेरित होकर हर्मन जेकोबी, इ. लोइमान

जे. क्लाट, जी. बुहलर, आर हॉनल, इ. विन्डशे आदि ने विविध प्रकार के जैन-ग्रन्थों के सम्बन्ध में संशोधन करना आरम्भ किया। एल. राइस, इ. हुल्च, एफ कीलहार्न, पिटर्सन, जे. फर्ग्युसन, जे. बर्जेस आदि जैनसम्प्रदाय के हस्तलेख, शिलालेख, मन्दिर, स्मारक आदि के सम्बन्ध में अन्वेषण करने लगे। प्रारम्भ से ही इन संशोधकों ने साहित्य के उपयोग मात्र से संतुष्ट न हो कर जैनधर्म के ऐतिहासिक स्थान का निर्णय करने के प्रयत्न किये। इस सम्बन्ध में प्रथम किये गये निर्णय केवल कल्पनाजनित और भ्रान्त थे। बौद्धधर्म और जैनधर्म में पाई जाने वाली समानता के आधार पर ये विद्वान् भिन्न २ गलत निर्णयों पर पहुँचे। कोलब्रुक आदि ने मान लिया कि बौद्ध धर्म का जन्म जैनधर्म से हुआ जब कि विल्सन, लासन, वेबर आदि ने समझलिया कि बौद्धधर्म में से जैन-धर्म निकला है। परन्तु १८७९ में जेकोबी महोदय ने सचोट प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि जैन और बौद्ध ये एक दूसरे से स्वतंत्र धर्मसंघ हैं। महावीर और बुद्ध दो समकालीन महापुरुष हुए हैं। जेकोबी महोदय का यह तथ्यपूर्ण अन्वेषण अब प्रायः सर्वमान्य हो चुका है।

यूरोपीय संशोधकों का झुकाव पुरातत्त्व की ओर विशेष होने से जैन इतिहास के सम्बंध में पर्याप्त साहित्य प्रकट हुआ, परन्तु यूरोप में बहुत समय तक जैनधर्म के सिद्धान्तों का सच्चा ज्ञान प्रचारित नहीं हो सका था। ई० सं० १९०६ में जेकोबी महोदय ने तत्वार्थाधिगम सूत्र का अनुवाद किया। इससे सर्वप्रथम युरोप में जैनधर्म के सिद्धान्तों का सच्चा ज्ञान करने का साधन सुलभ हुआ। इसके पश्चात् जेकोबी महोदय के शिष्यों ने अपने गुरु का पदानुसरण किया और जैनसिद्धान्तों के संबंध में साहित्य प्रकट होने लगा।

जैनसाहित्य के सम्बन्ध में श्रम करने वाले कतिपय विदेशी विद्वानों की शुभ नामावली इस प्रकार है—

जर्मनी में लॉयमाल के शिष्य हुइटमान, आउर, शुब्रिंग; जेकोबी के शिष्य किर्फल और ग्लाज्नेप (H.V. Glasenapp), हर्टल; और उनकी शिष्या शार्लोटे, काउज; हुल्च, स्मीट, प्राग के जर्मन विद्यापीठ में विन्टर नित्स, स्टाइन, स्वीडन में कॉपेन्टियर, हॉलेण्ड में फॉडेगान, इंगलेण्ड में बार्नेट, फ्लीट, स्मिथ, श्रीमती स्टिवन्सन, टॉनी, टॉमस फ्राकुराइस में

ए. गोरिनो, एल-मिलो, जे. विन्सन, इटली में वालिनी, वेलोनी-फिलिपि, पावोलिनी, पुले, सुआली, टॅसिटोरी जेकोस्लाविया में लेस्नी, पर्टोल्ड, रूजलेण्ड में मिरोनाव, नार्थ अमेरिका में ब्लूमफील्ड आदि।

हर्वर्ट वॉरन, मैथ्यू मैकूके, विलयम हैनेरी टॉल्ब्रोट, वाल्टरलाइफर श्रीमती इलीयन क्लीनस्मिथ आदि २ विदेशी महानुभावों ने जैनधर्म स्वीकार किया है, और ये तत्सम्बन्धी साहित्य लेखन का कार्य करते रहते हैं।

हर्मन जेकोवीः—

विदेशी विद्वानों में जैनधर्म और साहित्य की सबसे अधिक सेवा बजाने वाले प्रो० हर्मन जकोवी हैं। इनकी बहुमूल्य सेवाओं को जैनसमाज कभी नहीं भूल सकता है। जेकोवी का जन्म जर्मनी के कालोन में १६-२-१८५० में हुआ था। बर्लिन और बॉन के विद्यापीठों में १६६८ से ७२ तक में संस्कृत और तुलनात्मक भाषाशास्त्र का अभ्यास किया। १८७२ में भारतीय ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी निबन्ध लिखकर डॉक्टर आफ फिलॉसफी कीपदवी प्राप्त की। लंडन के ब्रिटिशम्युजियम में हस्तलिखित प्रतियों के संग्रह के आधार से एक वर्ष अन्वेषण में व्यतीत किया। १८७४ में भारत आये और जैसलमेर के प्रख्यात जैनभण्डार के संशोधन-कार्य में डा० बुलहर को सहायता प्रदान की। इस समय जैनधर्म और साहित्य के सम्बन्ध में विशेष योग्यता प्राप्त की। १८७६ में बॉन में प्रोफेसर हुए। इन्होंने जैनधर्म को बौद्धधर्म से सर्वथा स्वतंत्र सिद्ध किया। इसके बाद 'बिब्लिओथेका इंडिका' में हेमचंद्र कृत परिशिष्टपर्व प्रकट किया। 'दी सेक्रेड बुक्स ऑफ दी इस्ट' में वाल्युम २२ में आचारांग और कल्पसूत्र के तथा वाल्युम ४५ में उत्तराध्ययन और सूत्रकृताङ्ग के अंग्रेजी अनुवाद प्रकट किये। इन जिल्दों की विद्वत्ता भरी प्रस्तावनाओं में जैनधर्म के इतिहास आदि के प्रश्नों पर पर्याप्त प्रकाश डाला। जर्मन विद्यार्थियों के लिये प्राकृतमार्गोपदेशिका की रचना की। 'बिब्लिओथेका इण्डिका' में सिद्धर्षिकृत उपमितिभवप्रपञ्च कथा तथा हरिभद्रसूरी रचित 'प्राकृत समारइच्च कहा' संशोधित कर प्रकट की। 'पउम चरियम' की आवृत्ति संशोधित कर जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा प्रकाशित कराई। सन् १६१३ में पुनः भारत में आये और जैनधर्म के सम्बन्ध में कतिपय व्याख्यान दिये।

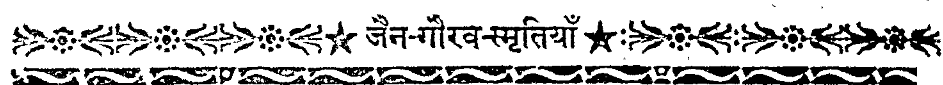
प्रथम महायुद्ध छिड़ जाने से भारत और जर्मनी के राजनैतिक सम्बन्ध बिगड़ गये, तदपि इन विद्वान् ने अखण्ड साहित्य सेवा चालू रखी। 'पंचमी कहा' और 'नेमिनाथ चरिय' संशोधित कर और टिप्पण सहित प्रकट किये। इन विद्वान् महोदय ने वैदिक और बौद्धधर्म के साथ तुलना करके जैनधर्म के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रमणाओं को दूर किया और युरोप में जैनधर्म के गौरव को बढ़ाया, अतः जैनसमाज इनका आभारी है।

प्रो० विन्टर नित्स ने भी जैनधर्म के सम्बन्ध में खूब अन्वेषण किया है। जैनदर्शन के कर्मवाद विषय पर निबन्ध लिखकर इन्होंने डॉक्टर ऑफ फिलासफी की पदवी प्राप्त की। जैनागमों और साहित्य पर आपने अच्छा प्रकाश डाला है। 'दी हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन लिट्रेचर' में 'जैनधर्म की भारतीयसाहित्य को देन' इस विषय पर सुन्दर विवेचन किया है अन्य भी कई विदेशी विद्वानों ने जैनसाहित्य की सेवा की है।

भारतीय साहित्यरक्षा में जैनभण्डारों का महत्त्वः-

जैनसमाज ने विपुल साहित्य-सृजन के द्वारा सरस्वती की भव्य आराधना तो की ही है परन्तु साथ ही साथ भारतीय साहित्य की सुरक्षा के लिए भी बड़े २ प्रयत्न कर भारती-पूजा का दुहरा लाभ लिया है। भारतीय साहित्य की रक्षा में जैनसमाज का बहुत बड़ा योग रहा है। जैनमुनियों ने प्रधान रूप से साहित्य का सृजन किया है और जैनश्रावकों ने अगणित द्रव्यराशि से साहित्य को सुरक्षित रखा है। इस तरह साहित्य के लिए दोनों-साधु और श्रावक का सहयोग लाभप्रद हुआ है। जैनसमाज के इन दोनों वर्गों ने इस प्रकार साहित्य की समाराधना की है।

जैनाचार्यों ने साहित्य-सृजन किया और श्रावकों ने उसे सुरक्षित और प्रचारित करने के लिए भण्डार स्थापित किये और लेखकों को प्रोत्साहित किया। भारत के मुख्य २ स्थानों में-जहाँ भी जैनियों का समुदाय ठीक २ मात्रा में है वहाँ भण्डार अवश्य दृष्टिगोचर होता है। पाटन, खम्भात, लीम्बड़ी जैसलमेर, मूडबिद्री आदि स्थान तो भंडारों के कारण ही प्रसिद्ध हैं।



जैनश्रावक भंडारों की स्थापना में और ग्रन्थ लिखवाने में अपने द्रव्यराशि का सदुपयोग करते आये हैं। वस्तुपाल-तेजपाल ने क्रोड़ों रुपये लगाकर तीन बड़े २ भंडार स्थापित किये थे। प्रत्येक जैनसंघ के पास न्यूनाधिक रूप में शास्त्रभंडार होता ही है। भंडारों की इस परिपाटी के कारण भारतीयसाहित्य सुरक्षित रह सका है। इस परिपाटी के कारण लेखन-कला और चित्रकला को खूब प्रोत्साहन मिला है। मुद्रण का युग न होने पर भी उस काल में एक २ ग्रन्थ की सैकड़ों नकल कराई जाती थीं। जैनश्रावक इस कार्य में द्रव्य व्यय करने में ज्ञानाराधना और धर्माराधना मानते थे और अब भी मानते हैं।

जैनभंडारों में केवल जैनसाहित्य ही नहीं वल्कि सब तरह का साहित्य रखा जाता था। इसलिए इन भंडारों से केवल जैनसाहित्य की ही नहीं वल्कि समस्त भारतीयसाहित्य की सुरक्षा हुई है। आज कितने ही ऐसे प्राचीन महत्वपूर्ण वौद्ध और वैदिक ग्रन्थ जैनभंडारों में मिले हैं जो अन्यत्र कहीं लभ्य नहीं हैं।

मुसलमानी काल में जबकि धर्मान्ध यवनों ने साहित्य और मंदिरों को नष्ट करने पर कमर कसली थी और हजारों बहुमूल्य ग्रन्थों का विनाश कर दिया था उस समय भी जैनों ने अपनी दूरदर्शिता से भारतीयसाहित्य की सुरक्षा की। आज जो भी भारतीय प्राचीनसाहित्य उपलब्ध होता है उसका अधिकांश श्रेय जैनभंडारों और उसके संरक्षकों को है।



卐 ★ ★ 卐 卐 ★ ★ ★ ★ ★ ★ 卐 卐 ★ ★ 卐

जैनकला और कलाधाम

[जैनतीर्थस्थान]

卐 ★ ★ 卐 卐 ★ ★ ★ ★ ★ ★ 卐 卐 ★ ★ 卐

साहित्य और कला संस्कृति के प्राणभूत तत्त्व होते हैं। इनके आधार पर संस्कृति फलती-फूलती है और चिरस्थायिनी बनती है। साहित्य की सृष्टि और सुरक्षा में जैनों ने जितना योगदान दिया है, कला के क्षेत्र में भी उनकी उतनी ही विशिष्ट देन है। जैनों की कलाराधना से न केवल जैनसंस्कृति ही अपितु भारतीय संस्कृति भी जगमगा उठी है। जैनकला ने भारतीयकला पर ही नहीं बल्कि विश्वकला पर ही अपना अमिट प्रभाव डाला है। जैनों की स्थापत्यकला, मूर्तिनिर्माणकला और चित्रकला का, कला के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान है। जैनों के विश्व प्रसिद्ध भव्यमन्दिर, उनकी लाक्षणिक प्रतिमाएँ और उनकी चित्रकला के आदर्श जैनजाति के उत्कृष्ट कलाराधना के उज्ज्वल प्रतीक हैं।

जैनकला की लाक्षणिकता:—

कला का उद्देश्य 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की आराधना करना होता है। विश्व में जो सत्य है, कल्याणमय है और सुन्दर है उसे सुबोध और सुगम्य रूप में प्रदर्शित करना ही सच्ची कला है। कला के मूल में भावना और आदर्श सन्निहित होते हैं। ये जितने अधिक सत्य, कल्याणकर और सुन्दर होते हैं कला उतनी ही अधिक स्वाभाविक और उच्च होती है।

कला के इस आदर्श उद्देश्य का पालन जैनकला में मुख्यरूप से पाया जाता है जैनकला का आदर्श सांसारिक भोग विलास न होकर परमार्थ की रसमय अभिव्यक्ति करना है। वस्तुतः विश्व में यही सत्य, कल्याणमय और सुन्दर है। ईश्वर, प्रकृति और मनुष्य के समागम से और तत्सम्बन्धी चिन्तन से मनुष्य पर इन तीनों में रहे हुए सौन्दर्य की छाप पड़ती है। इस सौन्दर्य की छाप को इन्द्रियगोचर करने के लिए जो २ किया जाता है वह सब कला है। इसी प्रकार के आध्यात्मिक सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए भिन्न २ साधनों का उपयोग किया जा सकता है। कोई संगीत के द्वारा कोई मूर्ति के द्वारा तो कोई चित्रों के द्वारा उसे अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है। इन भिन्न २ साधनों के कारण कला के भी भिन्न २ रूप हो जाते हैं। इन भिन्न २ रूपों के होने पर भी उसका मूल उद्देश्य एक ही है—सत्य, शिव और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति।

•

जैनमूर्तिनिर्माण-कला, जैनस्थापत्यकला, जैनचित्रकला और जैन संगीतकला की यही लाक्षणिकता है कि इस में आध्यात्मिक सत्य, शिव और सौन्दर्य की विशेषतया अभिव्यक्ति हुई है।

गाँधीजी का कथन है कि "वास्तविक कला वही है जो भोग को नहीं किन्तु त्याग को जागृत करती है।" गांधीजी का उक्त कथन जैनकला के उद्देश्य से प्रायः मिलता जुलता ही है।

जैनमन्दिर, मूर्त्तियाँ, गुफाएँ, स्तूप, चित्र और संगीत आध्यात्मिक आनन्द की लहरों को उत्पन्न करते हैं। इन सब कलाप्रतीकों से अनुपम शान्ति का स्रोत फूट पड़ता है। यही जैनकला की विशेषता है।

भारतीय चित्रकला के समर्थ अभ्यासी श्री नानालाल महता जैन शिल्पकला पर अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते हैं:—

"नन्दवंश के राज्यकाल से लेकर लगभग ई० सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय शिल्पकला के नमूने विद्यमान हैं। प्राचीन काल में स्थापत्य के आभूषण के रूप में मूर्तिविधान और चित्रालेखन का विकास हुआ था। ललितकलाओं में हमारा स्थापत्य और प्रतिमानिर्माण समस्त कला के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसमें भी मुख्यरूप से मूर्ति विधान तो हमारी संस्कृति, धमभावना और विचारपरम्परा का मूर्त्त स्वरूप है। आरम्भ से लेकर मध्यकाल युग के अन्त तक हमारे शिल्पकारों ने अपनी धार्मिक और पौराणिक कल्पना और हृदय की प्राकृत भावना का दिग्दर्शन कराया है। जैनधर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है और इसका प्रतिबिम्ब इसके मूर्तिनिर्माण में आदि से लेकर अन्त तक एकसमान पड़ा हुआ मिलता है। ई० स० के आरम्भ की कुशाण राज्यकाल की जैन प्रतिमाएँ मिलती हैं और सैकड़ों वर्षों के बाद जो मूर्तियाँ बनी हैं उनमें बाह्यदृष्टि से बहुत थोड़ा भेद दिखाई देता है। जैनअर्हत की कल्पना में श्री महावीर स्वामी के समय से लेकर हीरविजयसूरि के काल तक में कोई गहरा परिवर्तन हुआ ही नहीं। अतः जैसे बौद्धकला के इतिहास में महायानवाद के प्रादुर्भाव से जैसे धर्म का और इसके कारण सारी सभ्यता का स्वरूप बदल गया वैसे जैनललितकला के इतिहास में नहीं हुआ।.........जैन मूर्त्तियों की रचना करने वाले प्रायः भारतीय ही रहे हैं परन्तु जैसे मुसलमानी शासनकाल में भारतीय शिल्पियों ने इस्लाम के अनुकूल इमारतें बनाई उसी तरह प्राचीन शिल्पियों ने भी जैन और बौद्ध प्रतिमाओं में उस २ धर्म की भावनाओं को लेकर वैसे ही भाव अंकित किये। जैनतीर्थङ्कर की मूर्त्ति विरक्त, शान्त और प्रसन्न होनी चाहिए। इसमें मनुष्य-हृदय के निरन्तर विग्रह और अस्थायी भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता है। जैनकेवली को यदि हम निर्गुण कहें तो कोई असत्य नहीं होगा। इस निर्गुणता को मूर्त्त रूप देने जाते हुए सौम्य और शान्ति की मूर्त्ति ही प्रकट हो सकती है, इसमें स्थूल आकर्षण या भावना की प्रधानता नहीं हो सकती। अतः जैनप्रतिमा इसकी मुखमुद्रा से तत्काल ही पहचानी जा

सकती है। खड़ी मूर्तियों के मुख पर प्रसन्नता झलकती है और हाथ शिथिल—लगभग चेतन रहित सीधे लटकते हुए होते हैं। नग्न या वस्त्राच्छादित प्रतिमाओं में विशेष अन्तर नहीं होता है। प्राचीन श्वेताम्बर मूर्त्तियों में प्रायः एक कटिवस्त्र दृष्टिगोचर होता है। आसीन प्रतिमाएँ साधारण तौर पर ध्यानमुद्रा और वज्रासन में स्थित प्राप्त होती हैं। उनके दोनों हाथ गोद में शिथिल रूप से एक दूसरे पर रखे हुए होते हैं। हस्तमुद्रा के अतिरिक्त शेष बातों में प्रायः वे बौद्ध मूर्तियों से मिलती झुलती होती हैं। २४ तीर्थङ्करों के प्रतिमाविधान में व्यक्तिभेद न होने से लक्षणान्तर से ही इन्हें पहचाना जाता है। आसन पर प्रायः तीर्थङ्कर का लाक्षणिक चिह्न या वाहन चित्रित होता है।

जैनाश्रित कला का प्रधान गुण इसके अन्तर्गत उल्लास में या भावनालेखन में नहीं है। इसकी महत्ता-कला की सूक्ष्मता, उदार शुद्धि और एक प्रकार की बाह्य सादगी में रही हुई है। जैनकला वेग प्रधान नहीं, परन्तु शान्तिमय है। सौम्य का परिमल जैनमन्दिरों के प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्यों की तरह सर्वत्र महकउठता है। इनकी समृद्धि में भी त्याग की शान्तझलक दीप्त होती है। अहमदाबाद के हठीसिंह की वाडी के ई० स० की १६ वीं सदी के मन्दिरों के मण्डपों में सुंदर नर्तकियों की पुतलियाँ देखकर मैंने वहाँ एकत्रित भावनाप्रधान जैनों को इस विलासमय चित्रालेखन का प्रयोजन पूछा तो एक नवयुवक ने उत्तर दिया कि बाहर के मण्डपों में ऋद्धि और सिद्धि की मूर्त्तियाँ चित्रित करने का अभिप्राय यह है कि त्यागी को ये सब वस्तुएँ सुलभ हैं परन्तु वे त्याज्य होने से बाहर ही रहती हैं इसी उद्देश्य के अनुसार जैनस्थापत्य के अनुपम वैभव में भी त्याग ही अनन्य शांति छिपी हुई है। (जैन सा. संशोधक, ३. १, ५८ से ६१)

रविशंकर रावल का अभिप्रायः—

"भारतीय कला का अभ्यासी जैनधर्म की तनिक भी उपेक्षा नहीं कर सकता। उसकी दृष्टि में 'जैनधर्म' कला का महान् आश्रयदाता, उद्धारक और संरक्षक प्रतीत हुए बिना नहीं रह सकता है। वेदकाल से लेकर मध्यकाल तक देवीदेवताओं की कलासृष्टि से हिन्दुधर्म उभर रहा था। समय बीतने

पर धीरे २ कला उपासना के स्थान से गिरकर इन्द्रियविलास का साधन बनगई। उस समय प्रकृति की वक्रदृष्टि से मुसलमानी आक्रमणों ने उसकी स्थिति छिन्नभिन्न कर डाली। हिन्दुधर्म ने दारिद्रय और निर्बलता स्वीकार कर ली। सोमनाथ खण्डहर बन गया। उस समय देश की कलालक्ष्मी को पूज्य और पवित्र भाव से आश्रय देने वाले जैनराज कर्त्ता और जैन धनाढ्यों के नाम और कीर्ति को अमर रखकर कला ने अपनी सार्थकता सिद्ध की है। महम्मद की संहारलीला पूरी होते ही गिरनार, शत्रुंजय और आबू के शिखरों पर शिल्पियों की टांकियाँ गूँजने लगी। सारे विश्व को आश्चर्य चकित कर देने वाली प्रकाश-किरणें चमक उठीं। देश के कुवेरों ने देश के चरणों में आत्मा के रस की तृप्ति अनुभव की। सुगंध, रूप, समृद्धि-सबका धर्म में उपयोग किया तथा कला निर्माण का सच्चा फल शांति और पवित्रता का अनुभव किया। अतः कला थोड़े से विलासी जीवों के आनंद का विषय न रह कर प्रत्येक धर्मपरायण मुमुक्षु के लिए सदा के लिए प्रफुल्लित और सुगंधित पुष्प वन गई। प्रत्येक धर्मसाधक ने इस कलासृष्टि में आकर एकाग्रता, पवित्रता और आत्मसंतोष प्राप्त किया। धर्म दृष्टि से देवायतन श्रीमंतों के लिए द्रव्यार्पण की योग्य भूमि वने। इस कार्य में उनके द्रव्य का सदुपयोग होने से उनका परिवार विलास से वचा और उन्होंने कुलगौरव और त्याग की शिक्षा ली। इन धनिकों के उदार द्रव्य त्याग से देश के कारीगरों और शिल्पियों के परिवार फले-फूले। असंख्य शिल्पियों में से जो प्राकृतिक विशेषता वाले थे वे मूर्त्तियों के निर्माता हुए। स्थापत्य, मूर्त्ति, लता या पुतली प्रत्येक विधान के पीछे, इनकी उच्च आध्यात्मिक जीवनदृष्टि का भान हुए विना नहीं रहता। आबू के शानदार मंदिर, गिरनार के उन्नत देवालय और शत्रुञ्जय के विविध आकार वाले विमानों को देखने वाला दर्शक आज के युग की कृतियों के लिए शर्मिंदा होता है। जैनकला ने जैनधर्म को जो कीर्ति और प्रसिद्धि प्रदान की उससे समस्त भारत गौरवान्वित है और यह प्रत्येक भारत वासी के लिए अमर उत्तराधिकार है।" (हिंदी कला और जैनधर्म से-जैन साहित्य संशोधक ३, १, पृ० ७६)

श्री मोहनलाल भगवानदास जौहरी ने लिखा है कि-"जैनों के स्थापत्य ने ही गुजरात की शोभा वढ़ायी है। यह प्रसिद्ध बात है कि यदि जैन-

कला और स्थापत्य जीवित रूप में विद्यमान न होते तो विसंवादी मुस्लिम कला से हिंदुकला दूषित हो जाती। प्रभास पाटन के प्रसिद्ध सोमनाथ के शिवमंदिर के विषय में मि० फर्ग्युसन ने अपने स्थापत्य विषयक ग्रंथ में लिखा है कि-यद्यपि वह ब्राह्मण धर्म का मंदिर है तथापि वह बारहवीं शताब्दी की गुजरात में प्रयुक्त जैन कला-शैली का उदाहरण है। राणकपुर के जैनमंदिर के अनेक स्तम्भों को देखकर वह कलारसिक विद्वान् मुग्ध हो जाता है। उसके प्रत्येक स्तम्भ में विविधता है। उसकी रचना में प्रसाद (gr ce) है। अलगर ऊंचाई वाले गुम्बजों का सुन्दर रीति से समूह किया गया है और ऐसा करते हुए प्रकाश लाने की बड़ी सफलता और बुद्धिमानी पूर्वक योजना की गई है। यह सब उत्तम प्रभाव पैदा करती हैं। आबू के मंदिर अति विस्मयोत्पादक हैं। विमल मंत्री के बंधाये हुए मंदिर का संगमरमर का गुम्बज उसकी अति मूल्यवान् कोराई की कला से अति रमणीय है। तेजपाल के मंदिर जितना भव्य और उसकी जोड़ी का दूसरा कोई नमूना विश्व भर में नहीं है। स्थापत्य के इन सुन्दर जीते जागते नमूनों ने अर्थात् जैनकला ने भारतीय कला पर ही नहीं परंतु विदेश से आये हुये मुसलमानों की कला पर भी प्रभाव डाला है। अहमदाबाद की मुस्लिम कलामय इमारतों पर से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है।"

प्रसिद्ध चित्रकार और कलाकारोंके उक्त वक्तव्यों से जैनकला की महत्ता भलीभांति व्यक्त हो जाती है। अतः इस संबंध में विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। स्थापत्य की तरह चित्रकला और संगीतकला में भी जैनों को अपना विशेष महत्त्व है। बारहवीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रतियों में जो चित्र मिलते हैं उनसे स्पष्ट है कि जैन चित्रकला अति प्राचीन है। अभी तक राजपूत चित्रकला प्राचीन समझी जाती रही है परंतु जैन-ग्रन्थों में आलेखित चित्रों के प्रकट होने पर अब यह सिद्ध हो गया है कि जैनचित्रकला राजपूतचित्रकला से तीन शताब्दियाँ जितनी प्राचीन है। मुगलचित्रकला के अस्तित्व से बहुत पहले ही जैनचित्रकला का विकास हो चुका था। उस समय की पोशाक, रीति-नीति आदि की जानकारी के लिए जैनग्रन्थों में आलेखित चित्रों का बड़ा भारी महत्त्व है। एलोरा की जैन गुफायें जैनचित्रकला और मूर्त्तिकला का भव्य प्रमाण है।

तात्पर्य यह है कि कला के क्षेत्र में जैनधर्म का अपूर्व योगदान है। भारतीयकला के विकास में जैनकला का असाधारण योग रहा है। भारतीयकला जैनकला की आभारी है।

जैनकलाराधन के भव्य नमूने

प्रसिद्ध जैन तीर्थस्थान

तीर्थभूमियों को कलामय भव्यमन्दिरों और शान्त वैराग्य रसवर्षिणी प्रतिमाओं से अलङ्कृत कर, तीर्थङ्करादि विशिष्ट महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों को पत्थर पर अंकित कर तथा स्तूप, स्तम्भ एवं गुफाओं की रचना कर जैनों ने न केवल अपनी धार्मिक भावनाओं को मूर्त्त रूप ही दिया है अपितु भारतीय प्राचीन शिल्पस्थापत्य-ललितकला और उसके रसोत्कर्ष को जीवन प्रदान भी किया है। जैनों के पवित्र तीर्थस्थानों की कलाकृतियाँ उनके धर्म प्रेम और कलाराधन की उज्ज्वल प्रतीक हैं। अतः यहाँ कतिपय प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों की भव्य कलाकृतियों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

काठियावाड़ प्रदेश

गिरिराजशत्रुञ्जय महातीर्थ :—

तीर्थ शब्द के पीछे कोटि २ भारतीय आस्तिक आत्माओं की अदम्य धार्मिक भावना छिपी हुई है। धर्मपरायण भारतीय जनता के लिए तीर्थयात्रा जीवन की सफलता का एक अंग है। प्रत्येक भावनाशील व्यक्ति के हृदय में तीर्थयात्रा करने की साध और उमंग बनी रहती है और जब उसे यह पुनीत प्रसंग प्राप्त होता है तो वह अपने जीवन को सफल मानता है।

जिन स्थानों या प्रदेशों का महापुरुषों के जीवन प्रसंगों के साथ किसी तरह का सम्बन्ध होता है या जो स्थान विशिष्ट प्रभावोत्पादक, रमणीय एवं पवित्र वातावरण वाले होते हैं, वे तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थस्थान महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को सर्वदा जीवित रखने के कारण तथा भावना शील

आत्माओं में पवित्रता का संचार करने के कारण पुनीत और पवित्र माने जाते हैं। अतः प्रत्येक धर्म में तीर्थस्थानों का अत्यन्त महत्व बताया गया है। जैनतीर्थों में शत्रुञ्जय, गिरिनार, सम्मेतशिखर, आबू आदि २ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें भी शत्रुन्जय को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। यह सकल तीर्थशिरोमणि गिरिराज सर्वाधिक श्रेष्ठ और पूजनीय माना जाता है।

यह तीर्थ अति प्राचीन और शाश्वत माना जाता है। इस गिरिराज पर से अनेक आत्माओं ने शाश्वत शान्ति का अनुभव कर निर्वाण प्राप्त किया है। ज्ञाताधर्मकथाङ्ग में पुण्डरीकाचल के नाम से भी इसका उल्लेख किया है। असंख्य आत्माओं ने यहाँ से सिद्धि प्राप्त की है अतः यह सिद्धाचल के नाम से भी विख्यात है। श्री धनेश्वर सूरि जी ने 'शत्रुन्जय महात्म्य' नामक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखकर इस तीर्थ का महात्म्य सूचित किया है।

आदि तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव यहाँ अपनी सर्वज्ञावस्था में कई बार पधारे। प्रथम चक्रवर्त्ती राजा भरत ने इस गिरिराज पर गगन चुम्बी भव्य जिनालय बँधवाया और उसमें रत्नमय जिनविम्ब की स्थापना की। ऋषभदेव स्वामी के प्रथम गणधर श्री पुण्डरीक स्वामी ने पञ्चकोटि मुनियों के साथ चैत्र पूर्णिमा के दिन इस गिरिराज पर से निर्वाण प्राप्त किया। नमि, विनामि नामक विद्याधर मुनिपुङ्गव, अनेक चक्रवर्त्ती आदि राजागण, रामचन्द्रजी, भरत, प्रद्युम्न-शाम्ब आदि यादव कुमार यहाँ से सिद्ध हुए हैं। अनादि काल से असंख्य तीर्थङ्कर और मुनि-महात्माओं ने यहाँ से निर्वाण प्राप्त किया है और भविष्य में भी करेंगे। इस कारण से यह गिरिराज सबसे अधिक पूजनीय माना जाता है।

मुनि श्री न्याय विजय जी (त्रिपुटी) ने अपने तीर्थों के इतिहास में इस तीर्थ के उद्धारों की सूची इस प्रकार दी है:–

(१) भगवान् ऋषभदेव के समय में चक्रवर्त्ती भरत के द्वारा करवाया गया उद्धार।

(२) भरत राजा के अष्टम वंशज दण्डवीर्य राजा के द्वारा कराया हुआ उद्धार।

(३) श्री सीमंधर तीर्थङ्कर के उपदेश से ईशानेन्द्र का कराया हुआ उद्धार।

(४) माहेन्द्र देवेन्द्र का उद्धार।

(५) पंचमब्रह्मेन्द्र का कराया हुआ उद्धार।

(६) चमरेन्द्र का कराया हुआ उद्धार।

(७) अजितनाथ तीर्थङ्कर के समय में सागर चक्रवर्त्ती का कराया हुआ उद्धार।

(८) व्यन्तरेन्द्र का उद्धार।

(९) चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर के समय में श्री चन्द्रयशा राजा के द्वारा कराया हुआ उद्धार।

(१०) श्री शान्ति नाथ प्रभु के पुत्र चक्रायुद्ध नृपति का उद्धार।

(११) मुनि सुव्रत स्वामी के शासन काल में श्री रामचन्द्र कृत उद्धार

(१२) श्री नेमिनाथ तीर्थङ्कर की विद्यमानता में पाण्डवों के द्वारा किया गया। इसके बाद भगवान् महावीर के समय में मगधसम्राट् श्रेणिक ने शत्रुञ्जय गिरीराज पर मंदिर बंधवाये। सम्राट् सम्प्रति ने मन्दिर बनवाये और जीर्णोद्धार किया। राजा विक्रम, शालिवाहन, शिलादित्य भी इसके उद्धारक गिने जाते हैं। विक्रम सं० १०८ में जावड़शाह ने इसका उद्धार कराया। वि० सं० ४७७ में वल्लभी के राजा शिलादित्य ने धनेश्वरसूरी के उपदेश से शत्रुंजय का उद्धार करवाया और बौद्धों के हाथ में जाते हुए तीर्थ की रक्षा की। सुप्रसिद्ध गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह ने इस तीर्थ की यात्राकर बारह ग्राम देवदान में दिये। महाराजा कुमारपाल ने शत्रुञ्जय की यात्रा की थी और उनके मंत्री बाहड़ ने सं १२१३ में करोड़ों की द्रव्यराशि के व्यय से पुनरुद्धार करवाया।

इसके बाद गुर्जरेश्वर वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये अनेक बार बड़े २ संघ लेकर आये। इन्होंने शत्रुञ्जय पर अनेक नवीनमन्दिर और धर्मस्थानों का निर्माण कराकर तीर्थ की शोभा में वृद्धि की। इन मंत्रीश्वर बन्धुयुगल ने नेमिनाथ जी और पार्श्वनाथजी के भव्य मन्दिर तथा विशाल इन्द्रमण्डप बँधवाने की व्यवस्था की। मुख्य मन्दिर पर तीन स्वर्णकलश चढ़ाये। शाम्ब, प्रद्युम्न, अम्बावलोकन

आदि शिखर बनवाये। तेजपाल ने श्री नन्दीश्वर द्वीप की रचना करवाई। पर्वत पर चढ़ने की कठिनाई को दूर करने के लिए वस्तुपाल ने सोपान (पगथिये) बनवाये। इसका उल्लेख एक शिलालेख में था। यह शिलालेख गिरिराज पर दोलाखाड़ी में था। यह लेख भावनगर स्टेट की तरफ से प्रकाशित 'लेखसंग्रह' में छपा हुआ है। इसके अतिरिक्त शहर में यात्रियों के लिए ललितासागर तथा अनुपमासरोवर बँधवाये।

मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने उस समय के दिल्ली के बादशाह मौजुद्दीन के साथ मित्रता करके गुजरात के जैनों तथा हिंदुओं के धर्म स्थानकों को न तोड़ने का वचन लिया था।

वस्तुपाल के बाद महादानी जगडुशाह * ने संवत् १३१६ में कच्छ भद्रेश्वर से महान् संघ लेकर सिद्धाचल की यात्रा की और सात देवकुलिकाएँ करवाई। इसके बाद माण्डनगढ़ के मंत्री पेथड़शाह ने सं. १३२० के लगभग धर्मघोषसूरि की अध्यक्षता में महान संघ निकाल कर सिद्धाचल की यात्रा की और "सिद्धाकोटा कोटि" नामक शांतिनाथ जी का बहत्तर कलश युक्त भव्य जिनालय बनाया। उस संघ में आये हुए अन्य श्रीमन्तों ने भी वहाँ मन्दिर बनवाये पेथड़शाह की कीर्ति ८४ भव्य जिनालय निर्माता के रूप में अमर है।

इसके अतिरिक्त मारवाड़ से आभू मंत्री का संघ, खम्भात के नागराज सोनी का संघ आदि संघों ने आडम्बर के साथ सिद्धाचल की यात्रा की और अपार द्रव्यराशि व्यय करके भव्य जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया।

समराशाह का पन्द्रहवाँ उद्धार:—

संवत् १३६६ में इस महान् तीर्थराज पर भयंकर विपत्ति आई। यह

---

* जगडुशाह का मूल गाँव कंथकोट (कच्छ) था। उनके पिता व्यापार के लिए भद्रेश्वर चले आये थे। जगडुशाह ने सं. १३१२-१३-१४-१५ में भारतवर्ष के देश-व्यापी भयंकर दुष्काल के वर्षों में लाखों मन अनाज मुफ्त बांटकर 'जगत् पालक' की उपाधि प्राप्त की थी। दिल्ली, सिन्ध, गुजरात, काशी, उज्जैन आदि राज्यों को अन्नदान दिया था। दुष्काल के समय अपने अन्नभण्डारों को जनता के लिए खोल देने वाले इस [illegible]ीर की कीर्ति अमर है।

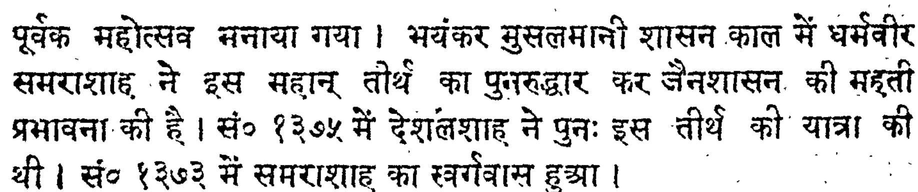
समय अलाउद्दीनखिलजी का था। यह धर्मान्ध और निर्दय यवन-शासक अपने क्रूर कृत्यों के लिए इतिहास में कुख्यात है। इसकी धर्मान्ध फौजों ने सं० १३६९ में शत्रुञ्जय पर आक्रमण किया और अनेक भव्य मंदिर और प्रतिमाओं को खंडित कर दिया। यहाँ तक कि मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की प्रतिमा भी खंडित कर दी।

इससे समस्त भावनाशील आत्माओं को गहरी चोट पहुँची। अणहिलपुर पट्टन के देशलशाह के सुपुत्र समराशाह ने इस विषम परिस्थिति का बड़ी कुशलता के साथ अंत किया और इस महान् तीर्थ का पुनरुद्धार किया।

समराशाह का अलाउद्दीन के साथ सीधा संबंध था। वह अलाउद्दीन के तिलंग प्रांत का सूबेदार था। जब समराशाह को शत्रुञ्जय के मंदिर भंग के समाचार प्राप्त हुए तो उसने बादशाह से कहा कि-"आपके सैन्य ने हमारे हज का भंग कर दिया है। बादशाह समराशाह की बुद्धि और कुशलता पर फिदा था। उसने समराशाह की इच्छा और आग्रह को स्वीकार कर शत्रुञ्जय के उद्धार के लिए स्वीकृति और सहायता भी दी थी।

समराशाह ने आरासन से संगमरमर की स्फटिक मणि के समान निर्दोष सुंदर फलही मँगवायी और कुशल शिल्पियों के द्वारा भव्य मूर्त्ति का निर्माण करवाया। क्षतविक्षत मंदिरों, देवकुलिकाओं और मण्डपों को सुधार कर नवीनतुल्य बना लिये। समराशाह के पिता देशलशाह संघ लेकर सिद्धाचल पर आये। दूसरे अनेकसंघ भी आये थे। सबने अपनी २ श्रद्धा और भक्ति के अनुसार देवकुलिकाएँ और भव्य मंदिर बनवाये। समराशाह ने मुख्य मंदिर के शिखर का उद्धार किया और प्रभुजी को दक्षिण दिशा में अष्टापद का नवीन चैत्य बनवाया। देशलशाह ने देशलवसही निर्माण कराया अंन्य व्यक्तियों ने भी विविध निर्माण कार्य कराया।

सं० १३७१ के माघ शुक्ला १४ सोमवार के दिन अनेक संघों की उपस्थिति में तपागच्छ की वृहत्पोशालिक शाखा के आचार्य श्री रत्नाकरसूरि के करकमलों द्वारा नवीन जिनबिम्ब की भव्य प्रतिष्ठा हुई और उल्लास



पूर्वक महोत्सव मनाया गया। भयंकर मुसलमानी शासन काल में धर्मवीर समराशाह ने इस महान् तीर्थ का पुनरुद्धार कर जैनशासन की महती प्रभावना की है। सं० १३७५ में देशलशाह ने पुनः इस तीर्थ की यात्रा की थी। सं० १३७३ में समराशाह का स्वर्गवास हुआ।

कर्माशाह का सोलहवाँ उद्धारः—

समराशाह के उद्धार के कुछ वर्षों बाद मुसलमानों ने शत्रुंजय पर पुनः आक्रमण किया और समराशाह की स्थापित की हुई मूर्ति का फिर शिरोभंग कर दिया। तदन्तर बहुत दिनों तक वह मूर्ति वैसे ही खण्डित रूप में पूजित रही। मुसलमानों ने नवीन मूर्ति की स्थापना न करने दी। कई वर्षों तक ऐसी ही नादिरशाही चलती रही और जैनप्रजा मन ही मन अपने पवित्र तीर्थ की दुर्दशा पर आँसू बहाती रही।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चित्तौड़ की वीरभूमि में कर्माशाह नाम के कर्मवीर श्रावक का अवतार हुआ, जिसने अपने उग्रवीर्य से इस तीर्थाधिराज का पुनरुद्धार किया।

कर्माशाह ग्वालियर के राजा आम-जिसे बप्पभट्टसूरि ने जैनधर्मानुयायी बनाया था—के वंशज थे। राजा आम की एक रानी वणिक् पुत्री थी। उस से जो सन्तान हुई वह सब ओसवंश में मिला ली गई थीं। उनका गोत्र राज कोष्ठागार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी कुल में आगे चलकर सारणदेव प्रसिद्ध पुरुष हुए। इनकी ८ वीं पुश्त में तोलाशाह हुए। इनकी लीलू नामक स्त्री से ६ पुत्र हुए जिन में सब से छोटे कर्माशाह थे।

इनका राज दरबार में बड़ा सन्मान था। किसी समय धर्मरत्नसूरि विहार करते हुए चित्तौड़ पधारे। उस समय तोलाशाह ने अपने पुत्र कर्माशाह की उपस्थिति में सूरि श्री से शत्रुंजय तीर्थ के उद्धार के सम्बन्ध में पूछा। सूरिजी ने अपने निमित्त ज्ञान से कहा कि आपके पुत्र कर्माशाह के द्वारा यह कार्य सम्पन्न होगा। हुआ भी ऐसा ही। कर्माशाह ने अपने उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव का उपयोग कर अहमदाबाद के सूबेदार बहादुरशाह के साथ मैत्री स्थापित की और उसका कुछ उपकार भी किया। बहादुरशाह ने इसके बदले में उन्हें कुछ कार्य हो तो सूचित करने के लिये कहा। धर्मपरायण

श्री शत्रुञ्जयतीर्थ, पालीताना

अहमदाबाद में श्री हठिभाई द्वारा निर्मापित जैन मन्दिर

कर्माशाह ने शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार के लिए स्वीकृति माँगी। बहादुरशाह ने फरमान लिख दिया और जूनागढ़ भी फरमान भेज दिया कि कर्माशाह को शत्रुंजय के उद्धार में पूरी सहायता की जाय। कर्माशाह फरमान लेकर खम्भात गये और श्री विनयमंडनसूरि को साथ लेकर पालीताना आये। अहमदाबाद के कुशल कारीगरों को बुलवाया। खम्भात में विराजमान शिल्प तथा ज्योतिष के पारंगत विवेकधीरगणि और विवेकमंडन पाठक को पालीताना पधारने की प्रार्थना की। वे भी पधार गये और जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ हुआ। अनेक आचार्यों और विशाल भावुक आत्माओं के समुदाय के बीच संवत् १५८७ कृष्णा ६ को श्री विद्यामंडनसूरिजी के करकमलों से मूलनायक जी की प्रतिष्ठा हुई। अन्य आचार्यों ने अन्य अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। कर्माशाह ने लाखों रुपयों का दान किया। इस उद्धार में सवा क्रोड़ द्रव्य खर्च हुआ। अद्यावधि कर्माशाह द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति ही दर्शकों के चित्त को भक्तिविभोर बना रही है।

तेजपाल सोनी का उद्धारः—

कर्मशाह के उद्धार के ६३ वर्ष के बाद संवत् १६५० में खम्भात निवासी प्रसिद्ध धनिक शाह तेजपाल सोनी ने शत्रुञ्जय तीर्थ के मूलमंदिर का विशेष रूप से पुनरुद्धार किया, और अपने गुरु आचार्य श्री हीरविजयसूरि जी (जगद् गुरु) से इसकी प्रतिष्ठा करवाई। इस अवसर पर तेजपाल ने इतना द्रव्य व्यय किया कि लोग उसे कल्पवृक्ष की उपमा देने लगे।

बादशाह अकबर ने श्री हीरविजयसूरि और उनके शिष्य उपाध्याय भानुचन्द्र को शत्रुंजय आदि तीर्थों के अधिकार पत्र दिये। जहाँगीर ने उन फरमानों को पुनः ताजा कर दिये। इस समय सेठ शान्तिदास अति प्रसिद्ध पुरुष हुए। बादशाह जहाँगीर के साथ इनका गाढ़ सम्बन्ध था। सं० १६६१ में शान्तिदास सेठ को अहमदाबाद की सूबागिरी प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है। सं० १६८६ में शाहजहाँ ने शान्तिदास सेठ को तथा शाह रतनसुरा को शत्रुंजय, शंखेश्वर, केशरियाजी आदि तीर्थ तथा अहमदाबाद, सूरत, खम्भात और राधनपुर आदि शहरों के मन्दिरों की रक्षा का तथा श्री संघ की सम्पत्ति की व्यवस्था का अधिकार दिया था। बादशाह

शाहजहाँ के पुत्र मुरादवक्ष—जो कि उस समय गुजरात का सूबेदार थ शान्तिदास सेठ को पालीताना पुरस्कार रूप में देने का फरमान जाहि किया था। बादशाह होने के बाद भी उस फरमान को पुनः ताजा क दिया था।

वर्तमान में पालीताना के नरेश को ६०००० वार्षिक जैनसंघ क ओर से दिया जाता है और आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी इसकी सार व्यवस्था करती है।

तीर्थ परिचय :—

इस गिरिराज पर अनेक श्रद्धालु भक्तजनों ने समय २ पर अनेव प्रकार के निर्माण कार्य किये हैं। सैकड़ों मन्दिर, हजारों प्रतिमाएँ देवकुलिकाएँ, पगलिये, विश्रामस्थल आदि से यह सकल गिरिराज पूर्णतय माण्डत और अलंकृत है। शहर से एक मील पर दक्षिण में जय तलहट है। वहाँ जिनपादुका और धनपतिसिंहजी का जिनमन्दिर है। वहीं भत्त तलहटी है जहाँ यात्रियों को नास्ता दिया जाता है। ३ मील के चढ़ाव के बा दो भागों में विभक्त विशाल सपाट भूमि आती है वहाँ अनेक भव्य गगन चुम्बी मंदिरों से देदीप्यमान, दुर्ग के आकार के बँधे हुए नौ शिखर (टुंक) हैं। नौ शिखरों के नाम इस प्रकार हैं।

(१) आदीश्वर की टुंक (२) मोतीशाह की टुंक (३) बालाभाई की टुंक
(४) प्रेमचन्द मोदी की टुंक (५) हेमाभाई की टुंक (६) उजमबाई की टुंक
(७) साकरचंद प्रेमचंद की टुंक (८) छीपावसही टुंक (९) चौमुखजी की टुंक अथवा सवासोम की टुंक।

लाखों रुपये लगाकर इन टुंकों के निर्माताओं ने अपने धर्म और कलाप्रेम को प्रकट किया है। गिरिशिखरों पर इतने भव्य मन्दिरों क निर्माण कराना कितना असाधारण कार्य है? परन्तु धर्मप्रेम और भक्ति से प्रेरित होकर पानी की तरह रुपये बहा कर जैनों ने इस गिरिराज को मन्दिरे से ढंक दिया है। यहाँ जितने मन्दिर हैं उतने विश्व में कहीं नहीं हैं अत यह पालीताना मन्दिरों का शहर कहा जाता है। "The city o

Temp es" के नाम से यह विश्वविख्यात नगर है। गिरिराज का वर्णन करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है :—

"पर्वत की चोटी के किसी भी स्थान से खड़े होकर आप देखिये; हजारों मन्दिरों का बड़ा ही सुन्दर दिव्य और आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाई देता है। इस समय दुनिया में शायद ही ऐसा कोई पर्वत होगा जिस पर इतने सघन, अगणित और बहुमूल्य मन्दिर बनवाये गये हैं। इसे एक मन्दिरों का शहर ही समझना चाहिए। पर्वतों के बहिः प्रदेशों का सुदूर-व्यापी दृश्य भी यहाँ से बड़ा ही रमणीय दिखलाई देता है।"

पालीताना शहर में भी यात्रियों की सुविधा के लिए जैनों ने अनेक (८०-६०) विशाल धर्मशालाए बनवाई हैं। यात्रियों को यहाँ सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

आगममन्दिर :—

स्व० श्री सागरानन्दसूरीश्वरजी महाराज की प्रेरणा से शत्रुञ्जय गिरिराज की तलहटी में भव्य आगममन्दिर निर्माण हुआ है। इसमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय के माननीय पैंतालीस आगमों को संगमरमर की शिलाओं पर सुंदर ढंग से उत्कीर्ण कराकर सारे मन्दिर में ये शिलाएँ लगाई गई हैं। इस मंदिर का नाम देवराजशाश्वत जिनप्रासाद श्री वर्धमान जैनआगम मंदिर है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १६६६ माघ कृष्णा दशमी को हुई। आधुनिक रचनाओं में यह भव्य रचना है।

इस प्रकार शत्रुञ्जय गिरिराज जैनियों का सर्वाधिक पूजनीय तीर्थस्थान है। लाखों यात्री प्रतिवर्ष इस तीर्थ की यात्रा कर अपना जीवन धन्य मानते हैं यह तीर्थ जैनियों के धर्म और कलाप्रियता का तथा उनके भव्यगौरव का उज्ज्वल प्रतीक है।

तालध्वजगिरि :-

यह तालध्वजगिरि, शत्रुञ्जय का एक शिखररूप है। इस पर तीन जिनमन्दिर हैं। मूलनायक श्री सुमतिनाथजी हैं। ऊपर चौमुखजी का

रंगमंडप ४१॥ फीट लम्बा है। गर्भगृह के आस पास की भमती में तीर्थङ्कर, यक्ष, यक्षिणी, सम्मेतशिखर, नन्दीश्वर, द्वीप आदि की कुल १७५ मूर्त्तियाँ हैं। रंगमंडप के पूर्व की ओर स्तम्भ के नीचे एक लेख है जिसमें "संवत् १११३ वर्ष जेठमास १४ दिने श्रीमन्नेमीश्वरजिनालयःकारितः" लिखा हुआ है।

इस नेमिनाथ जी के देवालय का जीर्णोद्धार वि० सं० ६०६ में काश्मीर निवासी श्रावक रत्नाशाह ने कराया था। संवत् १२१५में भी इसका जीर्णोद्धार किया ऐसा एक लेख टॉडसाहब को मिला है। इसके पूर्व सिद्धराज जयसिंह ने जिस सज्जन मंत्रीको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त किया था उसने तीनवर्ष की सोरठकी आमदनी से इस तीर्थ का भव्य उद्धार किया था। और फिर सिद्धराजसे बड़ी कुशलता से स्वीकृति ले ली थी। गिरिशिखर पर सज्जन मंत्री द्वारा निर्मापित कलाकृतियाँ देखकर सिद्धराज बहुत प्रसन्न हुआ था। सज्जन को भीमकुंडलिक श्रावक ने बहुत सहायता पहुँचाई थी। उसने भीमकुंड बनवाया और अठारह रत्नों का हार प्रभु के समर्पित किया था।

मानसिंह भोजराज की टुँक पर इस समय एक ही मंदिर है। इसमें संभवनाथजी मूलनायक के रूप में विराजमान है। कच्छमांडवी के ओसवाल सेठ मानसंग भोजराज ने इस मंदिर का उद्धार करवाया और सूर्यकुंड बनवाया अतः यह टुँक उनके नाम से प्रसिद्ध है।

संग्राम सोनीजी की टुंकः—

संग्रामसोनी पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए हैं। वीरवंशावली में लिखा है कि ये गुजरात के वढीयार विभाग में लोलाड ग्राम के पोरवाड थे। इन्होंने तपागच्छ के आचार्य श्री सोमसुन्दरजी के पास से भगवती सूत्रका श्रवण करते हुए जहाँ २ 'गोयमा' पद आया वहाँ वहाँ सोना मोहर अपनी तरफ से, माता की तरफ से तथा स्त्री की तरफ से रखकर कुल ६३ हजार स्वर्णमुद्रा ज्ञान खाते में दान की थी। इन्हीं संग्राम सोनी ने गिरनार पर यह टुँक बँधवाई। इस टुँक में रंगमण्डप दर्शनीय है। मूलनायक सहस्रफण पार्श्वनाथजी हैं। कुमारपाल की टुँक, कुमारपाल राजा ने बनवाई। इसी तरह वस्तुपाल-तेजपाल ने अनेक भव्य जिनमन्दिर बनवाये

जो वस्तुपाल-तेजपाल की टुँक के नाम से विख्यात हैं। इसमें वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी कई शिलालेख हैं। सम्प्रतिराजा ने गिरनार पर सुन्दर जिनमंदिर बनवाया जो अतिभव्य और कलापूर्ण हैं।

गिरनार पर राजमती की गुफा, सहस्राभुवन आदि कतिपय दर्शनीय स्थान हैं। गिरनार पर चढ़ने का मार्ग पहले अत्यन्त कठिन था। कुमारपाल सिद्धाचल के दर्शन के लिए जाते हुए गिरनार की यात्रा के लिए भी आया था किन्तु चढ़ने की कठिनता के कारण ऊपर न जा सका। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने मंत्री आम्रदेव को सीढ़ियाँ बनवाने का भार सौंपा। आम्रदेव ने सौराष्ट्र के सूबेदार पद पर रहते हुए वि. स. १२२२ में गिरनार पर पाज बनवाई। यह महान् भागीरथ-कार्य करके आम्रदेव ने श्रद्धालु यात्रियों के लिए बड़ी अनुकूलता करदी। जूनागढ़ के डॉ० त्रिभुवनदास मोतीचंद के सुप्रयत्न से गिरनार पर सुन्दर सीढियाँ बन गई हैं। करीब ४००० से अधिक सीढियाँ हैं। दिगम्बर जैनमन्दिर भी यहाँ बन गया है। तहलटी की सड़क पर अशोक शिलालेख भी है गिरनार पर्वत पर बने हुए भव्य जिनमंदिर स्थापत्य के उज्ज्वल आदर्श हैं।

अजारा (पार्श्वनाथ) :—

इसका प्राचीन नाम अजयनगर था। अभी यह छोटासा ग्राम है परन्तु पहले यह अतिसमृद्ध था। कहा जाता है कि दशरथ के पिता अज ने इसे बसाया था। यहाँ के जिनमन्दिर में भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्त्ति विराजमान है। इस मूर्त्ति का इतिहास अति प्राचीन है। ऐसा माना जाता है कि यह महाप्रभाविक प्रतिमा ६ लाख वर्ष तक धरणेन्द्र द्वारा पूजित रही, इसके बाद छह सौ वर्ष तक कुबेर ने पूजन किया। तत्पश्चात् वरुण ने सातलाख वर्ष तक पूजन किया। अजयपाल (अज) राजा के समय यह प्रतिमा यहाँ प्रकट हुई। इसके प्रभाव से अजयपाल के सब रोग मिटगये और उसने मन्दिर निर्माण करवाकर प्रतिमा की प्रतिष्ठा की।

अजारा ग्राम के आसपास अनेक मूर्त्तियाँ निकलती हैं। इससे मालूम होता है कि पहले यहाँ अनेक मन्दिर थे, अजारा पार्श्वनाथ के मन्दिर

में अनेक शिलालेख हैं। इनमें से अधिकतर बाद में करायेगये जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा का इतिहास प्रकट करते हैं। यहाँ ३५ पौण्डवजन का घंटा है उस पर 'श्री अजारा पार्श्वनाथ जी सं० १०१८ शा० रायचन्द जेचंद' खुदा हुआ है। इस ग्राम के बाहर एक विशेष प्रकार की वनस्पति है जो अनेक रोगों की शान्ति के लिए उपयोग में लाई जाती है। यह तीर्थ परमशान्ति धाम है। अजारा की पञ्चतीर्थी में ऊना, अजारा, देलवाड़ा, दीव और कोडीनार ये पाँच स्थान गिने जाते हैं।

ऊना में एक साथ पाँच भव्य मन्दिर हैं। यहाँ जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरि का स्वर्गवास हुआ था। जहाँ इन आचार्य श्री का दाह संस्कार हुआ वह ८० बीघा का टुकड़ा बादशाह अकबर ने जैनसंघ को भेंटस्वरूप दिया था। यह शाही बाग कहा जाता है। देलवाड़ा में चिन्तामणिपार्श्वनाथ मन्दिर है। यहाँ कपोलों की वस्ती अधिक है। दोसौ-ढाईसौ वर्ष पहले कपोल जाति जैनधर्म का पालन करती थी। कपोलों का बनाया हुआ यह मन्दिर है। दीव बन्दर में नवलखा पार्श्वनाथ जी का मन्दिर है। कोडीनार में नेमिनाथ भगवान् का मन्दिर था। यहाँ की जैनमूर्तियों के लेख भावनगर स्टेट की तरफ से प्रकाशित लेखसंग्रह में प्रकट हुए हैं। अभी यह तीर्थ विच्छेदप्रायः है।

प्रभास पाटनः—

वेरावल से तीन मील दूर प्रभासपाटन नामक प्राचीन नगर है। यहाँ आदिनाथ, अजितनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शान्तिनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी के नौ भव्य प्राचीन मन्दिर हैं। यहाँ एक विशाल जैनमन्दिर को मुसलमानी काल में तोड़ कर मस्जिद के रूप में दे दिया गया है। उस मस्जिद में जैनमन्दिर के चिन्ह विद्यमान हैं।

वरेचा पार्श्वनाथः—

मांगरोल से पोरबन्दर की मोटर-सड़क पर यह गाँव है। यहाँ पार्श्वनाथ की वालुकामय प्रतिमा है। कहा जाता है कि यह अरब समुद्र से निकली हुई चमत्कारी प्रतिमा है।

जामनगरः---

काठियावाड़ में जामनगर को जैनपुरी कहा जा सकता है। यहाँ बारह जिनमन्दिर हैं। इनमें वर्धमानशाह और चौकी का मन्दिर अति ही रमणीय और दर्शनीय है। लालन वंशीय वर्धमान और पद्मसिंह इन बन्धुयुगल ने अद्भुत साहस और पुण्यबल से अपार द्रव्यराशि उपार्जित की और जिन-मन्दिरों के निर्माण, जीर्णोद्धार तथा संघयात्राओं में उदारता पूर्वक व्यय की। जामनगर के मन्दिर के निर्माण में ६०० कारीगर लगाये। इसकी कारीगरी और सुन्दरता अति ही रमणीय है। अतः जामनगर तीर्थ न होने पर भी तीर्थ समान—अर्ध शत्रुञ्जय समान माना जाता है।

कच्छ के तीर्थ

भद्रेश्वर तीर्थः---

यह अत्यन्त प्राचीन तीर्थ माना जाता है। आदर्श ब्रह्मचारी विजय-सेठ और विजया सेठानी इसी नगरी के निवासी कहे जाते हैं। वर्तमान में माण्डवी बन्दर से १५ कोस, अंजार स्टेशन से १० कोस, भुज स्टेशन से १४ कोस दूर समुद्र के किनारे वसई ग्राम के नजदीक यह प्राचीन भद्रेश्वर है। इसकी रचना आबू के जैनमन्दिरों जैसी है। दानवीर जगडुशाह ने इसका सं० १३११-१५ में जीर्णोद्धार करवाया अतः यह जगडुशाह का मन्दिर कहा जाता है। इसकी रचना बड़ी भव्य है। इस मन्दिर में पहले पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा थी जो अब भमती के पीछे की देवकुलिका में विराजित है। अभी मूलनायक के रूप में भ० महावीर की प्रतिमा है।

श्री न्यायविजयजी म० ने इस तीर्थ के सम्बन्ध में लिखा है कि—"श्री वीर निर्वाण पश्चात् २३ वें वर्ष में देवचन्द्र नामक एक धनाढ्य सेठ ने इस नगरी के मध्यभाग में भव्य जिनमन्दिर बनवाया और प्रतिमा की अंजन शलाका श्री सुधर्मास्वामी गणधर ने कराई। इस सम्बन्धी एक ताम्रपत्र वि० सं० १९३९ में यहाँ के मन्दिर का जीर्णोद्धार के समय प्राप्त हुआ। इस लेख की मूलप्रति भुज में है किन्तु उसकी नकल आचार्य श्री विजयानन्दसूरिजी म० को तथा रोयल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के ऑनररी सेक्रेटरी

श्री ए० डब्ल्यू रुडोल्फ हार्नल को भेजी। उन्होंने इस ताम्रपत्र की नकल को बड़ी कठिनाई से पढ़कर निर्णय किया कि "भगवान् महावीर के बाद तैवीसवें वर्ष देवचंद्र नाम के वणिक् ने पार्श्वनाथ प्रभु का यह मन्दिर बँधवाया है।" (इस सम्बन्ध में अन्वेषण की आवश्यकता है।)

"बावन जिनालयों से मण्डित इस मन्दिर की रचना बड़ी अद्भुत है। ४५० फीट लम्बेचौड़े चौक के बीच में यह मन्दिर आया हुआ है। मन्दिर की ऊंचाई ३८ फीट, लम्बाई १५० फीट, चौड़ाई ८० फीट है। मूल मन्दिर के चारों ओर ५२ देवकुलिकाएँ हैं। चार गुम्बज बड़े और दो छोटे हैं। मन्दिर का रंगमण्डप विशाल है। उसमें २१८ स्तम्भ हैं। दोनों तरफ चांदनियां हैं। चांदनी पर से बावन छोटे शिखर और एक विशाल शिखर ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानों संगमरमर का पहाड़ उत्कीर्ण किया हुआ हो। प्रवेश द्वार सुन्दर कारीगरी वाला है।"

यहाँ के कतिपय स्तम्भों पर विविध संवत् लिखे हुए मिलते हैं जो सम्भवतः उनके जीर्णोद्धार के सूचक हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि भद्रावती का प्राचीन मन्दिर सम्प्रति राजा ने कराया और उसमें मुख्य नायक पार्श्वनाथ थे। वर्धमानशाह और उनके भाई पद्मसी ने सं० १६८२-८८ के बीच में इसका उद्धार करवाया था।

सुथरीः---

यहां भव्य जिनालय हैं। शान्तिनाथप्रभु का मन्दिर है। जिसमें पाषाण की ११२ प्रतिमाएँ हैं इनके अतिरिक्त घृतकल्लोल पार्श्वनाथ की चमत्कारी मूर्ति का एक मन्दिर है कच्छ देश में इस मूर्ति का बहुत माहात्म्य है। अम्बडासा, कोठारा, जखौ, नलिया और तेरा यह प्रसिद्ध पंचतीर्थी है। अंजार, मुन्द्रा, मांडवी, भुज, कंथकोट और कटारिया में भव्य जिनालय और मनोहारी प्रतिमाएँ हैं।

गुजरात के जैनतीर्थ

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथः---

वीरमगाँव से राधनपुर जाती हुई मोटर सर्विस के मार्ग में शंखेश्वर आता है। यह तीर्थ अत्यन्त प्राचीन और चमत्कारिक है। इसका पौराणिक इतिहास कृष्ण और नेमिनाथ से सम्बद्ध है। कहा जाता है कि जब जरासन्ध ने कृष्ण-वासुदेव पर चढ़ाई की तब कृष्ण भी अपनी राज्य-सीमा के किनारे सैन्य लेकर उसका प्रतिरोध करने के लिए गये। वहाँ अरिष्ट नेमिकुमार ने पञ्चजन्य शंखनाद किया जिससे जरासन्ध का सैन्य क्षुब्ध हो उठा। जब जरासन्ध ने अपनी कुलदेवी की आराधना की और उसके प्रभाव से कृष्ण की सेना श्वास और खाँसी से पीड़ित होगई। कृष्ण आकुल-व्याकुल हुए। तब नेमिकुमार ने अवधिज्ञान से जान कर कहा कि पाताललोक में नागदेव पूजित भावी तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसके पूजन से यह उपद्रव दूर होगा। श्री कृष्ण ने अनशन करके नागराज की आराधना कर वह प्रतिमा प्राप्त की और उसे शंखेश्वर में स्थापित की उसके प्रभाव से वे निरुपद्रव और विजयी हुए। धरणेन्द्र पद्मावती के सान्निध्य से युक्त यह पार्श्व प्रभु की प्रतिमा सकल विघ्नहारी और अति चमत्कारमय मानी जाती है। यह इस तीर्थ का पौराणिक इतिहास है।

आजकल भी कतिपय भावुक जनता इस तीर्थ के चमत्कारों की प्रत्यक्ष कहानी श्रद्धा के साथ कहती सुनती है। भावुक जनता की चमत्कार मय तीर्थ पर असाधारण श्रद्धा है।

मूलनायक शंखेश्वरजी की मूर्ति पर कोई लेख नहीं है परन्तु वहाँ की देवकुलिकाओं में विराजित मूर्तियों पर तेरहवीं-चवदहवीं सदी के लेख मिलते हैं। इस तीर्थ का ऐतिहासिक उल्लेख बारहवीं शताब्दी से मिलता है। धर्मवीर सज्जन महता, वस्तुपाल-तेजपाल, और राणा दुर्जनशल्य ने इस तीर्थ का उद्धार कराया और नवीन मन्दिर बनवाये। औरंगजेब के शासन काल में मूलनायक की प्रतिमा जमीन में सुरक्षित करदी गई थी। औरंगजेब की सेना

ने यहाँ के मन्दिरों का ध्वंस किया। मुसलमानी भय दूर होने पर पुनः इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गई।

यहाँ प्राचीन और नवीन दो मन्दिर हैं। दोनों की रचना बड़ी भव्य है। उत्तरकालीन तीथ-श्रद्धालु श्रावकों ने यहाँ सुन्दर कलामय निर्माण-कार्य करवाया है। शंखेश्वर की पंचतीर्थी में राधनपुर सभी, मुंजपुर, वडगाम तीर्थ और उपरिमाला तीर्थ हैं। पंचासर, दसाडा आदि दर्शनीय हैं।

पाटनः---

यह गुजरात की प्राचीन राजधानी थी। किसी समय सारे भारत में इस नगरी की प्रभुता, समृद्धि, कला-कौशल और संस्कारिता की छाप पड़ती थी। गुर्जरनरेशों के जैनमंत्री और प्रधान मुत्सद्दियों ने इसको उन्नति के शिखर पर आरूढ किया था। भारत की लक्ष्मी किसी समय पाटन में लीला करती थी। यह नगरी किसी समय व्यापार, कला और शिक्षण का केन्द्र थी। पाटन की प्रभुता का श्रेय जैनधर्म और उसके अनुयायियों को है। इस नगरी की स्थापना वनराज चावड़ा ने वि० सं० ८०२ में की थी। वनराज के गुरु परमोपकारी श्री शीलगुणसूरि थे। इनकी सहायता से ही वनराज राजा बन सका और पाटन की स्थापना करने में सफल हुआ। अतः पाटन के संस्थापक और इसके संवर्धक जैन ही रहे हैं। अस्तु। यह जैनों का ऐतिहासिक तीर्थ है। यहाँ अभी ११९ मंदिर हैं। मुख्य मंदिर पंचासरा पार्श्वनाथ का है। वनराज ने यह मंदिर बनवाया था और पंचासर से मूर्त्ति लाकर यहाँ स्थापित की थी। जैनों के अष्टापद जी, थंभन पार्श्वनाथ, कोका पार्श्वनाथ, साँवलिया पार्श्वनाथ, मनमोहन पार्श्वनाथ आदि सैकड़ों देवालय अब भी यहाँ की शोभा बढ़ा रहे हैं।

यहाँ अनेक प्राचीन पुस्तकभण्डार हैं। ताड़पत्र और कागज पर लिखी हुई सचित्र हस्तलिखित प्रतियों का यहाँ विशाल संग्रह है। कुमारपाल राजा के समय हेमचन्द्राचार्य के उपाश्रय में ५०० लेखक प्रतिदिन बैठकर ग्रन्थ लिखते थे। स्याही के कुण्ड अभी तक दिखाई पड़ते हैं। पाटन की प्राचीन प्रभुता जैनधर्म की प्रभुता है। पाटन के आसपास चारूप, मोढेरा गांभू-गंभूता, कम्बोई, चाणस्मा, हारीत और मेत्राणा आदि भी तीर्थस्थान जहाँ प्राचीन जिनमंदिर हैं।

अहमदाबाद

यद्यपि यह कोई तीर्थस्थान नहीं है तदपि यहाँ सैकड़ों जिनमन्दिर, ज्ञानभण्डार, उपाश्रय आदि होने के कारण तथा जैनियों की अधिक प्रभुत्व-सम्पन्न बस्ती होने के कारण यह जैनपुरी कही जाती है। यहाँ प्रसिद्ध सेठ शांतिदास हुए हैं जिन्होंने मुगलों के समय में भी अपने प्रभाव से धर्म और तीर्थों की रक्षा की। अहमदाबाद को मराठों के आक्रमण से इनके वंशजों ने ही बचाया था। इनके वंशजों की सेवा जैनसमाज में प्रसिद्ध है। यहाँ सेठ हठीसिंह केसरीसिंह का मन्दिर सब से बड़ा, भव्य और रमणीय है। इसमें मूलनायक श्री धर्मनाथस्वामी हैं। यह बावन जिनालय वाला मन्दिर है। मन्दिर की कारीगरी आबू के ढंगपर सूक्ष्म कलापूर्ण कोराई-खुदाई, भव्यता और स्वच्छता अत्यन्त मनोहारी और आकर्षक है। सं० १८४८ में यह बनाया गया है। इसके सिवाय भाभापर्श्वनाथ, जगवल्लभपार्श्वनाथ, चिन्तामणिपार्श्वनाथ, सम्मेतशिखर और अष्टापद जी के मन्दिर दर्शनीय हैं। राजपरा में चिन्तामणि पार्श्वनाथ का भव्य मन्दिर है। प्रतिमा सुन्दर, श्याम और विशाल है। सम्प्रति राजा के समय की प्राचीन मूर्ति है। रीचीरोड़, झवेरीवाड़ा, दोशीवाड़ा और शिखर जी की की पोल में भव्य मन्दिर हैं। यहाँ १३ ज्ञान भण्डार हैं। अनेक लोकोपयोगी जैनसार्वजनिक संस्थाएँ हैं। यहाँ की मस्जिदों में जैनमन्दिरों का बहुतसा सामान क़ाम में लाया गया है। अहमदशाह की मस्जिद में जैनगुम्बज है। सय्यदआलम की मस्जिद में भी जैनमन्दिरों के स्तम्भ हैं।

नरोड़ा :—भोयणी, पानसर, मेरिसा, वामज, भिलड़िया, रामसेन जसाली आदि स्थानों में भी दर्शनीय प्राचीन जैनमन्दिर हैं।

तारंगा-गिरिः—

यहाँ से अनेक उच्चकोटि आत्माओं ने निर्माण प्राप्त किया है अतएव यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही इसको पवित्र भूमि मानते हैं। दोनों परम्पराओं में इस तीर्थ का बड़ा महात्म्य है।

यह तीर्थ म्हेसाणा स्टेशन से ३५ मील दूर आये हुए टिम्बाग्राम की टेकरी पर है। जब शत्रुञ्जय गिरीराज की तलहटी वड़नगर (आनन्दपुर)

के पास थी तब यह टेकरी तारागिरि के नाम से शत्रुञ्जय के साथ जुड़ी हुई थी और इसीसे सिद्धशिला, कोटिशिला, मोक्ष की बारी आदि स्थान इसके पास की टेकरियों पर ही हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने अजितनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए कुमारपाल राजा को तारंगा का शत्रुञ्जय के समान महत्व बतलाया, इससे प्रेरित होकर उसने तारंगा गिरि पर भव्य जिनमन्दिर बनवाकर उसमें श्री अजितनाथ प्रभु की प्रतिमा प्रतिष्ठित की। तारंगाजी का मन्दिर बहुत ऊँचा है। इसकी ऊँचाई लगभग ८४ गज है। इतना ऊँचा मन्दिर भारतवर्ष में दूसरा कोई नहीं है। इसके बत्तीस मंजिल हैं। परन्तु तीन चार मंजिल तक ही जाया जा सकता है। केगर की विशिष्ट लकड़ी के मंजिल बने हुए हैं। इस लकड़ी की यह विशेषता है कि यह आग से नहीं जलती है। यहाँ सं० १२८५ में वस्तुपाल-तेजपाल ने अजितनाथ देव के मन्दिर में आदिनाथ देव की प्रतिमा के लिए गोखड़ा बनवाया था, ऐसा लेख मिला है। इसके बाद ईडर के राजमान्य श्रीमन्त गोविन्दसंघवी ने नवीन जिनबिम्ब करवाकर मन्दिर का जीर्णोद्धार किया इससे प्रतीत होता है कि कुमारपाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति अब यहाँ विद्यमान नहीं है। मुसलमान काल में सम्भव है उसे क्षति पहुँची हो।

तारंगाजी का भव्य दृश्य बड़ा ही रमणीय है। इस प्रासाद की की बारीक खुदाई और आदर्श रचना हिन्दुस्तान के कलाकुशल शिल्प शास्त्रियों की अद्भुतता की प्रतीक है। यहा नन्दीश्वर और अष्टापद के के दर्शनिय मन्दिर है। सिद्धशिला और कोटिशिला पर देवकुलिकाएँ हैं। यहाँ से अनेक कोटि आत्माओं ने मुक्ति प्राप्त की है।

ईडरगिरिः—

यह प्राचीन तीर्थ है। सम्प्रति राजा ने यहाँ शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाया ऐसा उल्लेख मिलता है कुमारपाल राजा ने यहाँ आदिनाथ का मन्दिर बनवाया था। गोविन्द संघपति ने इसका उद्धार करवाया। ईडरगढ़ पर अभी बावन जिनालय का बहुत ही रमणीय भव्य मन्दिर है। अभी दो लाख तीस हजार के खर्च से आनन्दजी कल्याणजी की पेढी की तरफ

से जीर्णोद्धार हुआ। है ईडर शहर में भी कतिपय जिनालय और भव्य उपाश्रय हैं। ईडरगढ पर दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनियों के मन्दिर हैं। दिगम्बर मन्दिरों में प्राचीन प्रतिमाएं और शास्त्रभण्डार हैं। यहाँ दि० जैन भट्टारकों की गद्दी भी है।

पोसिना पार्श्वनाथः----

ईडर से छः कोस दूर पोसिना में पार्श्वनाथ की साढे तीन फीट ऊँची सुन्दर जिनप्रतिमा है जो सम्प्रति राजा के समय की कही जाती है। मन्दिर कुमारपाल राजा के समय का कहा जाता है। यहाँ दो अन्य शिखरबद्ध मन्दिर हैं।

पालनपुरः----

यहाँ पल्लविया पार्श्वनाथजी का सुन्दर तीन मंजिल का मन्दिर है। यह मूर्ति परमार वंशी राजा प्राह्लदन ने बनाई ऐसा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कई भव्य जिनमन्दिर हैं।

मुहरी, भेरोल, आमलाघाट के नागफणी पार्श्वनाथ, दर्भावती (डभोई) में लोढण पार्श्वनाथजी की चमत्कारिक प्रतिमा आदि दर्शनीय तीर्थ हैं। बड़ोदा—यहाँ दादा पार्श्वनाथजी का महाराजा कुमारपाल के समय का भव्य और प्राचीन मन्दिर है। १६७२ में इसका जीर्णोद्धार कर और भी भव्य बना दिया गया है। पावागढ़ के जैनमन्दिर में विराजमान भीड़भंजन पार्श्वनाथ की मूर्ति वहाँ जैनबस्ती न रहने से यहाँ लाई गई है। दादा पार्श्वनाथ की बालुका की लेपमय यह प्रतिमा बहुत चमत्कारी और भव्य है। इसके अतिरिक्त १८ जिनमन्दिर हैं।

भडौंच (भृगुकच्छ):----

यह अत्यन्त प्राचीन नगर और तीर्थस्थान है। आधुनिक इतिहास-कार भी ईसा से १००० वर्ष पूर्व इसका बसाया जाना मानते हैं। यह बन्दरगाह प्राचीन काल में बड़ा समृद्ध था। इस बन्दरगाह में दूर २ विदेशों

से जहाज आते थे दूरदूर तक विदेशों में जाते थे। बौद्धसाहित्य में भी इसकी समृद्धि और व्यापार केन्द्र होने का उल्लेख मिलता है। लाटदेश की प्राचीन राजधानी भृगुकच्छ ही था।

भृगुकच्छ में अश्वावबोध तीर्थ व शकुनिका विहार नामक मुनिसुव्रत स्वामी का मन्दिर है। इस तीर्थका इतिहास तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत स्वामी के साथ सम्बन्धित है। भडौंच में जितशत्रराजा अपने सर्व लक्षण सम्पन्न अश्व का बलिदान देने के लिए तय्यार हुआ इस समय मुनिसुव्रत स्वामी ने ने उपदेश देकर अश्व को बचाया था। वह अश्व कालान्तर में मरकर महार्द्धिक देव हुआ और उसने प्रभुजी के समवसरण के स्थान में सुन्दर जिनमन्दिर बनवाया और मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। तबसे यह अश्वावबोध प्रसिद्धि में आया ऐसा पौराणिक इतिहास कहाजाता है। इसके पश्चात् हेमचन्द्राचार्य के उपदेश से मंत्रीश्वर अम्बड ने शकुनिका विहार का जीर्णोद्धार करवाया। यह शकुनिकाविहार मुस्लिम काल में रूपान्तरित करलिया गया है।

यहाँ की जुम्मामस्जिद जैनमन्दिर में से परिवर्तित हुई है ऐसा अन्वेषकों ने स्वीकार किया है। श्रीयुत बरजेस महाशय ने आर्कयोलोजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इन्डिया के ६ भागों में लिखा है कि "इस काल में भरूच की जुम्मामस्जिद भी जैनमन्दिर में से परिवर्तित हुई प्रतीत होती है। अब भी वहाँ के अवशेष खण्डित पुरातन जैनमन्दिर के भाग हैं ऐसा मालूम होता है। इस स्थल की प्राचीन कारीगरी, आकृतियों की कोरणी और रसिकता, स्थापत्य, शिल्पकला का रूप और लावण्य भारतवर्ष में अनुपम है।"

जुम्मामस्जिद की छतें और गुम्बज आबू के मन्दिर के ढंग के हैं। इसमें नकाशी वाले ७२ स्तम्भ हैं यह सब इसके जैनमन्दिर होने के पुष्ट प्रमाण हैं।

अब भी यहाँ श्री मुनिसुव्रतस्वामी का मुख्य मन्दिर है। इसके अतिरिक्त सुन्दर जिनमन्दिर हैं। यहाँ दिगम्बर जैनमन्दिर श्रीनेमिनाथ स्वामी का है।

अंकलेश्वर :—यहाँ दिगम्बर चार मन्दिर हैं। यह अति प्राचीन नगर है। श्री पुष्पदंत भूतबलि आचार्यों ने यहीं जयधवल, धवल, महाधवल के मूलग्रन्थ रचे थे।

सजोत :—अंकलेश्वर से ६ मील दूर पर एक ग्राम में शीतलनाथ भगवान् की दिगम्बर जैनमूर्त्ति अतिमनोज्ञ, शान्त और उच्च शिल्पकला को प्रकट करने वाली है। मूर्त्ति के चमत्कार मय होने की जनश्रुति है।

सूरत :—

यहाँ लगभग पचास जिनमन्दिर हैं। श्री शान्तिनाथ के मंदिर में रत्न की सुन्दर प्रतिमा है। यहाँ ताम्रपत्र पर पैंतालीस आगम श्री सागरानन्दसूरिजी के प्रयत्न से उत्कीर्ण कराये गये हैं। यहाँ दिगम्बर जैनमन्दिर भी हैं। रांदेर पहले मुख्य व्यापार केन्द्र था। यहाँ के कई जैनमन्दिर और उपाश्रय मस्जिद के रूप में बदल दियेगये प्रतीत होते हैं।

कावी :—यहाँ ऋषभदेव तथा धर्म नाथ भगवान् के बावन जिनालय मन्दिरहैं। गंधार :—यहाँ वर्धमान स्वामी तथा अमीझरा पार्श्वनाथ का तीर्थ है। मातर :—यहाँ साँचादेव श्री सुमतिनाथ का तीर्थ है।

खम्भात :—

यह अति प्राचीनतीर्थ स्थान है। यहाँ श्री स्तम्भन पार्श्वनाथजी की प्रतिमा बहुत प्राचीन और चमत्कारी है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि हुए। इनके हाथ से ही इस तीर्थ की स्थापना हुई। उनके शरीर में पहले व्याधि थी। यह इसके प्रभाव से दूर हुई और वे प्रसिद्ध टीकाकार हो सके। प्राचीन काल से ही यहाँ बड़े २ प्रभावक पुरुष होते आये हैं। यहाँ की जुम्मामस्जिद भी जैनमन्दिर का रूपान्तर है। यह प्रसिद्ध बन्दर है। अभी खम्भात में ७६ मन्दिर हैं। वस्तुपाल ने यहाँ ज्ञानभण्डार स्थापित किये। यहाँ ५ बड़े बड़े ज्ञान भण्डार हैं।

अगाशी :—

बम्बई का प्रवेशद्वार और प्राचीन सोपारक नगर के पास यह गाँव है। सोपारक बन्दर में मोतीशाह के जहाज रुक गये थे। शासन देवी की

प्रेरणा से सोपारा से मुनिसुव्रत स्वामी की मूर्त्ति लाकर उन्होंने अगाशी में स्थापित की। बाद में संघ ने जीर्णोद्धार कर विशाल मन्दिर बनवाया। सोपारा पहले बहुत बड़ा बन्दरगाह था यहाँ विदेशों से खूब व्यापार होता था। कोंकण का राजा जैनधर्मी था अतः उस समय इस प्रदेश में जैनसाधु विचरण किया करते थे। सोपारा कोंकण की राजधानी थी।

बम्बई :—

यहाँ अनेक भव्यमन्दिर हैं। पायाधुनी में गोडीजी पार्श्वनाथजी का तथा लालबाग में दिगम्बर जैनमन्दिर दर्शनीय हैं।

पावागढ :—

पंचमहाल जिले में यह पहाड़ आया हुआ है। यह प्रसिद्ध जैनतीर्थ है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार यहाँ से लव-कुश तथा पाँच क्रोड मुनि मोक्ष पधारे हैं। पर्वत पर प्राचीन जैनमन्दिर और धर्मशालाएँ हैं! यहा दिगम्बर जैन अधिक संख्या में यात्रा करने आते हैं। यह पहाड २६ मील के घेरे में और समुद्रीसतह से २५०० फुट ऊँचा है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यहाँ नौ सुन्दर जिनालय थे। वस्तुपाल के भाई तेजपाल ने यहाँ सर्वतोभद्र नाम का जिनमन्दिर बनवाया था जिसमें मूलनायक महावीर प्रभु थे। पावागढ पर सम्भव जिनेश्वर की स्तुति करते हुए श्री भुवनसुन्दरजी ने इसे शत्रुञ्जयावतार कहा है। मि. बर्जेस ने लिखा है कि "पावागढ के शिखर पर रहे हुए कालिका माता के मन्दिर के भाग में अतिप्राचीन जैनमन्दिरों का समूह है।

चाँपानेर :—

पावागढ पहाड़ के नीचे बसा हुआ यह नगर गुजरात की राजधानी रहा है। इसे वनराज चावड़ा के मंत्री चाँपा ने बसाया था। चाँपानेर संघ ने बावन जिनालय का भव्य मन्दिर बनवाया था और उसमें अभिनन्दन प्रभु तथा जीरावला पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान थीं। सं० ११११२ में इनकी प्रतिष्ठा हुई थी। महम्मद बेगड़े के समय में चाँपानेर का पतन हुआ।

भीनमाल :---

यह अत्यन्त प्राचीन नगर है, अभी यह जोधपुर राज्य के जसवन्त पुर परगने में है परन्तु बहुत पहले यह गुजरात की राजधानी था। जयशिखरी के पंचासर के पहले के गुजरात का यह नगर कला, वैभव और व्यापार का धाम था। वनराज चावड़ा ने पाटन बसाया और भीनमाल के पोरवाड़, श्रीमाल वणिक और श्रीमाली ब्राह्मण आदि पाटन में आकर बस गये। यह नगर श्रीमाल, रत्नमाल, पुष्पमाल और भीनमाल इन चारों नामों से प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित है। इस नगर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के मत हैं परंतु इसकी ऐतिहासिक महत्ता और प्राचीनता तो सिद्ध ही है। समर्थ जैनाचार्यों ने यहाँ के क्षत्रिय और ब्राह्मणों को प्रतिबोध देकर जैन बनाये हैं। पोरवाड़, ओसवाल, श्रीमाल आदि जातियाँ इस प्रयत्न का ही सुन्दर फल है।

भीनमाल :--

यह भीनमाल नगर प्राचीन काल में बीस कोस के घेराव में बसा हुआ था। इसके आसपास विशाल परकोटा बना हुआ था। उसके ८४ दरवाजे थे। इस नगर में सैकड़ों कोट्याधीश थे। इस नगर में दो मंजिल का विशाल सूर्य मन्दिर है। कहा जाता है कि यह मन्दिर किसी हूण या शक राजा ने बनवाया था और सं. १११७ में दो ओसवाल और एक पोरवाड़ ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था। आजकल भीनमाल के चारों तरफ मन्दिर खँडहर और प्राचीन मकान दिखाई देते हैं। अभी यहाँ चार सुन्दर जिन-मन्दिर हैं। इस प्राचीन विशाल नगर का महत्त्व आजकल तो मात्र इतिहास के पृष्ठों पर ही है,

मारवाड़ के तीर्थ

चन्द्रावतीः—

अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से पहले यह नगरी अत्यन्त समृद्ध और उन्नत थी। यह आबू के परमारों की राजधानी थी। महामंत्री विमल-शाह और वस्तुपाल-तेजपाल के समय इस नगरी की अपूर्व जाहोजलाली थी।

यहाँ हजारों मन्दिर विद्यमान थे। कहाजाता है कि ४४४ अर्हत-प्रासाद और ६६६ शैवमन्दिरों वाली इस नगरी में भीमराज से अपमानित हुआ विमल कोतवाल राज्य करता था। यह नगरी बहुत विशाल थी। इसका एक दरवाजा दत्ताणी गाँव तक आया हुआ हुआ है जिसे तोड़ा का दरवाजा कहते है। दूसरा दरवाजा कीवरली के पास था। पेथड़शाह ने यहाँ जिनमन्दिर बँधवाया था। महामंत्री मुंजाल ने चन्द्रावती तीर्थ की यात्रा की थी ऐसा उल्लेख मिलता है। तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी यहाँ के पौरवाड़ धरणीक की पुत्री थी। यहाँ के वर्त्तमान उपलब्ध भग्नावशेष ही इस नगरी की समृद्धि के साक्षी हैं। ध्वस्त मन्दिरों के पत्थर पालनपुर और सिरोही तक देखे जाते हैं। इसमें भारतीय कला के श्रेष्ठ नमूना रूप एक ही पत्थर में दोनों तरफ श्री जिनेश्वर देव की अद्भुत कलामय सुशोभित मूर्त्ति है। इस अत्यन्त समृद्ध और मन्दिरों से सुशोभित नगरी का अलाउद्दीनखिलजी के प्रचण्ड आक्रमण से दुखमय अन्त हुआ। अभी यहाँ छोटा सा गाँव मात्र रह गया है।

आबू के जगप्रसिद्ध मन्दिर:—

आबू पहाड़ की विशेष प्रसिद्धि यहाँ के सुप्रसिद्ध कलामय जैनमन्दिरों के कारण ही है। यह पहाड़ बारह मील लम्बा और ४ मील चौड़ा है। जमीन की सतह से ३००० फुट ऊँचा और समुद्र की सतह से ४००० फुट ऊँचा है। यहाँ अभी पन्द्रह गाँव बसे हुए हैं। इनमें से देलवाडा, अचलगढ़ और ओरिया में जैनमन्दिर हैं। यहाँ का चढ़ाव अठारह मील का है। चारों तरफ पहाडियों और सघन वृक्षराजि का दृश्य बड़ा ही रमणीय लगता है। देलवाड़ा में बस्ती थोड़ी है परन्तु अद्भुत कलामय जैनमन्दिरों के कारण यात्रियों के आवागमन से यहाँ सदा चहल पहल रहती है। देलवाड़ा के मुख्य मन्दिर और उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

विमलवसही:—

विमल मंत्रीश्वर का बनवाया हुआ यह महामन्दिर समस्त भारतवर्ष में शिल्पकला का सर्वोत्कृष्ट अपूर्व नमूना है। कलादेवी अपनी समग्र सुषमा के साथ यहाँ प्रकट हुई हो, ऐसा आभास होने लगता है। गुर्जर नरेश

भीम के महामंत्री विमलशाह ने इस अनुपम कलाकृति का निर्माण कर अपना अमर कीर्त्तिस्तम्भ कायम किया है।

यह सारा मन्दिर संगमरमर का बना हुआ है। इसमें १५०० कारीगरों और दो हजार मजदूरों ने तीन वर्ष तक लगातार काम किया था। पहाड़ पर हाथियों के द्वारा पत्थर ले जाये जाते थे। यांत्रिक साधनों के अभाव में भी इतने बड़े २ पत्थर और शिलाओं को इतनी ऊँचाई पर चढ़ाना साधारण बात नहीं है। इसके निर्माण में लगभग दो करोड़ रुपयों का व्यय हुआ है। मन्दिर की लम्बाई १४० फुट और चौड़ाई ९० फुट है। रंगमण्डप और स्तम्भों की कोरणी इतनी अद्भुत है कि दर्शक दाँतों तले अंगुली दबाने लगजाते हैं। बेलबूटे, पुतलियाँ, हाथी, घोड़े आदि के इतने सुन्दर चित्रालेखन हैं कि ये सजीव से प्रतीत होते हैं। मुख्य मन्दिर के रंगमण्डप में ४८ स्तम्भ लगे हुए हैं उनके मध्य के गुम्बज में इतनी सूक्ष्म कलापूर्ण कोरणी है कि कागज पर भी उसकी प्रतिकृति बनाना अति परिश्रम-साध्य है। इस गुम्बज और स्तम्भों की समानता करने वाली संसार भर में कोई कलाकृति नहीं है। इस मन्दिर में तीर्थङ्कर देव के समवसरण, बारह परिषद्, व्याख्यान सभा के दृश्य, महाभारत के युद्ध प्रसंग, दीक्षामहोत्सव, आदि के विविध दृश्य आलेखित हैं। जिन्हें देखते २ आँखें थकती भी नहीं है। इसमें मूलनायक श्री ऋषभदेव स्वामी हैं। विक्रम सं. १०८८ में धर्मघोषसूरि के हाथ से विमल शाह ने इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। विमलशाह के इस मन्दिर के ठीक सामने घोड़े पर उनकी मूर्त्ति है। इस घोड़े के आसपास सुन्दर दस हाथी हैं जिन्हें हास्तिशाला कहते हैं।

कर्नल टॉड ने इस मन्दिर के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह मन्दिर भारत भर में सर्वोत्तम है और ताजमहल के सिवाय और कोई स्थान इसकी समानता नहीं कर सकता है। फर्ग्युसन ने लिखा है कि 'इस मन्दिर में जो कि संगमरमर का बना हुआ है, अत्यन्त परिश्रम सहन करने वाली हिन्दुओं की टाँकी से फीते जैसे बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियाँ बनाई गई हैं कि अत्यन्त कोशिश करने पर भी उनकी नकल कागज पर बनाने में समर्थ न हो सका।"

वस्तुपाल तेजपाल का मन्दिर- लूणिगवसही:— विमलवसही में जो भाव्यता और कलापूर्णता है वही वस्तुपाल-तेजपाल के मन्दिर में भी विद्यमान है। इन महामात्य युगलबन्धुओं ने करोड़ों रुपये लगाकर इन कलाकृतियों का निर्माण करवाया है। इसमें मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान हैं। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा सं० १२८७ में की गई है। इस मन्दिर का नाम वस्तुपाल के बड़े भाई लूण की स्मृति में लूणिगवसही रक्खा गया है। वस्तुपाल-तेजपाल ने यहाँ बावन जिनालय मन्दिर बनवाया है। मन्दिर के पीछे भाग में दस हाथी हैं जिनपर इस युगलबन्धु के कुटुम्बियों की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के रंगमण्डप में दाईं ओर और बाईं ओर संगमरमर के दो बड़े गोखड़े बने हुए हैं जिन्हें "देरानी-जेठानी के गोखड़े" कहते हैं। ये साधारण गोखड़े नहीं हैं किन्तु सुन्दर कारीगरी वाले दो छोटे २ मन्दिर जैसे हैं। मन्दिर की प्रदक्षिणा में दाईं दीवार पर संगमरमर पर शकुनिका विहार का दृश्य आलोकित है। लूणवसही के बाहर दरवाजे की बाईं ओर चबूतरे पर एक बड़ा कीर्तिस्तम्भ है। ऊपर का भाग अधूरा मालूम होता है। कीर्तिस्तम्भ के नीचे एक सुरही का पत्थर है जिसमें बछड़े सहित गाय का चित्र है उसके नीचे वि० सं० १५०६ का कुम्भाराणा का लेख है जिसमें लिखा है कि-" इन मन्दिरों की यात्रा के लिए आने वाले किसी भी यात्री से किसी प्रकार का कर या चौकी के बदले में कुछ भी मूल्य न लिया जाय ऐसी कुम्भाराणा की आज्ञा है।"

लूणगवसही में विविध कलापूर्ण भाव आलेखित हैं। खास करके देराणी-जेठानी के गोखड़े, नव चौकी के मध्य का गुम्बज, रंगमण्डप का गुम्बज, रंगमण्डप की भमती में दाईं ओर के गुम्बज में कृष्णजन्म, कृष्ण-क्रीडा, नौवीं देवकुलिका के गुम्बज में द्वारिकानगरी और नेमिनाथ का समवसरण, नेमिनाथ की बरात का दृश्य, तीर्थङ्करों के कल्याणक आदि दृश्य दर्शनीय हैं। इसमें कुल ४८ देवकुलिकाएँ हैं। १४६ गुम्बज हैं। ६३ नकाशी वाले और ८३ सादे गुम्बज हैं। स्तम्भसंख्या १३० हैं। आबू के भव्य मन्दिर भारतीय कला के विश्वप्रसिद्ध उदाहरण हैं।

भीमाशाह का मन्दिर पित्तलहर— उक्त मन्दिरों के पास भीमाशाह ने एक मन्दिर बनवाया जो पित्तलहर कहाजाता है क्योंकि इसमें उन्होंने

आदीश्वर भगवान् की धातु की विशाल भव्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित की थी। कारण-वशात् वह मूर्त्ति कुम्भलमेरू (मेवाड़) के चौमुखी जी के मन्दिर में विराजित की गई। इसके बाद जीर्णोद्धार के समय मम्मद बेगड़ा के मंत्री सुन्दर और मंत्री गदाने आदीश्वर भगवान् की १०८ मण धातु की मूर्त्ति बनाकर सं०१५२५ में प्रतिष्ठित की।

अचलगढ़ः— देलवाड़ा से ५ मील पर अचलगढ़ ग्राम है। यहां कुमारपाल राजा ने श्री शान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर बनवाया है। यहाँ ऊँचे शिखर पर आदिनाथ भगवान् का दोमंजिल वाला गगनचुम्बी चतुर्मुख मन्दिर है। इसे संघवीसहसा ने बँधवाया है।

ओरिया—यहाँ मूलनायक आदिनाथ जी की प्रतिमा है। दाईं ओर श्री पार्श्वनाथ भगवान् और बाईं ओर शान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्ति है।

आबू पर नकी तालाब, रामकुण्ड, आनादरापॉइन्ट, सनसेटपाइन्ट, पालनपुर पॉइन्ट, आदि अनेक अन्य भी दर्शनीय स्थान हैं।

कुम्भारिया—(आरासण तीर्थ) —:

आबूपर्वत के पास आये हुए अम्बाजी नाम के प्रसिद्ध वैदिक देवस्थान से ११ मील पर कुम्भारिया नामक छोटासा ग्राम अभी है। यहीं प्राचीन आरासन तीर्थ है। यहाँ पहले आरस पत्थर की विशाल खान थी। यहीं से आरस पत्थर ले जाकर आबू के प्रसिद्ध मन्दिर बनाये गये हैं। कई प्रतिमाएँ भी यहीं के पत्थर से बनाई हुई हैं। यहाँ अभी जैनों के भव्य पाँच मन्दिर हैं जिनकी कारीगरी और रचना उत्कृष्ट प्रकार की है। ये सब मन्दिर आबू के मन्दिरों के समान सफेद आरस पत्थर के बने हुए हैं। कहा जाता है कि विमल मंत्री ने यहाँ ३६० जैनमन्दिर बनवाये थे। यहाँ की वर्त्तमान स्थिति को देखते हुए यह अनुमान किया जाता है कि यहाँ ज्वालामुखी पहाड़ फटा हो और उससे यह प्रदेश जलकर नष्ट हो गया है। अभी यहाँ जैनमन्दिर इस प्रकार हैं ;—

(१) नेमिनाथजी का भव्य मन्दिर :—इसमें आबू के मन्दिरों जैसी

कोरणी और गुम्बज हैं। इसका शिखर तारंगाजी के शिखर के आकार का है। यह यहाँ का सबसे बड़ा और तीन मंजिल वाला विशाल मन्दिर है।

(२) महावीर स्वामी का मन्दिर :—इसमें रंगमण्डप की छत बहुत ही सुन्दर है। इसमें नेमिनाथजी की बरात, भारत-बाहुबलियुद्ध आदि विविध दृश्य चित्रित है।

(३) शान्तिनाथजी का मन्दिर (४) पार्श्वनाथजी का मन्दिर और (५) श्री संभवनाथजी का मन्दिर भी भव्य कलापूर्ण और मनोरमा है।

इन मन्दिरों की रचना से ऐसा मालूम होता है कि ये सब एक समय के बने हुए हैं। आबू के मन्दिरों की शैली से बहुत मिलते हुए होने से यह अनुमान किया जाता है कि ये सब विमलमंत्रीश्वर के बनवाये हुए हैं। कहा तो ऐसा भी जाता है कि अम्बाजी का मन्दिर भी किसी समय जैन-मन्दिर था। यह तीर्थ अभी दाँता स्टेट में है।

महातीर्थ मुण्डस्थल :—

कहा जाता है कि छद्मस्थ अवस्था में भगवानमहावीर आबू की तलहटी में रहे और खरेड़ी से चार मील दूर मुण्डस्थल में पधारे उनकी स्मृतिरूप में यह तीर्थ स्थापित हुआ है। भग्नावस्था में रहा हुआ जिनमन्दिर इस ग्राम की प्राचीन समृद्धि का परिचय दे रहा है। सोलहवीं सदी तक यह स्थल अच्छी स्थिति में था।

जीरावला पार्श्वनाथ :—

सिरोही स्टेट के मण्डार ग्राम से सात कोस दूर जीरावला ग्राम है। यहाँ सुन्दर बावन जिनालय, विशाल चौक और धर्मशाला है। यहाँ प्राचीन शिलालेख भी अच्छी संख्या में उपलब्ध होते हैं। यह तीर्थ बड़ा चमत्कारिक माना जाता है। मूर्ति के प्रकट होने की चमत्कारिक घटना है। जीरावला पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रसिद्ध वैष्णवतीर्थ जगन्नाथपुरी (उड़ीसा), घाणेराव, सादड़ी, नाडलाई, आदि अनेक स्थानों पर है, ऐसा माना जाता है। अनेक श्रावकगण इस चमत्कारिक तीर्थ की यात्रा करते हैं।

साँचोर

(सत्यपुर मण्डन महावीर)—यह अत्यन्त प्राचीन और ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ भगवान् महावीर की अत्यन्त प्रभावशाली मूर्त्ति होने के कारण यह सत्यपुर महावीर के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। इस प्रतिमा का ऐसा प्रभाव कहा जाता है कि यह देवसानिध्य वाली प्रतिमा है। धनपाल ने भी लिखा है कि तुर्कों ने श्रीमाल देश, अणहिलवाड़, चन्द्रावती, सोरठ देलवाड़ा और सोमेश्वर को भंग किया परन्तु वे साँचोर के महावीर को भंग करने की कोशिस करते हुए भी सफल न हो सके। वि० सं० १०८१ में महम्मद गजनी ने इस मूर्त्ति को तोड़ने के लिए अनेक प्रयत्न किये परन्तु वह सफल न हो सका और अनिष्ट का शिकार बन गया। कहा जाता है कि वह प्रतिमा की अंगुलि छिन्न कर लाया परन्तु रास्ते में ही उसे मरणान्त कष्ट होने लगा अतः वह अंगुलि लेकर वापस आया और उसे यथास्थान पर रख दी। आश्चर्य है कि वह अंगुलि यथास्थान जुड़ गई। इससे वह बड़ा विस्मित हुआ और उसने फिर कभी यहाँ आनेकी इच्छा नहीं की। इस कथन में कहाँ तक अतिशयोक्ति है और कहाँ तक सत्य है वह स्वयमेव विचारणीय है।

इस महाप्रभावशाली प्रतिमा की अभिव्यक्ति का इतिहास भी चमत्कारिक बताया जाता है। नाहड़ नामक महासमृद्ध राजा ने यह प्रतिमा सत्यपुर में गगन चुम्बी जिनालय बनवाकर वीर निर्वाण के ६०० वर्ष बाद प्रतिष्ठित करवाई। यह अत्यन्त प्रभाविक प्रतिमा मानी जाती है। साँचोर में पाँच जिनालय हैं।

मारवाड़ की पंच तीर्थी

राणकपुर—गोड़वाड़ प्रान्त की पंचतीर्थियों में यह प्रमुख तीर्थ है। कारीगरी और बहुमूल्यता की दृष्टि से यह मारवाड़ के समस्त प्राचीन जैन-मंदिरों में सबसे श्रेष्ठ है। विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी में राणकपुर अति उन्नत नगर था। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा के समय में यह नगर मेवाड़राज्य के अन्तर्गत था। यहाँ के इस प्रसिद्ध मन्दिर के निर्माता श्री धन्नाशाह और रत्नाशाह थे। इन्होंने अपने पुण्य बल से विपुल लक्ष्मी

का उपार्जन किया और इस भव्य मन्दिर के निर्माण में उसका उपयोग किया। इस मंदिर की रचना नलिनीगुल्म विमान को लक्ष्य में रखकर करवाई गई है। इस तरह का इतना भव्य और कलापूर्ण मंदिर अन्यत्र नहीं है। इसमें १४४४ स्तम्भ और ८४ शिखरबद्ध जिनालय हैं। यह मंदिर ४८००० वर्गफीट जमीन पर बनाया हुआ है। इस मंदिर की रचना के संबंध में फर्ग्युसन ने लिखा है कि "इसके सभी स्तम्भ एक दूसरे से भिन्न हैं और बहुत अच्छी तरह से संगठित किये हुए हैं। इस प्रकार के १४४४ विशाल प्रस्तर स्तम्भों पर यह मंदिर अवस्थित है। इनके ऊपर भिन्न २ ऊँचाई के अनेक गुम्बज लगे हुए हैं जिनसे इसकी बनावट का मन के ऊपर बड़ा प्रभाव होता है। मन पर प्रभाव डालने वाला इतना अच्छा स्तम्भों का कोई दूसरा संगठन सारे भारत के किसी देवालय में नहीं है।"

कहा जाता है कि धन्नाशाह और रत्नाशाह का विचार इसको ७ मंजिल बनवाने का था, जिसमें से ४ मंजिल तो बनाये जा चुके और तीन मंजिलों का कार्य अधूरा रह गया सो अब तक नहीं बन सका। इसके लिए रत्नाशाह के वंशज अभीतक उस्तरे से हजामत नहीं बनवाते हैं

इस मंदिर का कार्यारम्भ सं० १४३४ में हुआ था, लगातार बासठ वर्ष तक कार्य चलता रहा। सं० १४४६ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। इस मंदिर का नाम त्रैलोक्यदीपक है। इस मंदिर के निर्माण में लगभग पन्द्रह करोड़ रुपये खर्च हुए। आनंदजी कल्याण जी की पेढी ने एक अच्छे इंजीनियर को इस मंदिर की कीमत आँकने को बुलवायाथा उसने १५ करोड़ की कीमत आँकी थी। राणकपुर का मंदिर अर्थात् नलिनी-गुल्म-विमान कलाकौशल का भव्य नमूना।

वरकाणाः—रानी स्टेशन से तीन माइल दूर वरकाणा तीर्थ है। यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान् का प्राचीन बावन जिनालय का भव्य मंदिर है।

नाडोल-वरकाणा से तीन कोस दूर नाडोल तीर्थ है। यहाँ सुन्दर ४ प्राचीन जिनमंदिर हैं। पद्मप्रभु का मंदिर बहुत प्राचीन है। यहाँ से नाडुलाई तक भोयरा (सुरंग मार्ग) है।

नाडुलाई—नाडोल से तीन कोस पर यह तीर्थ है। यहाँ ११ मंदिर हैं। यह बहुत प्राचीन शहर है इसका पुराना नाम नारदपुरी है। गाँव के बाहर दो टेंकरियों पर दो मंदिर हैं। यहाँ आदिनाथ का मंदिर चमत्कारी और प्राचीन है। यह बारहवीं सदी से भी प्राचीन है।

सादड़ी—यहाँ पाँच सुन्दर जिनमंदिर हैं। इसमें सबसे बड़ा श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ का भव्य मंदिर है। इस मंदिर में सूर्य का प्रकाश पड़ने की कोई विशिष्ट प्रकार की योजना है ऐसा फर्ग्युसन ने लिखा हैं।

घाणेराव—यहाँ आदीश्वर भगवान् का विशाल मंदिर है। कुल दस मंदिर हैं जो दर्शनीय हैं।

मुछाला महावीरः—

घाणेराव से १॥ कोस दूर श्री मुछाला महावीर का सुन्दर मन्दिर है। यह दो हजार वर्ष पहले का तीर्थ है। कोई कहते हैं कि नन्दीवर्धन राजा ने यह मूर्ति स्थापित की है। मूर्ति की भव्यता और चमत्कारिता का कई बार प्रत्यक्ष परिचय मिला है। इस प्रतिमा को जैन-अजैन सब पूजते हैं। दन्त कथा है कि यहाँ के पुजारी ने अपनी भक्ति से मूँछ युक्त भगवान के दर्शन उदयपुर के किसी राणा को करवाये जिससे मुछाला महावीर नाम प्रसिद्ध हुआ। मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी में नाणा, दीयाणा नांदिया वामण वाड़ा और अजारी तीर्थ हैं। वेड़ा, सोमेश्वर, राता महावीर, सेवाड़ी, नाणा यह भी पंचतीर्थी है।

राता महावीरः—

एरनपुरा स्टेशन से १४ माइल दूर, बीजापुर से २॥ मील जंगल में यह तीर्थ है। यहाँ सुन्दर प्राचीन २४ जिनालय का भव्य मन्दिर है। भगवान् महावीर की सुन्दर लालरंग की २॥ हाथ ऊँची प्रतिमा है अतः यह राता महावीर के नाम से प्रसिद्ध है।

जालोर—स्वर्णगिरीः—

जोधपुर से ८० मील की दूरी पर स्वर्णगिरी की तलहटी में जालोर सुन्दर नगर है। इसका प्राचीन नाम जाबालीपुर है। नौंवी शताब्दी से पूर्व

यह नगर उन्नत दशा में था, ऐसा उल्लेख मिलता है। श्री मेरुतुङ्गाचार्य ने विचारश्रेणी में लिखा है कि इस सुवर्णगिरी पर नाहड़ राजा ने महावीर स्वामी का मन्दिर बनवाया था। इस उल्लेख के अनुसार सुवर्णगिरी का महावीर चैत्य १८०० वर्ष प्राचीन है। कुमारपाल राजा ने १२२१ में इस स्वर्णगिरी पर कुमारविहार मन्दिर बनवाया था और उसमें पार्श्वनाथजी की प्रतिमा स्थापित की थी। संवत् १६८१ में मुणोत जयमलजी ने जो जोधपुर नरेश श्री गजसिंह जी के मंत्री थे, यहां प्रतिष्ठा और पुनरुद्धार करवाया।

कोरटा तीर्थः—

एरनपुरा स्टेशन से १२ मील पर है। इनके चारों तरफ प्राचीन मकानों के खंडहर पड़े हुए हैं। उनसे अनुमान किया जा सकता है कि किसी समय यह एक बड़ा नगर रहा होगा। इसके प्राचीन नाम कोरण्टपुर, कनकापुर, कोरण्टनगर आदि हैं। अभी यहाँ भगवान महावीर का भव्य मंदिर है। जाकोड़ा, नाकोड़ा, कापरड़ा, स्वयंभू पार्श्वनाथ, फलोधी पार्श्वनाथ, आदि प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

ओसियाः—

यह ओसवालों की उत्पत्ति का मूल स्थान है। राजा उपलदेव नेइस नगरी को बसाया था। उसका मंत्री उहड़ था। उपलदेव पहले वामवार्गी था परन्तु समर्थ आचार्य रत्नप्रभसूरि के प्रभाव और चमत्कार से प्रभावित होकर यह राजा और यहाँ के नगरनिवासी जैन बन गये थे। उहड ने श्री वीरप्रभु की मूर्त्ति प्रतिष्ठापित करवाई। यह प्राचीन भव्य मन्दिर दर्शनीय है।

सिरोही—

यहाँ तीर्थतुल्य १७ जिनालय हैं। इनमें से १५ मन्दिर तो एक ही पंक्ति में एक ही पाये पर राज महलों के निकट स्थित हैं। एक मन्दिर में राजरानियों के आने का गुप्त मार्ग भी है।

मुख्य मन्दिरों के नामः—

१. आँचलिया आदिश्वरजी का मन्दिर (सं० १३३९ में प्रतिष्ठित)

२. नेमीनाथ जी का मं० छोटा (सं. १७१८)
३. संभवनाथ जी का मं० (सं० १५३२)
४. अजितनाथ जी का बावनजिनालय वाला बड़ा मन्दिर (सं. १५२१ में प्रतिष्ठित एवं १६४४ में पुनरूद्धार)
५. आदिश्वरजी बावन जिनालय वाला बड़ा मन्दिर । सं० १४२४ में प्रतिष्ठा होना कहा जाता है । वह स्थान चमत्कारिक माना जाता है इस मन्दिर की पूजार्थ महाराव शोभा जी ने एक अरघट्ट सं० १४७५ में भेंट किया ।
६. कुन्थुनाथ जी का मन्दिर (सं० ६५३)
७. श्री चौमुखी जी ऋषभदेव जी का मन्दिर । यह मन्दिर जिले भर में सब से बड़ा मन्दिर है जमीन की सतह से १०० फीट ऊँचाई पर स्थित है । सं. १६४४ में श्री हीरविजयसूरि के उपदेश से पोरवाल जातीय श्री सीमा, वीरपाल, महेजल, कपा ने बनावाया ।
८. जीरावला पार्श्वनाथ जी का मन्दिर सं. १६३१ में श्री हीरविजय सूरि द्वारा प्रतिष्ठित । इसके साथ एक भव्य जैनधर्मशाला है जहाँ यात्रियों के ठहरने व भोजन की उत्तम व्यवस्था है । आंबिल शाला भी है ।
९. शहर के बाहर के मन्दिर को थुंब की बाड़ी कहते हैं । सं. १४७५ में राज्य द्वारा जैनियों को दिया गया था । यहाँ यतियों की चरण-पादुकाएँ थीं जिससे यह स्तूप कहलाता था । थुंब शब्द 'स्तूप' का ही बिगड़ा हुआ रूप है । सिरोही से १० मील दूर बामनवाड़जी का भव्य जिनालय राजा सम्प्रति द्वारा निर्मापित है ।

जोधपुर, बीकानेर आदि राज्यों में जैनियों की बस्ती प्रचुर मात्रा में है अतः यहाँ स्थान स्थान पर भव्य जिनालय विद्यमान हैं । मेड़ता के भव्य मन्दिर, गोड़ीपार्श्वनाथ का मन्दिर, जोधपुर नगर के मन्दिर, बीकानेर के ३० जिनमन्दिर और ४-५ ज्ञानभण्डार दर्शनीय हैं । इन रियासतों का कोई भी छोटा से छोटा ग्राम भी ऐसा नहीं है जहाँ भव्य जैनमन्दिर न हो ।

जैसलमेर —

साहित्य के समृद्ध प्राचीनभण्डार, जैनमन्दिरों की भव्य शिल्पकला और पुरातत्त्व की प्रचुर सामग्री की दृष्टि से जैसलमेर का अत्यधिक महत्त्व

है। साहित्य, कला और पुरातत्त्व प्रेमियों के लिए यह तीर्थस्वरूप है। भव्य मन्दिरों के कारण धर्म तीर्थ तो है ही। यहाँ के मन्दिरों की शिल्पकला की शिल्प-विशारदों ने बड़ी प्रशंसा की है। जैसलमेर जैसे दुर्गम स्थान पर बने हुए ये कलापूर्ण भव्य मन्दिर जैनश्रीमन्तों की धर्मपरायणता और शिल्प प्रेम के ज्वलंत उदाहरण हैं। यहाँ के मुख्य २ मन्दिर इस प्रकार हैं:-

(१) पार्श्वनाथ जी का मन्दिर— यह सबसे प्राचीन मन्दिर है। संवत् १२१२ में जैसलमेर की स्थापना हुई। उसके पहले लोद्रवा में भाटी राजपूतों की राजधानी थी। यहाँ जैनियों की बहुत बस्ती थी। रावल भोजदेव के गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसके काका जेसलराज ने महम्मद गोरी से सहायता लेकर लोद्रवा पर आक्रमण किया। इस युद्ध में भोजदेव मारा गया और लोद्रवा नगर भी नष्ट होगया। रावल जैसल ने लोद्रवा से राजधानी हटाकर जेसलमेर नाम का दुर्ग बनवाया और शहर बसाया। लोद्रवा के ध्वंस के पश्चात् जो जैन जैसलमेर आगये वे अपने साथ लोद्रवा की पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी ले आये। सं० १४५९ में जिनराज सूरि के उपदेश से मन्दिर बनना आरम्भ हुआ। सं० १४७३ में जिनचन्द्र सूरि के समय में इसकी प्रतिष्ठा हुई। सेठ जयसिंह नरसिंह रांका ने यह प्रतिष्ठा कराई थी। इस प्रतिमा पर वि० सं० २०० का लेख है। यही जैसलमेर तीर्थ के नायक हैं। बावन जिनालय का भव्य मन्दिर है। इसका दूसरा नाम लक्ष्मण विहार है। इस मन्दिर की कारीगरी अपने ढंग की अद्भुत है।

(२) श्री सम्भवनाथ जी का मन्दिर—इस मन्दिर की प्रतिष्ठा श्री जिनभद्रसूरिजी के हाथों से हुई। इस को चौपड़ा गौत्रीय हेमराज ने बनाया। इस मन्दिर की ३०० मूर्त्तियों की अंजशनशलाका श्री जिनभद्रसूरिजी ने करवाई थी। इस मन्दिर के तलघर में विशाल ताड़पत्रीय पुस्तकभण्डार है। इसमें पीले पाषाण में खुदा हुआ तटपट्टिका का विशाल शिलालेख लगा हुआ।

(३) श्री शान्तिनाथ और अष्टापदजी के मन्दिर—ये दोनों एक ही अहाते में हैं। ऊपर श्री शान्तिनाथ जी का मन्दिर है और नीचे अष्टापद

जी का मन्दिर है। सं० १५३६ में जैसलमेर के संखलेचा खेताजी और चोपड़ा गौत्र के पांचा दो श्रीमन्तों ने उसकी प्रतिष्ठा कराई थी। इस मन्दिर पर की गई अद्भुत शिल्पकला के काम को देखकर जावा के सुप्रसिद्ध बोरोबेडूर नामक स्थान के प्राचीन हिन्दूमन्दिर का स्मरण आता है क्योंकि उक्त मन्दिर के ऊपर का दृश्य और मूर्त्तियों के अनुपात भी प्रायः इसी प्रकार के हैं।

(४) चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर—इसे १५०६ में भणसाली गोत्रीय शाहबीदा ने बनवाकर प्रतिष्ठा कराई। इस मन्दिर की एक कोठरी में बहुत सौ धातुओं की पंचतीर्थी और मूर्त्तियों का संग्रह है।

(५) श्री शीतलनाथजी का मन्दिर—यह डागा गौत्रीय सेठों का सं० १४७६ में बनवाया हुआ है।

(६) श्री ऋषभदेवजी का मन्दिर—चौपड़ा गौत्रीय शाह धन्ना ने बनवार सं० १५३६ में जिनचन्द्रसूरि जी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई। इसका दूसरा नाम गणधर वसही भी है।

(७) महावीर स्वामी का मन्दिर (८) सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर (६) विमलनाथजी का मन्दिर (१०) सेठ थीहरूशाह का मन्दिर और अन्य कतिपय श्रीमानों के बनवाये हुए मन्दिर हैं।

जैसलमेर की विशेष प्रसिद्धि यहाँ के विपुल और समृद्ध प्राचीन ग्रन्थ भण्डारों के कारण है। वहाँ के भण्डार में प्राचीन ताडपत्रीय अनेक ग्रन्थों की प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ बुल्हर, हर्मन, जेकोबी और प्रो. एस. आर. भण्डारकर आदि यहाँ के विपुल संग्रह को देखकर विस्मित हुए और उन्होंने इसकी सूची और विवरण प्रकट किया है। अभी २ मुनि श्री पुण्यविजयजी म० ने इस भण्डार को अत्यन्त परिश्रम के साथ सुव्यवस्थित किया है। अनेक अप्राप्य समझे जाने वाले ग्रन्थों की प्रतियाँ यहाँ उपलब्ध हुई हैं। बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने यहाँ के मंदिरों की प्रशस्तियों और शिलालेखों पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ लिखा है।

लोद्रवा के जैनमन्दिरः—

पार्श्वनाथजी का मन्दिर जो कि लोद्रवा के ध्वंस के समय नष्ट हो

गया था, उसका प्रसिद्ध दानवीर सेठ श्री थीहरुशाह ने पुनः निर्माण करवाया। यह मंदिर अत्यन्त भव्य और उच्च श्रेणी की कला का नमूना है। इस मंदिर में एक शिलालेख में महावीर स्वामी से लेकर देवर्धि गणि-क्षमाश्रमण तक के आचार्यों के उनके चरणसहित नाम खुदे हुए हैं। यहाँ पार्श्वनाथजी की मूर्ति हजार फण वाली है।

अमरसागर का मंदिरः—

अमरसागर जैसलमेर से पाँच मील की दूरी पर है। यहाँ तीन मन्दिर हैं। इनमें से दो बाफणा वंशीय सेठों के बनवाये हुए हैं।

मेवाड़ के जैनतीर्थ

मेवाड़ में जैनियों का आरम्भ से प्रभुत्त्व रहा है। यहाँ के राजवंश के साथ जैनों का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मेवाड़ राज्य के मंत्री प्रायः प्रारम्भ से जैन ही रहे हैं। मेवाड़ के शिशोदिया राजाओं का यह नियम है कि जहाँ जहाँ किला बनाया जाय वहाँ पहले ऋषभदेवजी का मंदिर अवश्य बनावाया जाय। इस नियम का पालन सर्वत्र हुआ है। अतः मेवाड़ में अनेक विशाल मन्दिर और तीर्थ हैं

मेवाड़ के मुख्य तीर्थ इस प्रकार हैः—

केशरियाजी—

मेवाड़ में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। उदयपुर से लगभग ४० मील दूर धुलेवा गाँव में आया हुआ है। यहाँ केशरियानाथजी का मंदिर है। मूलनायक ऋषभदेव जी की मूर्ति है परन्तु केशर बहुत अधिक चढ़ाये जाने के कारण यह केशरियाजी के नाम से दूर २ तक प्रसिद्ध है। इस मूर्ति का पौराणिक इतिहास अत्यन्त प्राचीन है परन्तु धुलेवा के जंगल में से इसकी अभिव्यक्ति लगभग एक हजार वर्ष पहले हुई है। जिस समय सूर्यवंशी राणा मोकलजी चित्तौड़ की गादी पर थे उस समय केसरियाजी तीर्थ स्थापित हुआ ऐसा कहा जाता है। सं १४३१ में इस मंदिर का जीर्णो-

द्धार हुआ। मेवाड़ के दानवीर मंत्री भामाशाह ने केशरियाजी का जीर्णोद्धार सं० १६४३ में कराया। मूल मन्दिर बहुत प्राचीन और भव्य है। महाराणा फतहसिंह जी ने सवालाख रुपये की कीमत की आँगी भगवान को समर्पित की है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराएँ इस तीर्थ का पूजन करती हैं। भारत के कोने २ से हजारों यात्री इस पवित्रतीर्थ की प्रतिवर्ष यात्रा करते हैं। मूर्ति श्याम और चमत्कारी होने से भील लोग भी कालियाबाबा नाम से भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं और केशर चढ़ाते हैं। जैन-जैनेतर सब इस महाप्रभाविक देव की पूजा करते हैं।

सांवरिया तीर्थः—

केशरियाजी से पाँच कोस दूर साँवरिया पार्श्वनाथजी की श्याममूर्ति है। यह मन्दिर पहाड़ पर है।

देलवाड़ाः—

एकलिंगजी से ३-४ मील दूर देलवाड़ा नामक गाँव है। यहाँ अनेक प्राचीन जैनमन्दिर थे। यहाँ से अनेक शिलालेख मिले हैं। अभी यहाँ तीन मन्दिर हैं। सं० १६५४ में जीर्णोद्धार के समय १२४ मूर्त्तियाँ जमीन से निकली थीं।

करेड़ाः—

उदयपुर-चित्तौड़ रेल्वे के करेड़ा स्टेशन से आधा मील दूर सफेद आरस पत्थर का पार्श्वनाथ भगवान् का विशाल मन्दिर दिखाई देता है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। बावन जिनालय के पाट ऊपर का लेख १०३६ का है। इसके अतिरिक्त बारहवीं सदी से १६वीं सदी तक के लेख हैं। महामन्त्री पेथड़कुमार के पुत्र झांझणकुमार ने इस तीर्थ का उद्धार कराया था। समस्त मेवाड़ में ऐसे विशाल और सुन्दर रंगमण्डप वाला दूसरा मन्दिर नहीं है।

दयालशाह का मन्दिरः—

उदयपुर के महाराणा राजसिंह के मन्त्री दयालशाह ने अठारहवीं शताब्दी में एक करोड़ रुपये के खर्च से कांकरोली और राजसागर के बीच राजसागर के पास के पहाड़ पर गगनचुम्बी भव्य जिनालय बंधवाया है। कहा जाता है कि यह पहले नौ मंजिल का था। आज कल दो ही मंजिल

है। इस मन्दिर के ध्वज की छाया बारह मील पर पड़ती थी। इस मन्दिर के पास नवचौकी नाम का स्थान है जिसकी कारीगरी बहुत सुन्दर है। नवचौकी में विस्तृत प्रशस्ति का शिलालेख है।

नागदा--अदबदजीः—

उदयपुर से १४ मील उत्तर में एकलिंगजी के पास पहाड़ों के बीच में यह तीर्थ है। प्राचीनकाल में यह एक बड़ा नगर था जिसका नाम नागह्रद (नागदा) था। यह किसी समय मेवाड़ की राजधानी भी रहा था। एक मील के विस्तार में पाये जाने वाले जैनमन्दिरों के अवशेषों से ही यहाँ कितने अधिक मन्दिर थे, यह अनुमान किया जाता है। अभी शान्तिनाथजी का मन्दिर है।

उदयपुरः—

मेवाड़ की वर्त्तमान राजधानी उदयपुर में ३५-३६ जिनमन्दिर हैं। शीतलनाथ स्वामी का मन्दिर सब से प्राचीन है इसमें मीनाकारी का कार्य दर्शनीय है। वासुदेव भगवान् का काच का मन्दिर भी रमणीय है।

अघाटपुरः—

उदयपुर से १॥ मील दूर अघाटपुर है। यह एक बार मेवाड़ की राजधानी थी। मेवाड़ के महाराणा जैत्रसिंहजी ने जगचन्द्रसूरि को १२८५ में में इसी नगर में 'तपा' की उपाधि दी थी। अघाट में ४ प्राचीन मन्दिर हैं। इनमें एक राजा सम्प्रति के समय का है। ऋषभदेव भगवान् की प्राचीन प्रतिमा है।

चित्तौड़गढ़ः—

विश्वप्रसिद्ध वीरभूमि चित्तौड़गढ़ एक प्राचीन जैनतीर्थ है। प्रसिद्ध विद्वान् समर्थआचार्य हरिभद्र यहीं के निवासी थे। १६३६ में वीसल श्रावक ने प्रतिष्ठा करवाई थी। सं० १४४४ में जिनराजसूरि ने आदिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। १४८६ में सोमसूरिजी ने पंचतीर्थी की प्रतिष्ठा की थी। महाराणा मोकल जी के समय में उनके मुख्य मंत्री शरणपाल ने अनेक जिनमन्दिर बनवाये थे। आजकल तो बहुत से मन्दिर खँडहर हो गये हैं। अभी मुख्य जिनमन्दिर शृंगारचँवरी, शतबीसदेवरी, गोमुखी वाला जिनमन्दिर, महावीर

स्वामी का मन्दिर, कीर्तिस्तम्भ आदि २७ जिनमंदिर हैं। शृंगारचौरी के मंदिर और उसके तलघर में हजारों जिनमूर्त्तियां हैं। शतवीस देवरी का मंदिर उसकी सुन्दर कोरणी के लिए दर्शनीय है। सात मंजिल की कीर्ति स्तम्भ-जिसके नीचे का घेरा ८० फीट है-जैनधर्म के भव्य उत्कर्ष का प्रतीक है। इस कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराने वाला संघवी कुमारपाल नामक एक पोरवाड़ जैनश्रावक था। गोमुख कुण्ड के पास एक जैनमंदिर है जिसमें सुकोशल मुनिराज और व्याघ्री के उपसर्ग का दृश्य आलेखित है। चित्तौड़ में अनेक प्राचीन जैनस्थापत्य, मूर्त्तियाँ और खंडहर उपलब्ध होते हैं जिनसे मेवाड़ में जैनधर्म का प्रमुत्व सिद्ध होता है।

मालवा के तीर्थ

मांडवगढ़:---

भारत की प्राचीन नगरियों में माण्डव का उल्लेखनीय स्थान है। इसका वैभव किसी समय पराकाष्टा पर पहुँचा हुआ था। कहा जाता है कि यहाँ विक्रम और भर्तृहरि की भी सत्ता रही है। मालवपति मुंजराज और विद्याविलासी राजा भोज ने इस मांडवगढ़ पर सत्ता जमाने में अपना गौरव माना था। १४५४ में यह मालवा की राजधानी थी। चौदहवीं शताब्दी तक यह उन्नति के शिखर पर था। उस समय यहाँ दानवीर, धर्मवीर श्रीमन्त जैनों ने सैकड़ों जिनमन्दिर बनवाये थे। यहाँ के महामंत्री पेथड़-शाह ने मांडवगढ़ के तीनसो जिनमन्दिरों का जर्णोद्धार कराया और स्वर्णकलश चढ़ाये। इन मंत्रीश्वर ने विविध स्थानों पर ८४ भव्य जिनमंदिर बंधवाये और अपार द्रव्यराशि यात्रा संघ आदि धर्मकार्यों में लगाई। जांजणकुमार, मण्डन मंत्री, संग्रामसिंह सोनी, धनकुबेर भैंसाशाह, जावड़-शाह, आदि अनेक धनकुबेर, दानवीर, धर्मवीर और सरस्वती पुत्र इस स्थान पर हुए हैं जिनकी कीर्ति जैनसाहित्य में आज तक अमर है।

सोलहवीं सदी के बाद इस का उत्तरोत्तर पतन होता गया और आज तो थोड़े से भीलों के झोपड़ों और पुराने भग्नावशेष मात्र रह गये हैं। किसी समय इस किले में तीनलाख जैन थे और सैकड़ों जिनालय थे, आज तो छोटा सा गाँवड़ा रह गया है। हन्त! कितना बड़ा परिवर्त्तन! इस समय यहाँ

शान्तिनाथ जी का मन्दिर है। यहाँ की अनेक मूर्त्तियाँ अन्यत्र मन्दिरों में भी विराजमान हैं। सं० १८५२ में एक भील को एक मूर्त्ति प्राप्त हुई। धार के महाराजा यशवंतराव पँवार और जैनियों के पता चलने पर वे यहाँ आये और हाथी पर प्रतिमा विराजितकर धार ले जाने लगे परन्तु हाथी दरवाजे के बाहर ही नहीं निकला। आखिर वहीं एक खाली मन्दिर में प्रतिमाजी विराजित की। बाद में मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और १८६६ में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की। सं० १९६४ में पुनः जीर्णोद्धार करते हुए प्रतिमा निकली जिसकी प्रतिष्ठा उत्साह पूर्वक की गई। अब भी यहाँ कई चमत्कार होते हुए सुने जाते हैं। इतिहास प्रसिद्ध रूपमती के महल भी यहीं हैं। यहाँ से चार कोस पर तारापुर में भव्य कलापूर्ण मन्दिर है परन्तु अभी मूर्ति से खाली है।

लक्ष्मणी तीर्थ :—

अलीराजपुर स्टेट का यह छोटासा ग्राम किसी समय सुन्दर जैनतीर्थ था। यहाँ खुदाई करते हुए चवदह जैनमूर्त्तियाँ निकली थीं। एक महावीर प्रभु की प्रतिमा सम्प्रति के समय की प्रतीत होती है और तीन पर सं० १३१० का लेख है।

तानलपुर :—

इसका प्राचीन नाम हुंगियापत्तन है। इसके आसपास प्राचीन मन्दिरों के पत्थर निकलते हैं जो सुन्दर कलापूर्ण और भाववाही होते हैं। यहाँ एक भील के खेत से आदिनाथ जी की तथा दूसरी २५ मूर्त्तियाँ निकलीं जिनकी जिनमन्दिर बनवाकर सं० १९१६ में प्रतिष्ठा की गई है। तेरहवीं, चौदहवीं, पन्द्रवीं सदी की प्रतिमाएँ, धातु की प्रतिमाएँ यहाँ हैं।

मक्षी पार्श्वनाथ :—

उज्जैन से १२ कोस दूर मक्षी ग्राम है। यहाँ पार्श्वनाथजी का विशाल गगनचुम्बी मन्दिर है। मूलनायक पार्श्वनाथजी की श्यामरंग की विशाल प्रतिमा है जो यहाँ के एक तलघर में से निकली थी। जिस समय यह प्रतिमा निकली उस समय हजारों मनुष्य एकत्रित हुए और बाद में लाखों रुपये लगाकर भव्य मन्दिर बनवाया गया है। मूलनायकजी के एक तरफ

वाला जिनमन्दिर बनवा कर शान्तिनाथ भगवान् की खड़ी कार्योत्सर्ग मूर्ति विराजमानकी,यह प्रतिमा अभी यहाँ विराजमान है। अब सुमेरु शिखर के स्थान में चौमुखजी हैं और उस पर शिखर है मन्दिरों में गिरनार, पावापुरी, तारंगा के रंगीन चित्र आलेखित हैं।

अमीझरा तीर्थ– अमीझरा ग्वालियर राज्य का एक जिला है। इसका नाम कुन्दनपुर था यहाँ से कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया था। यहाँ अमका झमका देवी का स्थान है। यहाँ के जिनमन्दिर में पार्श्वनाथ की चमत्कारी मूर्ति है जिसमें से एक बार तीन दिन तक अमृत झरता रहा अतः यह अमी झरा के नाम से प्रसिद्ध है। इस चमत्कार के कारण इस नगर का नाम ही अमीझरा पड़ गया है।

कुण्डलपुर—दमोह स्टेशन से १४ मील पहाड़ी पर भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के मुख्य मन्दिर दर्शनीय हैं। यहां ५२ जैन मंदिर हैं। यहां महावीर स्वामी की मूर्ति १२ फीट ऊंची है। यह मध्यप्रांत में हैं। नीमाड प्रांत में बड़वानी, (चूलगिरी पर बावन राजाजी) बुरहानपुर, खरगोन, सिंगाणा, कुन्नी, बाग पांच पाण्डवों की गुफायें आदि दर्शनीय हैं। इस प्रांत में इस समय कुल १७ जैनमंदिर हैं। बुरहानपुर में सं० १६५३ के पहले लगभग ३०० घर जैनियों के थे। १८ जिनमंदिर थे। मनमोहन पार्श्वनाथ जी का भव्य मंदिर था। १६५३ में बुरहानपुर में भयंकर आग लगी उसमें यह मंदिर जलकर भस्म हो गये। अभी यहाँ एक भव्य जिनमंदिर है।

राजपूताना के अन्य कतिपय दर्शनीय जैनस्थानः

अजमेर स्व० सेठ मूलचन्दजी सोनी द्वारा निर्मापित सुन्दर कलात्मक भव्य मंदिर नशियां जी दर्शनीय है। लाखनकोठरी में संभवनाथजी का बड़ा मंदिर है। गोडी पार्श्वनाथ का भी मंदिर है। यहाँ का प्रसिद्ध ढाई दिन का झोपड़ा एक प्राचीन जैनमंदिर है। इसकी कोरणी जैन मंदिर से मिलती-जुलती है। मुसलमानी काल में यह मस्जिद बना लिया गया है। यहाँ के म्युजियम में बाली ग्राम से मिला हुआ वीर सं० ८४ का सबसे अधिक प्राचीन शिलालेख है। केशरगंज में पल्लीवाल बन्धुओं ने अभी एक मंदिर बनवाया है।

जयपुर :—

यह भारत का पेरिस कहा जाता है। इसकी नवीन बसावट बड़ी रमणीय है। यहाँ वेधशाला है। जैनों के ३०० घर और पचासों श्वेताम्बर-दिगम्बर मन्दिर है। जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी आमेर में चन्द्रप्रभु का मन्दिर है। सांगानेर में दो मन्दिर हैं। यहाँ से पच्चीस मील दूर बर है। यहाँ ऋषभदेव जी का प्राचीन भव्य मन्दिर है। यहाँ से पचास मील दूर अलवर की सीमा से दो मील पर वैराट नगर है। यहाँ हीरविजयसूरि के उपदेश से इन्द्रमलजी ने सुन्दर मन्दिर बँधवाया था जिसका नाम इन्द्रविहार (दूसरा नाम महोदयप्रासाद) था। यह मन्दिर मुसलमानी काल में ध्वस्त हुआ परन्तु इसका शिलालेख मन्दिर की दीवार पर ही लगा रह गया है।

अलवर :—

शहर में सुन्दर जिनमन्दिर है जिसमें प्राचीन प्रतिमाएँ है। इसमें तलघर है जिसमें भी प्रतिमाएँ है। शहर से चार मील दूर पहाड़ी के नीचे 'रावण पार्श्वनाथ' का मन्दिर खँण्डहर रूप में है।

महावीरजी :—

यह तीर्थ जयपुर स्टेट में आया हुआ है। चन्दनगाँव स्टेशन से थोड़ी दूर पर है। यहाँ एक विशाल मन्दिर है जिसमें मूलनायक महावीर भगवान् की तीन फीट की पद्मासनस्थ भव्य प्रतिमा है। इस तीर्थ को जैन-जैनतर सब पूजते हैं। चैत्री पूर्णिमा को यहाँ प्रतिवर्ष मेला भरता है। यह स्थान महान् चमत्कारी और रोग निवारक माना जाता है।

मेवाड़, मालवा, मारवाड़ और राजपूताने में जैनधर्म का अत्यन्त प्रमुत्व रहा है इसलिए यहाँ के प्रायः प्रत्येक ग्राम और नगर में छोटा-बड़ा जैनमन्दिर होता ही है। यहाँ केवल थोड़े से स्थानों का ही उल्लेख किया जा सका है।

मध्यप्रदेश और दक्षिणभारत के तीर्थ

सिरपुर :—(अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ)

बरार प्रान्त में आकोला से ४८ मील दूर सिरपुर नामक ग्राम है। यहाँ

पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा आकाश में अधर रही हुई है अतः यह अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। एलिचपुर के राजा श्रीपाल के शरीर में कुष्ट रोग था वह यहाँ के सरोवर में स्नान करने से दूर हुआ। इस प्रभाव से प्रभावित होकर इसका कारण ढूँढते समय यह प्रतिमाजी प्रकट हुई ऐसा कहा जाता है। राजा इसे अपने नगर ले जा रहा था। पीछे देखने का उसे देवी ने निषेध किया था परन्तु शंका होने से पीछे देखा तो मूर्त्ति वहीं स्थित हो गई राजा ने वहां सिरपुर ग्राम बसाया और मन्दिर बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा की। यह प्रतिमा पहले अधिक ऊँचे आकाश में अधर थी आजकल तो एक अंगुल अधर रही हुई है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में इस तीर्थ के लिए झगड़ा हुआ था। दोनों इसे अपना २ मानते हैं। दोनों पक्ष के अनुयायी इसकी यात्रा करते हैं।

मुक्तागिरिः—

उक्त एलचपुर से १२ मील दूर मुक्तागिरि पहाड़ है। इस पर श्वेत वर्ण जिन मंदिर हैं। इनमें नक्काशी का काम बहुत अच्छा है। इस पर्वत पर से पानी का झरना गिरता है। दृश्य बड़ा मनोहर है। वार्षिक मेला भरता है। पहाड़ पर ४८ मन्दिर हैं जिनमें ८४ मूर्तियाँ हैं। तीर्थ व्यवस्था दिगम्बर बन्धु करते हैं। दक्षिण में यह तीर्थ शत्रुंजय के समान महत्वपूर्ण माना जाता है।

भाण्डुकजीः—

बरार में यह बहुत प्राचीन तीर्थ है। यहां पहले भद्रावती नामक विशाल नगरी थी। खँडहरों से इसकी प्राचीन भव्यता का अनुमान होता है। यहां के कुण्ड और सरोवरों के नाम जैन तीर्थङ्करों के नाम से अद्यावधि प्रसिद्ध है। इस नगरी का प्राचिन इतिहास उपलब्ध हो तो दक्षिण में जैनधर्म के गौरव का एक उज्जवल पृष्ट मिल सकता है। यहाँ केशरिया पार्श्वनाथजी की श्याम फणधारी आकर्षक और चमत्कारी मूर्ति है। कहा जाता है कि अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के मुनीम को स्वप्न आने से यह मूर्ति यहाँ से शोध करते हुए प्राप्त हुई है।

कुम्भोज तीर्थः—

यह तीर्थ कोल्हापुर स्टेट में आया हुआ है पहाड़ी पर जगवल्लभ

पार्श्वनाथजी का भव्य जिनालय है।

सिद्धवरकूट:----

यह जैनियों का बहुत प्राचीन तीर्थ है।

कारंजा:----

यह अमरावती जिले में मूर्तिजापुर स्टेशन से करीब २१ मील के फासले पर प्राचीन तीर्थ है। यहाँ तीन बड़े २ जिनमंदिर हैं। यहां एक मन्दिर में २१ प्रतिमाएँ चांदी की, ४ स्वर्ण की, १ हीरे की, १ मूँगे की, एक पन्ने की; ४ चार गरुड़मणि की कही जाती हैं। यहां ताड़पत्रीय और दूसरे ग्रन्थों के भण्डार हैं।

सिद्धक्षेत्र-द्रोणागिरी:----

सेंदप्पा ग्राम (जिला नया गांव छावनी) में द्रोणागिरी पर्वत है। यहां २४ मंदिर हैं मूलनायक आदिनाथजी हैं।

सिद्धक्षेत्र श्रमणाचल (सोनागिरी):----

जी. आई. पी. रेल्वे के आगरा-झांसी लाइन में सोनागिर स्टेशन है। वहां श्रमणाचल पर्वत हैं। इस पर विशाल मंदिर है। मूलनायक चन्द्रप्रभ हैं। प्रतिभा ७॥ फीट ऊँची मनोज्ञ खड्गासन से विराजमान हैं।

श्री क्षेत्र बाहुरी बंद:----

(श्री शांतिनाथ महाराज) सिहोरा तहसील में सिहोरा स्टेशन रोड से १८ मील पर यह तीर्थ है। यहाँ शान्तिनाथजी की बहुत बड़ी मूर्ति १२ फीट की अतिप्राचीन है।

अमरावती, नागपुर, जब्बलपुर, कटनी, सीवनी, येवतमाल, चांदा, हींगनघाट, वर्धा आदि अनेक स्थानों पर भव्य जिनमन्दिर हैं।

कुलपाक:----

(माणिक स्वामी)—निजाम राज्य में कुलपाक ग्राम में देवविमान के आकार का भव्य शिखर बंध मन्दिर है। इसमें मूर्ति भव्य और श्याम है। आदिनाथ प्रभु की नील रत्नमय—माणक की मूर्ति मूलनायक के रूप में

विराजमान है। यह मूर्ति माणकस्वामी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। मूल-नायकजी के पास में पिरोजी रंग की अलौकिक भव्यमूर्ति है। यह जीवित स्वामी भगवान् महावीर की है। यहां की मूर्तियों में से कोई विचित्र ही ओज प्रतिबिम्बित होता है। इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य है। यहां की मूल प्रतिमा का पौराणिक इतिहास बहुत ही प्राचीन और चमत्कारपूर्ण है। यहाँ की कन्नडी, तेलगू प्रजा इसे बहुमान पूर्वक पूजती है।

बीजापुर—यहां सहस्रफणा पार्श्वनाथ की सुन्दर प्रतिमा तलघर से निकली है।

जालना—यहाँ कुमारपाल के समय का भव्य मन्दिर है।

गंजपंथा:---

नासिक नगर से ५-६ मील पर एक पहाड़ी है। यहां प्राचीन जैन गुफाएँ हैं। यहां से अनेक जीव मुक्त हुए हैं अतः (दिगम्बर) जैन इन्हें पूजनीय मानते हैं।

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र:--

मनमाड़ से ५० मील पर यह सिद्धक्षेत्र है। दो पर्वत साथ जुड़े हुए हैं। दोनों पर गुफाओं में प्राचीन दिगम्बर जैन मूर्तियां हैं। पूना, शोलापुर, कोल्हापुर, सांगली, बेलगांव, अहमदनगर आदि जिलों में अनेक जैन मूर्तियां, मन्दिर और स्थापत्य हैं।

तिरुमलई:---

पोलूर से उत्तरपूर्व ७ मील। यह जैनियों का बहुत प्रसिद्ध पूज्य पर्वत है। पर्वत के ठीक नीचे बहुत प्राचीन मन्दिर और गुफाएँ हैं। एक गुफा में चार फुट ऊँची श्री बाहुबल, नेमिनाथ, और पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है। मंदिरों में नेमीनाथ, बाहर श्री आदिनाथजी की पल्यंकासन मूर्ति है। पर्वत के ऊपर श्री नेमिनाथजी की कायोत्सर्ग मूर्ति १६॥ फुट ऊँची अतिमनोज्ञ हैं।

कारकल:---

यह दिगम्बर जैनों का अत्यन्त प्राचीन तीर्थ स्थान है। यह मूड बिद्री से दस मील है। यहां १८ मन्दिर बने हुए हैं। पर्वत पर बाहुबलि स्वामी की कायोत्सर्गस्थ प्रतिमा ३२ फीट ऊंची अतिमनोज्ञ है। एक मन्दिर के

आगे ३० गज ऊँचा एक मनोज्ञ मानस्तम्भ सुन्दरकारीगरी युक्त विद्यमान है।

मूडबिद्रीः—

(जैनकाशी)—यह प्राचीन जैनराजा चौटर वंश का प्रसिद्ध नगर था। यहाँ १८ मन्दिर हैं। सब से अच्छा चन्द्रनाथ मन्दिर है। पास में कई जैनसाधुओं के समाधि स्थान हैं सात मन्दिरों के सामने के भाग में एक पत्थर का बड़ा ऊँचा स्तम्भ है जिसे मानस्तम्भ कहते हैं। यहाँ पंचधातुओं की बनी हुई प्रतिमाएँ हैं। गुरु बस्ती में पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। इसमें कई मूर्तियाँ हीरा, पन्ना आदि नवरत्नों की है। यहाँ धवल, जयधवल, महाधवलादि प्राचीन दिगम्बरग्रन्थ भंडारों में सुरक्षित हैं। यहाँ जैन ब्राह्मणों की की बस्ती है।

श्रमण बेलगोलाः—

यह दक्षिण भारत का महान् तीर्थस्थान है। मैसूर राज्य के हासन जिले में स्थित है। इस महातीर्थ ने मैसूर को भारत-विख्यात ही नहीं, विश्व विख्यात भी बना दिया है। यहाँ विन्ध्यागिरि और चन्द्रगिरि दो पहाड़ियाँ पास पास हैं। चन्द्रगिरि पर असंख्य साधुओं और श्रावकों ने संलेखना करके समाधि मरण प्राप्त किया है। आज भी कितने ही दिगम्बर साधु अपने जीवन के अन्तिम दिन यहाँ व्यतीत करते हैं यहाँ बहुत से शिलालेख उत्कीर्ण हैं। भद्रबाहु और उनके शिष्य चंद्रगुप्त ने यहीं समाधिमरण प्राप्त किया। दूसरी पहाड़ी विन्ध्यागिरि पर गोमटेश्वरजी की विशालकाय मूर्ति विराजमान है।

यह मूर्त्ति अपनी विशालता और भव्यता के लिए विश्व-प्रसिद्ध है। एक ही पत्थर से निर्मित इतनी सुन्दर और विशाल मूर्त्ति संसार भर में कहीं नहीं है। इसकी ऊँचाई ५७ फीट है। कला की दृष्टि से यह अद्वितीय है। इसके दर्शन करके दर्शकगण हर्ष विभोर हो जाते हैं। अनेक विदेशी कलाप्रेमी यात्री इसके दर्शन के लिए आतेहैं। यह मूर्त्ति गंगवंश के २१ वें राजा राचमल्ल के शासन काल में उनके मंत्री और सेनापति समरधुरन्धर, वीर मार्त्तण्ड चामुण्डराय ने स्थापित की थी। एक हजार वर्ष प्राचीन होने पर भी इसके लावण्य और सौम्य में वही नूतनता विद्यमान है। प्रकृति के आवरण

रहित खुले आंगन में इतने चिरकाल से स्थापित होने पर भी वर्षा, धूप, हवा आदि का इस पर प्रभाव नही पड़ा है। कला और सौन्दर्य, विशालता और भव्यता के लिए यह बेजोड़ मूर्त्ति है। काका कालेलकर इसके सौन्दर्य को देखकर आत्म-विभोर के होगये थे। उन्होंने इसके विषय में गुजराती में लिखा था उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"जब हम बाहुबलि के दर्शन के लिए गये तब हम ने शास्त्र की मर्यादा ध्यान में रख कर आपाद-मस्तक घूम २ कर दर्शन किया। ....मूर्त्ति के दोनों ओर दो वल्मीक बने हुए हैं। मेरा ध्यान वल्मीक से निकलते हुए बड़े २ सर्पों की ओर गया। कारुण्यमूर्ति, अहिंसाधर्मी बाहुबलि के नीचे स्थान मिलने से ये महाव्याल भी बिल्कुल अहिंसक हो गये हैं और अपने फण फैला कर मानों दुनिया को अभय वचन दे रहे हैं। नजर कुछ आगे बढ़ी तो दोनों ओर से दो माधवी लताएँ महापराक्रमी बाहुबलि का आधार लेकर अपना उन्नतिक्रम सिद्ध करती हुई दिखाई दीं। .... बाहुबलि बाहुबली हैं फिर उनका शरीर मल्ल जैसा नहीं दिखाया गया। उनकी कमर में दृढ़ता है, छाती विशाल है, स्कन्ध दृढ़ हैं। सारा शरीर भरावदार, यौवनपूर्ण, नाजुक और क्रान्तिमान है। एक ही पत्थर से निर्मित इतनी सुन्दर मूर्त्ति संसार में और कहीं नहीं। इतनी बड़ी मूर्त्ति इतनी अधिक स्निग्ध है कि भक्ति के साथ कुछ प्रेम की भी अधिकारिणी है। नीचे उतरने पर कान-शरीर-रचना के प्रमाण को सिद्ध नहीं करते पर मूर्त्ति की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं। मुझे तो इस मूर्त्ति की आंखे, ओष्ठ ठुड्डी, भौंह ओष्ठ पर का कारुण्य सभी असाधारण दिखाई देते है। आकाश के नक्षत्रवृन्द जैसे लाखों वर्ष पर्यन्त टिमटिमाते रहने पर भी वैसे के वैसे ताजे, द्युतिमान और सुभग हैं उसी तरह धूप, हवा और पानी के प्रभाव से पीछे की ओर ऊपर की पपड़ी खिर पड़ने पर भी इस मूर्त्ति का लावण्य खण्डित नहीं हुआ"।

बेलूर और हलेबीड़— के मन्दिर द्राविड़ और चालुक्य कला के अनुपम रत्न हैं। स्मिथ का कहना है कि-ये मन्दिर धर्मशील मानव जाति के श्रम का आश्चर्य जनक नमूना है। इनके कलाकौशल को देखकर नेत्र तृप्त नहीं होते।

उत्तर-पूर्व प्रदेश के जैनतीर्थ

बनारसः—

यह देवाधिदेव सप्तम तीर्थङ्कर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् और तेवीसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ जी के चार-चार कल्याणकों की पवित्र भूमि होने से परम तीर्थरूप है। यहाँ अभी ६ श्वेताम्बर जिनालय हैं और अनेक दिगम्बर मंदिर भी हैं। इसके भेलुपुर उपनगर में पार्श्वनाथ के ४ कल्याणक हुए हैं। यहाँ पार्श्वप्रभु का सुन्दर मंदिर है। भदैनी में गंगा के किनारे बच्छराज घाट पर सुन्दर मन्दिर है। यह श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु का च्यवन और जन्म-स्थान माना जाता है।

सिंहपुरी—बनारस से चार मील दूर सिंहपुरी तीर्थ है। यहां श्री श्रेयांसनाथ प्रभु के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं। इस स्थान पर अभी हीरापुर ग्राम है। यहां से एक मील पर श्वेताम्बर मंदिर है जिसमें श्रेयांसनाथ प्रभु की मूर्ति विराजमान है। इसके सामने ही समवसरण के आकार का एक मन्दिर है जो केवलज्ञान कल्याणक का सूचक है। यहां बौद्धों का प्रसिद्ध सरनाथ स्तूप है।

चन्द्रपुरी—सिंहपुरी से ४ कोस चन्द्रपुरी है जो चंद्रप्रभु के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवल कल्याणक की भूमि है गंगा के किनारे टीले पर जिनमन्दिर है।

अयोध्याः—इसका प्राचीन नाम विनितानगरी है। यह भगवान् ऋषभदेव के च्यवन, जन्म और दीक्षा कल्याणक की भूमि है। अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ तीर्थङ्कर के चार-चार कल्याणक की पवित्रभूमि है। आजकल कटरा मोहल्ला में जैनमंदिर है।

केदारः—हिमालय के शिखरों में केदारपार्श्वनाथ, बद्रीपार्श्वनाथ, मानसरोवर विमलनाथ आदि तीर्थ थे परन्तु शंकराचार्य के समय से वेदानुयायियों के अधिकार में है। कहा जाता है कि मूल गादी पर आज भी तीर्थङ्कर की मूर्त्तियां हैं।

श्रावस्ती:—फौजाबाद से ६० कोस उत्तर में, बलरामपुर से ७ कोस जंगल में १ मील के विस्तार वाले सेतमहेत के किले के बीच में अनोका ग्राम में संभवनाथ भगवान् के ४ कल्याणक का तीर्थ है। यह विच्छेद तीर्थहै।

रत्नपुरी:—फैजाबाद जंकशन से ५ कोस सोहावल स्टेशन से १ मील उत्तर में नोराई गांव है यहाँ धर्मनाथ भगवान के ४ कल्याणक का तीर्थ है। यहां दो जिनालय हैं।

कम्पिला:—फरुकाबाद के बी. बी. मीटरगेज में कायमगंज स्टेशन है। यहां से ६ मील पर कंपिला तीर्थ है। यहां विमलनाथ भगवान् के ४ कल्याणक हुए हैं।

शौरिपुर:—यह नेमिनाथ भगवान् की जन्मभूमि है। आगरा से ८ मील पूर्व में बटेश्वरग्राम है। यहां से दो मील दूर यमुना के किनारे शौरिपुर तीर्थ है। टेकरी पर मंदिर है। यहां पहले सात जिनालय थे।

मथुरा:—यह कल्पद्रुमपार्श्वनाथ, नेमिनाथ तथा वीरप्रभु का तीर्थ है। जम्बूस्वामि की निर्वाणभूमि है। राजमती की जन्मभूमि है। यहां कंकाली टीला है जहां से विपुल पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुई है। जैनस्तूप और जैनमूर्तियां यहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुए हैं।

हस्तिनापुर:—यह शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ तीर्थङ्कर के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवल कल्याणक की पवित्रभूमि है। यहां से मील पर ऋषभदेव की पादुका कही जाती है। वहां भगवान के वार्षिक तप का पारणा हुआ होगा। अभी एक जिनालय है।

प्रयाग:—

यह ऋषभदेव भगवान् की केवल कल्याणक भूमि है। इसका प्राचीन नाम "पुरिमताल पाटक" है। यहाँ अक्षय वट के नीचे जिनपादुका थी जिसे १६४८ में उत्थापित कर शिवलिंग की स्थापना कर दी गई थी। अभी वट के नीचे शिलालेख रहित पादुका है। कहा नहीं जा सकता है कि यह किसकी है। यहाँ एक जिनालय है परन्तु उसमें मूर्त्ति नहीं है।

कोशाम्बी:—

भरवारी स्टेशन से २० मील पर यमुना के किनारे कोसम इनाम

तथा कोसमखिराज गाँव हैं। पास में जंगल में पर्वत पर पद्मप्रभु के कल्याणक का तीर्थ है। पहले यहां पद्मप्रभु का मन्दिर था। अभी विच्छेद तीर्थ है।

भद्दिलपुरः—

गया जंकशन से १२ मील हटवारिया ग्राम है, उसके पास कोलवा पहाड़ पर शीतलनाथ भगवान् के ४ कल्याणकों का तीर्थ है। यह भी विच्छेद तीर्थ है।

मिथिला :—

यह मल्लिनाथ भगवान् तथा नमिनाथ भगवान् के आठ कल्याणक का तीर्थ है। यहाँ मन्दिर था जो अब जैनेतरों के अधिकार में है। पादुकाएँ भागलपुर मंदिर में लेजाई गई हैं।

पटनाः—

मगधसम्राट् श्रेणिक के पौत्र उदाई ने यह नगर बसाया था। प्राचीन काल में यहाँ विशाल जैनपुरी थी। उदाई से लेकर सम्राट् सम्प्रति तक यह मुख्य राजधानी रही है। यहाँ सुदर्शन सेठ की प्रसिद्ध पादुका तथा स्थूलिभद्र की पादुकाएँ हैं। चौक बाजार में दो जिनालय हैं।

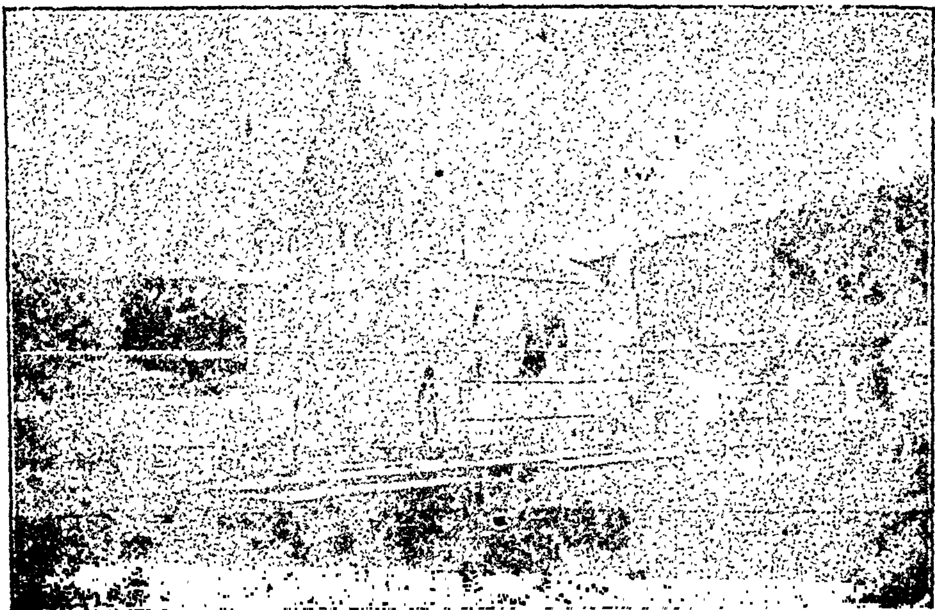
पावांपुरीः—

यह भगवान् महावीर की निर्वाण भूमि होने से परमपावन तीर्थ-भूमि है। भगवान् महावीर ने सर्वप्रथम देशना भी यहीं प्रदान की थी और अन्तिम देशना भी यहीं दी थी। प्रभुमहावीर के सत्य और अहिंसा का दिव्य संदेश मानवजाति को सर्वप्रथम यहीं प्राप्त हुआ था। भगवान् का निर्वाण हो जाने पर जहां उनका दाह संस्कार किया गया वहां उनके भ्राता राजा नन्दिवर्धन ने सुन्दर सरोवर बनवाकर उसके बीच में मनोहर जिनमन्दिर बँधवाया, ऐसा कहा जाता है यह जलमंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। मंदिर में जाने के लिए पत्थर की पाल बँधी हुई है। यह परम शांति का धाम है। इस जलमंदिर का दृश्य बड़ा सुहावना है। स्व० महामना मालवीय जी ने इस जलमंदिर का दर्शन करते हुए कहा था कि "यह मंदिर आत्मा की अपूर्व शांति का धाम है।"

ग्राम मंदिर में भगवान् महावीर की प्राचीन सुन्दर मूर्त्ति विराजमान है। आसपास ऋषभदेव, चंद्रप्रभ, सुविधानाथ और नेमिनाथ भगवान् की मूर्त्तियां हैं। यहां भगवान् की अतिप्राचीन पादुकाएँ हैं। यहां देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की मनोहर मूर्त्ति भी है। ग्राम मंदिर से थोड़ी दूर पर एक खेत में स्तूप है। पहले यहां समवसरण मंदिर था ऐसा अनुमान किया जाता है। प्रभु की अंतिम देशना यहीं हुई होगी।

राजगृह—यह नगर बहुत प्राचीन है। बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत-स्वामी के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवल कल्याणक यहीं हुए हैं। तीन हजार वर्ष पहले का इसका इतिहास जैनग्रन्थों में उपलब्ध होता है। राजा प्रसेनजित और श्रेणिक की राजधानी यही नगर था। भगवान् महावीर यहां अनेकों बार पधारे। राजगृही के नालंदा पाड़ा (मुहल्ला) में भगवान् ने चवदह चातुर्मास किये थे। यहां के गुणशील उद्यान में भगवान् की कई धर्म-देशनायें हुई हैं। भगवान् के ग्यारह गणधर यहीं पहाड़ों पर निर्वाण प्राप्त हुए हैं। जैनों के लिए यह स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। यहां दो जिन-मंदिर हैं। यहां से विपुलगिरि और वैभारगिरि की यात्रा की जाती है। ये पाँचों पहाड़ गोलाकृति में हैं। (१) विपुलाचल—यहां गर्म पानी के पांच कुण्ड हैं। यहां छोटी २ देवकुलिकायें हैं। एक में अतिमुक्तक कुमार की पादुका है। एक में वीरप्रभु के चरण हैं। उत्तराभिमुख मुनिसुव्रत स्वामी का मंदिर, चंद्रप्रभ स्वामी का मंदिर समवसरण की रचना वाला वीरप्रभु और ऋषभदेवजी के मंदिर हैं। (२) रत्नगिरि—यहां उत्तराभिमुख शांतिनाथजी का मंदिर है। बीच के स्तूप के गोखडों में शांतिनाथ, पार्श्व-नाथ, वासुपूज्य तथा नेमिनाथ भगवान् के चरण हैं। (३) उदयगिरि—पूर्वाभिमुख किले में पश्चिमाभिमुख मंदिर है जिसमें मूलनायक सांवलिया पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है। दाईं ओर पार्श्वनाथ तथा बाईं ओर मुनिसुव्रत-स्वामी की पादुकायें हैं। पास में ४ देवकुलिकायें हैं जिनमें चरण पादुकायें हैं। (४) स्वर्णगिरि—यहाँ पूर्वाभिमुख ऋषभदेवजी का मंदिर है।

(५) वैभारगिरि—इसकी ५ टुंक हैं। प्रथम टुंक पर पूर्वाभिमुख मन्दिर में जिनमूर्ति है। दोनों तरफ नेमिनाथ और शान्तिनाथ भगवान् की



श्री क्षत्रियकुंड-वीर मन्दिर



चितौड़गढ़ (मेवाड़) के किले में जीर्ण अवस्था में स्थित (महाराणा मोकलसिंहजी के समय में प्रधान सरणपालजी द्वारा निर्मापित) भव्य जिनालय

पादुकाएँ हैं। दूसरी टुंक पर उत्तराभिमुख मन्दिर में धन्ना शालिभद्र की मूर्ति आदि हैं। तीसरी टुंक पर शान्तिनाथ भगवान् के चरण हैं तथा चतुष्कोण नेमिनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और आदिनाथ के चरण हैं। चौथी टुंक पर मुनिसुव्रतस्वामी का विशालमन्दिर और भव्य प्रतिमा है। मन्दिर के पूर्व में जगत् सेठ का मन्दिर है। मन्दिर के नीचे दो गुफाएँ हैं। पांचवीं टुंक पर उत्तराभिमुख गौतमस्वामी का मन्दिर है। जहाँ ११ सिद्ध गणधरों की पादुकाएँ हैं। यहाँ शलिभद्र कुई, निर्माल्य कुई, वीरपौशाल, नन्दन मणिहार की वावड़ी, रोहिणेय चौर की गुफा, श्रेणिक का स्वर्णभण्डार, पाली लिपि का लेख आदि दर्शनीय हैं। राजगृही का प्राचीन नालन्दा पाड़ा ही प्रख्यात नालन्दा है जहाँ बौद्धों का विद्यापीठ था। खुदाई करते हुए यह अभी जमीन से प्रकट हुआ है।

काकंदी :—

लखीसराय स्टेशन से जम्बुई जाते हुए मार्ग में १२ मील पर काकंदी है। यहां सुविधिनाथ भगवान् के ५ कल्याणक का तीर्थ है।

क्षत्रिय कुण्ड :—

लखीसराय स्टेशन से नैऋत्य दक्षिण में १८ मील, सिकन्द्रा से दक्षिण में दो मील, नवादा से पूर्व में ३४ मील और जम्बुई से पश्चिम में १३ मील पर नदी के किनारे लछवाड (लिच्छवी राजाओं की भूमि) ग्राम है, यहाँ धर्मशाला और वीर जिनालय है। लिछवाड से ३ मील दक्षिण में नदी के किनारे कुण्डघाट (ज्ञातखण्ड वन) है, यह महावीर भगवान् की दीक्षा भूमि है। यहां दो मन्दिर हैं। यहां से ३ मील पर जन्मस्थान नामक भूमि आती है यही क्षत्रियकुण्ड है। जन्मस्थान के नाम से यह प्रसिद्ध है। यह भगवान् महावीर का जन्मतीर्थ है। यहां भव्य मन्दिर है।

ऋजुवालुका :—

गिरड़ी स्टेशन से आठ मील पर आकर गांव है। वहां ऋजुवालिका नदी के किनारे भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ था अतः तीर्थभूमि है। मन्दिर में ४ पादुकाएँ हैं।

चम्पापुरी :—

भागलपुर से दो कोस दूर नदी के किनारे चंपानाला है। यहीं चम्पापुरी है। यहां वासुपूज्य भगवान् के ५ कल्याणक हुए हैं। यहां वीर भगवान् ने ३ चातुर्मास किये। कामदेव श्रावक यहीं हुए हैं। शय्यंभवसूरि ने यहीं दशवैकालिक की रचना की थी। इस नगरी का विस्तार मन्दारगिरी तक था। मन्दारहिल पर वासुपूज्य जी की निर्वाण पादुका है।

मधुवन—

आकर गांव से ८ मील पर मधुवन ग्राम है। यहां १३ मन्दिर हैं। यहां से सम्मेतशिखर पहाड़ पर चढ़ा जाता है।

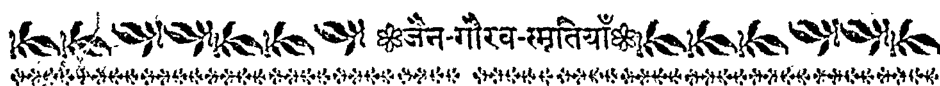
सम्मेतशिखर:—

जैनियों का यह परम माननीय तीर्थधाम है यहां से बीस तीर्थङ्कर निर्वाण पधारे हैं। इस भूमि में कोई विशेषता अवश्य होनी चाहिए जिससे एक नहीं, बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि होने का इसे सद्भाग्य प्राप्त हुआ है।

मधुवन (पोस्ट-पारस नाथ) से एक फर्लाङ्ग की दूरी से शिखर जी के पहाड़ का चढ़ाव शुरु हो जाता है। इस पहाड़ को आजकल पार्श्वनाथ हिल कहते हैं। समस्त बंगाल में यह अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है। बंगाली जनता भी इसके प्रति अति श्रद्धाशील है।

पहाड़ का चढ़ाव ६ मील है। ३ मील चढ़ने पर गन्धर्व नाला आता है। यहाँ से आधे मील की दूरी पर शीत (सीता) नाला है। यहां का जल मीठा और पाचक है। यहां से २॥ मील आगे चढ़ने पर प्रथम गणधर देवकुलिका के दर्शन होते हैं। यहां चौबीस गणधरों के चरणचिन्ह हैं। इसे गौतमस्वामी का मन्दिर कहते हैं। यहां से चंद्रप्रभु की टुंक, मेघाडम्बर की टुंक तथा जलमन्दिर की ओर जाने के मार्ग फूटते हैं।

पहाड़पर कुल ३? मन्दिर हैं। इनमें चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस मंदिर, शाश्वत जिनके ४ मंदिर, गौतमादि गणधर की १ देवकुलिका, शुभस्वामी की



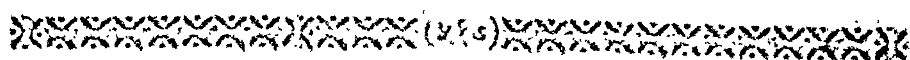
एक देवकुलिका और एक जलमन्दिर है। जल मन्दिर के पास एक सुन्दर झरना है। सारे पहाड़ के मन्दिरों में से केवल जलमन्दिर में ही मूर्त्तियाँ हैं; शेष में चरण चिन्ह हैं। जलमन्दिर में मूलनायक पार्श्वनाथप्रभु की चमत्कारी प्रतिमा है। मन्दिर बहुत भव्य और रमणीय है। जलमन्दिर के सामने ही शुभगणधर की देवकुलिका है। जलमन्दिर से १॥ मील दूर मेघाडम्बर टुंक पर पार्श्वनाथप्रभु की सुन्दर देवकुलिका है इसे पार्श्वनाथ की टुंक कहते हैं। यह पार्श्व प्रभु का मन्दिर ही पहाड़ की सर्वोच्च चोटी पर है। ऊपर जाने के लिए ८० सीढियाँ चढ़नी पड़ती हैं। शिखरजी का पहाड़ वैसे ही उन्नत है और उस पर यह तो सर्वोच्च शिखर है। इस पर रहा हुआ गगनचुम्बी श्वेत मन्दिर-शिखर बड़ा ही रमणीय प्रतीत होता है। यहाँ से चारों तरफ का दृश्य बड़ा ही सुहावना प्रतीत होता है।

सम्राट् अकबर ने इस पहाड़ को कर मुक्तकर हीरविजयसूरि को अर्पण किया था। इसके बाद अहमदशाह ने सन् १७५२ में जगत् सेठ महेताबराय को भेंट किया था। अभी यह पहाड़ सेठ लालभाई दलपतभाई ने खरीद कर आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी को दे दिया है।

इस महान् तीर्थराज का सकल जैनसमाज में बहुत अधिक महत्त्व है। हजारों यात्री इसके दर्शन कर अपने जीवन को धन्य मानते हैं। बीस तीर्थङ्करों और अनेक स्थविर महात्माओं की इस निर्वाण भूमि के कण-कण में शान्ति और पवित्रता ओतप्रोत है।

प्राचीन जैन-स्मारक

पुरातत्त्व और इतिहास के क्षेत्र में प्राचीन स्मारकों का अत्यधिक महत्त्व होता है। किसी भी संस्कृति के विकास और इतिहास का वास्तविक-ज्ञान प्राप्त करने के लिए ये बड़े उपयोगी होते हैं। प्राचीन स्मारकों के द्वारा ही संस्कृति के विविध पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। जैन स्मारकों का महत्व जैनसंस्कृति की दृष्टि से तो है ही परन्तु भारतीयसंस्कृति की दृष्टि से भी बौद्ध और हिन्दु स्मारकों से किसी तरह कम नहीं है। स्तूप, स्तम्भ, मूर्ति, शिलालेख, आयागपट्ट, मंदिर, गुफाएं-इत्यादि रूप में जो जैन स्मारक उपलब्ध हो रहे हैं वे इतिहास के विविध नए पर्दों को खोलने वाले हैं।



यह बात अवश्य है कि पश्चिमी विद्वानों ने वैदिक और बौद्ध धर्मों के स्मारकों और साहित्य के सम्बन्ध में विशेष लक्ष्य दिया है और जैनधर्म के प्रति उपेक्षा की है जिससे जैन स्मारक विशेष प्रकाश में नहीं आ सके। परन्तु गत अर्ध-शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इस सम्बन्ध मे छानबान कर अनेक नवीन रहस्यों का उद्घाटन किया है। ये स्मारक जैनधर्म की प्राचीनता, भव्यसमृद्धि एवँ उज्ज्वल अतीत के परिचायक होने के साथ ही साथ भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, स्थापत्य और शिल्प के श्रेष्ठ प्रतीक हैं।

स्तूप

स्तूपः—कुछ वर्षों पहले पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों की यह धारणा थी कि स्तूप मात्र बौद्धों के ही हैं। इस धारणा के कारण उन्होंने जैनलक्षणों से युक्त स्तूपों को भी बौद्ध मान लिये। परन्तु आधुनिक शोधखोज से यह धारणा मिथ्या सिद्ध हो चुकी है। मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई से प्राप्त होने वाले देवनिर्मित बोद्ध स्तूप सम्बन्धी शिलालेख से यह भ्रम सर्वथा दूर हो चुका है। डॉ. फ्लट ने लिखा है कि

The prejudice that all stupas and stone railings must necessarily be Buddhist, has probably prevented the recognition of jain structures as such and upto the present only two undoudted stupas have been recorded.

अर्थात् समस्त स्तूप और स्तम्भ अवश्य बौद्ध होने चाहिए इस पक्षपात ने जैनियों द्वारा निर्मापित स्तूपों को जैनों के नाम से प्रसिद्ध होने से रोका। इसलिये अबतक निस्संदेह रूप से केवल दो ही जैनस्तूपों का उल्लेख किया जा सका है (परन्तु मथुरा के स्तूप ने निस्संदेह उनके भ्रम को दूर कर दिया है।)

स्मिथ साहब ने लिखा है कि:—In some cases monuments which are really Jain, have been erroneously described as Buddhist. अर्थात्–कई बार यथार्थतः जैन-स्मारक गलती से बौद्ध स्मारक मान लिये गये हैं।

तात्पर्य यह है कि जैनों के द्वारा बनाये गये स्तूप बौद्ध स्तूपों से भी प्राचीन हैं। देवनिर्मित बोद्ध स्तूप का उल्लेख कंकाली टीले से उपलब्ध शिला-

पट्ट में होने से अब यह प्रमाणित हो गया है कि बौद्धस्तूपों के बनने के कई शताब्दी पूर्व जैनस्तूपों का निर्माण हो चुका था। बुल्हर स्मिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी यह स्वीकार कर लिया है। यहाँ कतिपय प्रसिद्ध स्तूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है:—

(१) मथुरा का देवनिर्मित वोद्व स्तूप :—

सन् १८९० में लखनऊ संग्रहालय के क्यूरेटर डॉ. फ्यूहरर को मथुरा के प्रसिद्ध कंकाली टीले की खुदाई करवाते समय जैनकला की विविध वस्तुओं के साथ एक अभिलिखित शिलापट्ट प्राप्त हुआ। यद्यपि दुर्भाग्य से यह शिलापट्ट भग्नावस्था में मिला है तथापि जो अंश प्राप्त हुआ है वह सारे भारत में जैनधर्म एवं कला की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए महत्त्वपूर्ण अवशेष है। इस शिलाखण्ड पर ब्राह्मी लिपि में एक अभिलेख उत्कीर्ण है जिससे पता चलता है कि शक संवत् ७९ (= १५७ ई.) में भगवान् अर्हत् की प्रतिमा देवताओं के द्वारा निर्मित 'वोद्व' नामक स्तूप में प्रतिष्ठापित की गई। यह स्तूप मथुरा के दक्षिण पश्चिम में वर्त्तमान में कंकाली नामक टीले पर वर्त्तमान था। ईसा की द्वितीय शताब्दी मे इस स्तूप का आकार प्रकार ऐसा भव्य तथा उसकी कला इतनी अनुपम थी कि मथुरा के इस स्वर्णकाल के कलामर्मज्ञों को भी उसे देखकर चकित हो जाना पड़ा था। उन्होंने अनुमान किया कि यह स्तूप संसार के किसी प्राणी की कृति न होकर देवों की रचना होगी। अतः उन्होंने इसे 'देवनिर्मित स्तूप' की संज्ञा दी।

व्यवहार भाष्य और विविध तीर्थकल्प में इस देवनिर्मित स्तूप के विषय में अनुश्रुतियां मिलती हैं। तीर्थकल्प में लिखा गया है कि "यह स्तूप पहले स्वर्ण का था और उस पर अनेक मूल्यवान पत्थर जड़े हुए थे। इस स्तूप को कुबेरा देवी ने सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के सम्मान में स्थापित किया था। तेइसवें जिनपार्श्वनाथ के समय में इस स्वर्ण स्तूप को चारों ओर ईंटों से आवेष्टित किया गया और उसके बाहर एक पाषाण मन्दिर का निर्माण किया गया। "तीर्थकल्प से यह भी पता चलता है कि महावीर की ज्ञान-प्राप्ति के १३०० वर्ष बाद मथुरा के इस स्तूप की मरम्मत बप्पभट्टसूरि ने करवाई।" दसवीं ग्यारहवीं सदी के लेखों से पता चलता है कि कम से कम १०७७ ई० में कंकाली टीले पर जैनस्तूप तथा मन्दिर बने हुए थे।

(२) मथुरा का सिंहस्तूप :—

जिसे 'लॉयन केपिटल पीलर' कहा जाताहै। पहले तो बौद्ध मान लिया गया था परन्तु बाद के अन्वेषण से विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि यह एक जैनस्तूप है।

(३) साँचीपुर स्तूप :—

"यह स्थान अवन्ति प्रान्त में आया हुआ है। यह प्रान्त दो विभागों में विभाजित था। पूर्वावन्ति और पश्चिमावन्ति। पश्चिम की राजधानी उज्जैन थी और पूर्व की राजधानी विदिशा नगरी के पास ही साँचीपुरी आगई है। वहाँ पर जैनों के ६०-६२ स्तूप हैं। जिनमें बड़े से बड़ा स्तूप ८० फीट लम्बा और ७० फीट चौड़ा है।" (मुनि ज्ञानसुन्दरजी)

(४) भरहुत स्तूप :—

यह स्तूप अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी के पास खड़ा है। इस समय चम्पा के स्थान पर भरहुत नामका छोटा सा ग्राम रह गया है। इस कारण से यह भारहुत स्तूप कहा जाता है। चम्पानगरी के साथ जैनों का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। यह वासुपूज्यस्वामी के कल्याणकों की भूमि तथा भ० महावीर के केवल कल्याण की भूमि होने से तीर्थरूप है। बौद्धों का इस नगरी के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं रहा है अतः यहाँ का स्तूप जैन ही सिद्ध होता है। (मुनि ज्ञान सुन्दर)

(५) अमरावती स्तूपः—यह स्तूप बड़ा विशाल है। यह दक्षिण भारत में है। महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल ने अपनी दक्षिण-विजय की स्मृति में अड़तीसलक्ष द्रव्य व्यय करके विजयमहाचैत्य बनवाया था। इसका उल्लेख सम्राट् के खुदाये हुए शिलालेख में है जो उड़ीसा की खण्डगिरी पहाड़ी की हाथीगुफा से प्राप्त हुआ है। सम्राट् खारवेल जैन थे अतः उनका बनवाया हुआ यह स्तूप अन्य धर्म का नहीं हो सकता है।

—(मु. ज्ञानसुन्दरजी)

जैनअनुश्रुति के अनुसार कोटिकापुर में जम्बूस्वामी का स्तूप था। राजावली कथा में इसका उल्लेख है। तित्थोगाली पइण्णय में इस बात का प्रमाण मिलता है कि किसी समय पाटलिपुत्र जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र था; नन्दों ने यहां पर पाँच जैनस्तूप बनवाये थे जिन्हें कल्कि नामक एक दुष्ट

राजा ने धन की खोज में खुदवा डाला था। जैनस्तूप अथवा जैनाचार्यों की समाधियों का उल्लेख "निसिदिया" शब्द से हाथीगुफा वाले लेख में भी मिलता है। तक्षशिला भी जैनसम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र था। प्राचीन टीका साहित्य में इसे धर्मचक्रभूमि' कहा गया है। तक्षशिला का तीन भिन्न २ स्थानों पर शिलान्यास हुआ है यह सिद्ध है। सिरकपनगर (तक्षशिला) की खुदाई से जैनमन्दिर और चैत्य के भाग्नावशेष मिले हैं जो बनावट में मथुरा के अर्धचित्रों में अंकित जैनस्तूपों से बहुत मिलती जुलती है इससे वहाँ जैनों का अस्तित्व रहा होगा यह प्रतीत होता है। कनिष्क के समय में पेशावर में भी एक जैनस्तूप था।

गुफाएँ:—धर्मप्राण भारतवर्ष में ऋषि-मुनी और सन्तगण एकान्त शान्त भूमियों में रह कर आत्म-साधना करते आये हैं। पहाड़ों की नीरव कन्दराओं में उन्हें अलौकिक शान्ति का अनुभव हुआ करता था। अतः भारत के तीनों प्राचीन धर्मों के मुनि वनों में, गुफाओं में और निर्जन प्रदेशों में साधना किया करते थे। तत् तत् धर्मी राजाओं ने अपने २ संत मुनियों के लिये पहाड़ों के नीरव प्रदेशों में गुफाओं का निर्माण कराया था। ये गुफाएँ चित्रकला, स्थापत्यकला, मूर्तिकला, और इतिहास की विविध वातों पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। पुरातत्त्व और इतिहास प्रेमियों के लिये ये प्रचुर सामग्री उपस्थित करती हैं। अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यहाँ कतिपय मुख्य २ जैन गुफाओं का दिग्सूचन किया जाता है:—

(१) उड़ीसा प्रान्त की खण्डगिरी अपरनाम उदयगिरि पर अनेक जैनगुफाएँ हैं, जो महामेघवाहन कलिंगचक्रवर्ती सम्राट् खारवेल ने बनवाई हैं। यहाँ की हाथीगुफा से एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे खारवेल के जैन होने के और उसके किये हुए अनेक कृत्यों पर प्रकाश पड़ता है। इससे तत्कालीन अनेक ऐतिहासिक तत्त्वों का परिचय मिलता है।

(२) बिहार प्रदेश में बराबरा पहाड़ की कन्दराओं में जो नागार्जुन के नाम से प्रसिद्ध हैं कतिपय जैनगुफाएँ हैं। वहाँ जैनश्रमण रहा करते थे। इनका विस्तृत वर्णन जैनसत्यप्रकाश मासिक पत्र के वर्ष ३ अंक ३-४-५ में किया गया है। विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

(३) पाँच पाण्डवों की गुफाएँ—मालव प्रदेश में ये गुफाएँ आई हुई हैं। इनमें शिल्प और चित्रकला का बहुत सुन्दर काम किया हुआ है।

(४) गिरनार पर रथनेमि की गुफा आदि अनेक गुफाएँ हैं।

(५) अजन्ता की गुफाएँ:—यहां की गुफाएँ विश्वविख्यात हैं। ईसवी सन् पूर्व की गुफाएँ भी यहां हैं। यहाँ की शिल्पकला और चित्रकला अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ की गुफाएँ अधिकतर बौद्ध हैं। यहाँ जैनमन्दिर भी थे जो अभी जीर्ण-शीर्ण दशा में है। इनमें से एक का चित्र १८८६ में आर्चिटेक्चर एट अहमदावाद में प्रकट हुआ था। इस मंदिर का शिखर नष्ट हो गया है परन्तु इसके अति विशालमण्डप को देखते हुए वह वहुत उन्नत और पिरामिड के आकार का होना चाहिए। मण्डप के स्तम्भ और उसकी कारीगरी अतिशय सुन्दर है।

(६) अंकाई की गुफाएँ:—यह स्थान येवला तालुका में है। यहाँ दो पहाड़ियाँ साथ मिली हुई हैं। भूमि से ३१४२ फीट ऊँची हैं। अंकाई की दक्षिण दिशा में जैनों की ७ गुफायें हैं, जिनमें कोरणी का कार्य अत्यन्त सुन्दर है। पहली और दूसरी गुफा के दो दो मंजिल हैं। जैनमूर्त्तियाँ हैं और शिल्पकला दर्शनीय हैं। शेष गुफाएँ एक मंजिल वाली हैं। जैनमूर्त्तियाँ और स्तम्भ दर्शनीय हैं।

(७) वादामी की गुफाएँ—यहाँ की प्राचीन गुफायें वहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ की गुफाएँ प्रायः सब जैनों की ही हैं। यहाँ वर्तमान में भी पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्त्तियाँ है। अनेक यूरोपीय विद्वानों ने इनकी शिल्पकला की भूरि २ प्रशंसा की है। विक्रम की छठी या सातवीं सदी के जैनराजा ने ये गुफायें वनवाई थीं।

(८) धाराशिव—वर्तमान में इसका नाम उस्मानाबाद है। वहाँ से २-३ मील पर जैनों की सात गुफाएँ आती हैं जिनमें एक गुफा वहुत विशाल और नक्काशी से रमणीय है। उसमें भगवान् पार्श्वनाथ की सप्तफण वाली मूर्त्ति शरीर-प्रमाण और श्यामवर्ण की है। सब गुफाओं में जैन-मूर्तियाँ हैं

(९) एलोरा—दौलतावाद से १२ मील की दूरी पर यह स्थान है। यहाँ पहाड़ी पर जैनों की ३२-३३ गुफायें हैं। यहाँ शैव और बौद्ध गुफायें हैं। बीच में कैलास मन्दिर है और एक तरफ जैनगुफाएँ हैं और दूसरी तरफ बौद्धगुफाएँ हैं। अनेक विद्वानों ने इस पर वहुत कुछ लिखा है। यहाँ अधिक नहीं लिखा जाता है।

(१०) राजगृह—यहाँ के पंच पहाड़ों में दो बड़ी २ जैन गुफाएँ हैं जिसमें एक का नाम सप्तपर्णा और दूसरी का नाम सोनभद्रा है। इन गुफाओं के लिए कनिंग होम ने विस्तृत लेख लिखा है। इन गुफाओं में से मिले हुए शिलालेख से मालूम होता है कि यह ईसा की दूसरी सदी में मुनि वीर-देव के लिए बनवाई गई थी।

नासिक के आसपास की गुफाएँ मांगीतुंगी, सतारा जिले की गुफाएँ आदि २ हजारों जैनगुफाएँ बनी हुई हैं।

चित्तौड़ का कीर्त्तिस्तम्भ—सुप्रसिद्ध ओझाजी का कथन है कि यह सात मंजिल का उन्नत जैनकीर्त्तिस्तम्भ दिगम्बर सम्प्रदाय के बघेर वाला महाजन साहनाय के पुत्र जी जीआ ने विक्रम की चौदहवीं सदी के उत्तरार्ध में बनाया था। यह कीर्तिस्तम्भ आदिनाथ भगवान का स्मारक है। इसके चारों तरफ अनेक जैनमूर्ति आलेखित हैं।

पहाड़पुर—कलकत्ता कुचविहार लाइन में जमालगंज स्टेशन है। वहाँ से दो मील दूर टीले पर यह ग्राम है यह सारा टीला जैन स्मारकों से भरा हुआ है। यहाँ से विशाल जिनमन्दिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

अहिच्छत्रा—ई० आई० आर० के एओनला स्टेशन के ४ कोस पर रामनगर है जिसका प्राचीन नाम शंखपुरी या अहिच्छत्रा है। यहाँ का जैन स्तूप मथुरा के स्तूप से भी प्राचीन है।

श्री आदिनाथ की धातु प्रतिमाः—यह प्राचीन मूर्ति भारत के वायव्य प्रान्त से बाबू पूर्णचन्द्र जी नाहर को प्राप्त हुई है। यह मूर्ति पद्मासन लगा कर बैठी हुई है और आसपास की मूर्तियाँ कायोत्सर्ग के रूप में खड़ी है। सिंहासन के नीचे नवग्रहों के चित्र और वृषभयुगल है। इससे मूर्ति बड़ी सुन्दर और मनोज्ञ होगई है। इस मूर्ति के पीछे इस प्रकार लेख है "पज्जकसुत आम्बदेवेन। सं० १०७७" इससे यह उक्त संवत् की प्रतीत होती है।

सिरपुर की महत्त्वपूर्ण धातु प्रतिमा :—

कला की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी रचना शैली स्वतन्त्र, स्वच्छ और उत्कृष्ट कलाभिव्यक्ति की परिचायक है। मूलप्रतिमा पद्मासन लगाये हुए है। निम्नभाग में वृषभचिह्न स्पष्ट है। केशराशि स्कन्ध-प्रदेश पर प्रसारित है दाहिनी ओर अम्बिका की मूर्त्ति है। अनुमानतः यह

नौवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच की प्रतीत होती है।

अर्ध पद्मासनस्थ धातु की जिनमूर्त्ति :---

अर्धपद्मासनस्थ जैनमूर्त्ति अतिविरल देखी जाती है। प्रायः बुद्ध की मूर्त्ति अर्धपद्मासनस्थ होती है। परन्तु यह मूर्त्ति अर्धपद्मासनस्थ होते हुए भी जिनदेव की है। यह मूर्त्ति बाबू पूर्णचन्द्र जी नाहर को उदयपुर के पास सवी का खेड़ा ग्राम से प्राप्त हुई थी। यह उनके पास कलकत्ता में है। यह पीतल की मूर्त्ति है और कर्णाटकी लिपि में इस पर लेख लिखा हुआ है जिसे पं० गौरीशंकर ओझा और डॉ० हीरानन्द शास्त्री ने पढ़ा है। बैठक के नीचे नवग्रह की छोटी २ आकृतियाँ हैं। ओझाजी के मतानुसार यह आठवीं सदी की प्रतिमा होनी चाहिए।

वीर सं० ८४ का शिलालेख :---

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को अजमेर जिले के बार्ली नामक गाँव से वीर सं० ८४ का शिलालेख प्राप्त हुआ है जो अभी अजमेर के म्युजियम में सुरक्षित है।

मथुरा से प्राप्त आयागपट्ट और जैनयति कण्ह (?) कीमूर्ति आदि अनेक प्रकार की प्राचीन सामग्री आजकल के अन्वेषण से प्राप्त हो रही है। यदि विद्वानों का इस दिशा में परिश्रम चालू रहा तो सम्भव है कि अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर प्रकाश डालने वाली प्रचुर सामग्री जैनस्मारकों की सहायता से प्राप्त हो। जैनसाहित्य और जैनस्मारकों का निष्पक्ष बुद्धि से अन्वेषण और अनुशीलन अपेक्षित है। पुरातत्वरसिकविद्वान् इस ओर ध्यान दें तो बौद्ध साधन-सामग्री की तरह जैनसाधन-सामग्री भारतीय संस्कृति और इतिहास के लिए कामधेनु की तरह हितावह सिद्ध होगी।

औद्योगिक और व्यवसायिक जगत् में जैनों का स्थान

जैनजाति प्रारम्भ से ही व्यापार-प्रधान रही है। इस समाज के नब्बे प्रतिशत व्यक्ति व्यापार द्वारा जीवननिर्वाह करते हैं, और दस प्रतिशत व्यक्ति राज्यकर्मचारी हैं या अन्य नौकरी आदि साधनों से आजीविका चलाते हैं। इस समाज का बालक जन्मजात व्यापारिक संस्कारों के कारण व्यापार की ओर ही झुकता है। यही कारण है कि भारत के व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में जैनों का अति उच्चस्थान रहा है और अब भी है। उस प्राचीनकाल में जबकि यातायात के साधनों की आजकल जैसी सुविधा न थी, इस समाज के व्यापारपरायण व्यक्ति दूर २ देशों में व्यापार के निमित्त जाया करते थे। जैनशास्त्रों में उल्लेख है कि हजारों वर्ष पहले इस धर्म के अनुयायी गृहस्थ समुद्रपार के देशों में व्यापार के निमित्त जाया करते थे। हजारों पोत (जहाज) विदेशों में माल ले जाते थे और वहाँ से लाते थे। विदेशों में व्यापार करने के साथ ही साथ ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जैनसंस्कृति का प्रचार भी करते थे। आजकल विदेशों में जो थोड़े बहुत जैनअवशेष प्राप्त होते हैं वे यही सूचित करते हैं।

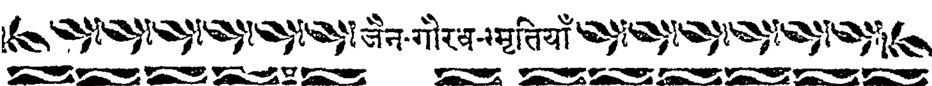
व्यापार के प्रति जन्मजात चाव होने से तथा बुद्धिमत्ता और साहस के कारण जैनों ने विपुल सम्पत्ति उपार्जित की है। आजकल भी भारत की

अन्य जातियों और समाजों से संख्या की अपेक्षा बहुत कम होते हुए भी यह समाज समृद्धि में सबसे अधिक बढ़ीचढ़ी है कर्नल जेम्सटॉड ने आनाल्स ऑफ राजस्थान में लिखा है कि and that more than half the mercantile wealth of India pass through the hanks of Jain Liaty.

इसी तरह कलकत्ता में लार्ड कर्जन ने जैनों द्वारा किये गये स्वागत समारोह के उत्तर में कहा था :—

I am aware of the high ideas ambodied in your religion, of the scrupulous conception of humanity which you antertain, of your great mercantile influence and activity.

यह विपुलसम्पत्ति राज्य या सत्ता के बलपर या अनैतिक साधनों के बलपर एकत्रित नहीं की गई है अपितु व्यापारिक प्रतिभा, दूरदर्शिता, साहस, धैर्य आदि सद्गुणों के द्वारा उपार्जित की गई है। "प्राचीन काल की यातायात के महान् कठिनाइयों की परवाह न करके जैनव्यापारी घर से लोटा-डोर लेकर निकलते थे और धर कूँच धर मुकाम करते हुए महीनों में बंगाल, आसाम, मद्रास आदि अपरिचित देशों में पहुँचते थे। भाषा और सभ्यता से अपरिचित होने पर भी ये लोग धैर्य और साहस का अवलम्बन लेकर अपना कार्य करते रहे और अन्ततः हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक सब छोटे-बड़े व्यापारिक केन्द्रों में अपने पैर मजबूती से रख दिये। भारत का प्रसिद्ध 'जगत सेठ' का कुटुम्ब इसका भव्य उदाहरण है। कहाँ नागौर और कहां बंगाल? कहां तत्कालीन बंगाल की परिस्थिति और कहां लोटा-डोर लेकर निकलने वाला हीरानन्द? क्या कोई कल्पना कर सकता था कि इसी हीरानन्द के वंशज के इतिहास में जगत् सेठ के नाम से प्रसिद्ध होंगे? तथा वहां के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक वातावरण पर अपना एकाधिपत्य कायम कर लेंगे? सच बात तो यह है कि प्रतिभा के लगाम नहीं होती, जब इसका विकास होता है तब सर्वतोमुखी होता है! इसी हीरानन्द के वंशजों के घर में एक समय ऐसा आया जब चालीस करोड़ का व्यापार होता था। सारे भारत में यह प्रथम श्रेणी का धनिक घराना था। लार्ड क्लाइव ने अपने पर लगाये गये आरोपों का प्रतिकार करते हुए लन्दन में



कहा था "मैं जब मुर्शिदाबाद गया और वहां सोना, सोना, चांदी और जवाहरात के बड़े २ ढेर देखे, उस समय मैंने अपने मन को कैसे काबू में रक्खा यह मेरी अन्तरात्मा ही जानती है।" इस पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपनी महान् प्रतिभा के बल से जैनव्यापारियों ने व्यापार के साथ ही साथ राजनैतिक क्षेत्र में भी अपना कितना प्रभाव जमा रक्खा था।

जगत्सेठ का इतिहास :—

नागौर से लोटा-डोर लेकर निकलने वाले सेठ हीरानन्द के वंशजों ने इतनी अपार द्रव्यराशि उपार्जित की कि मुगल सम्राटों ने उन्हें जगत्सेठ की उपाधि से विभूषित किया। मुगलसम्राट्, नवाब और अंग्रेजीकम्पनी तक उनसे द्रव्य की याचना करती थी। ऐसे महान् सेठ के परिवार और उनके तत्कालीन महत्व का थोड़ा सा उल्लेख करना प्रासंगिक प्रतीत होता है।

नागौर के हीरानन्द शोचनीय आर्थिक परिस्थिति से विवश होकर परदेश के लिए निकल पड़े। मारवाड़ से चलते हुए वे बंगाल में आये। इनके छह पुत्र और एक पुत्री हुई। इनमें से आपके चतुर्थ पुत्र सेठ माणकचन्द्र जी से जगत् सेठ के खानदान का प्रारम्भ होता है। नागौर से निकले हुए हीरानन्द का पुत्र बंगाल और दिल्ली के राजतंत्र में एक तेजस्वी नक्षत्र की भांति प्रकाशमान रहा। अठारहवीं सदी के बंगाल के इतिहास में जगत् सेठ की जोड़ी का कोई भी दूसरा पुरुष दिखलाई नहीं देता। गरीब पिता का यह कुबेर तुल्य पुत्र अप्रत्यक्ष रूप से बंगाल, बिहार और उड़ीसा का भाग्यविधाता बना हुआ था।

उस समय बंगाल की राजधानी ढाका में थी। मुगलसाम्राज्य के अन्तिम प्रभावशाली औरङ्गजेब का प्रताप धीरे २ क्षीण होता जा रहा था। उस समय बंगाल का नवाब अजीमुश्शान था और औरङ्गजेब ने दीवान के स्थान पर मुर्शिदकुलीखाँ को भेजा था। सेठ माणकचन्द और मुर्शिदकुलीखाँ के बीच भाईयों से भी अधिक प्रेम था। ये दोनों बड़े कर्मवीर और साहसी थे। सेठ माणकचन्द के दिमाग और मुर्शिदकुलीखाँ के साहस ने मिलकर एक बड़ी शक्ति प्राप्त कर ली थी।

मुर्शिदकुलीखाँ एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। सेठ माणकचन्द ने उसे उत्साहित करते हुए कहा कि यदि तुम मुर्शिदाबाद नामक एक नवीन शहर

की स्थापना करो तो फिर देखना कि माणकचन्द की शक्ति क्या खेल करके दिखाती है। गंगा के तट पर एक टकसाल स्थापित होगी, अंग्रेज, फ्रेन्च और डच लोग तुम्हारे पैरों के पास खड़े होकर कार्निस करेंगे। दिल्ली का बादशाह तो रुपयों का भूखा है जहाँ हम अभी एक करोड़ तीस लाख भेजते हैं वहाँ दो करोड़ भेजेंगे तो वह समझेगा कि बंगाल की समृद्धि मुर्शिदकुलीखाँ के प्रताप से बढ़ती चली जा रही है। सेठ माणकचन्द ने इस प्रकार मुर्शिदकुलीखाँ को उत्साहित करके अपने अतुलवैभव और गंगा के समान धन के प्रवाह की ताकत से भागीरथी के किनारे मुर्शिदाबाद नामक विशाल नगर की स्थापना की। कुछ ही समय में यह नगर बंगाल की राजधानी के रूप में परिणत होगया। अजीमुश्शान नाममात्र का नवाब का रह गया और सारी सत्ता इन दोनों के हाथ में आगई। इनके सुप्रबन्ध से बंगाल में शान्ति की लहर दौड़ गई। इस समय सारे भारत में राज्यक्रान्तियां हो रही थी परन्तु इस सुप्रबन्ध के कारण बंगाल क्रान्ति की चिनगारियों से बचा हुआ था। अंग्रेज व्यापारी अपनी कूटनीति से कर्नाटक, मद्रास और सूरत में कोठियां स्थापित कर भूमि पर अधिकार कर रहे थे। परन्तु बंगाल में उनकी दाल नहीं गल रही थी।

सहसा भारतवर्ष के राजनैतिक वातावरण में एक प्रबल झोंका आया। दिल्ली का सिंहासन फर्रुखसियर के हाथ में चला गया। बादशाह फर्रुखशियर एक बार बीमार हो गया। दैवयोग से अंग्रेज कम्पनी का डाक्टर हेमिल्टन बादशाह से मिला और उसे स्वस्थ कर दिया। इसके पारितोषिक के रूप में उसने बंगाल की भूमि में गंगा के किनारे कुछ गाँव माँग लिये। मूर्ख फर्रुखशियर इतना बेभान हो रहा था कि वह कोरे कागज पर सही करने को तय्यार था। उसने गंगा के किनारे के चालीस परगने अंग्रेजों को सुपुर्द करने का फरमान मुर्शिदकुलीखां के पास भेज दिया। जब यह फर्मान मुर्शिदकुलीखाँ और जगत्सेठ के सन्मुख पहुँचा तो उन्हें बंगाल के अन्धकारमय भविष्य के दर्शन होने लगे। मुर्शिदकुलीखां ने साहस पूर्वक बादशाह का फरमान वापस लौटा दिया और कहलाया कि बंगाल का दीवान एक इन्च जमीन भी विदेशियों को सौंपने से असहमत है। इससे मूर्ख फर्रुशियर क्रुद्ध हो गया और उसने फरमान निकाला, जिसमें मुर्शिदकुलीखाँ को दीवान पद से अलग करके उसके स्थान पर सेठ माणकचंद को दीवान बनाने की घोषणा थी और सेठ के वंशजों को जगत् सेठ की पदवी से विभूषित करने

की इच्छा प्रदर्शित की गई थी। सचमुच यह एक अद्भुत घटना थी कि मुगलसम्राट् ने एक जैन को बंगाल का दीवान बनाना चाहा।

जब यह फ़रमान मुर्शिदकुलिखाँ के पास पहुँचा तो उसे इसमें जगत् सेठ का षडयंत्र मालूम हुआ। पर जब ये दोनों मित्र मिले तब सेठ माणकचन्द ने कहा—मुर्शिदकुलीखां और माणिकचन्द के बीच भेद कहाँ है ? मेरे लिए बंगाल की सूबेगिरी में आकर्षण ही क्या है इस सारी मुगल सल्तनत में ऐसी चीज ही क्या है जो सोना, मोहर और रुपये से न खरीदी जा सके ! गंगा के किनारे जब तक मेरा महिमापुर बसा हुआ है और मेरा टकसाल चालू है वहाँ तक मेरे वैभव, सत्ता और व्यापार के सम्मुख कौन ऊँची ऊँगली उठा सकता है। फरुखशियर स्वयं एक दिन याचक की तरह रुपये की भीख मांगने इसी सेठ के आँगन में उपस्थित हुआ था। मेरा विश्वास है कि हमारे धन से ही यह राजमुकुट खरीदा गया है। मैं बादशाह को लिख देता हूँ कि मुझे मिली हुई सूबागिरी मैं पुनः मुर्शिदकुलिखां को सौंपता हूँ क्योंकि मैं उन्हें अपने से अधिक योग्य मानता हूँ।" मुर्शिदकुलिखां ने पूछा—अंग्रेजों के परगने सौंपने के फरमान का क्या करना चाहिए ? जगत् सेठ ने कहा—"इस विषय में जरा बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। अंग्रेज व्यापारी हैं, कूटनीतिज्ञ हैं। और लड़ाकू हैं अतः उनके साथ उच्छृंखल व्यवहार करने का परिणाम अच्छा न होगा। इन परगनों की मालिकी तो इन्हें नहीं दी जा सकती परन्तु अंग्रेज व्यापारी बिना कस्टम टेक्स के यहाँ व्यापार कर सकें यह व्यवस्था करनी पड़ेगी।' इन सबसे जगत् सेठ का बंगाल के राजनैतिक वातावरण में कितना प्रभाव था यह स्पष्ट प्रतीत होता है। समस्त बंगाल, बिहार और उड़ीसा का महसूल सेठ माणकचंद के यहाँ इकट्ठा होता था और इन प्रदेशों में जगत् सेठ की टकसाल में बने हुए रुपये ही उपयोग में आते थे।

तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने लिखा है कि जगत् सेठ के यहाँ इतना सोना चांदी था कि अगर वह चाहता तो गंगाजी के प्रवाह को रोकने के लिए सोने और चांदी का पुल बना सकता था। बंगाल के अन्दर जमा हुई महसूल की रकम दिल्ली के खजाने में भरने के लिए जगत् सेठ के हाथ की एक हुण्डी पर्याप्त थी। मुतखरीन नामक ग्रन्थ का लेखक लिखता है कि उस जमाने में सारे हिन्दुस्तान में जगत् सेठ की बराबरी का कोई व्यापारी और सेठ नहीं था।

सेठ माणकचन्द की पत्नी माणिकदेवी की इच्छा से उन्होंने कसौटी पत्थर का भव्य जिनमन्दिर बनवाया था। कहा जाता है कि इस कसौटी पत्थर के संग्रह में इतना मूल्य खर्च करना पड़ा कि शायद सोने और चांदी का मन्दिर तय्यार हो सकता था। गंगा के प्रवाह में यह मन्दिर वह गया है फिर भी जो अवशेष बचे हैं वे जगत् सेठ की अमर कीर्त्ति को घोषित कर रहे हैं।

सरफखां और जगत् सेठ फतेचंदः—मुर्शिदकुलिखां के बाद सरफखां बंगाल का शासक हुआ। सेठ माणकचंद के बाद सेठ फतेचंद जगत् सेठ की गादी पर आये। सफरखां ने जगत् सेठ के साथ वैर बांध लिया और बंगाल की सुख शान्ति को नष्ट कर दिया। यह समय नादिरशाह की लूट का था। सेठ फतेचंद ने अपनी बुद्धिमत्ता से नादिरशाह को प्रसन्न कर बंगाल को लूट से बचा लिया। सरफखां अपनी उच्छृखल प्रवृत्ति से पदभ्रष्ट कर दिया गया। उनके स्थान पर अलीवर्दीखां शासक हुआ। अलीवर्दीखां के समय में मरहठों ने बंगाल पर आक्रमण कर दिया। मरहठों ने जगत् सेठ की कोठी को जी भर के लूटा तो भी उसको वैभव ज्यों का त्यों अखण्ड बना रहा।

नवाब सिराजुदौला और जगत् सेठ महतावचन्दः—अलीवर्दीखाँ के बाद सिराजुदौला बंगाल का नवाब हुआ और इधर सेठ फतेचंद के पौत्र महतावचंद जगत् सेठ की गद्दी पर आये। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर अहमदशाह और आदिलशाह थे। अहमदशाह ने सेठ महतावचंद को जगत् सेठ की पदवी से और उनके भाई को 'महाराजा' के पद से सम्मानित किया और सम्मेतशिखर का जैनतीर्थ इन्हे समर्पित किया। सेठ महतावचन्द ने उत्तरी और दक्षिणी भारत में बहुत बड़ी व्यापारिक प्रतिष्ठा प्राप्त की।

मीरजाफर के भयंकर विश्वासघात के कारण पलासी के युद्ध में सिरोजुदौला की पराजय हुई और मीरजाफर नवाब बन गया। इसके शासक होते ही अंग्रेजों की बन आई। इसने अंग्रेजों को टकसाल खोलने का हुक्म दे दिया। इसी समय से जगत् सेठ का वैभव सूर्य अस्ताचलगामी होने लगा।

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अपनी बुद्धि प्रतिभा से तथा व्यापार के जरिये जगत् सेठ ने तत्कालीन वातावरण में कितना माहात्म्य प्राप्त कर लिया था। जगत् सेठ का इतिहास एक जैनव्यापारी की उज्ज्वल कीर्ति का इतिहास है।

भारत के व्यावसायिक जगत् में जैनों का प्राधान्य है। उनका व्यवसाय किसी एक क्षेत्र में ही सीमित नहीं परन्तु व्यापक है। संसार का ऐसा

कोई देश न होगा जहाँ जैनव्यापारी का प्रवेश न हुआ हो। अमरीका, इँगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अफ्रिका, जापान, रूस आदि दूरवर्ती प्रदेशों के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध हैं। अफ्रिका चीन, वर्मा, मलाया, सिंगापुर, लंका, श्याम, आदि प्रदेशों में तो वहुत प्राचीन काल से जैनव्यापारियों का निवास रहा है। आजकल भी विदेशों में बहुत बड़ी तादाद में जैनों की बस्ती है।

चर्म, मद्य-मांस आदि गर्हित उद्योगों को छोड़ कर प्रायः सब प्रकार के अगर्हित उद्योगों में जैनव्यापारियों ने प्रवेश किया है और अच्छी सफलता प्राप्त की है। ऐसा होते हुए अधिकतर जैनव्यापारियों का ध्यान वस्त्र, सोना-चाँदी, जवाहरात, किराना, अनाज, रूई-ऊन आदि के व्यवसाय की ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। इन क्षेत्रों में जैनों ने पर्याप्त व्यापारिक कीर्ति उपार्जित की है। अपनी व्यापारिक प्रतिभा और द्रव्यराशि के बल-पर उन्होंने कतिपय व्यापारों पर एकाधिपत्य सा प्राप्त कर लिया है। वे न केवल भारत के अपितु विश्व के बाजार में उथल पुथल मचा देने की क्षमता रखते है। विश्व के बाजारों का उतार चढ़ाव उनके रुख पर निर्भर करता था। किसी समय रूई के व्यवसाय में सर सेठ हुक्मीचंद जी ने इतना प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था कि उनके रुख पर अमेरिका के बाजारों में उथल-पुथल हो जाया करती थी। अनेक जैनव्यापारियों के लिए ऐसा कहा जाता है कि "आज का भाव यह है कल की बात वे जानें।" बम्बई के शेयर बाजार के राजा सेठ प्रेमचंद के लिए उक्त प्रकार से लिखा जाता था। जैनों में से कई व्यापारी कोई 'कॉटन किंग' कोई सिल्वर किंग, कोई शेयर किंग के नाम से व्यापारों में प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए हैं।

देश की औद्योगिक सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए कलकारखानों की स्थापना में भी जैनव्यापारी पीछे नहीं रहे हैं। कपड़े के मिल, तेल निकालने के आइल मिल, जिनिंग एंड प्रेसिंग फैक्टरियाँ, प्रिंटिंग प्रेस बर्त्तन बनाने के कारखाने, सिमेंट के कारखाने, रबर के कारखाने इत्यादि अनेक उद्योग जैनव्यापारियों द्वारा संचालित हो रहे हैं। सर सेठ हुक्मीचंद कस्तूरभाई लालभाई, शांतिलाल मंगलदास, कन्हैयालाल भंडारी, डालमिया, साहू श्रेयांसप्रसाद आदि २ अनेक उद्योगपति हैं। सर चुन्नीलाल भायचंद अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैनव्यापारी है।

सार्वजनिक क्षेत्र में मुक्तहस्त से दानः—

जैनों ने केवल द्रव्य उपार्जन करना ही नहीं सीखा है परन्तु उसे मुक्तहस्त से परमार्थ में लगा देना भी सीखा। जैनबालक जन्म-घूटी के साथ ही दान के संस्कार भी प्राप्त कर लेता है। जैनों ने अपने धर्म के लिए तो करोड़ों रूपये लगाये ही हैं जिसके प्रमाण रूप में शत्रुञ्जय, आबू और गिरना के भव्य कलामय जिनमन्दिर विश्व को विस्मयान्वित कर रहे हैं परन्तु सार्वजनिक क्षेत्रों में भी जैनों की दानवीरता सदा से उल्लेखनीय रही है। वस्तुपाल-तेजपाल ने जिन मन्दिरों और साहित्यसेवा में करोड़ों रूपये लगाने के साथ ही साथ अनेक तालाव बनवाये एवं शैव तीर्थों को सहायता पहुँचाई अधिक क्या मुसलमानों के लिए मस्जिदें तक बनवाई दानवीर जगडुशाह ने १३१२ से १३१५ तक के भारतव्यापी दुष्काल के समय में अपने विपुल अन्नभण्डार सर्वसाधारण जनता के लिए खोल दिये। सद् भाग्य से जगडु शाह के पास उस समय विपुल अन्नराशि थी। उसने सिन्ध, काशी, गुजरा मेवाड़ आदि अनेक देशों को अन्नदान दिया।

इसके लिए वह 'जगत् पालक' की उपाधि से सन्मानित किया गया। इ अकेले जैनवीर ने तीन वर्ष के भीषण दुष्काल के संकट का निवारण वि इसी तरह खेमा देदराणी ने गुजरात के दुष्काल-निवारण के लिए अप विपुलद्रव्य-सोना चांदी के ढेर को गाड़ों में भरवा कर महम्मद वेगड़ा के पास भेज दिया और यह सिद्धकर बता दिया कि "पहले शाह और बाद मे बादशाह"। दानवीर भामाशाह ने अपना सर्वस्व महाराणा प्रताप को समर्पित कर मेवाड़ और क्षत्रिय जाति की आन और शान की रक्षा की। आज भी जीवदया, गोरक्षा, पशुशाला, औषधालय, अनाथालय, विद्यालय, स्कूल, बोर्डिंग, पुस्तकालय, वाचनालय आदि विविध सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ जैनों की ओर से चलाई जाती है। जीवदया और पशुरक्षण के कार्य में प्रतिवर्ष लाखों रूपये जैनलोग व्यय करते हैं। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम लड़ने वाली कॉग्रेस और उसके कार्यकर्त्ताओं को आर्थिक सहयोग देने में जैनों का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। बंगाल के दुर्भिक्ष के समय में तथ भूकम्प, बाढ आदि प्राकृतिक प्रकोप के समय जैन लोगों ने दिल खोलक सहायता की है और वर्तमान में भी करते हैं जैनजाति जैसे सम्पन्न है वै दानवीर भी है।

जैनधर्म के अन्तर्गत भेद प्रभेद

धर्म और सम्प्रदाय

धर्म और सम्प्रदाय दो भिन्न २ वस्तुएँ हैं। धर्म मूल वस्तु है और सम्प्रदाय या पंथ उसके बाह्य आकार मात्र हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो धर्म और सम्प्रदाय में ठीक वही सम्बन्ध है जो आत्मा और शरीर में है। धर्म आत्मा और सम्प्रदाय उसका शरीर है। यह प्रकट है कि आत्मा और शरीर में आत्मा का महत्व अधिक है। शरीर का महत्व तो आत्मा के द्वारा ही है। सम्प्रदाय, मजहब पन्थ और परम्पराएँ वहीं तक उपयोगी हैं जहाँ तक ये सब धर्म के पोषक हैं परन्तु जब पोषक के बदले ये सत्य धर्म के शोषक बन जाते हैं तब इन्हें नष्ट कर देने में ही वास्तविक हित रहा हुआ है। सामान्यतया लोग सम्प्रदाय को ही धर्म मानने लगते हैं। वे धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल जाते हैं और धर्म के आकार-सम्प्रदाय को ही धर्म मानने लगते हैं। अतः धर्म शून्य सम्प्रदाय के साथ भी वे चिपटे रहते हैं। जब कोई सत्य तत्वज्ञ उन्हें समझाता है कि भाई! तुम जिससे चिपके हुए हो वह धर्म नहीं परन्तु धर्म का निर्जीव चोला है तो वे उस समझाने वाले को ही नास्तिक और श्रद्धा हीन कह देते हैं। धर्म के इस विकृत स्वरूप ने ही संसार पर भयंकर तबाहियाँ बरसाई हैं। अतः धर्म और सम्प्रदाय के विवेक को भली भांति समझने की आवश्यकता है।

समय से प्रभावित जैनधर्म

भगवान ऋषभदेव द्वारा प्रवर्तित और भगवान् महावीर के द्वारा प्रचारित जैनधर्म में काल प्रवाह के साथ साथ अनेक परिवर्तन होते आये हैं। प्रारम्भ में जैनधर्म में देवी देवताओं की स्तुति या उपासना का कोई स्थान नहीं था। जैन तो रागद्वेष रहित निष्कलंक मनुष्य की उपासना करने वाले रहे हैं परन्तु कालान्तर में गौण रूप से ही नहीं परन्तु जैन उपासना में देव देवियों का प्रवेश हो ही गया। जैन मन्दिरों में मूर्ति पर किया जाने वाला शृंगार और आडम्बर उत्तरकालीन परिस्थिति का प्रभाव है। भगवान महावीर ने तत्कालीन जातिवाद के विरुद्ध प्रचण्ड क्रान्ति की और स्त्री एवं शूद्रों को धर्म के क्षेत्र में समान स्थान देकर ऊंचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु उत्तर काल में जैनियों पर ब्राह्मणों की छुआछूत का इतना प्रभाव पड़ा कि शूद्रों को अपनाने की भावना बन्द होगई और बाद के जैन धर्म प्रचारकों ने भी जाति की दीवारें खड़ी करलीं। जो जैन संस्कृति प्रारम्भ में जातिभेद का विरोध करने में गौरव समझती थी उसने दक्षिण में नये जाति भेद की सृष्टि की, स्त्रियों को पूर्ण आध्यात्मिक योग्यता के लिए असमर्थ घोषित किया

यह स्पष्टतः ब्राह्मण परम्परा का प्रभाव है। ब्राह्मणों की तरह जैनों में भी यज्ञोपवीत, पूजा, प्रतिष्ठा आदि कर्मकाण्डों का प्रचलन हो गया। मन्त्र-ज्योतिष आदि का भी जैन-अनगारों ने आश्रय लेना आरम्भ किया। कहना होगा कि यह सब पडौसी संस्कृति का प्रभाव है। जो अनगार पहले वनों में और गिरिकन्दराओं में आत्म साधन करते थे वे धीरे २ नगरों में रहने लगे और जनसमाज के अधिकाधिक सम्पर्क में आने लगे। निवृत्ति की ओर अधिक झुके हुए अनगार धीरे २ प्रवृत्ति की की ओर विशेष झुकते गये। यद्यपि प्रारम्भ में इन सबका स्वीकार किसी उच्च आशय को लेकर ही किया गया है तदपि आगे चलकर इनमें विकृति अवश्य आ गई। प्रतिभा सम्पन्न जैनाचार्यों ने दूसरे प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले में टिक सकने के लिए इस तरह प्रवृत्तिमार्ग का अवलम्बन लिया था।

जैसे जैनों पर अन्य पडौसी संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा है वैसे जैनों की संस्कृति का भी पडौसियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत में आज भी अहिंसा के प्रति जो इतनी उदार भावना है वह जैनों का ही प्रभाव है। वैष्णव शैव आदि जैनेतर जनता के खान पान और रहन सहन में जो मद्य मांस रहितता और सात्विकता आई है वह जैनों का ही प्रभाव है। हिंसक यज्ञयाग आज नाममात्र शेष रह गये यह जैनों का ब्राह्मण संस्कृति पर प्रबल प्रभाव है।

सैंकडों नहीं हजारों वर्षों से साथ २ रहने वाली और साथ साथ विकसित होने वाली संस्कृतियों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। जैनों पर ब्राह्मणों का प्रभाव पड़ा है और ब्राह्मणों पर जैनों का प्रभाव पड़ा है।

इसके पश्चात् भी जब जब जैसी २ परिस्थिति आती गई वैसे २ परिवर्त्तन जैनधर्म में होते आये हैं। काल और परिस्थिति का प्रभाव प्राचीन चली आती हुई परिपाटियों में परिवर्तन करने के लिए प्रेरणा देता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक परम्परा में दो पक्ष होते आये हैं। एक पक्ष आग्रह पूर्वक प्राचीन परम्परा से चिपका रहना चाहता है और दूसरा पक्ष उसमें समयानुसार परिवर्तन का हिमायती होता है। इन्हीं कारणों को लेकर प्रत्येक धर्म में भेद प्रभेद उत्पन्न होते हैं। जैनों में भी इसी कारण से श्वेताम्बर और दिगम्बर दो भेद पड़ गये। यह परिस्थिति केवल एक ही धर्म के लिए नहीं परन्तु दुनिया के सब धर्मों के अन्तर्गत इसी तरह भेद प्रभेद होते आये हैं और होते रहेंगे। बौद्धों में महायान और हीनयान, मुसलमानों में शिया और सुन्नी ईसाई धर्म में केथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट, वेद धर्म में शैव, वैष्णव आदि प्रसिद्ध भेद हैं।

जैनधर्म के मुख्यतया दो सम्प्रदाय हैं:—(१) श्वेताम्बर और (२) दिगम्बर। यह भेद सचेल-अचेल के प्रश्न को लेकर हुआ है। भगवान महावीर से पहले सचेल परम्परा भी थी यह बात उपलब्ध जैन आगम साहित्य और बौद्ध

साहित्य से सिद्ध होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के केशि-गौतम अध्ययन से इस बात पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि श्रीकेशी ने भगवान महावीर के प्रधान शिष्य गौतम से प्रश्न किया है कि भ० पार्श्वनाथ ने तो सचेल धर्म कथन किया है और भगवान महावीर ने अचेल धर्म कहा है। जब दोनों का उद्देश्य एक है तो इस भिन्नता का क्या प्रयोजन है ? इस पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीर से पहले सचेल परम्परा थी और भगवान् महावीर ने अपने जीवन में अचेल परम्परा को स्थान दिया।

भगवान महावीर ने भी दीक्षा लेते समय एक वस्त्र धारण किया था और एक वर्ष से कुछ अधिक काल के बाद उन्होंने उस वस्त्र का त्याग कर दिया और सर्वथा अचेलक बन गये, यह वर्णन प्राचीनतम आगम ग्रन्थ श्री आचारांग सूत्र में स्पष्ट पाया जाता है।

बौद्ध पिटकों में "निग्गंठा एक साटका" जैसे शब्द आते हैं। यह स्पष्टतया जैन मुनियों के लिये कहा गया है। उस काल में जैन अनगार एक वस्त्र रखते थे अतः बौद्ध पिटकों में उन्हें 'एक शाटक' कहा गया है। आचारांग के प्रथम श्रुत-स्कन्ध में अचेलक, एक शाटक द्विशाटक और अधिक से अधिक त्रिशाटक के कल्प का वर्णन किया गया है। इससे यह मालूम होता है कि भगवान् महावीर के समय दोनों प्रकार की परम्पराएं थी। उनके संघ में सचेल परम्परा भी थी और अचेल परम्परा भी थी। भगवान महावीर स्वयं अचेलक रहते थे उनके आध्यात्मिक प्रभाव से आकृष्ट होकर अनेक अनगारों ने अचेल धर्म स्वीकार किया था। इतना होते हुए भी अचेलकता सर्व सामान्य रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी। अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थ सचेलक धर्म का पालन करते थे। निर्ग्रन्थियों (साध्वियों) के लिए तो अचेलकत्व की अनुज्ञा थी ही नहीं।

भगवान महावीर के शासन में अचेल-सचेल का कोई आग्रह नहीं रखा गया। इसलिये पार्श्वनाथ की परम्परा के अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थ भगवान महावीर की परम्परा में सम्मिलित हुए। भगवान महावीर के संघ में अचेल-सचेल धर्म का सामञ्जस्य था। दोनों परम्परायें ऐच्छिक रूप में विद्यमान थी। जो श्रमण निर्ग्रन्थ अचेलत्व को स्वीकार थे वे जिन कल्पी कहलाते थे और जो निर्ग्रन्थ सचेलक धर्म का अनुसरण करते थे वे स्थविरकल्पी कहलाते थे। भगवान महावीर ने अचेलत्व का आदर्श रखते हुए भी सचेलत्व का मर्यादित विधान किया। उनके समय में निर्ग्रन्थ परम्परा के सचेल और अचेल दोनों रूप स्थिर हुए और सचेल में भी एक शाटक ही उत्कृष्ट आचार माना गया।

प्राचीनता की दृष्टि से सचेलता की मुख्यता और गुण दृष्टि से अचेलता की मुख्यता स्वीकार कर भगवान महावीर ने दोनों अचेल सचेल परम्पराओं का सामञ्जस्य स्थापित किया। भगवान महावीर के पश्चात् लगभग दो सौ ढाई सौ

वर्षों तक यह सामञ्जस्य बराबर चलता रहा परन्तु बाद में दोनों पक्षों के अभिनिवेष (खिंचातानी) के कारण निर्ग्रन्थ परम्परा में विकृतियां आने लगीं। उसका परिणाम श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेदों के रूप में प्रकट हुआ। वे भेद अवतक चले आ रहे हैं।

भारत के विस्तृत प्रदेशों में जैनधर्म का प्रसार हुआ। दक्षिण और उत्तर पूर्व के प्रदेशों में दूरी का व्यवधान बहुत लम्बा है। प्राचीन काल में यातायात के साधन और संदेश व्यवहार की सुविधा न थी अतः प्रत्येक प्रांत में अपने अपने ढंग से संघों की संघटना होती रही। दुष्काल और अन्य परिस्थिति के कारण पूर्व प्रदेश में रहे हुए अनगारों के आचार विचार और दक्षिण में रहे हुए श्रमणों के आचार विचार में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। काल प्रवाह के साथ यह भेद तीक्ष्ण होता गया। मत भेद इस सीमा तक पहुंचा कि दोनों पक्षों के सामंजस्य की सद्भावना बिल्कुल न रही तब दोनों पक्ष स्पष्ट रूप से अलग २ हो गये वे दोनों किस समय और कैसे स्पष्ट रूप से अलग हो गये; यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता है। दोनों पक्ष इस सम्बन्ध में अलग अलग मन्तव्य उपस्थित करते हैं और हर एक अपने आपको महावीर का सच्चा अनुयायी होने का दावा करता है और दूसरे को पथभ्रान्त मानता है। श्वेताम्बर मत के अनुसार दिगम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति वीर निर्वाण संवत् ६०६ (वि० सं० १३६, ईस्वी सन् ८३) में हुई और दिगम्बरों के कथनानुसार श्वेताम्बरों की उत्पत्ति वीर निर्वाण सं० ६०६ (वि० सं० १३६, ई० सन् ८०) में हुई। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि निर्ग्रन्थ परम्परा के ये दो भेद स्पष्ट रूप से ईसा की प्रथम शताब्दी के चतुर्थ चरण में हुए हैं।

स्याद्वाद के अमोघ सिद्धान्त के द्वारा जगत् के समस्त दार्शनिक वादों का समन्वय करने वाला जैनधर्म कालप्रभाव से स्वयं मताग्रह का शिकार हुआ। आपस में विवाद करने वाले दार्शनिकों और विचारकों का समाधान करने के लिये जिस न्यायाधीश तुल्य जैन धर्म ने अनेकान्त का सिद्धान्त पुरस्कृत किया था वही स्वयं आगे चलकर एकान्त वाद के चक्कर में फँस गया। सचेल और अचेल धर्म के एकान्त आग्रह में पड़कर निर्ग्रन्थ परम्परा का अखन्ड प्रवाह दो भागों में विभक्त हो गया। इतने ही से खैर नहीं हुई, दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रतिद्वन्दि बनकर अपनी शक्ति को क्षीण करने लगे। दोनों में परस्पर विवाद होता था और एक दूसरे का बल क्षीण किया जाता था। दिगम्बर सम्प्रदाय दक्षिण में फूला फला और श्वेताम्बर सम्प्रदाय उत्तर और पश्चिम में। दक्षिण भारत दिगम्बर परम्परा का केन्द्र बना रहा और पश्चिमी भारत श्वेताम्बर परम्परा का केन्द्र रहा है। आज तक दोनों परम्पराएँ अपने अपने ढंग पर चल रही है।

कालान्तर में चैत्यवासी अलग हुए। श्वेताम्बर संघ में अनेक गच्छ पैदा हुए। दिगम्बर परम्परा में भी नाना पंथ प्रकट हुए। इस तरह निर्ग्रन्थ परम्परा अनेक भेद प्रभेदों में विभक्त हो गई।

यहाँ संक्षेप से जैन सम्प्रदाय के मुख्य २ भेद प्रभेदों का थोड़ा सा परिचय दिया जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय

इस परम्परा का मूल बीज अचेलकत्व है। सर्व परिग्रह रहितता की दृष्टि से वस्त्ररहितता (नग्नता) के आग्रह के कारण इस भेद का प्रादुर्भाव हुआ है। स्त्रियों की नग्नता अव्यावहारिक और अनिष्ट होने से यह स्त्रियों की प्रव्रज्या का निषेध करता है। इस परम्परा के अनुसार स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता। नग्नता, स्त्रीमुक्ति निषेध केवलिकवलाहार निषेध आदि बातों में श्वेताबरों से इनका भेद है। दिगम्बर परम्परानुसार उनकी वंशपरम्परा इस प्रकार है। तुलना की दृष्टि से साथ २ श्वेताम्बर परम्परा का भी उल्लेख कर दिया जाता है:—

श्रुतकेवली		दशपूर्वधरी	
दिगम्बर	श्वेताम्बर	दिगम्बर	श्वेताम्बर
महावीर	महावीर	विशाखं	स्थूलिभद्र
सुधर्म	सुधर्म	प्रौष्ठिल	महागिरि
जम्बू	जम्बू	क्षत्रिय	सुहस्ति
विष्णु	प्रभव	जयसेन	गुणसुन्दर
नंदी	शय्यंभव	नागसेन	कालक
अपराजित	यशोभद्र	सिद्धार्थ	स्कन्दिल
गोवर्धन	संभूतिविजय	धृतिसेन	देवतीमित्र
भद्रबाहु	भद्रबाहु	विजय	आर्य मंगु
		बुद्धिल	आर्य धर्म
		गंगदेव	भद्रगुप्त
		धर्मसेन	श्रीगुप्त वज्र

दोनों परम्पराओं के अनुसार भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली हुए।

इसके बाद दिगम्बर परम्परानुसार पांच ग्यारह अंगधारी (नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस) हुए इसके सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य, एक अंगधारी हुए। यहां तक वीर निर्वाण सं० ६८३ पूर्ण हुआ इसके बाद श्रुत का विच्छेद हो गया।

दिगम्बर सम्प्रदाय में कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, उमास्वाति, पूज्यपाद देवनन्दी, वज्रनन्दी, अकलंक, शुभचन्द्र, अनन्तकीर्ति, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि

और जिनदत्तसूरि (दादा) इस गच्छ के परम प्रभावक पुरुष हुए। इस गच्छ में लगभग १०० साधु और ३०० साध्वियाँ हैं।

(२) तपागच्छ :—यह गच्छ श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सबसे अधिक महत्त्व वाला, है। तपागच्छ की उत्पत्ति उद्योतनसूरि के बाद हुई है। उद्योतनसूरि ने अपने शिष्य सर्वदेव को वटवृक्ष के नीचे सूरि पद दिया इससे यह गच्छा वटवृक्ष कहलाया। इसके बाद इस गच्छ में जगच्चन्द्रसूरि हुए। इन्होंने १२८५ (वि. सं.) में उग्र तपश्चर्या की इससे मेवाड़ के महाराणा ने इन्हें 'तपा' की उपाधि प्रदान की। इस पर से यह गच्छ तपा गच्छ कहलाया। इस गच्छ में लगभग ४०० साधु और १२०० साध्वियाँ हैं। यतियों की संख्या भी बहुत अधिक है। जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य विजयचन्द्रसूरि ने वृद्ध पोशालिग तपागच्छ की स्थापना की। प्रसिद्ध कर्म ग्रन्थकार देवेन्द्रसूरि जगच्चन्द्रसूरि, के पट्टधर हुए।

(३) उपकेशगच्छ :—इस गच्छ की उत्पत्ति का सम्बन्ध भगवान पार्श्वनाथ के साथ, माना जाता है। प्रसिद्ध आचार्य रत्नप्रभसूरि जो ओसवंश के आदि संस्थापक हैं इसी गच्छ के थे।

(४) पौर्णमिक गच्छ :—सं. ११५१ में चन्द्रप्रभसूरि ने क्रिया काण्ड सम्बन्धी भेद के कारण इस गच्छ की स्थापना की। कहा जाता है कि इन्होंने महानिशीथ सूत्र को शास्त्रग्रन्थ मानने का प्रतिषेध किया। सुभतसिंह ने इस गच्छ को नव जीवन दिया तब से यह साध (साधु) पौर्णमिक कहलाया।

(५) अंचलगच्छ या विधिपक्षः— आर्य रक्षित सूरि ने सं० ११६९ में इस गच्छ की स्थापना की। मुखवस्त्रिका के स्थान पर अञ्चल (वस्त्र का किनारा) का उपयोग किया जाने से यह गच्छ अंचलगच्छ कहा जाता है। इनमें अभी १५-२० साधु और ३०-४० साध्वियां है। इस गच्छ के श्रीपूज्यों का बहुत मान है

(६) आगमिक गच्छः— इस गच्छ के उत्पादक शील गुण और देव भद्र थे। ई० सन् ११९३ में इसकी स्थापना हुई ये क्षेत्र देवता की पूजा नहीं करते।

(७) पार्श्वचन्द्र गच्छः— यह तपागच्छ की शाखा है। सं० १५७२ में पार्श्व चन्द्र तपागच्छ से अलग हुए। इन्हों ने निर्युक्त, भाष्य चूर्णी और छेद ग्रन्थों को प्रमाण भूत मानने से इन्कार किया। यति अनेक हैं इनके श्री पूज्य की गादी बीकानेर में हैं।

(८) कडुआ मतः— आगमी गच्छ में से यह मत निकला। इस मत की मान्यता यह थी कि वर्तमान काल में सच्चे साधु नहीं दिखाई देते। कडुआ नामक गृहस्थ ने आगमिक गच्छ के हरिकीर्ति से शिक्षा पाकर इस मत का प्रचार किया था। श्रावक के वेष में घूम २ कर इसने अपने अनुयायी बनाये थे। सं० १५६२ या १५६४ में इसकी संस्थापना हुई ऐसा उल्लेख मिलता है।

(६) संवेगी सम्प्रदायः— ईसा की सतरहवीं में श्वेताम्बरों में जड़वाद का बहुत अधिक प्रचार हो गया था सर्वत्र शिथिलता और निरंकुशता का राज्य जमा हुआ था। इसे दूर करने के लिए तथा साधु जीवन की उच्च भावनाओं को पुनः प्रचलित करने के लिए आनन्द धन, सत्य विजयजी, विनयविजयजी और यशो विजयजी आदि प्रधान पुरुषों ने बहुत प्रयत्न किये। इन आचार्यों का अनुसरण करने वालों ने केशरिया वस्त्र धारण किये और वे संवेगी कहलाये। संवेगी सम्प्रदाय अपनी आदर्श जीवन-चर्या के द्वारा अत्यन्त माननीय है।

इसके अतिरिक्त अनेक गच्छों के नाम उपलब्ध होते हैं। इस श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण भेद विक्रम की सोलहवी सदी में हुआ। इस समय में क्रान्तिकार लोंकाशाह ने मूर्ति पूजा का विरोध किया और इसके फल स्वरूप स्थानकवासी सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय

ईसाई धर्म में जो स्थान मार्टिन ल्यूथर का है वही स्थान श्वेताम्बर सम्प्रदाय में लोंकाशाह का है। रोमन कैथोलिक धर्म में रही हुई मूर्ति पूजा का मार्टिन ल्यूथर ने विरोध किया और प्रोटेस्टेण्ट परम्परा की स्थापना की। लोंकाशाह ने भी श्वेताम्बर परम्परा में चैत्यों और मन्दिरों के कारण आई हुई शिथिलता का विरोध किया और 'मूर्तिपूजा आगमसम्मत नहीं है' यह उद्घोषणा की।

स्थानकवासी जैन समाज के अथवा अमूर्तिपूजक जैनों के प्रेरक लोंकाशाह का जन्म विक्रम संवत् १४८२ के लगभग हुआ था और इनके द्वारा की गई धर्म क्रांति का प्रारम्भ वि० सं० १५३० के लग भग हुआ। लोंकाशाह का मूलस्थान सिरोही से ७ मील दूर स्थित अरहट्टवाडा है परन्तु वे अहमदाबाद में आकर बस गये थे। अहमदाबाद के समाज में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। वे वहाँ के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष थे। इनके अक्षर बहुत सुन्दर थे। उस समय अहमदाबाद में ज्ञानजी नामक साधुजी के भण्डार की कुछ प्रतियाँ जीर्ण-शीर्ण होगई थीं अतः उनकी दूसरी नकल करने के लिए ज्ञानजी साधु ने लोंकाशाह को दी। प्रारम्भ में दशवैकालिक सूत्र की प्रति उन्हें मिली। उसकी प्रथम गाथा में ही धर्म का स्वरूप बताया गया है। उसे देख कर उन्हें धर्म के सच्चे स्वरूप की प्रतीति हुई। उन्होंने उसकाल में पालन किये जाते हुए धर्म का स्वरूप भी देखा। दोनों में उन्हें आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई दिया। "कहां तो शास्त्र वर्णित धर्माचार का स्वरूप और कहां आज के साधुओं द्वारा पाला जाता हुआ आचार" इस विचार ने उनके हृदय में क्रान्ति मचा दी। उन्होंने अन्य सूत्रों का वाचन, मनन और चिन्तन किया इसके फलस्वरूप उन्होंने निर्णय किया कि 'शास्त्रों में मूर्तिपूजा करने का विधान नहीं है। साधु साध्वी जो कार्य कर रहे हैं। वह सत्य साध्वाचार से विपरीत है अतः




जैन संघ में आए हुए विकार को दूर करने की आवश्यकता है। लोकाशाह ने अपने विचारों को तत्कालीन जनता के सामने रक्खा। परम्परा से चली आती हुई मूर्तिपूजा के विरोधी विचारों को सुन कर हलचल मच गई परन्तु लोकाशाह ने अनेक युक्तियों और प्रमाणों से अपने मन्तव्य की पुष्टि की धीरे २ जनता उस ओर आकृष्ट होने लगी। शत्रुंजय की यात्रा करके लौटते हुए एक विशाल संघ को उन्होंने अपने उपदेश से प्रभावित कर लिया। दृढ़ संकल्प सत्य निष्ठा और उपदेश की सचोटता के कारण लोकाशाह सफल धर्म क्रान्तिकार हुए। सर्व प्रथम भाणजी आदि ४५ पुरुषों ने लोकाशाह के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर प्रवृत्ति करने के लिये दीक्षा धारण की। सं० १५३१ में एक साथ ४५ पुरुष लोकाशाह की आज्ञा से नव प्रदर्शित साध्वाचार को पालन करने के लिये उद्यत हुए। इसके बाद आचार की उग्रता के कारण इस सम्प्रदाय का प्रचार वायुवेग की तरह होने लगा और हजारों श्रावकों ने अनुसरण किया।

लोकाशाह के बाद ऋषि भाणजी, भीदाजी, नूताजी भीमाजी, गजमलजी (जगमालजी), सरवाजी, रूप ऋषिजी और श्री जीवाजी क्रमशः पट्टधर हुए। यह लोकाशाह के नाम से लोकागच्छ कहलाया। लोकागच्छ के आचार्य जीवाजी के तीन शिष्य हुए—१ कुँवरजी की परम्परा में श्रीमलजी, रत्नसिंहजी, शिवजी ऋषिजी हुए। शिवजी ऋषिजी के संघराजजी और धर्मसिंहजी दो शिष्य हुए। संघराज ऋषि की परम्परा में अभी नृपचंदजी हैं। इनकी गादी बालापुर में है। धर्मसिंहजी म० की परम्परा दरियपुरी सम्प्रदाय कही जाती है।

जीवाजी ऋषि के दूसरे शिष्य वरसिंहजी की परम्परा में पाटानुपाट केशवजी हुए। इसके बाद यह केशवजी का पक्ष कहलाने लगा इस पक्ष के यतियों की गादी बडोदा में है। इस पक्ष में यति दीक्षा छोड़कर तीन महापुरुष निकले जिन्होंने अपने २ सम्प्रदाय चलाये। वे प्रसिद्ध पुरुष हैं लवजी ऋषि, धर्मदासजी और हरजी ऋषि।

जीवाजी ऋषि के तीसरे शिष्य श्री जगाजी के शिष्य जीवराजजी हुए। इस परम्परा से अमरसिंहजी म. शीतलदासजी म. नाथूरामजी म. स्वामीदासजी म. और नानकरामजी म. के सम्प्रदाय निकले।

लवजी ऋषि से कानजी ऋषिजी का सम्प्रदाय, खम्भात सम्प्रदाय, पंजाब सम्प्रदाय, रामरतनजी म. का सम्प्रदाय निकले।

धर्मदासजी म. के शिष्य श्री मूलचन्द्रजी म. से लिंबडी सम्प्रदाय, गोंडल सम्प्रदाय, सायला सम्प्रदाय, चूडा सम्प्रदाय, बोटाद सम्प्रदाय, और कच्छ छोटा बडा पक्ष, निकले। धर्मदासजी म. के दूसरे शिष्य धन्नाजी म. से जयमलजी म. का सम्प्रदाय रघुनाथजी म. सम्प्रदाय और रत्नचन्द्रजी म. का सम्प्रदाय निकले। धर्मदासजी म.

तीसरे शिष्य पृथ्वीराजजी से एकलिंगजी म. का सम्प्रदाय निकला। धर्मदासजी म. के चौथे शिष्य मनोहरदासजी से पृथ्वीचन्द्रजी म. का सम्प्रदाय निकला। धर्मदासजी म. के पांचवे शिष्य रामचन्द्रजी म. से माधवमुनि म. का सम्प्रदाय निकला।

हरजी ऋषि से दौलतरामजी म. का सम्प्रदाय, अनोपचन्दजी म. का सम्प्रदाय और हुक्मीचन्द्रजी म. का सम्प्रदाय निकला।

इस तरह वर्तमान स्थानक वासी बत्तीस सम्प्रदाय लवजी ऋषि, धर्मदासजी धर्मसिंहजी, जीवराजजी और हरजी ऋषि की परम्परा का विस्तार हैं। ये सब महापुरुष बड़े क्रिया पात्र और प्रभावक हुए। इससे स्थानकवासी सम्प्रदाय का अच्छा विस्तार हुआ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय ३२ आगमों को ही प्रमाण भूत मानता है। ग्यारह अंग, बारह उपांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोग, दशाश्रुत, व्यवहार, वृहत्कल्प, निशीथ और आवश्यक। ये स्थानकवासी सम्प्रदाय के द्वारा मान्य आगम ग्रन्थ हैं। इस सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों का आचार विचार उच्चकोटि का समझा जाता है। क्रिया की उग्रता की ओर इस सम्प्रदाय का विशेष लक्ष्य रहा है और इससे ही इसका विस्तार हुआ है।

तेरा पंथ

स्वामी भीखणजी इस सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्त्तक हैं। आपने पहले स्थानक वासी जैन सम्प्रदाय के रघुनाथजी महाराज के सम्प्रदाय में दीक्षा धारण की थी। आठ वर्ष के पश्चात् दयादान संबंधी दृष्टिकोण और आचार विचार संबंधी विचार विभिन्नता के कारण आपने अलग सम्प्रदाय स्थापित किया।

इस पन्थ के प्रथम आचार्य भिक्षु (भीखणजी) का जन्म संवत् १७८३ में मारवाड़ के कण्ठालिया ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम साह-बल्लूजी और माता का नाम दीपा बाई था। आप ओसवंश के सखलेचा गोत्र में उत्पन्न हुए थे। आपने संवत् १८०८ में तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदाय में रघुनाथजी म. के पास दीक्षा धारण की। आपकी प्रतिभा अनुपम थी। थोड़े ही समय में आपने शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। आठ वर्ष के पश्चात् आपके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया और तेरह साधुओं के साथ आप अलग हो गये। संवत् १८१६ में आपने अलग सम्प्रदाय स्थापित किया। कहा जाता है कि तेरह साधु और तेरह अलग पौषध करते हुए श्रावकों को लक्ष्य में रख कर किसी ने इसका नाम तेरह पन्थ रख दिया। "हे प्रभो! यह तेरा पन्थ है" इस भाव को लक्ष्य में रख कर आचार्य भिक्षुजी ने यही नाम अपना लिया।




आचार्य भिक्षु ने उग्रक्रिया काण्ड को अपनाया और उसके कारण जनता को प्रभावित करना आरंभ किया। आद्य सम्प्रदाय संस्थापक को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना होता है। भिक्षुजी ने भी दृढ़ता से काम लिया। वे अपने उद्देश्य में सफल हुए। उन्होंने अपनी सम्प्रदाय का एक दृढ़ विधान बनाया। उस विधान में सम्प्रदाय को संगठित रखने वाले तत्व दूरदर्शिता के साथ सन्निहित किये। आपने अपने समय में ४७ साधु और ५६ साध्वियों को अपने पन्थ में दीक्षित किया था। आपका स्वर्गवास संवत् १८६० भाद्रपद शुक्ला १३ को ७७ वर्ष की अवस्था में सिरियारी ग्राम में हुआ। आपके बाद स्वामी भारमलजी आपके पट्टधर हुए।

१ आचार्य भिक्षु, २ भारमलजी स्वामी, ३ रामचन्द्रजी स्वामी, ४ जीतमलजी स्वामी, ५ मघराजजी स्वामी, ६ माणकचन्दजी स्वामी, ७ डालचन्दजी स्वामी, ८ कालूरामजी स्वामी ये आठ आचार्य इस सम्प्रदाय के हो चुके हैं। वर्तमान में आचार्य श्री तुलसी गणी नवें पट्टधर हैं। आचार्य तुलसी वि० सं० १९९३में पदारूढ हुए। आप अच्छे व्याख्याता, विद्वान्, कवि और कुशल नायक हैं। आपके शासन काल में इस सम्प्रदाय की बहुमुखी उन्नति हुई है।

इस सम्प्रदाय की एक खास मौलिक विशेषता है, वह है इसका दृढ़ संगठन। सैकड़ों साधु और साध्वियाँ एक ही आचार्य की आज्ञा में चलती हैं इस सम्प्रदाय के साधुसाध्वियों में अलग २ शिष्य-शिष्यायें करने की प्रवृत्ति नहीं है। सब शिष्य-शिष्यायें आचार्य के ही नेश्राय में की जाती हैं। इससे संगठन को किसी तरह का खतरा नहीं रहता। संगठन के लिए इस विधान का बड़ा भारी महत्व है। इस सम्प्रदाय में आचार्य का एक छत्र शासन चलता है।

विक्रम संवत् २००७ तक सब दीक्षायें १८५५ हुईं। उनमें साधु ६३४ और साध्वियां १२२१। वर्तमान में ६३७ साधु-साध्वियां आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में विद्यमान हैं।

इस प्रकार भगवान् महावीर की परंपरा का प्रवाह स्याद्वाद के सिद्धान्त के रहते हुए भी अखन्डित न रह सका और वह उक्त प्रकार से नाना सम्प्रदायों गच्छों और पन्थों में विभक्त हो गया। काश् यह विभिन्न सरितायें पुनः अखण्ड जैनत्व महासागर में एकाकार हों!

जैन मुनिराजों के परिचयः—

हम इस ग्रन्थ में वर्तमान विशिष्ठ विद्वान जैन मुनिराजों का परिचय भी देना चाहते थे। इस संबन्ध में जैन समाचार पत्रों में भी विज्ञप्रियां प्रकाशित की स्थान २ पर मुख्य २ श्रीवकों से पत्र व्यवहार भी किया किन्तु यथेष्ठ सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी। अतः यह प्रकरण अपूर्ण ही रहा है। जैन मुनिवरों तथा जैन संस्थाओं के परिचय एक अलग परिशिष्ट भाग में प्रकाशित करने का विचार है।



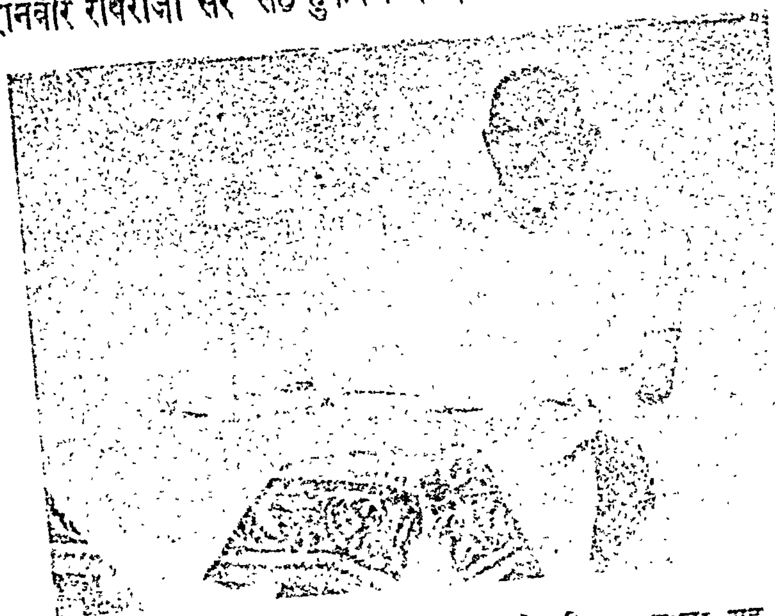
जैन समाज गौरव

[वर्तमान-समाज-परिचय]



ग्रन्थ के माननीय सहायक

★दानवीर रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी, इन्दौर



संसार में सबसे बड़ा लक्ष्मीपति बन जाने की चाह वाला यह धनकुबेर आज स्वउपार्जित अटूट द्रव्य को परोपकारी कार्यों में लगाने में दत्तचित्त है। ७५ वर्ष की उम्र के बाद समस्त सांसारिक बंधनों को छोड़ निर्लिप्त संसारी की अवस्था में साधु का सा पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

व्यापारिक जगत में उथल-पुथल मचाने वाले, अपनी व्यवहार कुशलता, व्यापारिक दक्षता, साहस एवं पुरुषार्थ से करोड़ों की सम्पत्ति उपार्जित करने वाले सर सेठ हुकमचन्दजी के पूर्वजों की जन्म भूमि मारवाड़ राज्यान्तर्गत लाडनूं जिले में मेंडसिल नामक ग्राम था। संवत १८४४ में आपके पूर्वज 'पूमाजी' इन्दौर आए और व्यवसाय का सूत्रपात किया। सेठ पूसाजी के प्रपौत्र सेठ स्वरूपचन्दजी के घर सं० १९३१ आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को सेठ हुकमचन्दजी का जन्म हुआ।

प्राचीन शिक्षाशैली के अनुसार व्यापारिक शिक्षा प्राप्त कर १५ वर्ष की वय में फर्म के कार्य में सहयोग देना प्रारम्भ किया। आपके भाग्य में तो लक्ष्मी का सहयोग था अतः आपके व्यवसाय की दिनदूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगी।

आज "सेठ स्वरूपचन्द हुकमचन्द" फर्म की गणना करोड़पतियों में होती है। इसका सारा श्रेय सर सेठ हुकमचन्द जी को ही है।

कौटुम्बिक परिचय :— आपकी प्रथम धर्मपत्नी से 'रत्नप्रभा' कन्या हुई जिनका विवाह झालरापाटन निवासी रायबहादुर वाणिज्यभूषण लालचन्दजी सेठी से हुआ। द्वितीय धर्मपत्नी का अल्पकाल में ही स्वर्गवास हो गया अतः तृतीत विवाह सं० १९६३ में भोपाल के सेठ फौजमलजी की सुपुत्री श्रीमती कञ्चनबाई के साथ हुआ जो इस समय वर्तमान हैं। आप पति परायणा, धर्मात्मा, विदुषी और परोपकारिणी महिला रत्न हैं।

आपकी माताजी को पौत्र का मुँह देखने की प्रबल इच्छा थी अतः अजमेर से कुंवर हीरालालजी को सं० १९५६ में दत्तक लिया। सं० १९७३ में हीरालालजी का विवाह धूम धाम से सम्पन्न हुआ। सं० १९८३ में सेठ कल्याणमलजी का असामयिक स्वर्गवास होजाने से कुंवर हीरालालजी को सं० १९८४ में उनकी धर्म पत्नी को सन्तुष्ट करने के लिए दत्तक दे दिया।

सं० १९६५ में सौ० कञ्चनबाई को एक कन्या रत्न प्राप्त हुई, जिसका नाम तारामती बाई रक्खा। इनका विवाह सं० १९७७ में अजमेर के सुप्रसिद्ध राय बहादुर सेठ भागचन्द्रजी सोनी के साथ हुआ।

सं० १९७० में आपके कुंवर श्री राजकुमारसिंह का जन्म हुआ। इससे आपके सारे परिवार में अत्यन्त आनन्द हुआ और आपने अनेक प्रकार के दान धर्म भी किये। श्री कुंवर राजकुमारसिंहजी की शिक्षा अजमेर के मेयो कॉलेज में राजकुमारों के साथ सम्पन्न हुई। आप M. A. L. L. B. की उच्च शिक्षा से शिक्षित है। आपका विवाह सिवनी निवासी सेठ फूलचन्द जी की सुपुत्री राजकुमारी बाई के साथ हुआ।

कुंवर राजकुमारसिंहजी से छोटी बहनें श्री चन्द्रप्रभाबाई और स्नेहराजाबाई हैं। जिनके विवाह क्रमशः इन्दौर के सेठ रतनलाल जी एवं सेठ लालचन्द जी के साथ हुये। सेठ साहब के पुण्योदय से सं० १९८७ में कुंवर राजकुमारसिंहजी को भी एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इस अवसर पर सेठ जी ने ५० हजार रुपये दान किये। तदुपरान्त सं० १९८८ में द्वितीय पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इस प्रकार आपका कौटुम्बिक जीवन सर्वसुख परिपूर्ण है।

व्यापारिक जीवन :— श्री सेठ ओंकार जी, श्री सेठ तिलोकचन्द जी एवं श्री सेठ स्वरुपचन्द जी का व्यवसाय सम्मिलित था। सं० १९५७ में आपके परिवार वालों में बंटवारा होकर आपने "सेठ स्वरुपचन्द हुकुमचन्द के नाम से व्यापार प्रारम्भ किया। वास्तव में आपका व्यापारिक जीवन यहीं से प्रारम्भ होता है। लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व मालवे में अफीम का प्रधान व्यवसाय था। आपने भी इस व्यापार को ही प्रारम्भ में अपनाया और आशा-

तीत उन्नति की। अफीम के व्यवसाय में आपने समय के रुख को देख कर बीस पच्चीस लाख की हुंडिया लगा दी। इस समय भाग्य ने आपका पूरा साथ दिया। उस समय चीन में अफीम का भाव बहुत तेज हो गया और फलस्वरुप आपको दो तीन करोड़ का लाभ हुआ। परन्तु जब देखा कि अफीम का व्यापार घटता जा रहा है तो आप भी अपना रुख बदल कर रुई, अलसी चांदी एवं सोने आदि का व्यवसाय करने लगे और थोड़े ही समय में इन व्यवसायों में भी आपका नाम चमक उठा। आपका व्यापारिक साहस उन दिनों इतना बढ़ गया कि प्रतिदिन दस-बीस लाख की हार-जीत कर लेना आपके लिए साधारण बात हो गई। बाजार भी आपके रुख के साथ ही चलने लगे और आपकी लेवा बेची से ही से देश के बाजारों में भाव का उतार चढाव होता था।

इसी प्रकार आपने अपने जीवन में सट्टे के द्वारा काफी लाभ प्राप्त किया। गत महायुद्ध में आपने गेहूँ का ख्याल किया तब स्वयं बम्बई के गर्वनर महोदय को सेठसाहब को बुलाना पड़ा और आपसे कहागया कि गेहूँ संसार का खाद्य पदार्थ है। इसका व्यापार आप इस रूप में न करें कि वह इतना मँहगा हो जाए। सेठसाहब ने गर्वनर महोदय की बात मानली और अपना गेहूँ का सौदा बराबर कर लिया। इस कार्य के लिये गवर्नर महोदय ने आपको धन्यवाद दिया। इसी प्रकार चाँदी आदि के व्यवसाय में भी आपने व्यापारिक साहस का अपूर्व परिचय दिया।

यही नहीं औद्योगिक क्षेत्र में भी अग्रसर होकर औद्योगिक भावनाओं को जागृत किया। वर्तमान में आपके द्वारा निम्न उद्योग चालू हैं—१. हीरा मिल्स लि० उज्जैन २. हुकमचन्द मिल्स लि० इन्दौर ३. राजकुमार मिल्स लि० इन्दौर ४. हुकमचन्द जूट मिल्स लि० कलकत्ता। उद्योगधन्धों के अतिरिक्त आपकी भारत के प्रमुख व्यापारिक नगरों में फर्में स्थापित हैं, जहाँ बैङ्किग कमिशन एजेन्सी का बड़े पैमाने पर व्यापार होता है।

धार्मिकजीवन—व्यापारिक जीवन के अतिरिक्त आपका सार्वाजनिक एवं धार्मिकजीवन विशेष सराहनीय है। आपने सार्वाजनिक कार्यों के लिये और जैनसमाज के लिए बहुत अधिक दान दिया है। आपके द्वारा संचालित विविध परोपकारिणी संस्थायें आपकी कीर्ति की विजय ध्वजा फहरा रही है। सेठसाहिब द्वारा संस्थापित दिगम्बरजैनमंदिरजी जँवरीबाग, विश्रान्ति भवन, महाविद्यालय, बोर्डिंगहाउस, सौ० दानशाला कंचनबाई श्राविकाश्रम, प्रिंस यसवंतराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय, दि. जैन असहाय विधवा सहायता फंड व भोजनशाला, सौ० कंचनबाई प्रसूतिगृह व शिशु स्वास्थ्यरक्षा आदि संस्थायें हैं। सेठ साहिब ने इनका कार्य चलाने

के लिए अभी तक कुल ११२८१२१) रु० प्रदान किये हैं।

संस्थाओं की स्थावर व जंगम कुल सम्पत्ति का सेठजी साहिब ने दान पत्र लिखकर होलकरगवर्नमेन्ट ट्रस्टडीड एक्ट के अनुसार उसकी रजिस्ट्री करादी है और कुल सम्पत्ति सात सदस्यों की एक ट्रस्ट कमेटी के सुपुर्द है।

आपने सर्वसाधारण के लिए समय समय पर अकाल, प्लेग, बाढ़ आदि के अवसरों पर भी काफी सहायतायें दी हैं। हिन्दीसाहित्य के प्रति भी आपका प्रेम सराहनीय है। सन् १९३८ में देशपूज्य महात्मागाँधी के सभापतित्व में इन्दौर में होने वाले हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के आप स्वागताध्यक्ष थे। मध्यभारत में हिन्दी-साहित्य के प्रचारके लिए दसहजार रुपया दान दिया था। आपने जैनधर्म के प्रचार व रक्षा लिये लाखों पया दान दिया है तथा कई मन्दिर भी बनवाये हैं।

आप रावराजा, राज्यभूषण, रायबहादुर, सर एवं नाइट जैसी उच्च उपाधियों से विभूषित हैं। इस प्रकार से आपकी प्रतिभा हर क्षेत्र में प्रकाशमान है। आपसे जैनसमाज को जितना गौरव हो वह थोड़ा है।

★ राज्यभूषण-रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी-इन्दरी :— ★

श्री सेठ पन्नालालजी अपने निवास स्थान "रामपुरा" से सन् १८१६ के लगभग इन्दौर आए और साधारण सी पूंजी से कपड़े की दुकान खोली।



आपके पश्चात् आपके पुत्र सेठ नन्दलालजी अपने पूज्य पिताजी के व्यवसाय में साहस पूर्वक अग्रसर हुए। थोड़े ही वर्षों में आपकी गणना नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में एवं प्रमुख व्यापारियों में होने लगी। आपही के घर सन् १८८८ में सेठ कन्हैयालालजी का जन्म हुआ। साधारण अंग्रेजी पढ़ना लिखना सीखने के पश्चात् औद्योगिक एवं व्यावहारिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया। केवल १५-१६ वर्ष की कोमल वय में ही आपने व्यापारिक क्षेत्र में पदार्पण किया। आगत अवसरों का सदैव उत्साह, परिश्रम और धैर्य के साथ उपयोग करते रहे और नगर

के प्रमुखतम व्यापारियों की कोटि में जा पहुँचे। सन् १६१० में कुछ जीनिंग फैक्टरीज आपके अधिकार में आईं और आपने कार्य को द्रुतगति से बढ़ाया। पहले आपने इन्दौर राज्य का स्टेटमिल २० वर्ष के ठेके पर ले लिया, अवधि पूरी होने पर सन् १६३६ में आपने उसे खरीद लिया और "रायबहादुर कन्हैयालाल भण्डारी मिल" के नाम से प्रचारित किया।

आपने तीस लाख की पूंजी से "नन्दलाल भण्डारी मिल्स" के नाम से एक और मिल्स की स्थापना की एवं दिन प्रतिदिन प्रगति और वृद्धि होती गई।

सन् १६३५ में आपको भारत सरकार ने "रायबहादुर" की पदवी से सम्मानित किया। होल्कर राज्य ने आपको "राज्य भूषण" पद प्रदान किया। उदयपुर से "राज्यबन्धु" की उपाधी से अलंकृत हुए और जोधपुर रियासत ने आपको स्वर्ण लंगर, ताजीम, हाथी और सिरोपाव से सम्मानित किया है। इस प्रकार से आप एक राज्य प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

आपने गुप्तदान व प्रकटदान के रूप में विपुल धनराशी सर्व साधारण के लिए दी। ६५०००) की लागत का "नन्दलाल भण्डारी मिल्स प्रसूति गृह" के नाम से विशाल प्रसूति गृह बनवाया। इसका व्यय ३५०००) प्रतिवर्ष है। "नन्द लाल भण्डारी हाई स्कूल" की स्थापना की और ६५०००) रुपया मूल्य का विशाल भवन बनवाकर प्रदान किया। इसके संचालन के हेतु २४०००) प्रतिवर्ष व्यय करते हैं। स्कूल की विशेषता यह है कि शिक्षा के साथ२ व्यवहारिक और औद्योगिक शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध है। मेडिकलस्कूल को लेबोरेटरी एवं शस्त्रों के निमित्त २५०००) की स्तुत्य भेट की। रामपुरा के "संयोगिता बाई हाई स्कूल" के लिए ३५०००) का विशाल "वसति गृह बनवाया" एवं प्रति वर्ष ३०००) इस पर खर्च करते हैं। इसके अतिरिक्त और की कई जातीय और धार्मिक संस्थाओं को हजारों का दान दिया है और देते रहते हैं। आप प्रति वर्ष ५० हजार रु० से भी अधिक रकम सार्वजनिक कार्यों में व्यय करते हैं। स्थानीय तथा बाहर के सार्वजनिक कार्यों में भी आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं।

आपके स्वभाव में माधुर्य; विनय तथा उदारता का अद्भुत सम्मिश्रण होने के कारण ही आप आप अत्यन्त लोकप्रिय हैं। लक्ष्मी की असीम कृपा होने पर भी अहंकार से आप कोसों दूर हैं।

रायबहादुर सर सेठ भागचन्दजी सोनी, अजमेर

आपका परिवार अपनी धर्मनिष्ठा, उदारता, समाजप्रेम तथा धन सम्पन्नता के लिए न केवल जैनसमाज में ही वरन् भारत के प्रतिष्ठित प्रमुख परिवारों में से हैं। आप खंडेलवालजातीय दिगम्बर जैनधर्मावलम्बी सज्जन है।

इसी परिवार के धर्मनिष्ठ सेठ जवाहरमल जी ने सं० १६१२ में दि० जैन चैत्यालय का निर्माण कराया जो एक दर्शनीय स्थान है। आपके तीन-पुत्र हुए—सेठ गंभीरमलजी, मूलचंदजी तथा सुगनचंदजी।

सेठ मूलचंदजी—आपकी अपार धर्मनिष्ठा ने इस परिवार को भार विख्यात बनाया। अजमेर का सर्वश्रेष्ठ दर्शनीय स्थान-सोनीजी की नशिय करौली के पाषाण का अद्वितीय श्री दिगम्बरजैनसिद्धकूट चैत्यालय वि० सं० १६५२ में आपही ने बनवाया है। इसमें सब काम स्वर्ण का है। सन-१८८२ में गवर्नमेंट ने आपको रायबहादुर की पदवी प्रदान की। अपनी लोकप्रियता के कारण आप जीवन पर्यन्त अजमेर म्यूनिसिपलिटी के कमि-श्नर तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे।

आपने कलकत्ता, बम्बई, आगरा, ग्वालियर, जयपुर, भरतपुर आदि में अपनी कोठियां स्थापित कर व्यापार विस्तार भी खूब किया। गवर्नमेंट ने भी नीमच छावनी, गवालियर, जयपुर, भरतपुर, धौलपुर करौली आदि के खजाने आपके सिपुर्द किये। वि० सं० १६५८ आषाढ शुक्ला २ को आपका देहावसान हुआ। आपके सुपुत्र सेठ नेमीचन्दजी ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

स्व० सेठ टीकमचन्दजी—आप नेमीचंदजी के सुपुत्र थे। सन् १६१६ में भारतसरकार ने आपको भी रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया। आपको स्व० जयपुर नरेश व ईडर नरेश ने स्वर्ण कटक तथा जोधपुर नरेश ने ताजीम बक्स कर राज्य सम्मानित किया था। आपने अपने पिता श्री के स्मरणार्थ-सेठ नेमीचन्द सोनी धर्मशाला करीब दो लाख रुपये की लागत से निर्माण कराई। आप भी म्यूनिसिपल कमिश्नर तथा ऑ० मजिस्ट्रेट रहे। आपके धर्मप्रेम से मुग्ध हो श्री अ० भा० दिगम्बर महासभा ने···धर्मवीर की पदवी प्रदान की थी। आपके २ पुत्र हुए सेठ भागचंदजी तथा श्री दुलीचंद जी। श्री दुलीचंदजी का १६ वर्ष की अल्पायु में ही देहावसान हो गया। आप बड़े होनहार व सरलस्वभावी युवक थे।

सेठ भागचन्दजी—आपने अपने पूर्वजों के गौरव को न केवल पुष्ट ही किया बल्कि चौगुना बढ़ाया है। लक्ष्मी और विद्या का सामञ्जस्य आप में है। जनसेवा के प्रत्येक सार्वजनिक काम में आपका पूर्ण सक्रिय सहयोग रहता है। इस तरह आप अजमेर के एक विशिष्ट लोकप्रिय पुरुष हैं। सादगी सौजन्यता उदारता तथा विद्याप्रेम आप में प्रकृतिप्रदत्त सद्गुण हैं। आपका जन्म ११ नवम्बर १९०४ को हुआ। गवर्नमेंट हाईस्कूल में आपका शिक्षण हुआ। आपको बाल्यकाल से ही सदा नवीनज्ञान प्राप्त करने साहित्य संग्रह करने तथा धार्मिक वृत्ति में लीन रहने की रुचि रही है। इन्हीं सद्प्रवृत्तियों के विकास से आज आप अ० भा० दिगम्बर जैनमहासभा द्वारा धर्मवीर-दानवीर-उपाधि से तथा श्री अ० भा० खंडेलवाल जैनमहासभा द्वारा प्रदत्त 'जाति शिरोमणी' पदवी से विभूषित हैं।



भारत सरकार की ओर से रायबहादुर, सर, केप्टीन, ओ० बी० ई० आदि उपाधियों द्वारा आप सम्मानित किये गये हैं सन् १९३५ से १९४५ तक आप केन्द्रीय लेजिसलेटिव असेम्बली के माननीय सदस्य रहे हैं। जोधपुर नरेश ने स्वर्ण और ताजीम प्रदान कर आपको सम्मानित किया है। किशनगढ़ स्टेट की ओर से आपको ताजीम और सोना प्रदान किया गया है तथा राज्य की ओर से आप को 'राज्यरत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया।

आपने पूज्य पिता श्री के स्मृति में-श्री टीकमचन्द जैनहाईस्कूल की स्थापना कर अपूर्व विद्याप्रेम का परिचय दिया है। श्री भाग्य मातेश्वरी जैनकन्यापाठशाला भी आपके सफल संचालन से शिक्षण क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रही है।

आप सन् १६४२ से ४५ तक नगर म्युनिसिपल कमेटी के चेयरमैन पद पर आसीन रहे हैं। इस अर्से में आपके द्वारा की गई जनता की सेवा चिरस्मरणीय है। आप फर्स्टक्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष उपाध्यक्ष, तथा सन्मानित सदस्य रहे हैं तथा अब भी हैं।

वर्तमान में आप 'आल इण्डिया गर्ल्स गाईड' के संरक्षक, अ० भा० दिगम्बरजैनमहा सभा के सभापति 'सावित्री गर्ल्स कालेज' के उपप्रधान तथा जोधपुर फ्लाईंग क्लब के आजीवन सदस्य तथा इंडियन क्लब अजमेर के चेयरमेन हैं। और भी कई शिक्षण व सार्वाजनिक संस्थाओं के परम सहायक हैं।

व्यापार विकास में आपने काफी तरक्की की है। भारत के प्रसिद्ध उद्योगपतियों में आपकी गिनती है। रा० व० टीकमचन्द भागचन्द लिमिटेड के चेयरमैन व मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। दी महाराजा किशनगढ़ मिल्स के चेअरमैन व मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। अजमेर, रतलाम, जलगांव मंदसौर की बिजली कंपनियों के डाइरेक्टर हैं। मेवाड़ टेक्सटाइल मिल्स, दी इंडियन रौ कंस्ट्रक्सन कारपोरेशन लि० कानपुर तथा जोधपुर कमर्शियल बैंक आदि कई एक प्रसिद्ध उद्योगों के आप डायरेक्टर हैं। बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे तथा जोधपुर रेलवे के खजांची रह चुके हैं तथा राजस्थान की जयपुर, उदयपुर रेल्वे के आप खजांची हैं। आपकी फर्म की शाखाएँ बम्बई कलकत्ता जयपुर, जोधपुर, आगरा उदयपुर, धौलपुर, भरतपुर, शाहपुरा, किशनगढ़, खण्डवा, मंदसौर, कोटा, ग्वालियर आदि भारत के लगभग २० प्रमुख नगरों के हैं जो आपही के सफल संचालन में है। जैनधर्म जैनसमाज तथा जैन तीर्थों व मंदिरों में आने वाले संकटों के अवसर पर आपके द्वारा की जाने वाली सुरक्षा के कारण आप समाज के विशिष्ट एवम् कर्मठ नेताओं में गिने जाते हैं। आप अ. भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई के उपसभापति हैं। आपने जैन विधवाओं की सहायता के लिये ४२०००) का धौव्यफन्ड निकालकर विधवाओं के जीवन निर्वाह का सुगम एवम् अनुकरणीय मार्ग प्रस्तुत किया है।

हिन्दी और जैनसाहित्य के आप अनन्य प्रेमी है। आपका निजी पुस्तकालय बहुत विशाल है। प्राचीन जैनग्रन्थों का संग्रहालय आपके यहां कई पीढियों से चल रहा है जिसमें अनेक अलभ्य जैनग्रन्थ हैं।

आपके २ सुपुत्र हैं—प्रथम श्री प्रभाचन्द जी बी० ए० की डिग्री प्राप्त करके आजकल महाराजा किशनगढ मिल्स का काम काज संभाल रहे हैं। आपको २१ वर्ष की अल्प अवस्था में महाराणा उदयपुर द्वारा केप्टिन की

उपाधि से सन्मानित किया गया है। समाज से आपको बहुत आशायें हैं। द्वितिय पुत्र श्री० निर्मलचन्दजी प्रथमवर्ष विज्ञान में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तथा सबसे छोटे पुत्र सुशीलचन्दजी ९ वीं कक्षा में अध्ययन कररहे हैं।

श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन, बम्बई

आप भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति डालमिया जैन ग्रुप के द्वारा बम्बई प्रान्त में संचालित औद्योगिक संस्थाओं के प्रमुख अधिकारी, व्यवस्थापक व संचालक हैं। आपका जन्म नजीबाबाद के प्रतिष्ठित साहू परिवार में सन् १९०८ में हुआ। आपका खानदान अपनी अपूर्व व्यापार कुशलता एवं सहृदयता के लिये प्रसिद्ध है।

साहूजी ने अपने नगर और जिले की जनता की भलाई के लिये धन सहायतार्थ लगा कर कई प्रसंशनीय कार्य किये हैं और करते रहते हैं। समाज सुधार तथा जनजागृति के कामों में आपकी अच्छी रुचि है। आपने इन सत्कार्यों में एक बड़ी रकम दान की है। 'महिला शिक्षण सेवासमिति' आदि क्षेत्रों में आपने बड़ी सेवाएँ की हैं।

आप एज्जुकेशन कमेटी आफ डिस्टिक्ट बोर्ड बिजनौर के प्रेसीडेण्ट तथा नजीबाबाद म्यूनिसीपल बोर्ड के कई वर्षों तक वाईस चेयरमैन रहे हैं।

आपका व्यापार कौशल भी अद्भुत है। शाहू रवर्स लिमिटेड बम्बई के चेयरमेन तथा भारत इंश्युरेन्स कं. लि. लाहौर के वा. चेयरमेन हैं। भारत बैंक लि. दिल्ली, भारत फायर एन्ड जनरल इंश्युरेन्स कं. लि. दिल्ली, सिमेण्ट मार्केटिंग कं ऑफ इंडिया लि. बोम्बे, इलाहाबाद लॉ जनरल कं. लि., बेनेट कोलेमन कं. लि., दी बोम्बे क्योरिन प्रोडक्ट लि., दी सरशप्रजी भड़ोंच मिल्स कं. लि. दी माधवजी धरमसी मेन्यु फेक्चरिंग कं. लि., धांगध्रा मेन्यु-फेक्चरिंग कं. लि बोम्बे एंड दी लाहौर इलेक्ट्रिक सप्लाई कं. लि., लाहौर आदि के डायरेक्टर हैं।

जैनसमाज के तो आप प्रमुख आगेवान नेता हैं। समाजोन्नति की कई योजनाओं के आप जनक तथा परम सहायक हैं। जैनसमाज की कई जनहितकारी संस्थाएँ आपकी सहायता से पोषण पा रही हैं। वर्तमान में आप अ० भा० दिगम्बर जैनसंघ तथा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा के सभापति हैं तथा अ० भा० दिगम्बर जैनपरिषद के सभापति हैं जैनसमाज को आप जैसे व्यक्तियों पर गौरव है। पता—१५ ए. एल्फिन्स्टन सर्कल कोर्ट बम्बई।

★सेठ छगनमलजी मूथा, बंगलोर :—

आपका मूल निवासस्थान मारवाड़ जंकशन के निकटस्थ पीपली कस्बा है। बाद में यह परिवार (जोधपुर) रहने लगा। सेठ नवलमलजी के ३ पुत्र हुए सेठ सरदारमलजी, सेठ गंगारामजी तथा सेठ बालचन्द जी।



सेठ सरदारमलजी के २ पुत्र और एक पुत्री हुई। दो पुत्र सेठ छगनमलजी तथा सेठ मूलचन्दजी।

सेठ छगनमलजी की प्रारंभिक शिक्षा बलून्दा में हुआ। अनुभव ज्ञान बहुत बढ़ाचढ़ा है। छोटी अवस्था में ही व्यवसाय में जुट गये। कुशाग्रबुद्धि और कर्मठता से इस क्षेत्र में अच्छी योग्यता प्राप्त करली और थोड़े ही अर्से में कई नई दुकानें आरम्भ की और व्यवयाय को काफी ऊँचे स्तर पर पहुँचा दिया। वर्तमान में आपकी करीब १२ दुकाने बंगलौर, मद्रास, जोधपुर आदि में चल रही हैं।

धार्मिक वृत्तिः—आप में मानवोचित प्रायः सब सद्गुण पाये जाते हैं। हृदय की महान् उदारता, मिलनसारिता, सादगी और धर्ममय जीवन आपके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं।

स्वयं धर्म प्रवृत हैं और धार्मिक कार्यों में तन मन व धन से सदा आगेवान रहते हैं। यही कारण है कि आज भारतवर्षीय स्थानवासी जैनसमाज में ही नहीं अपितु समस्त जैनसमाज में और ओसवाल समाज में आपका नाम सर्वोपरि आगेवान पुरुषों में बड़े सम्मान के साथ आता है।

आपकी दैनिक जीवनचर्या में सामायिक, प्रतिक्रमण व्रत पच्छक्खाण, मुनिदर्शन आदि आवश्यक अंग हैं। इन कामों में कभी चूक नहीं पड़ती। प्रतिवर्ष जैनमुनिराजों के दर्शनार्थ अवश्य जाते हैं।

परोपकारी कार्यः– आपकी उदारता सर्वतोमुखी है। आपकी ओर से खारची, बलून्दा तथा मेड़ता में परोपकारी औषधालय चल रहे हैं। खारची में आपका परोपकारी दवाखाना काफी विशाल है।

आँखों के मुफ्त आपरेशनः— आपने सन् १९४६ में ब्यावर में प्रसिद्ध नैत्रा चिकित्सक से गरीब व्यक्तियों के मुफ्त में आँखों के आपरेशन करवाये करीब ३२५ आपरेशन हुए। मरीजों तथा साथ में आने वालों सब के ठहरने भोजन तथा सेवा सुश्रुषा की व्यवस्था आपकी ओर से थी। स्वयं ने तथा सेठानी जी ने रोगियों की विना भेद-भाव तन, मन व धन से सेवा की।

इस प्रकार की आपकी दानवीरता के कई प्रकरण हैं। कई व्यक्तियों को आपने आर्थिक सहायता देकर धंधे सर लगाया आपके मुनीमों तथा मिलने वालों में कई ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पुत्र पुत्रियों के विवाह अपने खर्च से कराये हैं।

पुस्तक प्रकाशन कार्य में भी आपकी अच्छी रुचि है इस तरह सेठ साहेब प्रति वर्ष करीब ५० हजार रुपया शुभ कार्यों में लगाते हैं।

शिक्षा प्रचार :— आपका ध्यान शिक्षा प्रचार कार्यों की ओर विशेष है। आपकी ओर से बंगलोर, खारची, बलूंदा, जैतारण आदि स्थानों पर शिक्षण संस्थाएँ चल रही हैं। जिनमें सैंकड़ों छात्र निशुल्क शिक्षा पारहे हैं। उच्च अभ्यास करने वालों को आपकी ओर से छात्रवृतियाँ भी प्रदान की जाती हैं।

इस शिक्षा प्रचार विभाग में प्रति वर्ष १५-२० हजार रुपया खर्च किया जाता है स्थानकवासी जैनसमाज की तथा ओसवाल समाज की शायद ही कोई ऐसी संस्था होगी जिसे सेठ साहेब द्वारा सहायता प्राप्त नहीं हो। अनेक संस्थाओं के तो आप जन्मदाता सहायक और संरक्षक हैं।

ओसाजी ओखाजी, मालवाड़ा, (जोधपुर)

[ग्रन्थ के माननीय संरक्षक]

इन सीधे सादे मारवाड़ी सज्जनों को देखकर यह कभी अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा कि ये एक बड़े श्रीमंत होंगे तथा श्रीमंताई के साथ २ एक बड़े दानवीर भी होंगे।

मारवाड़ के इस शुभ दानी परिवार की प्रसिद्धि अन्य श्रीमंतों की तरह चाहे न हो पाई हो पर सेठ मगनलालजी, सेठ मूलचन्दजी और सेठ चिम्मनलालजी तीनों बंधु जैन समाज के "गुदड़ी में छिपे लाल" हैं अपनी सम्पत्ति का उपयोग परोपकारी कार्यों में करने में परम उदार हैं।

पोरवाल गोत्रोत्पन्न इस परिवार की कार्य भूमि मुख्य रूपसे मारवाड़

ही है। परिवार के प्रमुख पुरुष सेठ मगनलाल जी हैं। आयु ५० साल की है आप धार्मिक एवं कर्तव्य शील पुरुष हैं। धर्मशास्त्रों के पठन एवं धर्म कार्यों में आप खूब दिलचस्पी लेते हैं। आपके बाबूलालजी एवं उत्तम चन्दजीनामक दो पुत्र हैं। जिनकी आयु क्रमशः २५ एवं १६ वर्ष है। श्री सेठ मगन लालजी के लघु भ्राता मूलचन्दजी हैं। आपकी आयु ५२ वर्ष की है। आप भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान ही धर्म निष्ठ एवं उदार सज्जन हैं। आपके तीन पुत्र हैं कुं. अमर चन्दजी, शान्ति नाथजी एवं जमनाजी हैं।


सेठ मगनलालजी उमाजी

श्री सेठ मूलचन्दजी से छोटे भाई चिमन लालजी हैं। आपकी आयु इस समय ४५ वर्ष की है। आपके मगनचन्दजी एवं हुक्मचन्दजी नामक दो पुत्र है। इस परिवारकी गोत्र चौहान है।


सेठ मूलचन्दजी उमाजी

मालवाड़ा (जसवन्तपुरा-परगना) जोधपुर में इस परिवार की ओर से एक हाई स्कूल एवं एक विशाल हॉस्पिटल ८ वर्ष तक चलता रहा और पीछे दृढ़ व्यवस्था की दृष्टि से सवालाख रुपये दान देकर जोधपुर स्टेट को सुपुर्द किया गया। जिस प्रकार से परिवार ने सार्वजनिक सेवा में महत्वपूर्ण भाग लिया, उसी प्रकार से धर्म कार्यों में भी सदा अग्रणी रहा। सं० १९८५ के जेठ सुद ३ को उजमणा तथा अट्ठाई महोत्सव कियाजिसमें २८ हजार रुपया खर्चा

हुआ। श्रीमान चिमनलालजी तथा उनकी धर्मपत्नि श्री पांचु बहनने उद्यापन किया। तथा मगनलालजी की श्रीमती श्री चन्दन बाई ने उद्यापन किया, सब २० हजार रुपये खर्च हुए। इस प्रकार से समय २ पर अन्य धार्मिक कृत्यों पर भी खूब खर्च किया। श्री चिमनलालजी धार्मिक कार्य कलापों में खूब ध्यान देते हैं। आपने वर्षीतप किया एवं वन्दन शलाका पर ४० हजार खर्च किया।

बम्बई के मूलजी जेठा मार्केट में आपकी दो फर्मे "मगनलाल चिमनलाल" "मन्नूभाई मूलचन्द" के नाम से है। जहाँ पर कपड़े का व्यापार इम्पोर्ट और एक्स पोर्ट रूपसे होता है। इसके अतिरिक्त इन्दौर में भी आपकी फर्म हैं।

शिक्षा प्रचार की ओर आप उदार चेताओं का कितना ध्यान है यह मालवाड़ा का 'सेठ ओमाजी ओकाजी हाई स्कूल' बता रहा है। परोपकारी हर कार्य में आपकी बड़ी सहायता रहती है। आप प्रायः गुप्तदान विशेष प्रदान करते रहते हैं। बहुत बड़े श्रीमंत होते हुए भी आप सब भाई बड़े सादगी प्रिय हैं। सब का जीवन बड़ा धार्मिक प्रवृत्ति युक्त उदार है। पारमार्थिक कार्यों में सहायता करना तो इनका जन्मजात गुण बना हुआ है।

जैन साहित्य प्रकाशन कार्य में आप की बड़ी दिलचस्पी है। कई ग्रन्थों के प्रकाशनों में आपका आर्थिक सहयोग रहा है। जैन-गौरव-स्मृतियाँ ग्रन्थ प्रकाशन की जब आपसे चर्चा की गई तो आपने स्वयमेव ५००) की महान् सहायता प्रदान करने की उदारता प्रकट की।

रामपुरिया परिवार-बीकानेर

बीकानेर का रामपुरिया परिवार भारत के उद्योग पतियों में अपना प्रमुख स्थान रखता है इस परिवार में कई मेधावी और व्यापार-कुशल सज्जन हुए जिनके सञ्चालकत्व में "हजारीमल हीरालाल" फर्म ने आशातीत सफलता प्राप्त करके भारत की धनकुबेर फर्मों में प्रतिष्ठित हुए। फर्म से न केवल बंगाल और राजस्थान की संस्थाओं के अपितु अनेक प्रांतों में अनेक संस्थाओं को उपरोक्त फर्म द्वारा आर्थिक संरक्षण प्राप्त होता है। कलकत्ते में पाटसरि के कार्य में उपरोक्त फर्म सर्व प्रथम है। यहाँ पर इस परिवार द्वारा दी रामपुरिया काटन मिल्स लिमिटेड स्थापित है जिसका उपरोक्त फर्म मैनेजिङ्ग एजेन्टस है। मिल में २५००० स्पिन्डल्स और ८०० लूमस् हैं। देश व्यापी वस्त्र व्यवसाय एवं मजदूर संघ को ऐसी महान संस्थाओं से काफी सहयोग प्राप्त होता है।

रामपुरिया परिवार की हृदय कोमलता भी प्रशंसनीय है जिसका ज्वलन्त उदाहरण आप द्वारा संचालित बीकानेर का रामपुरिया इन्टर कालेज व

स्कूल आदि हैं। बंगाल के दुर्भिक्ष के समय सहस्रों निस्सायों को निःशुल्क भोजन दिया एवं यथोचित आर्थिक सहायता दी। और भी ऐसे फण्ड स्थापित किए हुए हैं जिनसे देश के किसी भी कोने में स्वास्थ्य एवं शिक्षा प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया जावेगा। उपरोक्त महानुभावों का परिचय निम्न प्रकार से है।

सेठ बहादुरमलजी—आप बड़े मेधावी पुरुष हुए हैं। १३ वर्ष की अल्पायुमें ही कलकत्ता गये एवं मेसर्स चैनरूप सम्पतराम दूगड़ के यहाँ ८) मासिक पर गुमास्ते बने। सात वर्ष के पश्चात् आप उन्ही के यहाँ मुनीम हो गये। सन् १८८३ में आपने "हजारीमल हीरालाल" के नाम से दुकान शुरू की स्वल्प समय में ही आपने फर्म का सुयश अच्छा फैला दिया। आपके पुत्र श्री जसकरणजी भी सफल व्यवसायी तथा धार्मिक पुरुष थे। आपने विदेशों में मैनचेस्टर तथा लन्दन में भी फर्म स्थापित कर अपने व्यवसाय को उन्नत किया। आपके पुत्र भंवरलालजी बड़े ही होनहार एवं मेधावी हुए।

सेठ भंवरलालजी रामपुरिया—आप अपने पूर्वजों की भांति प्रतिभा सम्पन्न एवं सफल व्यवसायी हुए। आपने बीकानेर में रामपुरिया जैन इण्टर कालेज की स्थापना कर विद्या प्रेम का परिचय दिया। बीकानेर चेम्बर आफ कोमर्स की स्थापना करने में आपका महत्वपूर्ण भाग रहा। सन् १९४७ में बीकानेर में युवावस्था में ही देहावसान हो गया।

सेठ शिखर चन्दजी तथा नथमलजी रामपुरिया

आप दोनों सेठ हजारीमलजी के पुत्र हैं। सेठ हजारीमलजी एक धार्मिक तथा समाज प्रेमी सज्जन हुए हैं सं० १९६५ में आपका स्वर्गवास हो गया। सेठ शिखरचन्दजी का जन्म सं. १९५० का है। आप परम धार्मिक तथा सरल स्वभावी सज्जन हैं। रामपुरिया काटन मिल के बोर्ड आफ डायरेक्टर के चेयरमैन हैं। आपके घेवरचन्दजी· कँवरलालजी तथा शान्तिलालजी नामक तीन होनहार पुत्र हैं। आप सभी व्यापार में सहयोग देते हैं।

सेठ नथमलजी रामपुरिया :— आपका जन्म सं० १९५६ में हुआ। आप बड़ योग्य और धार्मिक प्रकृति के मिलनसार व्यक्ति हैं। आपने सीधे जापान से कपड़ा इम्पोर्ट करने का व्यवसाय प्रारम्भ किया जिसमें आपको आशातीत सफलता मिली। आप रामपुरिया कॉटन मिल के डायरेक्टर हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री सम्पतलालजी व्यापार में सहयोग देते हैं तथा मिलन

सार व्यक्ति हैं इनसे छोटे श्री मूलचन्दजी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। आप जन साधारण जीवन में विशेष रूचि से भाग लेते हैं।

सेठ जयचन्दलालजी रतनलालजी माणकचन्दजी रामपुरिया

आप लोगों की की गणना बीकानेर के प्रतिष्ठित श्रीमानों में है। आप स्व० सेठ हीरालालजी रामपुरिया के पौत्र तथा सेठ सौभाग्यमलजी के सुपुत्र हैं। आपने पूज्य दादा और पिताजी की स्मृति में २ लाख रुपये का "सेठ हीरालाल सोभागमल रामपुरिया चैरिटीट्रस्ट "नामक कोष निकाल कर जैन हित सेवा का अपूर्व परिचय दिया।

सेठ जयचन्दलालजी रामपुरिया:- आप एक मिलनसार, साहित्यप्रेमी, परोपकारी एवं समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आपका व्यापारी समाज में अधिक सम्मान है। आप बीकानेर जिपसमस लिमिटेड, रामपुरिया कॉटन मिलस लिमिटेड तथा रामपुरिया प्रोपरटी लिमीटेड के डायरेक्टर तथा प्रमुख कार्यकर्ता हैं। आप फर्म "हजारीमल हीरालल" को सक्रियसहयोग देते हैं।

सेठ रतनलालजी रामपुरिया :— अल्पायु में ही आपने काफी सुयश प्राप्त कर लिया है। आप बीकानेर रिफ्यूजी रिलीफ कमेटी के चेयरमेन तथा बीकानेर चेम्बर आफ कोमर्स की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य हैं। कुछ वर्ष तक डाईरेक्टर रह कर इस वर्ष-"दीबैंक ऑफ बीका-नेर लिमिटेड" के चेयरमेन नियुक्त हुए हैं। आपको सदा से ही विद्या से प्रेम रहा है तथा अनेक प्रकार से विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करते हैं आप "दी ग्रेट इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी" के डायरेक्टर रहे इस प्रकार से आप कई व्य-वसायिक क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। आप २५ वर्ष के होनहार नव युवक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रसार के हेतु आप इस वर्ष



विलायत, अमेरिका आदि जाकर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का विचार कर रहे हैं। आपके चि अभयकुमार और राजेन्द्रकुमार नामक दो सुपुत्र हैं।

सेठ माणकचन्दजी रामपुरिया :— आप सेठ हीरालालजी के कनिष्ठ पुत्र हैं। आप विद्याप्रेमी तथा मिलनसार युवक है। जनसाधारण जीवन तथा साहित्य गोष्ठियों में आप विशेष सक्रियता से भाग लेते हैं।

★रानीवाला परिवार, ब्यावर [मेसर्स चंपालाल रामस्वरूप]

आपके यहाँ का सारा व्यापारिक कारोबार 'मेसर्स चम्पालाल रामस्वरूप' के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मूल निवास स्थान खुरजा (यू० पी०) है। सेठ माणकचन्दजी साहब के सात पुत्र हुए। जिनमें से सेठ चम्पालाल जी एक प्रतिष्ठित और सम्माननीय व्यक्ति थे। आप ब्यावर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट एवं गवर्नमेण्ट ट्रेजरार भी रहे थे। आपके दस पुत्र हुए सेठ रामस्वरूपजी, सेठ मोतीलालजी, सेठ शान्तिलालजी, सेठ तोतालालजी, सेठ सूआलालजी, सेठ सुन्दरलालजी, सेठ हीरालालजी, सेठ पन्नालालजी, सेठ गणेशीलालजी तथा सेठ जयकुमारजी। जिनमें से सबसे बड़े श्री रामस्वरूपजी ने सन् १६०६ ई० में ब्यावर में 'एडवर्ड मिल' की स्थापना की। जो आज दिन न केवल ब्यावर बल्कि राजस्थान की वस्त्र मिलों में सबसे प्रमुख व प्रतिष्ठित है। आपका सन् १६ ६ में देहावसान हुआ। रायसाहब सेठ मोतीलालजी रानीवाला ही इस समय इस फर्म के सब कारोबार की प्रमुख रूप से देखभाल करते हैं। इस फर्म का मुख्य व्यवसाय रूई का ही है।



रा० सा० श्री मोतीलालजी रानीवाला

रा० सा० श्री मोतीलालजी रानीवाला:—आप सन् १६१६ से एडवर्ड मिल के मैनेजिंग डाईरेक्टर व चेयरमैन पद पर काम करते रहे हैं और आप के संचालकत्व में मिल ने काफी सफलता प्राप्त की है। सौजन्यपूर्ण व्यवहार सम्मती व मिलनसारिता आपके प्रशंसनीय गुण हैं।

लगभग ६॥ लाख की रकम से एडवर्ड मिल का प्रारम्भ हुआ और प्रथम वर्ष में ही इस मिल ने काफी मुनाफा बतलाया।

ब्यावर के अलावा बम्बई आदि बड़े नगरों में भी आपका काम काज है। अजमेर मेरवाड़ा के कई स्थानों में व शाहपुरा, टोंक, भीलवाड़ा, कपासन सनवाड़, गंगापुर, किशनगढ़, गुलाबपुरा, तथा जयनगर (दरभंगा) बालपुर (बंगाल) व वर्दमान (बंगाल) आदि में भी आपका कारोबार है। इसके अलावा अपने जिले में अन्य कई छोटे बड़े उद्योगों व कम्पनियों में आपका सहयोग है। आपका सामाजिक व धार्मिक तथा ब्यावर के हरेक अच्छे काम में प्रमुख सहयोग रहता है।

आपकी इस समय ५३-५४ वर्ष की उम्र है। इस परिवार में सबसे ज्येष्ठ भी इस समय आप ही हैं। आपके कुंवर प्रीतमकुमार व प्रमोदकुमार तथा श्री राजमती बाई, विमला बाई तथा प्रेमबाई ये पांच संतान हैं आप पन्नालाल दिगम्बर जैनपाठशाला के अध्यक्ष हैं। न केवल इस जिले के बल्कि सारे राजस्थान के एक प्रमुख अनुभवी व्यवसायी सज्जन हैं। आपकी भारत के जैनसमाज में बड़ी प्रतिष्ठा है।

आप एडवर्ड मील ब्यावर के मैनेजिंग डाइरेक्टर व चेयरमेन तो हैं ही साथ ही 'हाडोती' काटन प्रेस केकड़ी व हांसी के मैनेजिंग डाईरेक्टर हैं।

सेठ तोतारामजी :—

'जन्म सं १९५८। आपके कुंवर सजनकुमारजी व कुंवर प्रद्युम्न कुमारजी दो पुत्र तथा श्री गुलाबबाईजी व कमलाबाईजी नामक दो पुत्रियां हैं। आप एडवर्ड मिल्स ब्यावर तथा हाडोती काटन प्रेस केकड़ी व हांसी के डाईरेक्टर हैं। सेठ मुन्नालालजी का स्वर्गवास वि. सं १९७५ आसोज मास में हुआ।

सेठ सुन्दरलालजी-आप सेठ रामस्वरूपजी के दत्तक पुत्र हैं। जन्म संवत १९६२ में हुआ। आपके कुं० श्री जम्बूकुमारजी कुं० विजय कुमार जीव कुं० विनोदकुमारजी तीन पुत्र तथा बाई गुणमालजी नामक एक पुत्री है आप भी एडवर्ड मिल्स ब्यावर के डारेक्टर हैं। श्री अलख पन्नालाल दिगम्बर जैनसरस्वती भवन ब्यावर, बम्बई व झालरापाटन के जनरल सेक्रेट्री हैं।

सेठ हीरालालजी :—आपका जन्म सं० १९६५ विक्रमी में हुआ। आपके कुंवर देवेन्द्रकुमारजी, कुं० वीरेन्द्रकुमारजी, कुं० मधुकुमारजी व कुं० सुरेन्द्रकुमारजी नामक चार पुत्र व श्री शारदाजी व सुशीलाजी नामक दो पुत्रियाँ हैं। सेठ पन्नालालजी का स्वर्गवास वि. सं. १९९२ भाद्रवामास में हुआ।

सेठ गणेशीलालजी :—

आपका जन्म सं० १९७२ विक्रम में हुआ। आपके कुं० महेन्द्रकुमारजी, कुं० सुशीलकुमारजी व कुं० रमेशकुमारजी तीन पुत्र व बाई इन्दुमतिजी

नामक एक पुत्री हैं। सेठ उदयकुमारजी-आपका जन्म सं० १६७६ वि० में आपके हुआ। कु० अरुणकुमारजी व पुष्पाबाई नामक दो संतानें हैं।

रानीवाला परिवार की ओर से एडवर्ड मिल्स ब्यावर के अलावा हाईड्रोलिक काटन प्रेस ब्यावर, और जैन्स जिनिंग फेक्टरी केकड़ी, रामस्वरूप मोतीलाल जिनिंग फेक्टरी हांसी (ईस्ट पंजाब) मोतीलाल तोलाराम राईस मिल्स बोलपुर (बंगाल) व जयनगर (दरभंगा) का संचालन व माडर्न सिलिकेट वर्क्स छेहरटा (पंजाब) और अमृत लिकिके वर्क्स फिरोजाबाद का काम भी पार्टनरशिप में होता है। इस परिवार के सभी लोग धार्मिक व सामाजिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं व सहयोग करते हैं। इस परिवार की एक सुन्दर नसियाँ व बगीचा तथा जैनमन्दिर भी ब्यावर में है। हर लोकोपकारी कार्य में इस फर्म की पूर्ण सहायता रहती है।

★ श्री सेठ दीवानबहादुर सर सेठ केशरीसिंहजी बाफणा, कोटा (राजस्थान)

कोटा के सुप्रसिद्ध बाफणा कुटुम्ब के महान् भाग्यशाली पुरुष सेठ बहादुरसिंहजी एक नामाङ्कित पुरुष हो चुके हैं। आप ही के वंशज श्री सेठ केशरीसिंहजी अपने पूर्वजों के गौरवानुरूप राज्य प्रतिष्ठित, समाज सन्मानित और उदार महामना हैं।

सन् १६१२ के देहली दरबार में सरकार ने आप को आमन्त्रित किया। आपके कार्यों से प्रसन्न होकर तत्कालीन सरकार ने सन् १६१२ में राय साहब १६ ६ में राय बहादुर और १६२५ में दीवान बहादुर की सम्मानीय उपाधियों से विभूषित किया। आपको कोटा, बूंदी, जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर, रतलाम टोंक इत्यादि रियासतों



दी० ब० सेठ केशरीसिंह जी

से पैरों में सोना, जागीर व तालीम मिली हुई है।

श्री सेठ केशरी सिंह जी सा. के तीन पुत्र व एक पुत्री हैं। ज्येष्ठ पुत्र राज्यरत्न कुंवर बुधसिंहजी एम. ए. हैं। आप कुशाग्र बुद्धि, सदाचारी एवं विद्वान हैं। साहित्यिक कार्यों में आप की विशेष अभिरुचि है। सन् १९५० में कोटा में हुए श्री अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप स्वागताध्यक्ष थे। कोटा के सार्वजनिक क्षेत्रों के आप कर्मठ सहयोगी रहते हैं। श्री पवित्रकुमारसिंहजी व गजेन्द्र कुमार सिंह जी विद्याभ्यास करते हैं।



कुं० बुद्ध सिंह जी बाफना

श्री सेठ साहब ने सिद्धाचल शत्रुञ्जय आदि की तीर्थयात्रायें की और हजारों रुपयों का दानपुण्य किया। धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में आप मुक्त हस्त से दान देते रहते हैं।

आप एक माने हुए, उच्चतम व्यवसायी हैं। भिन्न २ स्थानों पर आपकी २५-३० फर्में सुविस्तृत रूपसे व्यवसाय करती है। आपकी श्रीगंगानगर (बीकानेर) में शुगर मिल, देहली में पोटेरी वर्कस, तथा धोलपुर में आयल मिल है। रतलाम के इलेक्ट्रिक कारखाने व कोटा में "कोटा ट्रान्सपोर्ट' के आप मैनेजिङ्ग एजेन्ट हैं। इसके अतिरिक्त आप भारत सरकार के आबू व इन्दौर दफ्तरों के कोषाध्यक्ष भी हैं।

★सेठ सौभाग्यमलजी सा० लोढा, अजमेर

अजमेर का लोढा परिवार राजस्थान के ख्यातिप्राप्त एवं प्रतिष्ठित श्रीमन्त परिवारों में से है। इसी परिवार में सेठ उम्मेदमलजी बड़े ही नामाङ्कित, लोकप्रिय और धर्मनिष्ठ हुए। आप व्यापार में बड़े दक्ष थे। सन् १९०१ में आपको भारत सरकार ने "दीवान बहादुर" की पदवी से सुशोभित किया। आपने ही ब्यावर में "दी एडवर्ड मिल" खोली जो भारत विख्यात है। आपने सेठ समीरमलजी के दूसरे पुत्र अभयमलजी को गोद लिया।

श्री सेठ अभयमलजी बड़े ही लोकप्रिय और कार्यदक्ष थे। आपने अपने पूज्य पिताजी की स्मृति में इर्गाग्विलरोड पर एक विशाल एवं आराम मय धर्मशाला बनवाई। आप बड़े मिलनसार और उदारचेता थे परन्तु खेद

है कि २९ वर्ष की अल्पायु में ही आपका स्वर्गवास हो गया। सेठ सौभाग्यमलजी आप ही के पुत्र हैं।

श्री सेठ सौभाग्यमलजी सा० का शुभ जन्म सं० १९७२ माघ सुदि पूर्णिमा को हुआ। आप बड़े ही समाज प्रेमी, उदार चेता और व्यापार दक्ष हैं। स्थानीय "ओसवाल जैन-हाई स्कूल" के आप सभापति हैं और लोकल रेल्वे एडवाइजरी बोर्ड के मेम्बर हैं। जैनजाति के अनुरूप गौरव मय कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं।

आपके पुत्र कुं० सम्पतलालजी हैं। और सुशीला कुंवर और सरला कुंवर नामक दो कन्यायें हैं।

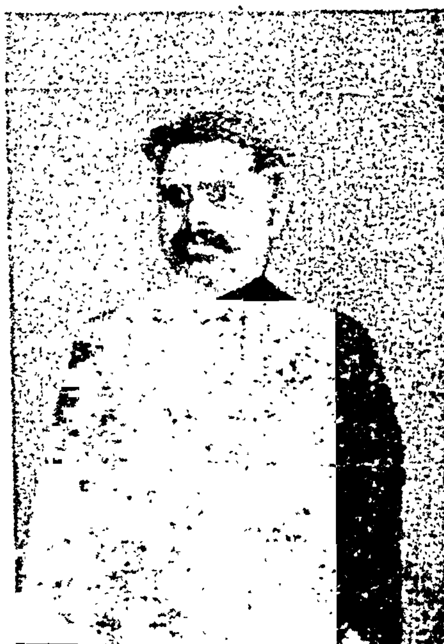
"श्री उम्मेदमलजी अभयमलजी' के नाम से व्यापार होता है इसके अतिरिक्त आप मेवाड़ टेक्सटाईल मिल्स लि० भीलवाड़ा के मैनेजिंग डायरेक्ट हैं। बैंक ऑफ जयपुर एवं एडवर्ड मिल के डायरेक्टर हैं। हाल ही में आपने अजमेर में सम्पत मोटर कम्पनी के नाम से मोटर एजेन्सी का बहुत बड़ा व्यवसाय प्रारम्भ किया है। इसके अतिरिक्त भी आपका व्यवसायिक कार्य और भी विस्तृत है। 'मेसर्स उम्मेदमल अभयमल' के नाम से अजमेर व बम्बई कोटा आदि कई स्थानों पर अपनी फर्म प्रतिष्ठित हैं।

★सिंघी परिवार कलकत्ता—

(बाबू राजेन्द्रसिंहजी सिंघी एवं बाबू नरेन्द्रसिंहजी सिंघी) बाबू राजेन्द्रसिंहजी के पितामह बाबू डालचन्दजी सिंघी कलकत्ता के एक प्रमुख व्यवसायी थे। "हरिसिंह निहालचंद" नामक पेढी आप ही के पुरुषार्थ से बंगाल में जूट की पेढ़ियों में सबसे बड़ी गिनी जाने लगी। मध्यप्रांत स्थित कोरिया स्टेट में कोयले की खानों की नींव डाली व एतदर्थ "डालचंद बहादुरसिंह" नामक फर्म की स्थापना की जो कि हिंदुस्थान में एक अग्रगण्य फर्म गिनी जाती है। जैनधर्म के लोकहितकर सिद्धान्तों के प्रचार के लिए योग्य साहित्यनिर्माण करने की अभिलाषा भी अति तीव्र थी पर उसे मूर्त रूप देने से पूर्व ही सन् १९२७ में उनका स्वर्गवास हो गया।

बाबू डालचंद की साहित्य विषयक अपूर्ण अभिलाषा की पूर्ति उनके सुयोग्य प्रसिद्ध पुत्र बाबू बहादुरसिंहजीने की। "भारतीय विद्याभवन" बम्बई से प्रकाशित सिंघी जैनग्रन्थमाला आप ही की साहित्य सेवा का फल है। आप द्वारा संग्रहित अमूल्य संग्रह भारत के प्रसिद्धतम संग्रहालयों के समकक्ष है। साहित्य प्रवृत्ति में आपने लाखों व्यय किये। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक हितकर प्रवृत्तियों में भी उदारता पूर्वक भाग लिया। श्रीयुत बाबू श्रीबहादुरसिंहजी का ५९ वर्ष की अवस्था में सन् १९४४ में स्वर्गवास हुआ।

बाबू राजेन्द्रसिंहजी—बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी के तीन पुत्रों में बाबू राजेन्द्रसिंहजी सिंघी सर्व ज्येष्ठ हैं। आपका जन्म सं० १९०४ में हुआ। सन् १९२७ में आपने बी. काम पास किया। आप अपने पिताजी के समान ही उदारचित्त हैं। एवं साहित्यिक व सार्वजनिक हित की प्रवृत्तियों का मुक्त मन से पोषण करते हैं। आपने अपने पिताजी के पुण्य स्मरण में ५०००) भारतीय विद्याभवन को दिए और उसके द्वारा स्वर्गस्थ श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर की लायब्रेरी खरीद कर उक्त भवन को एक अमूल्य साहित्यिक निधि के रूप में भेंट की। ग्रन्थमाला के निमित्त श्रीबहादुरसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात १५००००) डेढ लाख रु० खर्च



किये जा चुके हैं। मथुरापुर (पश्चिम-बंगाल) में ३००००) की रकम से एक हाईस्कूल खोला। इस प्रकार से आपने कई सार्वजनिक उदार प्रवृत्तियों के काय किए। सन १९३६-३८ में आप पोलेण्ड के कौन्सलर चुने गये। १९४१-४२ में मारवाड़ी एसोसियेशन के प्रेसीडेन्ट रहे। १९४६ में आप विशुद्धानन्द हास्पिटल के वाईस प्रेसीडेन्ट रहे। "इन्डियन रिसर्च इनस्टिट्यूट" के आप आजीवन सदस्य हैं। व्यापारिक क्षेत्र में आपकी अप्रतिहत गति है। "झगड़ा खण्ड कोलियरीज" के चेयरमैन, व डायरेक्टर हैं। मोर्डन हाउस, एण्डलैंड डेवलमेन्ट व हिन्दुस्तान कोटन मिल्स के आप मैनेजिंग डायरेक्टर है। इसके अतिरिक्त आप कलकत्ता नेशनल बैंक, इण्डियन इकोनामिक इन्शुरेन्स कम्पनी लि०, फायरफण्ड जनरल इन्शुरेन्श कं० लि०, आर्यन इंजिनियरिंग कं० लि०, इण्डियन इन्वेस्टमेन्ट कं० लि० आदि के आप डायरेक्टर हैं। आपकी पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी भी सार्वजनिक प्रवृत्तियों में भाग लेती हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री राजकुमारजी सिंघी एक उत्साही कर्मठयुवक हैं। आप पश्चिमि बंगाल कॉंग्रेस कमेटी के सदस्य हैं। द्वितीय पुत्र श्री देवकुमारजी सिंघी बी. ए. पास करके कोलियरी का काम सीखते हैं। तृतीय व चतुर्थ पुत्र स्कूल में अध्ययन कर रहे हैं। पंचम व षष्ठ अभी शिशु अवस्था में हैं। पौत्र व पौत्री के लाभ का सौभाग्य भी आपको प्राप्त है।

आपके अनुज बाबू वीरेन्द्रसिंहजी सिंघी एम. एस. सी. बी. एल. एम. एल. ए. तेजस्वी व कार्य कुशल व्यक्ति हैं। बाबू वीरेन्द्रसिंहजी आपके कनिष्ठ भ्राता हैं। आप बी. एस. सी. हैं।

श्रीयुत बाबू नरेन्द्रसिंहजी सिंघी,

आपका जन्म सन् १६१० में हुआ। सन् १६३१ में बी. एस. सी में श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया एवं "जुबिली स्कालर शिप" प्राप्त की। सन् सन् १६३२ में एम. एस. सी (जियोलोजी) की एवं सर्वप्रथम रहे एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय सुवर्णपदक प्राप्त किया। सन् १६३२ में बी. एल परीक्षा पास की। पश्चात् व्यवसाय में भाग लेने लगे। अपनी वैज्ञानिक बुद्धि के कारण थोड़े ही दिनों में इस कार्य में कुशलता प्राप्त की "झगडा खण्ड कोयलारिज लिमिटेड" "डाल चन्द बहादुरसिंह" व "सिंघी सन्स लिमिटेड" के डायरेक्टर बने एवं उत्तरोत्तर समृद्ध बना रहे हैं। अपनी व्यवसाय विषयक योग्यता के कारण "इण्डियन चेम्बर आफ कोमर्स" व



"इण्डियन माइनिंग फेडरेशन" की कार्य कारिणी के सदस्य भी बनाए गए। "न्यू इण्डिया टूल्स" नामक एक औद्योगिक फेक्टरी भी आपने खोली है।

सफल विद्यार्थीजीवन व व्यवसायकुशलता के साथ २ सार्वजनिक हित की दृष्टि भी आपमें पूर्णरूपेण विद्यमान है। बङ्ग दुर्भिक्ष के समय अजीमगंज व जियागंज के १६००० व्यक्तियों को प्रतिदिन ६ छटांक चावल ८) मन के भाव से दिया जब कि बाजार ११ से २८) रु. मन तक चला गया था। इस लोकहितकारी कार्य में सिंघी परिवार ने ढाई लाख की हानि उठाई। यह एक अत्यन्त गौरव की बात है कि वैसे भयङ्कर दुर्भिक्ष में भी अजीमगंज व जियागंज के किसी भी व्यक्ति की अन्नाभाव से मृत्यु नहीं हुई। ८ जुलाई सन् १६४३ के कलाकत्ता गजट में सरकार ने आपकी उदारता व लोकहितकर भावना की प्रशंसा की। राजनैतिन, सामाजिक व धार्मिक शिक्षण सम्बन्धी प्रवृत्तियों में भी आप भाग लेते हैं। अपनी उदारदृष्टि के कारण

सन् १६४५ में बंगाल लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य (एम. एल. ए.) चुने गए। सन् १६४६ में काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के कोर्ट के सदस्य भी चुने गए हैं। स्व० बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी ने जिस "सिंघी जैनग्रन्थमाला" की स्थापना "भारतीय विद्याभवन" बम्बई में की थी उसका खर्च श्री नरेन्द्रसिंह जी अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ संयुक्त रूपसे चला रहे हैं। इस ग्रन्थमाला के निमित्त बाबू बहादुरसिंहजी की मृत्यु के बाद इन वर्षों में १५०००० रु. खर्च किए जा चुके हैं। आपने पावापुरीजी मन्दिर के लिए १००००) दिये, इसके अतिरिक्त आपने कई विभिन्न संस्थाओं को हजारों का दान दिया इस प्रकार से आपने लोक हितकारी कार्यों में लाखों का दान कर चुके हैं। आपके पिताजी के बहुमूल्य सिक्के, चित्र, मूर्त्ति, हस्तलिखित ग्रन्थ आदि का सारा संग्रह आपही के पास है। इस संग्रह के कई सिक्के, मूर्तियाँ, व चित्र तो एसे हैं जो अन्यत्र अप्राप्य हैं। ग्रीक, कुशान, गुप्त, पठान मुगल आदि साम्राज्य के स्वर्ण मुद्राओं की संख्या डेढ हजार से भी अधिक है। इसके अतिरिक्त कई बादशाहों की बहु मूल्यवस्तुयें, ताम्रपत्र आदि संग्रहित हैं।

★मेसर्स श्रीचन्द गणेशदास गधइया-सरदार शहर

यह परिवार अपने वैभव और सम्पत्ति के अतिरिक्त सौजन्यता तथा धर्मप्रेम व समाज सेवा आदि गुणों के कारण प्रसिद्ध है। राजस्थान के जैन एवं जैनेतर समाज में इस परिवार का एक विशिष्ट स्थान है। इसी परिवार में सेठ श्रीचन्दजी एक धर्मपरायण तथा योग्य व्यवसायी हो चुके हैं। आपने युवावस्था से ही कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का ग्रहण किया, सत्य और न्याय के पथ पर आप अटल रहते थे। सं० १६८६ में आप स्वर्गवासी हुए।



सेठ गणेशदासजी गधइया

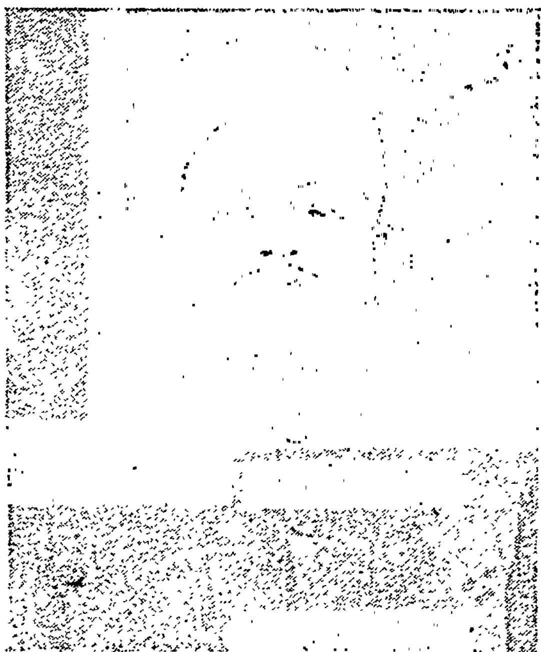
श्री सेठ श्रीचन्द्रजी के गणेशदासजी तथा वृद्धिचन्दजी नामक दो पुत्र हुए। दोनों ही कुशाग्रबुद्धी धर्मपरायण तथा योग्य व्यापारी हो चुके हैं। दोनों बन्धु बीकानेर असेम्बली के, मेम्बर तथा सरदार शहर नगरपालिका के प्रमुख सदस्य थे। श्री सेठ गणेशदासजी को बंगाल गवर्नमेन्ट की ओर से दरबार में स्थान (कुर्सी) प्राप्त थी। व्यव-

सायी समाज में पूर्ण पैठ थी एवं मारवाड़ी चैम्बर्स ऑफ कोमर्स के सभापति भी रह चुके थे। दोनों बंधुओं की धार्मिक रुचि प्रशंसनीय थी और व्रतधारी पुरुष थे।



सेठ वृद्धिचन्दजी गधइया

—वर्तमान में सेठ नेमीचन्दजी हैं। आप योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। आपकी आयु ४० वर्ष की है अल्पायु में ही आपने वृहद् व्यापार के गुरुतर भार को बड़ी ही योग्यता से सम्भाला और संचालन कर रहे हैं। ऐश आराम के प्रचुर साधन होने पर भी आपकी सादगी में व्यवधान रूप नहीं बन पाये। आपके जीवन में धार्मिक भावनायें इतनी घुल मिल गई कि आपके विचारों, कार्यक्रमों तथा वक्तव्य में उसकी झलक स्पष्ट रूप से स्फुटित होती है। जैनाचार्य श्री तुलसी गणि द्वारा मानव उत्थान तथा विश्व शान्ति के लिए निर्मित अणुव्रतिसंघ के आप कार्यशील सदस्य तथा अ० भा० तेरापन्थी महासभा के कोषाध्यक्ष हैं। सभा के संगठन और सुचारु रूप से चलाने में आप का भी काफी हाथ है। बीकानेर असेम्बली के आप सदस्य रह चुके है। १९४७ के अशान्ति वातावरण के समय आप स्थानीय शान्तिकमेटी के प्रधान थे और शान्ति स्थापित करने में अग्रेसर



श्री सेठ नेमीचंदजीगधइया

रह कर सहृदयता का परिचय दिया। श्री सेठ नेमीचन्दजी के सम्पतलालजी तथा रतनलालजी नामक दो पुत्र हैं। श्री सम्पतलाल जी कालेज में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। जिनका विवाह गंगाशहर के सुप्रसिद्ध चौपड़ा परिवार में हुआ। श्री सेठ साहब की पुत्री का विवाह प्रसिद्ध गोठी परिवार में हुआ। आपने भी पर्दा प्रथा बहिष्कार कर दिया। इस प्रकार से यह परिवार उन्नत, प्रगतिशील और आदर्श विचारों का परिवार है।

पताः—सेठ श्रीचन्द गणेशदास ११३ मनोहरदास कटला कलकत्ता।

★समाजभूषण सेठ राजमलजी ललवाणी, जामनेर.

आपका जन्म सं० १९७१ का वैशाख सुदी ३ को आऊ (फलौदी) नामक ग्राम में हुआ। बाल्यकाल बहुत साधारण स्थिति में व्यतीत हुआ।



आपके जन्मजात गुणों से प्रभावित हो खानदेश के गणमान्य सेठ लक्ष्मीचन्दजी ने सं० १९८३ में आपको दत्तक ले लिया। भाग्य के इस परिवर्तन ने आपको एक श्रीमन्त बना दिया। अकस्मात जीवन में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाने पर भी आपके अदम्य उत्साह, सादगी, निरभिमानता एवं कर्मवीरता में रत्ती भर भी अन्तर नहीं आया।

आपका सार्वजनिक जीवन प्रत्येक अंशों में पूर्ण है। खानदेश एजुकेशन सोसायटी, जैनओसवालबोर्डिंग जलगांव, अ० भा० महावीर मुनि मंडल, जलगांव जीमखाना, भागीरथीबाई लायब्रेरी, राजमल लक्ष्मी-

चन्द धर्मार्थ औषधालय, जामनेर एग्रिकल्चर फर्म, कैटल ब्रिडिंग फर्म, इत्यादि अनेकानेक सार्वजनिक संस्थाओं को स्थापित करने में या उनकी व्यवस्था करने में आपने प्रधान रूप से भाग लिया है।

आपके हृदय का प्रत्येक परमाणु जातीय सेवाओं की भावना से ओतप्रोत है। आप ही की प्रेरणा व सहयोग पर श्री अ० भा० ओसवाल महासम्मेलन की नींव पड़ी। सन् १९३९ में हुए मन्दसौर अधिवेशन के आप सभापति रहे। आपके सभापतित्व में जातिसंगठन व जातीय भेदभाव नष्ट करने के महत्वपूर्ण प्रस्ताव व कार्य हुए। समस्त जैनसमाज की एकता के लिए आप सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। श्री भारत जैनमहामंडल के भी आप प्राण हैं। वर्धा अधिवेशन के आप ही सभापति थे। तथा १९४९ में आपने उसका अधिवेशन जामनेर में करवाया। जलगांव के सार्वजनिक हाईस्कूल तथा फ्रूट सेलसोसायटी के वर्षों तक सभापति रहे। खानदेश एज्युकेशनल सोसायटी के ३० वर्ष से सभापति हैं।

आपकी राष्ट्रीय सेवायें भी परम प्रशंसनीय रही हैं। आप सदा एक परम देशभक्त रहे हैं। फैजपूर कांग्रेस के आप कोषाध्यक्ष थे। सन् ४४ में आप महाराष्ट्र की ओर से धारासभा के सदस्य (M. L. A.) निर्वाचित हुए। आप सदा से ही स्वतन्त्र विचार पोषक रहे हैं। असेम्बली में सर्व प्रथम हिन्दी में भाषणकर्ता आप ही रहे। आपका जामनेर में लक्खीचन्द रामचन्द' के नाम से बैंकिंग व कृषि का काम होता है। तथा जलगांव दुकान पर भी बैंकिंग का व्यापार होता है। कामनवेल्थ इंश्युरेन्स कं० पूना, बैंक आफ नागपुर, भागीरथ मिल्स जलगांव, लक्ष्मी नारायण मिल्स चालीस गाँव के डायरेक्टर रहे हैं। अभी अपलिफ्ट ऑफ इण्डिया के डाइरेक्टर रहे हैं।

★ साहू श्री शीतलप्रसादजी जैन-दिल्ली

नजीमाबाद (मेरठ) के प्रसिद्ध साहू वंश में श्री साहू रामस्वरूपजी जैन के घर सन् १९२१ में आपका शुभ जन्म हुआ। मेरठ कालेज और लखनऊ विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने पश्चात् आपने व्यवसायिक क्षेत्र में पदार्पण किया। अपनी दूरदर्शिता बुद्धिवैलक्षण्य एवं तीक्ष्ण दृष्टिकोण के कारण स्वल्पसमय में ही व्यवसायिक जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। व्यवसायिक क्षेत्र के हर महत्वपूर्ण पद पर कार्य कर अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। "बैनेट कोलमेन कम्पनी लि०" टाइम्स ऑफ इण्डिया, एवं नवभारत और इलस्ट्रिट वीकली" के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। "अलेन बरी एन्ड कम्पनी लि०" के चेयरमैन, गावन ब्रदर्स

लि०, के मैनेजर और राजा शूगर कं० लि०" एवं डालमियां दादरी सिमेन्ट लि० के डायरेक्टर हैं।

अर्थशास्त्र में आपकी विशेष रुचि है और इसमें बड़े निपुण हैं। व्यवसायिक जगत में आपकी बड़ी ख्याति है। डालमिया जैनव्यवसाय में आप महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। और विशेषतः कार्य की देख आप ही करते हैं। वर्तमान में टाइम्स ऑफ इन्डिया, नेशनल एयरवेज आदि के सञ्चालन में आपका विशेष हाथ है।

शिक्षाप्रसार तथा सामाजिक कार्यों में आपकी विशेष अभिरुचि है। इस समय जैनसभा नई दिल्ली के प्रेसीडेन्ट हैं। जैनसमाज के सफल नामाङ्कित व्यक्तियों में आपकी गणना है।

★श्री सेठ रतनचन्दजी बाँठिया-पनवेल-(बम्बई)

श्री सेठ रतनचन्दजी बांठिया पनवेल (बम्बई) के एक धर्मनिष्ठ, उदार तथा कुशल व्यापारी हैं। आपके श्री हरकचंदजी, कान्तिलालजी, मोतीलालजी, शशिकान्तजी, तथा वीरेन्द्रकुमारजी नामक पाँच पुत्र हैं, जिनका जन्म क्रमशः सं० १९८४, १९८७।१९९०, १९९७, तथा २००५ में हुआ। ज्येष्ठ पुत्र श्री हरकचन्द जी के जवाहरलालजी नामक एक पुत्र हैं।



सेठ रतनचन्दजी बांठिया

श्री सेठ रतनचन्दजी 'बांठिया बैंक लिमिटेड' के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं बैंक की शाखायें अहमद नगर, पूना, कल्याण आदि स्थानों पर भी हैं। श्री धूतपापेश्वर सेल्स कारपोरेसन" नामक आयुर्वेदीय रसायनशाला के आप सञ्चालक तथा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर हैं। धार्मिक शिक्षा बोर्ड पाथरडी के आप ही संरक्षक हैं। चिंचवड़ में बांठिया विद्यामंदिर को आपने व्यक्तिगत रूप से ५०००) का दान तथा

बांठया परिवार की ओर से १५००) सहायता की तथा प्रतिवर्ष ५०००) की



श्री हरकचंदजी बाँठिया

सहायता देते रहते हैं। स्थानीय महावीर जैनवाचनालय तथा प्रसूतिगृह (हास्पिटल) के आप ही सञ्चालक हैं। इस प्रकार से आपका सार्वजनिक सामाजिक कार्यों में पूर्ण सहयोग रहता है। पनवेल के बिजली स्पलाई कं. के चेयरमैन एवं बारसी बिजली कम्पनी के मैनेजिंग एजेण्ट हैं। यहाँ पर "रतन टाकीज" नामक सिनेमा भवन भी है। आने वाले प्रत्येक संस्था के कार्यकर्त्ताओं का सहयोग देकर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। आपके फर्म का व्यवहार "भिकमदास गुलाबचंद बांठिया" के नाम से चल रहा है।

★ चौपड़ा परिवार, गंगाशहर

यह परिवार छः भाइयों का सम्मिलित कुटुम्ब है जिसमें अब तक बहुत प्रेम है। सबका संयुक्त व्यवसाय १३३ कैनिंग स्ट्रीट कलकत्ता में "छगनमलजी तोलारामजी चौपड़ा" के नाम से चल रहा है। जिला पुरनिया का रामनगर नामक गांव तो इसी फर्म द्वारा जमीन खरीद कर बसाया गया है और जो आपकी निजि जमीदारी है। इसी से यह गांव चौपड़ा रामनगर के नाम से मशहूर है।

आसाम व बंगाल की कई प्रसिद्ध मंडियों में आपकी फर्में हैं।

व्यापारिक दृष्टि से तो इस फर्म का भारत के व्यसायियों में एक प्रमुख स्थान है ही किन्तु प्रतिष्ठा व दानशीलता के कारण भी इस परिवार की बहुत ख्याति है।

गंगाशहर में चौपड़ा हाईस्कूल, डिस्पेन्सरी तथा हॉस्पिटल भी आपकी ओर से ही बनाकर सरकार को भेंट कर दिये गये है। बीकानेर के अस्पताल में करीब ५६०००) की सहायता आपकी ओर से दी गई है। राजलदेसर में लड़कियों की स्कूल में ६०००) का तथा काशी विश्वविद्यालय को १००००)-जैनश्वेताम्बर तेरहपन्थी सभा को ५६०००) तथा पब्लिक बेल

फेयर फंड में ५१०००) आदि अनेक स्थान पर बड़ी बड़ी रकमें दान दी गई है। गंगाशहर में आपकी ओर से एक जच्चाखाना भी है।

इस तरह यह परिवार सब दृष्टियों से भारत विख्यात परिवार है।

★श्री सेठ चम्पालालजी बांठिया-भीनासर (बीकानेर)

सादगी, सरलता और धार्मिकता की दृष्टि से आदर्शश्रावक श्री स्व० हमीरमलजी बाँठिया उदार एवं समाज-सेवक सज्जन थे। पूज्य जवाहरलालजी मा० सा० के उपदेश से सं० १९८४ में आपने ५१०००) कादान निकाला। ११ हजार एकमुश्त साधुमार्गी जैनहितकारिणी सभा को भेंट दिये। आपको गुप्तदान का शौक सा था। आपके श्री कानीरामजी, श्री सोहनलालजी और श्री चम्पालालजी ले तीन पुत्र हुए।



सेठ चम्पालालजी उदीयमान समाज सेवक हैं। आपने पिता श्री की स्मृति में हमीरमल बांठिया बालिका विद्यालय की स्थापना की। एक प्रसंग पर आपने ७५०००) का दान देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। शिक्षाप्रेम भी आपका प्रशंसनीय है। आप द्वारा संचालित जवाहर विद्यापीठ को आदर्श विद्यापीठ बनाने के लिए आप प्रयत्न शील हैं। आज-कल आप भीनासर के सार्वजनिक जीवन के एक संचालक हैं। बीकानेर राज्य में आपकी काफी प्रतिष्ठा है। बीकानेर असेम्बली के माननीय सदस्य (M. L. A.) रहे हैं।

कलकत्ता-बम्बई-दिल्ली-बीकानेर आदि में आपकी फर्में हैं। इतने सुविस्तृत व्यापार को संभालते हुए भी आप सार्वजनिक कार्यों में काफी सहयोग देते हैं। साहित्य प्रेम भी आपका अच्छा है। पूज्य जवाहरलालजी मा. सा. के साहित्य प्रकाशन में आप काफी उत्साह दिखला रहे हैं। भीनासर व बीकानेर की प्रत्येक राष्ट्रीय, सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियों में आपको अवश्य स्मरण किया जाता है व प्रत्येक प्रवृत्ति आपसे पोषण पाती है। श्रीमंत हैं पर जरा भी अभिमान नहीं। लक्ष्मी व सरस्वति का अपूर्व संगम है आप में।

छोटी अवस्था में ही आप काफी लोकप्रिय बन गये हैं। आप अच्छे

अनुसार और मृदुभाषी हैं। धार्मिक विषयों में आपके विचार काफी सुधार पूर्ण तथा क्रान्तिकारी हैं।

★ सेठ चम्पालालजी वैद, भीनासर



सेठ चम्पालालजी वैद (बीच में) सपरिवार

आप भीनासर के प्रमुख प्रतिष्ठित श्रीमंत हैं। ओसवाल कुलीय तेरह पंथी जैन हैं। आप का जन्म संवत् १९६१ ज्येष्ठ कृष्णा १ का है। आप के पिता श्री का नाम पन्नालालजी था आप बड़े धर्मनिष्ठ उदार चेता सज्जन थे। आपके ३ पुत्र हुए श्री चम्पालालजी, श्री सोहनलालजी तथा श्री छगनलालजी। सबका सम्मिलित व्यापार होता है।

कलकत्ता में नं० राजावुड साऊथ स्ट्रीट पर "हमीरमल चम्पालाल' 'पन्नालाल चम्पालाल' तथा दी सिर साचाड़ी नरसिंग जूट कम्पनी" के नाम से ३ फर्मों पर जूट का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता है। भारत तथा पाकिस्तान में कई स्थानों पर आपकी एजेन्सियाँ हैं। 'हमीरमल चम्पालाल' की फर्म को आपने ही सेठ चम्पालालजी बांठिया के साझेदारी में प्रारंभ किया था जो आज विशाल पैमाने पर व्यापार फैलाये हुए है।

व्यापार में ही से आप दोनों साझीदार हों सो नहीं किन्तु धार्मिक, सामाजिक आदि जनसेवा के हर काम में आप दोनों बड़ी उदारता एवं

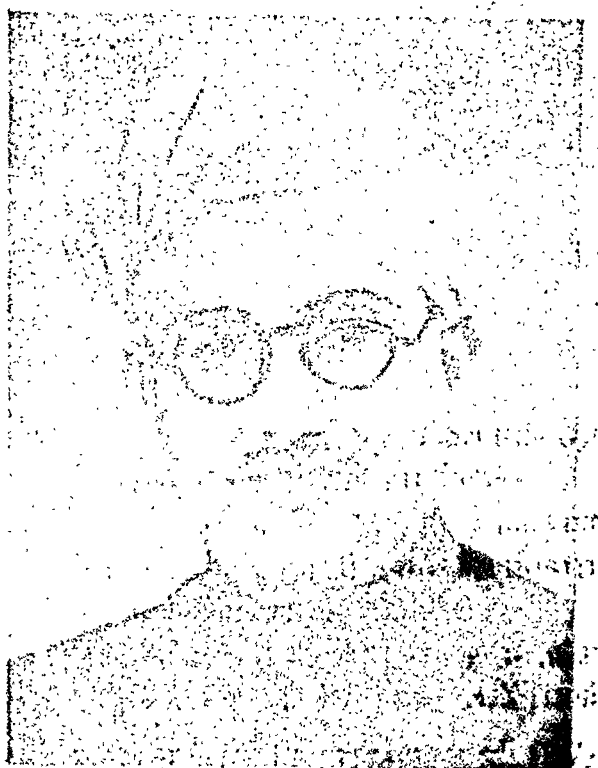
लगन से आगे रहते हैं। भारत में मित्रों की जोडी प्रशंसनीय है। भीनासर में स्थापित शिक्षण संस्थाओं और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के तो आप प्राण हैं।

राज्य द्वारा भी आप सन्मानित रहे हैं। जब बीकानेर नरेश श्रीमंत शार्दूलसिंहजी बहादुर भीनासर पूज्य श्री तुलसीरामजी म. सा. के दर्शनार्थ पधारे और आपके अतिथि हुए थे। तब प्रसन्न हो आपके परिवार को सोना प्रदान कर राज्य सन्मानित घोषित किया था।

उदारता में आप एक आदर्श हैं। आप अपने हाथों से लाखों रुपयों का दान अब तक प्रदान कर चुके हैं। श्रीमंत बीकानेर नरेश को चेरीटी फंड (सत्कार्य फंड) में एक मुश्त १लाख रुपया प्रदान किया था।

★ श्री सेठ नथमलजी सेठी, कलकत्ता

संसार के विशाल प्रांगण में कार्यरूपी क्रीड़ा करते हुए विरले ही पुरुष असीम सफलता के भागी बनते हैं। हमारे सेठी महोदय श्री नथमलजी साहब उन उन्नायकों में से हैं जिन्होंने अपनी सुकार्यदक्षता एवं सुव्यवस्था से अच्छी उन्नति की। आपका जन्म सं. १६७१ श्रावण सुदि ११ को हुआ। आपके पिता श्री डायमलजी सेठी का आप पर धार्मिकता का अच्छा असर पड़ा बचपन से ही आप प्रतिभाशाली छात्रों में से थे अतः स्वल्प समय में ही शिक्षा समाप्त कर व्यापार क्षेत्र में उतर



पड़े जिसमें कि आपने अच्छी सफलता प्राप्त की। पूर्वी पाकिस्तान, बंगाल बिहार एवं आसाम में आपका जूट का व्यवसाय वृहद् रूप में होता है इसके

अतिरिक्त आपके यहाँ जमींदारी, बैङ्किग एवं कमीशन एजन्ट का भी कार्य होता है। यह तो आप का व्यापारिक परिचय हुआ।



चि. पवन कुमार



चि. सरस्वति देवी

सामाजिक क्षेत्र में भी श्री सेठि जी ने कार्य कर प्रगतिशीलता का परिचय दिया। वर्तमान में आप-श्री महावीर हीरोज लाडनूं के सभापति एवं दी बंगाल जूट डीलर एसोसीयशन कलकत्ता के सहायक मन्त्री हैं। इसी प्रकार से और भी संस्थाओं के सदस्य एवं पदाधिकारी हैं। आप उत्साही, मिलनसार एवं प्रसन्नचित्त नवयुवक हैं एवं प्रत्येक युवकोचित कार्य में महत्त्व पूर्ण भाग लेते रहते हैं।

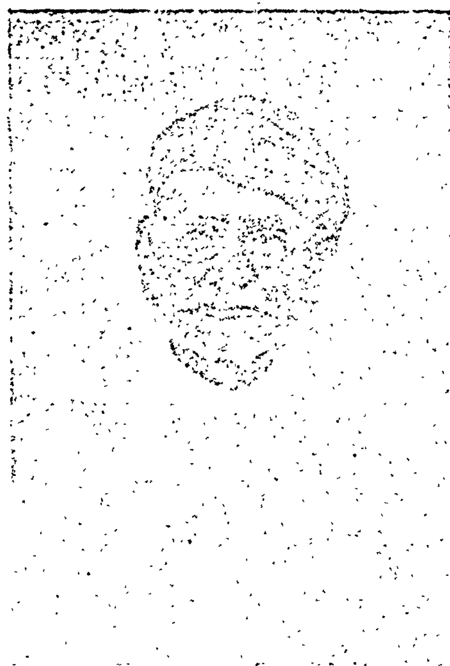
आपके धनकुमारजी एवं पवनकुमारजी नामक दो पुत्र हैं जिनकी आयु क्रमश १२ एवं २ वर्ष की है। इनके अतिरिक्त विमलाकुमारी, सुलोचना सरस्वती एवं सीतादेवी नामक चार कन्यायें हैं।

आपकी फर्म "नथमल सेठी एण्ड कम्पनी ५५ नलिनी सेठ रोड कलकत्ता, में जूट का प्रमुख रुप से व्यवसाय कर रही है। इसके अतिरिक्त आप टिपेराबेलिङ्ग कम्पनी एवं राजस्थान इन्वेंस्टमेण्ट कम्पनी के डाइरेक्टर भी हैं।

★श्री सेठ घनश्यामदास जीबाकलीवाल लालगढ़ (बीकानेर)

रायबहादुर सेठ चुन्नीलालजी बाकलीवाल के यहाँ सं० १९६६ को भाद्रपद कृष्णा ८ को आपका शुभजन्म हुआ। श्री सेठ चुन्नीलालजी एक

सफल व्यापारी थे। "वर्मा ऑयल कम्पनी" से सम्बन्ध स्थापित कर आप आसाम के प्रमुख व्यापारी बन गये। सन् १४ के महायुद्ध में आपकी कार्य कुशलता और साहसिक गुणों पर मुग्ध होकर तत्कालीन सरकार ने आपको "रायबहादुर" की सम्मानित उपाधी से विभूषित किया। आपके दीर्घकाल तक कोई सन्तान न होने से अपने लघुभ्राता के सुपत्र श्री मोहनलालजी को गोद लिया, इसके बाद आपके दो पुत्र हुए। किन्तु उनका सुख और यशस्वी जीवन न देख सके और अकाल में ही स्वर्गवासी हो गये। श्री मोहनलालजी भी अपने एक



रा० ब० सेठ चुन्नीलालजी

पुत्र कंवरीलालजी को छोड़कर चल बसे। बाबू कंवरीलालजी उत्साही एवं कार्यशील युवक है।

श्री सेठ चुन्नीलालजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री निहालचन्दजी बड़े सरल स्वाभावी मिलनसार, एवं धर्मप्रेमी थे। अल्प समय में ही आप आसाम प्रान्त और बीकानेर राज्य में लोकप्रिय हो गये थे। डिब्रूगढ़ मे आपने एक वेदी प्रतिष्ठा भारी समारोह के साथ सम्पन्न कराई। आप आप अपने लघु भ्राता श्री घनश्यामदासजी के साथ जब बीकानेर गये तो वहां विजय हॉस्पिटल में सी वार्ड बनवाने के लिए ५२०००) वृहद् राशी प्रदान की।

राज्य की ओर से आप बन्धुओं को पैरों में सोने का



स्व. सेठ श्री निहालचन्दजी बाकलीवाल

कड़ा एवं अन्यान्य सन्मानों से सन्मानित किया। सेठ निहालचन्दजी अपने पुत्र सागरमलजी को छोड़ स्वर्गवासी हो गए। अल्प समय में ही आपने कीर्ति का अच्छा अर्जन किया। श्री सागरमलजी भी होनहार युवक हैं।

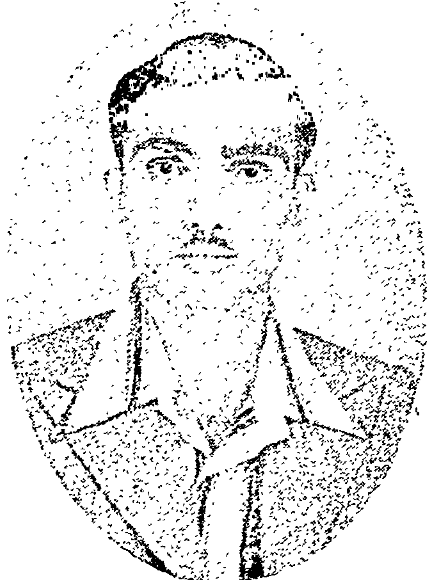


सेठ घनश्यामदासजी वाकलीवाला

वर्तमान में सेठ घनश्यामदासजी उक्त फर्म के मालिक हैं आप बहुत उदार, धर्मप्रेमी तथा दान में रुचि रखने वाले सज्जन हैं। पर्यूषण पर्व के अन्त में आप शिक्षा संस्थाओं में यथेष्ट दान देते रहते हैं। प्राचीन पुस्तकों के प्रकाशन में आपकी पूर्ण सहायता रहती है। तत्त्वार्थ सूत्र का अनुवाद करवाकर आपने बड़ी संख्या में अमूल्य वितरण करवाया। साखून में अपनी माताजी की स्मृति आपकी ओर से १२०००) के व्यय से एक स्कूल चल रही है।

सामाजिक सभा, संस्थायें में आपके सहयोग से अपना कार्य करने में समर्थ हो रही है। अ० भा० जैनअनाथाश्रम देहली के आप संरक्षक हैं। एवं दि० जैनस्कूल लालगढ़ के आप सभापति हैं। आप उदारदिल समाज सेवक और मिलनसार हैं। आपके होनहार सुपुत्र श्री कन्हैयालाल जी हाई-स्कूल में अध्ययन कर रहे हैं।

"शालिग्राम राय चुन्निलाल बहादुर" गोहाटी नामक आपकी फर्म आसामकी श्रीमन्त फर्मों में



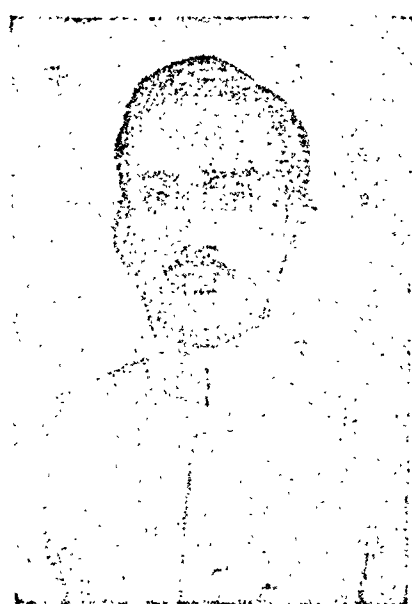
श्री कंवरीलालजी वाकलीवाल लालगढ

मे है। "वर्मा ऑयल कम्पनी के प्रमुख एजेण्ट के रूप में समस्त आसाम में फर्म के डिपू स्थापित हैं।

★ श्री जवाहरलालजी दफ्तरी, बनारस

आपका मूल निवास स्थान पीपाड़ (मारवाड़) है।

आपका जन्म अपने ननिहाल रताला स्टेट (पंजाब प्रान्त) वि० सं० १९७० में दिवाली के दिन हुवा। आपके पिताजी का देहान्त तो आपकी २ वर्ष की अवस्था में ही हो चुका था। घर का सारा बोझ आप ही के सिर था। फिर भी आपने अपनी १५ वर्ष जितनी छोटी उम्र में हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती का अच्छा ज्ञान हासिल कर लिया। उर्दू एवं शोर्टहेन्ड भी सिखी।



आप शुरू से ही साहित्य प्रेमी हैं। आपको पुस्तकों के पठन पाठन का बहुत शौक है, आपने बहुत सी पुस्तकें संग्रह भी की हैं और ५-६ पुस्तकें लिखी भी हैं। राष्ट्रीय एवं सामाजिक पत्र पत्रिकाओं में अक्सर आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। सम्मेलन सभा सोसाइटियों से भी आप को प्रेम है। श्री जैननवयुवक मंडल पीपाड़ के गत १५ वर्षों से सभापति हैं। आपके सभापतित्व में मंडल ने काफी उन्नति की। पीपाड के युवकों में जगृति करने का एवं पंचायत में बहुत सी कुरीतियाँ उठवाने का श्रेय आपही को है। पीपाड़ की "श्री कुमर बाई भलगट जैनकन्यापाठशाला" के आप सेक्रेटरी हैं। आपकी देखरेख में कन्या पाठशाला अच्छी चल रही है।

आप सन् १९४२ में श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के सहायक मंत्री चुने गये। गत १६ वर्ष से पूर्ण खद्दरधारी हैं। देश सेवा के काम में भी काफी लगन है।

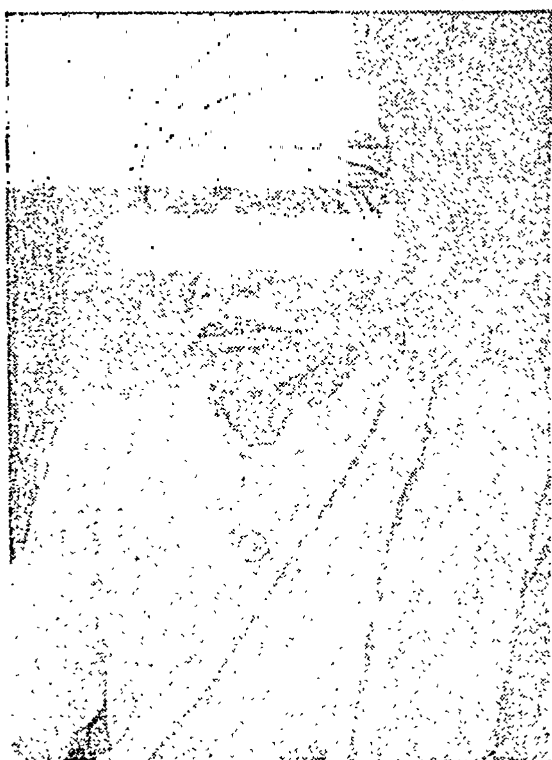
पीपाड में श्री ओसवाल बड़ी न्यात के नोहरे में आपने पूज्य दादा साहब स्वर्गीय कानमलजी के स्मरणार्थ ५००) रु. की लागत का एक भवन बनवा कर अर्पण किया।

श्री कापरड़ाजी तीर्थ में श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ जैनविद्यालय के १॥ साल तक हेडमास्टर रहे। आपने देशाटन भी काफी किया। खास खास सभी जैनतीर्थों की आपने यात्रा की।

यों तो आपने पीपाड़, जोधपुर, बम्बई आदि में व्यापार किया। फिल हाल १२ वर्ष से आप बनारस ही में रहते हैं। सन् १९४३ में जयपुरिया बन्धुओं के साथ चांदी सोने का व्यापार शुरू किया है। व्यापार में भी आप एक कुशल व्यापारी समझे जाते हैं।

★ सेठ लक्ष्मीचंदजी फतहचंदजी कोचर मेहता, बीकानेर

यह परिवार अपनी उदारता व समाज प्रेम के लिये बीकानेर में प्रतिष्ठित श्रीसन्त परिवार की तरह प्रसिद्ध है। इस परिवार में मेहता आसकरणजी जसकरणजी तथा मुन्नीलालजी नामक तीनों भाई बड़े दानवीर व धर्मात्मा हुए हैं।


सेठ लक्ष्मीचंदजी कोचर बीकानेर

मेहता आसकरणजी के ३ पुत्र थे-सेठ अमीचन्दजी, छोटूमलजी और हजारीमलजी-आप तीनों ने कोचरों का मोहल्ला बीकानेर में श्री विमलनाथजी का विशाल व रमणीय मन्दिर बनवाया। श्री जैनपाठशाला बीकानेर के लिये ३०००) रूपये की लागत का एक विशाल भवन दानस्वरुप प्रदान किया। कोचरोंकी श्मशान भूमि में दो पक्की शालें तथा गोगा गेटके पास एक धर्मशाला भी बनवाई है। इस तरह आपने हाथों से काफी दान पुन्य किये हैं और समाज में प्रतिष्ठा पाई है। बीकानेर राज्य घराने में भी आपका बड़ा सन्मान था। आपने अपने समय



सेठ फतहचंदजी कोचर

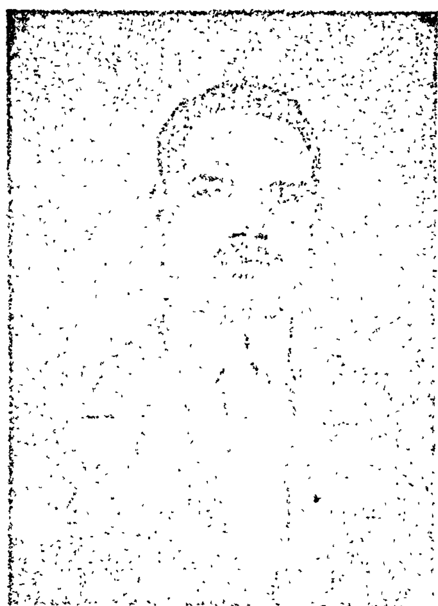
में गाँव सारणी (८४ न्यात का बड़ा भोज) भी किया था ।

मेहता जसकरणजी के ३ पुत्र हुए–सेठ डेडरमलजी, रिद्धकरण जी और नेमीचन्दजी । इनमें से श्री नेमीचंदजी बड़े व्यवसायी और दानवीर हुए हैं आपने कई स्थानों पर कुओं और तालावों के लिये भारी रकमें दी हैं । पोवा पुरीजी तीर्थ में एक शाल बनवाई है ।

मेहता मुन्नीलालजी के ४ पुत्र हुए–सेठ कालूरामजी, श्री लक्ष्मीचन्दजी, श्री लालचंदजी व श्री जेठमलजी । सेठ कालूरामजी के कोई पुत्र न होने से सेठ लक्ष्मीचन्दजी के छोटे पुत्र श्री रामचन्द्र जी को दत्तक लिया है ।

सेठ लक्ष्मीचंदजी:—वर्तमान में इस परिवार के आप ही संचालक हैं । आयु ७२ वर्ष की है । आप बड़े ही समाजप्रेमी व दानवीर तथा धर्मात्मा पुरुष हैं । आपने सं० १९७४ में जैसलमेर का संघ बड़ी धूमधाम से निकाला । जिसमें मुनि अमिविजय जी क्षमाभद्रसूरीजी आदि ४४ साधु साध्वियां तथा जयपुर फलौदी रतलाम पंजाब आदि स्थानों के करीब ४५० स्वधर्मी बंधु थे । वापस आते हुए फलौदी के समस्त बिरादरी को जीमन वार दी थी ।

आपने ओसियां, पांवा पुरी, बीकानेर की दादावाड़ी आदि कई धार्मिक स्थानों पर स्वधर्मी भाइयों को सुविधा के लिये कमरे बनवाये हैं । अब तक अपने हाथों से काफी दान पुन्य के महान् कार्य किये हैं । बीकानेर के जैन पाठशाला को २१००० रु० की सहायता स्वयं ने प्रदान की और कई सज्जनों से प्रेरणा देकर स्कूल को काफी सहायता पहुँचाई है ।



श्री लक्ष्मीचंदजी कोचर

कलकत्ते में आपने करीब ५० वर्ष पूर्व "लक्ष्मीचन्द फतहचंद" के नाम से ४-५ जेक्सन लेन कलकत्ता में फर्म स्थापित की थी। जो आज भी विद्यमान है और विशाल पैमाने पर व्यवसाय फैलाये हुए हैं। इस फर्म पर कपड़े का व्यवसाय होता है फर्म अहमदाबाद की कई मिलों की कमीशन एजेन्ट है

इस प्रकार आपका सम्पूर्ण जीवन बड़ा उदारता एवं धार्मिकता पूर्ण रहा है। आपके २ पुत्र विद्यमान हैं:—श्री फतहचंदजी तथा श्री रामचंद्रजी।

मेहता फतेहचंदजी—पिता श्री की वृद्धावस्था के कारण आप ही वर्तमान में व्यवसाय की देख रेख करते हैं आपकी कार्यकुशलता और बुद्धिमता से फर्म ने काफी तरक्की की है। आपका जन्म सं १९५४ श्रावण शुक्ला ३ है।

आप भी अपने पिता श्री की ही तरह बड़े दानवीर और समाज प्रेमी सज्जन हैं। बड़े ही धर्मिष्ठ हैं आपने श्री सम्मेतशिखरजी के अधिष्ठाता भोमियजी के जीर्णोद्धार में तन मन व धन से भाग लिया है। इसके अतिरिक्त और भी कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया है, कराते हैं, और करा रहे हैं। आप ही के प्रयत्न से करणीसर गाँव के पास कोचरों की मूलदेवी की १२॥ हजार जमीन सरकार में पूरी कोशिश कर समस्त कोचर बंधुओं के नाम से पट्टा बनवा लिया है वहां एक साल व कुंडी भी आप ही की प्रेरणा से बनी है। आपके उत्तमचदजी नामक २७ वर्षीय पुत्र हैं जो एक होनहार विचारशील नवयुवक हैं। एवं बड़े व्यापार कुशल भी हैं।

★श्री धर्मचन्द सारावगी कलकत्ता

जन्म सं० १९६३। पिता धर्मनिष्ठ सेठ बैजनाथजी सरावगी। स्वावलम्बन के पुतले सेठ बैजनाथजी ने अपने पुत्र को भी सब प्रकार से योग्यतथा व्यवहारकुशल बनाने में कोई कसर न रक्खी। प्रकृत प्रतिभावान धर्मचन्दजी योग्य पिता के योग्य पुत्र सिद्ध हुए और आज जैनसमाज की इस प्रसिद्ध पुरानी फर्म की ख्याति को द्विगुणित बना रहे हैं। पिता मात्र धर्माराधन में लीन हैं।

श्री धर्मचन्दजी स्वभाव से ही भ्रमणप्रिय रहे हैं। १९२९ ई० में अवसर पाकर आपने विलायत की यात्रा की, आप सवप्रथम भारतीय हैं जिन्होंने विलायत से भारत की यात्रा हवाई जहाज से की आपने हवाईजहाज चलाने का लाईसेन्स भी प्राप्त किया फलस्वरूप आज आप बंगाल फलाइंग क्लब के सन्मान्य सदस्य हैं।

आप जिस समाज या संस्था में प्रवेश करते हैं उसके सर्वस्व हो जाते हैं। कलकत्ते की दर्जनों सार्वजनिक संस्थाओं के आप सभ्य या पदाधिकारी हैं।

महावीर पुस्तकालय के आप संरक्षकों में है । जैन नवयुवक समिति के सभापति और मारवाड़ी ट्रेडर्स एशोसिएशन के मन्त्री थे. अभी उसके सभ्य हैं। मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की रसायनशाला के आप वर्षों तक मन्त्री रहे हैं और १९४६-४७ में दो वर्षों तक सोसायटी के प्रधान मन्त्री तथा बाद में तीन वर्षों तक उप सभापति रहे। सन् १९४७ में सपत्नीक इंगलैंड, फ्रान्स, अमेरिका फिजी आस्ट्रेलिया और जावा आदि देशों में भ्रमण कर पृथ्वी प्रदक्षिणा की।

प्राकृतिक चिकित्सा पर आपका अटल विश्वास है। पिछली बार तीन छात्रवृतियाँ प्रदान की थीं. और मारवाड़ी रिलीफ सोसाईटी में महात्मा गांधी की राय से प्राकृतिक चिकित्सा विभाग खुलवाया, जो अभी तक सेवा कार्य कर रहा है। साहित्यकता के नाते धर्मचन्दजी और भी अधिक प्रसिद्ध हैं।

★श्री सेठ नरभेरामजी हंसराजजी कामानी, जमशेदपुर

आपका शुभ जन्म धारी (काठियावाड़) में २५ नवम्बर १८९२ में हुआ। यहीं पर प्रारम्भिक शिक्षण प्राप्त कर १९१४ में जमशेदपुर आए और साधारण व्यापार प्रारम्भ किया। अपनी अनुपम योग्यता से धीरे धीरे अच्छी उन्नति कर सन् १९२६ में मोटर का व्यवसाय प्रारम्भ किया। सन् १९३० में अपने नरभेराम एन्ड क० लि० की स्थापना की। इस कंपनी के आप ही मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। आपने अपने जीवन में व्यवसायिक कार्यों में अतिशय उन्नति की।



आप भारत के एक प्रमुख श्रीमन्त व्यवसायी हैं। साथ ही साथ आप एक बड़े दानवीर सज्जन भी हैं। अमरेली में १० हजार की लागत से जैनियों के लिये तपेदिक का इलाज कराने हेतु एक विशाल सेनोटेरियम बनाया। आपने व आपके भाइयों ने मिलकर जैन बोर्डिंग

अमरेला को ३० हजार तथा मेहता पारख हाई स्कूल को १० हजार प्रदान किया। कस्तूरबा स्मृति फंड में ११ हजार संग्रहित करवाये और जिसमें २॥ हजार खुद ने दिये। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद और सरदार वल्लभ भाई पटेल को थैलियां भेंट में कीं जिनमें आपने अपनी ओर से बड़ी मात्रा में अर्थ राशी दी।

आपने अपनी ५४ वी वर्षगांठ पर २४ नवम्बर १९४५ में एक लाख रुपये की सम्पत्ति का एक धर्मार्थ ट्रस्ट स्थापित किया, शिक्षाकार्यों में तथा समाज सेवा में आपकी थैली हमेशा खुली रहती है।

इस प्रकार से आप एक महान् उद्योगपति दानवीर और जैन समाज के आगेवान श्री मन्त हैं।

पता—नरसेराम एन्ड कं० लि० जमशेदपुर वाया टाटानगर

★ श्री हेमचन्द राम जी भाई मेहता, भावनगर

२१ नवम्बर सन् १८८३ ई० को मौरवी काठियावाड़ में दशा श्री माली कुटुम्ब में श्री हेमचन्द भाई का जन्म हुआ इन्जीनियरिंग ग्रेज्युएट की अन्तिम



श्री हैमचन्द भाई



श्रीमती नवल गौरी बहिन

परीक्षा १९०६ में पास की। बाद में ३५ वर्ष तक ग्वालियर, वडौदा, मौरवी, कच्छ तथा भावनगर स्टेट की जवाबदारी पूर्ण सेवा के बाद सन् १९४२ में रिटायर हुये।

इसके सिवाय समय २ पर भोपाल, पन्ना, झालरापाटण, सिरोही, मांगरोल आदि स्टेटों को रेल्वे सम्बन्धी सलाह देने का काम करते रहे हैं।

सन् २७ में वायसराय लॉर्ड इरविन कच्छ में पधारे, तब कच्छ स्टेट ने भाव नगर स्टेट से आपको २ वर्ष के लिये मांगा। आपने वहां जाकर रेल्वे सम्बन्धी जिस योग्यता का प्रदर्शन किया उससे स्वयं वायसराय महोदय भी काफी प्रसन्न हुए। सन् १९३० में भावनगर स्टेट ने यूरोप के रेल्वे की विशेष अनुभव प्राप्त करने के लिए यूरोप भेजा। सन् १९३२ अ० भा० स्था० जैन कॉन्फ्रेन्स के अजमेर अधिवेशन के आप अध्यक्ष मनोनीत किये गये। इस अधिवेशन में करीब ६० हजार मनुष्य एकत्रित हुये थे। दो मील लम्बा तो अध्यक्ष का जुलूस था। आप आठ वर्ष तक कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष रहे। अब भी यथा शक्ति समाज सेवा के कामों में भाग लेते रहते हैं।

सन १९४६-४८ तक दी ग्लोरी इन्शुरेन्स कं० के आरगेनाइजिंग डायरेक्टर व जनरल मैनेजर रहे। सन ४९-५० सोराष्ट्र रेल्वे में स्पेशियल इंजिनियर का कार्य किया। अध्यात्म विद्या की ओर आपकी बड़ी रुचि है। आपकी धर्म पत्नी श्रीमती नवल गौरी बहिन भी एक आदर्श महिला हैं। घाटकोपर में अ० भा० स्था० जैन कॉन्फ्रेन्स के समय हुई महिला परिषद की आप प्रमुख थी।

★श्री शाहनिहालचन्द भाई सिद्धपुर

जन्म सं० १९६४ के फागण वद ४ को सिद्धपुर तालुका के नाग वाशण में हुआ। आपका सिद्धपुर में श्री जवाहिर पल्स मिल चल रहा है। दो दुकानें सिद्धपुर तथा एक दुकान जोरावर नगर में चल रही है। गंज बाजार ग्रेन मर-चंट असोसियेशन के प्रमुख, जनरल ट्रेड असोसियेशन महसाणा प्रान्त, दाल एसो-सियेशन आदि के डायरेक्टर हैं। तथा एक सूत मिल के ब्रोकर हैं। सामाजिक धार्मिक तथा राष्ट्रीय विचार भी आपके अच्छे हैं। आपके पिता श्री के नाम से आपने जोरावर नगर में एक पुस्तकालय खोला है।



आपका कारोबार "शाह चन्द्रकान्त दाह्याभाई और सेठ निहालचन्द लहरचंद के नाम से फैला हुआ है।

राजस्थान का जैनसमाज

★सेठ अगरचन्दजी भैरोंदानजी सेठिया-बीकानेर

दानवीर सेठ भैरोंदानजी सेठिया अपनी उच्च धार्मिकवृत्ति, उदारता, शिक्षा तथा साहित्यप्रेम के कारण जैनजगत् में प्रख्यात हैं। आपका जन्म १९२३ विजया दशमी के दिन हुआ। आपके पिताजी का नाम धर्मचन्दजी था।


सेठ भैंरोदानजी सेठया

सेठ भैरोंदानजी सं. १९-४१ में अपने बड़े भाई अगरचन्दजी के साथ बम्बई गये और फर्म पर मुनीम के पद पर नियुक्त हुए। आपके बड़े भाई श्री अगरचन्दजी इसी फर्म के साझीदार थे। सं. १९-४८ में आप कलकत्ते आए और यहाँ मनीहारी और रंग की दुकान खोली सफल व्यापारी के सब गुण आपमें थे। धीरे २ व्यवसाय चमका और भारत के बाहर की रंग एवं मनिहारी के कारखानों की सोल एजेन्सियाँ ले लीं। इसी समय आपके बड़े भाई अगरचंदजी भी सम्मिलित हो गए और ए. सी. बी. सेठिया एन्ड कम्पनी के नाम व्यवसाय चालू किया। हावड़ा में "दी सेठिया कलर एण्ड केमिकल वर्क्स लिमिटेड" के नाम से रंग कर कारखाना खोला। यह कारखाना भारत में रंग का सर्वप्रथम कारखाना है। धीरे २ समस्त भारत में अपनी शाखायें खोलीं। जापान के ओसाका नगर में भी अपना आफिस खोला। सन् १९१४ के महायुद्ध में आपको आशातीत सफलता मिली।

सं० १९७८ में श्री अगरचंदजी बीकानेर में बीमार हो गए अतः आप कलकत्ते से यहाँ आए और दोनों बन्धुओं ने मिल कर ५ लाख की चल व अचल सम्पत्ति से "श्री अगरचंद भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था"

स्थापित की जिसके अंतर्गत विद्यालय, श्राविका श्रम और कन्या शिक्षण, छात्रालय, सिद्धांतशाला, पुस्तकालय तथा साहित्यप्रकाशन विभाग सुचारु से चल रहे हैं। थोड़े दिनों बाद अगरचंदजी का स्वर्गवास हो गया। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री जेठमलजी श्री अगरचंदजी के गोद गए हैं।

इस वृद्धावस्था में भी आपने सं० १९९६ से पांच वर्ष तक अथक परिश्रम कर "जैनसिद्धान्त बोल संग्रह" आठ भाग, सोलहसती, अर्हन्प्रवचन और जैनदर्शन तैयार कर प्रकाशित कराये हैं। और भी जैनशास्त्र यथा श्री दशवैकालिक सूत्र श्री उत्तराध्ययनजी, श्री आचाराङ्ग जी आदि सूत्रों का सुबोधअन्वयार्थ व भावार्थ सहित प्रकाशन कराया है।

सन् १९२६ में श्री अ० भा० श्वे. स्थानकवासी जैनकान्फ्रेन्स के बम्बई में हुए ७ अधिवेशन के आप सभापति बनाये गए। समाज व धर्म की सेवा के साथ २ आपने राज्य व बीकानेर जनता की भी अच्छी सेवा की। १० वर्ष तक आप बीकानेर म्युनिसिपल बोर्ड के कमिश्नर रहे। १९३१ में आपको आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया गया। सन् १९३८ में आप म्यूनिसिपल बोर्ड की ओर से बीकानेर असेम्बली के सदस्य चुने गए। इस प्रकार से आपने बीकानेर की जनता की खूब सेवायें कीं।

सन् १९३० में आपने विद्युत् चालित एक ऊन की गांठ बांधने वाला प्रेस खरीदा जो आज भी बीकानेर वूलन प्रेस के नाम से विशाल पैमाने पर चल रहा है। अब आप व्यापार व्यवसाय से सर्वथा निवृत्त होकर धर्म ध्यान में संलग्न हैं। पिछले १२ वर्षों से धार्मिक साहित्य पढ़ना, सुनना और तैयार करवाना ही आपका कार्यक्रम है।

आपके श्री जेठमलजी, श्री लहरचन्दजी, जुगराजजी और ज्ञानपलजी आदि चार पुत्र हैं। श्री जेठमलजी श्री अगरचन्द के गोद गये हैं। आप सभी सुशिक्षित, संस्कृत एवं व्यापार कुशल हैं। एवं सेठजी के आज्ञानुवर्ती हैं। इस प्रकार से भैरोंदानजी सेठिया एक धर्मात्मा, सफल व्यापारी, समाज व राज्य में प्रतिष्ठित दानवीर और परोपकार परायण सज्जन हैं। श्री जेठमलजी भी आपही पदचिन्हों पर चलने वाले हैं एवं बड़े सुविचार शील और उदार प्रकृति के सज्जन हैं।

★वृहत् खरतर गच्छ भट्टारक की गादी—बीकानेर

गणधर श्री सुधर्मस्वामी के ६० वें पाट पर जैनाचार्य श्रीमद् जिनचन्द्र सुरीश्वरजी बड़े इतिहास प्रसिद्ध प्रतापी पुरुष हुए हैं। विशेष परिचय इसी ग्रन्थ में "सम्राट् अकबर और जैन मुनि" शीर्षक में दिया गया है। ६६ वें पट्टधर जैनाचार्य श्रीमद् जिन हर्ष सूरीश्वर जी हुए। वालेवा गाँव निवासी बोहरा गोत्रिय श्रेष्ठि श्री तिलोकचंदजी की भार्या श्री तारादेवी की कुक्षी से आपका जन्म हुआ। मूलनाम हरिचन्द था। सं० १८४१ में आउगांव में दीक्षा। सं० १८५६ ज्येष्ठ शुक्ला १५ को सूरत बन्दर में सूरी पद। आप सं० १८८७ में आषाढ़ शुक्ला १० को शाह अमीचंद द्वारा निर्मापित मंदिर की प्रतिष्ठा हेतु बीकानेर पधारे। तब ही से इस गादी की ख्याति विशेष प्रसिद्धि में आई। श्री जिन हंस सूरीजी (७१) श्री जिनचन्द्र सूरीजी (७२) श्री जिनकीर्ति सूरीजी (७३) तथा श्री जिनचरित्र सूरीजी (७४) क्रमशः पाट पर विराजे, आपका भाडपुरा (जोधपुर) निवासी छाजेड गोत्रीय श्रेष्ठी पाबूदान जी की भार्या सोनादेवी की कुक्षी से सं० १९४२ वैशाख शुक्ला ८ को जन्म हुआ। जन्म नाम चुन्नीलाल। दीक्षा सं० १९६२ वैशाख शुक्ला ३। आचार्य पद १९६७ माह सुद ५ को। आप संस्कृत एवं जैन साहित्य के प्रकान्ड विद्वान् थे। आपने बड़े उपाश्रय में प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों के संग्रह का महत्वपूर्ण कार्य किया। वर्तमान में ७५ वें पाट पर जैनाचार्य श्री मद् जिन विजयेन्द्र सूरीजी हैं। आपका जन्म भावनगर समीप वर्तीय गांव निवासी गांधी गोत्रीय श्री कल्याण चन्द्रजी के घर सं० १९७१ वैशाख शुक्ला २ को हुआ। मूल नाम विजयचंद्रजी। मालपुरा में सं० १९८७ वैशाख शुक्ला ७ को दीक्षा ग्रहण की। सूरीपद सं० १९९८ माघ शुक्ला १० बीकानेर नगर।

आप एक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान, साहित्य प्रेमी और राष्ट्रीय गम्भीर विचारक हैं। आपके धर्मोपदेश जैन समाज के गौरव वृद्धि हेतु समाज में समयानुकुल बड़े गम्भीर धार्मिक भाव लिये हुए होते हैं। आपकी आज्ञा में वर्तमान में करीब १५० यति समुदाय है।

★साहित्य प्रेमी श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर

जन्म वि० सं० १९६७ चैतबदी ४। पिता श्री शंकर दानजी नाहटा कालेज और यूनिवर्सीटी की शिक्षा प्राप्त न होने पर भी अपने अध्यवसाय द्वारा भाषा वा साहित्य में अच्छी प्रगति की। सं० १९८४ में स्व० श्री कृपाचन्दजी म० सा और पूज्य सुखसागरजी म० सा० बीकानेर पधारे। पूज्य महाराज श्री के सत्संगति से आपका हृदय साहित्य के साथ धर्म तथा अध्यात्म जैसे गूढ विषयों की ओर आकृष्ट हुआ। आप हिन्दी एवं राजस्थानी भाषाओं के उत्कृष्ट लेखक, संकलन कर्त्ता एवं सम्पादक हैं। राजस्थानी साहित्य और जैनसाहित्य के सम्बन्ध में आपने अनेक महत्वपूर्ण खोजें की हैं। अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन की सिलहट शाखा के आप

मन्त्री रह चुके हैं तथा सम्मेलन की कलकत्ता वर्किङ्ग कमेटी तथा नागरी प्रचारिणी सभा की प्रबन्ध कारिणी कमेटी के १६६८-१६६६ के लिये आप सदस्य निर्वाचित हुए थे। बीकानेर राज्य के साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत राजस्थानी साहित्य परिषद् के आप सभापति भी रह चुके हैं। "शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट" व राजस्थाती साहित्य परिषद् के आप कोषाध्यक्ष हैं। आपके लेख जैन व जैनेतरपत्रों में निरन्तर प्रकाशित होते रहते हैं। प्रत्येक लेख में गवेषणा शक्ति और सर्वतोमुखी मेधा का विलक्षण मिश्रण होता है। आप उच्च-कोटी के आलोचक एवं सम्पादक भी हैं। "राजस्थानी" के आप सहसम्पादक रह चुके हैं वर्तमान में "राजस्थान भारती, के आप सम्पादक मण्डल में हैं। आपने नाहटा कला भवन "की स्थापना की इसमें १५००० के लगभग हस्त लिखित ग्रन्थ और ७०० के लगभग मुद्रित ग्रन्थ हैं तथा अन्य प्राचीन सामग्री चित्र, सिक्के आदि का भी अच्छा संग्रह है। स्व० डा० गौरीशङ्करजी ओझा और मुनि जिनविजयजी आपके साहित्यक अन्वेषण सम्बन्धी कार्यों की भूरी २ प्रशंसा की है। जैनधर्म का गहन अध्ययन और अनुशीलन कर आपने "सम्यक्त्व" नामक पुस्तक लिखी है।

इस प्रकारसे नाहटाजी ने जैनसाहित्य सम्बन्धी कार्य तो किया ही साथ २ आप एक कुशल व्यवसायी भी हैं। बंगालप्रान्त में आपका पाट, चावल,, कपड़ा गल्ला और आढत का काम, सिलहट, बोलपुर, कामगंसी ग्वालपाड़ा आसाम बम्बई आदि स्थानों पर व्यवसायिक कार्य बड़े जोरों से चलता है।

★ सेठ रावतमलजी बोथरा-बीकानेर

जन्म सं. १६२६ आश्विन शुक्ला १४ में हुआ। प्रारम्भ में मुनीम रहने के बाद सं. १६६६ "रावतमल हरखचन्द" के नाम से फर्म स्थापित की एवं महती सफलता प्राप्त की। आपका धार्मिक, संयमी एवं सदाचार मय जीवन आदर्श है। २० वर्षों में व्यापार भार पुत्रों पर छोड़ कर आध्यात्मिक मार्ग पर चल रहे हैं। इस प्रकार आप पूर्ण सुखी हैं। श्री हरकचन्दजी, श्री ताजमलजी, श्री हनुमानमलजी तथा श्री किशनचन्दजी आके ४ योग्य पुत्र हैं। श्री हरकचन्दजी शिक्षित एवं कुशल व्यापारी होते हुए भी भौतिक सुखों से उदासीन रहकर निवृत्तिमय जीवन बिताते हुए अपने सम्य, ज्ञान की वृद्धि कर रहे हैं।

श्री ताजमलजी-कलकत्ते के एक अच्छे कार्यकर्त्ता हैं। जैनधर्म प्रचारक सभा के आप मंत्री हैं। सार्वजनिक कार्यों के प्रति पूरी दिलचस्पी रखने वाले एक मिलनसार नवीन विचारों के सज्जन हैं। श्री हनुमानमलजी एक कुशल व्यवसायी हैं तथा श्री किशनचन्दजी कलकत्ता फर्म पर व्यापार में सहयोग करते हैं। कलकत्ते में "रावतमल हरकचन्द" के नाम से ६ आर्मेनियन स्ट्रीट में कपड़े का व्यवसाय है। तार का पता-क्षेम कुशल।

★ सेठ हजारीमलजी मंगलचन्दजी मालू, बीकानेर

आपके परिवार में सेठ हजारीमलजी एक धर्मनिष्ठ सज्जन हुए हैं। आपके २ पुत्र हुए-श्री लाभचन्दजी तथा मंगलचन्दजी। श्री मंगलचन्दजी का जन्म सं० १९५६ चैत्र शुक्ला १ का है। आप एक सुविचार वान, शिक्षा प्रेमी एवं साहित्य प्रेमी सज्जन हैं जैनशास्त्रों के अध्ययन एवं अनुशीलन में आपकी विशेष रुचि एवं जानकारी है: आपके यहाँ अच्छा साहित्य संग्रहालय भी है। आपने "विमल ज्ञान प्रकाश" नाम से एक आध्यात्मिक सुन्दर सामग्री युक्त पुस्तक का सम्पादन व प्रकाशन किया है। अन्य कई सुन्दर साहित्य प्रकाशन के काम भी किये हैं।

आप बीकानेर जैन समाज में प्रतिष्ठित सज्जन माने जाते हैं। आपके २ पुत्र हैं — सुन्दरलालजी व माणकलालजी। आपका हजारीमल मंगलचन्द के नाम से कलकत्ता में नं० ४ राजावुड माउण्ट स्ट्रीट पर जूट और साहूकारी लेन देन का व्यवसाय बड़े पैमाने पर होता है।

★ सेठ नथमलजी ताराचन्दजी बोथरा, बीकानेर

यह परिवार यहां के प्रतिष्ठित परिवारों में से है। सेठ सवाईमलजी के ७ पुत्रों में से एक सेठ छोगमलजी के ३ पुत्र हुए। जिनमें से सेठ श्रीचंदजी के पुत्र सेठ नथमलजी हैं।



सेठ नथमलजी बीकानेर के एक प्रतिष्ठित श्रीमंत गिने जाते हैं। ४२ वर्ष की उम्र से ही समस्त सांसरिक बन्धनों को छोड़ कर सजोड़े आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर एक आदर्श श्रावक का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आप तेरहपंथी जैन समाज के एक अगेवान श्रावक हैं। आपकी धर्मपत्नी भी बड़ी धर्मनिष्ठ थीं। अन्त समय निकट समझ कर संथारा धारण किया जो दो दिन रहा। अपने हाथों से ही करीब २५ हजार का दान पुण्य किया।

सेठ नथमलजी के २ पुत्र हैं—श्री ताराचन्दजी तथा श्री केशरीचन्दजी। दोनों ही सुचरित्रवान और धर्मप्रेमी हैं। समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है। सराफा बाजार में 'नथमल ताराचन्द बोथरा' के नाम से सोने चांदी की बीकानेर की सब से बड़ी दुकान है। जवाहरात का भी व्यापार होता है।

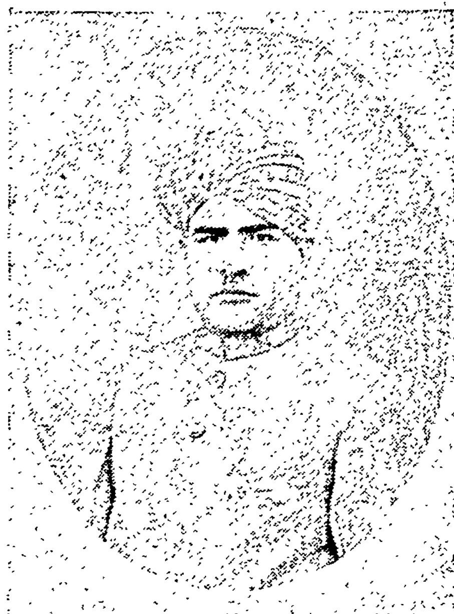


(१. श्री ताराचंदजी २. श्री केशरीचंदजी ३. श्री भँवरलालजी ४. चि० प्रेमसुखजी ५. चि० अनोपचंदजी ६. चि० धनराजजी ७. मोहनचंदजी ८. चि० गुलाबचंदजी

श्री ताराचन्दजी के ४ पुत्र हैं—भँवरलालजी, अनोपचन्दजी, माणकलालजी और हुकमचन्दजी। श्री केशरीचन्दजी—सार्वजनिक प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ताओं में से हैं। म्युनिसिपल कॉमिश्नर, बीकानेर बुलियन एक्सचेंज के सभापति, गंगानगर ट्रेडिंग कं० के डायरेक्टर तथा जैन पाठशाला के सभापति हैं। आपके २ पुत्र हैं—प्रेमसुखजी तथा धनराजजी।

★सेठ नथमलजी दस्साणी, बीकानेर

आप बीकानेर के एक प्रतिष्ठित श्रीमंत तथा स्था० जैन समाज के आगेवान कार्यकर्त्ता हैं। आपका जन्म वि० सं० १९६० श्रावण कृष्णा २ का है। पिताजी का नाम सेठ श्री मुन्नीलालजी है तथा सेठ चाँदमलजी के यहां आप गोद गये हैं।



कलकत्ते में १२२ क्रास स्ट्रीट पर 'चांदमल नथमल' के नाम से कपड़े का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता। तथा आठनेर (बैतूल-सी-पी) आपकी निजि जमींदारी का गांव है तथा यहाँ पर आप का कपड़े तथा साहूकारी लेन देन का काम होता है।

आप सुधार प्रिय नवीन विचारों के कर्मठ कार्यकर्त्ता भी हैं। समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त है। आपके ४ पुत्र हैं। भँवरलालजी, प्रकाशचन्दजी, देवेन्द्रकुमार तथा चितरंजनकुमारजी। भँवरलालजी



श्री भँवरलालजीदस्साणी



श्री प्रकाशचंदजी दस्साणी

के १ पुत्री है। आप भी अपने पिताजी की तरह सुविचारवान हैं।

★सेठ फूसराजजी बच्छावत, बीकानेर



आप बीकानेर के एक प्रतिष्ठित सज्जन एवं स्थानकवासी जैन समाज के आगेवानों में माने जाते हैं। जन्म सं० १६५५ आसोज मास। पिता श्री सेठ जेठमलजी सा०।

आप एक कुशल व्यवसायी होने के साथ २ शिक्षा धार्मिक व सामाजिक कार्यों में विशेष दिल चस्पी से सक्रिय सहयोगी रहते हैं। 'सूरजमल सम्पतराज' के नाम से कलकत्ता में ३२ क्रोस स्ट्रीट तथा ११३ मनोहरदास चौक में दो फर्म हैं जिनपर कपड़े का व्यवसाय होता है।

४ पुत्र हैं:- सूरजमलजी, सम्पतराजजी, हीरालालजी व माणकचंदजी, ४ पुत्रियां हैं। जैनाचार्य पूज्य जवाहरलालजी म० के मोरवी व्याख्यान तथा सती अंजना पुस्तक आपने अपनी ओर से छपवाकर वितरण करवाई है और भी सत् साहित्य प्रकाशित कराया है।

★सेठ लाभचन्दजी ज्ञानचन्दजी कोचर, बीकानेर



सेठ लाभचंदजी कोचर, बीकानेर



ज्ञानचंदजी कोचर, बीकानेर

आप बीकानेर के प्रतिष्ठित श्रीमंत हैं। इस परिवार में सेठ अमीचन्दजी एक धार्मिक व ख्याति प्राप्त सज्जन हुए हैं। आपके लाभचन्दजी गोद आये। आप भी बड़े प्रतिष्ठित रहे हैं। आपके ३ पुत्र हुए श्री जीवनमलजी, श्री चम्पालालजी तथा श्री ज्ञानचन्दजी। प्रथम दो स्वर्गस्थ हैं।

श्री ज्ञानचन्दजी:—आप एक सुविचारवान सज्जन हैं। आपका जन्म वि० सं० १०५६ पौष शुक्ला ३ का है आपका सार्वजनिक जनहित कार्यों की ओर अच्छा लक्ष्य है। आपकी ओर से एक बृहत औषधालय "ज्ञानचन्द मगनमल औषधालय, के नाम से जनता की अच्छी सेवा कर रहा है।

कलकत्ता १५८ सूतापट्टी लेन में लाभचन्द रतनचंद के नाम से व्यापार होता था अब सं० २००५ से "जीवनमल ज्ञानचन्द" के नाम से कपड़े का व्यापार विशाल पैमाने पर होता है। जिसकी देख रेख आपके पुत्र श्री सुमतिचन्दजी करते हैं। आपके ४ पुत्र हैं—श्री रतनचन्दजी, सुमतिचंदजी, कान्तिचंदजी तथा शांतिचंदजी। जिनमें से रतनचन्दजी व सुमतिचन्दजी व्यापार की देख रेख करते हैं।

★सेठ गोविन्दरामजी भंसाली, बीकानेर



सेठ गोविन्दरामजी भंसाली, बीकानेर

आप बीकानेर के प्रतिष्ठित सज्जनों में से हैं। आपका जन्म वि. सं. १६३५ का है। आपके पिताजी का नाम सेठ देवचन्दजी था। आपका "प्रतापमल गोविराम" के नाम से खेंगरा पट्टी स्ट्रीट कलकत्ता में रंग और पेटेण्ट दवाइयों का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता है। बीकानेर में भी भँसाली स्टोर्स के नाम से रंग और पेटेण्ट दवाइयों की आप की दुकान सुप्रसिद्ध है। वर्तमान में व्यवसाय की देख रेख आपके सुपुत्र भीखमचन्दजी करते हैं।

श्री गोविन्दरामजी आज कल व्यवसाय आदि से निवृत्त

धर्मध्यान आदि सत्कार्यों में विशेष संलग्न हैं। आपकी ओर से 'श्री गोविन्दराम भंसाली पारमार्थिक संस्था' चलती है। इस संस्था के संचालन के लिए कलकत्ते में एक पचास हजार रुपये का मकान निकाला हुआ है जिसकी व्याज की आमद से पारमार्थिक संस्था के अन्तर्गत चलने वाली श्री गोविन्द पुस्तकालय तथा श्री जीवन रक्षा पशुशाला का संचालन होता है।

आपके सुपुत्र श्री भीखनचंदजी भी एक सुविचारवान सज्जन हैं। आपके ४ पुत्र हैं—मोहनलालजी, करमलसिंह, विमलसिंह, तथा राजेन्द्रकुमार।



भीखनचन्दजी भंसाली, बीकानेर

★ त्याग मूर्ति श्री शिवबक्षजी कोचर, बीकानेर

आप समस्त सांसारिक झंझटों, व्यवसाय आदि को छोड़ कर एकमात्र धर्म व समाज सेवा में संलग्न हैं बीकानेर में चल रहे जैन हाईस्कूल तथा बन रहे "जैन कॉलेज" के निर्माण व संचालन का बहुत कुछ श्रेय आप ही को है। अब परिग्रह त्याग कर एक आदर्श साधु का पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं बीकानेर प्रान्त की जैन समाज में आप एक आदर्श व्यक्ति माने जाते हैं। सब पर बड़ा प्रभाव है।

★ सेठ रामरतनजी कोचर बीकानेर

बीकानेर के एक लक्षाधिपति कपड़ा व्यवसायी होने के साथ साथ नगर की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के प्राण भी आप हैं। सब क्षेत्रों में बड़ा प्रभाव व प्रतिष्ठा है। धार्मिक कार्यों में विशेष अभिरुचि है। जैन कॉलेज निर्माण में आपका बड़ा सहयोग रहा है। नगर के हर जनहित कार्य में आपका आर्थिक व सामाजिक सहयोग रहता है। बड़े उदार वृत्ति हैं। आपके विचार धारा बड़ी सुलझी हुई, स्वतंत्र और गंभीर है। लाभू जी श्रीमाल के कटले में आपकी कपड़े की दुकान है।

★ श्री रावतमलजी कोचर वकील, बीकानेर

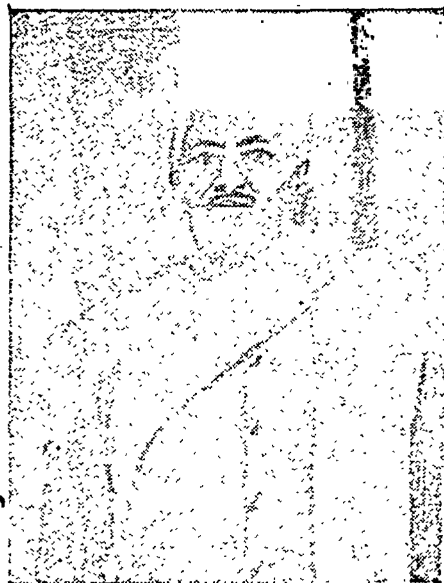
आप बीकानेर नगर के राजनैतिक लोक प्रिय नेता है। नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति हैं तथा नगर के एक सफल वकील हैं।

★ श्री सेठ प्रसन्नचन्दजी कोचर, बीकानेर

आप श्रीसेठभैरोंदानजीकोचर के सुपुत्र हैं। बीकानेर के प्रमुख व्यापारियों में आपका एक महत्वपूर्ण स्थान है। कतिपय वर्षों से आप



स्व० सेठ भैरोदानजी कोचर बीकानेर



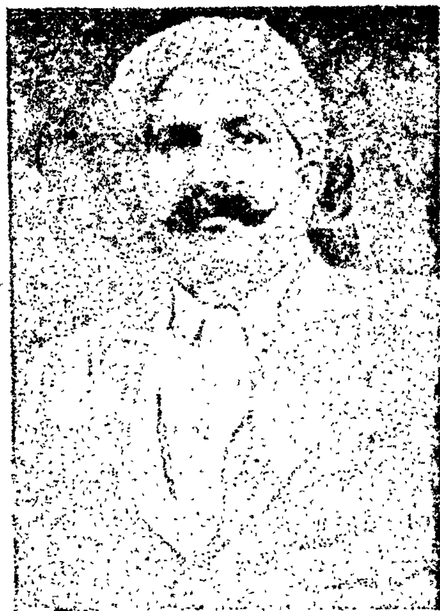
सेठ प्रसन्नचन्दजी कोचर बीकानेर,

सुप्रसिद्ध मद्रास व बंगलोर मील्स के बीकानेर डिवीजन के होलसेलर हैं। स्थापत्यकला में भी पूर्ण अभिरुचि है "जैन कालेज बीकानेर" के भवन निर्माण का कार्य आप ही की देख रेख में हो रहा है। तन, मन, धन देकर जिस संलग्नता, निपुणता और परिश्रम के साथ इस कार्य का सञ्चालन कर रहे हैं वह केवल प्रशंसनीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी है। इस कॉलेज को आपने एक मुश्त १००००) दस हजार की आर्थिक सहायता प्रदान की है। नारी उद्योग शाला "बाल उद्योग मन्दिर" जैसी संस्थाओं की ओर भी। विशेष अभिरुचि है।

आप ५५ वर्षीय हैं और व्यापारिक कार्यों की अपेक्षा परमार्थ के कार्यों में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत हैं।

★ श्री सेठ घेवरचन्दजी सिपाणी (बीकानेर)

श्री सेठ माणकचन्दजी सत्य निष्ठ, कठोर ब्रह्मचर्य के पालक एवं सिद्धान्तों पर अडिग रहकर कर प्रामाणिकता से काम करने वाले धार्मिक श्रावक थे। आपके पुत्र श्री घेवरचन्दजी का जन्म सं० १९६३ फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा का है। आप भी अपने पिता श्री की भांति धार्मिक प्रवृति के सज्जन हैं।



प्रारम्भ में घेवरचन्दजी ने कलकत्ते में मनीहारी का काम प्रारम्भ किया एवं अच्छा विस्तृत कर लिया परन्तु महा युद्ध के झंझटों के फल स्वरुप आप बीकानेर चले आए और "घेवरचन्द सिपाणी" के नाम से जनरल मर्चेण्ट का काम शुरु किया एवं अच्छी सफलता से कर रहे हैं। धार्मिक कार्यों में आपकी बड़ी रुचि है। जवाहर किरणावली का १५ वां भाग आर्थिक सहायता प्रदान कर छपवाया और अर्ध मूल्य में वितरित कराकर अपने अद्वितीय साहित्य प्रेम का परिचय दिया और भी शुभकार्य आपके द्वारा हुए हैं। श्री भंवरलालजी और पन्नालालजी नामक आपके दो पुत्र बड़े ही योग्य और मिलनसार युवक हैं।

★ सेठ मगनलालजी गणेशलालजी कोठारी, बीकानेर

यह परिवार बीकानेर का एक प्रतिष्ठित प्रमुख श्रीमंत परिवारों में से है। इसमें सेठ किशनचन्दजी एक धर्मनिष्ठ सज्जन हुए हैं। आपके मगनमलजी नामक पुत्र हुए। सेठ मगनमलजी:—आपका जन्म वि. सं. १९२० पौष शुक्ला १४ था। आप बीकानेर स्थानक वासी जैन समाज के एक आगेवान प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आप जैन श्वे स्थानकवासी जैन सभा कलकत्ता तथा जैन हितकारिणी सभा बीकानेर के सभापति बहुत अर्से तक रहे। वि. सं. २००६ फागन सुदी ४ को बीकानेर में देहावसान हुआ। आपके ४ पुत्र हैं—सेठ गणेशलालजी, गोपालचन्दजी मोहनलालजी तथा शिखरचन्दजी।

सेठ गणेशलालजी का जन्म वि. सं. १९४१ मिगसर वदी २, सेठ गोपालचन्दजी का जन्म १९४६, सेठ मोहनलालजी का जन्म १९४९ तथा शिखरचन्दजी का जन्म १९६१ कार्तिक शुक्ला १४ का है।

आप सब सज्जन बड़े मिलनसार प्राकृति के उदार हृदय हैं और सार्वजनिक कार्यों के प्रति पूर्ण प्रेम रखते हैं। आपका "मगनमल गणेशमल" के नाम से कलकत्ता बड़ा बाजार में कपड़े व्यवसाय होता है।

★सेठ मेहता राजमलजी रोशनलालजी कोचर, बीकानेर

यह परिवार बीकानेर में कई दृष्टियों से अपनी बड़ी विशेषता रखता है। पूर्व पुरुषों द्वारा बीकानेर स्टेट की समय २ पर बड़ी सेवायें की गई हैं तथा राज्य में सदा सन्मानित रहा है।

मेहता जेठमलजी के पुत्र सेठ मानमलजी के लूनकरणजी, हीरालालजी, हजारीमलजी तथा मंगलचन्दजी नामक ४ पुत्र हुए। इनमें मेहता लूनकरणजी एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए। आप बीकानेरराज्य में नाजिम, तेहसीलदार आदि उच्च पदों पर रह सं० १९७२ में स्वर्गवासी हुए। आपके सेठ राजमलजी, जीवनमलजी, सुन्दरमलजी, रोशनलालजी एवं मोहनलालजी नामक ५पुत्र विद्यमान हैं।

सब बन्धुओं का जन हित के परोपकारी कार्यों में अच्छा लक्ष्य है। सब में अपूर्व भातृप्रेम, सौजन्यता व मिलनसारिता है। सेठ राजमलजी के नेतृत्व में 'राजमल रोशनलाल कोचर' के नाम से ११३ मनोहरदास कटला कलकत्ता में कपड़े की एक बड़ी थोकबंद दुकान है। सुन्दरमलजी रोशनलालजी व मोहनलालजी भी व्यापार में सहयोग करते हैं। जीवनमलजी मध्यभारत प्रदेश में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जैसे उच्च सरकारी पद पर आसीन हैं।

(चित्र आदि विशेष परिचय बंगाल कलकत्ता विभाग में दिया जा रहा है)

★स्व० सेठ अभयराजजी (मुकीम बोथरा) खजान्ची बीकानेर

यह परिवार बीकानेर के प्रतिष्ठित परिवारों में से है। करीब ६-७ पीढ़ी से बीकानेर राज्य के खजान्ची पद पर आरूढ़ रहे हैं। इस परिवार के अभयराजजी अपने समय के एक प्रतिष्ठित धर्मनिष्ठ सज्जन हुए हैं। आपका जन्म वि० सं० १९३६ का है तथा वि० सं० २००६ चैत्र शुक्ला १३ को देहावसान हुआ। आपके पिताजी का नाम शाह मेघराजजी खजान्ची था। आपका 'प्रतापमल हेमराज' ११३ मनोहरदास कटला कलकत्ता में कपड़े का व्यवसाय होता है। यह फर्म कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्मों में है। श्री अभयराजजी के २ पुत्र—प्रतापमलजी तथा हेमराजजी हैं। जो आजकल फर्म की देख रेख करते हैं। दोनों ही बड़े सुविचारवान सज्जन हैं। प्रतापमलजी के ३ कन्याएँ और हेमराजजी के १ पुत्र नरेन्द्रकुमार और ३ कन्याएँ हैं।

कोचर बन्धु, बीकानेर

मेहता जतनलालजी कोचर के पुत्र श्री चम्पालालजी, कन्हैयालालजी, व शिखरचन्दजी न केवल जैन समाज के लिए ही गौरव की वस्तु हैं बल्कि बिरले व्यक्तियों में गिनने योग्य हैं। निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ने वाले ये बन्धु राजस्थान संघ में उच्च सरकारी पदों पर आसीन होते हुए भी तथा विद्वत्ता में भी काफी बढ़े चढ़े होने पर भी इनकी सादगी, सौजन्यता, सहृदयता, मिलनसारिता एवं साहित्य प्रेम आदि गुण सहज ही में दर्शक को श्रद्धालु बनाये बिना नहीं रहते। रिश्वतखोरी या अन्य सरकारी कामों में स्वभावतः आ जाने वाले दुर्गुण मानो इनकी न्यायप्रियता से डरे हुए से रहते हैं। ये गुण तीनों भाइयों में समान रूप से पाये जाते हैं।

मेहता चम्पालालजी कोचर बी० ए० एल० एल० बी०—

जन्म सं० १९६५। १९३१ में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से बी० एल० एल० बी० की डिग्री। इसके पश्चात् बीकानेर स्टेट में सर्विस प्रारम्भ की और तहसीलदार नाजिम कन्ट्रोलर आफ प्राइसेज, स्पेशल अफसर, एलेक्शन्श कमिश्नर, तथा बीकानेर डिविजन के कमिश्नर भी १५ अगस्त सन १९४९ तक रहे। १९५० में आप नागौर जिले में कलेक्टर तथा डिस्ट्रीक्ट मजिस्ट्रेट का कार्य कर रहे हैं। प्रजा आप के कार्यों से अति प्रसन्न हैं।

राजकीय जिम्मेदारी के पदों पर रहते हुए भी धार्मिक व सामाजिक जन सेवा के कार्यों में भी पूर्ण सहयोगी रहते हैं। आप कई वर्षों तक जैन श्वेताम्बर पाठशाला, कन्या पाठशाला के प्रमुख कार्यकर्ता मन्त्री तथा उपसभापति व श्री महावीर जैन मण्डल बीकानेर के सभापति, बीकानेर सिटी इम्प्रुवमेंट कमेटी के मन्त्री तथा कई म्युनिसिपैलिटी के प्रेसीडेंट भी रहे हैं। आप श्रीजतनलालजी के बड़े भ्राता मेहता रतनलालजी के गोद गये हैं।

मेहता कन्हैयालालजी कोचर बी० ए० एल० एल० बी०—

आप कई तहसीलों में तहसीलदार रहे और अच्छी ख्याति प्राप्त की।

मेहता शिखरचन्दजी कोचर बी० ए० एल० एल० बी० साहित्याचार्य—

आपने पहले तो बीकानेर हाई कोर्ट में वकालात की. हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार के पद पर भी कुछ वर्षों तक काम किया। इसके बाद आप श्रीकरणपुर, रायसिंह नगर में मुन्सिफ तथा फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट रहे। वर्तमान में राजस्थान संघ के रतनगढ़ (बीकानेर) जिले में सिविल जज हैं। आपकी साहित्य लेखन की ओर अच्छी रुचि है। अच्छे लेखक व कवि भी आप हैं। सामाजिक कार्यों के प्रति भी अच्छी दिलचस्पी रखते हैं। कई वर्षों तक जैन श्वेताम्बर पाठशाला व कन्या पाठशाला बीकानेर के मन्त्री रहे हैं।

★ धाड़ीवाल परिवार, बीकानेर

इस परिवार के पूर्वजों का इतिहास बड़ा गौरव पूर्ण रहा है। श्री सेठ नेमीचन्दजी के पुत्र श्री सौभाग्यमलजी एक कुशल व्यवसायी हुए। आप प्रतिष्ठित एक्सचेंज ब्रोकर रहे थे। ३१ वर्ष की अल्पायु में ही आपका सं० १६६६ में देहावसान हो गया। आपके सरदारमलजी, मुन्नीलालजी तथा जोरावरमलजी नामक तीन पुत्र हुए।

★ सरदारमलजी

जन्म सं० १६५८ में। प्रारम्भ में बैंको की दलाली के पश्चात् बीकानेर चले आए और राज्य में नौकरी करने लगे। व्यापार में विशेष लाभ देख कर वापिस कलकत्ते चले गए। वहां पर सन् १६२४ में विडला ब्रादर्स के यहाँ १००) मासिक पर कार्य किया एवं शनैः २ चीफ एकाउन्टटेन्ट वन गये। न्यू एशियाइटिक इन्श्युरेन्श कं० के मैनेजर पद पर १८ वर्ष कार्य किया तथा बाद में बहुत बड़ी अंग्रेज बीमा कम्पनी-"पर्ल इन्श्युरेन्स कम्पनी" के भी आप २ वर्ष तक चीफ अकाउन्टेन्ट रहे। सन् १६४४ में आप बिड़ला ब्रदर्स के यहाँ से छुट्टी लेकर बीकानेर चले आये एवं आपको स्पेसे, ट्रेजरी, स्टाम्प आदि महकमे सम्भलाये गये जिनका बड़ी ही योग्यता से संचालन किया। वर्तमान में भी राजस्थान सरकार में गजटेड ऑफिसर हैं। सन् १६४८ की अपनी वर्ष गांठ पर महाराजा ने आपको



"पुश्तैनी सोना' प्रदान की इज्जत वख्शी। सुपुत्र श्री हस्तीमलजी होनहार और बुद्धिमान युवक हैं आप विड़ला ब्रादर्स के बीकानेर डिवीजन के ऑरगेनाइजिंग सेक्रेटरी के पद पर कार्य कर रहे हैं। आपके २॥ वर्षीय एक पुत्र और एक पुत्री है।

★श्री मेघराजजी सम्पतलालजी कोचर, बीकानेर

बीकानेर निवासी सेठ शिवबक्सजी एक प्रतिष्ठित श्रीमंत हैं। आप ही की व्यापारिक प्रतिभा से इस परिवार ने काफी यश प्राप्त किया। सं. १६८४ में आपने कलकत्ते में उक्त फर्म की स्थापना की जो आज व्यवसायिक क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखता है। आपके मेघराजजी, सम्पतलालजी तथा रतनलालजी नामक तीन पुत्र हैं।

श्री मेघराजजी :—आयु ३६ वर्ष। आपही वर्तमान में फर्म के सञ्चालक हैं। स्थानीय जैनसमाज के कार्य कर्त्ताओं में आपका अच्छा स्थान है। जैनाचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी के हीरक महोत्सव के अवसर पर "अभिनन्दन समारोह" की कार्य समिति के आप सदस्य थे और सम्पादक मण्डल के प्रमुख थे। इस प्रकार आप एक समाज हितैषी सुविचारवान और कर्मठ सज्जन हैं। श्री सम्पतलालजी और जतनलालजी होनहार, प्रगतिशील विचारों के युवक हैं।

मेसर्स "मेघराज सम्पतलाल कोचर" नामक फर्म १०८ ओल्ड चाइना बाजार पर अवस्थित है। छाते बनाने का कारखाना फर्म की विशेषता है। जूट आदि का भी व्यापार होता है।

★ मेहता राव प्रतापमलजी वैद का परिवार, बीकानेर

बीकानेर संस्थापक बीकाजी के साथ इस परिवार के पूर्वज सेठ लालोजी अपने निवास स्थान ओसियां से यहां आए और स्थायी रूप से बस गये। आप ही के वंशज मेहता राव प्रतापमलजी वैद हुए हैं। आप बीकानेर के दीवान रहे हैं और काफी प्रसिद्धि पाई। आपके राव नथमलजी नामक पुत्र हुए, आप भी बीकानेर के दीवान रहे हैं। आपकी सेवाओं से प्रसन्न हो आपके मस्तक पर मोतियों का तिलक किया था, जिससे यह परिवार आजभी "मोतियोंका आखा वाले वैद" के नाम से पहिचानाजाता है। आपके प्रपौत्र जतनलालजी, भंवरलालजी, और श्री भंवरलालजी हैं।

श्री जतनलालजी तथा भंवरलालजी बीकानेर में "जसराज मोतीलाल" के नाम से कपड़ा व किराने काम करते हैं आपकी वर्तमान में क्रमशः ३७ तथा ३४ वर्ष की आयु है। जतनलालजी के सूरजमल व चाँदमल तथा भंवरलालजी के विजयसिंह नामक पुत्र हैं।

मेहता भंवरलालजी वैद-आप सन १६३१ में बीकानेर स्टेट में सिनियर एक्साइज इन्सपेक्टर हुए। वर्तमान में अ० इन्सपेक्टर जनरल कस्टम तथा एक्साईज और साल्ट हैं। बड़े समाज प्रेमी और सहृदय मिलनसार सज्जन हैं।

स्थानीय जैन पाठशाला के मंत्री हैं। जैन कॉलेज निर्माण में सराहनीय प्रयत्न रहा है। मोतीलालजी और माणकचन्दजी नामक दो पुत्र हैं। मोतीलाल जी बी. एस. सी. हैं। माणकचन्दजी ९ वीं में अध्ययन कर रहे हैं।

★स्व० सेठ बहादुरमलजी बांठिया का परिवार—भीनासर

स्व० बहादुरमलजी बांठिया के पितामह श्री हजारीमलजी ने एक लाख


श्री तोलारामजी बांठिया

इकतालीस हजार रुपये का उदार दान किया था। आपने भी अपने जीवन काल में डेडलाख का दान कर अपनी परम्परा गत दान प्रियता को कायम रक्खा। गंगाशहर से भीनासर तक पक्की सड़क बनवाने में आधा खर्च तथा परिश्रम कर जनहित का कार्य किया। जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी म० के आप अनन्य भक्त थे। आपके धार्मिक विचार स्तुत्य थे। क्रिया काण्ड में भी दृढ़ थे। ब्रह्मचर्य के प्रबल समर्थक थे। आपके सुपुत्र श्री तोलारामजी और श्यामलालजी बड़े सेवाभावी, धर्मानुरागी तथा सरल हृदय सज्जन है। आपका व्यापार विशेषतया कलकत्ता तथा मन्सुखे (आसाम में)हैं। सिंधुपुरा (पंजाव) में आपकी विशाल जमींदारी है। कलकत्ते में आपका छतरी का विशाल कारखाना है।

★ सेठ तनसुखदासजी रावतमलजी बोथरा गंगाशहर (बीकानेर)

श्री सेठ रावतमलजी के पिता श्री तनसुखदासजी पारवा से बीकानेर गंगाशहर चले आए। पारवे में आपने एक धर्मशाला भी बनवाई थी। सेठ रावतमलजी का जन्म आषाढ़ शुक्ला ७ सं० १९५० में हुआ।


सेठ रावतमलजी बोथरा, गंगाशहर

आपने साधारण स्थिति से व्यापार का सूत्र पात कर अपने प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा अपनी फर्म को श्रीमंत फर्मों के समकक्ष खड़ा किया परन्तु रेल्वे दुर्घटना से ४६ वर्ष की आयु में ही सं० १९९६ वैशाख कृष्णा १३ को आपका स्वर्गवास हो गया। धर्म प्रेम तो आपके जीवन का प्रधान अंग था। स्व० पूज्य आचार्य जवाहरलालजी म० के प्रति आपकी उत्कट भक्ति और श्रद्धा थी। रेल्वे दुर्घटना से रेल्वे पर ५०) हजार की क्षति पूर्ति का दावा किया जो कि रेल्वे का देना पड़ा। यह रकम धर्मार्थ कार्य में खर्च करदी गई।

आप अपने पीछे श्री तोलारामजी, इन्द्रचन्दजी, रूपचंदजी, प्रेमसुखजी, भंवरलालजी, तथा जेठमलजी, नामक ६ पुत्र छोड़ गये हैं। आपके पुत्र भी आप ही के अनुरूप धर्म प्रेमी व समाज प्रेमी हैं।

श्री इन्द्रचन्दजी एक विचार शील, उदारदिल, धर्म निष्ट सज्जन हैं। गंगाशहर में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। धार्मिक कार्यों में खुले दिल से सहयोग देते हैं।

★सेठ चतुर्भुजी हनुमानमलजी बोथरा, गंगाशहर (बीकानेर)

श्री सेठ जोरावरमलजी के पाँच पुत्रों में से लघु पुत्र श्री चतुर्भुजजी का जन्म सं० १९३३ को हुआ। ९६२ में "अगरचन्द चतुर्भुज" के नाम से फर्म स्थापित कर जूट एवं वस्त्र का बृहद् व्यापार प्रारम्भ किया। अपने व्यापारिक कौशल से उन्नति करते २ अपनी निजी फर्म "चतुरभुज हनुमानमल" के नाम से १९ वन फिल्डस लेन कलकत्ता में स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। आप सच्चे एवं स्वतंत्र विचारों के धर्मनिष्ठ सज्जन थे। संवत् २००६ असाढ़ कृष्णा २ को ७४ वर्ष की आयु में देहावसान हुआ। आप अपने पीछे एक पुत्री श्रीरामकुवारीजी जिन्होंने सं० १९८८ में दीक्षा ग्रहण करली, तथा हनुमानमलजी एवं तोलारामजी नामक दो पुत्र एवं ५ पौत्र श्री जसकरणजी पुनमचन्दजी, किशनचन्दजी, रिद्धकरणजी तथा कन्हैयालालजी छोड़गये हैं।



सेठ चतुर्भुजजी बोथरा

वर्तमान में व्यवसाय की देख रेख श्री सेठ हनुमानमलजी करते हैं आप भी अपने पिता तुल्य धर्मनिष्ठ एवं लोकोपकारी जन सेवा में उत्साह से भागलेते हैं।

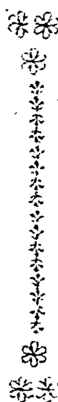
★सेठ ईश्वरचन्दजी डागा-चकसी हाट (बंगाल)

श्री गंगाशहर (बीकानेर) आपका मूलनिवास है, परन्तु व्यापार चकसी हाट (बंगाला) में होता है। आप यहां के प्रसिद्ध व्यापारी हैं। धार्मिक कार्यों

में आप बड़े ही उत्साह से सक्रिय भाग लेते हैं। आपकी सामाजिक सेवा तथा उदार प्रियता प्रशंसनीय है "मेघराज रावतमल डागा" नामक आपकी फर्म स्थानीय फर्मों में नामाङ्कित है।



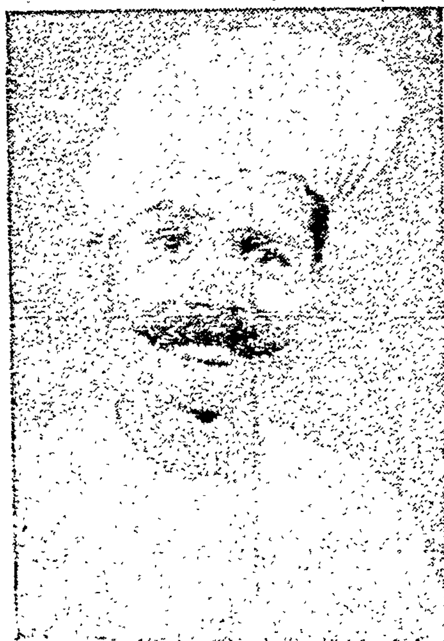
सेठ ईश्वरदासजी डागा





सेठ मेघराजजी रावतमलजी डागा

★ श्री सेठ लक्ष्मीचन्दजी पींचा-गंगाशहर (बीकानेर)



आपका जन्म सं० १९६१। आप कुशल व्यवसायी, उदार चेता एवं मिलनसार सज्जन हैं। डिपटी गंज दिल्ली में नं० २२ ए. पर "लक्ष्मी चन्द फूस राज" के नाम से विसायत खाने का व्यवसाय होता है। फर्म की अच्छी प्रतिष्ठा है। । आपके श्री फूसराजजी धनराजजी, तथा शिखरचन्दजी नामक तीन पुत्र एवं भिक्खी बाई नामक एक पुत्री है।

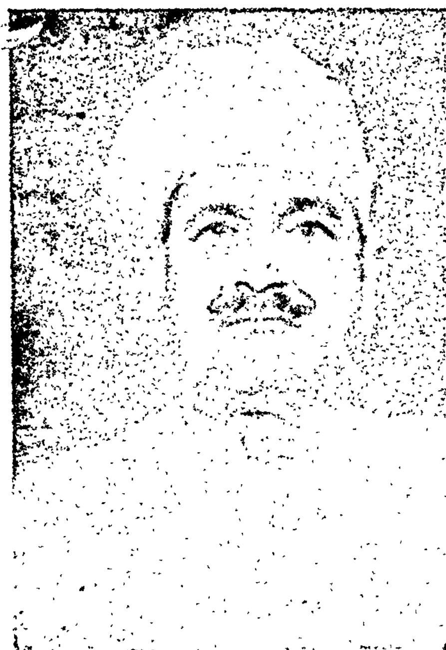
आपके श्री मुकन चन्दजी, श्री महेश दासजी, तथा श्री बालचन्दजी ये तीन भाई हैं जो अपना २ व्यवसाय बड़ी ही उत्तम रीति से कर रहे हैं। आप बन्धुओं का प्रेम अच्छा आदर्श है। तथा आप लोग धार्मिक तथा जातीय कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं।

★ सेठ घेवरचन्दजी रामलालजी चोथरा, गंगाशहर (बीकानेर)

आप यहा के प्रतिष्ठित श्रीमंतों में से हैं। आपके पिताजी का नाम राजरूपजी है। वर्तमान में आप दो भाई हैं-श्री घेवरचन्दजी तथा रामलालजी दोनों का सम्मिलित व्यापार चलता है। कलकत्ता में घेवरचन्द रामलाल के नाम से १५ नूरमल लोहिया स्ट्रीट में आपका जूट व कपड़े की आढ़त का काम होता है। पाकिस्तान फूल बाड़ी में भी इसी नाम से पाट व धान का व्यावार होता है। दोनों स्थानों पर यह फर्म प्रसिद्ध श्रीमन्त फर्मों में गिनी है।

दोनों भाई बड़े धार्मिक वृत्ति के उदार सज्जन हैं। आपकी ओर से गंगाशहर में एक पाठशाला चलती है। आपने अपना निजि विशाल भवन स्थानक के लिए प्रदान कर रक्खा है। धार्मिक कार्यों में आपकी सदा सहायता रहती है।

★ सेठ नेमीचन्दजी पींचा, गंगाशहर (बीकानेर)



आप यहाँ के एक उत्साही समाज सेवी उदार सज्जन हैं। जन्म वि. स. १९६० आपके पिता का नाम सेठ कुशलचन्दजी पींचा था। वैदों का चौक बीकानेर में 'नेमीचन्द पींचा के नाम से आप सोने चाँदी का व्यवसाय करते हैं। आपके ३ पुत्र हैं- खेमचन्द मोहनलाल, आस करण तथा किशनी कुंवर नामक एक पुत्री है।

आप हर सामाजिक धार्मिक व राष्ट्रीय काम में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। अपनी जन्म भूमि ग्वारिया में पानी की सुविधा के लिये बीकानेर से पत्थर भेज कर पक्का कुआ बनवाया है।

★ सेठ शुभकरणजी सुराणा-चुरु (बीकानेर)

जन्म सं० १९५३ श्रावण शुक्ला ४। आप श्री सेठ तोलारामजी के दत्तक पुत्र हैं। स्वाध्याय शील, जनसेवक और साम्प्रदायिकता से परे रचनात्मक कार्यों



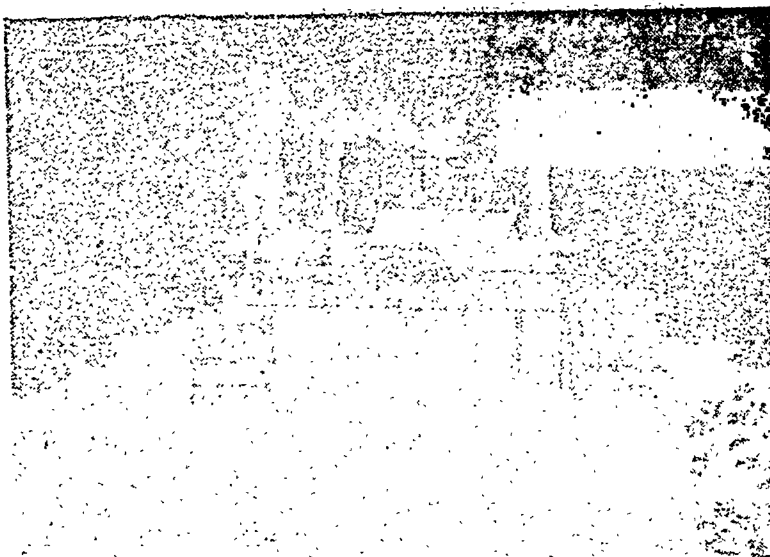
के कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। भारत विभाजन के समय चुरु में मुसलमानों के बहिष्कार के वातावरण को उत्तेजित न होने देकर शांतिमय बनाने में आपका प्रमुख हाथ रहा है।

कई वर्षों तक म्यूनिसिपल बोर्ड चुरु के मेम्बर, मजहबी खैराती और धर्मादे कमेटी की, प्रवन्ध कारिणी कमेटी के मेम्बरा हाईकोर्ट बीकानेर के जुरर सन् १६२८-२६ में बीकानेर स्टेट लेजिसलेटिव असेम्बली के मेम्बर रहे हैं। आपका 'सुराणा पुस्तकालय' जनता की अच्छी सेवा कर रहा है।

ऋषि कुल ब्रह्मचर्याश्रम के मंत्री और सर्वहित कारी सभा" के सभापति रूप में आप राजमान्य एवं जन सेवक रहे हैं। सुपुत्र भंवरहरिसिंहजी एक होनहार एवं प्रतिभा सम्पन्न थे, परन्तु अल्पावस्था में स्वर्गवास हो गया। द्वितीय पुत्र निर्मल कुमार सिंहजी का जन्म सं० १६६२ का है ये सुशील एवं होन हार हैं।



कु० निर्मलकुमारसिंहजी



सेठ शुभकरणजी सुराणा द्वारा संचालित सुराणा पुस्तकालय, चुरु

★सेठ हनूतनमलजी सुराणा, चुरु

श्वे० तेरह पंथी जैनसमाज के आगेवान कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में आपका प्रमुख



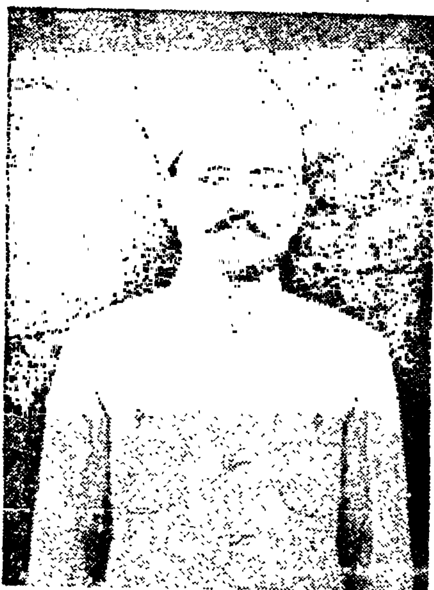
स्थान है। आपके पूर्वजों का इतिहास भी बड़ा गौरव पूर्ण रहा है। बीकानेर राज्य के प्रमुख श्रीमन्तों में आपकी गणना होती है।

कलकत्ता व चुरु में आपकी कई आलीशान बड़ी २ इमारतें हैं। एक बड़े श्रीमन्त होने के साथ २ बड़े उदार चेत्ता एवं सुविचारवान भी हैं। साहित्य के प्रति आपका बड़ा अनुराग है। साहित्य प्रकाशन हेतु आदर्श संघ की स्थापना करवा उसके लिये अपनी नीजि पूंजी से कलकत्ते में रेफिल आर्ट प्रेस के नाम से ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट पर एक प्रेस भी करवा दिया है। कलकत्ता में "मुन्नालाल हनूतमल सुराणा" के नामसे १६१ हरिसन रोड' पर आपकी पेढी है।

(विशेष विवरण कलकत्ता बंगाल विभाग में दिया जा सकेगा)

★सेठ फतहेचंदजी कोठारी, चुरू

आप सुप्रसिद्ध सेठ चम्पालालजी कोठारी के सुपुत्र है। जन्म सं. १९६७ कार्तिक वद १। आप एक प्रतिभा सम्पन्न लोकप्रिय व्यक्ति हैं। म्युनिसिपल बोर्ड चुरु के मेम्बर, यति ऋद्धकरणजी ट्रस्ट फंड के सभापति हैं तथा पारक बैंक लि० के डायरेक्टर हैं।



श्री फतेचन्दजी कोठारी चुरु

आपका व्यवसाय काफी विशाल पैमाने पर है। ११ आरमेनियम स्ट्रीट कलकत्ता पर आपकी ३ फर्मे हजारीमल सरदारमल कोठारी, चम्पालाल कोठारी तथा चम्पालल फतेहचंद कोठारी के नामसे है। चुरु में मूलचंद चम्पालाल लेहनाबाद (हिसार) में चम्पालाल फतेहचंद तथा गंगानगर में विजयसिंह कोठारी के नामसे आपकी फर्मे हैं।

आपके २ पुत्र हैं—बजरंगलालजी उम्र १५ वर्ष तथा कमलसिंहजी उम्र ८ वर्ष। दोनों पढ़ रहे हैं।

★ सेठ बिरदीचंदजी रिद्धकरणजी सुराणा, चुरु (बीकानेर)

चुरु निवासी सेठ रिद्ध करणजी एक सफल व्यापारी एवं धर्म निष्ठ सज्जन हो चुके हैं। आपके पुत्र श्री चन्दजी सुराणा एवं हुक्मचन्दजी सुराणा वर्तमान में आपके व्यापार का सञ्चालन कर रहे हैं। श्रीचन्दजी के पुत्र श्री जीतमलजी हैं एवं हुक्मी चन्दजी के लूणकरणजी नामक एक पुत्र हैं।

सेठ श्रीचन्दजी सुराणा धर्म निष्ट एवं उदार हृदय परोपकारी महानुभाव हैं। स्थानीय जैन श्वेताम्बर तेरा पन्थी विद्यालय के सभापति हैं। कलकत्ता के मारवाड़ी अस्पताल में आप की ओर से अच्छी आर्थिक सहायता प्रदान की गई है। समय २ पर अन्य संस्थाओं को भी अच्छी सहायता मिलती रहती है। "बिरदी चन्द रिद्ध करण" के नाम से ८७ ओल्ड चीना बाजार कलकत्ते में कपड़े का वृहद् रूपसे थोक बन्ध व्यापार है।

★ सेठ मंगलचंदजी सेठिया चुरू (बीकानेर)

सेठ धनराजजी सेठिया के यहां सं० १९६० वैशाख सुद २ को आपका जन्म हुआ। बाल्य काल ही से प्रतिभा शाली एवं उद्योगी परिश्रम शील थे अतः

स्वल्पायु में ही अच्छी सफलता प्राप्त की। आपके बुधमलजी, चम्पालालजी, तारा चन्दजी एवं माणक चन्दजी नामक चार छोटे भाई हैं। बुधमलजी के चैन रुपजी नामक पुत्र हैं। चम्पालालजी के जगतसिंह एवं विमल सिंह नामक दो पुत्र हैं तारा चन्दजी के कुन्दनसिंह एवं रमेशकुमार ये दो पुत्र हैं। माणकचन्दजी अभी १७ वर्ष के हैं और अध्यन कर रहे हैं। आप पांचों बन्धु मिलनसार, समाजप्रेमी एवं उदार सज्जन है। श्री मंगलचन्दजी व्यवसाय चतुर दानशील एवं धर्म निष्ठ सज्जन हैं धार्मिक कार्यों में इस परिवार का व्यक्तिगत रूससे प्रमुख हाथ रहता है एवं प्रत्येक संस्थाओं में समभाव से आर्थिक सहायता देते रहते हैं। धनराज मंगलचन्द सेठिया के नाम से नूरमल लोहिया लेन पर कपड़े का बड़े पैमाने पर व्यापार है।

★सेठ पूनमचंदजी वैद-रतनगढ़ (बीकानेर)

आप धार्मिक, शिक्षा प्रेमी और जन सेवा के कार्यों में अग्रेसर रहने वाले ६६ वर्षीय जन सेवक हैं। स्कूलों एवं विधवा श्रमों में समय २ पर सहायता देते रहते हैं। आपकी ओर से स्थानीय नगर में एक धर्मार्थ होम्योपैथिक डिस्पेन्सरी भी है। एवं एक बड़ा धर्मार्थ ट्रस्ट बना रक्खा है जो जन सेवा के कार्य में पूर्ण रूप से संलग्न है। पिताजी का नाम जयचन्द लालजी।



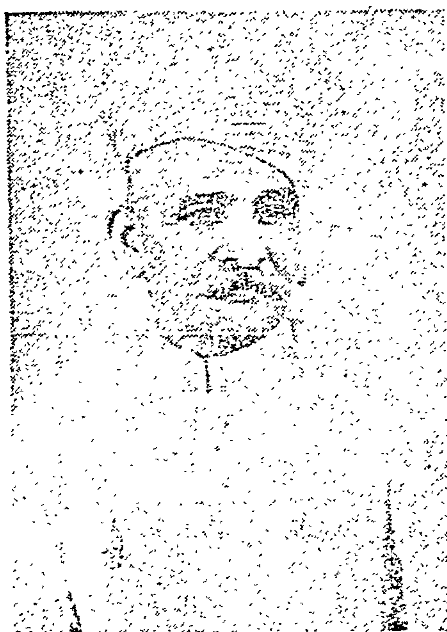
सेठ पूनमचंदजी वैद रतनगढ़

पूनमचन्दजी के रिखबचन्दजी एवं दौलतरामजी नामक दो भाई हैं जो अपने व्यवसाय में सलग्न हैं।

"मानिक चन्द तारा चंद" नामक फर्म नं० १६ फेनिङ्ग स्ट्रीट कलकत्ता पर है। यहां वस्त्र एवं बैंकिंग का काम होता है।

★सेठ हीरालालजी आंचलिया व रतनगढ़ (बीकानेर)

श्री सेठ चुन्नीलालजी के यहाँ श्री हीरालालजी गोद आये। आयु ५६ वर्ष।



सी सेठ हीरालालजी आंचलिया

माणकचन्दजी एवं जसकरणजी नामक दो पुत्र जिनकी आयु क्रमशः २८ एवं २२ है। माणकचन्दजी के नौरतमल बुधमल एवं रूपचन्द नामक तीन बालक हैं। श्री माणकचन्दजी व्यापारिक कार्यों में अपने पिताजी को सहयोग देते हैं एवं छोटे भाई अभी अध्ययन कर रहे हैं।

आँचलियाजी व्यवसायिक कार्यों में अनुभवी मिलनसार एवं गुणग्राही सज्जन है। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों पूर्ण सहयोग देते रहते हैं। नं० २० पथरिया हट्टा में उत्तमचन्द चुन्निलाल के नाम से मनीलेएडर का काम होता है। बिहार अमरेला मैन्युफेक्चर कम्पनी नाम से पटना में छतरियों के बनाने का बड़ा कारखाना है।



कु० जसकरणजी आंचलिया



कु० माणकचंदजी आंचलिया

इसके हिस्सेदार बालेश्वरप्रसाजी व आपके भ्राता सीतारामजी हैं।

★सेठ चन्दनमलजी बेगानी-बीदासर-(बीकानेर)

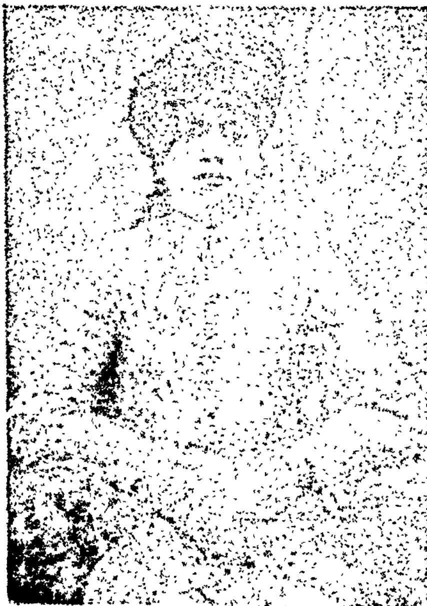
आप श्री सेठ गोकुलचंदजी बेगानी के पुत्र हैं। सेठ चन्दनमलजी बेगानी एक व्यापार कुशल धर्मप्रिय एवं समाज प्रेमी हैं। आयु ४८ वर्ष भंवरलालजी पूनमचन्दजी एवं सम्पतमलजी नामक तीन पुत्र। भंवरलालजी व्यापारिक कार्यों में पूर्ण सहयोग देते हैं। तीनों बन्धु होनहार हैं।

"मानिकचंद पूनमचंद" के नामसे २५० मल्लिकस्ट्रीट कलकत्ते में जूट का व्यापार किशनगञ्ज में-मानिकचन्द गोकुलचंद 'एवं कानपुर में "मानिकचन्द टीकमचन्द" के नाम से आपकी फर्में हैं।

इस प्रकार सेठ चन्दनमलजी एक कुशल व्यापारी व प्रतिष्ठित श्रीमन्त हैं।



सेठ चन्दनमलजी बेगानी बीदासर



भंवरलालजी बेगानी, बीदासर



पूनमचंदजी बेगानी, बीदासर

जन्म सं० १६३५ में हुआ। बचपन से ही मेधावी थे अतः आपने जीवन में अच्छी सफलता प्राप्त की। प्रारम्भ में आप सेठ थानसिंह करमचंद दूगड़ की फर्म पर साझीदारी से कार्य करते रहे। सं० १६७२ में आपने "दुलीचन्द थानमल" नामक फर्म स्थापित कर जूट का व्यवसाय किया। सं० १६-६६ में "थानमल कानमल" नामक स्वतंत्र फर्म स्थापित कर महती सफलता प्राप्त की। ज्येष्ठ पुत्र श्री कानमलजी ३४ वर्ष के हैं एवं लघु पुत्र मांगीलालजी २८ वर्ष के हैं। कानमलजी के जसकरणजी, पूनमचन्दजी, लालचन्दजी एवं हँसराजजी नामक पुत्र हैं। जिनकी आयु क्रमशः १८, १०, ७, ३ वर्ष है। मांगीलालजी के जीतमलजी एवं मोतीलालजी नामक दो पुत्र हैं। इस प्रकार से यह


सेठ थानमलजी मुणोत, बीदासर


मांगीलालजी मुणोत बीदासर


कानमलजी मुणोत बीदासर

परिवार धन धान्य एवं पुत्र पौत्रों से सुखी है। सेठ थानमलजी का सामाजिक जीवन भी अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है। महाराजा गंगासिंहजी के समय में बीकानेर राज्य से आपको पैरों में सोना छड़ी चपड़ास एवं कस्टम की माफी दी गई। महाराजा शार्दूलसिंहजी के समय में कुर्सी ताजीम की इज्जत बख्शीस की गई। बीदासर में आपकी ओर से चिकित्सालय चल रहा है। "थानमल कानमल" १०५ चीना बाजार कलकत्ता में जूट का व्यापार होता है। डूंगरगढ़ नौगांव एवं बेड़ा में भी शाखायें हैं।

★ सेठ मोहनलालजी काला—सुजानगढ़

सुजानगढ़ निवासी सेठ पन्नालालजी काला के सुपुत्र सेठ मोहनलालजी चतुर व्यवसायी, धर्मनिष्ठ एवं परोपकारी मिलनसार सज्जन हैं आपकी अवस्था ५ वर्ष है। आपने बीकानेर असेम्बली के एवं स्थानीय म्युनिसिपल के सदस्य रह कर कई जनहित के कार्य किए। आपके बड़े पुत्र सोहनलालजी ३० वर्षीय युवक हैं। बी. काम करके आप व्यापार में आपको सहयोग देते हैं। मोहनलालजी के कंवरीलालजी एवं मोतीलालजी नामक दो पुत्र हैं इनसे छोटे भाई मिसरीलालजी मैट्रिक पास हैं। आपके भी माखनलाल नामक दो पुत्र है। आप दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। कलकत्ते में आप लोगों की "प्रेमसुख पन्नालाल" नामक फर्म पर जूट कमीशन एजेण्ट एवं क्लोथ मर्चेण्ट का काम होता है। "प्रेमसुख पन्नालाल" जैन टैक्सटाइल कं०



कलकत्ता, महावीर ट्रेडिंग कम्पनी सुजानगढ़ के डायरेक्टर हैं। नारायणगंज पाकिस्तान में चन्दनमल किशनलाल फर्म तथा कमला जूट बेलिंग कम्पनी आपकी है। चारसुगिया, साहिब गंज नागौर आदि में भी आपकी फर्म हैं। इस प्रकार आप एक बड़े श्रीमंत व्यापारी हैं।

★ सेठ घेवरचंदजी दानचंदजी चौपड़ा, सुजानगढ़

इस परिवार के वर्तमान मालिक जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। सेठ पूनमचन्दजी के ४ पुत्रों में से सेठ घेवर चन्दजी एक बड़े प्रतिमाशाली और कर्मवीर पुरुष थे। संवत् १९३५ में आपने शुरु में ग्वालन्दी (बंगाल) में अपनी फर्म खोली। आपने सं० १९६३ में कलकत्ता में भी अपनी एक ब्रांच खोली और जूट का व्यापार प्रारम्भ किया। जिससे आपको बहुत लाभ हुआ। व्यापार के अतिरिक्त धार्मिकता की ओर भी आपकी अच्छी रूचि थी। आप के दानचन्दजी नामक एक पत्र हुए। सेठ घेवरचन्दजी का स्वर्गवास सं० १९६१ में हो गया।

सेठ दानचन्दजी आप भी अपने पिताजी की तरह चतुर और व्यापार कुशल थे। थली के ओसवाल समाज में आप एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। आप यहां के प्रायः सभी सार्वजनिक जीवन में सहयोग प्रदान करते रहते थे। आपने अपने स्वर्गीय पिताजी की स्मृति में श्री घेवर पुस्तकालय एवं श्री घेवर औषधालय की नींव रखी। जिनके लिये एक शानदार इमारत भी बनवा दी। आपने सर्व साधारण के लाभ के लिये स्थानीय स्टेशन पर एक विशाल धर्मशाला का भी निर्माण कराया।

आपने अपने स्वर्गीय पिताजी की स्मृति में ईस्टर्न बंगाल रेल्वे में ग्वालन्दों के स्टेशन का नाम ग्वालन्दो घेवर बाजार कर दिया एवं उसी स्थान पर आपने पब्लिक के लिये एक अस्पताल बनवाकर उसकी बिल्डिंग यूनियन बोर्ड को प्रदान कर दी। इसी प्रकार आप हमेशा धार्मिक, सामाजिक एवं पब्लिक कार्यों में सहायता प्रदान करते रहते थे। बीकानेर दरबार ने आपके कार्यों से प्रसन्न होकर आपको ऑनरेरी मजिस्टेट की उपाधि दी। आपके इस समय छ पुत्र हैं जिनके नाम क्रमशः- विजयसिंहजी, पनेचन्दजी, प्रतापचन्दजी, जयचन्दजी, रामचन्दजी, दुलीचन्दजी हैं। आपका देहावसान संवत् १९९८ के ज्येष्ठ मास में हुआ था।

श्री विजयचन्दजी :—वर्तमान में आप ही इस परिवार में मुख्य व्यक्ति हैं। आप भी वंश परम्परा के अनुसार ही व्यापार कुशल पुरुप हैं तथा अपनी फर्म की प्रतिष्ठत वृद्धि उत्तरोत्तर कर रहे हैं। हाल ही में एक शिपिंग कम्पनी भी नेपचुन नेविगेशन के नाम से खोली है। आप एक उदार, उच्च: विचार सम्पन्न एवं सम्भ्रान्त सज्जन हैं। आप सदैव परोपकार रत, गरीबों एवं सार्वजनिक कार्यों व संस्थाओं में सहायता प्रदान करने को प्रस्तुत रहते हैं।

श्री सेठ कुन्दनमलजी सेठिया सुजानगढ़ (बीकानेर)



श्री रूपचन्दजी के सुपुत्र। आयु ७६ वर्ष बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति व्यापार की ओर। स्वल्प समय में ही अच्छी सफलता प्राप्त कर प्रतिष्ठित हुए। शिक्षा प्रसार की ओर विशेष लक्ष्य। गांधी बालिका विद्यालय के मन्त्री हैं।

चम्पालालजी, केशरीचन्दजी, एवं मदनचन्दजी नामक तीन पुत्र हैं। जिनकी आयु क्रमशः ३८, ३५ एवं २४ वर्ष है। तीनों बन्धु उदार प्रवृत्ति के मिलन सार एवं उत्साही सज्जन है। कलकत्ते में "सेठिया ब्रादर्स" ५६ नेताजी सुभाष रोड पर फर्म है। चिटगांव में शाखा है। जूट का विशाल पैमाने पर व्यवसाय होता है।

सेठ जयचंद लालजी दफ्तरी, सरदार शहर

सं० १९६४ पौष कृष्णा ८ रवि को शुभ जन्म। सं० १९८६ में "हुल्लासचन्द सुखलाल" के नाम से अपने मामाजी की सीर में वस्त्र व्यवसाय किया। कुछ ही समय में व्यापार विशाल पैमाने पर चल निकला और कलकत्ते के प्रतिष्ठित श्रीमन्तों की गणना में आगए। सरदार शहर में "जयचन्दलाल दफ्तरी" के नाम से सोने चांदी के आढ़त का काम विशाल पैमाने पर शुरू किया एवं जोधपुर, बीकानेर, भटिण्डा आदि स्थानों पर फर्म की शाखायें स्थापित की।

आप धार्मिक तथा सामाजिक समस्त सार्वजनिक कार्यों में तन मन व धन से सक्रिय सहायता देते रहते हैं। "सरदार शहर सेवा समिति" के मंत्री रह आपने सरदार शहर की जो सेवायें कीं उनसे जनता बड़ी प्रभावित है और आप काफी लोक प्रिय बन गये। बीकानेर के सिविल सप्लाईज के मिनिस्टर ने आपकी जन सेवा से प्रभावित होकर आपको प्रशंसात्मक धन्यवाद सूचक पत्र लिखा। सरदार शहर की जैन एवं जैनेतर कई जन हितकारी संस्थाओं के सदस्य एवं माननीय [illegible] हैं।

आप तेरह पंथी जैनसमाज के अगेवान कार्य कर्त्ताओं में से हैं। साहित्य प्रकाशन कार्य में बड़ी रुचि है। इसी हेतु 'आदर्श साहित्य संघ' प्रकाशन संस्था का [illegible] आपके प्रयत्न से जन्म हुआ।

★ सेठ मांगीलालजी पांड्या, सुजानगढ

आप सुजानगढ़ के एक सुप्रतिष्ठित विचारवान शिक्षा प्रेमी सज्जन हैं कलकत्ते में 'जुहारमल चम्पालाल' के नाम से ६२ नलिनी सेटरोड पर आप का जूट का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता है। विशेष विवरण बंगाल कलकत्ता विभाग में दिया जा रहा है।



★ सेठ हजारीमलजी डागा, गंगाशहर (बीकानेर)

आप गंगा शहर के एक आगेवान सज्जन हैं। पञ्च एवं पञ्चायती में आपकी राय सर्व मान्य और वजनदार मानी जाती है। इस समय आपकी अवस्था ७२ वर्ष के करीब है। अपना सारा समय धर्म ध्यान में ही व्यतीत करते हैं। आपके ३ पुत्र हैं:—श्री भैरोदानजी, भंवरलालजी तथा केशरीचंदजी। भैरोदानजी के जेठमल नामक ६ वर्षीय पुत्र, भंवरलालजी के मेघराज नामक ७ वर्षीय पुत्र है। भैरोदानजी, भंवरलालजी तथा केशरीमलजी की उम्र क्रमशः ३६, ३३ तथा २८ वर्ष है। आप सब सरल प्रकृति के मिलनसार सज्जन है। तीनों ही अपने व्यवसाय देखरेख करते हैं। आपका "हजारीमल भंवरलाल" के नाम से लालजी

श्रीमाल के कटले बीकानेर में कपड़े की दुकान है। श्री भंवरलालजी एक आधुनिक विचारों के गंभीर और सर्वजनिक कार्यों के प्रति पूरी दिलचस्पी रखने वाले हैं।

★श्री जैसराजजी सौगानी "निर्मोही" सुजानगढ़ (बीकानेर)



श्री नथमलजी सौगानी के पुत्र श्री जैसराजजी सौगानी का जन्म सन् ६ अक्टूबर १६३१ का है। साहित्य सम्मेलन से विशारद उत्तीर्ण एवं साहित्य प्रेमी हैं और यदा कदा कविता एवं लेखादि भी लिखते रहते हैं। समाज सुधारक एवं प्रगति शील विचारों के उदार चेता उत्साही नव युवक हैं। अ. विश्व जैन मिशन अलीगञ्ज (एटा) के सक्रिय सदस्य। श्री पूज्यपाद क्षुल्लक सिद्धि सागरजी का लिखित कर्तव्य नामक ट्रेक्ट प्रकाशित करवा कर अमूल्य वितीर्ण किया। समाज को आपसे बहुत आशायें हैं कलकत्ते में नं० १५ नूरमल लोहिया लेन पर 'हरक चन्द जैसराम एण्ड कम्पनी' नामक फर्म पर जूट का व्यापार एवं "दि न्यू इण्डिया एश्युरेन्स कम्पनी लिमिटेड" कलकत्ता के एजेन्ट हैं।

★सेठ पूनमचंदजी नाहटा, भादरा



आपके परिवार में सेठ लक्ष्मीचंदजी एक नामांकित व्यक्ति हुए। सं० १६५३ में हिसार जिले में सारंगपुर नामक गाँव खरीदा। ६ वर्ष तक बीकानेर स्टेट असेम्बली के मेम्बर रहे। सदा राज्य सम्मानित रहे। आपके पुत्र सेठ भैरोंदानजी के पुत्र श्री पूनमचंद जी हैं। जन्म सं १६५८ आसोज सुदी १५ पूर्वजों की तरह ही प्रतिष्ठित हैं। सं० १६८५ में बीकानेर स्टेट असेम्बली के मेम्बर नियुक्त हुए। भादरा म्युनिसिपल कमेटी के वाइस प्रेसिडेण्ट भी रहे। आपके यहां 'जेसराज लखमीचन्द' के नाम से बैंकिंग व जमींदारी का कार्य होता है।

★ सेठ चम्पालालजी छगनलालजी नाहटा, भादरा


सेठचम्पालालजी नाहटा भादरा

बिल्यू (बीकानेर) से आप भादरा आये। करीब ४० वर्ष सेठ चुन्नीलालजी के पुत्र सेठ बिरदीचन्दजी और सालमचन्दजी व्यापारार्थ ग्वालपाड़ा (आसाम) गये और वहाँ निजि दुकान स्थापित की। शनैः व्यापार में तरक्की हुई और कलकत्ते में आढ़त का काम प्रारंभ किया। कलकत्ता व ग्वालपाड़ा में फर्म का नाम बिरदीचन्द श्रीचन्द, पड़ता है। दोनों स्थानों पर कपड़े का व्यापार होता है।

सेठ बिरदीचन्दजी के श्रीचन्दजी व सालमचन्दजी नामक दो पुत्र हुए तथा सेठ सालमचंदजी के २ पुत्र हुए चम्पालालजी व मांगीलालजी वर्तमान में सेठ चम्पालालजी मुख्य हैं। सं० १९७४ का जन्म है। आपके छगनलालजी हरीसिंहजी, कमलसिंह व छत्रसिंह नामक ४ पुत्र हैं।

★ सेठ ईश्वरदासजी छलाणी देशनोक (बीकानेर)



बीकानेर प्रान्त के गुड़ा नामक ग्राम में श्रीयुक्त टीकमचंदजी सा० छलाणी के घर में संवत १९५३ में जन्म हुआ। "ईश्वरदास तारकेश्वर" और बने चंद पूरनचंद और क्या देशनोक क्या कलकत्ता सर्वत्र प्रतिष्ठित सज्जनों में गिने जाते हैं आप चोरबाजारी जैसे हेय धन्धों द्वारा ललचाये नहीं जा सके। बीती बातों को भी आप भूले नहीं। आपके ज्येष्ठ भ्राता एवं पथ प्रदर्शक आदरणीय श्री भैरूदानजी सा. छलाणी जो लगभग ६७ वर्ष की आयु में हैं, देशनोक के उच्चकोटि के श्रावकों में हैं, और सदैव धर्मध्यान में तल्लीन रहते हैं, के प्रति आपके हृदय में अगाध श्रद्धा है। दोनों भाइयों का प्रेम सराहनीय है। पुत्र चि० तारकेश्वर हैं, जो १२ वर्ष की उम्र में सप्तम श्रेणी में अध्ययन कर रहे हैं।

सेठ सोहनलालजी दूगड़, जयपुर

जन्म सं० १६५२ का जेठ वदी १३। मूल निवास स्थान फतेहपुर (सीकर)
आप वायदे का व्यापार करते हैं। इस विषय में आप बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं।
जयपुर के ही नहीं अपितु भारत के एक सुप्रसिद्ध एवं प्रमुख सटोरिया व दानी हैं।



आप सही अर्थों में भाग्यशाली हैं। लक्ष्मी का जिसे मोह नहीं पर लक्ष्मी छाया की तरह जिनके पीछे २ फिरती है आपको दानवीर कहा जाता है पर ऐसा लगता है ये दान की साकार सजीव मूर्ति हैं या दान इनसे साकार है। जब कभी अच्छा मुनाफा हुआ तुरन्त उसका अधिक भाग किसी शिक्षणशाला में दान दे देते हैं आपका कथन है कि यह लक्ष्मी चंचल है इसे रहना है नहीं फिर इसे ... ये में क्यों न लगाया जा... कई शिक्षण संस्थाओं के ... हायक एवं संरक्षक हैं।

आप अपने हा... तक १५-२० लाख रुपया दान कर चुके होंगे। हरिजन उत्थान, बाल व... क्षण की तरफ आपकी विशेष रुचि है। फतेह पुर में आप एक आदर्श ... र बना रहे हैं।

यह निर्विवाद सत्य ... न वीरता में आज आपके समान दूसरा व्यक्ति ...डे से भी नहीं मिल सकता। पैसे से ही इनकी पूजा हो सो नहीं आप गंभीर विचा...क और जोशीले सुधार प्रिय कार्यकर्ता हैं। इस तरह भारत राष्ट्र की आप एक ...नुपम विभूति हैं।

आपकी धर्म पत्नी श्रीमती सौ० सुभद्रादेवीजी भी आपही की तरह उदार ...य एवं प्रगतिशील विचारों की हैं। महिला समाज में पर्दा निवारण आदि सुधार ...क्षा विषयक आन्दोलनों में विशेष दिलचस्पी रखती हैं। स्वयं ने पर्दा प्रथा का ... किया है। भाषण शैली भी अच्छी है।

★सेठ सोहनलालजी गोलेछा, जयपुर

फर्म की स्थापना सन् १८८० में हुई। वर्तमान में फर्म का संचालन सोहनलालजी गोलेछा करते हैं। दोसा, जयपुर तथा भीलवाड़े में आपकी सोपस्टोन की मिलें हैं। "सुप्रियम जनरल फिल्म कं लि० बम्बई के आप प्रमुख हिस्सेदार हैं इसी के आधार पर आप फिल्मों के डिस्टीब्यूटर्स हैं। जयपुर में प्रेम प्रकाश और भवानी टाकीज नामक दो टाकीज भी हैं। २ वर्ष हुए जे० एल० एण्ड एस० कौस्मेटिक लिमिटेड" के नाम से जयपर में एक तैल की बड़ी कंपनी स्थापित की। जयपुर चेम्बर आफ कामर्स एवं राजस्थान चेम्बर आफ कामर्स के आप प्रेसीडेण्ट हैं। आप अपने समाज के एवं जयपर के लब्ध प्रतिष्ठित एवं सुयोग्य नागरिक हैं। आपके पुत्र हरीशचंद्रजी गोलेछा प्रतिभाशाली होनहार नवयुवक हैं। फर्म पर कार्पेट, ब्रस ब्रासइनामिल मेन्युफेक्चर्स बैंकर्स मनीएक्सचेंज, गार्नेट, मर्चेन्ट आदि का व्यवसाय होता है। इसके अतिरिक्त इस फर्म पर स्टेंडर्ड वक्युम आइल कंपनी के तैल और पेट्रोलियम प्रोडक्टस की एजंसी और नेशनल एनिमल एण्ड कं० केमिकल कं० के रंग की एजेन्सी है। यह फर्म अलन फेल्ट मेंयुफेक्चर भी करती है।

★सेठ राजमलजी सुराणा, जयपुर



जन्म सं० १९६४ में हुआ जयपुर के ओसवाल समाज अच्छे प्रतिष्ठत व्यक्ति माने जा हैं। धार्मिक कार्यों आप उत्सा के साथ भाग हैं। आपके पुत्र हैं जोकि बड़े ही यो एवं होनहार है।

जयपुर म्युनिसिपल के का न्सीरलर, आनरेरी मजिस्ट्रेट अन्यान्य सभा संस्थाओं उच्च पदाधिकारी रह चुके हैं व्यापारिक क्षेत्र के अतिरि आप लोकोपयोगी संस्थाओं भी विशेष रुचि रखते हैं।

मेसर्स "भूरामल राजम सुराणा" नामक फर्म पर जवा रात, हीरा, मोती आदि व्यवसाय होता है फर्म से इम्पोर्ट व एक्सपोर्ट भी होता है।

★श्री राजरत्नरामजी हंसराजजी कामानी, जयपुर

जन्म १८८६ धारी (काठियावाड़) स्थापक जीवनलाल कम्पनी १९१३, जीवनलाल लिमिटेड (१९२९) मैनेजिंग डाइरेक्टर मुकुन्द आयरन एन्ड स्टील वर्क्स लि० (१९३९-४१) संस्थापक जयपुर मैटल इंडस्ट्रीज जयपर १९४३ स्थापक तथा अध्यक्षता कमानी मैटल्स एन्ड अलायज लि० १९४४, संस्थापक कमानी एजिनियरिंग कारपोरेशन, १९४५ संस्थापक इंडियन नान फैरस मैटल मैन्यूफेक्चरर्स असोसियेशन १९४५, भारत सरकार द्वारा नानफैरस मैटल के पैनल में नियुक्त, १९४५, प्रधान जयपुर चेम्बर आफ कामर्स। राजरत्न का सम्मान बड़ौदा राज्य द्वारा १९३६, ग्राम तथा हरिजन उद्धार कार्य में रुचि।

—पता-पारिजातक, न्यूकालोनी जयपुर।

★सेठ सुंदरलालजी ठोलिया जयपुर

प्रसिद्ध जौहरी व जयपुर के बड़े श्रीमंत। सेठ घन्जीलाल ठोलिया के पुत्र। जन्म १८९२ जयपुर, जोधपुर; उदयपुर, सैलाना एवं झालावाड़ से सोना तथा ताजीम। जवाहरात के व्यवसाय में कुशलता एवं ख्याति प्राप्त, प्रचीन कला एवं चित्रकारी के संग्रह में अभिरुचि, संतति ४ पुत्र तथा ५ पुत्रियां। डाईरेक्टर बैंक आफ जयपुर लिमिटेड।—पता ठोलिया बिल्डिंग, मिर्जा इस्माइल रोड जयपुर।

★सेठ विनयचंद भाई दुर्लभजी जौहरी, जयपुर

जन्म २५ फरवरी १९०१ में स्थानकवासी जैनसमाज के ख्यातिप्राप्त महान नेता व समाज सेवक धर्मवीर सेठ दुर्लभजी भाई जौहरी के पुत्र रत्न के रूप में हुआ। सन् १९१७ में आपने आर० बी० दुर्लभजी जौहरी कं० के भागीदार के रूप में अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया और आज आप ही इस फर्म के प्रमुख संचालक हैं। फर्म पर हीरे और जवाहरात का व्यापार देश व विदेशों में विशाल पैमाने पर होता है। फर्म का सम्बन्ध अमेरिका, युरोप आदि विदेशों से हैं। आपने कई बार इन विदेशों की यात्रायें की हैं।



जयपुर चेम्बर आफ कामर्स, जैन गुरु कुल ब्यावर सुबोध जैनहाई स्कूल जयपर के सभापति हैं। ट्रेडर्स एसोसियेशन जयपुर लिमिटेड के चेयरमेन हैं। आपका शिक्षा प्रेम अद्वितीय है। धार्मिक कार्यों में और

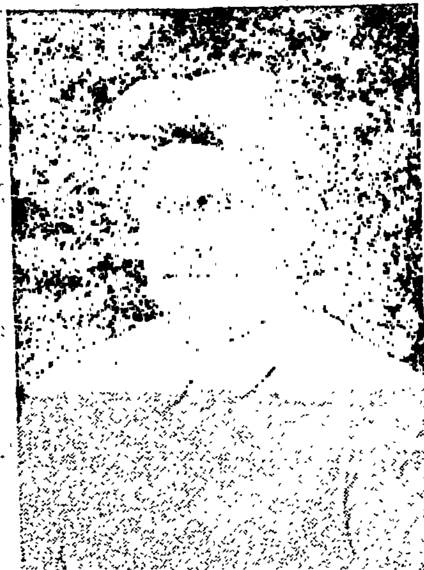
सार्वजनिक संस्थाओं में खुले हाथों से दान देते हैं। अब तक करीब १ लाख रु० दान कर चुके होंगे। मोंटेसरी स्कूल जयपुर के लिए आपने एक भवन प्रदान किया है। आपने तथा आपके साझीदार भाई सेठ खेलशंकरजी मिलकर जयपुर में एक मुफ्त जच्चाखाने भी चला रहे हैं।

★मेसर्स कांतिलाल छगनलाल जौहरी-जयपुर

सेठ छगनलालभाई बड़े सज्जन शिक्षित और धर्मिष्ठ पुरुष हैं। स्थानकवासी कान्फ्रेन्स में आप हमेशा भाग लेते रहते हैं।

बच्चों की शिक्षा के लिये "श्रीमती काशी बाई छगनलाल गुजराती स्कूल" खोला जिसका उद्घाटन १९४६ में स्व० सरदार वल्लभ भाई पटेल ने किया था। स्कूल का प्रबन्ध अत्युत्तम है और ५० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

कान्तिलाल भाई और कुसुमचंद्र भाई नामक दो पुत्र हैं। जो कि व्यापारिक कार्यों में आपको सहयोग देते हैं। श्री कुसमभाई व्यवसायिक कार्य के लिये यूरोप का भ्रमण कर चुके हैं। दोनों बन्धु, मिलन सार, उत्साही और आदर्श युवक हैं। फर्म पर हीरा, पन्ना, माणिक, मोती के खुले और बन्द जड़ाऊ जेवरों एवं कमीशन एजेन्ट का काम होता है।


सेठ छगनलाल शाह, जयपुर

★श्री सिद्धराजजी ढढ्ढा जयपुर

भूतपूर्व उद्योग मंत्री बृहद् राजस्थान संघ राज्य। जन्म १९०८। श्री गुलाबचंद ढढ्ढा एम० ए० के पुत्र। १९२८, एम ए० एल० एल० बी० (प्रयाग)। वकालात बंगलोर, जयपुर। सहायक मंत्री तथा मंत्री इंडियन चेम्बर आफ कामर्स कलकत्ता १९३३-४२, मंत्री इंडियन शुगर मिल्स असोसियेशन, इंडियन केमिकल मेन्फेक्यूचरर्स असोसियेशन, इन्शुरेन्स कम्पनीज असोसियेशन। पदाधिकारी तथा कार्यकारिणी के सदस्य ओसवाल महासम्मेलन, मारवाड़ी सम्मेलन, तरुण जैन संघ, हरिजन उत्थान समिति, बंगाल हरिजन बोर्ड, अगस्त अन्दोलन जेल में नजरबन्द १९४३-४४, मैनेजिंग डाइरेक्टर युगान्तर प्रकाशन मंदिर लि० जयपुर, संस्थापक लोकवाणी दैनिक १९४६, सदस्य कार्य कारिणी जयपुर राज्य

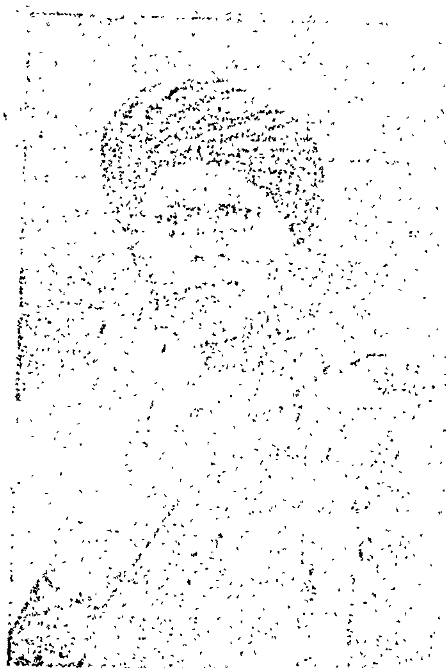
प्रजामंडल १९४५-४८, संयोजक पार्लियामेंटरी बोर्ड १९४५-४७, सदस्य कार्य कारिणी तथा मंत्री अखिल भारत देशी राज्य परिषद् की जनरल कौंसिल तथा (राज) प्रांतीयसभा, वर्तमान प्रधान मंत्री राजपूताना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी तथा संयुक्त मंत्री स्वागत समिति ५५ वां कांग्रेस अधिवेशन, जयपुर, गांधीवादी विचारधारा का अध्ययन तथा साहित्यक लेखन की अभिरुचियां।—पता-चौड़ा रास्ता, जयपुर।

★श्री सेठ केशरीमलजी घीसालालजी कोठारी, जयपुर

दानवीर एवं कुशल व्यवसायी श्री सेठ केशरीमलजी आदर्श श्रावक हैं। पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज सा० के धर्मोपदेशों का आप पर बहुत असर



श्री घीसालालजी कोठारी जयपुर



सेठ केशरीमलजी कोठारी जयपुर

पड़ा। मुनीवरों की एवं समाज सेवा के कार्यों में प्रमुखता से भाग लेकर अपने जीवन को सफल बना रहे हैं। आप ६७ वर्ष के वृद्ध सज्जन हैं। आपके पुत्र श्री घीसालालजी भी आपही के अनुरूप आदर्श सज्जन हैं। भीमराजजी, नवरतनमलजी, लालचन्दजी और सुन्दरलालजी नामक चार पुत्र हैं। जो अध्ययन कर रहे हैं। श्री घीसालालजी मेधावी और प्रत्युतपन्नमति हैं। अपकी अनोखी कार्य शैली से व्यापारिक कार्यों में बड़ी उन्नति हुई।

नाहरगढ़ रोड पर "केशरीमलजी घीसालालजी कोठारी" नाम से जवाहरात का व्यवसाय होता है। फर्म की शाखा रंगून, मद्रास और त्रिचनापल्ली में भी है।

★सेठ रतनलालजी छुट्टनलालजी फोफलिया, जयपुर

सेठ रतनलालजी के पौत्र छुट्टनलालजी सफल व्यवसायी एवं कुशल कार्य कर्ता हैं। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में पूर्ण उत्साह से भाग लेते रहते हैं। आप के पुत्र श्री जतनमलजी भी व्यापारिक कार्यों में पूरा हाथ बटाते रहते हैं। उत्साही एवं मिलनसार नवयुवक हैं। इनके अतिरिक्त श्री कानमलजी, मानमलजी, पारस मलजी, सुमेरमलजी तथा उम्मेदमलजी नामक पांच पुत्र और हैं। आप सभी मिलनसार एवं सद्गुणी नवयुवक हैं।

जवाहिरात के व्यवसाय के अतिरिक्त जयपुर राज्य में आपकी अभ्रक की खानें भी हैं। पता—गोपालजी का रास्ता—जयपर

★श्री ताराचंदजी बख्शी एम० एस० सी० एल० एल० बी,० जयपुर

सम्पन्न बख्शि परिवार में—सन् १९२१ में दीपावली के शुभ मुहूर्त में जन्म हुआ। आपके पूज्य पिताजी श्री केशरलालजी बख्शी जयपुर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से गिने जाते हैं।

२२ वर्ष की छोटी अवस्था में ही अपने एम. एस. सी. व एल. एल. बी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् ४५ में आप नगर पालिका के सदस्य चुने गए। इसी समय आपने ज्यूडिशियल परीक्षा पास की जिसमें सर्व प्रथम रहे। फलस्वरुप आपको फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त करके सर्व प्रथम मालपुरा भेजा इसके बाद नीम केथाने व जयपुर निजामत में भी काय किया। अब आप जयपुर शहर में ही सिटी मजिस्ट्रेट के पद पर बड़ी योग्यता से कार्य कर रहे हैं।



श्री ताराचंदजी बख्शी

आप "महावीर क्लब" महावीर पुस्तकालय" बालमन्दिर व "व्यायाम शाला" "स्वास्थ संदेश" मासिक पत्र नगर सेवादल सर्वोदय पुस्तकालय व वाचनालय' राज० स्वराज्य सुधार समिति, राज प्राकृतिक चिकित्सालय व स्वास्थ्य मन्दिर के संस्थापक हैं। वर्तमान में आप अ० भा० प्राकृ० चि० संघ के सदस्य, "युवक मण्डल जयपुर" के संरक्षक "राज० प्राकृतिक चिकित्सा संघ एवं स्वास्थ्य सुधार समिति के मंत्री हैं। ७ नवम्बर १९५० को आपने अपने

प्रयास से अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन बुलाया जिसका उद्घाटन राजर्षि टण्डनजी ने किया जिसके आप स्वागत मंत्री थे। आप बहुत कार्यशील सेवाभावी व उत्साही कार्य कर्ता हैं। "स्वास्थ्य" तथा "शिक्षा" विषयों से विशेष प्रेम है। आप प्राकृतिक चिकित्सा के डाक्टर हैं। तथा अच्छे वक्ता और लेखक भी हैं। आपके नरेन्द्रकुमार और सुरेन्द्रकुमार नामक दो होनहार पुत्र हैं।

पता—बख्शी भवन नई बस्ती जयपुर।

★पं० चैनसुखदासजी जैन न्याय तीर्थ जयपुर

निवास भादवा (जयपुर)। जैन दर्शन, जैन सिद्धान्त तथा अन्य साहित्य का विशेष अध्ययन। संस्कृत ग्रन्थ, भावना विवेक, पावन प्रवाह, भूतपूर्व संपादक जैन विजय, जैन दर्शन, जैन बंधु, वर्तमान प्रधान संपादक-वीरवाणी। प्रिंसिपल दि० जैन संस्कृत कालेज। आपने हालहीं में जैन दर्शन के संबंध में एक उत्तम ग्रन्थ की रचना की है जो बी. ए. के कोर्स में पढ़ाई जाती है।—पता-मनिहारों का रास्ता जयपुर।

★सेठ गणपतरायजी सेठी, लाडनू (मारवाड़)



कलकत्ते में जूट के प्रमुख व्यापारी हैं राजस्थान इण्डस्ट्रीज लिमिटेड लाडनूं के डाईरेक्टर हैं। लाडनू "होस्पिटल" का 'भवन' आपने ही बनावाया है लाडनूं में आपने एक हनुमानजी का मन्दिर बनवाया एवं स्थानीय आर्य समाज भवन का निर्माण कर आपने उदार सर्व धर्म प्रियता का प्रमाण दिया। श्री रामानन्द गौ शाला को आर्थिक सहायता देने में आप का प्रमुख हाथ रहता है। स्टेशन के सामने आपने अपनी ओर से प्याऊ भी स्थापित कर रक्खी है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री हीरालालजी सेठी २२ वर्ष के हैं एवं लघु पुत्र श्री पन्नालालजी सेठी १८ वर्ष हैं। आप दोनों बन्धु उत्साही लगन शील एवं कुशल कार्यकर्त्ता युवक हैं।

★सेठ जयचंदलालजी सुराणा, छापर

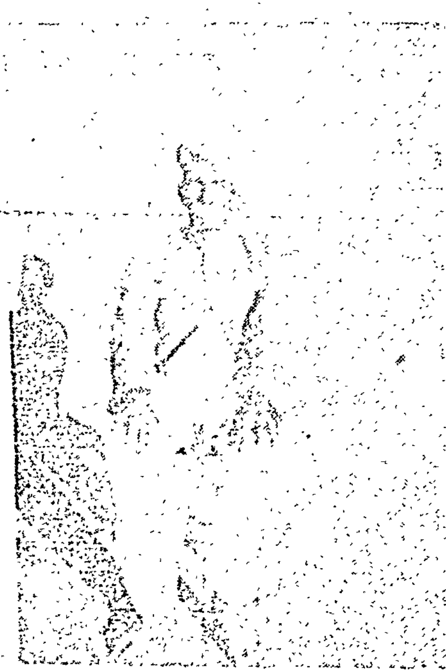
आपका जन्म सं० १९४८ कार्तिक शुक्ला ८ का है। इस समय सपट ग्रा (आसाम) में "भंगराम कोडामल के नाम से तथा कलकत्ता में" ...

श्री चन्द" के नाम से नं. १० आर्मेनियम स्ट्रीट में आढत को व्यवसाय बड़े पैमाने पर होता है।

चतुर व्यावासायी होने के साथ आप प्रगति शील समाज प्रेमी सज्जन हैं। सार्वजनिक कार्यों में आप पूर्ण हिस्सा लेते हैं। आपके पुत्र नौरतमलजी अध्ययन कर रहे हैं।

☆श्री डूंगरमलजी संवलावत "डूंगरेश"-डेह (मारवाड)

सेठ केशरीमलजी व सेठ जीतमलजी दोनों भ्राता डेह जैनसमाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।



सेठ केशरीमलजी संवलावत

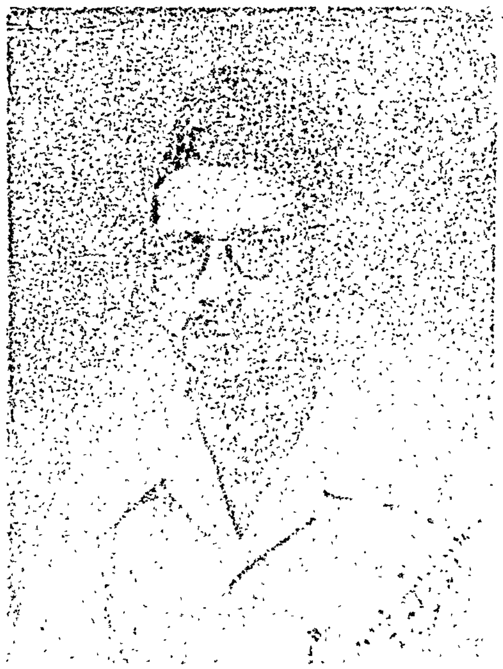


सेठ जीतमलजी संवलावत

श्री सेठ केशरीमलजी संवलावत एक धर्मनिष्ठ परोपकारी महानुभाव हैं अपनी व्यापारिक प्रतिभा से लाखों की सम्पत्ति उपार्जित की। अभी आप डेह में धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपके पुत्र श्री डूंगरमलजी का जन्म

न् १६७६ माघ सुदि १५ को हुआ। ...िस तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद ...पने व्यापारिक क्षेत्र में कार्य प्रारंभ ...या एवं बड़ी ही योग्यता से ...र्य का संचालन कर रहे हैं।

आप श्री वीर नवयुवक मण्डल डेह (...ागौर) के प्रधान मंत्री तरुण, जैन ... के सञ्चालक एवं अखिल विश्व ...न मिशन -अलीगञ्ज (एटा) के ...ारक तथा संयोजक है। तथा समय ...पर पत्र पत्रिकाओं में लेखादि देकर ...हित्याराधन भी आप करते रहते ...। आपके चैन सुख एवं राजकुमार ...मक दो छोटे भाई हैं जो अभी ...कुल में पढ रहे हैं।



श्री डूंगरमलजी सबलावत 'डूंगरेश'

श्री डूंगरमलजी के विनोदकुमार ...मक पुत्र एवं सावित्री एवं कमला नामक दो कन्यायें हैं।

"सबलावत ट्रेडिंग कम्पनी" नं० १५ नारमल लोहिया लेन कलकत्ता पर ...ट की आढत दलाली तथा व्याज का काम होता है। डेह में डूंगरमल हुलास...न्द एवं केशरीमलजी जीतमल नामक फर्मों पर साहूकारी का काम होता है।

★श्री रामदेवजी पाटनी, डेह (मारवाड़)

जन्म सं० १६७८। पिता का नाम झूमरमलजी पाटनी। आप कार्य शील नव...वक, उत्साही एवं प्रगतिशील विचारों के मिलनसार सज्जन हैं। "अखिल विश्व ...न मिशन अलीगञ्ज (एटा) के सक्रिय सदस्य हैं। आपके दो पुत्रियें एवं एक पुत्र ...ी रूपचन्दजी नामक हैं। आपके लघु भ्राता सोहनलालजी एवं गनपतलालजी हैं। ...ाप भी शिक्षित एवं शिष्ट युवक हैं।

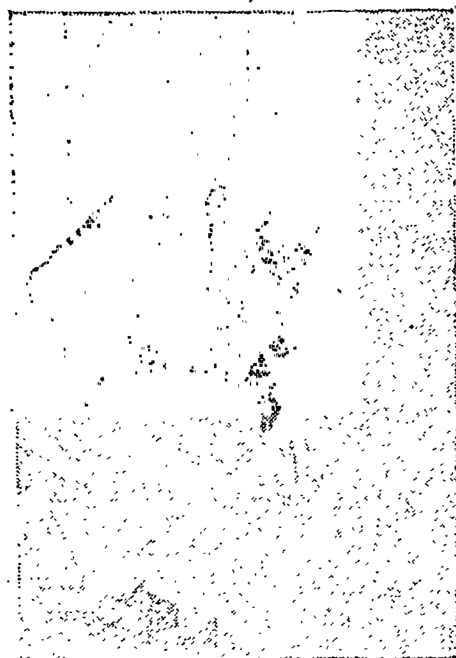
आसाम में "चम्पालाल झूमरमल" पो० तीन सुकिया फर्म पर गल्ला ...राना एवं जूट का व्यापार होता है। "रामदेव रामगोपाल पाटनी" पो० रामगंज ...ण्डी कोटा में तथा एक शाखा डेह (मारवाड़) में है।

★श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी डेह (मारवाड़)

आपका जन्म १६८५ हुआ। आप खण्डेलवाल दिगम्बर जैन हैं। उत्साही ...मिलनसार एवं हँसमुख युवक हैं 'श्री वीर युवक मण्डल' डेह के उत्साही सदस्य हैं। ...था संस्था के "स्वयं सेवक" विभाग के कई वर्षों तक कैप्टेन रह चुके हैं एवं

उत्साह पूर्वक कार्य किया। आपके पुत्र श्री सरोजकुमारजी। आपके पूज्य पिताजी श्री गिरधारीलालजी पाटनी वयोवृद्ध धर्म निष्ठ महानुभाव हैं। आयु ६३ वर्ष की है अधिकांश समय धर्म कार्य में ही व्यतीत होता है। नंम्बर ३ वैशाख स्ट्रीट कलकत्ते ७. में "मदनलाल मांगीलाल पाटनी" फर्म पर जूट एवं गल्ले का व्यापार। विहार आसाम एवं डेह में भी आपकी फर्में हैं।

★श्री झूमरमलजी कोठारी-डेह-(मारवाड़)



श्री सेठ रुपचन्दजी कोठारी के सुपुत्र श्री झूमरमलजी का शुभ जन्म सं० १९७४ मिगसर सुदी १५ का है। आप एक उत्साही तथा मिलनसार युवक हैं "श्री वीर युवक मण्डल डेह (मारवाड़) के आप सक्रिय सदस्य हैं। धार्मिक कार्यों में आप समय २ पर सहायता देते रहते हैं। श्री कंवरीलालजी और मदनलालजी नामक आपके दो पुत्र हैं।

वावरा (पूर्वी पाकिस्तान) में रुप-चन्द झूमरमल" के नाम से पाट, तमाखू और कपड़े का व्यापार होता है। इसी नाम से आपकी एक फर्म 'डेह' में भी है। आपकी होशियारी से फर्म तरक्की पर है। आप का उत्साह श्लाघनीय है।

★सेठ हिम्मतमलजी-सुमेरपुर-(मारवाड़)

वोहरा गोत्रोत्पन्न श्री सेठ मुन्नीलालजी के सुपुत्र श्री हिम्मतमलजी एक मिलन सार सज्जन हैं। आपकी आयु ४० वर्ष की है। आप व्यापार कुशल और धर्म श्रेष्ठ और सामाजिक कार्यों में सहृदय पूर्वक भाग लेते हैं स्थानीय व्यापारिक एशोसियसन के सदस्य हैं। आपके घीसूलालजी, एवं जौहरीलालजी नामक दो पुत्र हैं। जो अभी अध्ययन कर हैं। "एम० एल० एन्ड कम्पनी के नाम से आपके यहां साइकिलों तथा मोटर के पुर्जों का व्यापार होता है।

★ सेठ भूमरमलजी जैन पलासवाड़ी (आसाम)

आप दिगम्बर जैन श्री सेठ गंगा वक्सजी के गंगवाल के सुपुत्र है। ३४ वर्षीय उत्साही कर्मठ कार्य कर्त्ता हैं। पलास बाड़ी स्थित मारवाड़ी सेवा संघ आपके प्रधान मंत्रित्व में उन्नति कर रहा है। आपके राज कुमार, रतनलाल और प्रेमरतन नामक तीन पुत्र हैं। समाज में भी अच्छा सन्मान है। समय पर२ दान भी करते रहते हैं।

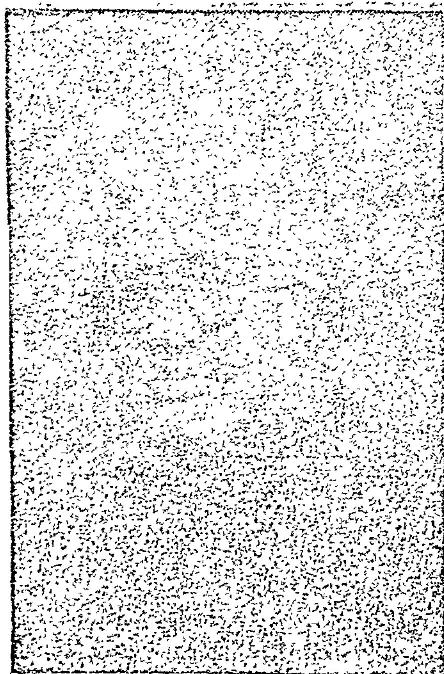
"गंगावक्स भूमरमल" नामक फर्म के आप संचालक हैं। यह फर्म कपड़े एवं सूत की एजेण्ट और थोक बन्द व्यवसाय करती है। गोहाटी जिले में शक्कर वितरण का कार्य भी यह फर्म करती है। इसके अतिरिक्त आप गोहाटी और तीन सुखिया में स्थित अमरचन्द पन्नालाल फर्म के साझीदार और आसाम एवीगेशन ट्रान्सपोर्ट गोहाटी के डायरेक्टर है। पता-श्रीभूमरमलजी जैन C/o अमरचन्द पन्नालाल (आसाम पो. गोहाटी)

★श्री नैनमलजी बी. ए. एल. एल. बी. एडवोकेट जालौर



आप ३२ वर्षीय सफल युवक वकील हैं। आपने बनारस हिन्दू यूनिवर्सीटी से प्रथम श्रेणी में वकालत पास की। स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड के प्रेसीडेण्ट हैं। सार्वजनिक सामाजिक कार्य क्रमों के आप केन्द्र हैं। पूज्य पिताजी त्रिलोकचन्दजी सादगीपसन्द और शिक्षा प्रेमी हैं। स्थानीय जैनसमाज में आपके परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है। यह परिवार राठौर गौत्रोत्पन्न ओसवाल कुलीय है।

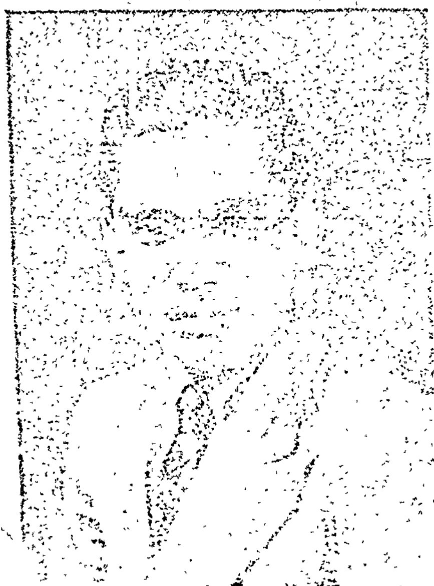
★श्री नरसिंहराजजी भंसालीवकील जालोर

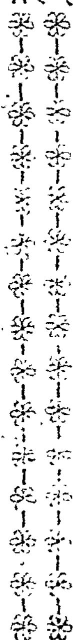


बी. ए. एल. एल. बी. एडवोकेट वकील। उम्र २८ वर्ष। पिताजी श्री सेठ जुहारमलजी भंसाली। ओसवाल जैन। १२ वर्ष से बालोतरा में वकालात कर रहे हैं। सुयोग्य एवं प्रतिष्ठा प्राप्त वकील माने जाते हैं। मारवाड़ राज्य सलाहकार सभा के सदस्य श्री सिवाना प्रान्त ओसवाल संघ सभा के प्रमुख नेता। मारवाड़ सेवा मंडल व बालोतरा के सखा व मारवाड़ राष्ट्रीय संघ बालोतरा के सभापति तेरापंथी महा सभा की कार्य कारिणी के सदस्य। म्युनिसिपल बोर्ड बालोतरा के उपाध्यक्ष रहे हैं। जैनयुवक संघ बालोतरा के सभापति हैं। इस प्रकार आप एक लोकप्रिय वकील एवं कार्यकर्त्ता हैं।

★श्री पूनमचन्दजी सुराणा नागौर

प्रतिष्ठित सेठ मनोहरलाजी के पुत्र श्री पूनमचन्दजी का जन्म सं० १९६८ का है। आप एक नये विचारों के सुविचार शील कर्मशील महानुभाव हैं। नागौर







सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में प्रमुख स्थान है और अच्छी प्रतिष्ठा है। सुपुत्र श्री-वर्लचन्दजी एस० ए० में अध्ययन कर रहे हैं। पूनमचन्द के नाम से हैदराबाद में सोना चांदी एवं जवाहरात का व्यापार था परन्तु अब नागौर में ही औद्योगिक कार्य की योजना में संलग्न हैं।

★ सेठ मूलचन्दजी आशारामजी हुंडिया, सिवाना (मारवाड़)



सेठ मूलचन्दजी आशारामजी हुंडिया सिवाना का परिवार

आप सिवानची परगने के एक परम उदार व प्रसिद्ध श्रीमंत हैं। सेठ दलीचंदजी के तीन पुत्र हुए जिनमें प्रथम दो श्री रघुनाथमलजी और सेठ मूलचन्दजी स्वर्गस्थ हैं। वर्तमान में सेठ आशारामजी ही इस परिवार के मुखिया हैं। उम्र ५५ वर्ष। सेठ रघुनाथमलजी के छोगालालजी नामक ४० वर्षीय पुत्र हैं; जिनके सम्पतराजजी २२ वर्षीय पुत्र हैं और बी. ए. व प्रभाकर की डिग्री प्राप्त है! सेठ मूलचंदजी के मानिकचन्दजी पुत्र हैं और खुशालचन्दजी, भंवरलालजी व सुमेरराजजी प्रपौत्र हैं। सेठ आशारामजी के श्री मिश्रीमलजी गोद आये हैं। श्री मिश्रीमलजी के २ पुत्र हैं बाबूलाल व महावीर प्रसाद। मन्द्रा, बैल्लारी, अहमदाबाद में सब भाइयों का अलग २ व्यवसाय है।

सेठ आशारामजी 'मूलचन्द आशाराम' के नामसे मस्कती मार्केट अहमदाबाद में पर्ट के एक बड़े व्यापारी व श्रीमंत माने जाते हैं। श्री मिश्रीमलजी एक सुविचारशील उत्साही नवयुवक हैं। शिक्षा व साहित्यिक कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं। बड़े उदार दिल व मिलनसार भी हैं।



श्री मिश्रीमलजी हुंडिया सिवाना



भंवरबाबू श्री मिश्रीमलजी



श्री सम्पतराजजी हुंडिया, सिवाना



श्री डूंगरचंदजी कानूगो, सिवाना




सेठ लिखमीचन्दजी कानूगो-सीवाना



स्थानकवासी आम्नाय के अनुयायी कवाड़ गोत्रोत्पन्न श्री जेठमलजी कानूगो के लिखमीचन्दजी, आशारामजी, एवं बंसराजजी नामक तीन पुत्र हुए। श्री जेठ मलजी उदार चेता प्रभावशाली एवं धर्म परायण महानुभाव थे।

श्री लिखमीचन्दजी की आयु ४० वर्ष की है। आप भी अपने पितृ तुल्य गुण युक्त हैं। आप अपने बन्धुओं के साथ व्यापार में संलग्न हैं। आपकी फर्म "जेठ मल हुंगरचन्द कानूगो" ११ साहुकार पेठ मद्रास में अवस्थित है एवं व्यवस्थित रूपेण कार्य कर रही है। आप बन्धुओं की माताजी श्री नाजूबाई धर्मपरायणा एवं कर्तव्य निष्ठ साध्वी थी। आपने संथारा लिया और स्वर्ग सिधारी।

श्री लिखमीचन्दजी के भंवरचन्दजी नामक पुत्र हैं जिनकी आयु १४ वर्ष है आप अभी अध्ययन कर रहे हैं। आसारामजी के पुत्र भंवरलालजी हैं जो कि अभी ... साल के हैं। पता- जेठमल हुंगरचन्द कानूगा ११ साहुकारपेठ मद्रास

★सेठ राजमलजी ललवानी सिवाना, (मारवाड़)

सेठ जेठमलजी ललवानी के पुत्र श्रीराजमलजी प्रतिष्ठित धर्मप्रेमी एवं उदा चेता सज्जन हैं। अपने बुद्धि कौशल से व्यापार में अच्छी सफलता प्राप्त की आपके बंसराजजी केशरीमलजी, एव डूंगरचन्दजी नामक तीन पुत्र हैं। बंस राजजी का असमय मेंही स्वर्गवास होगया। आपके दत्तक पुत्र घेवरचन्दीजी हैं कड़पा जिला (मद्रास) में "पूनमचन्द राजमल" एव राजमल रूपचन्द के नाम से व्यवसाय होता हैं।

★श्री वृद्धिचन्दजी वकील, बाढ़मेर

बाढमेर के लोकप्रिय और सफल वकील। सार्वजनिक एवं शिक्षा सम्बन्ध कार्यों में आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। परगना कांग्रेस कमेटी के आप प्रधा है। आपके संचालकत्व में एक सार्वजनिक वाचनालय भी जनता की आद सेवा कर रहा है। मोहनलालजी, और केवलचन्दजी नामका दो पुत्र हैं।

आपके पूज्य पिताश्री रावतमलजी, धर्मनिष्ठ उदार प्रकृति के शिक्षा प्रेमी सज्जन हैं। श्री वृद्धिचन्दजी से बड़े भाई श्रीकन्हैयालालजी जोधपुर में पुलिस सब इन्पेक्टर हैं। इनसे छोटे श्री राजमलजी बिजनिस करते हैं।
स्थानीय नगर में आपका परिवार प्रतिष्ठित और सम्मानित हैं।

★ सेठ सेजराजजी वच्छराजजी बालोतरा (मारवाड़)

सेठ सेजराजजी के वच्छराजजी, बहादुर मलजी, मुलतानमलजी, मुकनचन्दजी नामक चार पुत्र हुए। श्री सेठ वच्छराजजी व्यवसाय प्रिय एवं उदार धर्म निष्ठ सज्जन हैं। उपरोक्त नाम की फर्म पर कपड़े का थोक बन्द रूप से व्यापार होता है। इस प्रकार से आपकी और भी फर्मे हैं। जिनमें सेठ लक्ष्मणदासजी एवं घीसूलालजी अग्रवालभागीदार हैं। "लक्ष्मणदास सेजराज" नामक एक फर्म और भी है। जिसमें मुलतानमलजी मुकनचन्दजी, एवं बहादुर मलजी का हिस्सा है।

आप सब बन्धु व्यापार चतुर एवं कर्मठ व्यक्ति हैं। आपका परिवार बाईस सम्प्रदाय का अनुयायी है। आपका व्यवसाय पाली (मारवाड़) में प्रमुख रूप से होता है। टेलीफोन नं० २७२३ है।



★श्री शंकरलालजी मेहता वकील वालोतरा

सेठ गणेशमलजी के सुपत्र। उम्र २६ वर्ष। गौत्र-गांधी महेता। पूर्वज सरकारी उच्च पदों पर आसीन रहे हैं। आप वालोतरा म्यूनिसिपल वार्ड के वाईस प्रेसीडेण्ट हैं. वालोतरा के सुयोग्य वकीलों में आपका स्थान है। सार्वजनिक कार्यों में पूरी दिल चस्पी रखते हैं।

★सेठ घमण्डीरामजी सीयाल-बालोतरा (मारवाड़)

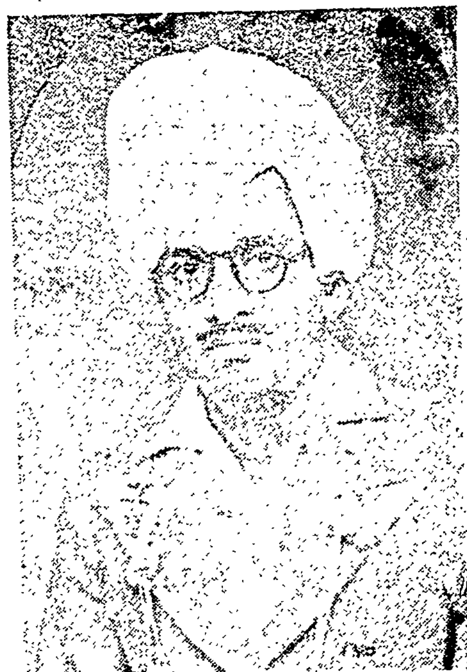
कागाना (वालोतरा) से आप श्री सेठ लच्छीरामजी के यहां गोद आए। श्री सेठ घमण्डीरामजी समाज सेवक और कुशल व्यापारी हैं। स्थानीय तेरहा पन्थी सभा को आपका सक्रिय सहयोग है; आपके मोतीलालजी २६ वर्ष, घेवरचन्दजी २४ वर्ष, धनराजजी १६ एवं गणपतलालजी ११ वर्ष नामक चार पुत्र हैं। आप चारों बन्धुओं का प्रेम प्रशंसनीय है। भाई वस्तीरामजी और गुलाबचंदजी भी आदर्श श्रावक हैं। "भूताजी लच्छीराम" के नाम से वस्त्र एवं गल्ले के व्यवसाय होता है।

★श्री गंगारामजी जैन B. S. C. L. L. B. एडवोकेट बाड़मेर

श्री ताराचंदजी ३४ वर्षीय प्रतिष्ठित सज्जन हैं। आपका प्रेम अपने सहोदरों के प्रति आदर्श रूप है। आपके छोटे भाई श्री छोगालालजी ३० वर्षीय हैं। और "मनि लेन्डर" का कार्य करते हैं। आपके छोटे भाई गंगारामजी हैं। आपने B. S. C. पास कर नागपुर से L. L. B. कर अभी अपनी प्रेक्टिस प्रारम्भ की है। आप २५ वर्षीय नवयुवक हैं। आप बुद्धिमान उत्साही और सौम्यस्वभाव के युवक हैं। आप बोहरा गोत्रोत्पन्न ओसवाल हैं। आपके पूर्वजों का इतिहास बड़ा गौरवमय एवं धर्मनिष्ठा से ओत प्रोत है।

★ सेठ एम. एल. जी. मुलतानमलजी रांका-सिवाना (मारवाड़)

सेठ गेबीरामजी, श्रद्धालु, धर्मनिष्ठ और परोपकारी सज्जन हैं। ऐसे धर्म परायण घराने में सं० १६७० कार्तिक शुक्ला १० को मुल्तानममलजी का शुभ जन्म हुआ। आप सादगी प्रिय, मिलन सार और उत्साही सज्जन हैं। प्रथम विवाह श्री राजमलजी ललवाणी की द्वितीय पुत्री के साथ हुआ। परन्तु असमय में स्वर्गवास होजाने से सिवाना निवासी श्री राजमलजी भंसाली की पुत्री से आपका द्वितीय विवाह हुआ। आप दोनों पति पत्नि श्रद्धालु और धर्मपरायण हैं। दो कन्यायें हैं।



—कडप्पा (मद्रास) में "पूनमचन्द राजमल" के नाम से व्यवसाय होता है। सीवाने में भी फर्म है।

★श्री सेठ गणेशमलजी भीमराजजी सिवाना (मारवाड़)



श्री सेठ रूपचन्दजी के पुत्र श्री गणेशमलजी ५० वर्षीय उदार महानु भाव हैं। और चतुर व्यापारी हैं। आप के ज्येष्ठ पुत्र श्री रतनचन्दजी, बगतावर मलजी एवं खेमराजजी हैं जो अध्ययन कर रहे हैं।

श्री सेठ गणेशमलजी के छोटे भाई श्री भीमराजजी ४३ वर्षीय हैं इनसे छोटे परतापमलजी हैं। आप तीनों भाइयों का प्रेम आदर्श रूप है और तीनों का ही सम्मिलित व्यापार होता है। सिवाने में आप लोगों की ओर से एक धर्मशाला है तथा स्थानीय होस्पिटल में भी आपकी ओर से अच्छी सहायता प्रदान की गई। स्थानीय जैन एवं जैनेतर समाज में यह

परिवार सम्मानित है। "गणेशमल भीमराज" के नाम से सिवाने और "भीमराज रतन चन्द" के नाम से शोलापुर में कपड़े का व्यवसाय होता है।



★श्री ओकचंदजी वकील भोनमाल

आप स्थानीय प्रतिष्ठित सेठ छोगामलजी के पुत्र हैं। हाई स्कूल के निर्माण में आपका प्रमुख हाथ रहा है। जैन स्वतंत्र संघ के आप प्रेसीडेंट हैं। आपके श्री सम्पतराजजी और उगमराजजी नामक दो पुत्र हैं। आपने बी. ए. एल. एल. बी. किया है। स्वभाव के सौम्य सज्जन हैं। जनहित कार्यों में आप विशेष [illegible] चस्पी में भाग लेते हैं। प्रौढ़ शिक्षा में आपकी विशेष अभिरुचि है।

★श्री सुलतानमलजी वकील, बाढमेर

सेठ परशरामजी के सुपुत्र। उम्र ३२ वर्ष। आप ४ भाई हैं। सबसे बड़े आप ही हैं। छोटे श्री रामदानजी, पोकरदासजी व भँवरलालजी तीनों साहूकारी लेन देन का व्यवसाय करते हैं। श्री सुलतानमलजी एक लोकप्रिय व्यक्ति हैं। म्यूनिसिपल बोर्ड के आप उपाध्यक्ष एवं अध्यक्ष कई अर्से तक रहे हैं। सार्वजनिक वाचनालय के सभापति रहे हैं। वर्तमान में बार एसोसियेशन के सभापति हैं। आप सदा से कुशाग्र बुद्धि छात्र रहे और कई बार सर्व प्रथम रहने से छात्र वृत्ति भी प्राप्त की। फुट बाल आदि खेलों में अच्छी रुचि है। स्थानीय प्रत्येक सार्वजनिक कार्यों में आपका अच्छा सहयोग रहा है।





★ सेठ प्रतापमलजी मोहनलालजी गोलेछा, बाड़मेर

वयोवृद्ध सेठ प्रतापमलजी आदर्श जैनसज्जन हैं। ७२ वर्ष की अवस्था होने पर भी धार्मिक कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। अपने बन्धु श्री सेठ गणेशमलजी के सुपुत्र श्री मोहनलालजी को आपने गोद लिया।

—श्री मोहनलालजी मिलन सार उदारचेता और सरल स्वभावी सज्जन हैं। फर्म पर "प्रतापमल मोहनलाल" के नाम से कमीशन एजेण्ट का काम होता है।

★सेठ मूलचन्दजी छजमलजी सादड़ी, मारवाड़

हट्टूंडिया राठौड़ गौत्रीय सेठ छजमलजी के पुत्र सेठ मूलचंदजी गोड़वाड़ प्रान्तीय जैनसमाज के एक प्रमुख आगेवान कार्यकर्त्ता हैं। इस प्रान्त में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। गोड़वाड़ ओसवाल महासभा तथा वरकाणा पार्श्वनाथ जैन हॉईस्कूल के आप सभापति हैं। इस हॉईस्कूल के लिये आपने २० हजार रुपया प्रदान किया इसी तरह सादड़ी जैन विद्यालय को भी आपने एक बहुत बड़ी धन राशी दान में दी है। आपही के प्रयत्न से सादड़ी में एक जनाना अस्पताल बन रहा है। इस समय आपकी उम्र करीब ८० वर्ष है। पर हर जातीय काम में उत्साह पूर्वक अग्रणी भाग लेते हैं। आपके श्री सागरमलजी नामक एक पुत्र हैं। श्री सागरमलजी के विमल चन्दजी नामक ३० वर्षीय पुत्र हैं।



'मूलचन्द विमलचन्द' के नामसे

मूलजी जेठा मार्केट गोविन्द चौक बम्बई में कपड़े का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता है।

★सेठ चन्दनमलजी पूनमचंदजी जैन सादड़ी [मारवाड़]

धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत श्री सेठ चन्दनमलजी का शुभ जन्म सं० १६५६ श्री सेठ पूनमचंदजी पोरवाल के यहाँ हुआ। आपके पूज्य पिताश्री की धार्मिक वृति का प्रभाव आप पर अतिशय पड़ा। आपने अपने जीवन में जो शिक्षा सम्बन्धी सेवायें की वे समाज के लिये गौरव की वस्तु है। श्री आत्मानन्द जैन विद्यालय सादड़ी में ऋषभदेव भगवान् का शिखर बन्द जैन मन्दिर बनवाकर सं० २००५ को आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरीश्वरजी के कर कमलों से माघ सुदि ५ को प्रतिष्ठा करवाई। इस अवसर पर अन्जन शालाका भी करवाई गई। श्री पार्श्वनाथ जैन हाई स्कूल वरकाणा, श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन हाई स्कूल फालना एवं श्री वर्धमान जैन हाई स्कूल सुमेरपुर के आप आजीवन सदस्य हैं। इससे ज्ञात होता है कि समाज में शिक्षा प्रचार करने के वास्ते आपके हृदय में कितनी लगन है। सादड़ी के शुभ चिन्तक जैन समाज के आप प्रमुख हैं।

आपके पुत्र श्री पुखराजजी और लालचन्दजी आप ही के पद चिन्हों पर चलने वाले योग्य पुत्र हैं। वर्तमान में व्यवसाय सम्बन्धी देख भाल प्रायः आप ही करते हैं। पारसी गली उस्मान मंजिल बम्बई नं० ३ में श्री चन्दनमलजी लालचंद" के नाम में आपकी फर्म पर जनरल मर्चेन्ट और कमीशन एजेन्ट का कार्य होता है।

★सेठ देवीचन्दजी पन्नाजी तखतगढ़ (मारवाड़)

सेठ पन्नालालजी, ओकचन्दजी व अचलाजी तीनों भाई बड़े धर्म निष्ठ और दानवीर हुए हैं। श्री देवीचन्दजी सेठ पन्नालालजी के सुपुत्र हैं।

आपका जन्म सं. १९६८ माघ शुदि ८ को हुआ। श्री देवीचन्दजी श्री संघ के आगेवान सज्जन हैं। तथा स्थानीय धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में उदारता पूर्वक भाग लेते हैं। सरदारमलजी, मोहनलालजी, व रूपचन्दजीनामक तीन पुत्र और "जडाव" नामक कन्या है। विविध पूजा संग्रह नामक पुस्तक अभी आपने १५००) व्यय करके मुनि भाव विजयजी के सदुपदेश से प्रचारित की।

चिकपेट बंगलोर में "देवीचन्द पन्नाजी" के नाम से कपड़े का बड़े पैमाने पर व्यवसाय होता है। स्थानीय समाज में आपका परिवार प्रतिष्ठित और माननीय है। आप लोग गोशा भलगर गोत्रोत्पन्न हैं। आपके पूज्य पिताश्री पन्नालालजी ने अपने बन्धुओं के सहयोग से १॥ लाख का भव्य जिनमन्दिर बनवाया।






सेठ देवीचन्दजी पन्नाजी तखतगढ़





सेठ पन्नालालजी धीरांजी तखतगढ़



★ श्रीजौहरीलालजी ओस्तवाल मेड़तासिटी

[जोधपुर]

सं० १९६८ में श्री हीरालालजी के घर श्री जौहरीलालजी का जन्म हुआ। जौहरीलालजी धर्मप्रेमी, उदार चेता एवं जन हितकारी सज्जन हैं। आप "चतुर्भुज धर्मशाला" के प्रबन्धक 'गौशाला मेड़ता' तथा पार्श्व नाथ मन्दिर एवं "जिर्णोद्धार कमेटी पारसनाथ मंदिर फलोदी के सदस्य हैं। म्यूनिसिपल कमेटी मेड़ता के वाइस प्रेसीडेन्ट के पद पर रह कर आप जनता की सेवायें कर रहे हैं। आपके पुत्र भारतसिंहजी अभी विद्याध्ययन कर रहे हैं।

★सेठ सुलतानमलजी, सकलेचा एस. एस. जैन, सिंगापेरुमल कोइल" (मद्रास)



आपकी जन्म भूमि जैतारण है। जन्म सं० १९४९ पोष कृष्णा ५। पिताजी का नाम शाह श्रीहस्तीमल जी। आप सफल व्यवसायी, उदारदिल एवं प्रगतिशील सुधार प्रिय हैं। "जीव रक्षा प्रचारक सभा के आप सभापति हैं और ग्रामों २ में जाकर पशु बलि बन्द करवाई। स्थानीय कांग्रेस सभा एवं पंचायती बोर्ड के प्रतिष्ठित सदस्यों में आपका नाम है। आप अपने जीवन में लगभग १०-१५ संस्थाओं के सभापतित्व ग्रहण कर चुके हैं। अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, मोड़ी मारवाड़ी एवं गुजराती के जानकार हैं। एक अच्छे लेखक भी हैं। आपने एक हजार वर्ष का एक सुन्दर कैलेण्डर बनाया जिससे आप की बुद्धिमानी का परिचय मिलता है। मद्रास प्रान्त में चिंगल पेठ जिले के सिंग पेरुमाल कोइल में आपकी फर्म पर शुद्ध चांदी सोने के जेवर का लेन देन, रहन रखना मनिलेन्डर्स बॉड पर रुपये देना इत्यादि कार्य होते हैं।

★श्री सेठ मोहब्बतमलजी मोदी, सिरोही,

श्री सेठ सोहनलालजी के पुत्र श्री मोहब्बतमलजी ४० वर्षीय व्यापार दक्ष सज्जन हैं। "मोदी एन्ड सन्स" के नाम से मोटर सर्विस का बिजनिस करते हैं।

सिरोही, पावर; हाऊस" के डायरेक्टर हैं। आपके पूर्वजों का राज्य परिवार से अच्छा सम्बन्ध था। आप बड़े मिलनसार, उदार चेता और हँसमुख हैं। आपके पुत्र वसन्तजी इंटर में अध्ययन कर रहें।

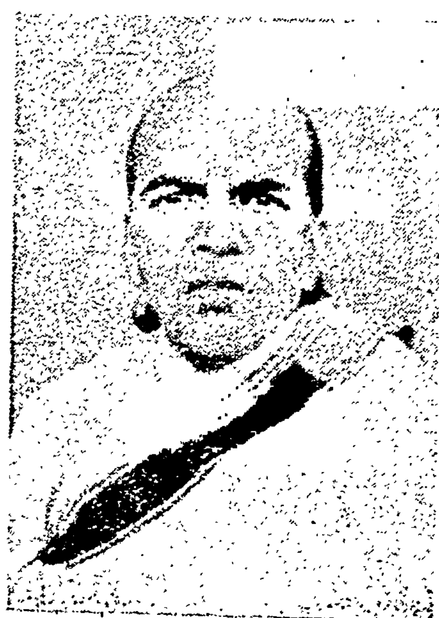
★सेठ बाबूमलजी सिंघी, सिरोही

राष्ट्रीय कार्यों में उत्सह पूर्वक भाग लेने वाले धार्मिक तथा सामाजिक, कार्यों में अग्रेसर होकर काम करने वाले श्री सेठ बाबूलालजी ४० वर्षीय उत्साही सज्जन हैं। आपकी मिलन सारिता और व्यापारिक प्रवीणता के कारण स्थानीय नगर में बड़ी प्रतिष्ठा है। अधिवेशन, सभा संस्थायें आपके सहयोग के कृतार्थ हैं। आपके तीन पुत्र और कन्या है। इन्डस्ट्री इजिनिरियङ्ग के नाम से आपका व्यापार होता है और इस विषय में बड़े दक्ष हैं। आपके पूज्य पिता श्री पूनमचन्दजी बड़े धर्मिष्ठ सज्जन थे।

★श्री धर्मचन्दजी सुराणा एडवोकेट, सिरोही,

आप राजनीति में विशेष सक्रियता से भाग लेते हैं। कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलनों में आप दो बार जेल जा चुके हैं। जिस प्रकार आप राष्ट्रीय कार्यों में खुल कर भाग लेते हैं वैसे ही सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में भी अग्रेसर हैं। आपके पिता श्री प्रतापचन्दजी धर्म निष्ठ और जनसेवक सज्जन हैं। सिरोही के लोकप्रिय एडवोकेटों में आप सर्व प्रथम हैं। तथा "बार एसोशियशन" के प्रेसीडेन्ड हैं। आपके पुत्र सुरेशचन्दजी इंटर में अध्ययन कर रहे है। इनसे छोटे नरेन्द्रकुमार हैं। "सुराणा एन्ड सन्स" के नाम से जोधपुर में आपकी फर्म पर जनरल मर्चेन्ट का काम होता है।

★श्री हुकमीचन्दजी सेठ, सिरोही



जन्म १९६२ आश्विन कृष्णा १०। पिता—सेठ जवानमलजी। गोत्र—सेठ ओसवाल, श्री श्रीमाल। एडवोकेट हाई कोर्ट राजस्थान। पब्लिक प्रोसेक्यूटर तथा लीडर सिरोही हैं। आपके पूर्वज सिरोही स्टेट के बैंकर्स रहे हैं। तथा सं० १९०८ में आपके पितामह ने श्री वासुपूज्य स्वामी का जिनमंदिर बंधवाया था। दी इलेक्ट्रिक सप्लाई कं० लि० सिरोही के आप डायरेक्टर है। तथा पंजाब नेशनल बैंक लि० सिरोही के खजांची हैं। काँग्रेस के सक्रिय सदस्य हैं। सिरोही के सार्वजनिक कार्य कर्त्ताओं में आपकी बड़ी [illegible] है।

★सेठ केवलचन्दजी चौपड़ा सोजत सिटी



सेठ गोपालचन्दजी के पुत्र केवल चन्दजी अति उदार महानुभाव हैं। आपके सहयोग से श्री जैनेन्द्रज्ञान मन्दिर सिरियारी, श्री गौतम गुरुकुल सोजत, श्री उम्मेद गौशाला सोजत, श्री जीव दया बकरा शाला सोजत आदि संस्थाएँ अच्छी प्रगति कर रही हैं। आपने स्थानीय समाज के सहयोग से विशाल धर्मशाला तथा स्थानकजी का निर्माण कराया। कांठा प्रान्त में आपको धर्मवीर की पदवी से विभूषित किया। आपके छोटे भाई श्री फूलचन्दजी एक उदार और धर्मिष्ठ युवक हैं। बम्बई में 'मेघराज वस्तीमल' के नाम से आपका बहुत बड़ा व्यापार होता है।–

सेठ हस्तीमलजी सुराणा पाली [मारवाड़]

श्री सेठ वस्तीमलजी के दत्तक पुत्र हैं। आप की आयु ४६ की है। आपका एवं आपके लघु भ्राता केशरीमलजी का व्यवसाय सम्मिलित रूप में है। पाली में "मेसर्स फतेचन्द मूलचन्द" के नाम से वस्त्र ऊन तथा कमीशन एजेण्ट का काम होता है। जोधपुर में मूलचन्द वस्तीमल के नाम से एवं बम्बई में जैनारायण हस्तीमल" के नाम से आपकी दुकाने हैं।

श्री सेठ हस्तीमलजी उदार मना एवं धर्मनिष्ठ महानुभाव हैं। स्थानीय समाज में आपका परिवार प्रतिष्ठित और मान्य है। तार का पता–हस्ती।

★सेठ किशनलालजी, सम्पतलालजी लूणावत् फलौदी

श्री किशनलालजी का जन्म सं १९२१ में हुआ। तनसुखदासजी लूणावत के दत्तक गये हैं। आपने अपने जीवन में लगभग ४॥ लाख रुपये धार्मिक कार्यों में लगाये। सं १९७४ में आपने पाली से कापरड़ा तीर्थ का संघ आचार्य नेमि विजय के उपदेश से निकाला। फलौदी में एक विशाल धर्मशाला और देरासर बनवाया तथा आचार्य नितिविजयजी से उपाध्यान कराया। आपके पुत्र सम्पतलालजी का जन्म १९७० में हुआ। श्री सम्पतलालजी मिलनसार सहृदय एवं उदारदिल सज्जन हैं। धार्मिक व सामाजिक कार्यों में पूरी दिल चस्पी रखते हैं। पाली में "किशन लाल सम्पतलाल" के नाम से गिरवी व ब्याज का धन्धा होता है। श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय के नाम से जैन साहित्य का प्रकाशन व पुस्तक विक्रय भी करते हैं। पिता पुत्र परम उदार हैं।

★श्री सूरजराजजी मोदी वकील जालौर (मारवाड़)



गौत्र गणधर चौपड़ा (मोदी) है। आप जोधपुर के सेशन जज (रिटायर्ड) श्री शम्भुनाथजी के भ्राता जबरनाथजी के पुत्र हैं और बख्तावरसिंह के यहाँ गोद आये हैं। श्री बख्तावरसिंहजी इस जिले के प्रसिद्ध व्यक्तियों में से थे।

श्री सूरजसीजी साहब प्रतिष्ठित और आदरणीय सज्जन एवं सफल वकील हैं। स्थानीय व्यापारिक फर्मों में आपकी फर्म श्रीमन्त फर्मों में से है।

★ सेठ रतनचन्दजी सेमलानी सादड़ी [मारवाड़]



सेठ रतनचंदजी सेमलानी



लेट हीराचंदजी सेमीलान

सादड़ी (मारवाड़) के श्रीमन्त और प्रतिष्ठित सेठ शेषमलजी के सुपुत्र श्री ...जी का जन्म १६५४ का है। सन् १६४४ में आपने बांद्रा (बम्बई) में

"श्री रतनचन्द हीराचन्द सेमलानी" के नाम से सोने चांदी के जेवरात का व्यवसाय प्रारम्भ किया। बांदरा में अपने ढङ्ग की यही एक प्रसिद्ध दुकान है।

आप एक कुशल व्यवसायी होने के साथ २ मिलनसार स्वभाव के कर्मठ कार्यकर्त्ता भी हैं। बांदरा कॉंग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी रहकर आपने अच्छी सेवायें की हैं। देश सेवा के निमित्त आप कई बार जेल यात्रा भी कर चुके हैं। आपके प्रयत्न से सादड़ी में श्वे० स्था० जैन ज्ञान वर्धक सभा स्थापित है। आपके श्री केवल चन्दजी नामक एक पुत्र हैं।

★श्री सेठ विनयचन्दजी मेहता,

तख्तगढ़ (मारवाड़)



२० वर्षीय उत्साही नवयुवक, सार्वजनिक कार्यों के सहयोगी और मारवाड़ लोक परिषद् की तख्तगढ़ शाखा के भूत पूर्व मंत्री अपनी। कार्य प्रियता एवं ध्येय निष्ठा के कारण स्थानीय जैन एवं जैनेतर समाज में आदर के पात्र हैं। आपने सन् १९४३ में बम्बई में "विनयचन्द पारसमल एण्ड कम्पनी" के नाम से साहुकारी लेन देन का व्यवसाय प्रारम्भ किया जो आज अच्छे रूप में चल रहा है।

★ वर्धमान जैन युवक मंडल, खिवान्दी

"यह संस्था सं० २००२ भादवा वद एकम के दिन मुनि महाराज श्री१००८ श्री मंगल विजयजी के सद् उपदेश से स्थापित की गई। इसका मुख्य उद्देश्य जैन समाज में कुरितियां मिटा कर संगठन तथा प्रेम को बढाना है। अजैन जनता को भी यथा शक्ति मदद करना तथा गांव की सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाओं में भाग लेना इसका ध्येय है।"

संस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्रचारार्थ पुस्तकालय व वाचनालय आदि की व्यवस्था है। सामाजिक व धार्मिक कार्य में बड़ा सहयोग रहता है! संस्था के सभी सदस्य कर्मठ एवं सेवाभावी हैं। मंत्री श्री टी० जी० गाँधी है।

★ सेठ रोशनलालजी चतुर उदयपुर

शिक्षा प्रसार आपका विद्या प्रेम, धर्मपरायणता, तथा सार्वजनिक प्रेम सराहनीय है। उदयपुर के अन्तर्गत आपके अनवरत प्रयत्न से जो कार्क हुए उनमें उदयपुर की जैन धर्मशाला का नाम प्रमुख है। आपही के दृढ़ अध्यवसाय से भोपाल जैन वेडिंग हाउस की नींव पड़ी। एवं एक पुस्तकालय की स्थापना हुई। संवत् १९८३ में आपने केशरीयाजी में श्री तापागच्छाचार्य श्री सागरानक सूरीजी की अध्यक्षता में ध्वजा दंड चढ़वाया। इसी दिन करेडाजी नामक तीर्थ स्थान में आपनी ओर से तीन मूर्तियां स्थापित की गई। उदयपुर में जैन समाज की शायद ही कोई संस्था हो जिसमें आपका सक्रिय सहयोग नहीं होगा। आपके पुत्र श्री मनोहरलालजी B. A. L. L. B. हैं। और नगर के प्रमुख वकीलों में है। इनसे छोटे भाई पार्श्वचन्दजी बी. ए. हैं आपकी सार्वजनिक कार्यों में अत्यधिक रुचि है। पार्श्वचंदजी से छोटे अभी अध्ययन कर रहे हैं।

सेठ अर्जुनलालजी डांगी-भीलवाडा



श्री मोतीलालजी डाँगी के सुपुत्र जन्म सं० १९५९। आप धर्मनिष्ठ, शिक्षा प्रेमी उदार सज्जन हैं। गुलाबपुरा में "नानक छात्रावास" के हेतु एक कमरा बनवाया। आपने पिता श्री की स्मृति में "मोती भवन" बनवाया जो कि धार्मिक कार्यों व जनहित कार्य में आता है।,, भूपालगंज में आपकी ओर से शांति भवन में दो विशाल हाल बनाये जा रहे हैं। लघुभ्राता श्री भीमराजजी तथा मिश्रीलालजी हैं दोनों बन्धुओं में धर्मनिष्ठा प्रेम एवं सम्प है। पुत्र रतनलालजी हैं। आप उत्साही मिलनसार युवक हैं।

★ सेठ अजीतसिंह धाड़ीवाल, भीलवाड़ा

आपके पूर्वज गुजरात प्रान्त निवासी थे। दौलतरामजी भीलवाड़ा आकर बस गये वहीं से यह परिवार यहीं पर रह रहा है। इसी वंश में सेठ फतेमलजी हुए। आप तब ही निर्भीक विचारों के सज्जन थे स्थानीय ओसवाल पंचायती में आपका अच्छा मान था आपने अनेक बार दो विरोधी पार्टियों में सन्तोषजनक नीति से

समझौते कराये। आपके पुत्र अजीतसिंहजी शिक्षित समझदार तथा समाज प्रेमी सज्जन हैं। आपने अपने पिताजी की स्मृति में हजारों का दान किया। सामाजिक तथा जातीय सभा सोसाइटियों में उत्साह पूर्वक भाग लेते रहते हैं। तथा प्रगति शील विचारों के सज्जन हैं।

★ श्री हमीरमलजी मुरडिया बी. ए. एल. एल. बी एडवोकेट, उदयपुर

जन्म सं० १९६४ माघ सुदि १४। एल. एल. बी पास कर सन् १९३५ में वकालात प्रारम्भ की। सर्व प्रथम आपने "ऋषभदेव ध्वज दण्ड" केस लिया जिस में सर चिमनलाल सीतलवाड़, श्री मोती लालजी सीतलवाड़ श्री स्वर्गीय एम. ए. ओझा, श्री के। एम. मुन्शी व अन्य बड़े २ भारत प्रसिद्ध अभिभाषकों के साथ या विरुद्ध जैनधर्म के अनुपम तीर्थ के लिए रात दिन १३ मास तक कार्य किया यह सब कार्य अवैतनिक था।



शिक्षा भवन सोसायटी, टैगोर सोसायटी, शिक्षाभवन होस्टल, मीरा विद्यालय आदि २ कई संस्थाओं सदस्य, मन्त्री, तथा पदाधिकारी हैं। आप लन्दन की एम. आर. ए. एस. के फैलो हैं। आपके सुजानसिंहजी, जोरावरसिंहजी, सुरेन्द्र सिंहजी और मोहनसिंहजी नामक चार पुत्र और भंवर बाई, बादाम बाई लक्ष्मी देवी और सरस्वती देवी नामक चार कन्यायें हैं। आपके पिता श्री बख्तावरमलजी आदर्श श्रावक थे।

★श्री सेठ पूनमचन्दजी श्री श्रीमाल मेहता, किशनगढ़

सेठ गुलराजजी धर्म प्रेमी एवं व्यवसाय कुशल सज्जन थे आपके श्री पूनमचन्दजी और कालूरामजी नामक दो पुत्र हुए। श्री पूनमचन्दजी ने छोटी आयु में ही व्यवसाय के अच्छी उन्नति करली। जैन समाज में कार्यों में आप अग्रेसर होकर उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आप सज्जनशील मिलनसार और शांत स्वभावी सज्जन हैं। आपके लघु भ्राता भी सार्वजनिक सामाजिक कार्यों में प्रवृत्ति रखने वाले युवक हैं—

मे० गुलराज पूनमचन्द के नाम से मदनगंज (किशनगढ़) थोक अन्न जीरा, रुई एवं गल्ले का व्यापार होता है। मदनगंज के प्रतिष्ठित फर्मों में से है।

★डाक्टर कुशलसिंहजी चौधरी, शाहपुरा

प्रसिद्ध चौधरी खानदान में श्री सगतसिंह के पुत्र श्री कुशलसिंहजी का जन्म सं. १६५६ पौष शुक्ला ३ को हुआ। इण्टरमीजिएट पास करके इन्दौर से १६२६ में एल. एम. श्री. पास की १६३० में कलकत्ते से एल. टी. एम. उत्तीर्ण कर शाहपुरा स्टेट के मैडिकल ऑफिसर नियुक्त हुए। सन १६३२ में चीफ मैडिकल आफिसर बने। आपकी सेवाओं से राज परिवार एवं जनता बड़ी प्रसन्न है।

१६४२ में खारी मानसा नदियों की प्रलयं कारी बाढ़ में आपने आदर्शजन सेवा की। शाहपुरा ओसवाल नवयुवक मण्डल के मन्त्री एवं सभापति आदि पदों पर रहकर आदर्श समाज सेवा की। शरणार्थी सहायक समिति "एवं महिला सेवासदन" शाहपुरा के अध्यक्ष हैं। रेडक्रास सोसाईटी, खारी तट सर्वोदय संघ आदि जनहित कार्यों में पूर्ण सहानुभूति से रचनात्मक रुप से भाग लिया है।

आपके पुत्र श्री भूपेन्द्र सिंहजी बी. एस. सी. फाईनल में अध्ययन कर रहे आपका परिवार श्वेताम्बर जैनधर्मानुयायी है।

★श्रीमनोहरसिंहजी-डाँगी, शाहपुरा (राजस्थान)

सेठ श्री मदनसिंहजी के सुपुत्र श्री मनोहरसिंहजी डाँगी का जन्म संवत् १६५६ में हुआ। मैट्रिक तक अध्यन करने के बाद दरबार हाई स्कूल में सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। आप सफल लेखक हैं। आपकी प्रमुख रचनायें १-बच्छावतों का उत्थान और पतन २ शाहपुरा राज्य का इतिहास एवं भूगोल आदि हैं। शाहपुरा "ओसवाल नवयुवक मंडल" के आप प्रमुख विधायकों में से हैं। इस प्रकार से शिक्षा एवं जातीय क्षेत्र में आपने समय २ पर आदर्श सेवायें की हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र ज्ञानेन्द्रसिंहजी डाँगी बम्बई में इण्डियन स्मेल्टिंग एण्ड रिफाइनिंग कम्पनी के कैशियर पद पर कार्य कर रहे हैं। छोटे सत्येन्द्र प्रसन्नसिंहजी एवं राजेन्द्रप्रसादसिंहजी क्रमशः एफ. ए. एवं मैट्रिक में अध्ययन कर रहे हैं।

★श्री वीर युवक मंडल, डेह (मारवाड़)

इस कस्बे (डेह) के आस पास में ३-४ कोस की दूरी पर प्रायः १५-२० ग्राम हैं। यहां पर कोई ऐसी जनता की सेवा करने वाली संस्था नहीं थी। गरीब जनता को अपार कष्ट होता था। यह त्रुटि खटकती थी। सेवा का उद्देश्य लेकर इस संस्था की स्थापना वि० सं० २००१ मिती चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयन्ती को की गई। वर्त्तमान में इस संस्था के १०६ सदस्य और एक संरक्षक सदस्य श्रीमान हरकचन्दजी सेठी हैं। सभी अपनी शक्ति अनुसार इस संस्था को बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। इस संस्था के अन्तर्गत तीन विभाग हैं-१. धर्मार्थ औषधालय, २. पुस्तकालय, ३. सेवा-विभाग।

२ जाति पांति का विचार न करके स्थानीय व बाहिर से आये हुए सब रोगियों की निःशुल्क तथा बिना फीस के चिकित्सा होती है। वैद्यराजजी के स्थानीय रोगी के घर पर जाकर देखने पर भी कोई तरह की फीस नहीं।

औषधालय में होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, ऐलोपैथिक तीनों प्रकार की औषधियों का संग्रह है, किन्तु ज्यादा व्यवहार होमियोपैथिक दवाइयों का ही किया जाता है। चेचक, हैजा आदि भयंकर बीमारियों के इलाज के लिये भी अच्छा प्रबन्ध है। पुस्तकालय के साथ वाचनालय भी है। सेवा विभाग में स्वयं सेवकों का अच्छा गठन है जो सामाजिक व धार्मिक उत्सवों पर सेवा कार्य करते हैं। गर्मी में प्याऊ भी चलती है व अपढ़ भाइयों की मदद की जाती है।

डेह में तालाब, नाडी खुदाने का कार्य मण्डल ने अपने हाथों में लिया, जिसमें सदस्य कड़ाके दार धूप और गर्मी पड़ते हुए भी कई महिनों तक अपने काम पर डटे रहे। संस्था के सभापति श्री पारसमलजी खिंवेसरा तथा मंत्री—श्री डूंगर मल जी सबलावत 'डूंगरेश हैं'।

★ श्री लक्ष्मणदासजी बोथरा वकील, बाढमेर।

उम्र ५४ वर्ष। पिता—सेठ सागरमलजी बोथरा। मूल निवास स्थान बीकानेर। बीकानेर के इतिहास प्रसिद्ध दीवान श्री कर्मचन्दजी बच्छावत के वंशज है। १८९० में जब फौज आई तब आपके पूर्वज देदाजी ने उसको फतह की।

आप मारवाड़ के एक माने हुए वकील एवं कार्यकर्त्ता हैं। सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं। आपका साहित्य प्रेम प्रशंसनीय है। धार्मिक कार्यों में भी अच्छा अनुराग है। श्री जैन श्वे० श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ जी कारखाना मेनगर के सभापति हैं। मारवाड़ लेजिसलेटिव असेम्बली के सदस्य रह चुके हैं। आपके सुपुत्र श्री आसूलालजी भी एक होनहार युवक हैं। बाढ़मेर म्यूनिसिपल बोर्ड के सदस्य हैं। सार्वजनिक वाचनालय के सभापति भी रहे हैं। आपके धनसुखदास व सोहनलाल नामक दो पुत्र हैं। 'आसूलाल धनसुखदास' के नाम से करांची में आपकी फर्म थी पर अब



बाढ़मेर में ही इस नाम से व्यवसाय होता है।

अजमेर मेरवाड़ा

★ बाबू सेठ सुगनचन्दजी नाहर, अजमेर

पिता श्री सेठ हरकचन्दजी नाहर। जन्म वि० सं० १९२९। सन् १८९७ में एफ. ए. क्लास छोड़ कर पी० डबल्यू० डी० में नौकरी। सन् १९०० में २५ रु० मासिक पर बी. बी. एन्ड. सी. रेलवे के ऑडिट आफिस में क्लर्क हुए और इसी विभाग में तरक्की पाते २ सिनियर ट्रेवेलिंग इन्सपेक्टर आफ अकाऊण्ट के पद पर ४२५ रु. मासिक वेतन तक पहुंचे। आप की कार्य कुशलता, सादगी एवं मिलन सारिता से स्टाफ बड़ा खुश था। आप मार्च १९३० में ग्रेच्युटी लेकर सर्विस से रिटायर हुए।



तब से अपना जीवन सार्वजनिक व धार्मिक कार्यों में व्यतीत कर रहे हैं। आपने अजमेर में हुए स्था. साधु सम्मेलन के समय स्वागत समिति के मंत्री पद पर अच्छा जन सेवा कार्य किया। ओसवाल महा सम्मेलन के अजमेर अधिवेशन पर स्वागताध्यक्ष भी आप रहे। स्थानीय श्री ओसवाल जैन हा स्कूल के कई वर्ष तक सभापति रहे। श्री ओसवाल औषधालय के संस्थापक तथ श्री जैन पुस्तकालय के आप कार्य वाहक प्रधान हैं।

स्थानीय स्थानकवासी जैन समाज के आप अग्रगणीय नेता हैं। श्री नान जैन विद्यालय व छात्रालय गुलाब पुरा के प्रधान हैं तथा परम सहायक हैं। श्र नानक जैन श्रावक समिति के भी प्रधान है। भारत वर्षीय जैन समाज में आपक अच्छी प्रतिष्ठा है। आपने श्रीचाँदमलजी को दत्तक लिया। श्रीचाँदमलजी एक मिल सार स्वभावी धर्मनिष्ठ अच्छे विचारों के सज्जन हैं।

★श्री जीतमलजी लूणिया, अजमेर

जन्म सं. १९५२। पिताश्री सेठ पूतमचन्दजी। एफ. ए. करके सन् १९१ में इन्दौर के सेठ हुकमचन्दजी के प्राइवेट सेक्रेटरी। १९१७ में "मध्यभार



...सी" स्थापित कर पं. हरिभाऊजी उपाध्याय के सम्पादकत्व में "मालव मयूर" पत्र निकाला। देशीराज्य होने से पूर्ण सुविधा का अभाव था अतः बनारस में "हिन्दी साहित्य मन्दिर" स्थापित कर राष्ट्रीय प्रकाशन किया। सन् १९२५ में राजस्थानी सहयोगियों की इच्छा से "सस्ता साहित्य मण्डल" अजमेर में स्थापित कर हरिभाऊजी उपाध्याय के सम्पादकत्व में 'त्यागभूमि' पत्र निकाला। तब से ही राष्ट्रीय कार्यों में विशेष रूप से भाग लेने लगे एवं १९३० एवं ३२ में जेल यात्रायें की। सन् १९३२ में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सरदारबाई लूणिया अपने त्रिवर्षीय पुत्र कुं० प्रतापसिंहजी के साथ जेल गई।

१९४२ के अगस्त आन्दोलन में जेलयात्रा। सन् ४६ में अजमेर नगर पालिका के प्रथम कॉंग्रेसी चेयरमैन बने एवं १९५० में पुनः कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान बने। आपका स्वभाव बड़ा ही मिलनसार, सरल एवं सौम्य है। सुपुत्र श्री प्रतापसिंहजी लूणिया B. A. में अध्ययन कर रहे हैं। अजमेर के सब क्षेत्रों में आप बड़े सम्माननीय हैं।

★सेठ रामलालजी लूणिया बैंकर्स, अजमेरः—

अजमेर के सबसे बड़े सर्राफ, सोने चांदी के व्यापारी तथा बैंकर्स हैं। अजमेर के सब सार्वजनिक क्षेत्रों में आपका बड़ा सन्मान है।

आपके विचार बड़े सुलझे हुए गंभीर सुधारपूर्ण व जनहित से ओत प्रोत हैं। जैसे धन के धनिक हैं—यश के भी धनी हैं। राष्ट्रीय, सामाजिक व धार्मिक हर कार्य में तन मन व धन तीनों से पूर्ण सहयोग रहता है। इसी कारण आप अब तक कई संस्थाओं के सभापती व खजांची रहे हैं और वर्तमान में हैं। ओसवाल महा सम्मेलन की कार्य कारिणी के सदस्य व अजमेर शाखा के सभापति के रूप में सम्मेलन के प्रमुख कार्य कर्ता हैं। अजमेर ओस



सेठ रामलालजी लूणिया



कुं० अमरचंदजी लूणिया

वाल जैन हाई स्कूल व ओ० औषधालय के खजांची रह हैं। दी कर्मा कामर्शियल एक्सचेंज लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। 'सेठ रामलाल लूणिया बैंकर्स' के नाम से अजमेर में सोने चांदी का व्यवसाय होता है। बड़े उदारचेता सज्जन हैं।

आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री अमरचंदजी भी एक सुविचार वान सार्वजनिक कार्यों में उत्साह पूर्वक सक्रिय सहयोग करने वाले युवक हैं। व्यापार में सहयोग कर रहे हैं। युवक समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है।

★सेठ इन्दरचन्दजी बड़जात्या, अजमेर

आपका मूल निवास स्थान सांखुन रियासत जयपुर है। वहां से करीब १२५ वर्ष पूर्व सेठ चम्पालालजी बड़जात्या व्यापारार्थ अजमेर आये। आपके अमोलक चन्दजी नामक पुत्र हुए जो बड़े धर्मात्मा और बुद्धिशाली व्यक्ति हुए। जिनके सेठ इन्दरचन्दजी तथा धन्नालालजी नामक दो पुत्र विद्यमान है।



सेठ इन्दरचंदजी—आपने अपनी तीव्र प्रतिभा और बुद्धि से अपना कारोबार बड़ा चमकाया। प्रारम्भ में आपने कई बड़ी २ फर्मों पर मुनीमात की। खजाने में भी आपने नौकरी की। तत्पश्चात एक माहेश्वरी सज्जन की सामेदारी में गोटे किनारी की दुकान की। साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर आज आप अजमेर के एक बड़े प्रतिष्ठित श्रीमन्त माने जाने लगे हैं।

आपका गोटे का एक बहुत बड़ा कारखाना जो अजमेर का सबसे बड़ा गोटेका कारखाना कहा जा सकता है। कारखाने में पक्का व कच्चा गोटा बहुत बड़ी मात्रा में तैयार होता है तथा भारत के कोने २ में जाता है। फर्म का नाम 'सेठ इन्द्रचन्द कुन्दनमल बड़जात्या गोटे वाले' पड़ता है। आप धार्मिक सामाजिक और हर सार्वजनिक कार्यों में बड़ा उदारता पूर्वक सहायता करते हैं।

आपके कुन्दनमलजी नामक पुत्र बड़े होनहार थे किन्तु अल्पवस्था में ही उनका स्वर्ग वास हो गया। वर्तमान में कु० पदमचन्दजी तथा विमलचन्दजी नामक दो पुत्र तथा कुन्दनमलजी के पुत्र नवीनचंदजी प्रपोत्र हैं।

कु० पदमचंदजी होनहार युवक हैं तथा व्यापार में सहयोग करते हैं। बाकी पढ़ रहे हैं। आपके भ्राता सेठ धन्नालालजी भी एक धर्म व शिक्षा प्रेमी सज्जन हैं। आप दोनों भाइयों का धर्म की ओर अच्छा लक्ष्य है। दिगम्बर जैन मंदिरों में जिन प्रतिमा प्रतिष्ठ तथा अन्य सहायता कार्यों में हजारों रुपये प्रदान किये हैं और करते रहते हैं।

★श्री मानमल जैन "मार्तण्ड," अजमेर:----

लेखक, सम्पादक, व पत्रकार। जन्म आषाढ़ शुक्ला ६ सं १६७८। पिता—श्री धूलचन्दजी डूँगरवाल। ओसवाल। जन्मभूमि-छोटी सादड़ी (मेवाड़)। यहीं जैन गुरुकुल में शिक्षा। सन् १६३७ में अजमेर आगमन। सन् १६४०-४६ तक अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन के मुख पत्र 'ओसवाल' का सम्पादन। १६४१ में बालोपयोगी मासिक पत्र "वीरपुत्र" का निजि प्रकाशन। १६४२ के स्वातंत्र्य आन्दोलन में जेल यात्रा। १६४४ में राजपूताना पत्रकार सम्मेलन के मंत्री। सन् १६४६ में 'वीरपुत्र' सप्ताहिक का प्रकाशन व बालोपयोगी ८ पुस्तकों का लेखन व प्रकाशन। १६४७ में 'वीरपुत्र प्रिन्टिग प्रेस' नामक निजि प्रेस की स्थापना। "वीरपुत्र" का दैनिक संस्करण भी कुछ समय तक प्रकाशित किया। ओसवाल प्रगतिशील दल की स्थापना द्वारा समाज में संगठन आन्दोलन। १६४६ की जयपुर कॉंग्रेस में भामाशाह उपनिवेष तथा ओसवाल समाज संगठन सम्मेलन का आयोजन। सन् ५० में 'जैन साहित्य मन्दिर' नाम से जैन साहित्य प्रकाशन का कार्यारम्भ व 'जैन गौरव स्मृतियां' ग्रन्थ लेखन। सन् १६५० से लोक सभा अजमेर के मंत्री रूप में सार्वजनिक कार्य। कई वर्षों से जैन पुस्तकालय के मंत्री। अजमेर इलेक्ट्रीक कन्जूमर्स एसोसियेशन के मंत्री।



★श्री सौभाग्यचन्दजी सिंघी, सिरोहीः----

सौम्य प्रकृतिक रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं में अग्रणी। राजस्थान के एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता। सिरोही पत्रिका के सम्पादक। राजपूताना प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य। सिरोही नगर के प्रमुख कार्यकर्त्ता व सिरोही जिले के प्रतिष्ठित व्यक्ति। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता होने के साथ साथ धार्मिक व सामाजिक कार्यों के प्रति भी पूर्ण दिलचस्पी।



★सेठ नारायणदासजी लोढ़ा अजमेर

आप एक क्रान्तिकारी सुधारवादी विचारों के सज्जन हैं। अजमेर के गोटा व्यवसाइयों में आपका प्रमुख स्थान है। आपका मूल निवास स्थान खोहरी जि. गुड़गाँज है। बादमें अलवर और सन् १९३३ से आप अजमेर मे ही रह रहे हैं। तीव्र बुद्धि से काफी पैसा कमाया। सरवाड़ और अजमेर में गोटे के कारखाने व व्यवसाय बड़े पैमाने पर है।

जन हित के कार्यों में उदार दिल से सहायता करते हैं।

★ राय बहादुर सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी, ब्यावर

ब्यावर में यह फर्म ७५ वर्षों से स्थापित है। राय बहादुर सेठ कुन्दनमलजी ने इस फर्म को काफी उन्नति पर पहुँचाया। आपके द्वारा ही विलायत से सर्व प्रथम यहां के ऊन का डायरेक्टर व्यवसाय शुरू हुआ। आपको भारत सरकार ने सन १९२७ में राय बहादुर की पदवी से सम्मानित किया। आपके द्वारा अपनी मिल के मुनाफे का एक बहुत बडा हिस्सा शुभ कार्यों में लगाया गया व आप सदा धार्मिक कार्यों में अपनी पूंजी को लगाने में आगे रहे। आपने स्वयं अपने यहां तो चर्बी का व्यवहार बन्द रखा साथ ही और भी देशी मिलों को ऐसा ध्यान रखने की प्रेरणा की। ऊन के व्यवसाय में भी आपने कुछ नये प्रयोग किए और सफलता प्राप्त की।

सेठ लालचन्दजी कोठारी भी बहुत व्यापार कुशल, सज्जन व धार्मिक प्रवृत्ति के हैं तथा महालक्ष्मी मिल के संचालन में काफी सफल व व्यवहार कुशल साबित हुए हैं। महालक्ष्मी मिल के सारे कारोबार में आपको श्रीमान् सेठ हीरालालजी काला की देख रेख व व्यवसाय का लाभ बहुत समय से मिला हुआ है। इस मील ने काफी तरक्की की है।

रा० ब० सेठ लालचन्दजी के ३ पुत्र कुं० नवरतनमलजी, पन्नालालजी और सोहनलालजी। आपने अपने पिता श्री की स्मृति में 'कुन्दन भवन' नामक विशाल भवन धार्मिक कार्यों के लिये निर्मित कराया। इसमें मुनिराजों के ठहरने के अतिरिक्त एक कन्या पाठशाला, कुन्दन अन्न क्षेत्र कुन्दन, जैन सिद्धान्त शाला तथा कुन्दन जैन साहित्य मन्दिर भी है। आप प्रायः प्रति वर्ष मोघा मंडी के प्रसिद्ध डॉक्टर को बुलवा कर मोतिया बिन्द के बीमारों का मुफ्त इलाज भी करवाते रहते हैं जिनसे हजारों व्यक्ति लाभ उठाते हैं। डॉक्टर की फीस, मरीजों को ठहराने, भोजन, दूध सेवा सुश्रुषा का सारा खर्च आप ही का होता है।

आप का एक औषधालय भी है जहाँ मुफ्त औषधियाँ दी जाती है। इस प्रकार आप राजपूताने के एक प्रसिद्ध उद्योग पति, श्रीमंत और दानवीर सज्जन हैं।

★स्व० श्री कालूरामजी कोठारी, ब्यावर

स्व० सेठ कालूरामजी कोठारी धार्मिक परोकारी एवं दृढ़ अध्यवसायी सज्जन थे। श्री किशनलालजी शर्म्मा के भागीदारी में "किशनलाल कालूराम" के नाम से ऊन तथा आढ़त का व्यापार प्रारम्भ किया। अपनी व्यापारिक प्रतिभा से यश और धन का अच्छा उपार्जन किया ब्यावर के सामाजिक धार्मिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में अच्छा सम्मान पाया।



स्व० सेठ कालूरामजी कोठारी

आपके दत्तक पुत्र श्री सुखलालजी का जन्म १९९० का है। शिक्षा मैट्रिक। वर्तमान में आपही फर्म का सञ्चालन कर रहे हैं। आप बड़े उच्च व प्रगतिशील विचारों के युवक हैं। चित्तौड़ विधवाश्रम को आपने १०००१ का दान दिया है। स्व० सेठ कालूराम की धर्मपत्नि भी उदार हृदया तथा धर्म परायणा है। यह परिवार स्थानकवासी आम्नाय का मानने वाला है।

अधिष्ठाता हैं एवं बाहर प्रवास करके हजारों रुपये लाते हैं। गुरुकुल की यह आनरेरी सेवा समाज के लिए अनुकरणीय है। ट्रे० कालिज बीकानेर के आप गृहपति हैं। स्नातक संघ गुरुकुल ब्यावर में आपको २१ हजार की थैली भेंट की। जो संभवतः समाज में पहली थैली थी। थैली को आपने स्नातकों की आगे की पढ़ाई के निमित्त भेंट करदी। साधु सम्मेलन अजमेर के मंत्री के रूप में आपने काफी सेवा की। आपके लघु भ्राता श्री शान्तिभाई और शरदचन्द भाई बम्बई में व्यापार करते हैं। आपने अपने छोटे भाई श्री शान्तिभाई के पुत्र रसिक भाई को दत्तक लिया है। आपकी धर्मपत्नी श्री कंचन बाई आदर्श महिला हैं।

★ श्री सुगनचन्दजी बोकड़ीया, ब्यावर

स्थानक वासी आम्नाय के उपासक श्री जेठमलजी बोकडीया के पुत्र श्री सुगनचन्दजी ने जैन गुरुकुल ब्यावर से मैट्रिक तक शिक्षण प्राप्त कर विदेशों से ऊन का एक्सपोर्ट बिजनिस करने लगे। ओसवाल समाज में विदेशों से ऊन का एक्सपोर्ट करने वाले आप प्रथम ही व्यक्ति हैं। इस व्यवसाय में आपने अच्छी ख्याति एवं सफलता प्राप्त की। आपका शुभ जन्म सं० १९७८ चैत्र सुदि १ का है। श्री सायरचन्दजी, अमरचन्द, किशोरमल और मदनलाल नामक आपके चार लघुभ्राता हैं।



दी वुल मर्चेण्ट असोसीयेशन ब्यावर के आप खजान्जी है। श्वेताम्बर जैन कोन्फ्रेन्स एवं जैन शिक्षण संघ के आप सदस्य हैं। इस प्रकार से सामाजिक एवं व्यवसायिक कार्यों में समान भाग लेते रहते हैं।

"श्री जसराज जेठमल" नामक फर्म से आपके यहां कमीशन एजेण्ट और ऊन का व्यवसाय होता है। फर्म की शाखायें पाली मेड़ता सीटी आदि स्थानों पर भी है। बोकडिया ब्रादर्स के नाम से मद्रास में भी आपकी फर्म है।

★श्री सेठ हगामीलालजी मेड़तवाल, केकड़ी

श्री सेठ ओनाड़मल जी के सुपुत्र श्री हगामीलालजी का जन्म सं. १९५१ कार्तिक सुदी १२ का है : आप एक व्यवसायिक सज्जन होते हुए भी 'हिन्दु महासभा" के पदाधिकारी रहकर राजनैतिक चेतना में जागरुक व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। आप मिलनसार, उत्साही एवं आकर्षक व्यक्तित्व के सज्जन हैं। धर्मचन्दजी और शम्भुसिंहजी नामक दो पुत्र हैं जो अध्ययनरत हैं।

फर्म पर ऊन, कोटनजी एवं जीरे का व्यवसाय होता है इसके अतिरिक्त फर्म कमीशन एजेण्ट का काम भी करती है।

★श्री ताराचन्द्रजी तांतेड़-केकड़ी (अजमेर)

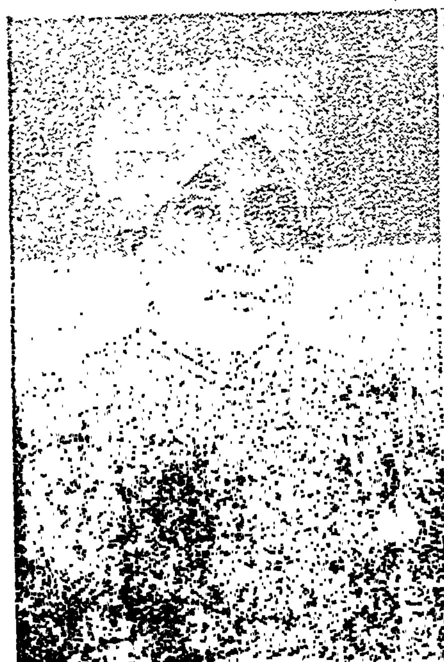
श्री सेठ भूरालालजी तातेड़ के सुपुत्र श्री ताराचन्दजी तातेड़ २४ वर्षीय नवयुवक हैं। छोटी अवस्था में ही आपने व्यवसायिक कार्यों में अच्छी निपुणता प्राप्त करली। व्यवसायिक कार्यों में लगे रहने पर भी आप राजनैतिक कार्यों में सक्रिय सहयोग देते हैं। स्थानीय हिन्दु महासभा को अपसे बड़ी मदद है। धर्मचन्दजी नामक पुत्र हैं। जो अभी शिशु ही हैं आपके लघु भ्राता उमरावमलजी १८ वर्ष, सरदारमलजी १६ वर्ष, एवं सज्जनमलजी १२ वर्षीय हैं।—ताराचन्द एण्ड कं' 'नामक आपकी फर्म पर कपडे का व्यापार होता है। फर्म की शाखायें दौलतराम कीरतमल एवं भूरालाल सरदारमल के नाम से केकड़ी में भी है। 'सरदारमल सज्जनमल' के नाम से कड़क्का चौक अजमेर में भी फर्म है। इसके अतिरिक्त भीलवाड़ा मिल में भी शेयर हैं। इस प्रकार से आपका व्यवसाय उन्नति पर है।

★श्री सेठ कन्हैयालालजी भटे-वड़ा विजयनगर (अजमेर)



श्री सुवालालजी के सुपुत्र श्री कन्हैयालालजी एक आदर्श समाज सुधारक एवं धर्म प्रेमी सज्जन हैं। सामाजिक धार्मिक, राष्ट्रीय तथा परोपकार के कार्यों में आप उत्साह के साथ भाग लेते रहते हैं। गांधी विद्यालय गुलाबपुरा के तो आप प्राण हैं। आपही की कार्य निष्ठा एवं अनवरत सेवा से संस्था आदर्श कार्य कर रही हैं। स्थानीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हैं। "सुवालाल कन्हैयालाल" फर्म पर कपास गल्ला एवं आढ़त का काम होता है।

मध्यभारत



★वजिरउद्दौला राय बहादुर सर सिरेमलजी बाफना,

के० टी० सी० आई० इ० बी० ए० बी० एस० सी० एल० एल० बी०
उदयपुर व इन्दौर

जन्म २४ अप्रेल १८८२। उदयपुर अजमेर व इलाहाबाद में आपकी शिक्षा हुई। शिक्षा के पश्चात अजमेर में एक वर्ष तक वकालात की। बाद में क्रमशः मेवाड में जुडीशियल आफिसर, इन्दौर में १९०७ में डिस्टिक्ट और सेशन जज, १९११ में इन्दौर नरेश के सेक्रेट्री १९१५ में होम मिनिस्टर नियुक्त हुए। आप शासन संचालन में अपनी अपूर्व योग्यता के लिए भारत विख्यात हैं। सन् १९२१ में आपने इन्दौर रियासत से पेंशन ली और पटियाला में मंत्री बने। कुछ अर्से बाद पुनः इन्दौर रियासत के गृह मन्त्री नियुक्त हुए। १९२९ में प्रधान मंत्री और धारा सभा के सभापति बनाये गये। जून १९३९ में आप इन्दौर से रिटायर्ड हुए इसके पश्चात १९३४-४१ तक बीकानेर में प्राइम मिनिस्टर। १९४२ में रतलाम के चीफ मिनिस्टर रहे, १५-१२-४३ से ३१-१-४७ तक अलवर स्टेट के प्राइम मिनिस्टर रहे। सन् १९३१ में लन्दन में हुई राउंटेबल कांग्रेस में तथा सन् १९३५ में लीग आफ नेशन्स में भारत की ओर से भेजे गये शिष्ट मंडल के नेता की तरह आप भेजे गये। वर्तमान में आप इन्दोर विश्राम ले रहे हैं।

★सेठ हीरालालजी कासलीवाल, इन्दौरः—

राज्य भूषण, राय बहादुर, दानवीर, जैन रत्न, वैश्य शिरोमणी आदि पदवियों से विभूषित सेठ हीरालालजी काशलीवाल का जन्म सन् १९६८ में १२ जून को अजमेर में हुआ। आप जैन समाज के गौरव हैं। जैन समाजोन्नति के लिये आपकी महान सेवाएँ रही हैं। आप इन्दौर लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर हैं।

अखिल भारतवर्षीय जैन महासभा, अमन कमेटी के प्रेसीडेन्ट, इंडियन रेड-क्रोस सोसायटी होल्कर स्टेट, रोटरी कलब इन्दौर, होल्कर स्टेट ओलम्पिक, क्रिकेट

एसोसियेशनों के आप प्रसीडेन्ट रहे हैं। भारत प्रौढ़ शिक्षण संघ के संरक्षक हैं। ...िय रोग निवारक तथा आर्थिक और ओद्योगिक विकास बोर्ड ग्वालियर के प्रेसीडेन्ट हैं। देवास बैंक लिमिटेड देवास के चेयरमेन हैं। दी कल्याणमल मिल्स लिमिटेड इन्दौर तथा श्री विक्रमशूगर मिल्स अलोट के आप मैनेजिंग एजेंट्स हैं। दी बोम्बे फायर एन्ड जनरल इंशुरेन्स कं० बम्बई दी इलेक्ट्रोनिक कं० लिमिटेड नई दिल्ली, बोम्बे सिनोटोन कं० बम्बई, दी ग्लोरी इंश्योरेन्श कं० लि० इन्दौर, दी सागरमल स्पिनिंग एन्ड विविंग मिल्स लि० बुरहानपुर' दी नेशनल माइक्रो फिलिम्स बम्बई. यूनाइटेड नेशनल इंडिस्ट्रियल कारपोरेशन लिमिटेड कलकत्ता, दी मालवा बनस्पति एण्ड कैमिकल कं० लि० इन्दौर आदि के आप डायरेक्टर हैं।।

आपके परिवार की ओर से लोकोपकारी कार्यों में काफी सम्पती लगाई जाती है। आपकी ओर से इन्दौर में श्री तिलोकचंद जैन हाई स्कूल 'कल्यानमल नर्सिंह होम (प्रसूता गृह) कल्याण जैन छात्रालय आदि संस्थाएँ चल रही है।

जैन समाज और धर्म की उन्नति के लिये तो आप परम सहायक आगेवान एवं प्रयत्नशील रहते ही हैं। श्री खंडेलवाल जैन महासभा के आप प्रमुख कार्यकर्ता हैं।

★ सेठ सूरजमलजी गेंदालालजी बडजात्या, इन्दौर

आप इन्दौर के एक बडे श्रीमन्त परिवार के सुप्रसिद्ध उद्योगपति, मिल मालिक और बैंकर्स हैं। श्री गेन्दालाल मिल्स लिमिटेड जलगांव के मैनेजिंग डाइरेक्टर, दी सागरमल स्पीनिंग एन्ड विविंग मिल्स लिमिटेड जलगांव, बुरहानपुर तथा कोटा टेक्सटाइलस लिमिटेड के डाईरेक्टर हैं। बडा सर्राफा काटन एसोसियेशन इन्दौर के प्रसीडेंट तथा गांधी भवन ट्रस्ट इन्दौर के ट्रस्टी हैं। आपके परिवार की तरफ से परोपकार के लिए एक गेन्दालाल बडजात्या सुकृत टस्ट फंड बना हुआ है, जिसके द्वारा अनाथों विधवाओं और छात्रों को विना किसी जातीय भेदभाव के सहायता पहुंचाई जाती है। इसका सफल संचालन आप ही कर रहे हैं। और इससे जनता को बडा लाभ पहुँच रहा है।

इसी तरह कई सार्वजनिक संस्थाओं के आप परम सहायक और कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। विद्या प्रचार की तरफ आपका विशेष लक्ष्य है। आपकी तरफ से एक धर्मार्थ औषधालय भी चालू है। धार्मिक व सामाजिक कार्यों में भी आप अग्रणी हैं। इस तरह आप एक नवीन सुधरे हुए विचारों के सुविचारशील सज्जन हैं। जैन समाज के रत्न हैं इन्दौर नरेश द्वारा राज्य भूषण की पदवी से तथा अ० भा० दि० जैन महासभा की ओर से "जैन रत्न" की उपाधि से विभूषित हैं।

★ सेठ लालचन्दजी सेठी, उज्जैन

वाणिज्य भूषण, जैन रत्न, राय बहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी का जन्म सं. १९४३ में हुआ। आप मालवे के एक प्रतिष्ठित श्रीमन्त जागीरदार, बैंकर तथा मिल मालिक हैं।

आप प्रारम्भ से ही बड़े अध्यवसायी, साहसी और मेधावी रहे हैं। आपकी विलक्षण बुद्धिमता से इस फर्म ने काफी व्यापारिक उन्नति की। सन् १९१२ में उज्जैन में "विनोद मिल्स लिमिटेड" नामक एक कपड़े की मिल की स्थापना हुई। जो आज मालवे की प्रमुख मिलों में से है। मजदूरों की सुविधा के लिये एक बहुत बड़ा अस्पताल भी है। मजदूरों के घरों पर निशुल्क रोगी देखने के लिये डाक्टरों की भी सुन्दर व्यवस्था है।

इस फर्म की ओर से श्री छतरपुर स्टेशन के पास एक धर्मशाला बनी हुई है। राजगृह, आबूजी, सोनागिरी, सिद्धवरकूट, पांवापुरी आदि तीर्थ देशों में भी आपकी ओर से धर्मशालाएं बनी हुई है।

सेठ लालचन्दजी, विनोद मिल्स कं. लि. के मैनेजिंग डायरेक्टर तथा चैयरमैन हैं। दी हुकमचन्द मिल्स इन्दौर, दी ग्लोरी इंश्युरेंस कं. लि. इन्दौर, दी वल्कन इंस्युरेंश कं. लि. बम्बई, मशीनरी पेंटर्स एण्ड केमीकल्स इंडिया लि. बम्बई आदि उद्योगों के आप डाइरेक्टर हैं।

सन् १९१९ में आप अ. भा. खंडेलवाल दि. जैन महा सभा के सभापति रहे हैं। म्यूनिसिपल बोर्ड उज्जैन, दी काटन मर्चेंट्स एसोसियेशन, विक्रम एज्युकेशन ट्रस्ट, युवराज जनरल लायब्रेरी आदि संस्थाओं के सभापति तथा दी फारवर्ड काटन एसोसियेशन, दी चेम्बर आफ कामर्स उज्जैन व मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर आदि संस्थाओं के आप उप सभापति हैं। दिगम्बर जैन मालवा हिन्दी साहित्य समिति झालरापाटन के प्रधानमंत्री व प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं।

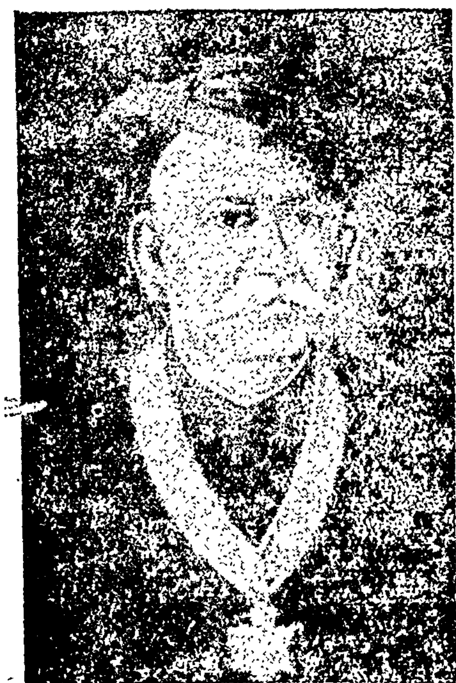
★डाक्टर श्री राजमलजी नांदेचा, इन्दौर



आप पिपलोंदा में चीफ मेडिकल व हैल्थ आफीसर तथा जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट रह चुके हैं। जैन पाठशाला के अध्यक्ष भी रह चुके हैं धार्मिक प्रवृत्तियों में अच्छा रस लेते हैं। आपके पिता श्री का नाम नेमीचन्दजी है। आपके यशपाल व हेमन्त नामक दो पुत्र हैं। इस समय इन्दौर के एण्टीमलेरिया आफिसर हैं व इसके पूर्व सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट की रेजिडेन्सी इन्दौर में रेसिडेन्सी अस्पताल में असिस्टेण्ट मेडिकल आफिसर एवम् असि० हेल्थ आफिसर रह चुके हैं तथा किंग एडवर्ड हास्पिटल मेडिकल स्कूल में मेडिकल के विद्यार्थियों एवम् नर्सेज को पढ़ाते थे।

श्री सेठ जमनालालजी रामलालजी कीमती, इन्दौर

इस परिवार का मूल निवास स्थान रामपुरा (इन्दौर स्टेट) है यहाँ से सेठ पन्नालाल जी हैदराबाद आये एवं अपना स्थायी निवास बनाया। आप बड़े धर्म प्रेमी तथा साधुभक्त पुरुष थे आपके जमनालालजी तथा रामलालजी नामक दो पुत्र हुए।



मुतजिम बहादुर राय साहेब सेठ जमनालालजी कीमती,



मु० ब० रा० सा० सेठ रामलालजी कीमती इन्दौर

सेठ जमनालालजी रामलालजी कीमती—सेठ जमनालालजी का जन्म सं० १९३५ में हुआ। आप दोनों भाइयों ने अपने पिताजी की मौजूदगी में ही जवाहरात आदि का व्यापार प्रारम्भ किया था। अपने बुद्धिबल से इस व्यवसाय में अच्छी सम्पति उपर्जित की। एवं अपनी फर्म की एक शाखा इन्दौर में खोली। आप दोनों बन्धु धर्मनिष्ट एवं परोपकारी सज्जन है। जमनालालजी ने अपना उत्तराधिकारी अपने छोटे भाई को बनाया क्योंकि इनके पुत्र सुखलालजी का बाल्यकाल में ही देहावसान हो गया था। रामलालजी ने सम्पतलालजी को दत्तक लिया।

आपके परिवार ने हैदराबाद की मारवाड़ी लाइब्रेरी के लिए एक कीमती भवन" बनवाया। इसी प्रकार स्थानीक स्थानक भवन भी आपकी ओर से प्रदान

किया गया। इन्दौर में आपकी ओर से एक जैन कन्या पाठशाला चल रही है तथा मन्दसौर में आप लोगों की ओर से एक प्रसूति गृह बनवाया। इसी तरह के धार्मिक एवं लोकोपकारी कार्यों में आप भाग लेते रहते हैं। खजूरी बाजार इन्दौर में "जमनालाल रामलाल किमती" के नाम से बेङ्किग तथा जवाहारात का व्यापार होता है। श्री सम्पतलालजी मिलनसार उत्साही एवं कर्त्तव्य निष्ठ महानुभाव हैं।

★ मुंतजिम बहादुर सेठ इन्द्रलालजी जैन, इन्दौर



अपनी अनोखी पैनी विलक्षण बुद्धि के कारण साधारण अवस्था से आज आप लाखों की सम्पत्ति के मालिक हैं। आपका शुभ जन्म १२-१२-१९१२ का है। समाज के प्रत्येक कार्य में आप सहायता देते हैं तथा आए हुए प्रत्येक आदमी का आप सन्मान करते हैं। समाज व राज्य में आपकी अच्छी इज्जत है। होल्कर स्टेट ने आपको "मुन्तजिम बहादुर" और म० भा० स्थानकवासी जैन सन्मेलन ने "जैनरत्न" की उपाधि से अलंकृत किया। इन्दौर संघ को स्थानक बनाने में आपने ७०००) रु. प्रदान किये। आप अच्छे उदार चेता सज्जन हैं। तथा कई व्यापारिक संस्थाओं के सदस्य हैं।

★ सेठ हुकमीचन्दजी पाटनी, इन्दौर

१९११ में होल्कर कालेज से बी० ए० एल० एल० बी० किया। आप अच्छे कार्यकर्त्ता खिलाड़ी व अध्यवसायी हैं। आप अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी और सदस्य हैं जो आपके साहित्य, समाज और क्रीड़ा प्रेम के परिचायक हैं। वर्तमान में आप श्री वीर सार्वजनिक वाचनालय इन्दौर और श्री दिगम्बर जैन विद्यार्थी सहायक कोष के वाइस प्रेसिडेंट हैं तथा फूड एडवाइजरी कमेटी मध्यभारत, इंजिनियरिंग कालेज कमेटी मध्यभारत के सदस्य हैं। आगरा यूनिवर्सीटी के सिनेटर तथा मेम्बर फेकल्टी ऑफ लॉ हैं आपकी व्यवसायिक प्रकृति टेकनिकल नालेज के कारण आप वर्तमान में राजकुमार मिल्स लिमिटेड" इन्दौर के विक्रय अधिकारी हैं।

पता—पाटनी निवास ३८ मेनरोड़ तुकोगंज इन्दौर

★श्री मोतीलालजी सुराणा, इन्दौर

जन्म सन् १९१६। रामपुरा, इन्दौर, अमृतसर तथा देवास की सामाजि

...ओं में विशेष भाग लेते रहे हैं। श्री सोहनलाल जैनकन्या पाठशाला अमृतसर में ४ वर्ष तक अवैतनिक मैनेजर रहकर आपने संस्था की अच्छी सेवा की। इन्दौर में भी आपने जैनग्रन्थालय तथा वाचनालय स्थापित किया है। देवास के "मण्डी व्यापारी एसोसियेशन" के चेयरमैन तथा "फुड एडवर्डजरी" के मेम्बर और भण्डारी फ्लोर मिल तथा "आईल मिल" के मैनेजर रहे हैं। इस थोड़ीसी आयु में ही आप एक विशेष अनुभव और लौकिक व्यवहारिकता प्राप्तकर चुके हैं।

★श्री माँगीलालजी राठौड़ नीमच सीटीः—



सार्वजनिक प्रवृत्तियों में भाग लेने वाले सुधारक, शिक्षा प्रेमी तथा निर्भीक कार्यकर्त्ता के रूप में श्री मांगीलालजी स्थानीय समाज में अग्रणी हैं। निर्धन छात्रों को बिना व्याज के आर्थिक सहायता प्रदान कर उनके अध्ययन में सहायता देते रहते हैं। चोरडिया कन्या गुरुकुल के आप ...ी हैं। माताजी की स्मृति में आपने ५-६ हजार का भवन स्थानीय वाचनालय को भेंट कर शिक्षाप्रसार प्रेम का परिचय दिया। पर्दा प्रथा के आप वहुत विरोधी है।

अपके यहां जमींदारी लेन देन का काम होता है तथा आप कोऑपरेटिव बैंक के डायरेक्टर हैं। नीमच के आप प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं।

★ श्री सेठ ओंकारलालजी मिश्रीलालजी वाफणा-मन्दसौर

श्री ओंकारलालजी एक प्रतिष्ठित धर्मनिष्ठ तथा उदार श्रावक हो गए हैं आपने २० हजार का ट्रस्ट वनाया और मृत्यु के समय भी २० हजार और निकाले। राज्य में भी आपका काफी सन्मान था। आपके सुपुत्र श्री मिश्रीलालजी आप ही के पद चिन्हों पर चलने वाले सज्जन हैं। सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में अच्छा सन्मान है। अपनी कुशल व्यापारिकता से आपने "वाफना कोटन एण्ड जीनिङ्ग फेक्टरी" तथा मन्दसौर इलेक्ट्रि सप्लाई क० लि" की स्थापना की एवं आप ही के डायरेक्टरत्व में दोनों कम्पनियाँ सुचारु रूपसे चल रही हैं इसके अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट बैंक के डायरेक्टर भी आप ही हैं। गुरुकुल व्यावर के प्रधान मन्त्रीत्व का कार्य आपने बड़ी ही सुचारु रूप से संभाला। स्थानीय नगर पालिका के वाइस चेयर मैन पद पर रह कर आपने जनता की आदर्श सेवा की।

★ सेठ चांदमलजी मेहता, मंदसौर

मन्दसौर में करजूवाले सेठ के नाम से सुप्रसिद्ध श्रीमंत फर्म 'सेठ फत्ताजी तिलोकचन्दजी" अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वर्तमान में आप ही इस फर्म के तथा परिवार के प्रमुख हैं। यह परिवार श्रीमन्ताई के साथ साथ मन्दसौर का एक सम्माननीय परिवार है। धार्मिक व सामाजिक कार्यों में बड़ा आर्थिक सहयोग देता रहता है। मालवा भर में उदार चेता व गंभीरविचारक के नाते आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। करजू ग्राम आपका मूल निवास स्थान है। करजू में आपकी ओर से एक पाठशाला वर्षों से चल रहा है। एक ट्रस्ट भी कायम है जिसमें से पाठशाला संचालन के अलावा अनाथ विधवाओं और छात्रों को सहायता दी जाती है।

मन्दसौर में 'फत्ताजी तिलोकचन्दजी' के नाम से साहूकारी लेन देन व बैंकिंग का काम काज होता है।

★ सेठ शिवलालजी चिमनलालजी नाहटा रामपुरा

सेठ शिवलालजी ने लगभग १७५ वर्ष पूर्व इस फर्म की स्थापना की। आप के पश्चात् आपके भाई सेठ चिमनलालजी ने फर्म के कार्य को संभाला। आपके प्रपौत्र श्री सेठ छगनलालजी उदार हृदय, परोपकारी दानी सज्जन थे। वर्तमान में फर्म के मालिक आपके सुपुत्र मानसिंहजी एवं वीरेन्द्रसिंहजी हैं। श्री मानसिंहजी समाज के आगेवान, धार्मिक अभिरुचि वाले होनहार उत्साही युवक हैं और राम पुरा नगर कांग्रेस के अध्यक्ष हैं। आपने यहाँ एक ऑइल मिल भी खोला है, श्री वीरेन्द्रसिंहजी होल्कर कॉलेज इन्दौर में विद्या अध्ययन कर रहे हैं।

★ श्री बाबूलालजी चौधरी—गरोठ



जन्म सं० १६५६। मैट्रिक पास करके इन्दौर स्टेट की वकालात पास कर व्यवसाय में जुट गये एवं अच्छी सफलता आज कल आप गरोठ में वकालात करते हैं। आप प्रगतिशील उन्नत विचारों के महानुभाव हैं।

आपके बड़े पुत्र प्रकाश चन्द्रजी चौधरी ने बी. एस. सी. करके बम्बई से फोटो ग्राफर की शिक्षा प्राप्त की। छोटे पुत्र नेमीचन्द्रजी बी. एस. सी. होकर रेडियो इंजिनियरिङ्ग व वायरलेस टेली ग्राफी की ट्रेनिंग प्राप्त कर रहे हैं।

राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में भी आपने

महत्व पूर्ण भाग लिया है। राज्य प्रजामंडल के आप प्रमुख कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे हैं। प्रांतीय प्रजामण्डल के आप वर्षों तक सभापति रहे हैं। जिले के प्रमुख व्यक्तियों और कार्यकर्त्ताओं में आपका नाम है—

★ मेसर्स सीताराम गोधाजी-रतलामः--



सं० १६१४ में सेठ गोधाजी ने इस दुकान की स्थापना की। रतलाम स्टेट के बहुत से गांव इस दुकान की मनोता में (सरकारी मालगुजारी की भुगतान) रहे। जिससे इस दुकान की विशेष उन्नति हुई। सेठ गोधाजी का सं० १६७६ में देहावसान हुआ आप व्यवहार दक्ष एवं परिश्रमी सज्जन थे।

वर्तमान में इस दुकान के मालिक सेठ नेमीचन्दजी हैं। आप धर्मनिस्ठ मिलनसार हंसमुख एवं उदार दिल सज्जन हैं। आप स्थानकवासी महानुभाव हैं।

मेसर्स सीताराम गोधाजी-धानमंडी-फर्म पर गल्ले तथा रुई की आढ़त और हुंडि चिट्ठी व्यवसाय होता है।

★ श्री सेठ हीरालालजी नांदेचा—खाचरोद (मालवा)

स्वाध्याय की ओर जो आपकी इतनी अभिरुचि है कि अपने यहां एक व्यक्तिगत पुस्तकालय संग्रहीत कर रक्खा है। इससे स्थानीय जनता वे रोक टोक लाभ उठा सकती है। आपने अपने दादाजी के स्मारक स्वरूप एक जैन पाठशाला स्थापित कर रक्खी है। इसके साथ २ आप समय२ पर सार्वजनिक संस्थाओं को भी बड़ी सहायता देते रहते हैं।

भारत वर्षीय स्थानकवासी जैन समाज में और मुख्य रूप से पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज सहाब के अनुयाइयों में आगेवान है। वर्तमान में आप श्री पूज्य हुक्मचन्दजी महाराज साहब के सम्प्रदाय का जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम के कई वर्षों से सभापति हैं। इसी प्रकार और भी धार्मिक जनहितकारी संस्थाओं के आप प्रमुख कार्यकर्ता एवं सहायक हैं।

वर्तमान में आपके यहां "लालचन्द स्वरूपचन्द" के नाम से खाचरोद में और मुल्थान में "ऊंकारजी लालचन्दजी के नाम से बैंकिंग एवं आसामी लेनदेन का कार्य होता है"।

★सेठ कनकमलजी चौधरी, बड़नगर,

आप सेठ हजारीमलजी के दत्तक पुत्र हैं। परोपकारी शिक्षित तथा मिलनसार विचारों के सज्जन हैं। आप की ओर से एक कन्या पाठशाला, प्रसूति गृह, सार्वजनिक वाचनालय इत्यादि संस्थायें चल रही हैं। स्थानीय मन्दिर में ७०००) की एक चाँदी की वेदी भेंट की है। अपने पिताजी के नाम पर नगर चौरासी का जिसमें डेढ़ लाख व्यय हुआ। सामाजिक तथा धार्मिक सभा संस्थाओं को आप मुक्त हस्त से सहायता प्रदान करते हैं। आपके पुत्र अभय कुमार जी शिक्षित समझदार का मेधावी युवक हैं। बड़नगर में आप के परिवार की बड़ी प्रतिष्ठा है।आपके यहाँ "श्रीचन्द हजारीमल" के नाम से बैङ्किग का कार्य होता है।

★मेसर्सलछमनदासजी केशरीमलजी, बड़वाह

आप पीपाड़ (मारवाड़) से व्यापारार्थ यहां आए और दुकान खोली। व्यापार चातुर्य से लाखों की सम्पत्ति उपर्जित की। वर्तमान में बड़वाह की नामी फर्मों में आपकी फर्म मानी जाती है।

आपने एक सुन्दर जैन मंदिर बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवाई। इस कार्य में आपने हजारों रुपये व्यय किये हैं फर्म के वर्तमान मालिक सेठ केशरीमलजी व्यापार दक्ष एवं मिलनसार, उत्साही सज्जन हैं। फर्म पर रूई का अच्छा विजि-नेस है आपकी यहाँ एक जीनिङ्ग और एक प्रेसिंग फेक्टरी भी है।

★ श्री सेठ दुनीचन्दजी सागरमलजी जैन, नागदा

सेठ दुनीचन्दजी के सुपुत्र सागरमलजी व्यवसायी एवं धर्म प्रिय सज्जन हैं। स्थानीय स्थानक के लिए १५०००) व्यया किए। स्थानीय रत्न पुस्तकालय स्थापित किया जिसमें लगभग २००० उत्तमोत्तम पुस्तकों का संग्रह है। अमोलक पाठशाला" के लिए एक कमरा प्रदान कर शिक्षा प्रेम का परिचय दिया। नागदा के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में आप प्रमुख हैं। श्री भैरोंलालजी का जन्म सं० १९८४ का है। आप होनहार नवयुवक हैं।

★ श्री सेठ ठाकचंदजी गेंदालालजी-चौधरी-नागदा

आप एक व्यापार कुशल एवं धार्मिक मनोवृत्ति के सज्जन हैं। सामाजिक कार्यों में आपकी विशेष रुचि है। "रत्न पुस्तकालय" तथा स्थानक आदि के परि-वृद्धि में आपने विशेष सहयोग दिया है तथा समय २ पर जैन जाति के कार्यों में सहयोगी रहते हैं। आपका परिवार "पावेचा" गौत्रोंत्पन्न हैं वर्तमान में आप रूई, कपास तथा गल्ले का थोक व्यापार करते हैं।

★श्रीसौभाग्यमलजी जैन एडवोकेट, शुजालपुर



रूढियों और आडम्बरों के कट्टर शत्रु, ग्वालियर राज्य के प्रमुख कार्यकर्त्ता और पोरवाल कान्फ्रेन्स के भूतपूर्व मन्त्री श्री सौभाग्यमलजी शुजालपुर के प्रमुख वकीलों में से हैं। आपको स्वाध्याय से अतिशय प्रेम है। संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी तथा गुजराती भाषाओं पर आपका अधिकार है। आपका एक पुस्तकालय भी है जिसमें धार्मिक ग्रन्थों एवं शास्त्रों का अच्छा संग्रह है। राष्ट्रीय विचारों के कारण आप स्टेट असेम्बली अपर हाउस के सदस्य हैं। इस प्रकार से आप सिद्धान्त वादी एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता है।

★ सेठ मायाचन्दजी, सनावद

आप एक योग्य, सरल प्रवृत्ति और धार्मिक प्रवृत्ति के उदार महानुभाव हैं। अपनी पूजनीया माताजी के स्मृति में श्री मातेश्वरी दिगम्बर आयुर्वेदिक औषधालय १९३० से स्थापित किया और इसके स्थायी निधि के लिए ४००००) दान में दिये। स्थानीय "दिगम्बर जैन हाई स्कूल" की आर्थिक दशा ठीक न होने से स्थिति डावां डोल थी अतः आपने ढाई लाख का दान दे स्कूल की नींव चिर स्थायी करदी जिसमें आज ४०० छात्र शिक्षा ग्रहन कर रहे हैं।
अनिवार्य है।

"माणक चन्द दशरथशाह" के नाम से स्थानीय फर्मों में आपकी फर्म बड़ी श्रीमन्त फर्म मानी जाती है।

★श्री सेठ फूलचन्दजी वेद मूथा-लश्कर:—

श्री सेठ छगनमलजी के सुपुत्र श्री फूलचन्दजी ६५ वर्षीय वयोवृद्ध महानुभाव हैं। व्यापारिक प्रतिभा से अच्छी उन्नति की। आपके पुत्र दिपचन्दजी ३५ वर्षीय युवक हैं। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में आप सोत्साह से भाग लेते रहते हैं। द्वीपचन्दजी के माणकचन्दजी, प्रेमचन्दजी, पद्मचन्दजी और हेमचन्दजी नामक चार पुत्र और विद्या बाई नामक एक कन्या है। स्थानीय जैन समाज में आप का

परिवार प्रतिष्ठित एवं गौरवशाली है। स्थानकवासी समाज के अग्र गण्य श्रावक हैं। सराफा बाजार में··· हमीरमल छगनमल वेद मूथा के नाम से सोना चाँदी और जवाहरात का व्यवसाय होता है। फर्म की दोशाखायें "माणकचंद मूलचन्द" और "द्विपचंदजी गोपीकिशन" के नाम से हैं।

★सेठ रिद्धराजजी सिद्धराजजी धाड़ीवाल लश्कर

अठाहरवीं शताब्दी में यह एक चमकता हुआ परिवार था। सेठ हंसराजजी को जोधपुर महाराजा मानसिंहजी ने चौथाई महसूल माफी का परवाना सं० १८-६१ में दिया। इसी प्रकार इन्दौर नरेश भी सम्मान करते थे। आपके जसराजजी पनराजजी और रूपराजजी तीन पुत्र हुए --सेठ पनराजजी के दत्तक प्रपौत्र



स्व० सेठ रिद्धराजजी



सेठ सिद्धराजजी

सेठ रिधराजजी का जन्म सं० १९२३ भादवा सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी को हुआ आप लश्कर ही नहीं वरन् ग्वालियर राज्य तथा ओसवाल समाज में यशस्वी रहे। भूतपूर्व ग्वालियर नरेश माधवराव जी सिन्धीया के अत्यन्त विश्वसनीय एवं सम्मानित व्यक्तियों में थे। आपने जीवन काल में प्रायःसभी शासकीय तथा सार्वजनिक संस्थाओं में अग्रेसर होकर भाग लिया। ८४ वर्ष की आयु में सं० २००६ महा सुदि १० को आप दिवंगत हुए। आपके चार पुत्र श्री सिद्धराजसी, सम्पतिराजजी, सज्जनराजजी एवं सूरजराजजी हैं।

श्री सेठ सिद्धराजजी का जन्म सं० १९६३ चैत्र सुदि १५। आज आप गिर्द, शिवपुरी, मुरैना इन तीन जिलों के लश्कर एवं शिवपुरी म्युनिपैल्टी के एवं कोपरेटिव बैंक लश्कर एवं भारत बैंक भेलसा के खजांची हैं। अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन की प्रबन्ध कारिणी समिति के सदस्य तथा स्थानीय कई एक सभा संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। स्थानीय प्रायः सभी शिक्षा संस्थाओं के ट्रेझरार हैं। आप एक उदार चेता, शिक्षा प्रेमी और सरल चित्त महानुभाव हैं। इस समय आपके पास तीन गाँव जमींदारी के रूप में हैं। बुधराजजी, जुगराजजी, जीवराजजी, विजयराजजी, एवं अखेराजजी नामक पांच पुत्र हैं। श्री बुधराजजी और जुगराजजी व्यापारिक कार्यों में आपको सहयोग देते हैं। श्री बुधराजजी के कुशलराजजी और धनराजजी नामक दो पुत्र हैं। जो अभी पढ़ रहे हैं।

शीवपुरी में व लश्कर में बैङ्किग तथा गल्ले की आढ़त का कार्य होता है। इढ़सई (मालवा) में एक जीनिंग फेक्टरी है।



★ श्री सेठ फूलचन्दजी चौरड़िया, मुरार

श्री सेठ जोधकरणजी के हरसोलाव (जोधपुर स्टेट) से फूलचन्दजी दत्तक आये। प्रगतिशील धार्मिक विचारों के सज्जन हैं। इस समय आप स्थानीय मिल में उच्च पद पर योग्यता पूर्वक कार्य कर रहे हैं। स्थानीय स्थानक वासी समाज में आप अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। आपके सरदार बाई और राजाबाई नामक दो कन्यायें हैं।

श्री फूलचन्दजी के श्री रतनचन्दजी और मेघराजजी नामक दो भाई और हैं जो दक्षिण में व्यवसाय करते हैं।

★ मेसर्स प्रेमराजजी लक्ष्मीचंदजी, मुरार

फर्म के वर्तमान मालिक सेठ प्रेमराजजी के पुत्र सेठ लक्ष्मीचन्दजी हैं। आप कुशल कार्यकर्त्ता तथा मिलन सार सज्जन हैं। सामाजिक कार्यों में प्रेमपूर्वक योग देते रहते हैं। "प्रेमराज लक्ष्मीचन्द" फर्म पर ठेकेदारी तथा लेन देन का काम होता है। आपका मुख्य काम ठेकेदारी है।

★श्री सेठ हीराचन्दजी कोठारी लश्करः—



१६ वर्ष की आयु में नगर पालिका लश्कर के खंजाची पद पर कार्य किया। ८ वर्ष कार्य करने के बाद नगरपालिका मुरार के असिसटेन्ट सेक्रेटरी के पद पर कार्य किया।

वर्तमान में आप लोहे का व्योपार करते हैं। मध्यभारत स्क्रेप डीलर्स एसोसियेशन यूनीयन के प्रधान मंत्री, स्क्रेप डीलर्स एसोसियेशन लश्कर के मन्त्री और ग्वालियर एग्रीको डीलर्स एसोसियेशन के मंत्री हैं। कई सार्वजनिक कार्यों में भी आप उत्साह से भाग लेकर उनको सफल बनाते हैं। आपके चार पुत्र और तीन पुत्रियां जो अभी विध्याध्ययन में रत हैं।

"मेसर्स फूलचन्दजी हीरालाल कोठारी" लोहिया बाजार में आपकी फर्म पर लोहे का बहुत बड़ा व्यापार होता है।

★सेठ प्रभूलालजी डूँगरवाल, छोटी सादड़ी (मेवाड़)



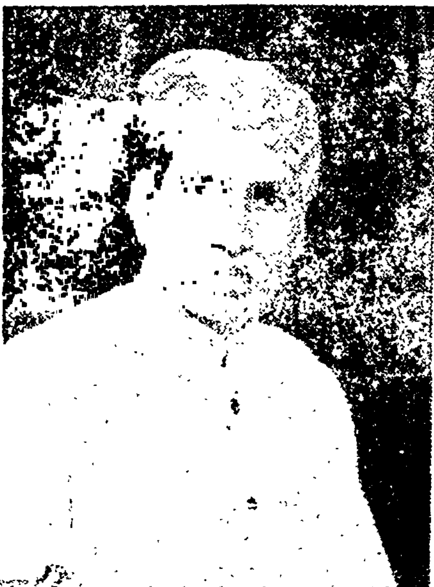
जन्म पौष शुक्ला ३ सं. १९५६। सुलझे हुए विचारों के सुधार वादी, सत्य निष्ठ और स्पष्ठ वक्ता। सादड़ी में आपकी अच्छी जमीदारी है। व्यवसाय कृषि और साहूकारी लेन देन। सादड़ी का पुराना और प्रतिष्ठित परिवार। स्थानीय जैनमन्दिर के देव द्रव्य की रक्षार्थ व मन्दिरजी की सुव्यवस्था में आपके यत्न प्रशंसनीय रहे। जैननवयुवक मंडल, जैन पाठशाला तथा देव द्रव्य रक्षक कमेटी के आप सभापति हैं। नगर की अन्य समस्त सर्वजनिक प्रवृत्तियों में आपका पूर्ण सहयोग रहता है। लोकहित के कार्यों में सत्य का पक्ष लेने में आप सदा निडरता व साहस से कार्य करते हैं।



सेठ फूलचन्दजी वैद मूथा लश्कर
(परिचय पृष्ठ ६८२ पर)

★ श्री सेठ रतनलालजी नाहर-बरेली (भोपाल)

आप धार्मिक उदार दिल एवं शिक्षा प्रेमी सज्जन हैं। पूज्य श्री १००८ हस्ती मलजी म० सा० के परम अनुयायी श्रावक हैं। आप कई जैन एवं अजैन संस्थाओं को दान देकरचला रहे हैं। जैन गुरुकुल ब्यावर व श्री जैन ज्ञान सागर पाठशाला किशनगढ़ के विकास में आपका बहुत बड़ा हाथ रहा है। आप धार्मिक कार्य परम्परा का आदर्श रूप से पालन करते आ रहे हैं। आदर्श श्रावक हैं।



२५ वर्षों से खादी पहनते आ रहे हैं। भोपाल राज्य के विलीनी करण आन्दोलन में सबसे पहले लगान बन्दी की आवाज आपने उठाई अतः सामन्त शाही ने आपको जेल में डाल दिया परन्तु विलीनीकरण हो जाने के बाद आपके छूटने पर जनता ने अपूर्व व भव्य स्वागत के द्वारा अपने नेता का स्वागत किया। आपका जीवन बहुत सादा एवं अनुकरणीय है। आपके ४ पुत्र हैं।

बड़े पुत्र श्री माणिकलालजी ने एम. एस. सी. करके एल एल. बी. कर रहे हैं। इनसे छोटे मोतीलालजी बी. ए. में अध्ययन कर रहे हैं। श्री जवाहरलालजी

पूना में इंजीनियरिंग में अध्ययन करते हैं एवं छोटे श्री सोहनलालजी भी पढ़ रहे हैं। इन चारों भाइयों ने विद्याभवन (उदयपुर) से मैट्रिक पास किया था आप चारों मिलनसार आदर्श विचारों के नवयुवक हैं। राष्ट्र एवं समाज को आपसे बहुत आशायें है

बरेली के आस पास आपकी बड़ी भारी जमीदारी है। वर्ष में कमसे कम ४ मास तो केवल धर्माराधान में ही व्यतीत होते हैं।

★ श्री सेठ अमीचंदजी कांसटिया—भोपाल

श्री सेठ अमीचन्द के पिताजी सेठ गोडीदासजी एक धर्मनिष्ठ एवं परोपकारी सज्जन थे। आपकी दिनचर्या का विशेष भाग धार्मिक विषय की चर्चा, प्रति-



सेठ अमीचंदजी कांस्टिया भोपाल



स्व० सेठ गोड़ीदासजी कांस्टिया, भोपाल

क्रमण व सामायिक करने में व्यतीत होता था। आपकी धार्मिकता, न्यायशीलता और प्रामाणिकता के कारण ओसवाल समाज व अन्य समाजों में अच्छा मान था, सेठ अमीचन्द का जन्म सं० १९३७ में हुआ। पिताजी की तरह आप की भी धार्मिक कार्यों में अच्छी रुचि है। स्थानीय श्वेताम्बर जैन पाठशाला में आपकी ओर से एक धर्माध्यापक रहते हैं। आप ओसवाल समाज के सम्माननीय ग्रहस्थ एवं भोपाल के प्रतिष्ठित व्यापारी हैं।

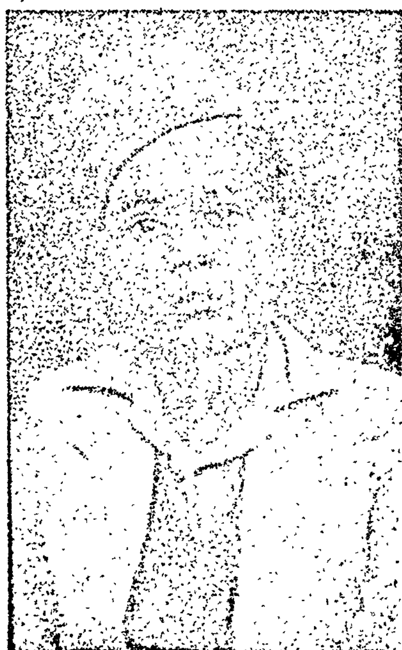
फर्म पर "सन्तोषचन्द रिखबचन्द कांसटिया" के नाम से साहुकारी लेन देन' हुण्डी चिठी व सर्राफी व्यापार होता है।

★ सेठ लखमीचंदजी, भेलसा

समूचे भारतवर्षीय दि० जैन समाज में अपनी उदारवृत्ति और धर्मनिष्ठा के कारण एक ख्याति प्राप्त श्रीमंत हैं। आपका जन्म संवत् १६५१ का है। भेलसा में आपकी ओर से एक लाख रुपये की लागत से बनी हुई एक धर्मशाला है तथा एक



सेठ लक्ष्मीचंदजी भेलसा



राजेन्द्र कुमारजी

जैन हाईस्कूल भी आपकी ओर से संचालित है। आपने भेलसा में एक विशाल दिगम्बर जैन चैत्यालय भी प्रतिष्ठितकरवा कर अपूर्व धर्मानुरारागीता का परिचय दिया है। कई एक जैन संस्थाओं को आपकी ओर से सदा सहायता प्राप्त होती रहती है। परोपकारी कार्यों में आपकी थैली सदा खुली रहती है। आप कई संस्थाओं के सभापति, संरक्षक व सहायक हैं। जैन साहित्य प्रचार की ओर आपका विशेष लक्ष्य है। आपकी ओर कई से छोटी २ पुस्तकें प्रकाशित होकर मुफ्त में वितरित हुई हैं। जैन साहित्योद्धारक समिति के सभापति हैं। तिलक बीमाकम्पनी के प्रमुख शेयरहोल्डर हैं। आपके 'राजेन्द्रकुमारजी नामक सुपुत्र हैं।

★श्री किशनसिंहजी चौधरी, देवास

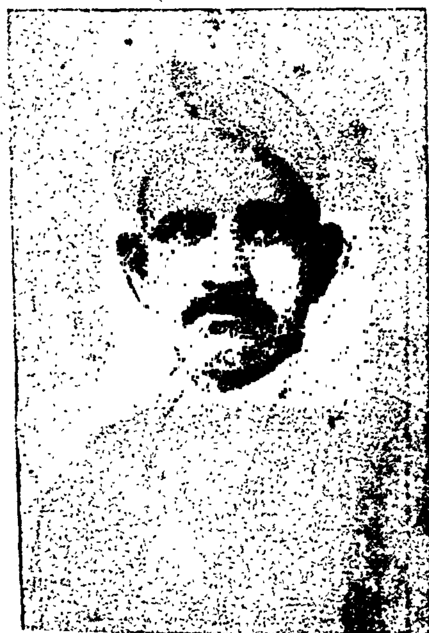


आपकी अवस्था ६३ वर्ष की है परन्तु युवकों के समान उत्साह विद्यमान है। संस्कृत, प्राकृत, मराठी, हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी के आप ज्ञाता हैं। आपके द्वारा सम्पादित "अर्धमागधी कोष" बहुत प्रसिद्ध है। जैनधर्म के विषय में आपका अध्ययन बहुत गहरा है। सार्वजनिक कार्य में आप आगे रहते हैं। सन् १६०६ से ही आप कॉंग्रेस मेम्बर रहते आए हैं। आपने अपनी पोरवाल जाति की कुरीतियों को दूर करने में अनेक प्रयत्न किये हैं।

सुप्रसिद्ध लेखक श्री लक्ष्मणसिंहजी आपही के लघुभ्राता हैं। अपने बड़े परिश्रम से "पोरवाड़ जाति का इतिहास" लिखा है।

★ सेठ सागरमलजी नथमलजी लूंकड़-जलगांव

धर्म परायण श्री सेठ सुगालचन्द के सुपुत्र सागरमलजी का जन्म सं १६४१ में खेजड़ली (मारवाड़) ग्राम में हुआ। साधारण शिक्षा होने पर भी



स्व० सेठ सागरमलजी लूंकड़





सेठ नथमलजी लूंकड़

अपनी अनुपम व्यापारिक प्रतिभा, साहसिकता और कर्मठता से लाखों का उपार्जन कर व्यापारिक एवं सामाजिक जगत् में नामाङ्कित हुए। आपने धार्मिक एवं सामाजिक सभा संस्थाओं की सेवा कर अच्छा यश कमाया। ६१ वर्ष की आयु में ता० १६-१-४३ को आपका स्वर्गवास हो गया। मृत्यु समय अपने करीब ५००००) धर्म पुन्य में प्रदान किये। आपके नथमलजी पुखराजजी, मोहनलालजी और चन्दनमल जी नामक पुत्र हैं।

श्री सेठ नथमलजी ने भी सार्वजनिक लोकोपकारी प्रवृत्तियों में दिलचस्पी प्रकट कर अपने पूज्य पिता श्री की कीर्ति में चार चांद लगा दिये। आप कर्मठ कांग्रेसी हैं। स्थानीय म्युनिसिपल के कई बार कमिश्नर रह चुके हैं। जैन गुरुकुल ब्यावर के १६ अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष थे। सभा संस्थाओं को आप का पूर्ण सहयोग रहता है। आपके सहोदरों का आपको पूर्ण सहयोग एवं आदर्श प्रेम है। आप सब सज्जन उत्साही, मिलन सार एवं समाज प्रेमी हैं।

दी सागरमल स्पीनिङ्ग एन्ड विविंग मिल की स्थापना कर अपनी व्यापारिक प्रतिभा का परिचय दिया। इन्दौर, कानपुर, चालीस गांव आदि कई स्थानों पर आपकी फर्में हैं। खान देश की प्रतिष्ठित फर्मों में आपकी फर्म अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

★श्री सेठ प्रतापमलजी बुधमलजी लूंकड, जलगाँव

सिलाड़ी (मारवाड़) निवासी सेठ बादरमलजी के द्वितीय पुत्र श्री



सेठ जुगराजजी लूंकड़



श्री पुखराजजी लूंकड़

जुगराजजी बाल्यावस्था में ही "जलगाँव निवासी" "प्रतापमल बुधमल" के यहां गोद चले आए। साधारण शिक्षा प्राप्त करके आप व्यवसाय में लग गये। व्यापारिक बुद्धि होने से साधारण अवस्था से लाखों के अधिपति हो गए एवं अपनी चमत्कारिक बुद्धि से सफल व्यवसायियों में गिने जाने लगे। आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता शिवराजजी को भी यहां बुला लिया एवं व्यवसाय प्रवृत्त हो गये।


श्री भंवरलालजी

श्री सेठ जुगराजजी के पुत्र श्री भंवरलालजी व्यवहार कुशल, होनहार एवं उदार युवक हैं। छोटी अवस्था में ही आपने सारे व्यवसाय को संभाल लिया और कुशलता पूर्वक संचालन कर रहे हैं। आपके बन्सीलालजी और भागचन्दजी नामक छोटे भाई और कमलाकुमारी नामक एक बहन है। शिवराजजी के जवाहरलालजी पुखराजजी और सोहनलालजी नामक तीन पुत्र हैं।

श्री जवाहरलालजी प्रगतिशील विचारों के प्रतिभाशाली युवक हैं तथा श्री भंवरलालजी के साथ योग्यता पूर्वक व्यवसाय को संभालते हैं। तथा खद्दर पहिनते हैं।

यह परिवार सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेता है। धार्मिक भावना भी स्तुत्य है। जलगांव के अतिरिक्त एलीचपुर चालीस गांव, इन्दौर आदि स्थानों में आपकी दुकाने है। खानदेश की प्रसिद्ध फर्मों में आपकी फर्म भी एक है।

★सेठ गंभीरमलजी लक्ष्मणदासजी श्री श्रीमाल, जलगांवः—

इस फर्म के वर्तमान मालिक सेठ गंभीरमलजी श्री श्रीमाल हैं। आप स्थानकवासी ओसवाल जैन हैं।

सेठ पृथ्वीराजजी, मुलतानमलजी एवं जीतमलजी नामक ३ भाई मारवाड़ तिंवरी से व्यापारार्थ यहां पधारे। सं० १९२० में जलगांव में कपड़े की दुकान स्थापित की। आप सज्जन क्रमशः संवत १९३५, १९४० और १९५० में स्वर्गवासी हुवे। इन तीनों भाइयों के स्वर्गवासी होने के पश्चात सेठ मुलतानमलजी के पुत्र सेठ लक्ष्मणदासजी उपरोक्त कारोबार संभालते रहे।

सेठ लक्ष्मणदासजी—जन्म ता० १७-१२-१८७७ ई० में तीवरी में हुआ। संवत् १९७१ में अपना निजी व्यापार 'सेठ लक्ष्मणदास मुलतानमल' के नाम से शुरू किया जिसमें बैंकिंग और कृषि का व्यापार बहुत जोरदार था। आपने जलगांव में बहुत नाम कमाया और बड़े सेठ के नाम से पहचाने जाने लगे। सिकंदराबाद में स्थानकवासी ओसवाल जैन कान्फ्रेस हुई उसके सभापति पदपर आपको

ही समाज ने अलंकृत किया था। जलगांव के० ई० एम० हॉस्पीटल को आपने १० हजार रुपये देकर नींव पक्की की। अपनी ५ हजार की जीवन की पॉलिसी आपने घाटकोपर संस्था बंबई को प्रदान की। सन् १९२० में आपको ब्रिटिश सरकार ने रायसाहेब की पदवी से सन्मानित किया और आपको बेंच मेजिस्ट्रेट का भी कार्य सौंपा गया। संवत् १९८१ में पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलाल जी महाराज सा० का ३३ वाँ चातुर्मास जलगांव में हुआ जिसका सारा कार्य संचालन अपने यहां के स्थानिक श्री संघ की मदद से किया और रु० ३० हजार का खर्च भी आपने ही किया। जल गांव ओसवाल जैन बोर्डिंग की स्थापना भी आपने ही की थी। आपकी फर्म यहां के भगीरथ स्पिनिंग विव्हिंग मिल्स के सोल अजेन्ट भी थी। आप अपनी ७१ वर्ष की अवस्था में ता० ७-३-४८ ई० यह लोक छोड़कर स्वर्गवासी हुवे। आपके श्री गंभीरमलजी नामक एक सुपुत्र हैं।



स्व० सेठ लक्ष्मणदास जलगांव





सेठ गम्भीरमलजी, जलगांव

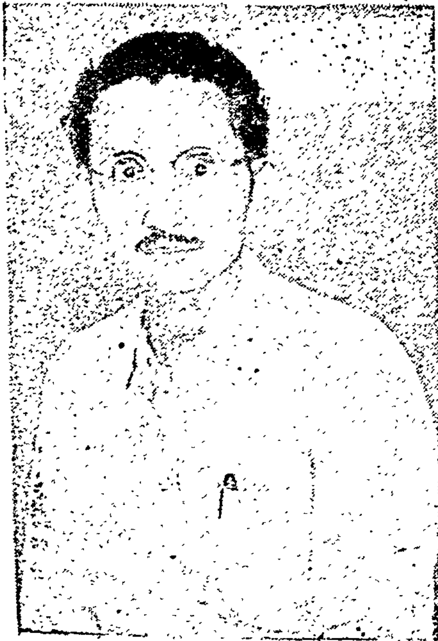
सेठ गंभीरमलजी का जन्म पालखेड़ा में ता०२१-२-१९-२५ हुआ। अपनी फर्म का विस्तृत कार्य कुशलता पूर्वक चला रहे हैं। आप भी अपने पिता श्री की तरह सार्वजनिक कार्यों में मुक्त हस्त से हमेशा मदद देते रहते हैं। आपने यहां की मूलजी जेठा कॉलेज को रु० १५०० प्रदान किये साथ ही साथ बोदवड की जैन बोडिंग को भी रु० ११०० उसके उद्घाट पर दिये हैं। आपके बड़े पुत्र रमेशचन्द्र उनकी केशर तुला सन १९५६ में रु० ५००० की चढ़ाई। आपके रमेशचन्द्र व राजेन्द्रचन्द नामक २ पुत्र हैं एवं प्रभावती देवी नामक कन्या है। आपका व्यापारिक

परिचय । १. सेठ गंभीरमल लक्ष्मणदास···बैंकर्स एन्ड लैंडलार्ड २. सेठ गंभीरमल लक्ष्मणदास···गोल्ड एन्ड सिल्व्हर मर्चेन्ट ३. सेठ रमेशचन्द्र गँभीरमल···ग्रेन मर्चेंट अन्ड कमिशन एजेन्ट ।



श्री हुकमीचन्दजी पाटनी, इन्दौर

(परिचय पृष्ठ ६७६ पर। ब्लाक देर से प्राप्त होने पर यथा स्थान नहीं दिया जा सका)



श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी, डेह (मारवाड़)

(परिचय पृष्ठ ६३६ पर। ब्लाक देरी से प्राप्त होने से यथा स्थान नहीं दिया जा सका)

देश, बरार व यवतमाल प्रदेश—

ठ राजमलजी नन्दलालजी श्रीमाल मेहता

(कॉटन किंग आफ खानदेश) भुसावाल, बरनगाँव

रूपनगढ़ (किशनगढ़) से इनके पूर्वज व्यवसाय के निमित्त सेठ लछमनदास और सरदारमलजी इतस्ततः होते हुए जब्बलपुर आए एवं लेनदेन और अनाज व्यवसाय प्रारम्भ किया। सेठ सरदार मलजी के पुत्र पन्नालालजी मिलनसार र व्यवसाय कुशल हुए। आपके पुत्र राजमलजी, नन्दलालजी, हरकचन्दजी म्पालालजी हैं इन चारों भाइयों की "राजमल नन्दलाल" नामक फर्म भुसावल था वरन गांव में रूई सेंगदान और कमीशन का व्यापार करती है। इस फर्म क व्यापारिक सम्बन्ध अहमदाबाद, बम्बई, व मालवा प्रान्त की मीलों में विशेष रूप रे व्यापारिक दृष्टि से यह फर्म इस प्रान्त की अग्रगण्य फर्मों में से है। फर्म द्वा है। व्यापारिक दृष्टि से यह फर्म इस प्रान्त की अग्रगण्य फर्मों में से है। फर्म द्वा सामाजिक, सार्वजनिक एवं धार्मिक कार्यों में बड़ी उदार भावना से सहयोग दि



सेठ राजमलजी



सेठ नंदलालजी

जाता है।

सेठ राजमलजी—आप धार्मिक कार्यों में विशेषतः भाग लिया करते हैं। आप का शान्त स्वभाव उल्लेखनीय है। आपके सुभाषचन्दजी नामक पुत्र हैं।

सेठ नन्दलालजी आप भुसावल मर्चेण्ट एसोसियेशन के प्रेसिडेण्ट हैं। कॉटन किंग ऑफ खानदेश के नाम से आपकी प्रसिद्धि है। आप कामा चित्र लिमिटेड के

डायरेक्टर हैं। सामाजिक दृष्टि कोण से आपके विचार सुधार प्रिय एवं प्रगति शील हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र फकीरचन्दजी आपके ही समान व्यवसाय कुशल, कर्मनिष्ठ, उद्योगी एवं उत्साही युवक हैं। आप भी "दी पोप्युलर फिल्म लिमीटेड तथा फोर्च्युन प्राव्हडेण्ट इन्श्युरेन्स कं० लि०" के डायरेक्टर्स हैं। स्थानीय सार्वजनिक कार्यों में विशेषतः भाग लिया करते हैं। आपके पुत्र सतीशचन्दजी हैं। श्री नन्दलालजी के द्वितीय पुत्र नवीनचन्दजी भी उत्साही एवं मिलनसार युवक हैं।

सेठ हरकचन्दजी—आपकी भी व्यापारिक व्यवसाय कुशलता एवं विद्वत्ता उल्लेखनीय है। सार्वजनिक कार्यों में पूर्ण मनोयोग से भाग लेते हैं। आपके पुत्र नीलमचन्दजी एवं लालचन्दजी हैं।

सेठ चम्पालालजी—आप अपने बड़े भ्राताओं में सम्मिलित रहते हुए व्यापारिक एवं सार्वजनिक कार्यों में अच्छी तरह से सहयोग दिया करते हैं।

★ सेठ चम्पालालजी लुणावत—खामगांव

समाज में होनहार व्यक्ति हैं। सन् १६५० में महावीर जैन युवक मंडल सेन्दूरजना के अध्यक्ष थे। और सन् १६४० से आप खामगांव नगर कांग्रेस कमेटी के प्रमुख मंत्री है। सन् १६४६ में श्री० विदर्भ प्रांतिक कांग्रेस कमेटी की सलाहकार समिति के सभासद थे। आप माता कस्तूरबा गांधी मेमोरियल फंड समिति बुलडाणा जिल्हा और श्री महात्मा गांधी मेमोरियल फंड समिति बुलडाणा जिल्हा—इन दोनों समितियोंके जिल्हा मन्त्री थे। उस समय जिल्हे से अच्छा चन्दा इकट्ठा हुवा। मिलनसार स्वभाव से आप बड़े लोकप्रिय और प्रतिष्ठित व्यक्ति बन गये हैं।



★श्री सेठ हरकचन्द्रजी आवड़-चान्दवड़ (खानदेश)

श्री हरकचन्दजी के पुत्र रामचन्द्रजी व केशवलालजी हैं। श्री केशवलालजी आवड़ का जन्म सं० १९६१ में हुआ। चांदवड़ गुरुकुल स्थापन करने में आपने अनेक विपत्तियां झेली। आपही के प्रवन्धकत्व में विद्यालय उत्तरोत्तर उन्नति करने में सफल हो रहा है। खान देश तथा महाराष्ट्र के सुपरिचित व्यक्तियों में आपकी गणना है। आप के पुत्र संचालालजी व रतनलालजी एफ. ए. हैं तथा अमरचन्द्रजी व रमेशचन्द्रजी आश्रम में पढ़ते है। हंसकुमारी तथा सरोजकुमारी नामक दो कन्याये हैं।

सेठ रामचन्द्रजी—आपका जन्म सं० १९४६ का है। विद्यालय के स्थानीय प्रबन्ध समिति के सदस्य रह कर आपने प्रशंसनीय कार्य शीलता का परिचय दिया। आपके ज्योठ पुत्र श्री शान्तिलालजी वस्त्र व्यवसाय का संचालन कर रहे हैं तथा ४ वर्ष से नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हैं। आप देशभक्त एवं समाज सेवी युवक हैं। आपसे छोटे भाई लखमीचन्दजी नाशिक में वकालात करते हैं। गत वर्ष तक आप नाशिक जिला कॉंग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे एव वर्तमान में जिले के सेवा दल के प्रमुख हैं। तथा बीड़ी कामगार यूनियन व गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष हैं। इन से छोटे भाई इस वर्ष मेट्रिक पास हुए हैं। श्री रामचन्दजी के सुरज कुमारी चांदकुमारी व कमला कुमारी नामक तीन कन्याये हैं।

श्री केशवलालजी तथा रामचन्द्रजी "हरकचन्द रामचन्द्र" फर्म का कार्य संभालते हैं। आपका परिवार मन्दिर मार्गीय आम्नाय का अनुयायी है

★श्री सेठ कंवरलालजी रतनलालजी वाफणा-धूलिया (खानदेश)

श्री कंवरलालजी वाफणा सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय कार्यों में बहुत उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। पूज्य श्री जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज के सहित्य वाचन एवं धर्मोपदेश से राष्ट्र एवं धर्म सेवा की ओर अभिरुचि हुई। लगभग सन् १९२६ से आप शुद्ध खादी पहिनते है और रचनात्मक कार्यों में पूर्ण सहयोग देते हैं। इसी प्रकार आपने अपना धार्मिक जीवन भी आदर्श मय बना लिया है। राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में भाग लेने के कारण आप जेल भी जा चुके है। धूलिया जिले के प्रमुख कॉंग्रेस कार्यकर्ताओं में आपका महत्व पूर्ण स्थान है। सिरधाना में आपकी जमीन है एवं यहाँ आप स्वयं कृषि कर वाते हैं। यहीं पर एक दुकान भी है जहाँ सब प्रकार का व्योपार एवं लेन देन होता है। आपके विचार बहुत उदार एवं क्रान्तिकारी हैं।

★सेठ श्री राजमलजी चोरड़िया-चालीस गांव (पूर्व खानदेश)

श्रीमान् रतनचन्दजी चोरड़िया के पुत्र राजमलजी चोरड़िया का जन्म सं० १९६० के माघ बदि ८ को हुआ। अभी आप चालीस गाँव में वसन्तलाल



श्री राजमलजी चोरड़िया



सेठ रतनचंदजी चोरड़िया

बनारसीलालजी शेकसरिया के साझे में कार्य करते हैं। इस प्रान्त में रुई एवं मूँगफली का काम वृहद् रूप में होता है। आपके सजन कुंवरी १४ वर्ष एवं जथाकुंवरी ११ वर्ष एवं दो पुत्र हैं जिनके नाम अगरचन्द एवं नरेन्द्रकुमार है।

श्री राजमलजी चोरड़िया सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में उत्साह के साथ भाग लेते रहते हैं। पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के हितेच्छु मण्डल रतलाम के आप माननीय सदस्य एवं हिसाब के आडीटर हैं। "महावीर जैन विद्यालय" लासल गाँव के आप शिक्षणमन्त्री "दया धर्म प्रचार संघ देहली के आप वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर हैं। पर्यूषण के अवसर पर आप व्याख्यान देने को आमन्त्रण पर जाते हैं। खानदेश ओसवाल सम्मेलन के आप प्रमुख मेम्बरों में से हैं। समाज की ओर से आपको कई सुवर्ण एवं रजत के मान पत्र मिले हैं।

★श्री सेठ किशनलालजी माणकचन्दजी सिंघी उत्तराणा (खानदेश)

श्री सेठ जोहरमलजी के पुत्र किशनदासजी नामाङ्कित पुरुष हुए हैं। आप कर्तव्य शील एवं धर्म प्रेमी सज्जन थे। सं० १९४३ में आप स्वर्गवासी हुए। आपके यहाँ माणकचन्दजी गोद आये। श्री माणकचन्दजी का जन्म सं० १९४५ में हुआ।

सं० १६७२ में आपने साहुकारी व्यवसाय बन्द कर कृषि तथा बागात् की ओर विशेष लक्ष्य दिया। आपका सुविस्तृत उद्यान लगभग १७५ एकड़ भूमि में है। यहाँ से सैकड़ों वैगन फ्रूट्स बम्बई एवं गुजरात प्रान्त में भेजा जाता है। आपने अपने यहाँ लेमन ज्यूश और ओरंज ज्यूस बड़े प्रमाण में बनाने का आयोजन किया है। और इस कार्य के लिए १२० एकड़ भूमि में नींबू के १२ हजार झाड़ लगाये है। इन तमाम कार्यों में आपके बड़े पुत्र वंशीलालजी का पूर्ण सहयोग रहता है। बम्बई प्रान्त के फलों के बगीचों में आपका बगीचा सबसे बड़ा माना जाता है।

सेठ माणकचन्दजी के इस समय वंशीलालजी शिवलालजी तथा शान्तिलालजी नामक तीन पुत्र हैं। श्री वन्सीलालजी का जन्म सं० १६१५ का है। आपने लेमन तथा ओरेञ्ज ज्यूस के लिए पूना एग्री कल्चर कॉलेज से विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। आपके लघुभ्राता शिवलालजी ने एग्रीकल्चर कॉलेज से केमिस्ट्री का ज्ञान प्राप्त किया और शान्तिलालजी भी मैट्रिक पास करके इसी एग्रीकल्चर लाईन में काम करते हैं। सेठ साहब ने नाशिक जिले के यवले तालुके में २-२॥ हजार एकड़ जमीन खरीद कर मोसम्बी प्लान्टेशन का काम जारी किया है। ओसवाल जाति में आधुनिक पद्धति से खेती का काम करने वाले आप ही पहले सज्जन हैं।

★सेठ रंगलालजी वंसीलालजी रेदाशनी नसीराबाद (खानदेश)

आज से लगभग ११५ वर्ष पूर्व सेठ अमरचन्दजी अपने निवास स्थान पीपाड़ से व्यापार के निमित्त नसीराबाद (जल गांव के समीप) आये आपके पुत्र मानमलजी तथा पौत्र रामचन्द्रजी हुए। सेठ रामचन्द्रजी मिलनसार पुरुष थे आपके द्वारा दुकान के व्यापार में अच्छी उन्नति हुई। आपके पुत्र मोतीलालजी हुए। सेठ मोतीलालजी रेदासनी-का जन्म सं० १६३६ में हुआ। आप स्वभाव के सरल तथा मृदु प्रकृति के पुरुष थे। खानदेश के ओसवाल समाज में आपका अपना विशिष्ठ महत्व था। सं० १६६० में आपका देहावसान हुआ। आपके चार पुत्र हुए जिनके नाम क्रमश ये हैं। बाबू रंगलालजी, वंशीलालजी, बाबूलालजी तथा प्रेमचन्द्रजी। आप चारों बन्धुओं का प्रेम प्रशंसनीय है। आपके यहाँ आसामी लेन देन तथा आढ़त का काम होता है

★सेठ लादूरामजी मनोहरमलजी बोथरा, इगतपुरी (नासिक)

सहोदर बन्धु सेठ मोतीचन्दजी और मनोहरमलजी सम्वत् १६३४ में व्यापार के लिए इगतपुरी आए एवं फर्म स्थापित की। सेठ मोतीचन्दजी १६७५ में तथा सेठ मनोहरमलजी १६५७ से स्वर्गवासी हुए। सेठ मोतीचन्दजी के लादूरामजी एवं मूलचन्दजी नामक दो पुत्र हुए। लादूरामजी अपने काका मनोहरलालजी के यहाँ गोद गए।सेठ लादूरामजी का जन्म १६४५ में हुआ। आप योग्य एवं प्रतिष्ठित सज्जन हैं। आपकी नासिक व खानदेश की ओसवाल समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके दो पुत्र हैं। श्रीमूलचन्दजी का जन्मसं० १६५४में हुआ आपके भी दो पुत्र हैं।

★श्री भीकमचन्दजी देशलहरा, बुलडाना



जन्म दिसम्बर सन् १६१७। पिता श्री लादूरामजी देशलहरा। अध्ययन काल से ही आप महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों के अनुयायी हो चुके थे अत- एफ. ए. करने के बाद कांग्रेस की कर्मठता के साथ सेवा करने लग गए।

वर्तमान में आप कई जनहित कार्यों के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होकर जनता जनार्दन की सेवा कर रहे हैं। यथा "वाइस प्रेसिडेंट म्युनिसिपल कमेटी मेम्बर बुलडाना जेल बोर्ड कमेटी, मेम्बर बुलडाना गव्हर्मेंएट डिस्पेन्सरी कमेटी "मैनेजिङ्ग ट्रस्टी गाँधी भवन बुलडाना" जैनमहामण्डल बुलडाना शाखा के मन्त्री; प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य एवं अखिल भा० गांधी स्मारक निधि बुलडाना के अध्यक्ष रह चुके हैं जयपुर अधिवेशन में आप डेलीगेट के रुप में उपस्थित थे। इस प्रकार से देशलहराजी का जीवन जन सेवा कार्यों में संलग्न रहता है। आप श्रेष्ठ वक्ता, लेखक एवं जन सेवक हैं। आपके विजयकुमारजी नामक पुत्र एवं सरोज कुमारी नामक एक पुत्री है जो अध्ययन कर रहे हैं। "लादूराम भीकमचन्द देशलहरा" नामक फर्म से सोना, चाँदी तथा कपडा का व्यापार एवं खेतीहोती है। "यूनिवर्सल मेडिकल स्टोर्स" नामक फर्म से औषधियों का व्यवसाय होता है।

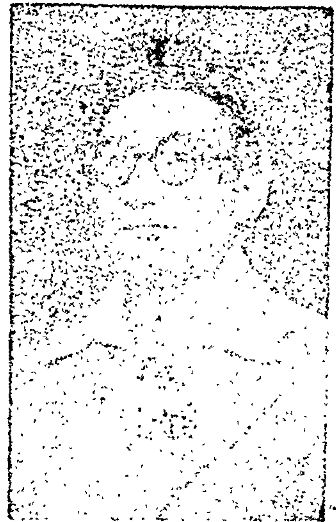
★सेठ केशरीमलजी गुगलिया, धामक:—

इस परिवार का मूलनिवास स्थान वलूंदा (जोधपुर) है। यहा सेठ गम्भीरमल के साथ उनके पुत्र बख्तावरमलजी भी साथ ही आये। आप दोनों पिता पुत्रों ने व्यापार में सम्पति पैदा कर सम्मान तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि की। सेठ बख्तावरमलजी बरार प्रांत के गण मान्य ओसवाल सज्जनों में से थे। आपकी धर्मपत्नी ने वलूंदे में श्वेताम्बर जैन मन्दिर बनवाकर उसकी व्यवस्था वहाँ के जैन समाज के जिम्मे की। आपके नाम पर रिखबचन्द्रजी अजितगढ़ (अजमेर) से दत्तक आये। इनका भी अल्पवय में स्वर्गवास हो गया अतः इनके नाम पर धामक से केशरीचन्दजी गुगलिया दत्तक आये।

केशरीचन्दजी गुगलिया:—आपका जन्म सं० १६४७ में हुआ। आप उदार

प्रकृति के शिक्षा व सुधार प्रेमी व्यक्ति हैं। आपने अपने दादाजी के ओसर के समय ३१ हजार रुपये जैन बोर्डिंग हाउस फन्ड में दिया। इसी प्रकार हजारों रुपये की सहायता आपने शुभ कार्यों में की। बाबू सुगनचन्दजी लूणावत द्वारा स्थापित महावीर मण्डल नामक संस्था से आप विशेष प्रेम रखते हैं। आपको पहलवान और गवैया आदि रखने का बड़ा शौक है। आप १९२१ तक धामन गाँव के आनरेरी मजिस्ट्रैट रहे। आपके मुकुन्दीलालजी और कुञ्जीलालजी नामक दो पुत्र हैं। आपके यहाँ कृषि का विशेष कार्य होता है। वरार प्रान्त के प्रतिष्ठित कुटुम्बों में इस परिवार की गणना है।

★श्री सेठ राजमलजी पूसमलजी कोठारी-बोरी अरब (यवतमाल)



वर्तमान में फर्म के मालिक श्री सुगनचन्दजी एवं उत्तमचन्दजी हैं। श्री सेठ सुगनचन्दजी मिलन सार, चतुर और सफल व्यवसायी हैं। आप बड़ी ही योग्यता से फर्म का संचालन कर रहे हैं। आपके श्री प्रेमचन्द और श्री शरदचन्द्र नामक दो पुत्र और विजयकुमारी नामक पुत्री है। श्री प्रेमचन्दजी हाई स्कूल में अध्ययन कर रहे हैं आप होनहार युवक हैं।

श्री उत्तमचन्दजी—आपने अपनी १७ वर्ष की आयु में ही राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेना शुरु कर दिया था। राष्ट्र और समाज के हित जीवन को ही आप जीवन समझते हैं एवं अपना जीवन भी उपरोक्त आदर्श के अनुसार ही व्यतीत करते हैं। स्थानीय जनहित के सार्वजनिक सामाजिक एवं साहित्य सम्बन्धी सभा संस्थाओं के आप केन्द्र हैं। अभी आप ३३ वर्षीय युवक हैं पर काफी लोकप्रिय और सम्मानिव हैं। आप कई बार जेल यात्रा भी कर आये हैं।

आप दोनों बन्धु बड़े प्रेम के साथ रहते हैं। अपनी पूज्य दादीजी के आज्ञानुसार कार्य करते हैं। श्री उत्तमचन्दजी "दी न्यू इण्डिया इंडस्ट्रिज एण्ड एजेन्सी लिमिटेड के डायरेक्टर हैं।

✶ श्री सेठ बन्सीलालजी कटारिया-हिंगनघाट

श्रीयुत सेठ चुन्नीलाल के सुपुत्र श्री बन्शीलालजी रणासी गांव वाले मगनमलजी के यहाँ से सं० १९८१ में गोद आये। श्री वंशीलालजी धर्म प्रेमी उदार दिल और मिलनसार सज्जन हैं।

श्री बन्शी लालजी के माणक चन्दजी, अबीर चन्दजी, तथा ज्ञान चन्दजी नामक तीन सुपुत्र तथा सायरबाई नामक एक कन्या है। आप स्थानीय स्थानक वासी जैन संघ के प्रेसिडेन्ट हैं। तथा प्रत्येक धार्मिक कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आपकी माताजी अर्थात् श्री चुन्नीलालजी की धर्म पत्नि श्रीमती सोनाबाई का सं० १९४० में देहावसान हुआ। देहावसान के समय श्रीमती सोना बाई ने ७००० की लागत का एक मकान स्थानक को भेंट किया।

आपकी फर्म यहाँ तथा भण्डारे में "भवानीदास चुन्नीलाल" के नाम से मालगुजारी, काश्तकारी, लेनदेन का काम करती है। यहाँ पर आपकी ओर से एक धर्मशाला है जिसमें यात्रियों के लिए ठहरने का समुचित प्रबन्ध है।

★ सेठ पुखराजजी ओस्तवाल, हिंगणघाट

सेठ राजमलजी ओस्तवाल के दत्तक पुत्र श्री सुगनचन्दजी की छोटी उम्र में ही मृत्यु हो गई। मृत्यु के बाद इनकी पत्नी सोनाबाई ने कार्य भार सम्भाला और श्री पुखराजजी को गोद लिया। पुखराजजी का विवाह २९-४-१९१२ को हुआ। पुखराजजी के पत्नि का स्वर्गवास २७-९-१९३४ को हुआ। दूसरा विवाह ता० ७-६ १९३५ को हुआ। पुखराजजी उत्साही धार्मिक भावना के सज्जन हैं। आपके पांच सुपुत्र हैं। श्री तिलोकचंद, कस्तूरचन्द, तेजराज, कुन्दनमल तथा पारसमल। और तीन कन्या है सुन्दर-बाई विमलबाई और मानकंवर और पौत्री एक है। जिसका नाम दमयंतीदबाई है।



श्री० जैन गुरुकुल ब्यावर को ५०१ रुपया देकर कमरा बनवाया। श्री जैन विद्यालय चिंचवड को एक हजार रुपया देकर कमरा बनावाया।

★ श्री छोटमलजी सुराणा-हिंगनघाट

आपने हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करके २० वर्ष की आयु में ही राजकीय एवं सामाजिक क्षेत्र में बड़ी ही योग्यता से पदार्पण किया। आप सी. पी. और बरार में सबसे कम उम्र के लोकल बोर्ड हिंगन घाट के अध्यक्ष रहे हैं। क्लोथ मर्चेण्ट एसोशियशन के भी आप कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे हैं।

श्री सुराणाजी सुधरे हुए विचारों के नवयुक हैं तथा हर एक सार्वजनिक कार्यों में दिलचस्पी से भाग लेते हैं तथा कांग्रेस के आदेशों एवं तत्त्वों के पुरस्कर्ता हैं। "सुराणा स्वदेशी वस्त्र भण्डार" के आप संचालक हैं कपड़े के व्यापार में आपका आद्य स्थान है। आपके यहाँ "राय साहिब रेखचन्दजी मोहता मील्स लिमिटेड" की कपड़ा तथा सूत की एजेन्सी है आपके एक दस वर्षीय पुत्र श्री विजय कुमार सुराणा और पुष्पलता नामक चार वर्षीय कन्या है।

☆ सेठ मिश्रीलालजी सुराणा, पांढर कवड़ा (यवतमाल)

सुप्रसिद्ध सेठ चन्दनमलजी सुराणा के पुत्र सेठ मिश्रीलालजी सुराणा का जन्म सं० १६४४ में हुआ। आपका सामाजिक जीवन बड़ा प्रशंसनीय है। पाथरडी गुरुकुल और आगरा विद्यालल को मदद दी है। पांढर कवड़ा के व्यापारिक समाज में अच्छी प्रतिष्ठा रखते हैं। चन्दनमल मिश्रीलाल के नाम से जमींदारी साहूकारी सराफी तथा कपड़े का व्यापार होता है। सं० २००३ से यवतमाल में होलसेल कपड़े की दुकान खोली। श्री मिश्रीलालजी के पुत्र रतनलालजी उत्साही युवक हैं। वर्तमान में आप ही फर्म का संचालन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। इनके पुत्र पन्नालालजी अभी अध्ययन कर रहे हैं।



★श्री सेठ लखमीचन्दजी माणकचन्दजी कांकरिया, धामनगाँव

श्री सेठ लखमीचन्दजी ने सं० १६६१ में उक्त नामक से अपनी फर्म स्थापित कर सोना, चादी, रुई खेती आदि का कार्य प्रारम्भ किया आपके दृढ़ अध्यवसाय से शनैः फर्म की अच्छी उन्नति हुई। आपके सुपुत्र श्री माणकचन्दजी वर्तमान में फर्म संचालन कर रहे हैं। आप बड़े मिलनसार, सरल प्रकृति के धार्मिक पुरुष हैं। धामनगाँव के हर प्रकार के कार्यों में आप अग्रणीय हैं। कॉटन मार्केट कमेटी, एजूकेशन सोसाइटी, गौरक्षा संघ आयुर्वेद औषधालय आदि १०-१२ संस्थाओं के आप सदस्य तथा अधिकारी हैं। आपके श्री फूलचन्दजी, मोतीलालजी और भागचन्दजी नामक तीन भाई हैं। आप सब बन्धु बड़े प्रेम से सम्मलित रूप से व्यवसाय की देख रेख करते हैं। आप तीनों उत्साही और

प्रवृत्तिशील युवक हैं। श्री सेठ माणक चन्दजी के समीरमलजी तथा ताराचन्दजी नामक दो योग्य पुत्र हैं।

★स्वर्गीय श्री सेठ रतनचन्दजी अमरचन्दजी मुणोत, रालेगांव

श्री अमरचन्दजी मुणोत के सुपुत्र श्री रतनचन्दजी का जन्म सं० १६४० मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को हुआ। आप शान्त और गम्भीर स्वभाव के उदार, धर्मरत, समाज सेवक, उद्योग प्रिय पुरुष थे। आप मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, हिन्दी एवं उर्दू पांच भाषाओं के ज्ञाता थे। धर्म ग्रन्थों के स्वाध्याय में तो हमेशा तल्लीन रहते थे। इसके अतिरिक्त ज्योतिष एवं आयुर्वेद शास्त्र के भी आप अच्छे ज्ञाता थे।

आपको खेती ही परम प्रिय थी अतः आपने साहूकारी का धन्धा बन्द कर कृषि व्यवसाय की ओर ध्यान दिया आपके २२०० एकड़ जमीन थी जिसमें स्वयं काश्त करवाते थे। जीवन में कई वार नगर भोज और आखिरी वार चार रोज पूर्व आपने ८ हजार आदमियों को भोज दिया। आपको आजीवन घुड़सवारी का शोक रहा उसकी पूर्ति के लिये आपने कई वार काठियावाड़ से घोड़े मंगवाये। अपनी माताजी की स्मृति में रालेगांव में एक कन्याशाला वनवाई। समाज कार्य के लिये आपने पीपाड़ सिटी (मारवाड़) का मकान दे दिया (पाथर्डि परीक्षा बोर्ड को रु ७००७ की मदद दी। पशु पक्षियों के लिये अन्त समय में १०००) का दान दिया।

आपके लक्ष्मीवाई और जड़ावबाई नामक दो कन्यायें हुई परन्तु पुत्र रत्न की प्राप्ति नहीं हुई। आपने हीराचन्दजी मुणोत को गोद लिया परन्तु अन्त में पिता पुत्र में स्नेह नहीं रहा अतः अपनी आधी जायदाद श्री हीराचन्दजी को देकर अलग कर दिया। बाकी आधी स्टेट बत्तीस पत्रों द्वारा अपने दोहित्रों एवं सगे सम्बन्धियों में बांट दीं। आप संवत् २००७ की चैत्र शुक्ला ६ नवमी को दिवगत हुए।

★ सेठ फतेहलालजी-मालूमाले गाँव

खींचन (मारवाड़) निवासी सेठ मुल्तानचन्दजी व्यापारार्थ मालेगांव क्यास आए। यहाँ से आपके पुत्र धनराजजी व फतेहलालजी ने माले गाँव शहर में आकर "जवाहिरमल फतेहलाल" नामक फर्म स्थापित कर कपड़ा तथा साहुकारी का काम

प्रारम्भ किया। फतेहलालजी के हाथों से फर्म की खूब उन्नति हुई। आपके पुरुषार्थ पूर्ण प्रयत्नों से आस पास में जो बकरे, पाडे आदि का बलिदान होता था वह बन्द हो गया। धर्म के मामलों में आप बहुत कट्टर थे।

आपके पुत्र श्री किशनलालजी पृथवीराजजी व श्री गणेशमलजी व्यवहार कुशल और मिलनसार सज्जन है। आप सब सहोदर उन्नत विचारों के धार्मिक सज्जन हैं। स्थानीय ओसवाल समाज में आपका परिवार प्रतिष्ठित और सम्मान है।

★ श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम दि० जैन गुरुकुल कारंजा (बरार)

आश्रम की संस्थापन वीर सं० २४४५ की अक्षय तृतीया को हुई। धार्मिक और सांस्कृतिक शिक्षासहित लौकिक शिक्षा देकर भावी संतान को योग्य बनाना यह संस्था का ध्येय है। संस्था अपने ध्येय के अनुसार बराबर ३३ वर्ष से कार्य कर रही है। संस्था में साधन संपन्न व्यायामशाला, समृद्ध ग्रंथालय, नियमित व्याख्यान समिति, सिद्धांत विद्यालय, ग्रंथमाला, मुद्रणालय, वाचनालय आदि विभाग है। जिससे विद्यार्थियों के सर्वांगीण उन्नति विकास के लिए प्रबन्ध हैं।

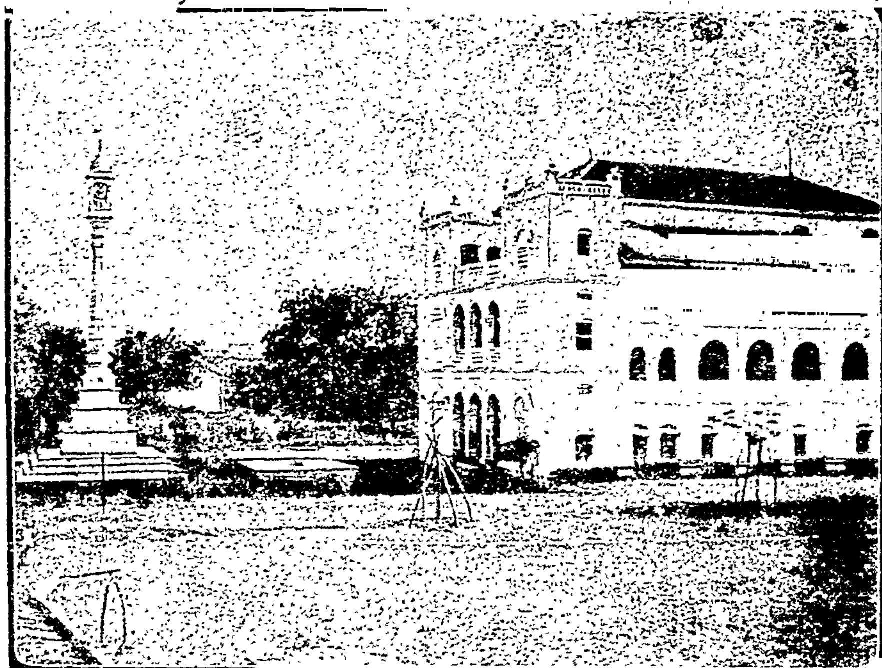
आज तक करीबन २००० (दो हजार) विद्यार्थियों ने शिक्षा लाभ उठाया है। संस्था से शिक्षा प्राप्त स्नातकों के द्वारा समाज में बाहुबली (कोल्हापुर) स्तवनिधी (बेलगांव) सोलापुर, गजपंथ कारकल (द० कनडा) देवलगांव राजा (बरार), खुरई (सी० पी) रामटेक (सी० पी०) आदि स्थानों में गुरुकुल संस्थाओं का संचालन हो रहा है और कई स्नातक प्रोफेसर, डाक्टर, अध्यापक हैं।

संस्था के मूल संस्थापक श्री पू० क्षुल्लक १०५ स्वामी संमतभद्रजी हैं। आप बाल ब्रह्मचारी, बम्बई युनिवर्सिटी के ग्रेज्युएट हैं। धर्म शास्त्र के विशेष ज्ञाता आत्म नुभवी और प्रभावी समाज कार्यकर्ता है। आप ही के धर्म प्रेम और कार्य नैपुण्य के प्रभाव से संस्थाओं का निर्माण, संरक्षण और विकास हुआ है श्रीमान विद्वद्वर्य न्यायरत्न वाचस्पति पंडित देवकीनंदनजी सिद्धांतशास्त्री आपके कार्य सहयोगी रहे है। संस्था के सभापति श्री बालचंदजी देवीदासजी चवरे वकील है तथा मंत्री श्री विष्णुकुमार गोविंदसा डोमगांवकर और प्रधानाध्यापक श्री० प्रेमचंदजी देवचंदजी शाह एम० ए० एल० एल० बी है जो कि आश्रम के ही भूतपूर्व स्नातक है और ऑनरेरी कार्यकर्ता है।

संस्था के प्रधान दातारों में:—

सेठ जम्बूदास देवीदासजी चवरे कारंजा, सेठ प्रभुदास देवीदासजी चवरे कारंजा, सेठ प्रद्युम्नशा चांगासाव डोणगांवकर कारंजा, सेठ जिनवरसा गंगासाव चवरे कारंजा, सेठ मोतीलाल ओंकारसाव चवरे कारंजा, सेठ जोतीराम दलूचंद दोशी सोलापुर सेठ बालचंद नानचंद शाह सोलापुर, सेठ माणिकचंद वीरचंद

शाह सोलापूर सेठ हिराचंद नेमचंद दोशी सोलापूर सेठ गुलाबचंद हिराचंद दोशी सोलापूर सेठ रा० ब० हीरालालजी कल्याणमलजी इन्दौर आदि महानुभाव है।



श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा का भव्य विद्यालय तथा चैत्यालय। आगे संगमरमर का ५२ फूट ऊंचा कलापूर्ण मानस्तम्भ



श्री सेठ जंबुदास देविदास चवरे कारंजा आश्रम के संस्थापकों में से एक प्रमुख दातार जिनसे करीबन लाख रुपया प्राप्त हुआ।

श्री सेठ प्रद्युम्नसा चांगसा ठोणगांवकर कारंजा आश्रम के संस्थापकों में से एक प्रमुखदातार तथा सिद्धान्त शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान



संस्था का कोष १६४०००) के करीब है। जिसकी आय और दान कुल साधारणतः १८०००) के करीब होती है, जिससे संस्था के भवन ११३०००) के विद्यालकाय बने है।

शाखा और उपशाखाओं द्वारा संस्था का परिवार समृद्ध और अपने ध्येयानुसार कार्य करने में सफल रहा है। संस्था के कार्यकर्त्ताओंकी भावना संस्था के अभिवृद्धि की है।



-:★:-

सेठ धन्न सावजी चंवरे बघेरवाल कारंजा (आकोला)

कारंजा के एक प्रमुख श्रीमंत, परम उदार तथा शिक्षा प्रेमी महानुभाव।

★श्री नेमीनाथ ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल चांदवड जि नासिकः—

जैनसमाज में शिक्षा, संस्कार व शक्ति का एक ही साथ विकास होकर समाज देश की अन्य प्रगतिशील व कार्यक्षम समाजों के साथ आगे बढ़े इस ध्येय से ता: १७-१२-१९२८ ज्ञानपंचमी के शुभ मुहूर्त पर कर्मवीर केशवलालजी श्रावक ने चांदवड़ ग्राम के बाहिर जंगल में पहाड़ों के बीच सुन्दर स्थान में गुरुकुल की स्थापना की। सैकड़ों समर्थ व असमर्थ छात्रों ने संस्था में पढ़ाई की है। उनमें से कोई डॉक्टर, कोई वकील, कोई पदवीधर, कोई प्रतिष्ठित व्यापारी तथा कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता है।

इसी संस्थ में सरकार मान्य निजी प्रायमरी स्कूल तथा हाईस्कूल है, जिन में मराठी पहली क्लास से मैट्रिक तक की पूर्ण पढ़ाई होती है। संस्था के हाईस्कूल में करीब ३५० विद्यार्थी तथा छात्रालय में १५० विद्यार्थी हैं। बाल विकास के उत्तमोत्तम सर्व साधन व पौष्टिक खुराक की सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था होने से संस्था को वार्षिक खर्च रु० ८०-८५ हजार आता है।

संस्था के छात्रों ने नगर जिले करंजी आदि गांवो में समाज के भाईयों पर कम्युनिस्टों के विरोधी प्रचार से अत्याचार होने पर वहाँ प्रत्यक्ष जाकर उन्हें संकट मुक्त किया। आगे भी इसी तरह कसाऊ सेवा व संरक्षण करने का मौका संस्था गुमावेगी नहीं।

व्यायाम के क्षेत्र में संस्था महाराष्ट्र में अत्यन्त मशहूर है। अखिल महाराष्ट्रीय शारिरीक शिक्षण परिषद् नासिक सन् १९४७ तथा अखिल भारतवर्षीय शारिरीक शिक्षण परिषद् पूना सन् १९४९ में संस्था के छात्रों के वाटली वॅलन्सिंग, जालती ड्रीलें, मल्लखंब, लाठीलढ़ंत, मदगाफरी, पट्टा नलवार आदि अनेक अत्यन्त प्रभाव कारी व आश्चर्य जनक शारिरीक प्रयोग हुए थे, जिन्हें देखकर बड़े २ व्यायाम तज्ञ व हजारों प्रेक्षकों ने आश्चर्य व्यक्त कर हार्दिक प्रशंसा की थी। नासिक अधिवेशन में वाटली वॅलन्सिंग आदि आश्चर्य जनक प्रयोगों की फिल्में ली गई थी। ये फिल्में जगह २ पर सिनेमा में बताई जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व अ. भा. ओसवाल महा सम्मेलन अजमेर तथा मंदसौर में भी संस्था के छात्रों के ऐसे ही शारिरीक प्रयोग हुए थे, जिन्हें देखकर देश के उपस्थित तमाम सामाजिक नेताओं ने तथा प्रेक्षकों ने आश्चर्य व्यक्त कर बहुत ही प्रशंसा की थी।

सन् १९३९ में स्काऊटिंग प्रतियोगिता में बम्बई इलाके में संस्था का पहला नम्बर आया उस के उपलक्ष में तत्कालीन गवर्नर सर लेस्ली विल्सन ने रखी हुई सर लेस्ली विल्सन नाम की चांदी की ढाल पुरस्कार रूप में संस्था को प्राप्त हुई थी।

हाईस्कूल, प्रायमरी स्कूल, कृषि व गोपालन, छात्रालय, उद्योग मंदिर, नेमिनगर प्रि. प्रेस, नेमिनगर वृत्त कार्यालय, नेमिनगर पोस्ट ऑफिस, व्यायाम मंदिर, धार्मिक, स्काऊटिंग, वॅड, बालवीर वस्तु भंडार व बैंक आदि संस्था के मुख्य २ विभाग हैं। औद्योगिक विभाग में फिलहाल बुक बाईंडिंग टेलरिंग, पेन्टिंग सुतकताई आदि कलाओं का ज्ञान दिया जाता है।

स्वतंत्र कॉलेज व जैनयुनिवर्सिटी खोलने की अंतिम महत्वाकांक्षा संस्था ने आगे रखी है और इस दिशा में संस्था के प्रयत्न चालू हैं।

★श्री सेठ फूलचन्दजी मूथा, अमरावती

पीपाड (मारवाड़) निवासी सेठ चुन्नीलालजी व्यापारार्थ यहाँ आए और "मगनमल चुन्नीलाल" के नाम से फर्म स्थापित कर वस्त्र व्यवसाय में प्रवृत्त हुए एवं अच्छी सफलता प्राप्त की। आजकल फर्म का संचालन श्री फूलचन्दजी अपने भाई श्री भौंरीलालजी के सहयोग से करते हैं। आप दोनों वन्धु मिलनसार और धार्मिक प्रवृत्ति के सज्जन हैं।

श्री फूलचन्दजी विगत २५ वर्षों "जैन श्वेताम्बर मन्दिर" तथा श्री राजीवाई

धर्मशाला का कार्य अवैतनिक रुप से वहन करते आ रहे हैं। स्थानीय ग्रन्थभण्डार (लोईब्रेरी) में भी आपका अतिशय सहयोग है। जैन श्वेताम्बर समाज में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आपके सुपुत्र श्री प्यारेलालजी उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। और युवक समाज में प्रिय हैं। श्री महावीर जैनपुस्तकालय के आप मन्त्री हैं। आपका परिवार भण्डारी गोत्रोत्पन्न है।

★ श्री विरदीचन्दजी अनराजजी मुणोत अमरावती

अपने मूल निवास रियां से आप लगभग ३५ वर्ष पूर्व यहां आए और प्रारम्भ में "मानमल गुलाबचन्दजी" के यहाँ कार्य किया। आपकी धार्मिक सच्चरित्रता पूर्ण कार्य प्रणाली से उक्त फर्म पूर्ण सन्तुष्ठ रही। सं० २००१ में अपनी फर्म स्थापित कर बर्तनों का, सैकिण्ड हैण्ड मशीनरी डीलर्स, स्टील ब्रोकर तथा कमीशन एजेण्ट का काम प्रारम्भ किया। आपकी कार्य प्रणाली स्वल्प समय में ही अच्छी उन्नति करली श्री विरदी चन्दजी के सुपुत्र श्री अनराजजी एक होनहार और धार्मिक प्रवृत्ति के युवक हैं। आप ही के मनोयोग पूर्वक कार्य प्रणाली से फर्म तरक्की पर है। कॉंग्रेस कार्यों में भी खूब भाग लेते हैं तथा ४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने भाग लिया था। राजस्थान हितकर मंडल के आप मन्त्री हैं और कॉंग्रेस सेवादल के सदस्य हैं। महावीर मंडल और ओसवाल युवक मंडल के आप प्रधान मन्त्री हैं।

मध्य प्रदेश

★ श्री सेठ सरदारमलजी नवलचन्दजी पुंगलिया—नागपुर

११५ वर्ष पूर्व बीकानेर से सेठ भैरोंदानजी नागपुर आए एवं व्यवसाय प्रवृत हुए। आपने व्यापार में अच्छी सफलता प्राप्त की। आपके ज्येष्ठ भ्राता सेठ कनीरामजी के लाभचन्दजी नामक पुत्र हुए। सं० १९७२ में लाभचन्दजी स्वर्गवासी हुए। आपके नेमीचन्दजी और सरदारमलजी नामक पुत्र हुए। श्री नेमीचन्दजी जवाहरमलजी के पुत्र छोगमलजी के दत्तक गये।

सेठ सरदारमलजी—आपका जन्म सं० १९५४ में हुआ। धार्मिक कार्यों की ओर आपका विशेष लक्ष्य था। नागपुर के स्थानक भवन बनवाने में आपने बहुत सहायता दी। स्थानीय मन्दिर के कलश चढ़ाने में पांच हजार रुपये दिये इस प्रकार से आपने धार्मिक कार्यों के लिये हजारों का दान दिया। नागपुर के जैन समाज में आप नामांकित गृहस्थ थे। आपके श्री नवलचन्दजी मिलनसार उदार एवं उत्साही सज्जन हैं। आपके यहां "सरदारमल नवलचन्द" के नाम से सोना चांदी, सराफा एवं कमीशन एजेण्ट का काम होता है।

★ मेसर्स प्रतापचन्द छोगमल धाड़ीवाल, नागपुर

बीकानेर निवासी सेठ प्रतापचन्दजी व्यापारार्थ अपने भाई के साथ नागपुर

आये एवं सं० १६०५ में उपरोक्त नाम से फर्म स्थापित कर व्यवसाय चालू किय वर्तमान में फर्म के मालिक सेठ करनीदानजी धाड़ीवाल के सुपुत्र श्री रतनलाल केशरीचन्दजी एवं सूरजमलजी हैं। आप तीनों सहोदर शिक्षित तथा समझद युवक हैं। श्री रतनलालजी स्थानीय जैन मन्दिरजी व दादावाड़ी के ट्रस्टी हैं नागपुर शेयर एण्ड स्टाक एक्सचेंज के मेम्बर तथा ना० चेम्बर ऑफ कामर्स खजांची हैं। इतवारी बाजार में आपकी फर्म लेन देन हुण्डी चिट्ठी का काम करती

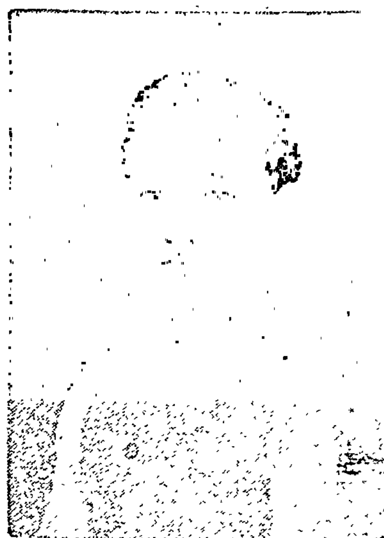
★ सेठ चुन्नीलालजी पारसप्रतापजी हाकिम कोठारी, नागपुर

आपके पूर्वज बीकानेर राज्य में हाकमी करतेथे। इसीलिए हाकिम कोठारी कहलाए हैं। सेठ गिरधारी लालजी के ३ पुत्र थे। चुन्नीलालजी, सायरमलजी तथ मेघराजजी। सेठ चुन्नीलालजी के२पुत्र हुए केशरीमलजी व पारस प्रतापजी। श्री पारस प्रतापजी का जन्म बीकानेर में वि० सं० १६६० में हुआ। आपने वि० सं० १६८२ में नागपुर के इतवारी बाजार में सोना चांदी ओली में सराफी की दुकान की। अपने बुद्धि ल से कारोबार में अच्छी उन्नति हुई। समाज में काफी प्रतिष्ठा है सार्वजनिक कार्यों में भी आपकी पूरी दिलचस्पी है। आपके लूनकरणजी नामक एकपुत्र और ६ पुत्रियां है।

★ सेठ मूलचन्दजी गोलेछा, जबलपुर

मन्दिर मार्गीय आम्नाय के अनुयायी स्वर्गीय प्रतापचन्दजी गोलेछा के



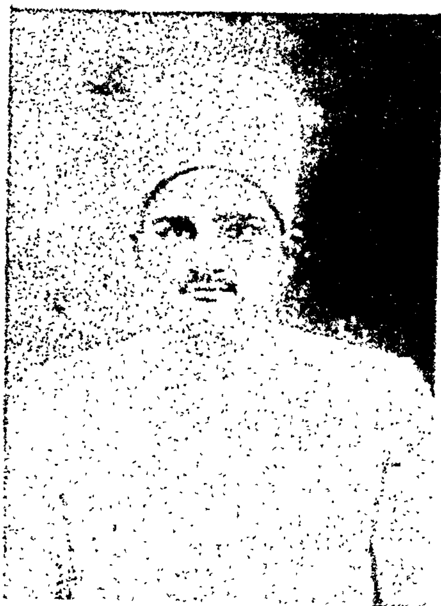


श्री जीवनचंदजी

मूलचन्दजी का जन्म सं० १९६४ में हुआ। प्रारम्भ से ही सार्वजनिक कार्यों की ओर आपकी विशेष अभिरुचि थी। अतः शीघ्र ही आप लोकप्रिय हो गये। जबलपुर के राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक इस प्रकार से प्रत्येक क्षेत्र में आप कार्य करते रहे सन् १९३९ में आपकी धर्मपत्नि सूरजकंवरबाई की पुण्य-स्मृति में 'जैन श्वेताम्बर विवाह पद्धति' अमूल्य भेंट स्वरूप प्रकाशित कर जैन समाज के एक अभाव की पूर्ति की। आपके सुपुत्र जीवनचन्दजी ने सन् १९४९ में बी० ए० की परीक्षा पास की। लिखने की ओर भी कुछ रुचि है, तथा तीन वर्ष से 'सदर बाजार असेचर ड्रामेटिक क्लब' के मंत्री पद पर हैं। श्री मूलचन्दजी गोलेछा—आप इस समय जबलपुर की कई संस्थाओं के उच्च पदाधिकारी हैं। जैसे सदर बाजार सेवा समिति तथा नवयुवक मंडल के सभापति, श्री शांति जैन पुस्तकालय एवं मारवाड़ी सेवा संघ के मंत्री। आप कन्टून्मेन्ट बोर्ड के मेम्बर भी निर्विरोध चुने जा चुके हैं। तथा इस वर्ष (१९५०) सदरबाजार रामलीला कमेटी के सभापति चुने गये हैं।

★सेठ रतनचन्दजी गोलेछा, जबलपुरः—

फलोदी निवासी सेठ धनराजजी गोलेछा के सुपुत्र रतनचन्दजी गोलेछा का जन्म सं० १९५९ में हुआ। आप ओसवाल जैन समाज में एक आगेवान सज्जन माने जाते हैं। समाज संगठन व सुधार कार्यों में तथा सार्वजनिक जनहित के कार्यों में आप सदा तन मन व धन से सक्रिय सहयोगी रहते हैं। अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन के आप उप सभापति रहे हैं एवं कुटुनमेण्ट बोर्ड जबलपुर के भी उप सभापति रहे हैं। वर्तमान में आप जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस स्टेंडिंग कम्पनी के मेम्बर एवं ए० पी० नर्मदा हाई स्कूल जबलपुर के चेयरमैन हैं। जबलपुर में आप एक प्रतिष्ठित श्रीमन्त गिने जाते हैं। 'सेठ रतनचंदजी



लालचंदजी गोलेछा, सदर बाजार जबलपुर' के नाम से आपकी फर्म पर सोना चांदी व सराफी बेंकिंग एजेन्सी का व्यवसाय विशाल पैमाने पर होता है।

★श्री सेठ मिश्रीलालजी बाफना-काटाः—

श्री छगनलाल बाफणा के सुपुत्र श्री मिश्रीलालजी बाफना ४५ वर्षीय सहानु-

भाव हैं। आप सफल व्यवसायी, शिक्षा प्रेमी एवं जातीय सेवक सज्जन हैं। स्थानीय समाज में एवं ओसवाल समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

श्री मिश्रीलालजी के प्रेमचन्दजी १७ वर्ष और केशरीमलजी १२ वर्ष नामक दो पुत्र हैं ज अभी अध्ययन कर रहे हैं।

आपके यहां-"श्री छगनलाल मिश्रीलाल" "श्री मिश्रीलाल प्रेमचन्द" एवं श्री मिश्रीलालजी बाफणा के नाम से फर्मे भिन्न २ व्यवसाय में यथा किराना, आढ़त, कमीशन एजेन्ट में प्रवृत्त हैं। पत्थर की खानों का भी आपने ठेका ले रक्खा है तथा बड़े रूप में आपके यहां खेती वाड़ी भी होती है।

☆सेठ ऋषभकुमार जी, बी. ए. खुरई

आप स्वर्गीय राय बहादुर श्रीमंत सेठ मोहनलालजी के दत्तक पुत्र हैं। जन्म ३० सेप्टेम्बर सन् १९२२ में हुआ आप ८० गांव के जमींदार तथा बेंकर और करोड़पति हैं। जैन समाज के एक मुख्य तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप "अखिल भारतीय दिगंबर जैन परवार सभा" के सभापति हैं। कई धर्मार्थ शिक्षा संस्थाओं जैसे पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल, खुरई को सफलतापूर्वक चला रहे हैं। समाज सुधारक हैं। कांग्रेस के कट्टर समर्थक हैं। आप सरकार के "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन में पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। इस अंतरगत १००० एकड़ का चक बना कर यांत्रिक कृषि फार्म बनाया है। जहाँ सारे कृषि कार्य यंत्रों से किये जाते हैं



★ सेठ सवाईसिंहजी भैयालालजी गुर—खुरई

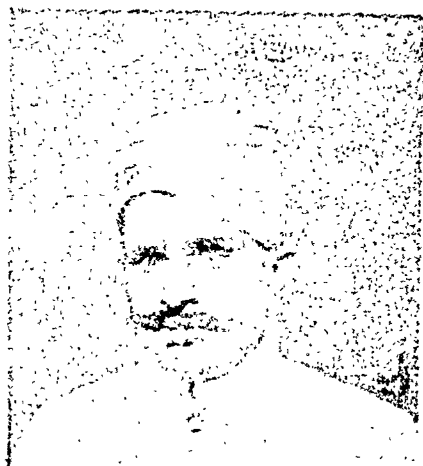
दिगम्बर जैन श्री सवाईसिंहजी गणपतलालजी भक्त एवं धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा वाले सज्जन हैं। आपके सुपुत्र भैयालालजी का जन्म सं० १९७२ जेष्ठ मास में हुआ। आप भी अपने पिताजी के तुल्य धार्मिक कार्यों में पूर्ण निष्ठा वाले सज्जन

है। १५० हजार रु० व्यय करके अति क्षेत्र में प्रतिष्ठा करवाई एवं गजरथ चलाया इसी प्रकार खुरई में २५ हजार व्यय करके प्रतिष्ठा तथा गजरथ चलाया इसके अतिरिक्त यहां एक प्राचीन मन्दिर के अन्तर्गत एक भव्य स्वर्ण निर्मित मंदिर का निर्माण करवाया। यहां आपका एक धर्मार्थ औषधालय भी है जिससे जनता लाभ उठा रही है। इसी प्रकार से आपने अनेक कार्य किए जिनसे आपकी दान वीरता का परिचय मिलता है। तीर्थ स्थानों के जीर्णोद्धार एवं तत्रस्थ प्रबन्ध विषयक और यात्रा में तो आप आदर्शरूप है।

वर्तमान में पाश्र्वनाथ जैन गुरुकुल और देवगढ़ दिगम्बर जैन क्षेत्र कारिणी के प्रेसीडेन्ट हैं। महिला आश्रम सागर एवं गणेशवर्णी दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय के सदस्य हैं। आपके जिनेन्द्रकुमार नामक चारवर्षीय एक बालक है। आपके पूज्य पिताजी सितावरा लक्ष्मीचन्द जैन हाई स्कूल के ट्रस्टी हैं। 'सिंघई कालूराम गणपतलाल' एवं गणपतलाल भैयालाल नामक आपकी फर्मे बामोरा और खुरई में है जहां बैंकिंग क्लोथ मर्चेन्ट, गल्ला और मालगुजारी का काम होता है।

★ सेठ हस्तीमलजी गोलेछा-छुईखदान

आपके पूर्वज श्री देवजी नामाङ्कित और प्रतिष्ठित पुरुष हुए हैं। आपको सोमेसर नामक ग्राम राज्य की ओर से पट्टे पर मिला, जो कि आज तक आपके वंशजों के पास है। इसी वंश में सेठ करनीदानजी के घर सं० १९५६ कार्तिक सुदि ८ को सेठ हस्तीमलजी का शुभ जन्म हुआ। आप अपने पितातुल्य धर्मनिष्ठ, दयालु और परोपकारी है। जातीय तथा सामाजिक कार्यों में अग्रेसर होकर कार्य करते हैं। स्थानीय "श्री देव अक्षय श्वेताम्बर स्थानकवासी सोसयटी" के मन्त्री हैं। निर्धनों एवं उत्पीड़ितों की सेवा में खूब भाग लेते हैं। अ. भा. जीवन दया सभा के कर्मठ सदस्य हैं। और इस दिशा में सक्रियता से काम करते हैं। आपके यहां "पुरखचन्द हस्तीमल" के नाम से गल्ला एवं कपड़े का व्यापार होता है। समाज में आप बड़े ही प्रतिष्ठित और सम्माननीय हैं।



★सेठ देवेन्द्रकुमारजी पाटनी, छिंदवाड़ा

मारोठ (मारवाड़) से सेठ कचोरीमलजी व आपके भ्राता सुखलालजी यहाँ आए और अपनी फर्म स्थापित कर व्यवसाय प्रारम्भ किया। श्री सुखलालजी ने व्यापार में खूब तरक्की की। आपको "राय साहब" की पदवी भी थी। स्थानीय सरकारी व गैर सरकारी क्षेत्रों में आपका बडामान था। आपके पुत्र राया साहब श्री सेठ लालचन्दजी ने काफी धन व प्रतिष्ठा प्राप्त की। छिन्दवाड़ा हाईस्कूल व व्हीमेन्स हॉस्पिटल जो लाखों की लागत से बने हैं के बनाने का भी बहुत कुछ श्रेय आपको है।

आपके सुपुत्र श्री देवेन्द्रकुमारजी का धार्मिक संस्थाओं धर्म कर्म व नियमित ईश्वर आराधना में पूर्ण विश्वास है। आपही के उदार सहयोग व प्रयत्न से एक विशाल जैनमन्दिर बना। तथा एक धर्मशाला और पाठशाला बनाने का भी पूरा उपक्रम तैयार है। आपकी धर्म पत्नि श्रीमती सलखू देवी भी सार्वजनिक कार्यों में काफी दिलचस्पी लेती है। आप स्थानीय गर्ल्स हाईस्कूल कमेटी की प्रेसीडेन्ट एवं सुधारक विचारों की जाग्रत महिला है। आपके श्री शान्ति कुमार और महेन्द्रकुमार नामक दो पुत्र हैं। म्युनिसिपल अध्यक्ष होने का दो बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। "रायसहाब सेठ कचौरीमल सुखलाल पाटनी" के नाम से व्यवसाय होता है।

★सेठ परतापमलजी गनेशमलजी, छिन्दवाड़ा

इस फर्म के मालिकों का मूल निवास स्थान लूणवां (मारवाड़) है। लगभग १०० वर्ष पूर्व सेठ परतापमलजी व्यापारार्थ इधर आए एवं फर्म स्थापित की आपके पश्चात् आपके पुत्र गनेशलालजी ने फर्म का कार्य भारसंभाला एवं उन्नति की। वर्तमान में फर्म के मालिक सेठ गनेशलालजी के दत्तक पुत्र गुलाबचन्दजी बाकलीवाल है। आपके ५ पुत्र हैं। आप व्यवसाय दक्ष एवं जन सेवी सज्जन हैं। आप लोकल बोर्ड के प्रेसी डेंट, डिस्ट्रीक्स कौंसिलके वाइस प्रेसीडेंट, म्युनिस्पल मेम्बर आदि भी कई वर्षों तक रह चुके हैं। असहयोग आंदोलन के समय में भी आपने कांग्रेस में रहकर अच्छी जन सेवा की व खादी का बहुत ही प्रचार किया। कई वर्षों से आप श्री ना. प्रां. दि. जैन खंडेलवाल सभा के मंत्री है।

छिन्दवाड़ा में आपकी फर्म पर सोना, चांदी, कपड़ा का व्यापार होता है।

★ सेठ गुलाबचन्दजी वैद मेहता छिंदवाड़ा

वैद मेहता जीवनमलजी तथा सुपुत्र बहादुरमलजी नागौर से व्यापार के लिए छिंदवाड़ा आए। सेठ जीवनमलजी के ४ पुत्र हुए। बहादुरमलजी समीरमलजी



ठाकुरमलजी एवं जेठमलजी। सेठ बहादुरमलजी के ७ पुत्र हुए। इन में बुधमलजी ने कपड़े व सराफी के व्यापार में अच्छी उन्नति की। बुधमलजी के छोटे भाई गुलाबचन्दजी ग्रेज्युएट हैं। आपकी साहित्य सेवा तथा जाति सेवा में विशेष रुचि है। आप कपड़े का स्वतन्त्र व्यापार करते हुए भी साहित्य सेवा तथा जाति सेवा के लिए भी समय निकाल ही लेते हैं। नागपुर कवि सम्मेलन से आप पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं। वैसे भी आप लेख तथा पुस्तकें लिखते रहते हैं। सी० पी० बरार की ओसवाल सभा स्थापित करने में आपने प्रमुख भाग लिया तथा मारवाड़ी सेवा संघ के सभापति भी रह चुके हैं। आप इन्कमटैक्स एक्सपर्ट व सेल्स टैक्स सलाहकार भी हैं। इन विषयों में आप अति निपुण और मध्य प्रदेश में ख्याति प्राप्त व्यक्ति हैं। धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन आप ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं। ५८ वर्ष की आयु में भी आप उत्साह पूर्वक सामाजिक कार्यों में सहयोग देकर हाथ बटाते और नवयुवकों को उत्साहित करते रहते हैं। आपके इस समय चार पुत्र हैं उन में से ज्येष्ठ पुत्र शिखरचन्दजी बहुत गम्भीर और तर्कवाद में बहुत कुशल हैं।

☆ सेठ प्यारेलालजी मुणोत रियांवाले-दमोह

अजमेर के राय सेठ चांदमलजी मुणोत एक लब्ध प्रतिष्ठित सज्जन हो चुके हैं। आपके सुपत्र श्री प्यारेलालजी का जन्म सं० १९५१ माघ सुदी १ में हुआ। आप धर्मप्रिय, उदारमना एवं शान्त प्रकृति के सज्जन हैं। समय २ पर धार्मिक कार्यों में शिक्षा के लिए आर्थिक योग देकर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। आपके दो पत्रियां हैं। श्री चांदमल प्यारेलाल नामक आपकी फर्म पर माल गुजारी एवं कृषि का कार्य होता है।

☆ सेठ चैनकरणजी गोलेछा-चांदा

आप मिलनसार, सद्व्यवहारी एवं कर्तव्यशील सज्जन हैं। व्यापारिक कार्यों में अच्छी सफलता प्राप्त की। धार्मिक कार्यों में भी पूर्ण उत्साह के साथ भाग लेते रहते हैं। "जैन श्वेताम्बर मण्डल" तीर्थ भद्रावती के आप सभापति हैं। आपके

बड़े पुत्र श्री राजकरणजी बी० कॉम हैं और महत्वपूर्ण पद पर कार्य कर रहे हैं। लघु पुत्र श्री नरेन्द्रकुमारजी भी सद्गुणी युवक हैं। "अमरचन्द अगरचन्द" नाम से गल्ला, कपास आदि का थोक व्यापार तथा आढ़त का काम होता है।

★सेठ गेंदमलजी देश लहरा, गुंडरदेही:—

जन्म सं० १९५९ आषाढ़ सुदी ९। पिता श्री हंसराजजी। अध्ययन काल से ही राष्ट्रीय भावनायें आपके हृदय में थीं। अतः व्यवसायिक जीवन के साथ राष्ट्रीय कार्यों में भी पूर्ण मनोयोग से हिस्सा लेने लगे, सन् ३० के आन्दोलन में आपको कठोर कारावास एवं ५०) जुर्माना हुआ। लेखनी एवं, वक्तृत्व कला एवं रचनात्मक कार्यों से देश सेवा में संलग्न रहते हैं। ग्रामोद्योग प्रचार, मादक पदार्थ निषेध बलिदान प्रथा बंद करवाने इत्यादि कार्यों में आप सर्वदा अग्रणी रहते हैं। ओसवाल महासम्मेलन के डेपुटेशन में सम्मिलित होकर सी. पी. बरार खानदेश, निजाम हैदराबाद आदि स्थानों का दौरा किया। सामाजिक कार्यों के लिए संलग्नता पूर्वक कार्य किया। देव आनन्द शिक्षा संघ राजनांदगांव के कार्यों में सहयोग एवं प्रचारादिक कर के



शिक्षा प्रचार का कार्य किया। इस प्रकार से देशलहराजी का सामाजिक एवं राजनैतिक कार्य सर्वदा प्रगति शील ही रहा। आपके पुत्र श्री पुखराजजी हैं और मदनबाई और ताराबाई नामक दो कन्यायें हैं।

खादी भण्डार व सब प्रकार के स्वदेशी कपड़ों के आप व्यवसाय करते हैं।

★सेठ मंगलचंदजी सिंघवी-नरसिंह पुरा (सी० पी०)

सिंघवी गोत्रोत्पन्न श्री सेठ दयाचन्दजी के सुपुत्र श्री मंगलचन्दजी राष्ट्रीय विचारों के जन सेवक। गोटे गाव की म्युनिसिपल कमेटी के चेयरमेन पद पर रह कर आपने आदर्श जन सेवा की। वर्तमान में नगर कांग्रेस कमेटी के मंत्री एवं "जनपंथ सभा के" मेम्बर हैं। आप ५० वर्षीय हैं फिर भी सार्वजनिक कार्यों में नवयुवकों का सा उत्साह रखते हैं। आपके पूज्य पिता श्री भी गोटे गांव के प्रमुख कांग्रेस कार्य कर्त्ताओं में से हैं और कई बार जेल यात्रा भी कर आये हैं।

सेठ मंगलचन्दजी के भीकमचन्दजी सवाईचन्दजी, कोमलचंदजी रतनचन्दजी और नीलमचन्दजी नामक पांच पुत्र हैं। जिनकी आयु कमश ३५, ३२, २६, १८ एवं १४ वर्ष की है। "मंगलचन्दजी भीखमचंदजी" के नाम गोटे गांव में गल्ले का व्यापार, भीखमचन्द सवाईचंद के नाम करक बेल में गल्ले का और कोमलचंद भूपेन्द्रसिंह के नाम से सर्राफी साहूकारी का काम होता है गोटे गांव में सीनेमा हाऊस का निर्माण हो रहा है जो कि सिंघवी टाकीज से प्रचालित होगा। श्री भीकमचंदजी, सवाईचंदजी, कोमलचंदजी, आप तीनों बन्धु मिनलसार, सद्‌गुणी और योग्य कार्य कर्त्ता हैं।

★ सेठ सवाई सिंगई नाथुरामजी जैन-नरसिंहपुरा (सी० पी०)

फागुल्ल गोत्रोत्पन्न दिगम्बर जैन सज्जन श्री सवाई सिंगई घासीरामजी जैन के सुपुत्र सवाई सिंगई नाथुरामजी का जन्म सं० १४४ माघ सुदि ८ का है। आप सफल व्यवसायी जाति सेवक तथा उदार हृदय महानुभाव हैं। स्थानीय जैन प्रचार सभा को आपका सक्रिय सहयोग रहता है। सवाई सिंगई गोकुलचंदजी और सवाई सिंगई मिश्रीलालजी नामक आपके दो पुत्र हैं जो बड़े ही योग्य युवक हैं। "सवाई सिंगई घासीरामजी नाथुरामजी जैन" के नाम से आपकी फर्म पर माल गुजारी, काश्तकारी, कपड़ा एवं साहूकारी का काम होता है। स्थानीय जैन समाज में आपका परिवार बड़ा प्रतिष्ठ एवं सम्मानित्त हैं।

★ सेठ लालचंदजी चोपड़ा सहसपुर (द्रुग)

लोहावट (जोधपुर) निवासी सेठ सुकालचन्दजी व्यापार हेतु छत्तीस गढ़ (मध्यप्रान्त) में आकर व्यवसाय चालू किया आपके पौत्र श्री सेठ नवलचन्दजी के पुत्र लालचन्दजी एक सफल व्यवसायी एवं धार्मिक सज्जन हैं। समय २ पर आप धर्म सम्बन्धी एवं शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में उत्साह से भाग लेते हैं। कांग्रेसी विचारों के राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं एवं अर्से से ग्राम पंचायत के प्रमुख हैं। "अधिक अन्न उपजाओ" कार्य में विशेष ध्यान देकर स्वयं कास्तकारी करवाते हैं।

आपकी फर्म पर कास्तकारी (१२५ एकड़) एवं गल्ला, आढ़त का काम होता है-आपके काका श्री रेखचन्दजी एक धर्मनिष्ठ मिलनसार सज्जन हैं।



श्री रेखचंदजी

★सेठ किस्तूरचंदजी, करेली

कोठल गोत्रोत्पन्न श्री गुलावचंदजी के सुपुत्र श्री किस्तूरचंदजी का जन्म सं० १९५६ में हुआ। आप चतुर व्यवसायी सफल कार्यकर्त्ता एवं उदार दिल सज्जन है धार्मिक कार्यों में आप उदारता पूर्वक सहायता देते हैं। आपके सुरेशचंद्रजी, लखीचंदजी पुत्र है। श्री गुलाबचंद्र किस्तूरचंद्र के नाम से आपके यहाँ कपड़े का व्यवसाय होता है।

★सेठ धनराजजी कांकरिया, करेली

आपके पूज्य पिताजी का नाम सेठ लक्ष्मीचन्दजी है। श्री धनराजजी ५६ वर्षीय महानुभाव है। आप निस्पृह उदार हृदय औरस्वाध्याय प्रिय व्यक्ति है। आपके सुपुत्र श्री देवीचन्दजी २९ वर्षीय युवक हैं जो कि बड़े ही चतुर, कर्मशील और सूझ बूझ वाले युवक हैं। वर्तमान में "मेसर्स देवीचन्जी कांकरिया" नामक फर्म के आप ही संचालक हैं। यह फर्म गल्ले का बड़े पैमाने पर व्यापार करती है।

श्री देवीचन्दजी ने अल्पवय में ही व्यवसायिक कार्यों में अच्छा ज्ञान एवं सफलता प्राप्त करली। आपका उत्साह प्रशंसनीय है। चिरंजीव "नामक ३ वर्षीय एक बालक है जो होन हार है।

सेठ फूलचंद्रजी कांकारिया करेली (जि होंशगाबाद)



श्री धर्मेन्द्रकुमारजी

सं. १९६० कार्तिक सुदि १ को श्री सेठ गुलावचन्दजी कांकरिया के यहा आप का शुभ जन्म हुआ। आप राष्ट्रीय विचारों के सेवाभावी और शिक्षा प्रेमी सज्जन हैं। सन् १९३६ से ४२ तक जिला कॉंग्रेस कमेटी नरसिंह पुरा के मन्त्री पद पर रहकर आपने कॉंग्रेस की सेवा की। कोशल प्रान्तीय कॉंग्रेस के भी सदस्य रहे हैं।

आपके ज्येष्ठ पुत्र धर्मेन्द्रकुमारजी की आयु २१ वर्ष की है आपने हिन्दू यूनिवर्सीटी से बी एस. सी. किया एवं मैट्रिक से बी. एस. सी. तक फर्स्ट रहे और स्कालरशिप प्राप्त कर रहे हैं। इनसे छोटे हेमेन्द्रकुमारजी है जो कि १४ वर्षीयहैं।

"श्री फूलचन्द्र धर्मचन्द्र कांकरिया" नामक फर्म पर गल्ला, किराना, और ३। एवं कोयले का ठेका आदि व्यावसाय होता है।

★ सेठ भोजराजजी लूणावत, गाडर वाडा

श्री कुन्दनमलजी के पुत्र श्री भोजराजजी की आयु ५२ वर्ष की है। समाजिक तथा धार्मिक कार्यों में आप बड़े उत्साह से भाग लेते रहते हैं। आपके सुखलालजी उम्र १७ वर्ष शान्तिलालजी १५ वर्ष, नेमीचन्दजी ६ वर्ष एवं अशोककुमारजी २ वर्ष नामक चार पुत्र हैं। स्थानीय जैन समाज के विशिष्ट व्यक्तियों में आपकी गणना है। "रामलाल पूनमचन्द" नामक आपकी फर्म पर गल्ला एवं किराने का व्यापार होता है।



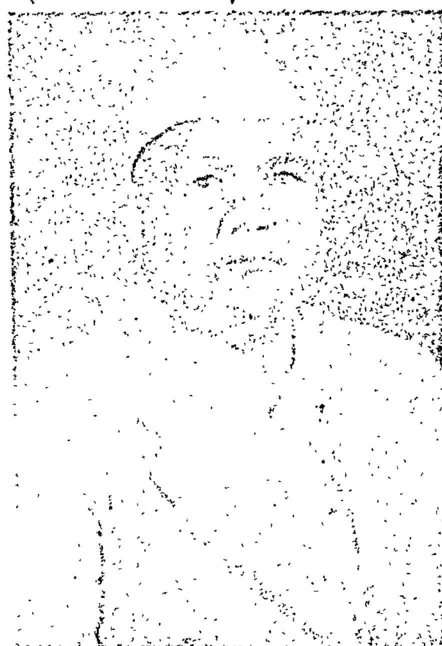
★ सेठ धनराजजी कोठारी दारहवा

आपका जन्म संवत् १६४५ आषाढ़ कृष्णा ८ का है। आप एक वयोवृद्ध समाज हितैषी, धर्म निष्ठ उदार चरित्र सज्जन हैं।

स्थानीय जैनसमाज में बड़ी प्रतिष्ठा है।

सेठ चिरञ्जीलालजी बड़जात्या, वर्धा

युवकों सी कर्मठता और जोश रखने वाले जैनसमाज के अनोखे कार्य कर्त्ता जैनसमाज में एकयता स्थापित करने में सतत् प्रयत्न शील। भारत जैन महा मंडल के प्राण। उत्साही कार्य कर्ता होने के साथ साथ परम उदार हैं। संस्थाओं व सार्वजनिक कार्यों में तन मन धन त्रिविध सहायक रहते हैं।



★सेठ डालचंदजी बमहोरा गोटेगाँव (सी. पी.)

दिगम्बर समाज के बमहरा गोत्रवाले सेठ दरबारीलालजी के सुपुत्र श्री डाल चन्दजी ६८ वर्षीय वयोवृद्ध महानुभाव हैं। हिन्दी साहित्य से आपको बड़ा प्रेम है एवं साहित्यक कार्यों में समय २ पर आर्थिक योग देकर सफल बनाते हैं। स्थानीय हिन्दी साहित्य समिति के पदाधिकारी हैं। आपके फूलचन्दजी, ज्ञानचन्दजी, भागचन्दजी एवं नेमीचन्दजी नामक चार पुत्र हैं जिनकी आयु क्रमशः ४०, ३०, २६, एवं २२ वर्ष की है। आप चारों बन्धु बड़े उत्साही, मिलनसार और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने वाले हैं। स्थानीय जैनसमाज में आपका परिवार मान्य है। मेसर्स "दरबारीलाल डालचन्द" के नामक आपकी फर्म पर किराना एवं गल्ले का व्यवसाय होता है।

★सेठ चौधरी रतनचंदजी जैन गोटेगाँव (सी. पी.)

गोटे गाँव निवासी वात्सल्य गोत्रोत्पन्न श्री मूलचन्दजी जैन के सुपुत्र श्री रतनचन्दजी जैन का शुभ जन्म सं १६७२ आश्विन वदी १ का है। आपकी बचपन से ही अध्यतम की ओर विशेष अभिरुचि है। इस विषयक आपका स्वाध्याय खूब है। "अध्यात्म विद्या विशारद" नामक परीक्षा भी उत्तीर्ण हैं। संगीत की ओर भी आप की पूर्ण अभिरुचि हैं। शास्त्रीय संगीत आपको अतिशय पसन्द है।

श्री रतनचन्दजी के चिमनलालजी रमेशचन्दजी एवं नरेशचन्द्रजी नामक तीन पुत्र हैं जिनकी आयु क्रमशः १३, १०, एवं ४ वर्ष की है। स्थानीय जैनसमाज में इस परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है। "श्री मूलचन्द रतनचन्दजैन" नामक फर्म पर वस्त्र एवं बीड़ी के पत्ते का व्यापार होता है।

★सेठ दुलीचंदजी बजाज, दमोह

जन्म सं० १६३८ चैत्र वदी १३। पिताजी लोकमनजी बजाज। दिगम्बर जैन। श्री दुलीचन्दजी चतुर व्यवसायी एवं धर्म सम्बन्धी कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेने वाले वयोवृद्ध सज्जन है। साधु सन्तो एवं मुनिवरों की सेवा में खूब भाग लेते हैं आपके पुत्र श्रीं रूपचन्दजी (आयु ३६ वर्ष) वर्तमान में फर्म का संचालन करते हैं। आप मिलनसार सरल चित्त और उदार महानुभाव हैं। श्री रूपचन्दजी के चन्द्रकुमारी १० वर्ष, सुदर्शन कुमार ६ वर्ष, एवं नवकुमार ३ वर्ष नाम तीन पुत्र हैं। मेसर्स "दुलीचन्द रूपचन्द" नाम से गल्ला आढ़त लेनदेन एवं माल गुजारी का काम होता है। एक आटे की चक्की भी है।

★सेठ गुलाबचंदजी गोयल-दमोह

जन्म सं० १६६६ कार्तिक सुदी ८। पिताजी का नाम सेठ डालचन्दजी। श्री सेठ गुलाबचन्दजी मिलन सार व्यवसाय कुशल एवं जन सेवक सज्जन है।

आपके परिवार को वंश परम्परा से सेठ पदवी प्राप्त है। स्थानीय म्युनिसिपल के प्रेसिडेन्ट एवं जैन सभा के खजान्ची हैं। बड़े पुत्र श्री धर्मचन्दजी १६ वर्ष के एवं सम्पत कुमारजी ७ वर्ष के हैं। दोनों भाई अभी अध्ययन कर रहे हैं। "सेठ डालचन्द गुलाबचन्द" नामक आपकी फर्म पर माल गुजारी साहूकारी एवं आढ़त इत्यादि का काम होता है। दमोह में फर्म की अच्छी प्रतिष्ठा है यहाँ पर आपकी काश्तकारी भी होती है।

★ सेठ हमीरमलजी लूणावत करेली गंज (सी. पी.)

आप ६१ वर्षीय वयोवृद्ध महानुभाव हैं। आप सफल व्यवसायी धर्मानुरागी और सहृदय सज्जन हैं। आपके पूज्य पिता सेठ हजारीमलजी आदर्श धार्मिक थे। श्री हमीरमलजी के घेवरचन्दजी, रूपचन्दजी, स्वरुपचन्दजी, एवं लिखमीचन्द जी नामक चार पुत्र हैं इनमें जेष्ठ पुत्र के केवलचन्द और प्रमोद कुमार नामक दो पुत्र हैं। रुपचन्दजी के विजयकुमार, स्वरुपचन्दजी के पारसचन्द्र और लिखमी चद्रजी के शरत चन्द्र नामक पुत्र है। आपका परिवार श्वेताम्बर आम्नाय का उपासक है। स्थानीय जैन समाज में यह परिवार बड़ा प्रतिष्ठित एवं सन्मान्य है।

"हजारीमल हमीरमल" नामक फर्म पर गल्ले का और स्वरुपचन्द सूरज मल फर्म पर सोना चांदी और सर्राफी का काम होता है। स्थानीय फर्मों में इस फर्म की बड़ी प्रतिष्ठा है।

★ सेठ शिखरचंद्रजी जैन, इटारसी

इटारसी निवासी सेठ मन्नूमलजी के सुपत्र श्री शिखरचन्दजी का जन्म १ अगस्त १६२८ का है। आप उत्साही मिलनसार और सभा संस्थाओं में सहयोग देने वाले युवक है। विचारों में प्रगति शीलता एवं उदार दृष्टि कोण है। हिन्दी साहित्य और जैन जाति के साहित्य वर्धन कार्यों में आपका बड़ा योग रहता है। व श्री राजकुमारजी नामक आपके एक पुत्र हैं।

"बालचन्द मन्नूलाल जैन" नामक आपकी फर्म पर किराना गल्ला एवं टिम्बर मर्चेंट का काम होता है।

पंजाबप्रांत

★ सेठ आनन्दराजजी सुराणा, देहली

आपने राजस्थान जागृति के लिए अतिशय यातनायें सहीं और कई बार जेल की यात्रायें भी की। सन् १६४२ के देश व्यापी आन्दोलन में भी आप नजर बन्द

रहे, अन्य समय भी राष्ट्रीय कार्यों में आपका प्रधान सहयोग रहा है। स्थानक वासी समाज के आप प्रधान नेताओं में से है। सम्प्रदाय में ऐसा कोई उल्लेखनीय संस्था नहीं होगी कि जिससे आपका सम्पर्क न हो। ओसवाल समाज के विशिष्ठ महानुभावों में आपका स्थान अपना विशेष महत्व रखता है। दिल्ली के प्रमुख राष्ट्रीय कार्य कर्त्ताओं व जन नेताओं में आपका प्रधान स्थान है।



वर्तमान में आप "इंडो यूरोपा ट्रेडिंग कम्पनी के नाम से ६२२ चांदनी" चौक दिल्ली में प्रेस मशीनरी का व्यापार करते हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि भारत के प्रायः सभी बड़े शहरों में आप के आफिसेज हैं। लन्दन में भी आपका आफिस है।

★ लाला रघुवीरसिंहजी गर्ग जैन, दिल्ली

लाला बलदेवसिंहजी के घर सन् १८६५ में आपका शुभ जन्म हुआ। शिक्षा और साहित्य प्रचार के कार्यों में आपकी विशेष अभिरुचि है। आपने जनता में अहिंसा और धर्म के प्रचार हेतु कई ट्रेक्ट अपनी ओर से छपवा कर अमूल्य वितरण करवाये हैं और कराते रहते हैं।

सन् १८१६ में "इम्पीरियल इलेक्ट्रिक सार्ट" के नाम से विद्युत वस्तु का सूत्र पात किया जिसमें महती सफलता प्राप्त की। सन् १८२५ में "जैनावॉच कम्पनी के नाम से घड़ियों का थोक व्यापार प्रारम्भ किया। दिल्ली में घड़ियों के आप ही सबसे प्रमुख व्यापारी हैं।

अ० भा० दिगम्बर जैन महा सभा के आप प्रमुख कार्य कर्ता और सहायक हैं। दिल्ली शाहदरा में 'रघुवीरसिंह जैन धर्मार्थ औषधालय' आपकी ओर से जनता की ७ वर्ष से अच्छी सेवा कर रहा है। श्री प्रेमचन्द्रजी, कैलाशचन्द्रजी और शान्तिस्वरूपजी नामक आपके तीन पुत्र हैं। श्री प्रेमचन्द्रजी दि. जैन लाल मन्दिर के मैनेजर हैं। आप २८ वर्षीय हैं श्री कैलाशचन्द्रजी आप २६ वर्षीय उत्साही युवक हैं सन् १८४८ में आपने विलायत की यात्रा की और व्यवसाय के निमित्त फिर जाने वाले हैं। श्री शान्तिस्वरूपजी २२ वर्षीय हैं आप दुकान पर ही व्यवसाय की देखभाल करते हैं आप तीनों बन्धु उदार चित्त, सुविचारवान युवक हैं।

☆ लाला गोपीचंदजी किशोरीलालजी जैन "सर्राफ"—अम्बाला



लाला गोपीचंदजी



लाला किशोरीलालजी



रतनचंदजी जैन



नगेन्द्रकुमारजी

लाला गोपीचंदजी—का जन्म सं० १६२२ का है। राज दरबार में आपने अच्छा सम्मान पाया। सं० १६६३ में आप स्वर्ग वासी हुए। आपके सुपुत्र श्री किशोरीलालजी का जन्म सं० १६५४ का है। आप शिक्षा प्रेमी तथा जाति सेवक महानुभाव हैं। जैन कन्या पाठशाला अम्बाला शहर के मैनेजर, जैन हाई स्कूल की मैनेजिंग कमेटी के मेम्बर एवं श्वेताम्बर जैन संघ (पंचायत) के मंत्री भी रह चुके हैं। अभी आप सरकार की ओर से असेसर हैं। आपके रतनचंदजी तथा जगीन्द्रकुमार नामक दो पुत्र हैं। श्री रतनचंदजी उत्साही तथा धर्म प्रेमी युवक हैं तथा जैन युवक मंडल में विशेष भाग लेते हैं। आपही "गोपीचंद किशोरीलाल जैन सर्राफ" नामक फर्म का सुचारु रूप से चल रहा है। आपके सतीशकुमार (धर्मवीर) नामक पुत्र हैं। श्री जगीन्द्रकुमारजी अभी विद्याध्ययन कर रहे हैं।

सेठ लाल दिलारामजी ज्ञानचन्दजी चौधरी, मलेर कोटला

दिलारामजी की आयु ६५ वर्ष की है आप धर्मानुरागी एवं दयालु सज्जन हैं। आपके रोशनलालजी और ज्ञानचन्दजी नामक दो पुत्र हैं। श्री रोशनलालजी ४५ वर्ष के हैं, सत्य प्रकाश नामक पुत्र हैं। श्री रोशनलालजी धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में अग्रेसर होकर भाग लेते रहते हैं।


श्री ज्ञानचन्दजी मलेरकोटला

श्री ज्ञानचन्दजी धर्मात्मिक एवं शिक्षा प्रेमी हैं। श्री पूज्य विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म. सा. के उपदेशों का आप पर बहुत असर पड़ा। मन्दिर के जीर्णोद्धार में आपने बड़ा परिश्रम किया। आत्मानंद जैन हाईस्कूल के सेकेट्री पद पर रहकर आपने स्कूल की बड़ी सेवा की। आप लोग अग्रवाल जैन श्वेताम्बर आम्नाय के उपासक हैं। आपकी फर्म पर लोहे का व्यवसाय वृहद् रूप से होता है।

★पूज्य श्री मंगल ऋषि जी महाराज,-लुधियाना

आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित एवं सफल चिकित्सक श्री पूज्य महताब ऋषिजी ने अपने अगाध ज्ञान से मालेर कोटला एवं लुधियाना में आदर्श जन सेवा से अतुल सम्पत्ति उपार्जित कर मालेर कोटला में नेमीनाथ भगवान का मन्दिर अपने कर कमलों से बनाया एवं लुधियान में आपने आराधना के लिए मन्दिर बनवाया और जन हित के लिए जैन धर्म शाला बनवाई जो "पूज्यों की सराय" के नाम से प्रसिद्ध है।



आपके सुशिष्य पूज्य मोहन ऋषिजी तथा महेन्द्र ऋषिजी आयुर्वेद के अच्छे विद्वान हैं। आपके सतत प्रयत्न से लुधियाना तथा मालेर कोटला में धर्मार्थ औषधालय खोले गए हैं। महाराजा फरीद कोट ने 'सालम' नामक ग्राम आपको भेंट किया इसी प्रकार मालेर कोटला के नवाब ने भी ४०० बीघा भूमि भेंट की।

वर्तमान में श्री मंगल ऋषि जी महाराज हैं। आपका जन्म सं० १९५४ का है आप भी आयुर्वेद के मर्मज्ञ विद्वान हैं और अपनी सफल चिकित्सा के द्वारा जन सेवा कर रहे हैं। आपका औषधालय आधुनिक उप करणों से सुसज्जित है। ऋषि रसायन और "संग्रहणी रिपु" पेटेण्ट औषधियें हैं जो समग्रभारत में बिकती है।

★सेठ रोशनलालजी कोचर, अमृतसर

जंम सं० १९५१। आप चतुर व्यवसायी और दयालु सज्जन हैं। आपने "कोचर टैक्स टायल वुलन मिल्स" स्थापित किया। जिसमें गर्म शाल दुशाले एवं सिल्क का कपड़ा तैयार होता है। धार्मिक कार्यों में आप अग्रेसर होकर काम करते हैं। स्थानीय दादावाड़ी के सपूर्ण व्यय में से आधा व्यय आपने अपनी ओर से प्रदान किया। नन्दलालजी अभयकुमारजी जैकुमारजी राजेंद्र-कुमारजी तथा धनपत कुमारजी नामक पाँच पुत्र हैं। अनंतलालजी के जेगिंद्रलालजी नामक पुत्र हैं। श्रीअनंतलाल मिलनसार और उत्साही युवक हैं। शिवचंद रोशन-लाल, नामक फर्म से आपका व्यवसाय होता है। शाखा कलकत्ते में ए. अभय-कुमार नं० १७ पगियापट्टी में भी है। जहां गर्म शाल दुशाले का थोक बंध व्यापार होता है।

★श्री सेठ बृजलालजी कोचर-अमृतसर

श्री सेठ बृजलालजी धीर, वीर एवं वृद्ध अध्ययसायी सज्जन हैं अपने सद्परिश्रम से अल्पसमय में ही अच्छी उन्नति करली। तपगछ में आपने १००१) रु० प्रदान किए और बीकानेर दादाबाड़ी में भी आपका सहयोग रहता है। आपके मेघराज जी और विजयकुमारजी नामक दो पुत्र हैं जिनका जन्म क्रमशः सं० १९९२ एव २००५ का है।



आपकी फर्म 'श्री शिवचन्द कोचर' आलू वाल कटरा एवं ब्रांच "शिवचन्द बृजलाल एण्ड को" के नाम से हैं। ब्रान्च पर स्वदेशी माल थोक बन्द मिलता है। फर्म पर कमीशन एजेण्ट का काम भी होता है।



★सेठ दुलीचंदजी मित्तल-भिवानी

मित्तल (अग्रवाल) गोत्रोत्पन्न श्री लाला बद्रीप्रसादजी के पुत्र दुलीचंदजी का जन्म सं० १९८० का है। आप उत्साही मिलनसार एवं सार्वजनिक कार्यक्रमों में भाग लेने वाले सज्जन हैं। स्थानीय श्वे० तेरापंथी सभा के कोषाध्यक्ष हैं। व्यापारिक कार्यों में भी आप बड़ी योग्यता से अपने पूज्य पिताजी को सहयोग देते हैं। आपके रोशनलालजी नामक पुत्र एवं सत्यवती नामक कन्या है जिनकी आयु क्रमश ४ एवं २ वर्ष की है। आपकी फर्म "परशराम दुलीचंद" हालां बाजार भिवानी, परशराम जुगलकिशोर 'बम्बई' एवं देहली में संगत

प्रात दुलीचंद हैं। इन सब फर्मों पर क्लोथ मर्चेंण्ट एवं कमीशन एजेंट का काम होता है। स्थानीय गौशाला के आप प्रबंधक हैं।

★लाला त्रिलोकचंदजी बंसल, कालका (अम्बाला)

श्री लाला त्रिलोकचंदजी राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता शिक्षा प्रेमी एवं सरलचित्त महानुभाव हैं। १६ वर्ष तक कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान रह चुके हैं और कई बार



स्व० सेठ चमेलामलजी



लाला त्रिलोकचंदजी

जलयात्रा भी कर चुके हैं। अपने विशाल भवन में से एक हिस्से का दो मंजिल मकान एस. एस. जैन सभा को समर्पित किया। धार्मिक कार्यों में भी आप अग्रेसर होकर कार्य करते हैं। स्थानीय समाज में आपके परिवार की बड़ी प्रतिष्ठा है—वर्तमान में आपके यहां "बांरूमल चमेलामल" के नाम से आढ़त और जनरल मर्चेंटस् का कार्य होता है। मोटरट्रांसपोर्ट नामक कम्पनी का सञ्चालन आप ही करते हैं।

★लाला आत्मारामजी जैन छाजेड़, थानेश्वर (कुरुक्षेत्र)

श्री सेठ आत्मारामजी का जन्म सं० १९५८ का है। आत्मारामजी कुशल व्यवसायी, मिलनसार और उदार दिल सज्जन हैं। आपके पवनकुमारजी, नेमकुमारजी मदनकुमारजी नामक ४ पुत्र हैं। श्री सेठ छज्जूरामजी के द्वितीय पुत्र मेलारामजी का जन्म सं० १९५८ का है। आप राष्ट्रीय विचारों के जन सेवा

भावी पुरुष हैं। हरियाणा प्रांत में आप ख्याति प्राप्त हैं। स्थानीय नगर पालिका एवं अन्यान्य जन सेवा के कार्यों में आप सोत्साह भाग लेते रहते हैं आपके श्री सत्यपालजी, श्रीयशपालजी एवं श्री सुरेन्द्रपालजी नामक चार पुत्र हैं। श्री मेलारामजी से छोटे भाई श्री बसन्तीलालजी का जन्म सं० १९६० का है आपके श्री ज्ञानचन्दजी नामक एक पुत्र हैं। आप तीनों बन्धु सरल स्वभावी सज्जन हैं। सुभाषमंडी में आपकी 'आत्माराम रामगोपाल' के नाम से दुकान है। आढत तथा बजाजी का काम होता है। फर्म "छज्जूराम मेलामल" के नाम से प्रसिद्ध है।

सेठ बलवंतसिंहजी बंसल, हाँसी (हिसार)



कु० बृजभूषणलालजी

हांसी निवासी बन्सल गोत्रोत्पन्न दिगम्बर जैन श्री सेठ नानकचंदजी और इनके पुत्र मामराजमलजी एक ख्याति प्राप्त व्यवसायी हो चुके हैं। इन ही वंशज श्रीबलवन्तसिंह जी अपने पूर्वजों के अनुरुप धर्मबीर और कर्मठ के सज्जन हैं। स्थानीय भगवान् महावीर प्रभु के मदिंर में वेदी बनवाई एवं उसकी प्रतिष्ठा करवाई जिसमें आपने काफी खर्च किया। जातीय तथा समाजिक कार्यों में आर्थिक योग देकर आप संस्थाओं की प्रगति में सहायक होते हैं। आपके इस समय बृजभूषण लाल, नरेंद्रकुमार, सुरेंद्रकुमार, विनोदकुमार, प्रमोदकुमार नामक पांच पुत्र है जो अभी विद्या अध्ययन कर रहे हैं। श्री बलवंत्तसिहजी की आयु ३७ वर्ष की है आप कटरे वाले के नाम से प्रसिद्ध हैं कटले की बुनियाद १८९९ लाला राजमलजी ने डाली थी।

आपके यहां "नानकचंद मामराजमल कटले वाले" के नाम से जमींदारी तथा बैङ्कर्स का काम होता है। रुई, सोना, चांदी, आढत एवं कमीशन एजेण्ट का बृहत रुप में व्यवसाय होता है।

★श्री लाला भिकारीलालजी कानूगो-हाँसी (हिसार)

१८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लेने के कारण श्री हुक्मीचन्दजी कानूगो

एवं फकीरचन्दजी कानूगो की जमीन जायदाद जप्त करके तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने फांसी पर लटका दिया था। इसी वंश में लाला भिकारीलालजी का जन्म हुआ। पहले यह परिवार अम्बाला कमिश्नरी का निवासी था परन्तु १८५७ के बाद यहाँ चले आये। आप अग्रवाल जैन जाति के सज्जन है। श्री भिकारीलालजी सद् परिश्रमी धर्मनिष्ठ एवं कुशल सज्जन हैं। आपके बड़ी भारी जमीदारी है जिसमें किसान बिना किसी झगड़े के काश्त करते हैं और आपसे बहुत खुश रहते हैं। आप बड़े उदार दिल और सेवा भावी सज्जन हैं। श्री आदिश्वरकुमार और आनन्दकुमार नामक आपके दो पुत्र है जो होनहार एवं प्रतिभा शाली हैं। बाईस सम्प्रदाय में आपका यह परिवार बड़ा प्रतिष्ठित है। आपकी आयु ४५ वर्ष की है।

★ लाला गणपतराय रामजीदासजी जैन बावेल साढौरा

श्री सेठ रामजीदास जी के पुत्र खैरातीलालजी का जन्म सं० १९७१ श्रावण सुदी नवमी का है। आप एक उत्साही लगन शील एवं कर्मठ व्यक्ति हैं। स्थानीय हिन्दू गर्ल्स स्कूल के मैनेजर, एस.एस. जैन सभा के प्रेसिडेण्ट एवं "कृष्णा कोऑपरेटिव बैङ्क" के वाईस प्रेसिडेण्ट हैं। आपके पूर्णचन्दजी, प्रद्युम्नकुमार जी, जिनेन्द्रकुमारजी एवं अजीतप्रसाद जी नामक चार पुत्र हैं। श्री खैराती-लालजी के लघुभ्राता विलायतीरामजी का जन्म सं० १९६४ का आसाढ़ सुदि ७ का है। वर्तमान में आप केन्द्रीय सरकार के फाइनेंस विभाग में असिस्टेण्ट इंचार्ज हैं। आप भी उच्चविचारों के आदर्श युवक हैं। आपके अयभकुमारजी एवं जीवणलालजी नामक दो हैं।



"गणपतराय रामजीदासजी जैन" नामक आपकी फर्म पर सुव्यवस्थित रूप से वस्त्र व्यवसाय होता है।

★ लाला संतलालजी उमरिया-भिवानी

लाला मुखरामजी उमरिया के पुत्र लाला संतलालजी का जन्म सं० १९५५ आषाढ सुदि ८ का है। आप समाज सेवक, धार्मिक मनोवृत्ति के उदार चेता सज्जन

है। स्थानीय जैन समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके अंनंतलालजी, रोशनलालजी एवं जगदीशप्रसादजी नामक तीन पुत्र हैं जिनकी आयु क्रमश ३४, २० एवं १६ वर्ष है। आप तीनों बन्धु उत्साही एवं मिलनसार नवयुवक हैं। श्री अंनंतलालजी व्यवसाय में सहयोग देते हैं। बम्बई में "रोशनलाल जगदीश प्रसाद" फर्म कालवा देवी रोड़ पर अवस्थित है। यहाँ पर वस्त्र व्यवसाय वृहद रुप में होता है।

संयुक्त प्रान्तः—

★ सेठ अचलसिंहजी बोहरा, आगरा

बचपन से ही आप मेधावी रहे हैं। प्रारम्भ से आपकी प्रवृत्ति देश एवं समाज सेवा की ओर थी। १६१६ में लखनऊ के कॉग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए एवं सदस्यता स्वीकार की। सन् १६१८ में "आगरा व्यापार समिति" का पुनः संगठन कर सभापतित्व और मन्त्रित्व से नव चेतना प्रदान का। इस प्रकार से समाज एवं राष्ट्र सेवा काय में अधिकाधिक योग देने लगे। यथा १६१६ के रोलटएक्ट का बायकाट, तिलक, स्वराज्य फण्ड के लिए २५ सहस्र रुपयों का एकत्रित करना इत्यादि। १६२१ में नगर कॉग्रेस के सभापति बने एवं म्युनिसिपल बोर्ड के कॉग्रेस की ओर से मेम्बर व सीनियर वाइस चैयरमेन बने। १६२२ में आप स्वराज्य पार्टी की ओर से प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सदस्य बने। नमक सत्याग्रह में ६ मास की सजा एवं ५००) जुर्माना हुआ। १६३० से ४८ नगर एवं जिला कॉग्रेस कमेटी के सभापति। १६३५ में आपने एक लाख चार सौ रुपये सार्वजनिक कार्यों के लिए अचल ट्रस्ट की स्थापना की एवं ३६ में प्रांन्तीय असेम्बली के मेम्बर बने। ४२ के भारत छोडो आन्दोलन में गिरफ्तात हुए एवं २७ मास तक नजर बन्द रहे। महात्मा गाँधी स्मारक राष्ट्रीय निधि की आगरा शाखा के प्रधान मंत्री की हैसियत से ४½ लाख रुपये एकत्रित किये। १६४८ में आगरा विश्वविद्यालय को सीनेट के सदस्य निर्वाचित हुए। आपकी धर्मपत्नि श्री भगवती देवी जैन की स्मृति में २॥ लाखसे आगरा छावनी में कन्या विद्यालय की स्थापना



श्री १६४६ में की। अ० भा० संस्कृत महासम्मेलन तृतीय अधिवेशन आगरा के स्वागताध्यक्ष एवं प्रान्तीय पशुरक्षा सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन फर्रुखाबाद के सभापति। जातीय सेवा में भी आप अग्रेसर रहे हैं। आप अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन के संस्थापकों में हैं। सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन के आप सभापति रहे भारत जैन महा मंडल के भी आप सभापति रहे।

★ सेठ रतनलालजी जैन, आगरा

आप साहित्य प्रेमी, समाज सेवक एवं चतुर व्यवसायी हैं। सन् २६ से से राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेना शुरु किया ४२ में जेल यात्रा की। नव सन्देश एवं निराला पत्र के प्रकाशक भी रहे। आप ही के उद्योग से "श्री सन्मतज्ञान पीठ" का प्रकाशन कार्य सुचारु रुप से हो रहा है। "अखिल भारत वर्षीय श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन मण्डल" बम्बई के आप उत्तर प्रदेश की ओर से प्रतिनिधि हैं। "श्री राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर" के भी संस्थापक हैं। यहां से साहित्य की आदर्श रुप से सेवा हो रही है। अभी आगरा म्युनिसिपल के कमिश्नर एवं नगर कॉंग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष हैं।



'भिक्कामल छोटेलाल' नामक आप की यह फर्म लोहे की प्रमुख विक्रेता है।

★मेसर्स माधोलाल चिरन्जीलाल जैन-मुज्जफरनगर (उत्तर प्रदेश)

भिवानी निवासी सेठ माधोलालजी बड़जात्या ने ६५ वर्ष पूर्व इस फर्म की स्थापना की थी। आप ही के सद् प्रयत्न से फर्म की विशेष उन्नति हुई। आप श्री जैन सनातन सिख प्रेन चेम्बर मुजफ्फर नगर के चेयरमेन भी रह चुके हैं। सं० १६८६ में आप स्वर्गवासी हुए।

वर्तमान में फर्म के सञ्चालक श्री माधोलालजी के पुत्र फूलचन्दजी एवं वैजनाथजी बड़ी योग्यता पूर्वक काम कर रहे हैं श्री माधोलालजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री चिरंजीलालजी सन् १६४६ में स्वर्गवासी हुए। आप बड़े ही धर्मनिष्ठ एवं परोपकारी महानुभाव थे।

श्री सेठ फूलचन्दजी एवं वैजनाथजी उदार हृदय के धर्म प्रेमी एवं शिक्षा प्रेमी महानुभाव हैं। आप लोगों की ओर से नई मन्डी मुज्जफर नगर में एक

सुन्दर जैन मन्दिर एवं श्री जैन कन्या पाठशाला का निर्माण हुआ।

मेरठ, शामली, खतौली एवं मुजफ्फर नगर में आपकी फर्म गुड गुल्ला, आढ़त तथा बैंकर्स का कार्य करती हैं।

★श्री परमेश्वरलाल जैन 'सुमन', समस्तिपुर

आपका जन्म २० जनवरी सन् १६२० में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री दुर्गाप्रसाद जैन है। शिक्षा आपने इन्टर मिडियेट तक पाई। विशेष साहित्यक योग्यता पर साहित्यालंकार की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १६४२ के आन्दोलन में टामियों की गोली से समस्तीपुर में १४ आदमी मारे गये। उनके सम्मान में जो जुलुस निकाला गया उसका नेतृत्व आपने ही किया। इस कारण पुलिस ने आपकी गिरफ्तारी का वारन्ट निकाला। एक वर्ष हिसार वह और अन्य स्थानों में कार्य करते रहे। आप हिन्दी के एक होनहार कवि हैं। वर्तमान में गत तीन वर्षों से सभास्तीपुर नगर कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री और जिला निर्माण समिति के मंत्री है। पता—जैन-निवास, समस्तीपुप, दरभंगा।

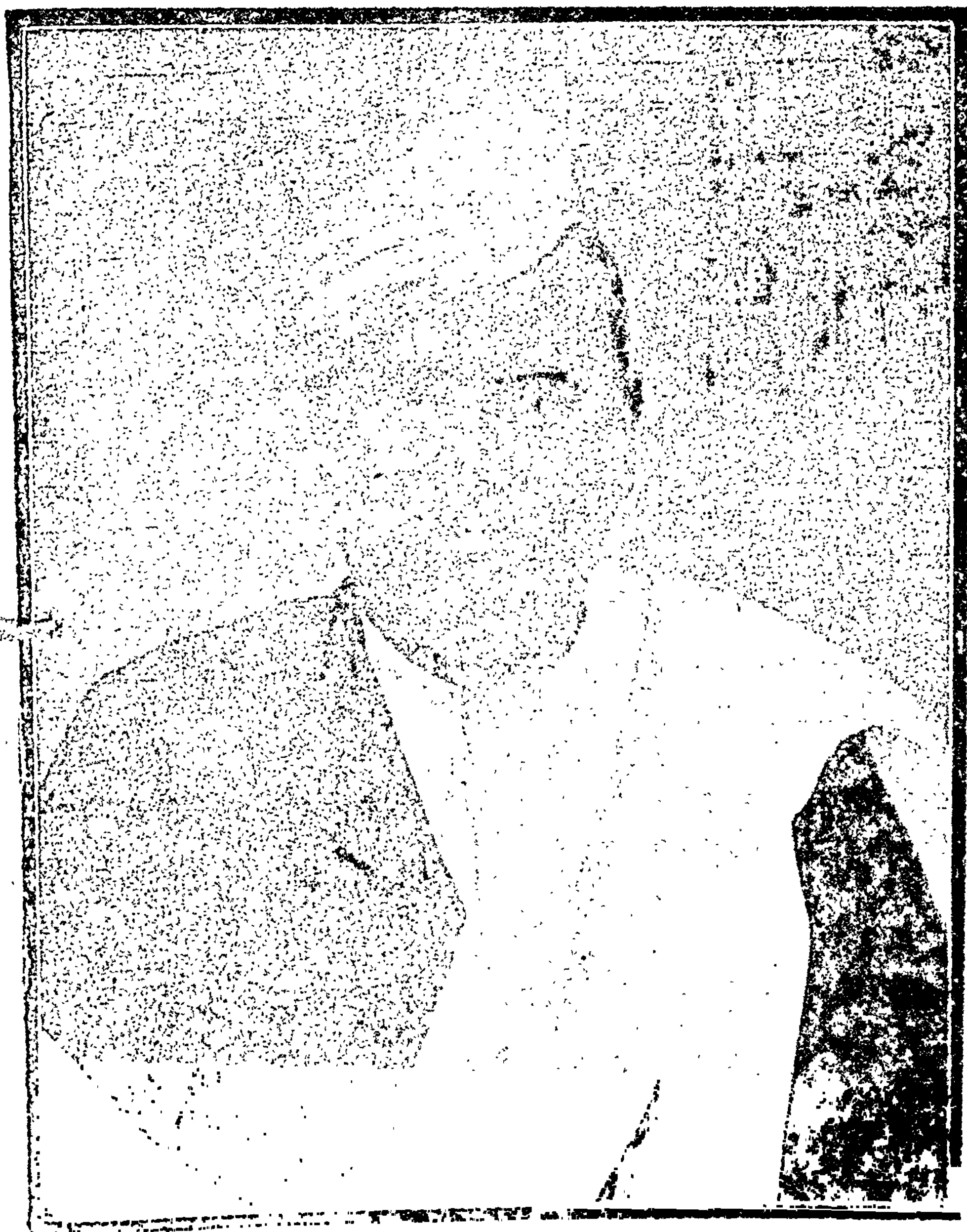
★श्री सेठ फूलचन्दजी जैन, इलाहाबाद

७० वर्ष पूर्व लाला पुरुषोत्तमदासजी ने इलाहबाद आकर सर्राफी कार्य प्रारम्भ किया। अपनी व्यापारिक मेधा से इस व्यवसाय में अच्छी सफलता प्राप्त की। आपके मुन्शीलालजी, फूलचन्दजी एवं सुमेरचन्दजी नामक तीन पुत्र हुए।

वर्तमान में फर्म के मालिक लाला फूलचन्दजी जैन हैं। आप मिलनसार धर्मप्रेमी और समाज सेवक सज्जन हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री शिखरचन्दजी वी-कॉम करके फर्म के सञ्चालन में सहयोग देते हैं। इनसे छोटे श्री स्वरुपचन्दजी वी. एस. सी. करके अभी लखनऊ में एम. बी. बी. एस. में अध्ययन कर रहे हैं। आप दोनो वन्धु उत्साही एवं प्रगति शील विचारों के नव युवक हैं।

ठठेरी बाजार-इलाहावाद में "पुरुषोत्तमदास सर्राफ" नामक आपकी फर्म पर सोने, चाँदी का व्यवसाय होता है आपका यह परिवार "अग्रवाल" जातिय है। जैन है एवं इलाहाबाद के जैन समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है।

नोट—मध्य प्रांत व युक्त प्रांत में प्रचारक भेजे गये थे पर उधर महामारी का प्रकोप हो जाने से कुछ ही स्थानों का भ्रमण कर वीच में ही लौट आना पड़ा। अतः इन प्रान्तों के जैन बंधुओं के परिचय परिशिष्ट विभाग में दिये जायेंगे।



सेठ प्रतापमलजी, डूंगरगढ़

(मेसर्स प्रतापमल गोविन्दराम, कलकत्ता)

★मेसर्स प्रतापमल गोविन्दराम, कलकत्ता

प्रतापमल गोविन्दराम कलकत्ते में दवाओं का सर्वप्रथम प्रतिष्ठान है। ईस्वी सन् १९०० में दो जैन उत्साही युवक डूंगरगढ़ के श्रीप्रतापमलजी एवं बीकानेर के श्रीगोविन्दरामजी ने अनुभव किया कि आयुर्वेदीय और योरोपीय दवाओं के सुन्दर सम्मिश्रण से ऐसी शीघ्र फायदा पहुंचाने वाली औषधियां निर्माण की जाये जो दामों में खूब सस्ती हो और गरीब जनता तक पहुंच सके। उनका ध्यान था कि दवा चाहे देशी हो या विदेशी, कविराजी हो या यूनानी, कोई भी हो यदि उसमें गुण है, यदि वह सस्ती है और रोग में शीघ्र फायदा पहुँचाती है तो वह निश्चय ही आदरणीय है। जिन दवाओं में पशुओं, पक्षियों, मछलियों आदि घूमने फिरने वाले प्राणियों के खून, मांस, चर्बी, हड्डी, ग्लोडम (Glands) आदि हो ऐसी दवायें गुणकारी होने पर भी त्याज्य हैं। इन युवकों ने ऐसी दवाओं के मिश्रण का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया। इस फर्म में इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाता है कि दवायें पूर्ण रूप से शुद्ध हों। वनस्पति व निर्दोष खनिज पदार्थ ही काम में लाये जांय दवाओंमें किसी भी घृणित व अभक्ष्य वस्तु की मिलावट न हों।

सन् १९०० ई० में स्थापित होनेके अनन्तर यह फर्म निरन्तर तरक्की कर रहा है। आज तो यह हालत है कि इस फर्म की कई दवायें तो सारे भारत में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं। वास्तव में दद्रुविनाश, सत्य जीवन, दिल रंजन बाम, ज़िकलीन पारगोटानिक चमत्कारिक औषधियाँ है। बहुत से चिकित्सक अपने रोगियों पर इन दवाओं का परीक्षण करते हैं।

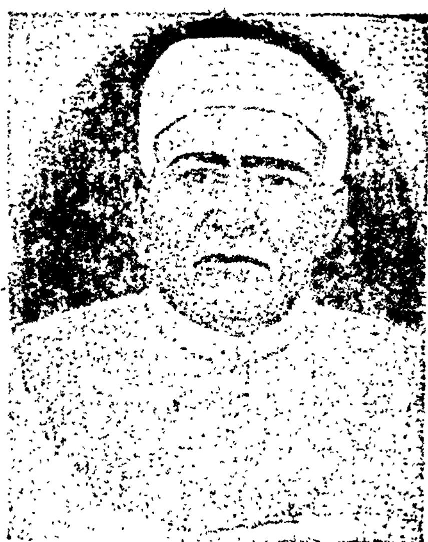
दवाओं एवं केमिकल्स के परीक्षण के लिये इस फर्म के अन्तर्गत लेबोरेटरी (Laboratory) की सुन्दर व्यवस्था है जहां अनुभवी केमिस्ट द्वारा दवाओं का परीक्षण हुआ करता है।

इस फर्म का आफिस कलकत्ते में ११७-११८-११९ खंगरा पट्टी स्ट्रीट में स्थित है और फैक्टरी अपने विशाल निजी भवन नं० ४३९ ग्रांड ट्रंक रोड (नोर्थ) हवड़ा में है। जहां सैकडों कर्मचारी काम करते हैं। दवाओं के अतिरिक्त इस फर्म में कपड़े रंगने के रंग (Aniline Dyes) नील (Chinese Blue) सिन्दूर आदि के मेन्युफेक्चर करने का काम भी बड़े विशाल रूप में हो रहा है।

इस फर्म की ओर से हर साल हजारों रुपये परोपकारी संस्थाओं को दान किये जाते हैं। बीकानेर स्टेट के रानीसर में मन्दिर और धर्मशाला है। डूंगरगढ में बिजली से चालित सुन्दर कुवा है। इन सब को चलाने की व्यवस्था फर्म की ओर से की जाती है।



श्री जेठमलजी सेठिया, बीकानेर



स्व० सेठ अगरचन्दजी सेठिया

आप दोनों का परिचय सेठ अगरचन्दजी भैरोदानजी सेठिया, बीकानेर पृष्ठ २६८ पर देखिये।





श्री साहू शीतलप्रसादजी, दिल्ली

आप ग्रन्थ के माननीय सहायक हैं। परिचय पृष्ठ ५८२ पर पढ़िये)।

सेठ श्री रोशनलालजी कोचर, अनन्तर परिचय पृष्ठ ५२३ पर पढ़ें।

✱श्री विजयसिंहजी नाहर, कलकत्ता

जैन समाज के प्रकाश स्तम्भ एवं गण माननीय नेता स्व० श्री पूरण चन्दजी नाहर एम. ए. बी. एल के सुपुत्र श्री विजयसिंहजी नाहर का जन्म सन् १६०६ में हुआ। सन् १६२७ में आपने कलकत्ता यूनिवर्सीटी से बी. ए. पास किया।

श्री विजयसिंहजी नाहर समाज सेवक, उदार हृदय एवं कर्मठ कार्य कर्ता है राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में आपका जीवन अनुकरणीय है। कलकत्ता कारपोरेशन के आप काउन्सीलर हैं एवं बंगाल प्रान्त के भूतपूर्व एम. एल. सी. रह चुके हैं। वर्तमान में आप पश्चिमीबङ्गाल प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री एवं अखिल भारत कॉंग्रेस कमेटी के सदस्य हैं। अ० भा० ओसवाल महासम्मेलन के मन्त्री पद पर रहकर आपने महासभा की आदर्श सेवा की। श्री जैनसभा कलकत्ता के भी आप सभापति रह चुके हैं। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में आपने सन् ४२ से ४५ तक जेल यात्राए की।

आपके सुपुत्र श्री रतनसिंहजी नाहर अभी विद्याध्ययन कर रहे हैं। श्रीमती सुचिता दुगड नामक आपकी बडी पुत्री बङ्गाल के प्रसिद्ध चित्रकार इन्द्र दुगड़ की धर्मपत्नि हैं एवं छोटी पुत्री श्रीमती सुलेखा भूतोड़िया श्री चन्दनमल भूतोड़िया की धर्मपत्नि हैं। श्री विजयसिंहजी नाहर को प्राचीन चित्र एवं देश विदेश के सिक्कों के संग्रह में विशेष अभिरुचि है।

✱जस्टिश्री रणधीरसिंहजी बच्छावत, कलकत्ता

कानून के यशस्वी श्री रणधीर सिंहजी बच्छावत का शुभ जन्म सं० १६६४ आषाढ़ सुदि ८ को अजीमगंज निवासी श्री प्रसन्नसिंहजी बच्छावत के यहां हुआ। अजीमगंज में आपका परिवार प्रतिष्ठित रईसों में से है। सेण्ट जोन्स कॉलेज कलकत्ता से सन् १६२५ में बी. ए. किया। सर्व प्रथम रहे अतः दो स्वर्ण पदक मिले। १६२७ में इकोनोमिक से एम. ए. पास किया। १६२८ में विलायत गए और १६३१ जून में बार. एटलॉ की डिग्री प्राप्त की। साथ ही में लन्दन यूनीवर्सिटी से एल. एल. बी. भी किया। इस प्रकार से उच्च शिक्षा उत्तीर्ण कर १६३२ में कलकत्ते में प्रेक्टिस शुरु की। आपकी प्रतिभा से बड़े २ जज प्रभावित हैं। कलकत्ते में आपकी सबसे अच्छी प्रेक्टिस थी। १८ साल तक प्रेक्टिस करने के बाद २३ जनवरी सन् १६५० को बंगाल प्रान्त के कलकत्ता हाईकोर्ट के आप जज नियुक्त हुए। जैन समाज में आप ही सबसे पहिले सज्जन हैं जो इतने बड़े प्रान्त के जस्टिस नियुक्त हुए। समाज को आप पर गौरव है। यह एक ऐसा पद है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं।

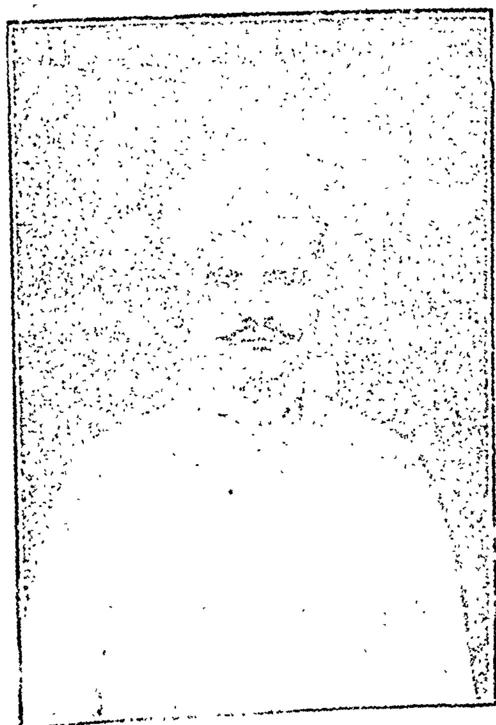
आपके ज्येष्ठ पुत्र जितेन्द्रसिंहजी २४ वर्षीय युवक हैं और विलायत अध्ययनार्थ गए हुए हैं। इनसे छोटे विजयसिंहजी और दीपसिंहजी हैं जो क्रमश १८, १६ वर्ष के हैं, अभी अध्ययन कर रहे हैं।

★ सेठ श्री चांदमलजी बांठिया-कलकत्ता

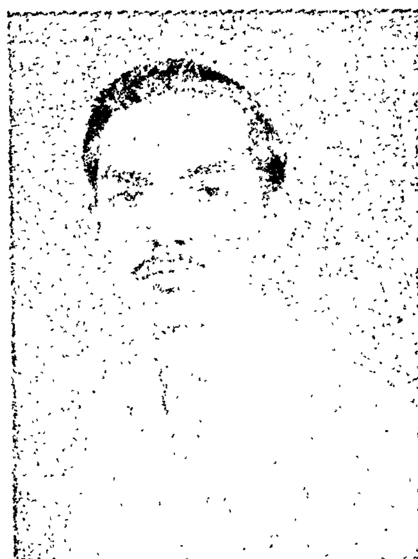
आज से करीब १२५ वर्ष पूर्व बीकानेर निवासी सेठ भागचन्दजी चुरु होते हुए जयपुर आए। जयपुर आकर व्यापार प्रारम्भ किया और अच्छी सफलता प्राप्त की। आपके छोगमलजी और बींजराजजी नामक दो पुत्र हुए।

सेठ बींजराजजी के जोरावरमलजी, सूरजमलजी, किस्तूरचन्दजी सौभागमलजी और चाँदमलजी नामक ५ पुत्र हुए।

सेठ चाँदमलजी—आपका शुभ जन्म संवत् १९४५ का है। आपकी प्रखर प्रतिभा से इस परिवार की प्रतिष्ठा विशेष बढ़ी तथा व्यापार में बड़ी तरक्की हुई। आप कलकत्ता तेरापंथी जैन समाज के आगेवान सज्जन हैं तथा तेरापन्थी महासभा के प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। आपने जयपुर में पार्श्वनाथ जैन लाइब्रेरी अपनी ओर से स्थापित की है जो आज भी जनता की अच्छी सेवा कर रही है।



सेठ चाँदमलजी बांठिया कलकत्ता



कुं. पूनमचन्दजी बांठिया

आपने बांठिया एन्ड कम्पनी के नाम से विलायत में भी सोने चाँदी का काम करने हेतु फर्म खोली। इस समय आपका व्यापार कलकत्ता, जलपाई गुड़ी और चटगांव में हो रहा है। यह फर्म बागान की मैनेजिंग एजन्ट है। चटगांव में आपकी

जमींदारी भी है। वर्तमान में आपकी फर्म पर "श्री सेठ चांदमलजी वांठिया" के नाम से व्यापार होता है। अन्यत्र "बुलियन कम्पनी" के नाम से व्यापार होता है। आप कई यूरोपियन कम्पनियों के डायरेक्टर हैं जैसे "बद्वार टी टेन्वर कं० लि० वसुमति टी कम्पनी लि०, मुरलानी टी कम्पनी लि० इत्यादि ६ कंपनियों के डायक्रेटर हैं।

आपके पूनमचन्दजी और पदमचन्दजी नामक दो पुत्र हैं। श्री पूनमचन्दजी स्वतंत्र रूप व्यापार करते हैं और पदमचन्दजी ने बी० ए० एल० एल० बी० किया है और एडवोकेट की परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं।

पता— १ कैनिंग स्ट्रीट कलकत्ता

★श्री गणेशीलालजी नाहटा एडवोकेट, कलकत्ता

आप जीयागंज बालूचार (मुर्शिदाबाद) निवासी हैं। आपके पिता श्री अमरचन्दजी ने आपको उच्च शिक्षा के हेतु कलकत्ते में विशेष रूप से भेजा।

सन् १९१५ में आपने एम० एस० सी०, एल० एल० बी० की परीक्षा उच्च श्रेणी से उत्तीर्ण कर अपनी प्रैक्टिस प्रारंभ की। प्रतिभा के कारण इस क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त की। कलकत्ते के मशहूर वकीलों में आपकी गणना है। कलकत्ते के सार्वजनिक क्षेत्र में भी आपका विशेष सम्मान है। विशेष रूप से जैन समाज के आप अगेवान कार्यकर्त्ता सज्जन माने जाते हैं। धार्मिक और सामाजिक कार्यों में पूर्ण दिलचस्पी और सहयोग रखते हैं। धार्मिक नियमों का आप काफी पालन करते हैं।

सराक जाति के उद्धार कार्य में आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा था। पाँवापुरी तीर्थ के संरक्षण कार्य में भी आपने बड़े मनोयोग से भाग लिया था।

★पं० श्री परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ-ललितपुर

आप काँग्रेस के एक योग्य और कर्मठ कार्यकर्ता है। सन् ४२ के आन्दोलन में आप सूरत में भारत रक्षा कानून की दफा २६ के अन्तर्गत गिरफ्तार किए गये थे। तब आपने साबरमती जेल में रह कर लगभग १००० राजनैतिक कैदी साथियों को हिन्दी पढ़ाई और वहाँ जैनधर्म पर कई भाषण देकर जैन धर्म का मर्म समझाया।

गुजरात और विशेषतः सूरत में आपने हिन्दी प्रचार का बहुत बड़ा कार्य किया। राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल की स्थापना की और कई सौ हिन्दी शिक्षक तथा हजारों हिन्दी ज्ञाता तैयार किये। इस प्रकार से आपने राष्ट्र भाषा की अनन्य रूप से सेवा की।



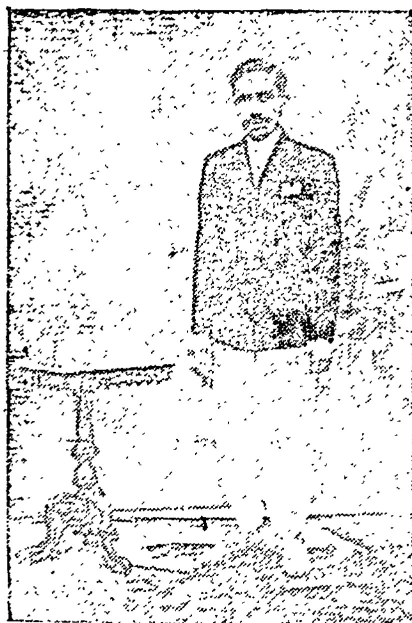
सेठिया परिवार, चुरु



स्व० सेठ धनराजजी सेठिया, चुरु



सेठिया बन्धु:— बायें से दायें (बैठे) श्री बुधमलजी, श्री मंगलचन्दजी, श्री चम्पालालजी। खड़े श्री माणकचन्दजी तथा श्री ताराचन्दजी।



श्री मंगलचन्दजी सेठिया, चुरु



श्री तख्तमलजी जैन भेलसा
(मुख्यमंत्री मध्य भारत)

★ माननीय श्री तख्तमलजी जैन, भेलसा

श्री तख्तमलजी का जन्म सन् १८६५ में भेलसा नगर में एक सम्पन्न जैन घराने में हुआ। आपने १८ वर्ष की अवस्था में ही सन् १६१२ में भेलसा में वकालात प्रारम्भ करदी। आपका सार्वजनिक जीवन उस समय से प्रारम्भ होता है जब २६ वर्ष की अवस्था में आप भेलसा नगरपालिका के सदस्य निर्वाचित हुए। कुछ समय पश्चात् ही आप इस नगर पालिका के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए और इस पद पर लगभग १०, ११ वर्ष तक काम किया। सन् १६३६, ४० में आप नगर पालिका के प्रथम अशासकीय अध्यक्ष नियुक्त हुए और आपके कार्यालय में सार्वजनिक हित की कई योजनाएँ कार्यान्वित हुई। वहुत वर्षों तक आप ग्वालियर राज्य प्लीडर्स कान्फ्रेन्स के मंत्री रहे और उसके एक अधिवेशन के सभापति भी हुए। १६३८, ४० में आप ग्वालियर स्टेट कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य थे। सन १६४६ में आपके सभापतित्व में भिन्ड जिला राजनैतिक सम्मेलन हुआ। सन् १६४० में आप ग्वालियर राज्य के प्रथम लोकप्रिय मंत्री नियुक्त किये गये और आपके आधीन ग्राम सुधार तथा स्वायत शासन विभाग सौंपा गया। इस मंत्री पद पर आप सन् १६४२ तक रहे और इस अल्प काल में आपने अपने विभाग में वहुत से सुधार किये। मंत्री पद से जुलाई १६४२ में आपने त्यागपत्र दिया। सन् १६४१ में इन्दौर-राज्य स्वायत शासन सम्मेलन का आपने उद्घाटन किया।

आप ग्वालियर राज्य हरिजन बोर्ड के सदस्य हैं। जो अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ के तत्वावधान में राज्य में कार्य करता है। आप मजलिस आम तथा मजलिस कानून के भी सदस्य थे। भेलसे के एस० एस० एल० जैन हाई स्कूल के संस्थापकों में से आप एक हैं।

ग्वालियर राज्य में सन् १९४७ में उत्तरदायी शासन की स्थापना पर आपको अर्थ विभाग दिया था और मध्यभारत के प्रथम मंत्री मंडल में भी आप अर्थ मंत्री नियुक्त किए गये थे।

१२ अक्टूबर १९५० को आप मध्य भारत के मुख्य मंत्री निर्वाचित हुए हैं।

★सेठ चन्दूलालजी खुशालचन्दजी, बम्बई

इस कुटुम्ब के पूर्वजों के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक कार्य आज भी उनके यशों गाथाओं का गान कर रहे हैं। प्रतिभाशाली और सर्वमान्य इस उदार कुल के ज्येष्ठ पुरुष श्रीमान झवेरचन्दजी चंदाजी शान्त एवं गम्भीर प्रकृति के परमउदार स्वभावी और सेवा भावी सज्जन हैं। हाल ही में प्राचीनतम तीर्थ हथुण्डी राता महावीर जी के जीर्णोद्धार का कारोभार आपने ही वहन कर लगभग चार लाख की राशी व्यय करके जीर्णोद्धारान्तर सुविख्यात जैनचार्य १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

श्री झवेर चन्दजी समाज के अग्रगण्य कार्यकर्ता हैं और बड़े ही मिलनसार और सरलस्वभावी हैं। आप बीजापुर मारवाड़ के ग्राम पंचायती खाता के सरपंच एवं जे० पी० हैं आप निम्नलिखित संस्थाओं के कार्यकर्ता एवं सदस्य और लाइफ मेम्बर हैं—श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यालय वरकाणा (मारवाड़) श्री पार्श्वनाथ जैन बालाश्रम फालना (मारवाड़) अ० भा० जैन श्वे० मूर्ति पूजक कॉन्फ्रेन्स-बम्बई, श्री मारवाड़ जैन पोरवाड़ संघ सभा इत्यादि अनेक संस्थाओं के कार्यकर्ता हैं।

श्रीमान् झवेरचन्दजी व्यवसाय में कुशल होने पर भी हमेशा सेवा कार्य में ही संलग्न रहते हैं। व्यवसाय सम्बन्धी सर्व कार्य इनके लघुभ्राता श्री हजारीमलजी सा० एवं अन्य भ्रातृगण श्री हंसराजजी, श्री उदेचन्दजी श्री खेमनादि आदि पुत्र पोत्रों को सौंप रक्खा है।

श्री हजारीमलजी बड़े ही सेवा भावी एवं मिलनसार स्वभाव के सज्जन हैं। श्री हंसराजजी ने राता महावीरजी में निजि द्रव्य से एक आराम प्रद धर्मशाला बनवाई है।

★ सेठ भीवराजजी देवीचन्दजी पारख, बम्बई

वर्तमान में इस परिवार में भीवराजजी व देवीचन्दजी के पौत्र क्रमशः [illegible]

मलजी व मनसुख दासजी विद्यमान हैं। आप बड़े ही उत्साही व व्यापार कुशल हैं। इस परिवार की मारवाड़ नाशिक खानदेश आदि प्रदेशों में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपका वर्तमान निवास महामन्दिर, जोधपुर में है। आपका "भीवराज देवीचन्द" के नाम से मुंबई, "भींवराज कानमल" के नाम से नांदगांव व "जुगराज केशरी मल" के नाम से येवले में व्यापार चलता है।

★सेठ रूपचन्दजी वीरचन्दजी एन्ड कं. बम्बई

जैन श्वेताम्बर समाज के पाल गोता चौहान श्री सेठ तिलोकचन्दजी के पुत्र श्री रुपचन्दजी का जन्म सं० १६५६ मिगसर वदी १३ का है। आपकी सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी रुचि प्रशंसनीय है। श्री महावीर जैन गुरुकुल सरूपगंज के आप आजीवन सदस्य हैं। आप एक व्यवसाय कुशल, मिलनसार एवं उदार हृदय सज्जन हैं। आपका मूल निवास स्थान सिरोही स्टेट के अन्तर्गत स्वरुप गंज है।

श्रीवीरचन्दजी, कान्तिलालजी, शान्तिलालजी एवं गोर्धनचन्दजी नामक आप के चार सुयोग्य पुत्र हैं। श्री रुपचन्द वीरचन्द एण्ड को के नाम से बम्बई में विगत में ५० वर्षों से आपकी फर्म से सर्राफी आर्डर के अनुसार जेवरात और कमिशन एजेण्ट का काम प्रामाणिकता से होता है।

★ श्रीलाला मुसद्दीलाल ज्योतिप्रसाद जैन बम्बई,

गर्ग (अग्रवाल जैन) गोत्रोत्पन्न श्री ला. मुसद्दीलालजी के पुत्र ज्योति प्रसाद जी, श्री जग ज्योतिसिंहजी एवं श्री मलखानसिंहजी वर्तमान में उपरोक्त फर्म का संचालन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। आप तीनों सहोदरों का प्रेम आदर्श एवं अनुकरणीय है। जिस मिलन सारिता और सहकारिता से आपका कार्य हो रहा है उससे आपका व्यवसाय दिन प्रति दिन उन्नति पर है। आप बन्धु उदार, हंसमुख और मिलनसार प्रकृति के सज्जन हैं।

श्री लाला जगज्योतिसिंहजी के श्री प्रकाश और सुरेशचन्द्र और लाला मलखानसिंहजी के जयप्रकाश नामक पुत्र है। आपका यह परिवार मेरठ जिले के अन्तर्गत बड़ौत ग्राम निवासी है।

मेसर्स लाला मुसद्दीलाल ज्योतिप्रसाद जैन नामक फर्म पर कपड़े और लेस का सुविस्तृत और सुव्यवस्थित व्यवसाय होता है। फर्म की शाखा देहली में लाला मुसद्दीलाल मलखानसिंह जैन के नाम से है।

★श्री सेठ अचलदासजी सिंघवी, बम्बई

जाति, समाज और धर्म सेवा परायण श्री सेठ अचलदासजी का जन्म सं. १६५८ का है। श्री वर्धमान बोर्डिंग सुमेरपुर के आजीवन सदस्य एवं जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, पोरवाल संघ सेमा एवं अचलगढ़ श्वेताम्बर तीर्थ कमेटी के

स्य के रूप में आपकी सेवायें स्मरणीय हैं।

आपका मूल निवास स्थान आबू के अन्तर्गत "रोहीड़ा" नामक ग्राम है र पोरवाड़ सिंघवी गोत्रोत्पन्न हैं। श्री पार्श्वनाथ हाईस्कूल वरकाणा के आजीवन स्य के रूप में आपका शिक्षा प्रेम व्यक्त होता है। श्री पुखराजजी धरमचन्दजी र गणेशमलजी नामक आपके तीन पुत्र हैं।

नं. १७-२१ विट्ठलवाड़ी पर "त्रिलोकचन्द मोतीचन्द" के नाम से इम्पोर्ट एक्सपोर्ट का व्यवसाय होता है। इसके अतिरिक्त अहमदवाद एवं बम्बई में भी न्न २ नामों से सुविस्तृत रूप से व्यवसाय होता है। दी हिन्दुस्थान मर्चेन्ट एसो-सियेशन के आप मेम्बर हैं

श्री सेठ जुहारमलजी मोतीलालजी —बम्बई

इस फर्म के मालिक श्री रूपचन्दजी कोठारी के सुपुत्र श्री रा० सा० नमलजी, जुहारमलजी, कुन्दनमलजी तथा मोतीलालजी हैं। आप (खींचा) ठारी गोत्रोत्पन्न जैन हैं। शिवगंज के आप मूल निवासी हैं। आपके परिवार की र से वरकाणा में श्री पार्श्वनाथजी का मेला भरवाया एवं हरकचन्द रूपचन्द ग्रार मिडिल स्कूल भेंट की। राय साहब नैनमलजी श्री पार्श्वनाथ जैन हाई स्कूल रकाणा के आजीवन सदस्य हैं। आपके श्री जीवराजजी, भैरोंलालजी, गौतम-न्दजी, ज्ञानचन्दजी, हुक्मीचन्दजी, अमृतलालजी और बाबूलालजी पुत्र हैं।

"मेसर्स हरकचन्द रूपचन्द" फर्म नायनप्पा नायक स्ट्रीट मद्रास में विगत वर्षों से एवं "जुहारमल मोतीलाल" कालवा देवी रोड़ जुहार पैलेस बम्बई २ ३५ वर्षों से जनरल मर्चेन्ट एवं कमीशन एजेन्ट का व्यवसाय बड़ी सफलता से र रही है।

आपका यह समृद्ध परिवार मिलनसार, एवं उदार स्वभावी, एवं धार्मिक र्यों में मुख्यरूप से भाग लेने वाला है। शिवगंज (मारवाड़) समाज में आप लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा है।

श्री सेठ माणेकलाल भाई अमोलक भाई, घाटकोपर, बम्बई

श्री नगीनदास भाई तथा माणेकलाल भाई सेठ अमोलक भाई के पुत्र हैं। नगीनदास भाई ने गांधी शिक्षण के तेरह भाग प्रकाशित करवाये। सब भाई राष्ट्रवादी होते हुए धर्मवादी पक्के हैं। हर धार्मिक कार्य में आगे रहते हैं। हात्मा गांधीजी को एक मुश्त एक लाख रुपया भेंट किया। बम्बई की राष्ट्रीय तथा र्मिक प्रवृतियों में आपका मुख्य हाथ रहता है। आपकी ओर से जैन स्थानक में स्तकालय एवं सुन्दर वाचनालय है। श्री माणेकलाल भाई के सुपुत्र का नाम रतन-लाल भाई है जो बहुत होनहार युवक है। श्री माणेकलाल भाई कान्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी भी हैं।

★मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल जौहरी, बम्बई

यह फर्म ५० वर्ष से बम्बई में हीरे का व्यवसाय कर रही है। वर्तमान में इस फर्म के मालिक सेठ हेमचन्द भाई, सेठ भोगीलाल भाई, सेठ मणिलाल भा एवं चन्दुलाल भाई हैं। आप लोग पाटन (गुजरात) निवासी हैं।

आप सब सज्जन मिलनसार, सहृदय एवं व्यापार कुशल हैं। फर्म का व्या पारिक परिचय निम्न प्रकार से है—

१. बम्बई—मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल जौहरी, धनजी स्ट्रीट। फर्म पर हीरे औ पन्ने का थोक व्यापार होता है।

२. एण्टवर्प—(बेलजियम) "मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल" इस फर्मके द्वारा भार के लिए हीरा खरीदकर भेजा जाता है।

★श्री सोमचन्दजी वणाजी बम्बई,

मारवाड़ जैन विकास के सम्पादक श्री सोमचन्दजी एक सफल साहित्यि सज्जन हैं। जैन धर्म और समाज के विषय पर आपके सम्पादकीय लेख अपन एक नूतन क्रान्तिमय सन्देश देते हैं। साहित्यक गोष्ठियों में आप उत्साह से भा लेकर अपनी साहित्य रसिकता आदर्श उपस्थित करते हैं। अच्छे साहित्यक हो के साथ २ आप सफल व्यवसायी भी है। एस. वी. जीवाणी नामक आपकी फर्म म्युनि सीपल कॉन्ट्राक्टर एवं टिम्बर मर्चेन्ट है।

आपके रमेशचन्दजी नामक एक पुत्र हैं। फर्म का पता—मेसर्स. एस. वी जीवाणी २५. २ री सुतार गली सच्चिदानन्द भुवन बम्बई नं०४

★सेठ देवीचंदजी दलीचन्दजी एन्ड कम्पनी, बम्बई

यह फर्म बम्बई के सर्वोपरी छाता और निर्माता व्यापारियों में प्रमुख है वर्त्तमान में बाली निवासी सेठ श्री सागरमलजी चोपड़ा के संचालन में यह फर विशेष उन्नति पर है।

सेठ सागरमलजी एक सार्वजनिक जन हित कार्यों में पूर्ण दिलचस्पी रखने वाले सुधार व शिक्षा प्रेमी उदार चेता सज्जन हैं। मारवाड़ जैन युवक संघ के बाली अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। आपके छोटेभाई श्री चंपालालजी एक अद्वितीय प्रतीभा वाले होनहार युवक थे किन्तु केवल २२ वर्ष की अल्पायु में ही आप स्वर्गवासी हो गये। दोनों भ्राताओं में बड़ा प्रेम था। मेसर्स देवीचन्द दलीचंद एन्ड क० के नाम से ८२-८४ नई हनुमानगली बम्बई नं० २ में आपका बृहद् काम काज होता है। सेठ सागरमलजी विलायत यात्रा कर आये हैं।

★ श्री सेठ सागरमलजी नवलाजी, बम्बई

सं० १९३९ के ज्येष्ठवदि १३ को श्वेताम्बर पोरवाल श्री नवलाजी के घर

श्री सागरमलजी का शुभ जन्म हुआ। श्री सागरमलजी उदार धर्म प्रेमी एवं नेतृत्वशील महानुभाव है। श्री जैन आदिश्वर चेरिटी टेम्पल, धर्मशाला के ट्रस्टी, बम्बई जैन दवाखाना के सदस्य तथा श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यालय तथा बोर्डिंग, श्री पोरवाल गोड़वाड़ संघ सभा एवं वर्धमान जैन बोर्डिंग के आप आजीवन सदस्य हैं। ग्राम-नारलाई (मारवाड़) के सरपंच है एवं यहां के एक गणमान्य व्यक्ति हैं। तथा स्थानीय जैन देव स्थान पेढी के ट्रस्टी भी हैं।

श्री पोरवाड़ जैनइतिहास समिति के आप सदस्य हैं तथा इसके प्रकाशन में विशेष सहयोग दे रहे हैं। इस प्रकार से आप का सामाजिक जीवन अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

आपके सुपुत्र श्री मेघराजजी, मिट्ठालालजी, केशरीमलजी, शेषमलजी तथा जालमचन्दजी आपही के पाद चिन्हों पर चलने वाले सज्जन हैं। आप सब व्यवसाय में पूर्ण सहयोग देते हैं।

नं० १५ दागीना बाजार बम्बई नं० २ में श्री सागरमलजी नवलाजी के नाम से आपकी फर्म विगत ५० वर्षों से सर्राफी एवं सोना चांदी के आभूषणों का व्यापार बड़ी प्रामाणिकता से कर रही हैं।

★ मेसर्स भोगीलाल लहरचन्द १३४, १३६ जव्हेरी बाजार, बम्बई

इस फर्म के वर्तमान मालिक सेठ लहरचन्द अभयचन्द व भोगीलाल लहरचन्द हैं। सेठ लहरचंद भाई करीब ५० वर्षों से हीरे का व्यवसाय करते हैं। आप जैन वीसा श्रीमाल सज्जन हैं। आपका मूल निवासस्थान पाटन (गुजरात) है। इस फर्म की तरक्की सेठ लहरचन्द भाई के हाथों से हुई।

वर्तमान में आपका व्यापारिक परिचय इस प्रकार है—

(१) मेसर्स भोगीलाल लहरचन्द चौकसी बाजार बम्बई। T. A. Shash kant.—इस फर्म पर हीरा, पन्ना मोती आदि नवरत्नों का व्यापार होता है। तथा विलायत से डायरेक्टर जवाहरात का इम्पोर्ट होता है।

(२) बाटली वाई कम्पनी फोर्ट—इस फर्म पर मिल, जीन, एवं एग्रीकलचर (खेतीवाड़ी) सम्बन्धी मशीनरी का बहुत बड़ा व्यापार होता है।

★ सेठ नरसिंहजी मनरूपजी, बम्बई

हूंडिया राठौड़ गौत्रीय सेठ नरसिंहजी मनरूपजी का मूलनिवास स्थान अगवरी मारवाड़ है। आपके पुत्र श्री गुलाबचन्दजी का जन्म सं० १६६५ कार्तिक कृष्णा ८ है।

आप श्वेताम्बर मंदिर आम्नायी हैं। 'सेठ नरसिंहजी मनरूपजी' के नाम से थाणा बम्बई में सोना चांदी तथा जवाहरात का व्यापार होता है।

स्व० सेठ नरसिंहजी का जीवन बड़ा धर्ममय था। थाणा जिन मंदिर के

ट्रस्टी रहकर आपने मंदिर निर्माण में बड़ा योग दिया था। सेठ गुलाबचन्दजी श्री एक धर्म प्रेमी सज्जन हैं। परोपकारी कार्यों में उदारता पूर्वक सहायता करते रहते हैं। आपके मांगीलालजी नामक पुत्र हैं।

★सेठ नवलचन्दजी गूलाजी एण्ड कम्पनी, बम्बई

खुडाला (मारवाड़) निवासी सेठ हजारीमलजी के ३ पुत्र हुए—श्री पृथ्वीराज जी (जन्म सं० १९५९ वैशाख सुदी १४), भभूतमलजी तथा श्री ओटरमलजी। श्री पृथ्वीराजजी के ५ पुत्र हैं—श्री शान्तिलालजी, चपालालजी, देवराजजी, दानमलजी तथा जसवंतरायजी।

यह परिवार श्वेताम्बर जैन अन्यायी है। मजगांव (बम्बई) में हजारी सिल्क मिल्स है। लोअर कोलाबा में क्रिटिज रोड़ पर 'नवलचंद गूलाजी के नाम से भी एक शाखा है। बम्बई की प्रतिष्ठित व श्रीमन्त में आपका नाम है।

सेठ पृथ्वीराजजी एक धर्म निष्ठ और समाज हितैषी सज्जन हैं। मारवाड़ की शिक्षण संस्थाओं में आपकी समय समय पर बड़ी सहायता रहती है। पार्श्वनाथ जैन हाई स्कूल फालनां को आपने २० हजार की एक मुश्त स्वयं सहायता प्रदान की और डेपूटेशन में भ्रमण कर सहायता संग्रह करवाई। हॉई स्कूल में आप पेट्रेन हैं। अन्य सार्वजनिक जनहित के कार्यों में आप सदा परम सहायक रहते हैं।

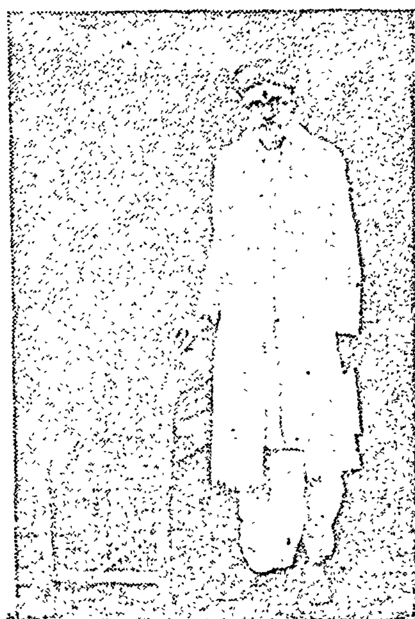
★मेसर्स अमृतलाल एण्ड को० जरीवाला, सूरत

सूरत की उपरोक्त फर्म जरी वगैरह का कार्य लगभग सात वर्ष से सुचारु रूपेण कर रही है। तथा विगत १० वर्षों से "शिवलाल हर किशनदास" के नाम से कपड़ा बनाने का कार्य भी उत्तम रीति से कर रही है। फर्म की प्रामाणिकता और श्रेष्ठता का श्रेय फर्म के भागीदार श्री अमृतलालजी, बाबूभाई, कंचनलालजी एवं केशवलालजी की कार्य पटुता को है। आप लोगों के सहयोग एवं मिलनसारिता से फर्म की उन्नति और प्रतिष्ठा बढ़ी है। समय समय पर शिक्षा संस्थाओं और सार्वजनिक हित कार्यों में फर्म की ओर से गुप्त सहायता मिलती रहती है।

श्री अमृतलालजी के मूलचन्ददास श्री बाबूभाई के रमेशचन्द्र और ईश्वरलाल, श्री कञ्चनलालजी के कान्तिलाल, अरविन्दलाल और प्रवीणचन्द्र तथा श्री केशव लालजी के नवीनचन्द नामक पुत्र है। आप सब वैष्णव मतावलम्बी हैं।

अमृतलाल एन्ड को० जरीवाला के नाम से यहां हम हर प्रकार का जरी माल गोटा, किनारी, बांकड़ा, फूल चंपा तथा रेशमी सूती कपड़े के थोक बनाने वाले तथा विक्रेता हैं।

★ श्री सेठ गुलाबचन्दजी खत्री, सूरत



श्री सेठ गोविन्दजी खत्री एक धर्मनिष्ठ सज्जन थे। आपके सुपुत्र श्री गुलाबचन्दजी का जन्म सं० १९४१ मार्गशीर्ष सुदी ६ का है। जहां आप व्यापार दक्ष पुरुष हैं उतने ही उदार दिल और सत्यनिष्ठ हैं। स्थानीय हनुमानजी के मन्दिर में समय समय पर आपने कई वस्तुयें भेंट स्वरूप प्रदान की। आपके श्री मगनलाल भूषणदासजी, छोटेलालजी मोहनलालजी एवं बलवन्तरायजी नामक पांच पुत्र हैं। आप सब व्यवसाय में अपने पूज्य पिताजी का हाथ बटाते हैं।

श्री सेठ गुलाबचन्दजी पुत्र पौत्रादि सकल परिवारिक जीवन से पूर्ण सुखी हैं। धर्म कार्यों में भी आप पूर्णता से भाग लेते रहते हैं। "गुलाबचन्द गोविन्दजी" के नाम से आपकी फर्म पर जरी, गोटा वगैरह का काम विगत ५० वर्षों से प्रमाणिकता से हो रहा है। सूरत की व्यापारी पेढ़ियों में आपका नाम उल्लेखनीय है।

★श्री सेठ जयवन्तराजजी छाजेड़—वासना (मारवाड़)

आप एक धर्म प्रेमी, उदार दिल और जन हित के कार्यों को सफल बनाने वाले सज्जन हैं। आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री हिम्मतमलजी की स्मृति (निधन १७ फर्वरी १९४६) में हिम्मतमल जयवन्तराज धर्मशाला के नाम से 'वासना' में आरामप्रद धर्मशाला बनवाई। मद्रास स्थित "श्री महावीर फण्ड" के अध्यक्ष हैं। फर्म के जनहित कार्य उल्लेखनीय हैं।

आपके सुपुत्र श्री माणकचन्द, श्री पुखराजजी, श्री देवीचन्दजी एवं श्री हस्तीमलजी हैं। आप सब उत्साही, गुण ग्राही और सौम्य प्रकृति के युवक सज्जन हैं।

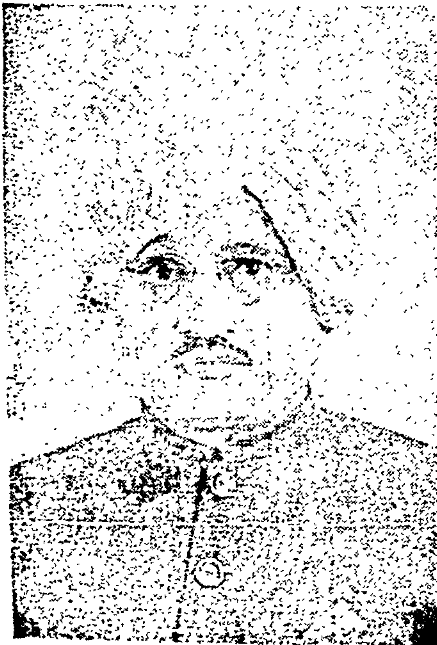
मेसर्स हिम्मतमल जयवन्तराज छाजेड़ के नाम से विगत २० वर्षों से मद्रास में नं० ३४१ त्रिपली केन हाई रोड पर सर्राफी और मनि लेण्डिंग का व्यवसाय होता है। फर्म की शाखा बेंगलोर में भी है।



सेठ श्री भीखमचन्द्रजी बांठिया, पनवेल



शाह छगनमलजी जवानमलजी
पीडवाड़ा निवासी



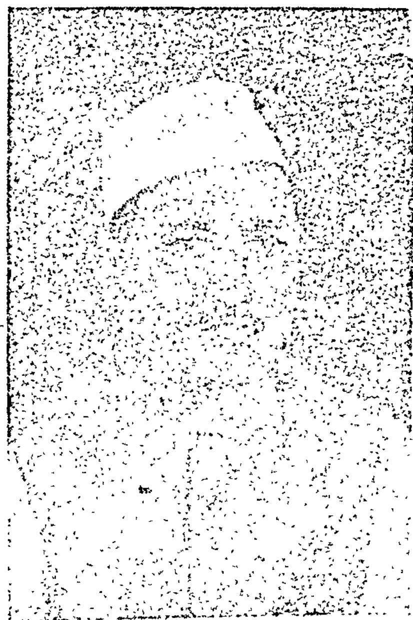
श्री जीवराजजी चोपड़ा, बाली (मारवाड़)



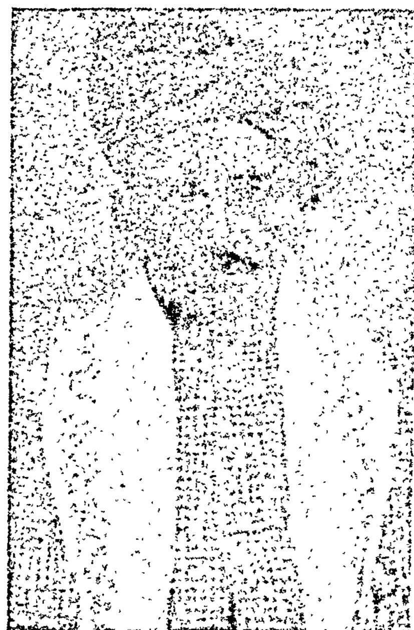
शाह छोगमलजी वन्नाजी नांदिया निवासी

★ श्री सेठ प्रेमराजजी गणपतराजजी बोहरा, पीपलिया

इस परिवार में श्री सेठ उदयचन्दजी के बाद क्रमशः खूबचन्दजी बच्छराजजी और साहबचन्दजी हुए। साहबचन्दजी के पुत्र मगराजजी व केशरीमलजी हुये। केशरीमलजी के पुत्र प्रेमराजजी सा० हुये। प्रेमराजजी ने मद्रास, विल्लीपुरम् आदि में व्यापार किया। अभी आपकी फर्म अहमदाबाद में बड़े पैमाने पर चल रही है। जोधपुर में भी आपने दुकान खोली है। प्रेमराजजी सा० ने अपने हाथों से लाखों रुपया कमाया। आप सामाजिक—धार्मिक तथा



श्री गणपतराजजी बोहरा



सेठ प्रेमराजजी बोहरा

राष्ट्रीय प्रत्येक कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। काफी उदार हैं। शुद्ध खद्दर धारण करते हैं। आपने समाज की अनेक संस्थाओं को सहायताएं दी हैं। आपके तीन पुत्र हैं—गणपतराजजी मोहनलालजी तथा सम्पतराजजी। अहमदाबाद दुकान का काम श्री गणपतराजजी संभालते हैं। बहुत कुशल तथा उदार विचारों के युवक हैं। प्रत्येक सुधार के काम में आप आगे रहते हैं। आप दवाखानों तथा शिक्षण संस्थाओं में काफी खर्च करते हैं। होनहार युवक हैं। आपके दोनों भाई भी व्यापार में आपकी मदद करते हैं। मूल निवासी पीपलिया मारवाड़ के हैं।

★ सेठ सरदारमलजी व हजारीमलजी भंसाली सांचोर निवासी अहमदाबाद

अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध कपड़ा व्यापारी मेसर्स लखमणदासजी संत रामजी नामक फर्म के वर्तमान भागीदार स्वर्गीय सेठ भागमलजी सा० के दोनों

सुपुत्र सेठ सरदारमलजी तथा सेठ हजारीमलजी हैं। आप दोनों ही बड़े उदार और मिलनसार स्वभावी हैं। धार्मिक कार्यों में उदारता पूर्वक खर्च करने में विशेष रुचि है।

सेठ सरदारमलजी के श्री रमणलालजी, श्री घमंडीलालजी तथा बस्तीमलजी नामक ३ पुत्र हैं। तथा सेठ हजारीमलजी के समर्थमलजी नामक पुत्र हैं। अहमदाबाद रस्कति मार्केट में 'लक्ष्मणदास सियाजीराम" के नाम से कपड़े का व्यवसाय होता है। अहमदाबाद की प्रतिष्ठित श्रीमंत फर्मों में आपकी गिनती है। इस परिवार का मूल निवास स्थान हांडीजा (सांचोर-मारवाड़ है)

★ सेठ लक्ष्मणदासजी सेजरामजी, अहमदाबाद

सेठ लक्ष्मणदासजी सेजरामजी का मूल निवास स्थान बालोतरा (मारवाड़) है। ३० वर्षों से हांडीजा (सांचोर मारवाड़) निवासी सेठ सरदारमलजी व हजारीमलजी भंसाली आपके साझीदार हैं। दोनों ही परिवरों के मुखियाओं की देख रेख में यह फर्म विशेष तरक्की पार ही है।

अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध बैंडी कपड़ा व्यापारियों में इस फर्म का अच्छा स्थान है। फर्म की ओर से समय समय पर धार्मिक कार्यों में बड़ी उदारता पूर्वक द्रव्य लगाया जाता है।

★ सेठ अनराजजी आबर-खोखरा (मारवाड़)

स्व० सेठ किशनमल के सुपुत्र श्री अनराजजी का जन्म सं० ४९७४ मिगसर सुदी ४ का है। आप एक योग्य व्यवस्थापक, कुशल नियोजक और बुद्धिमान सज्जन हैं। आप ठि० खोखरा के कामदार हैं। अपनी दूरदर्शिता और कार्य कुशलता से ठिकाने को ऊंचे रुतबे पर पहुंचा दिया। आपके पिता श्री ने भी उक्त ठिकाने का कार्य करते हुए अच्छा नाम कमाया। किसानों प्रति आपका रुख जैसा अच्छा है वैसे ही श्री ठाकुर साहब भी आपके कार्यों से पूर्ण सन्तुष्ट हैं। श्री गणेशमलजी और जवरीलाल नामक आपके दो सुयोग पुत्र हैं।

श्री किशनमलजी अनराजजी नामसे लेनदेन व सर्राफी का काम भी होता है।

★ सेठ घूमरमलजी वाफणा—गोड़ नदी (पूना)

आपका शुभ जन्म सं १९६८। पिता का नाम श्री कुन्दनमलजी। सार्वजनिक सामाजिक कार्यों में आप पूर्व अभिरूचि से भाग लेते रहते हैं। आप सिद्धान्तशाला अहमदनगर के सभापति एवंगोड़ नदी पांजरा पोल के सञ्चालक हैं। आपने चिंचवड़ विद्यामन्दिर में एक कमरा बनवाया। आपका परिवार गौरवशाली है।

आपके यहां साहुकारी कपड़ा कमीशन एजेण्ट तथा लेन देन व्यवसाय श्री कुन्दनमल घूमरमल वाफणा" के नाम से होता है। आप बार्शी बिजली कम्पनी के डायरेक्टर भी हैं। आपके सुपुत्र श्री सौभाचन्दजी मिलन सार तथा प्रगतिशील विचारों के युवक हैं।

★ सेठ सरुपचन्दजी भूरजी बंब कोपरगांव (नगर)

सेठ सरुपचन्दजी बंब का जन्म सं० १९२८ में हुआ। व्यवसाय में चतुराई तथा हिमत पूर्वक द्रव्य उपार्जित कर आप ने समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। सं० २००२ के ज्येष्ठ शुक्ला १२ का आप का स्वर्गवास हो गया। हीरालालजी, मन्नालालजी कुंवरलालजी फुलचन्दजी तथा मनसुकलालजी नामक छे पुत्र हैं। आप सब व्यापार में पूर्ण रूपसे भाग लेते है। श्री मोतीलालजी के सोभाचन्दजी प्रेमसुखजी नेमीचन्दजी तथा बन्शीलाल जी नामक चार पुत्र हैं श्रीहीरालालजी के सुवालालजी पोपटलालजी मोहन लालजी रमणलालजी तथा सुभापचन्द्रजी के शांतिलालजी तथा कांतिलालजी नामक दो पुत्र हैं। कुंवरलालजी के सुगनलाल



लालजी तथ मदानलालजी नामक दो पुत्र हैं। फुलचन्दजी के सुरेशकुमारजी तथा रमेशकुमारजी नामक दो पुत्र हैं।

इस परिवार की नगर और नाशीक जिले के ओसवाल समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके यहां सेठ सरुपचन्दजी भुरजी बंब नामक से आडत साहूकारी तथा कृषि का काम होता है।

★माननीय श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर

श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया देश, धर्म तथा समाज के परखे हुए आगेवान नेताओं में से एक हैं। आपका क्षेत्र बहुत ही विशाल रहा! आपका जन्म सन १८८५ नवम्बर १२ को अहमद नगर में हुआ। सन् १९१० में आपने वकालात की परीक्षा पास की एवं वकालात के साथ सार्वजनिक सेवा भी करते रहे। सन् ४१ में व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल पधारे। सन् १९४२ को सब नेताओं के साथ आप भी गिरफ्तार कर लिये गये और ५ मई सन् ४४ को रिहा हुए। इसके बाद आपने अपना वकालात का पेशा छोड दिया और पूरा समय सार्वजनिक सेवाओं में देने लगगये बम्बई प्रान्तीय असेम्बली के ३ बार सदस्य चुने जा चुके है। सन १९४८ से बम्बई धारासभा के प्रेसीडेंट और स्पीकर हैं।

आपने स्थानक वासी जैन साधु समाज की एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया है। वृद्धावस्था होने पर भी उपदेश में भ्रमण कर जन जागृति का कार्य किया

स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स में आपका सभापतित्व काल एक महत्वपूर्ण अध्याय रहेगा। श्री अ० भा० ओसवाल महासम्मेलन के उप सभापति हैं। इस प्रकार आपकी सेवायें सर्वतोमुखि हैं इसके अतिरिक्त और भी कई संस्थाओं के आप अध्यक्ष व सभापति हैं।

आप बड़े उदार हृदय भी हैं। आपने सम्पत्ति का बहुत बडा भाग राष्ट्रीय, धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में लगाया एवं लगाते हैं। राष्ट्रीय तथा धार्मिक सेवाओं के साथ साथ आप एक महान सुधारक हैं। आपने ओसवाल समाज में रूढ़ी का त्याग कर एक महान आदर्श रक्खा व समाज में जबरदस्ती क्रान्ति की है।

समाज में ऐसे नररत्न कम मिलेंगे जिनके पास पैसा भी हो और कार्य करने की शक्ति भी। आपके पास सब ही चीजें हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री नवलमल जी फिरोदिया भी आप ही के पद चिन्हों पर चलने वाले समाज तथा देश सेवक युवक है। सार्वजनिक सेवा में भी काफी भाग लेते हैं।

★श्री रायचन्दजी मूथा वादनवाड़ी (सतारा)

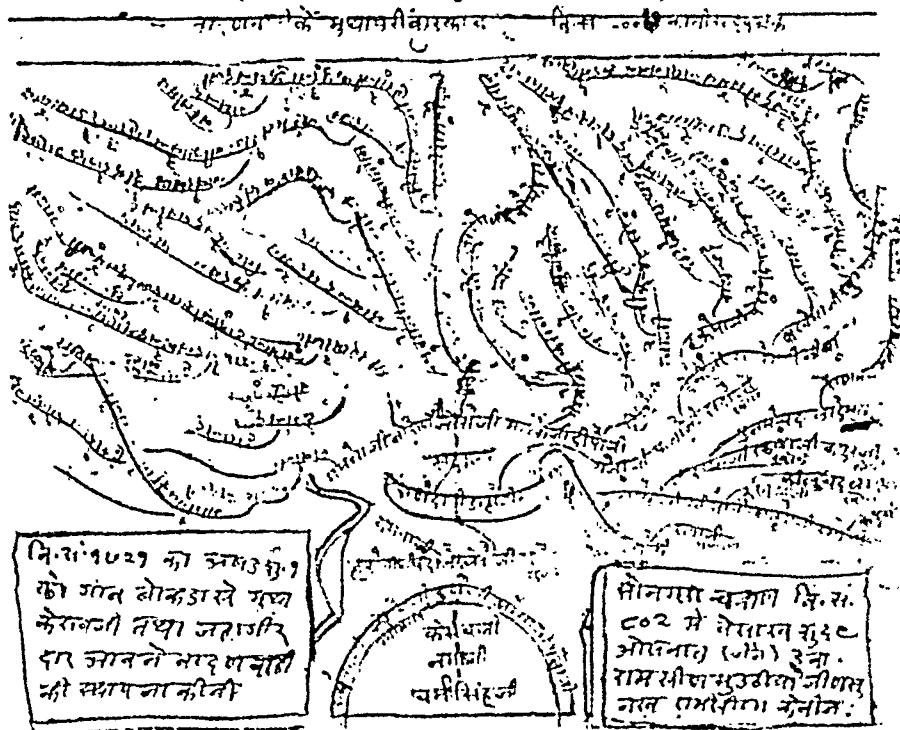
सं० १९६७ में आषाढ़ सुदी ८ को आपका शुभ जन्म श्री फूल चन्दजी के घर हुआ। श्री फूलचन्दजी धार्मिक और साधुसन्तों की सेवा में अभिरुचि रखने वाले सज्जन थे।



श्री रायचन्दजी सामाजिक कार्यकर्ता एवं उदार हृदय सज्जन हैं। वादनवाड़ी की जैन पुस्तकालय के पुनर्जीवन में आपका अतिशय सहयोग रहा। कांग्रेस कमेटी के भी आप कर्मठ सदस्य हैं। आपके पुत्र विनयकुमारजी का जन्म सं० १९८८ का है जो अभी इन्दौर में मैट्रिक में अध्ययन कर रहे हैं। जड़ाव, लीला, कमला और शान्ती नामक चार कन्यायें भी हैं।

—हुमगांम (सातरा) के हिन्द मिल्स (आंइल एण्ड राइस मिल्स) के आप मैनेजर है।

बादन वाड़ी (मारवाड़) के मूथा परिवार का वंश वृक्ष
(श्री रायचन्दजी मूथा द्वारा निर्मित)



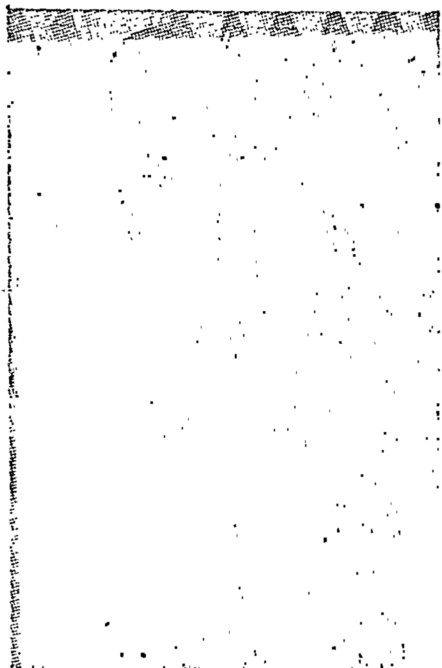


श्री विनयकुमार जी



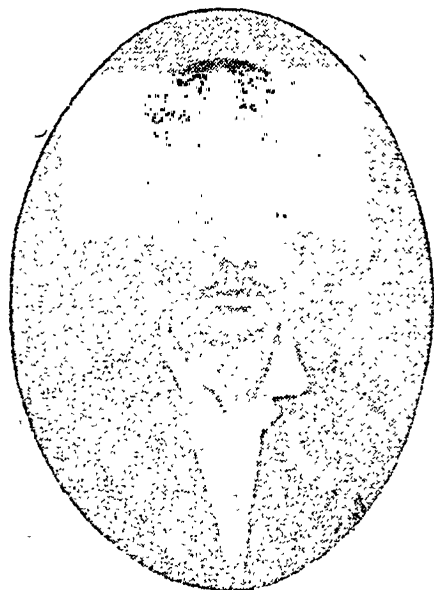
श्री रायचन्दजी मूथा का परिवार बादन वाड़ी

★श्री सेठ मुरलीधरजी दौलतरामजी बोहरा—पंचगणी (सतारा)



श्री सेठ दौलतरामजी के सुपुत्र श्री मुरलीधरजी का शुभ जन्म सं १६६३ में हुआ। अपने पूर्वजों के अनुरूप ही धर्म निष्ठ, उदार दिल और परोकारी सज्जन हैं। आपके सुपुत्र श्री शान्तिलालजी उत्साही नवयुक हैं। मुन्नी और सुशीला नामक आपके दो कन्यायें भी हैं।

"शाह मुरलीधर दौलतराम बोरा" के नाम से आप किराणा का व्यापार करते हैं। स्थानीय व्यापारी समाज में आप प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं। तथा सर्वजनिक एवं सामाजिक कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं।



★श्री कन्हैयालालजी भंडारी, कराड़ (सतारा)

आपका मूल निवास स्थान वादनवाड़ी (मारवाड़) है। आयु ३५ वर्ष। आपकी सामाजिक सुधार कार्यों में विशेष दिलचस्पी है। सार्वजनिक व शिक्षा प्रचार कार्यों में तन मन व धन से सहयोगी रहते हैं। वर्तमान में कराड़ (सतारा) में आपका कपड़े का व्यवसाय होता है।

★सेठ प्रागजी जयवन्त राजजी भंडारी, कराड़

श्री जयवन्तराजजी का जन्म सं. १६८३ कार्तिक शुक्ला १३ को वादनवाड़ी

निवासी शाह खूबचन्दजी नेमाजी भंडारी के यहाँ हुआ। वहां से आप मु० लेटा (जालोर) निवासी शाह प्रागनी जेरूपजी के यहां गोद आये।

आप एक व्यापार दक्ष, मिलनसार स्वभावी सज्जन हैं।



★सेठ हीराचन्दजी परमार पूना

आपका मूल निवास स्थान सादड़ी मारवाड़ है। आप कुशल व्यवसायी होने के साथ २ एक सुधारक विचार वान उत्साही सज्जन हैं। कई सार्वजनिक संस्थाओं में आपने अच्छे पदों पर काम किया है। सादड़ी के शुभ चिन्तक जैन समाज तथा आत्मानन्द जैन विद्यालय और जैन पुस्तकालय के अर्से तक मन्त्री रहे। अ० भा० श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स और वरकाणा विद्यालय के माननीय सदस्य हैं। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों में आप पूर्ण दिल चस्पी रखते हैं। आपके सुपुत्र श्री चांदमल जी शिक्षण ग्रहण कर रहे हैं।

★श्री सेठ सुखराजजी ललवाणी—वैताल पेठ, पूना



जन्म सं० १९५८ में हुआ। आपका सार्वजनिक कार्य उत्साह जनक है। आपके लघु भ्राता केशरीमलजी धार्मिक मनोवृत्ति के सज्जन हैं आप गोड़ी पार्श्वनाथजी के मन्दिर, श्री जैन श्वेताम्बर दादावाड़ी के एवं जैन सहायक फण्ड के मैनेजिंग ट्रस्टी हैं इसके अतिरिक्त और भी कई सामाजिक सभा संस्थाओं के सदस्य एवं सेक्रेटरी हैं। इनसे छोटे श्री मोहनराजजी हैं आपने एम. बी. बी. एस. पास करके पूना में अपनी प्रेक्टिस कर रहे हैं। आपके सुरेशकुमार और अशोककुमार नामक दो पुत्र हैं।

डाक्टर साहब के छोटे भाई श्री कान्ति-

लालजी ने भी शिक्षा इण्टर तक की है और व्यापार में सक्रियता से भाग लेते हैं। आप चारों भाइयों में घनिष्ठ प्रेम है।

आप वेताल पैठ पूना "जवाहरमलजी सुखराजजी" के नाम से वर्तनों का बड़ाभारी व्यापार करते है। विदेशों से थोक बन्द व्यापार एजेन्सी के रूप में होता है। इसी फर्म की शाखा से कपड़े का थोक बन्द व्यापार श्री सेठ सुखराजजी के पुत्र सेठ सम्पतराजजी ललवाणी के हाथों से होता है। श्री सम्पतराजजी धार्मिक विचारों के तथा साधुओं एवं मुनियों के पूर्ण भक्त हैं।

★श्री सेठ पूनमचन्दजी गांधी, कोल्हापुर

श्वेताम्बर आम्नाय के उपासक श्री सेठ पूनमचन्दजी का जन्म १९६४ में गुड़ा (सिरोही) में हुआ। आपके पूज्य पिताजी दोलाजी पूना जिले में मोती का व्यापार करते थे परन्तु सं० १९७४ में कोल्हापुर में आकर बस गये एवं यहीं पर अपना व्यवसाय चालू किया।



श्री पूनमचन्दजी धर्म निष्ट श्रावक हैं धार्मिक पूजा पाठ एवं शास्त्रवाचन में आप रत रहते हैं। आप कुम्भोज गिरी तीर्थ कमेटी व श्री आत्मानन्द जैन सेवा के मन्त्री पर सुशोभित हैं। कुम्भोजगगिरी तीर्थ के जीर्णोद्धार में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आपके श्री ज्ञानमलजी, वेडरमलजी, एवं सुदर्शनजी नामक तीन पुत्र हैं।

सराफा वाजार में श्री वृद्धिचन्दजी पूनमचन्दजी के नाम आपकी फर्म पर सर्राफी का काम होता है।

★श्री सेठ ज्ञानमलजी अमरचन्दजी, कोल्हापुर

फूगणी (सिरोही) निवासी सेठ नाथाजी और मोतीजी सहोदर बन्धु थी। आप दोनों का प्रेम आदर्श रूप था। श्री नाथाजी के पुत्र ज्ञानमलजी हैं एवं मोतीजी के अमरचन्दजी नामक पुत्र हैं। सं. १९६५ में आप लोग कोल्हापुर आये एवं अपनी फर्म स्थापित कर सर्राफी एवं सूती मालका थोक बन्ध व्यवसाय प्रारम्भ किया। आप बन्धुओं ने फूगणी में कलश चढाये जिसमें उदारता पूर्वक धार्मिक कार्यों के लिए खर्च किया और समय २ पर करते रहते हैं। कुम्भोज गिरी तीर्थ पर कलश स्थापित कर उदारता दिखलाई। आप श्वे० मंदिर अम्नायी हैं।
में स।

आप ग्वालियर राज्य हरिजन बोर्ड के सदस्य हैं। जो अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ के तत्वावधान में राज्य में कार्य करता है। आप मजलिस आम तथा मजलिस कानून के भी सदस्य थे। भेलसे के एस० एस० एल० जैन हाई स्कूल के संस्थापकों में से आप एक हैं।

ग्वालियर राज्य में सन् १९४७ में उत्तरदायी शासन की स्थापना पर आपको अर्थ विभाग दिया था और मध्यभारत के प्रथम मंत्री मंडल में भी आप अर्थ मंत्री नियुक्त किए गये थे।

१२ अक्टूबर १९५० को आप मध्य भारत के मुख्य मंत्री निर्वाचित हुए हैं।

★सेठ चन्दूलालजी खुशालचन्दजी, बम्बई

इस कुटुम्ब के पूर्वजों के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक कार्य आज भी उनके यशों गाथाओ का गान कर रहे हैं। प्रतिभाशाली और सर्वमान्य इस उदार कुल के ज्येष्ठ पुरुष श्रीमान झवेरचन्दजी चंदाजी शान्त एवं गम्भीर प्रकृति के परमउदार स्वभावी और सेवा भावी सज्जन हैं। हाल ही में प्राचीनतम तीर्थ हस्तुण्डी राता महावीर जी के जीर्णोद्धार का कारोभार आपने ही वहन कर लगभग चार लाख की राशी व्यय करके जीर्णोद्धारान्तर सुविख्यात जैनचार्य १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

श्री झवेर चन्दजी समाज के अग्रगण्य कार्यकर्ता हैं और बड़े ही मिलन सार और सरलस्वभावी हैं। आप बीजापुर मारवाड़ के ग्राम पंचायती खाता के सरपंच एवं जे० पी० हैं आप निम्नलिखित संस्थाओं के कार्यकर्ता एवं सदस्य और लाइफ मेम्बर हैं—श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यालय वरकाणा (मारवाड़) श्री पार्श्वनाथ जैन बालाश्रम फालना (मारवाड़) अ० भ० जैन श्वे० मूर्ति पूजक कॉन्फ्रेन्स-बम्बई, श्री मारवाड़ जैन पोरवाड़ संघ सभा इत्यादि अनेक संस्थाओं के कार्यकर्ता हैं।

श्रीमान् झवेरचन्दजी व्यवसाय में कुशल होने पर भी हमेशा सेवा कार्य में ही संलग्न रहते हैं। व्यवसाय सम्बन्धी सर्व कार्य उनके लघुभ्राता श्री हजारीमलजी सा० एवं अन्य भ्रातृगण श्री हंसराजजी, श्री उदेचन्दजी श्री खेमनादि आदि पुत्र पोत्रों को सौंप रक्खा है।

श्री हजारीमलजी बड़े ही सेवा भावी एवं मिलनसार स्वभाव के सज्जन हैं। श्री हंसराजजी ने राता महावीरजी में निजि द्रव्य से एक आराम प्रद धर्मशाला बनवाई है।

★ सेठ भीवराजजी देवीचन्दजी पारख, बम्बई

वर्तमान में इस परिवार में भीवराजजी व देवीचन्दजी के पौत्र क्रमशः जैत

मलजी व मनसुख दासजी विद्यमान हैं। आप बड़े ही उत्साही व व्यापार कुशल हैं। इस परिवार की मारवाड़ नाशिक खानदेश आदि प्रदेशों में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपका वर्तमान निवास महामन्दिर, जोधपुर में है। आपका "भींवराज देवीचन्द" के नाम से मुंबई, "भींवराज कानमल" के नाम से नांदगांव व "जुगराज केशरीमल" के नाम से येवले में व्यापार चलता है।

★सेठ रूपचन्दजी वीरचन्दजी एन्ड कं. बम्बई

जैन श्वेताम्बर समाज के पाल गोता चौहान श्री सेठ तिलोकचन्दजी के पुत्र श्री रूपचन्दजी का जन्म सं० १९५६ मिगसर वदी १३ का है। आपकी सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी रुचि प्रशंसनीय है। श्री महावीर जैन गुरुकुल सरूपगंज के आप आजीवन सदस्य हैं। आप एक व्यवसाय कुशल, मिलनसार एवं उदार हृदय सज्जन हैं। आपका मूल निवास स्थान सिरोही स्टेट के अन्तर्गत स्वरुप गंज है।

श्रीवीरचन्दजी, कान्तिलालजी, शान्तिलालजी एवं गोपीचन्दजी नामक आप के चार सुयोग्य पुत्र हैं। श्री रूपचन्द वीरचन्द एण्ड को के नाम से बम्बई में विगत में ५० वर्षो से आपकी फर्म से सर्राफी आर्डर के अनुसार जेवरात और कमिशन एजेण्ट का काम प्रामाणिकता से होता है।

★ श्रीलाला मुसद्दीलाल ज्योतिप्रसाद जैन बम्बई,

गर्ग (अग्रवाल जैन) गोत्रोत्पन्न श्री ला. मुसद्दीलालजी के पुत्र ज्योति प्रसाद जी, श्री जग ज्योतिसिंहजी एवं श्री मलखानसिंहजी वर्तमान में उपरोक्त फर्म का संचालन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। आप तीनों सहोदरों का प्रेम आदर्श एवं अनुकरणीय है। जिस मिलन सारिता और सहकारिता से आपका कार्य हो रहा है उससे आपका व्यवसाय दिन प्रति दिन उन्नति पर है। आप बन्धु उदार, हंसमुख और मिलनसार प्रकृति के सज्जन हैं।

श्री लाला जगज्योतिसिंहजी के श्री प्रकाश और सुरेशचन्द्र और लाला मलखानसिंहजी के जयप्रकाश नामक पुत्र है। आपका यह परिवार मेरठ जिले के अन्तर्गत बड़ौत ग्राम निवासी है।

मेसर्स लाला मुसद्दीलाल ज्योतिप्रसाद जैन नामक फर्म पर कपड़े और लेस का सुविस्तृत और सुव्यवस्थित व्यवसाय होता है। फर्म की शाखा देहली में लाला मुसद्दीलाल मलखानसिंह जैन के नाम से है।

★श्री सेठ अचलदासजी सिंघवी, बम्बई

जाति, समाज और धर्म सेवा परायण श्री सेठ अचलदासजी का जन्म सं. १९५८ का है। श्री वर्धमान बोर्डिंग सुमेरपुर के आजीवन सदस्य एवं जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, पोरवाल संघ सभा एवं अचलगढ़ श्वेताम्बर तीर्थ कमेटी के

सदस्य के रूप में आपकी सेवायें स्मरणीय हैं।

आपका मूल निवास स्थान आबू के अन्तर्गत "रोहीड़ा" नामक ग्राम है और पोरवाड़ सिंघवी गोत्रोत्पन्न हैं। श्री पार्श्वनाथ हाईस्कूल वरकाणा के आजीवन सदस्य के रूप में आपका शिक्षा प्रेम व्यक्त होता है। श्री पुखराजजी धरमचन्दजी और गणेशरामजी नामक आपके तीन पुत्र हैं।

नं. १७-२१ विट्ठलवाड़ी पर "त्रिलोकचन्द मोतीचन्द" के नाम से इम्पोर्ट व एक्सपोर्ट का व्यवसाय होता है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद एवं बम्बई में भी भिन्न २ नामों से सुविस्तृत रूप से व्यवसाय होता है। दी हिन्दुस्थान मर्चेन्ट एसोसीयेशन के आप मेम्बर हैं

★श्री सेठ जुहारमलजी मोतीलालजी —बम्बई

इस फर्म के मालिक श्री रूपचन्दजी कोठारी के सुपुत्र श्री रा० सा० नेनमलजी, जुहारमलजी, कुन्दनमलजी तथा मोतीलालजी हैं। आप (खींचा) कोठारी गोत्रोत्पन्न जैनहैं। शिवगंज के आप मूल निवासी हैं। आपके परिवार की ओर से वरकाणा में श्री पार्श्वनाथजी का मेला भरवाया एवं हरकचन्द रूपचन्द दरबार मिडिल स्कूल भेंट की। राय साहब नैनमलजी श्री पार्श्वनाथ जैन हाई स्कूल वरकाणा के आजीवन सदस्य हैं। आपके श्री जीवराजजी, भैरोंलालजी, गौतमचन्दजी, ज्ञानचन्दजी, हुक्मीचन्दजी, अमृतलालजी और बाबूलालजी पुत्र हैं।

"मेसर्स हरकचन्द रूपचन्द" फर्म नायनप्पा नायक स्ट्रीट मद्रास में विगत ७५ वर्षों से एवं "जुहारमल मोतीलाल" कालबा देवी रोड़ जुहार पैलेस बम्बई २ में ३५ वर्षों से जनरल मर्चेन्ट एवं कमीशन एजेन्ट का व्यवसाय बड़ी सफलता से कर रही है।

आपका यह समृद्ध परिवार मिलनसार, एवं उदार स्वभावी, एवं धार्मिक कार्यों में मुख्यरूप से भाग लेने वाला है। शिवगंज (मारवाड़) समाज में आप लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा है।

★श्री सेठ माणेकलाल भाई अमोलक भाई, घाटकोपर, बम्बई

श्री नगीनदास भाई तथा माणेकलाल भाई सेठ अमोलक भाई के पुत्र हैं। श्री नगीनदास भाई ने गांधी शिक्षण के तेरह भाग प्रकाशित करवाये। सब भाई पूर्ण राष्ट्रवादी होते हुए धर्मवादी पर्याः हैं। हर धार्मिक कार्य में आगे रहते हैं। महात्मा गांधीजी को एक मुश्त एक लाख रूपया भेंट किया। बम्बई की राष्ट्रीय तथा धार्मिक प्रवृतियों में आपका मुख्य हाथ रहता है। आपकी ओर से जैन स्थानक में पुस्तकालय एवं सुन्दर वाचनालय है। श्री माणेकलाल भाई के सुपुत्र का नाम रतनलाल भाई है जो बहुत होनहार युवक है। श्री माणेकलाल भाई कान्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी भी हैं।

★मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल जौहरी, बम्बई

यह फर्म ५० वर्ष से बम्बई में हीरे का व्यवसाय कर रही है। वर्तमान में इस फर्म के मालिक सेठ हेमचन्द भाई, सेठ भोगीलाल भाई, सेठ मणिलाल भाई एवं चन्दुलाल भाई हैं। आप लोग पाटन (गुजरात) निवासी हैं।

आप सब सज्जन मिलनसार, सहृदय एवं व्यापार कुशल हैं। फर्म का व्यापारिक परिचय निम्न प्रकार से है—

१. बम्बई—मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल जौहरी, धनजी स्ट्रीट। फर्म पर हीरे और पन्ने का थोक व्यापार होता है।

२. एन्टवर्प—(बेलजियम) "मेसर्स हेमचन्द मोहनलाल" इस फर्मके द्वारा भारत के लिए हीरा खरीदकर भेजा जाता है।

श्री सोमचन्दजी वन्नाजी बम्बई,

मारवाड़ जैन विकास के सम्पादक श्री सोमचन्दजी एक सफल साहित्यिक सज्जन हैं। जैन धर्म और समाज के विषय पर आपके सम्पादकीय लेख अपना एक नूतन क्रान्तिमय सन्देश देते हैं। साहित्यक गोष्ठियों में आप उत्साह से भाग लेकर अपनी साहित्य रसिकता आदर्श उपस्थित करते हैं। अच्छे साहित्यक होने के साथ २ आप सफल व्यवसायी भी है। एस. वी. जीवाणी नामक आपकी फर्म म्युनीसीपल कोन्ट्राक्टर एवं टिम्बर मर्चेन्ट है।

आपके रमेशचन्दजी नामक एक पुत्र हैं। फर्म का पता—मेसर्स. एस. वी. जीवाणी २५. २ री सुतार गली सच्चिदानन्द भुवन बम्बई नं०४

★सेठ देवीचंदजी दलीचन्दजी एन्ड कम्पनी, बम्बई

यह फर्म बम्बई के सर्वोपरी छाता और निर्माता व्यापारियों में प्रमुख है। वर्त्तमान में बाली निवासी सेठ श्री सागरमलजी चोपड़ा के संचालन में यह फर्म विशेष उन्नति पर है।

सेठ सागरमलजी एक सार्वजनिक जन हित कार्यों में पूर्ण दिलचस्पी रखने वाले सुधार व शिक्षा प्रेमी उदार चेता सज्जन हैं। मारवाड़ जैन युवक संघ के बाली अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। आपके छोटेभाई श्री चंपालालजी एक अद्वितीय प्रतीभा वाले होनहार युवक थे किन्तु केवल २२ वर्ष की अल्पायु में ही आप स्वर्गवासी हो गये। दोनों भ्राताओं में बड़ा प्रेम था। मेसर्स देवीचन्द दलीचंद एन्ड कं० के नाम से ८२-८४ नई हनुमानगली बम्बई नं० २ में आपका वृहद् काम काज होता है। सेठ सागरमलजी विलायत यात्रा कर आये हैं।

★ श्री सेठ सागरमलजी नवलाजी, बम्बई

सं० १९३९ के ज्येष्ठवदि १३ को श्वेताम्बर पोरवाल श्री नवलाजी के घर

श्री सागरमलजी का शुभ जन्म हुआ। श्री सागरमलजी उदार धर्म प्रेमी एवं नेतृत्वशील महानुभाव है। श्री जैन आदिश्वर चेरिटी टेम्पल, धर्मशाला के ट्रस्टी, बम्बई जैन दवाखाना के सदस्य तथा श्री पाश्र्वनाथ जैन विद्यालय तथा बोर्डिंग, श्री पोरवाल गोड़वाड़ संघ सभा एवं वर्धमान जैन बोर्डिंग के आप आजीवन सदस्य हैं। ग्राम-नारलाई (मारवाड़) के सरपंच है एवं यहां के एक गणमान्य व्यक्ति हैं। तथा स्थानीय जैन देव स्थान पेढी के ट्रस्टी भी हैं।

श्री पोरवाड़ जैनइतिहास समिति के आप सदस्य हैं तथा इसके प्रकाशन में विशेष सहयोग दे रहे हैं। इस प्रकार से आप का सामाजिक जीवन अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

आपके सुपुत्र श्री मेघराजजी, मिट्ठालालजी, केशरीमलजी, शेषमलजी तथा जालमचन्दजी आपही के पाद चिन्हों पर चलने वाले सज्जन हैं। आप सब व्यवसाय में पूर्ण सहयोग देते हैं।

नं० १५ दागीना बाजार बम्बई नं० २ में श्री सागरमलजी नवलाजी के नाम से आपकी फर्म विगत ५० वर्षों से सर्राफी एवं सोना चांदी के आभूषणों का व्यापार बड़ी प्रामाणिकता से कर रही हैं।

★मेसर्स भोगीलाल लहरचन्द १३४, १३६ जव्हेरी बाजार, बम्बई

इस फर्म के वर्तमान मालिक सेठ लहरचन्द अभयचन्द व भोगीलाल लहरचन्द हैं। सेठ लहरचंद भाई करीब ५० वर्षों से हीरे का व्यवसाय करते हैं। आप जैन बीसा श्रीमाल सज्जन हैं। आपका मूल निवासस्थान पाटन (गुजरात) है। इस फर्म की तरक्की सेठ लहरचन्द भाई के हाथों से हुई।

वर्तमान में आपका व्यापारिक परिचय इस प्रकार है—

(१) मेसर्स भोगीलाल लहरचन्द चौकसी बाजार बम्बई। T. A. Shashkant.—इस फर्म पर हीरा, पन्ना मोती आदि नवरत्नों का व्यापार होता है। तथा विलायत से डायरेक्टर जवाहरात का इम्पोर्ट होता है।

(२) वाटली वाई कम्पनी फोर्ट—इस फर्म पर मिल, जीन, एवं एग्रीकल्चर (खेतीवाड़ी) सम्बन्धी मशीनरी का बहुत बडा व्यापार होता है।

★ सेठ नरसिंहजी मनरूपजी, बम्बई

हूंडिया राठोड़ गौत्रीय सेठ नरसिंहजी मनरूपजी का मूलनिवास स्थान अगवरी मारवाड़ है। आपके पुत्र श्री गुलाबचन्दजी का जन्म सं० १६६५ कार्तिक कृष्णा ८ है।

आप श्वेताम्बर मंदिर आम्नायी हैं। 'सेठ नरसिंहजी मनरूपजी' के नाम से थाणा बम्बई में सोना चांदी तथा जवाहरात का व्यापार होता है।

स्व० सेठ नरसिंहजी का जीवन बड़ा धर्ममय था। थाणा जिन मंदिर के

ट्रस्टी रहकर आपने मंदिर निर्माण में बड़ा योग दिया था। सेठ गुलाबचन्दजी भी एक धर्म प्रेमी सज्जन हैं। परोपकारी कार्यों में उदारता पूर्वक सहायता करते रहते हैं। आपके मांगीलालजी नामक पुत्र हैं।

★सेठ नवलचन्दजी गूलाजी एण्ड कम्पनी, बम्बई

खुडाला (मारवाड़) निवासी सेठ हजारीमलजी के ३ पुत्र हुए—श्री पृथ्वीराज जी (जन्म सं० १९५९ वैशाख सुदी १४), भभूतमलजी तथा श्री ओटरमलजी। श्री पृथ्वीराजजी के ५ पुत्र हैं—श्री शान्तिलालजी, चपालालजी, देवराजजी, दानमलजी तथा जसवंतरायजी।

यह परिवार श्वेताम्बर जैन अनुयायी है। मजगांव (बम्बई) में हजारी सिल्क मिल्स है। लोअर कोलाबा में क्रिटिज रोड़ पर 'नवलचंद गूलाजी' के नाम से भी एक शाखा है। बम्बई की प्रतिष्ठित व श्रीमन्त में आपका नाम है।

सेठ पृथ्वीराजजी एक धर्म निष्ठ और समाज हितैषी सज्जन हैं। मारवाड़ की शिक्षण संस्थाओं में आपकी समय समय पर बड़ी सहायता रहती है। पार्श्वनाथ जैन हाई स्कूल फालना को आपने २० हजार की एक मुश्त स्वयं सहायता प्रदान की और डेपूटेशन में भ्रमण कर सहायता संग्रह करवाई। हॉई स्कूल में आप पेट्रेन हैं। अन्य सार्वजनिक जनहित के कार्यों में आप सदा परम सहायक रहते हैं।

★मेसर्स अमृतलाल एण्ड को० ज़रीवाला, सूरत

सूरत की उपरोक्त फर्म जरी वगैरह का कार्य लगभग सात वर्ष से सुचारु रूपेण कर रही है। तथा विगत १० वर्षों से "शिवलाल हर किशनदास" के नाम से कपड़ा बनाने का कार्य भी उत्तम रीति से कर रही है। फर्म की प्रामाणिकता और श्रेष्ठता का श्रेय फर्म के भागीदार श्री अमृतलालजी, बाबूभाई, कंचनलालजी एवं केशवलालजी की कार्य पटुता को है। आप लोगों के सहयोग एवं मिलनसारिता से फर्म की उन्नति और प्रतिष्ठा बढ़ी है। समय समय पर शिक्षा संस्थाओं और सार्वजनिक हित कार्यों में फर्म की ओर से गुप्त सहायता मिलती रहती है।

श्री अमृतलालजी के मूलचन्ददास श्री बाबूभाई के रमेशचन्द्र और ईश्वरलाल, श्री कञ्चनलालजी के कान्तिलाल, अरविन्दलाल और प्रवीणचन्द्र तथा श्री केशव लालजी के नवीनचन्द नामक पुत्र है। आप सब वैष्णव मतावलम्बी हैं।

अमृतलाल एन्ड को० जरीवाला के नाम से यहां हम हर प्रकार का जरी माल गोटा, किनारी, बांकड़ा, फूल चंपा तथा रेशमी सूती कपड़े के थोक बनाने वाले तथा विक्रेता हैं।

★श्री सेठ गुलाबचन्दजी खत्री, सूरत



श्री सेठ गोविन्दजी खत्री एक धर्मनिष्ठ सज्जन थे। आपके सुपुत्र श्री गुलाबचन्दजी का जन्म सं० १६४१ मार्गशीर्ष सुदी ६ का है। जहां आप व्यापार दक्ष पुरुष हैं उतने ही उदार दिल और सत्यनिष्ठ हैं। स्थानीय हनुमानजी के मन्दिर में समय समय पर आपने कई वस्तुयें भेंट स्वरूप प्रदान की। आपके श्री मगनलाल भूषणदासजी, छोटेलालजी मोहनलालजी एवं बलवन्तरायजी नामक पांच पुत्र हैं। आप सब व्यवसाय में अपने पूज्य पिताजी का हाथ बटाते हैं।

श्री सेठ गुलाबचन्दजी पुत्र पौत्रादि सकल परिवारिक जीवन से पूर्ण सुखी हैं। धर्म कार्यों में भी आप पूर्णता से भाग लेते रहते हैं। "गुलाबचन्द गोविन्दजी" के नाम से आपकी फर्म पर जरी, गोटा वगैरह का काम विगत ५० वर्षों से प्रमाणिकता से हो रहा है। सूरत की व्यापारी पेढ़ियों में आपका नाम उल्लेखनीय है।

★श्री सेठ जयवन्तराजजी छाजेड़—वासना (मारवाड़)

आप एक धर्म प्रेमी, उदार दिल और जन हित के कार्यों को सफल बनाने वाले सज्जन हैं। आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री हिम्मतमलजी की स्मृति (निधन १७ फर्वरी १६४६) में हिम्मतमल जयवन्तराज धर्मशाला के नाम से 'वासना' में आरामपद धर्मशाला बनवाई। मद्रास स्थित "श्री महावीर फण्ड" के अध्यक्ष हैं। फर्म के जनहित कार्य उल्लेखनीय हैं।

आपके सुपुत्र श्री माणकचन्द, श्री पुखराजजी, श्री देवीचन्दजी एवं श्री ...तीमलजी हैं। आप सब उत्साही, गुण ग्राही और सौम्य प्रकृति के युवक सज्जन ...।

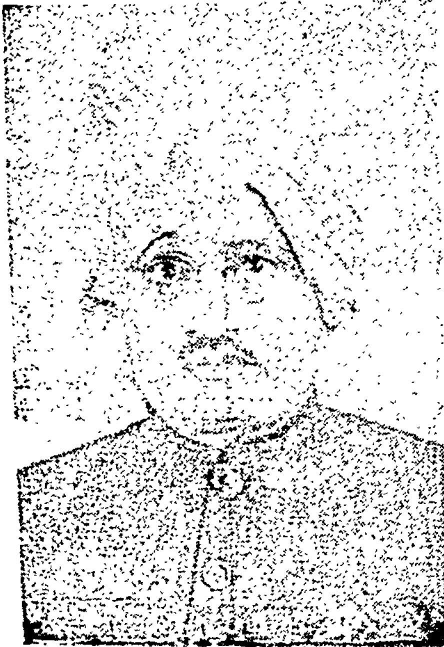
मेसर्स हिम्मतमल जयवन्तराज छाजेड़ के नाम से विगत २५ वर्षों से ...स में नं० ३४१ ट्रिप्लीकेन हाई रोड पर सराफी और मनि लेण्डिंग का व्यव... होता है। फर्म की शाखा बैंगलोर में भी है।



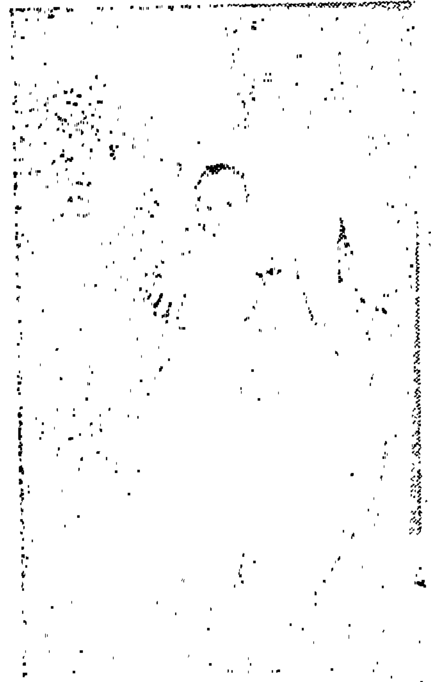
सेठ श्री भीखमचन्दजी बांठिया, पनवेल



शाह छगनमलजी जवानमलजी
पीडवाड़ा निवासी



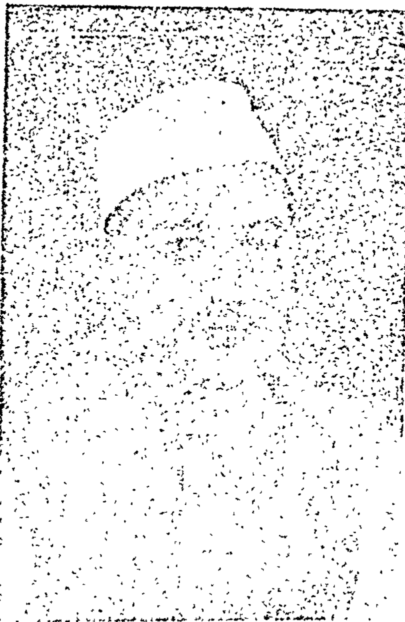
श्री जीवराजजी चोपड़ा, बाली (मारवाड़)



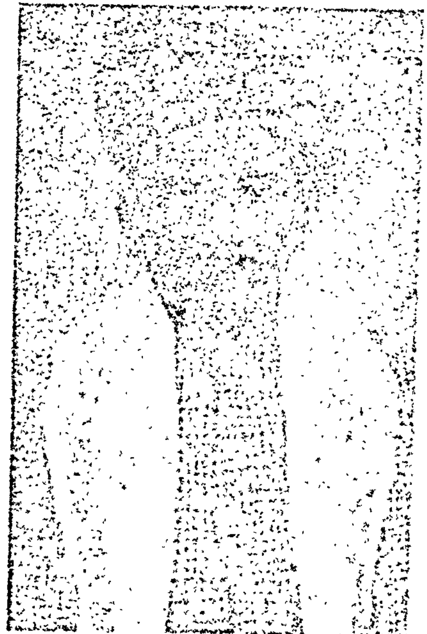
शाह छोगमलजी वनाजी नांदिया निवासी

★ श्री सेठ प्रेमराजजी गणपतराजजी बोहरा, पीपलिया

इस परिवार में श्री सेठ उदयचन्दजी के बाद क्रमशः खूबचन्दजी वच्छराजजी और साहबचन्दजी हुए। साहबचन्दजी के पुत्र मगराजजी व केशरीमलजी हुये। केशरीमलजी के पुत्र प्रेमराजजी सा० हुये। प्रेमराजजी ने मद्रास, विल्लीपुरम् आदि में व्यापार किया। अभी आपकी फर्म अहमदाबाद में बड़े पैमाने पर चल रही है। जोधपुर में भी आपने दुकान खोली है। प्रेमराजजी सा० ने अपने हाथों से लाखों रुपया कमाया। आप सामाजिक—धार्मिक तथा



श्री गणपतराजजी बोहरा



सेठ प्रेमराजजी बोहरा

राष्ट्रीय प्रत्येक कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। काफी उदार हैं. शुद्ध खद्दर धारण करते हैं। आपने समाज की अनेक संस्थाओं को सहायताएं दी हैं। आपके तीन पुत्र हैं-गणपतराजजी मोहनलालजी तथा सम्पतराजजी। अहमदाबाद दुकान का काम श्री गणपतराजजी संभालते हैं। बहुत कुशल तथा उदार विचारों के युवक हैं। प्रत्येक सुधार के काम में आप आगे रहते हैं। आप दवाखानों तथा शिक्षण संस्थाओं में काफी खर्च करते हैं। होनहार युवक हैं। आपके दोनों भाई भी व्यापार में आपकी मदद करते हैं। मूल निवासी पीपलिया मारवाड़ के हैं।

★ सेठ सरदारमलजी व हजारीमलजी भंसाली सांचोर निवासी अहमदाबाद

अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध कपड़ा व्यापारी मेसर्स लालचन्द्रदासजी मेघराजजी नामक फर्म के वर्तमान भागीदार स्वर्गीय सेठ आगमलजी सा० के दोनों

सुपुत्र सेठ सरदारमलजी तथा सेठ हजारीमलजी हैं। आप दोनों ही बड़े उदार और मिलनसार स्वभावी हैं। धार्मिक कार्यों में उदारता पूर्वक खर्च करने में विशेष रुचि है।

सेठ सरदारमलजी के श्री रमणलालजी, श्री घमंडीलालजी तथा बस्तीमलजी नामक ३ पुत्र हैं। तथा सेठ हजारीमलजी के समर्थमलजी नामक पुत्र हैं। अहमदाबाद मस्कति मार्केट में 'लक्ष्मणदास सियाजीराम" के नाम से कपड़े का व्यवसाय होता है। अहमदाबाद की प्रतिष्ठित श्रीमंत फर्मों में आपकी गिनती है। इस परिवार का मूल निवास स्थान हांडीजा (सांचोर-मारवाड़ है)

★ सेठ लक्ष्मणदासजी सेजरामजी, अहमदाबाद

सेठ लक्ष्मणदासजी सेजरामजी का मूल निवास स्थान बालोतरा (मारवाड़) है। ३० वर्षों से हांडीजा (सांचोर मारवाड़) निवासी सेठ सरदारमलजी व हजारीमलजी भंसाली आपके साझीदार हैं। दोनों ही परिवारों के मुखियाओं की देख रेख में यह फर्म विशेष तरक्की पार ही है।

अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध बड़ी कपड़ा व्यापारियों में इस फर्म का अच्छा स्थान है। फर्म की ओर से समय समय पर धार्मिक कार्यों में बड़ी उदारता पूर्वक द्रव्य लगाया जाता है।

★ सेठ अनराजजी आवर-खोखरा (मारवाड़)

स्व० सेठ किशनमल के सुपुत्र श्री अनराजजी का जन्म सं० ४९७४ मिगसर सुदी ४ का है। आप एक योग्य व्यवस्थापक, कुशल नियोजक और बुद्धिमान सज्जन हैं। आप ठि० खोखरा के कामदार हैं। अपनी दूरदर्शिता और कार्य कुशलता से ठिकाने को ऊंचे रुतबे पर पहुंचा दिया। आपके पिता श्री ने भी उक्त ठिकाने का कार्य करते हुए अच्छा नाम कमाया। किसानों प्रति आपका रुख जैसा अच्छा है वैसे ही श्री ठाकुर साहब भी आपके कार्यों से पूर्ण सन्तुष्ट हैं। श्री गणेशमलजी और जवरीलाल नामक आपके दो सुयोग पुत्र हैं।

श्री किशनमलजी अनराजजी नामसे लेनदेन व सर्राफी का काम भी होता है।

★ सेठ घूमरमलजी बाफणा —गोड़ नदी (पूना)

आपका शुभ जन्म सं १९६८। पिता का नाम श्री कुन्दनमलजी। सार्वजनिक सामाजिक कार्यों में आप पूर्व अभिरुचि से भाग लेते रहते हैं। आप सिद्धान्तशाला अहमदनगर के सभापति एवंगोड़ नदी पांजरा पोल के सञ्चालक हैं। आपने चिंचवड़ विद्यामन्दिर में एक कमरा बनवाया। आपका परिवार गौरवशाली है।

आपके यहां साहुकारी कपड़ा कमीशन एजेण्ट तथा लेन देन व्यवसाय श्री कुन्दनमल घूमरमल बाफणा" के नाम से होता है। आप बार्शी बिजली कम्पनी के डायरेक्टर भी हैं। आपके सुपुत्र श्री सौभाचन्दजी मिलन सार तथा प्रगतिशील विचारों के युवक हैं।

★ सेठ सरुपचन्दजी भूरजी वंब कोपरगांव (नगर)

सेठ सरुपचन्दजी वंब का जन्म सं० १६२८ में हुआ। व्यवसाय में चतुराई



तथा हिम्मत पूर्वक द्रव्य उपार्जित कर आप ने समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। सं० २००२ के ज्येष्ठ शुक्ला १२ को आप का स्वर्गवास हो गया। हीरालालजी, मन्नालालजी कुंवरलालजी फूलचन्दजी तथा मनसुकलालजी नामक छे पुत्र हैं। आप सब व्यापार में पूर्ण रूपसे भाग लेते है। श्री मोतीलालजी के सोभाचन्दजी प्रेमसुखजी नेमीचन्दजी तथा बन्शीलाल जी नामक चार पुत्र हैं श्रीहीरालालजी के सुवालालजी पोपटलालजी मोहन लालजी रमणलालजी तथा सुआपचन्द्रजी के शांतिलालजी तथा कांतिलालजी नामक दो पुत्र हैं। कुंवरलालजी के सुगनलाल लालजी तथ मदानलालजी नामक दो पुत्र हैं। फुलचन्दजी के सुरेशकुमारजी तथा रमेशकुमारजी नामक दो पुत्र हैं।

इस परिवार की नगर और नाशीक जिले के ओसवाल समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके यहां सेठ सरुपचन्दजी भुरजी वंब नामक से आडत साहूकारी तथा कृषि का काम होता है।

★ माननीय श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर

श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया देश, धर्म तथा समाज के परखे हुए आगेवान नेताओं में से एक हैं। आपका क्षेत्र बहुत ही विशाल रहा। आपका जन्म सन् १८८५ नवम्बर १२ को अहमद नगर में हुआ। सन् १६१० में आपने वकालात की परीक्षा पास की एवं वकालात के साथ सार्वजनिक सेवा भी करते रहे। सन् ४१ में व्यक्ति गत सत्याग्रह में जेल पधारे। सन् १६४५ को सब नेताओं के साथ आप भी गिरफ तार कर लिये गये और ५ मई सन् ४४ को रिहा हुए। इसके बाद आपने अपना वकालात का पेशा छोड दिया और पूरा समय सार्वजनिक सेवाओं में देने लगगये बम्बई प्रान्तीय असेम्बली के २ बार सदस्य चुने जा चुके हैं। सन् १६४८ से बम्बई धारासभा के प्रेसीडेण्ट और स्पीकर हैं।

आपने स्थानक वासी जैन साधु समाज की एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया है। वृद्धावस्था होने पर भी डेपूटेशन में भ्रमण कर जन जागृति का कार्य किया

स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स में आपका सभापतित्व काल एक महत्वपूर्ण अध्याय रहेगा। श्री अ० भा० ओसवाल महासम्मेलन के उप सभापति हैं। इस प्रकार आपकी सेवायें सर्वतोमुखि हैं इसके अतिरिक्त और भी कई संस्थाओं के आप अध्यक्ष व सभापति हैं।

आप बड़े उदार हृदय भी हैं। आपने सम्पत्ति का बहुत बडा भाग राष्ट्रीय, धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में लगाया एवं लगाते हैं। राष्ट्रीय तथा धार्मिक सेवाओं के साथ साथ आप एक महान सुधारक हैं। आपने ओसवाल समाज में रूढ़ी का त्याग कर एक महान आदर्श रक्खा व समाज में जबरदस्ती क्रान्ति की है।

समाज में ऐसे नररत्न कम मिलेंगे जिनके पास पैसा भी हो और कार्य करने की शक्ति भी। आपके पास सब ही चीजें हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री नवलमल जी फिरोदिया भी आप ही के पद चिन्हां पर चलने वाले समाज तथा देश सेवक युवक है। सार्वजनिक सेवा में भी काफी भाग लेते हैं।

★श्री रायचन्दजी मूथा बादनवाड़ी (सतारा)

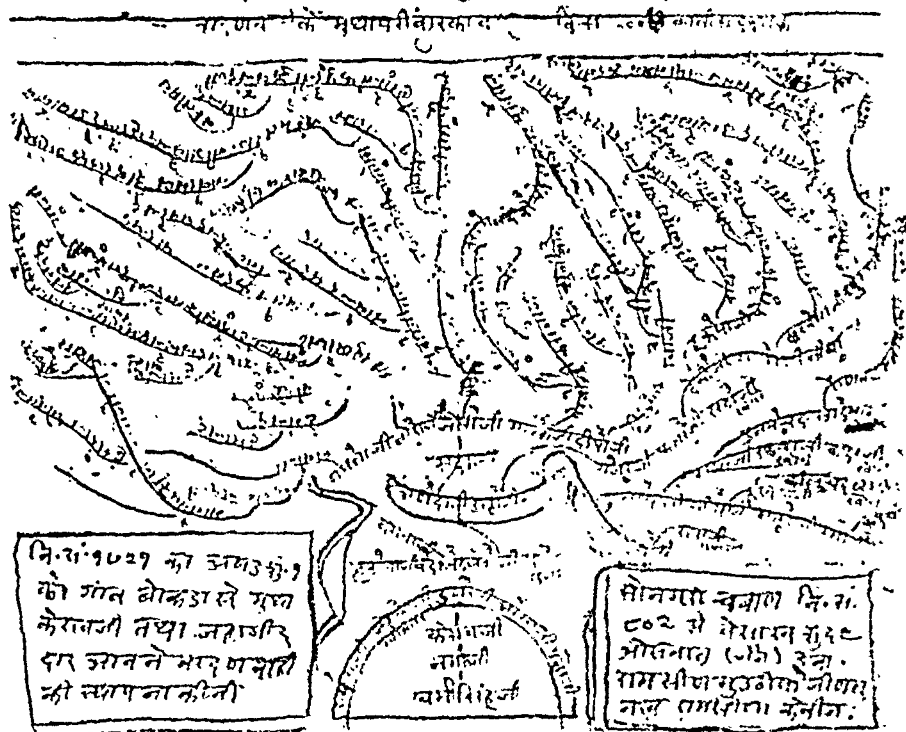


सं० १९६७ में आषाढ़ सुदी ८ को आपका शुभ जन्म श्री फूलचन्दजी के घर हुआ। श्री फूलचन्दजी धार्मिक और साधुसन्तों की सेवा में अभिरुचि रखने वाले सज्जन थे।

श्री रायचन्दजी सामाजिक कार्यकर्ता एवं उदार हृदय सज्जन हैं। बादनवाड़ी की जैन पुस्तकालय के पुनर्जीवन में आपका अतिशय सहयोग रहा। कांग्रेस कमेटी के भी आप कर्मठ सदस्य हैं। आपके पुत्र विनयकुमारजी का जन्म सं० १९८८ का है जो अभी इन्दौर में मैट्रिक में अध्ययन कर रहे हैं। जड़ाव, लीला, कमला और शान्ती नामक चार कन्यायें भी हैं।

—हुमगांम (सातरा) के हिन्द मिल्स (आंइल एण्ड राइस मिल्स) के आप मैनेजर है।

बादन वाड़ी (मारवाड़) के मूथा परिवार का वंश वृक्ष
(श्री रायचन्दजी मूथा द्वारा निर्मित)



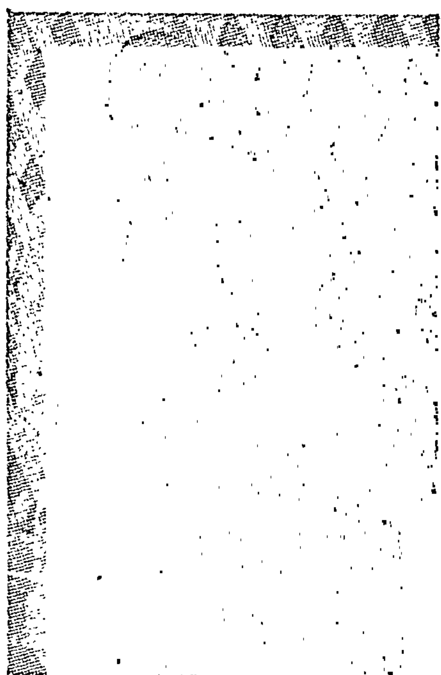


श्री विनयकुमार जी



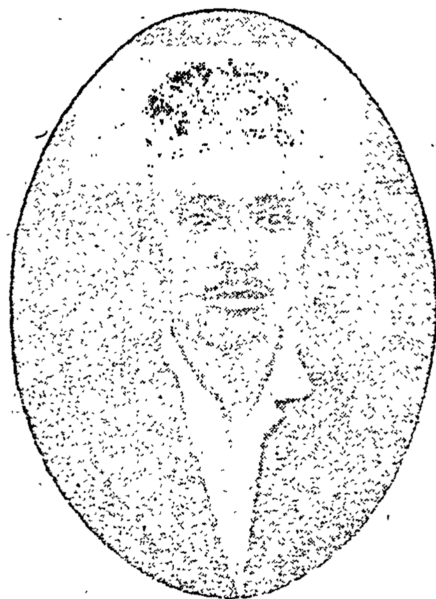
श्री रायचन्दजी मूथा का परिवार बादन वाड़ी

★श्री सेठ मुरलीधरजी दौलतरामजी बोहरा—पंचगणी (सतारा)



श्री सेठ दौलतरामजी के सुपुत्र श्री मुरलीधरजी का शुभ जन्म सं १९६३ में हुआ। अपने पूर्वजों के अनुरूप हीं धर्म निष्ठ, उदार दिल और परोकारी सज्जन हैं। आपके सुपुत्र श्री शान्तिलालजी उत्साही नवयुक हैं। मुन्नी और सुशीला नामक आपके दो कन्यायें भी हैं।

"शाह मुरलीधर दौलतराम बोरा" के नाम से आप किराणा का व्यापार करते हैं। स्थानीय व्यापारी समाज में आप प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं। तथा सर्वजनिक एवं सामाजिक कार्यों में उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं।



★श्री कन्हैयालालजी भंडारी, कराड़ (सतारा)

आपका मूल निवास स्थान बादनवाड़ी (मारवाड़) है। आयु ३५ वर्ष। आपकी सामाजिक सुधार कार्यों में विशेष दिलचस्पी है। सार्वजनिक व शिक्षा प्रचार कार्यों में तन मन व धन से सहयोगी रहते हैं। वर्तमान में कराड़ (सतारा) में आपका कपड़े का व्यवसाय होता है।

★सेठ प्रागजी जयवन्त राजजी भंडारी, कराड़

श्री जयवन्तराजजी का जन्म सं. १९८३ कार्तिक शुक्ला १३ को बादनवाड़ी

निवासी शाह खूबचन्दजी नेमाजी भंडारी के यहाँ हुआ। वहां से आप मु० लेटा (जालौर) निवासी शाह प्रागनी जेरूपजी के यहां गोद आये।

आप एक व्यापार दक्ष, मिलनसार स्वभावी सज्जन हैं।



★सेठ हीराचंदजी परमार पूना

आपका मूल निवास स्थान सादड़ी मारवाड़ है। आप कुशल व्यवसायी होने के साथ २ एक सुधारक विचार वान उत्साही सज्जन हैं। कई सार्वजनिक संस्थाओं में आपने अच्छे पदों पर काम किया है। सादड़ी के शुभ चिन्तक जैन समाज तथा आत्मानन्द जैन विद्यालय और जैन पुस्तकालय के अर्से तक मन्त्री रहे। अ० भा० श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स और वरकाणा विद्यालय के माननीय सदस्य हैं। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों में आप पूर्ण दिल चस्पी रखते हैं। आपके सुपुत्र श्री चांदमल जी शिक्षण ग्रहण कर रहे हैं।

★श्री सेठ सुखराजजी ललवाणी—वैताल पेठ, पूना



जन्म सं० १९५८ में हुआ। आपका सार्वजनिक कार्य उत्साह जनक है। आपके लघु भ्राता केशरीमलजी धार्मिक मनोवृत्ति के सज्जन हैं आप गोड़ी पार्श्वनाथजी के मन्दिर, श्री जैन श्वेताम्बर दादावाड़ी के एवं जैन सहायक फण्ड के मैनेजिंग ट्रस्टी हैं इसके अतिरिक्त और भी कई सामाजिक सभा संस्थाओं के सदस्य एवं सेक्रेटरी हैं। इनसे छोटे श्री मोहनराजजी हैं आपने एम. बी. बी. एस. पास करके पूना में अपनी प्रेक्टिस कर रहे हैं। आपके सुरेशकुमार और अशोककुमार नामक दो पुत्र हैं।

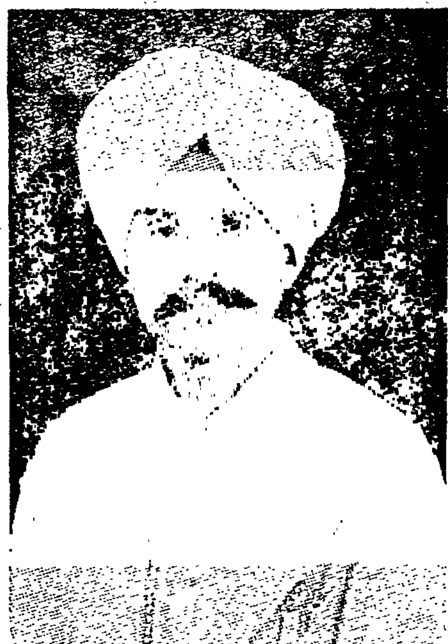
डाक्टर साहब के छोटे भाई श्री कान्ति-

लालजी ने भी शिक्षा इण्टर तक की है और व्यापार में सक्रियता से भाग लेते हैं। आप चारों भाइयों में घनिष्ठ प्रेम है।

आप वेताल पैठ पूना "जवाहरमलजी सुखराजजी" के नाम से बर्तनों का बड़ाभारी व्यापार करते है। विदेशों से थोक बन्द व्यापार एजेन्सी के रूप में होता है। इसी फर्म की शाखा से कपड़े का थोक बन्द व्यापार श्री सेठ सुखराजजी के पुत्र सेठ सम्पतराजजी ललवाणी के हाथों से होता है। श्री सम्पतराजजी धार्मिक विचारों के तथा साधुओं एवं मुनियों के पूर्ण भक्त हैं।

★श्री सेठ पूनमचन्दजी गांधी, कोल्हापुर

श्वेताम्बर आम्नाय के उपासक श्री सेठ पूनमचन्दजी का जन्म १९६४ में गुड़ा (सिरोही) में हुआ। आपके पूज्य पिताजी दोलाजी पूना जिले में मोती का व्यापार करते थे परन्तु सं० १९७४ में कोल्हापुर में आकर बस गये एवं यहीं पर अपना व्यवसाय चालू किया।



श्री पूनमचन्दजी धर्म निष्ठ श्रावक हैं धार्मिक पूजा पाठ एवं शास्त्रवाचन में आप रत रहते हैं। आप कुम्भोज गिरी तीर्थ कमेटी व श्री आत्मानन्द जैन सेवा के मन्त्री पर सुशोभित हैं। कुम्भोजगगिरी तीर्थ के जीर्णोद्धार में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आपके श्री ज्ञानमलजी, वेडरमलजी, एवं सुदर्शनजी नामक तीन पुत्र हैं।

सराफा बाजार में श्री वृद्धिचन्दजी पूनमचन्दजी के नाम आपकी फर्म पर सर्राफी का काम होता है।

★श्री सेठ ज्ञानमलजी अमरचन्दजी, कोल्हापुर

फूगणी (सिरोही) निवासी सेठ नाथाजी और मोतीजी सहोदर बन्धु थी। आप दोनों का प्रेम आदर्श रूप था। श्री नाथाजी के पुत्र ज्ञानमलजी हैं एवं मोतीजी के अमरचन्दजी नामक पुत्र हैं। सं. १९९५ में आप लोग कोल्हापुर आये एवं अपनी फर्म स्थापित कर सर्राफी एवं सूती मालका थोक बन्ध व्यवसाय प्रारम्भ किया। आप बन्धुओं ने फूगणी में कलश चढाये जिसमें उदारता पूर्वक धार्मिक कार्यों के लिए खर्च किया और समय २ पर करते रहते हैं। कुम्भोज गिरी तीर्थ पर कलश स्थापित कर उदारता दिखलाई। आप श्वे० मंदिर अम्नायी हैं।
सें स।

★सेठ उम्मेदमलजी भीकूलालजी, परभणी

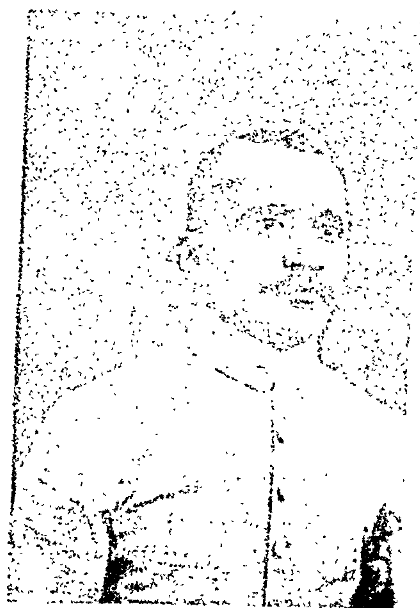
आपका मूल निवास स्थान जैतारण मारवाड़ है। सेठ उम्मेदमलजी परभणी व्यापारार्थ पधारे और फर्म स्थापित कर काफी धन उपार्जन किया और परभणी के एक प्रतिष्ठित श्रीमंत गिने जाने लगे। आपके सुपुत्र सेठ भीकूलालजी ने अपनी कुशलता से प्रतिष्ठा में और चार चांद लगा दिये।

सेठ भीखूलालजी एक बड़ी उदार प्रकृति के मिलनसार स्वभावी, समाज हितैषी सज्जन हैं। आपका जन्म १९६५ श्रावण शुक्ला १३ है।

'उम्मेदमल भीखूलाल' नाम से आपकी फर्म पर पेट्रोलियम आइल व काल-टेक्स की सोल एजेन्सी है। 'भारत मोटर सर्विस' नाम से मोटरें भी चलती हैं।

★सेठ बालचंदजी गंभीरमलजी गोठी, परभणी

आपका मूल स्थान बीलाड़ा (जोधपुर) है। सेठ बालचन्दजी गोठी करीब १४० वर्ष पूर्व परभणी आये और फर्म स्थापित की। आपके पश्चात सेठ



सेठ नेमीचन्दजी गोठी परभणी



स्व. सेठ मोहनलालजी गोठी परभणी

गंभीरमलजी गोठी ने काम संभाला। आपके पुत्र सेठ मोहनलालजी ने इस फर्म की तरक्की की। आपने मकान बगीचे आदि स्थावर स्टेट की। आपकी देख रेख में पार्श्वनाथजी का एक भव्य मन्दिर स्थापित हुआ। आपका स्वर्गवास सं० २००३ में हुवा। बाद में आपके पुत्र नेमीचन्दजी गोठी ने इस फर्म का काम संभाला। फर्म पर सोना, चांदी, बैंकींग, कपड़े का व्यापार होता है। आपका जन्म सं०

१६५५ में हुवा। आपके दो पुत्र हैं रमेशचन्दजी विजयराजजी। सेठ नेमीचन्दजी समाज प्रेमी, दानवीर पुरुष हैं।

★सेठ लक्ष्मणदासजी शिवलालजी परभणी

इस परिवार का मूलवास स्थान ताजौली (जोधपुर स्टेट) है। आज से करीब १२५ वर्ष पूर्व सेठ लक्ष्मणदासजी सांकला साड़े गांव (निजाम) आये कुछ समय बाद आपने परभणी में अपनी फर्म स्थापित की जिस पर बैङ्किंग तथा कपास का व्यवसाय चालू किया सं० १६२७ में सेठ लक्ष्मणदासजी स्वर्गवासी हुए आपके बाद आपके पुत्र शिवलालजी ने फर्म के कार्य में अच्छी उन्नति की। आप एक प्रतिष्ठा सम्पन्न व्यक्ति थे। सेठ शिवलालजी का स्वर्गवास १६७६ में हुआ। आपके नाम पर हेमराजजी सांकला दत्तक आये।

सेठ हेमराजजी सांकला—आपका जन्म सं० १६५१ में हुआ। आप एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। आपकी ओर से मंदिरों, तीर्थ स्थान एवं परोपकार में सहायता की गई है। परभणी के पार्श्वनाथजी के मन्दिर में अच्छी सहायता आपकी ओर से की गई थी। सेठ हेमराजजी के पुत्र कुन्दनमलजी योग्य तथा मिलनसार सज्जन हैं। आप जैन तेरा पन्थी आम्नाय के अनुयायी हैं।

अपकी फर्म व्यपारिक समाज में प्रतिष्ठित मानी जाती है।

★सेठ राजमलजी अमरचंदजी भटेवड़ा परभणी



सेठ राजमलजी व अमरचंदजी दोनों भाई सेठ सूरजमलजी भटेवड़ा के सुपुत्र हैं। सेठ राजमलजी का जन्म सं० १६६३ चैत्र शुक्ला १ है। आपके ४ पुत्र हैं—श्री नेमीचन्दजी चन्द्रकान्तजी लक्ष्मीचंदजी तथा बसन्तीलालजी। श्री अमरचन्द के वीरचन्दजी नामक पुत्र हैं।

'सेठ राजमल अमरचन्द भटेवड़ा' नाम से आपकी फर्म पर रूई का एक्सपोर्ट व इम्पोर्ट का व्यवसाय होता है। परभनी के प्रसिद्ध श्री मंत व्यापारियों में आपकी गणना है।

★सेठ कन्हैयालालजी कांकरिया, परभणी

आपका मूल निवास स्थान आसोप (राजस्थान) है। सेठ हीरालजी कांकरिया के चार पुत्र हुए—श्री चन्दूलालजी, श्री सुवालालजी, श्री छगनलालजी तथा श्री कन्हैयालालजी।



श्री चन्दूलालजी के केशरीमलजी व मोहनलालजी नामक २ पुत्र हैं। श्री सुवालालजी के अमोलकचन्दजी तथा श्री छगनलालजी के शान्तिलाल व कांतिलाल नामक पुत्र हैं। श्री कन्हैयालालजी एक विचार शील सज्जन हैं। परभणी के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में आपकी मान्यता है। आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। आपने इस अल्पायु में ही बी ए. एल. एल. बी. की डिग्री प्राप्त की है। बम्बई युनिवर्सिटी के डाक्टरेट भी हैं।

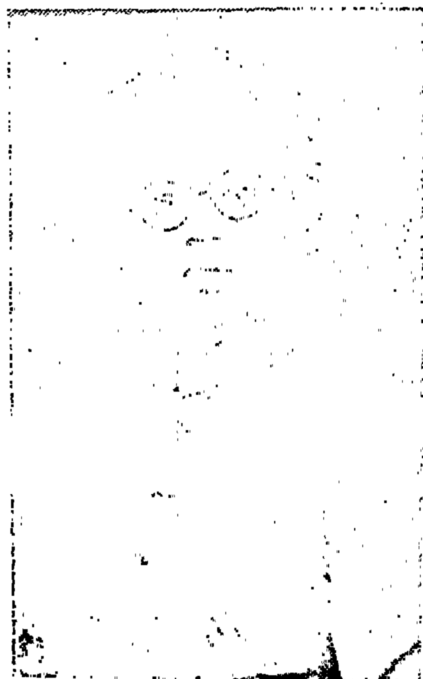
आपकी धर्म पत्नी श्रीमती मान कंवर बाई भी एक विदुषी महिला हैं। आपने वर्धा महिला विद्यापीठ की वनिता परीक्षा उत्तीर्ण की है।



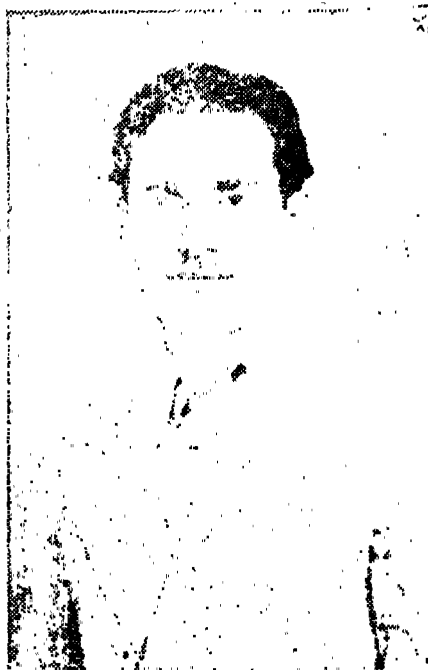
★ सेठ पन्नालालजी सिंघवी, परभणी

आपका मूल निवास स्थान चंडावल (मारवाड़) है। पिता श्री सेठ सोहनलालजी सिंघवी आप एक सुविचार शील सुधार प्रेमी उदार प्रकृति के सज्जन हैं।

मेसर्स 'सोहनराज पन्नराज' नाम से आपकी फर्म पर पीतल व तांबे के बर्तनों का थोक व्यापार होता है।



श्री बृजराजजी गादिया जालना



श्री दीपचन्दजी लूणावत सिकन्द्राबाद



सेठ लक्ष्मीचन्दजी बरलोटा, जालना



सेठ बालचन्दजी मूथा परभणी

★सेठ हिन्दूमलजी हीरालालजी लूंकड़ परभणी

आपका मूल निवास स्थान मेड़ता सिटी है। सेठ हीरालालजी एक बड़े धर्मनिष्ठ सज्जन हुए। आपके ५ पुत्र हुए—सेठ किशनलालजी, सेठ थानमलजी, सेठ पूर्णमलजी, सेठ हेमराजजी, सेठ धनराजजी।

सेठ किशनलालजी ही परिवार के प्रमुख और फर्म के संचालक हैं। फर्म करीब १०० वर्षों से परभणी में स्थापित है। आप बड़े उदार दिल सज्जन हैं। मंदिर जी आदि धार्मिक कार्यों में समय समय पर बड़ी सहायता प्रदान करते रहते है। आपके शान्तिलालजी व इन्द्रचन्दजी नामक २ पुत्र हैं।

फर्म पर किराना व सोने चांदी तथा चूड़ियों का व्यापार होता है।



★सेठ कन्हैयालालजी मूथा, परभणी

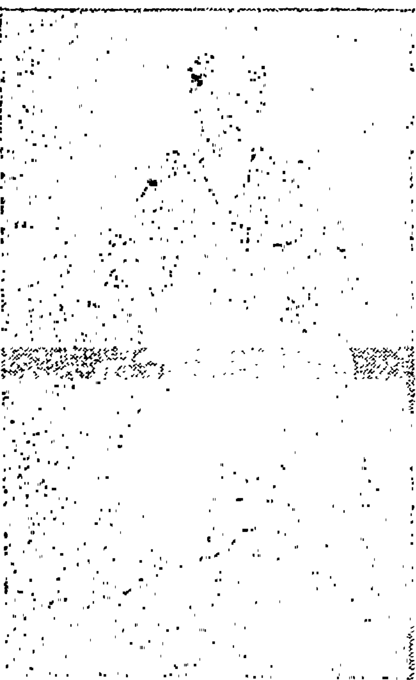
आपका मूल स्थान दांतड़ा (अजमेर, है। सेठ किशनलालजी के ४ पुत्र हुए—सेठ कन्हैयालालजी, रतनलालजी, पूनमचन्दजी तथा रतनलालजी। सेठ कन्हैयालालजी एक विचार शील समाज हितैषी सज्जन हैं। आपके परिवार को रियासत की ओर से 'मूथा' पदवी प्राप्त है।

सेठ कन्हैयालालजी के हीरालालजी व गुमानचन्दजी नामक २ पुत्र हैं।

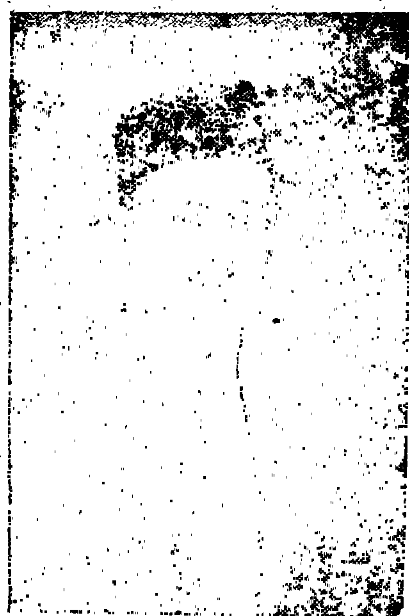
'किशनलाल कन्हैयालाल' के नाम से रुई का व्यापार होता है।

★सेठ मूलचन्दजी घीसूलालजी मूथा, बेलगाम

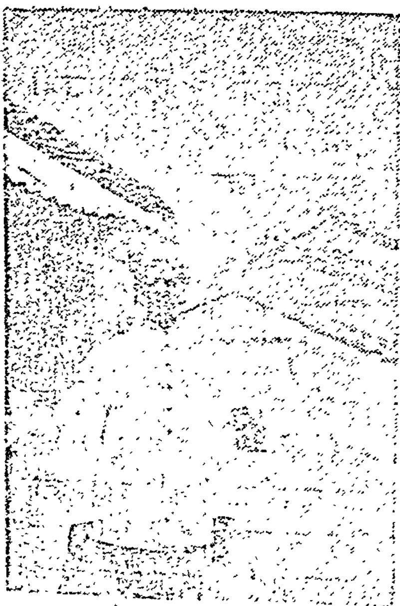
सोजत निवासी श्री सेठ मूल चन्दजी के सुपुत्र श्री घीसूलालजी धर्मनिष्ठ एवं मिलनसार व्यक्ति थे आपके जीवराजजी उगमराजजी बस्तीमलजी तथा शान्तिलालजी नामक चार पुत्र हुए। श्री जीवराजजी 'जीवराज जवरीमल' नामक आपनी फर्म का सञ्चालन कर रहे हैं। छोटे भाई उगमराजजी अहमदाबाद में उगमराज शान्तीलाल फर्म का कारोबार सम्हालते हैं। श्री बस्तिमलजी 'मूलचन्द घीसूलाल' फर्म का सञ्चालन कर रहे हैं और सबसे छोटेभाई शान्तिलालजी सोजत में अध्ययन कर रहे हैं।



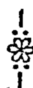
स्व० सेठ स्वरूपचन्दजी लासूर

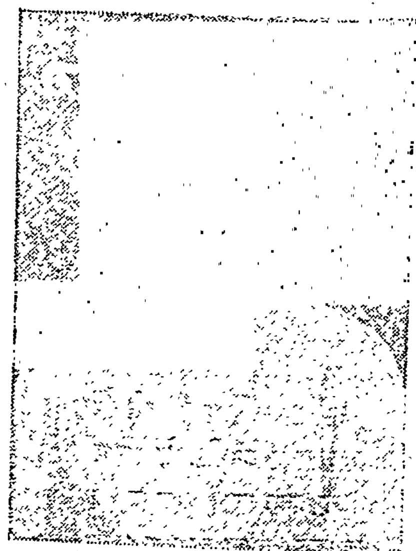


सेठ कन्हैयालालजी लूणावत शोलापुर



सेठ मंगलचन्दजी सांकला, जालना





सेठ भंवरलालजी सकलेचा, जालना

* सेठ शेषमलजी बख्तावरमलजी देवड़ा, औरंगाबाद

इस परिवार का मूल निवास स्थान बगड़ी मारवाड़ है। बख्तावरमलजी के २ पुत्र हुए सेठ समर्थमलजी व सेठ शेषमलजी। आप स्थानकवासी धर्मानुयायी हैं। इस परिवार के पूर्वज सेठ बुधमलजी व जवाहरमलजी व्यापारार्थ औरंगाबाद आये और फर्म स्थापित की। वर्तमान में सेठ शेषमलजी फर्म के संचालक हैं। आपका व्यापार में उन्नति करने के साथ धर्मकार्यों व दान पुण्य की तरफ भी अच्छा लक्ष्य है। आपकी बगड़ी व औरंगाबाद में बड़ी प्रतिष्ठा है। सेठ समर्थमलजी की स्मृति में समर्थमल जैन धर्मशाला एक लाख रुपये की लागत से तथा दो लाख का ट्रस्ट शुभ कार्यों के लिये बनाया। बीस हजार की लागत से पानी की सुविधा के लिये बगड़ी में समर्थ सागर नामक विशाल कुआ बनवाया। बगड़ी में एक धर्मशाला भी। मन्दिर जी के जिर्णोद्धार वगैरह में भी आपकी ओर से सहायता प्राप्त रहती है। पौषधशाला वगैरह में भी आपकी अच्छी सहायता रही है।

शेषमलजी के २ पुत्र हैं—श्री माणकचन्दजी तथा श्री मोतीलालजी। जिनका जन्म क्रमशः सं० १९०६ पौष वदी ५ तथा सं १९९६ कार्तिक वदी १० है। आप दोनों भी बड़े मिलनसार सज्जन हैं। फर्म की ओर से सदाव्रत भी चालू है।

★ सेठ मयकरणजी मगनीरामजी नखत, [कुचेरिया] जालना

इस खानदान का मूल निवासस्थान, बडू (जोधपुर स्टेट) है। आप श्वेताम्बर मन्दिर आम्नायी हैं। कुचेरा से उठने के कारण आपको कुचेरिया नाम से पुकारते हैं। इस खानदान के रघुनाथमलजी करीब सवा सौ वर्ष पहले मारवाड़ से दक्षिण में आये। यहां आकर खेड़े में अपना व्यापार चलाया, तदन्तर इनके पुत्र मयकरणजी ने जालना में उक्त नाम से अपनी फर्म स्थापित की। सेठ मयकरणजी और मगनी रामजी के निसन्तान गुजरने पर सेठ मगनीरामजी के नाम पर सूरजमलजी को दत्तक लिया।

सेठ सूरजमलजी के पुत्र मोहनलालजी कुचेरिया हुए। आपका संवत् १९६३ में जन्म हुआ। आपके पुत्र न होने से आपने किशनलालजी को दत्तक लिया। वर्तमान में सेठ किशनलालजी ही फर्म संचालक हैं। आप बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं। आप स्थानीय पार्श्व प्रभूजी मंदिर के ट्रस्टी हैं। आपके अमृतलालजी व मनोहरलालजी २ पुत्र तथा



सेठ किशनलालजी जालना के पुत्र आनन्द वल्लभ

★सेठ बालचन्दजी मूथा, नांदेड़

आपका मूल निवास स्थान दांतड़ा (अजमेर) है। नांदेड़ व्यापारी समा में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। कॉटन ग्रेन मर्चेण्टस एसोसियेसन व्यापारी कमेटी हॉईस्कूल, हिन्दी राष्ट्रीय विद्यालय के आप प्रेसीडेण्ट हैं। इस प्रकार आप बड़े शिक्षा प्रेमी सुविचार शील सज्जन है।



सेठ बालचन्दजी मूथा, नांदेड़

नांदेड़ में 'सुवालाल सुगनचन्द' के नाम से रुई व साहूकारी लेन देन का व्यवसाय होता है। जालना में 'सुवालाल बालचंद' तथा परभणी में बालचंद मूथा के नाम से आपकी फर्में चल रही हैं 'दुलीचन्द सुगनचन्द' के नाम से भी आपका व्यवसाय होता है।

आप बड़े उदार दिल हैं। पिपुल्स कॉलेज में ५१००) प्रतिभा निकेतन में ११०००) की बड़ी सहायता प्रदान की हैं

आपके ४ पुत्र हैं:—श्री हेमराजजी प्रेमराजजी, सुवालालजी तथा सुगनचन्दजी। चारों ही प्रतिभाशाली विचारशील सज्जन हैं। श्री हेमराजजी के २ पुत्र हैं :—नवलचन्दजी व सुभाषचन्दजी।

★सेठ पुखराजजी नेमीचन्द्रजी देवड़ा, औरंगाबाद

आपका मूल निवास स्थान बगड़ी (मारवाड़) है। सेठ पुखराजजी देवड़ा का जन्म सं १६५७ का है। आप क्लॉथ मर्चेन्ट एसोसियेशन के तथा महावीर जैन विद्या भवन के प्रेसीडेन्ट हैं। आपने विद्याभवन को ५० हजार की आर्थिक सहायता प्रदान की। इसी प्रकार अन्य शिक्षण व परोपकारी संस्थाओं को समय समय पर सहायता प्रदान करते रहते हैं।

आपके सम्पतराजजी नामक एक पुत्र हैं। जिनका जन्म सं १६६० कार्तिक कृष्णा ५ है। 'पुखराज नेमीचन्द' के नाम से चौक बाजार औरंगाबाद में आपकी [illegible] पर कपड़ा तथा बेंकिग का व्यवसाय होता है।



सेठ जसराजजी लोढा हैद्राबाद



सेठ मुलतानमलजी चमेचा हैद्राबाद

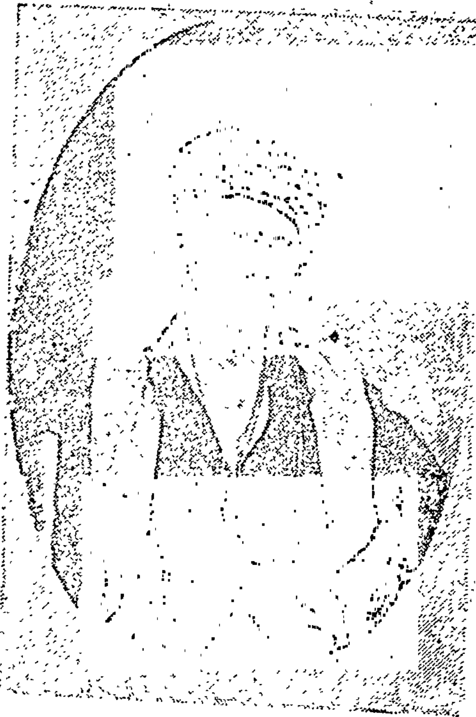


सेठ प्रेमराजजी चांडया, सिकन्द्राबाद



श्री सेठ [illegible] गोविन्द गढ़



सेठ समरथमलजी रांका, सिकन्द्रा बाद



सेठ रूपचन्दजी, बम्बई



सेठ भीखमचन्दजी ललवानी मनमाड



सेठ पूनमचन्दजी गांधी हैद्राबाद

★श्री सेठ देवीचन्दजी मिश्रीलालजी भण्डारी-बेंगलोर सिटी


श्री देवीचन्दजी

श्री सेठ चौथमलजी के पुत्र देवी-
चन्दजी का जन्म सं० १९७३ मार्ग शीर्ष
सुद ५ का है। श्री चौथमलजी के छोटे
भाई श्री जवानमलजी के मिश्रीलालजी
नामक पुत्र हुए। श्री देवीचन्दजी एवं
मिश्रीलालजी में अत्यधिक घनिष्ठता है
एवं देवीचन्द मिश्रीलाल एण्ड को ८२२
चिकपेठ नामक फर्म स्थापित कर क्लोथ
मर्चेण्टस का व्यवसाय करते हैं। आप
दोनों बन्धु उत्साही धर्मप्रेमी एवं मिलन
सार सज्जन हैं। स्थानीय जैन मन्दिर
के आप दोनों बन्धु ट्रस्टी हैं। धार्मिक
कार्यों में आप अग्रेसर हैं प्रतिमा प्रतिष्ठा
सं० २००५ में अञ्जन महोत्सव में २५०००) की उदारता दिखलाई
के अवसर पर सं० २००५ में अञ्जन महोत्सव में २५०००) की उदारता दिखलाई
इसके अतिरिक्त भी आप बन्धु समय २ पर हजारों रुपये दान में देते रहते हैं।

श्री देवीचन्दजी के पुत्र बाबूलालजी हैं। आपकी फर्म पर ऊन एवं सिल्क
बृहद् रूप में व्यवसाय होता है।

★श्री सेठ नेमीचन्दजी—बेंगलोर

श्याल गोत्रोत्पन्न श्री सेठ हजारीमलजी के पुत्र नेमीचन्दजी का जन्म सं०
१९६२ माघ सुदि ५ का है। धर्म निष्ठता एवं सादगी आपका विशेष गुण है। आप
ने ५०५०) मोर चरी बाजार के स्थानक में दिया इसी प्रकार यथा सदा और भी
धार्मिक कार्यों के लिए देते रहते हैं। आपके हाथों फर्म की अच्छी उन्नति हुई एवं
एक शाखा और भी खोली—

बेंगलोर में 'शोपमलजी अमराजजी' नामक फर्म १५० अवेन्यूरोड पर है यहाँ
...ड़ा इलेक्ट्रिक, तथा सोने चाँदी का थोक बन्द व्यापार होता है। चिकपेठ पर
"एच० नेमीचन्द" नाम के दूसरी फर्म पर इलेक्ट्रीक स्टोर है। आपके चांदमलजी
नामक एक पुत्र है।

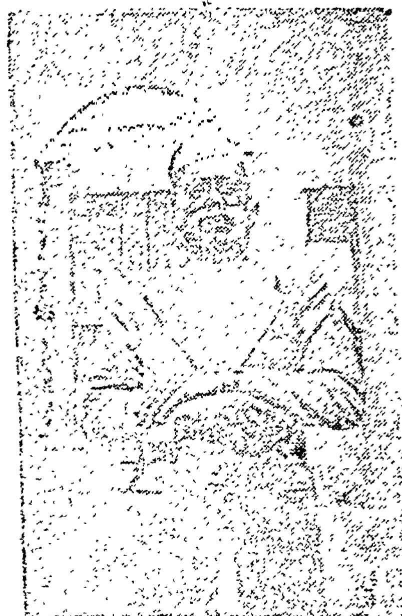

श्री दीपचंदजी जांगड़ा

★सेठ माणकचन्दजी व दीपचन्दजी

जांगड़ा, परभणी

आपका मूल निवास स्थान सुरपुरा (मारवाड़) है। सेठ पूनमचन्दजी के २ पुत्र हैं—सेठ माणकचन्दजी व सेठ दीपचन्दजी। आप दोनों ही बंधु बड़े उदार प्रकृति के मिलनसार सज्जन हैं।

'पूनमचन्द माणकचन्द' तथा जैन स्टोर्स के नाम से आपकी फर्मों पर स्टेशनरी का थोक बन्द व्यवसाय होता है।



★सेठ खुशालचन्दजी मूथा, नांदेड़

आपका मूल निवास करूंदा (अजमेर) है। आपके पिता श्री सेठ गुलाबचन्दजी एक धर्मनिष्ठ सज्जन थे। किस्तूरचन्द धर्मचन्द के नाम से नांदेड़ में आपके यहाँ रुई और बैंकिंग का व्यापार होता है। परभणी व जालना में भी दुकान हैं।

एक कुशल व्यवसायी होने के साथ आप एक समाज प्रेमी व मिलनसार उदार सज्जन हैं। आपके ४ पुत्र हैं:—श्री किस्तूरचन्दजी धर्मचन्दजी, उत्तम चन्दजी तथा हीराचन्दजी।

★ सेठ फौजमलजी गुलाबचन्दजी, परभणी

आपका मूलनिवास स्थान सोजत (मारवाड़) है। पोरवाल जातीय पंचाव गत्रीयो श्वेताम्बर जैन हैं। सेठ गुलाबचन्दजी के जुगराजजी नामक पुत्र हुए

जिनका जन्म सं० १९६८ भादवा सुदी ८ है। आप बड़े मिलनसार स्वभावी सज्जन हैं। सेठ जुगराजजी के ३ पुत्र हैं—केवलचंदजी सुगनचन्दजी व वर्धमानजी।

★सेठ शान्तिलालजी डोसी, गढ़ हिंग्लाज



महेसाणा निवासी सेठ देवीचंदजी और छगनलालजी सहोदर बंधु थे। दोनों ने सं० १९५७ में गढ़ हिंग्लाज (कोल्हापुर) में मूंगफली का व्यवसाय प्रारंभ किया। सेठ श्री देवीचन्दजी के पुत्र श्री शान्तिलालजी का जन्म सं० १९५८ में हुआ। आप एक विचार शील समाज व धर्म प्रेमी युवक हैं। साधु सेवा में बड़ी दिलचस्पी है। आपने बड़े २ जैन तीर्थों की यात्रायें की हैं। श्री रतीलालजी आपके लघु भ्राता हैं।

सेठ छगनलालजी के तुलारामजी नामक पुत्र हैं जो एक होनहार युवक हैं। मेसर्स देवीचन्द छगनलाल नाम से व्यवसाय होता है।

★ सेठ कचरुलालजी आवड़, जालना

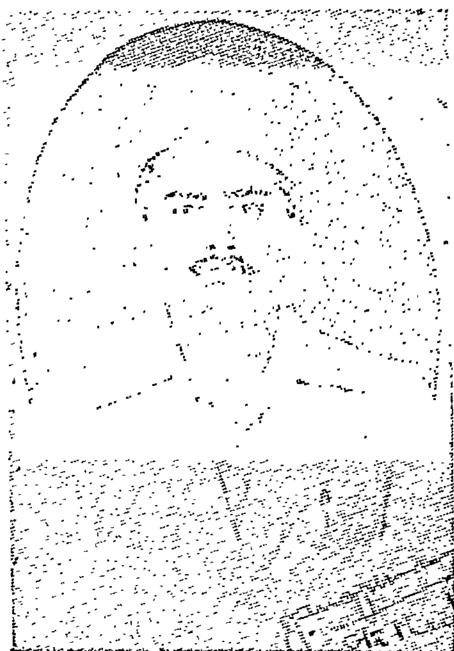
आपका मूल निवास स्थान बीजाथल (जोधपुर) है। पिता सेठ कपूरचन्दजी आवड। जन्म संवत् १९७० आषाढ़ शुक्ला ८। फर्म १५० वर्षों से जालना में स्थित है और यहां की सर्वोपरि प्रतिष्ठित श्रीमन्त फर्मों में मानी जाती है। परिवार की ओर से समय समय पर धार्मिक व सामाजिक कार्यों में सदा सहयोग दिया जाता है। चांदवड़ व चिंचवड़ जैन विद्यालयों में आपकी ओर से कमरे बने हुए हैं। पावापरी में चंदा प्रभुजी के मंदिरजी के पास करीब २५०००) की लागत के मकान बनाये गये हैं। २५०००) शुभ कार्यों के हेतु निकाले गये। कुलपाकजी तीर्थ में एक चौमुखी प्रतिमा विराजित देवालय का निर्माण कराया इस। प्रकार कई धार्मिक कार्य आपकी ओर से हुए हैं और होते रहते हैं।

आप बड़े उदार विचार शील मिलन सार स्वभावी सज्जन हैं। कपूरचंद कचरुलाल आवड़ तथा धनरूप मलजी छगनलजी के नाम से साहूकारी लेन देन का व्यवसाय होता है।

★श्री सेठ जेठमलजी लालचन्दजी झावक का परिवार-कुन्नूर (नीलगिरी)

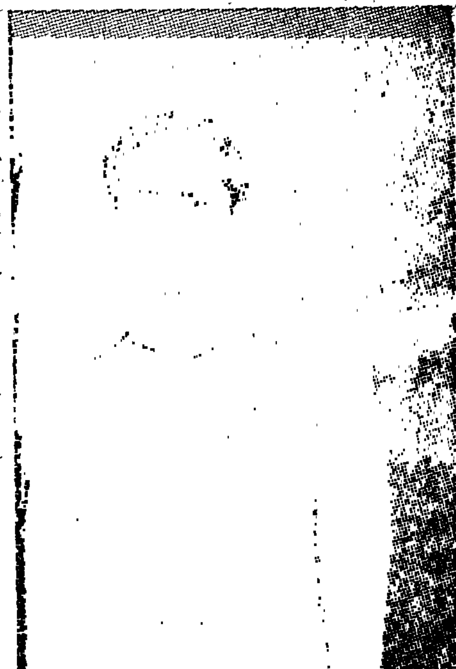
सेठ करणमलजी के सुपुत्र श्री जेठमलजी एवं लालचन्दजी सद् परिश्रमी व्यापार कुशल एवं जातीय सेवक सज्जन थे। श्री जेठमलजी ने सन् १९०४ में कुनूर में लालचन्द शंकरलाल एन्ड कम्पनी के नाम से फर्म स्थापन की।

श्री लालचन्द साहिब के श्री अनोप चन्दजी एवं गुलाबचन्दजी नामक दो पुत्र हुए। श्री जेठमलजी सन् १९३९ में स्वर्गवासी हुए। आप निस्सन्तान थे। अतः नेअपने लघुभ्राता के पुत्र श्री अनोपचन्दजी झावक कोगोद लिया।



श्री अनोपचन्दजी झावक कुनूर





श्री गुलाबचन्दजी झावक

श्री अनोपचन्दजी की प्रेरणा विशेष से कुनूर में एक 'जिन मंदिर' की स्थापना हुई जो नीलगिरी में सर्वप्रथम जिनालय है। जो जैन संस्कृति के रक्षणार्थ सहायक होगा। इसके अतिरिक्त उटकमंड व कुनूर के श्री शान्ति विजय हिन्दू गर्ल्स हाई स्कूल के प्रणाताओं में से एक हैं। आपने सन् १९४३ में श्री लालचन्दजी अनोपचन्द एण्ड कम्पनी के नाम से फर्म स्थापित की। फर्म का मुख्य व्यवसाय बेङ्किंग, चांदी सोना व चांदी का काम होता है। श्री जया स्टोर्स (जनरल मर्चेन्ट) चोरड़िया एयुक्लास आइल कम्पनी एवं ज्ञानचन्द एण्ड कं (कपड़ा) इसके अलावा वस्त्र व्यवसाय की दो विशाल दुकाने हैं जो कि जेठमल एण्ड कम्पनी एवं जुगराज एन्ड कं० के नाम से प्रख्यात हैं।

श्री अनोप चन्दजी के लघुभ्राता श्री गुलाबचन्दजी भावक बड़े ही सरल स्वभावी हैं।

★ सेठ चाँदमलजी जवानमलजी मुणोत शोलापुर



आपका मूल निवास स्थान राणावास मारवाड़) है। करीब ५० वर्षों से शोलापुर में प्रतिष्ठित हैं। सेठ जवानमलजी के पुत्र न होने से चांदमलजी को गोद लिया। आपका जन्म सं० १६८० श्रावण शुक्ला ८ है। आप भी अपने पिता श्री के अनुरूप ही परम उदार दिल हैं। एक सुशिक्षित और सुविचारशील समाज प्रेमी युवक हैं। परिवार की ओर से राणावास और शोलापुर के मन्दिरों में काफी सहायता प्रदान की जाती रही है गुप्त दान विशेष देते हैं।

आपकी फर्म २-३ मिल्स की एजेण्ट है तथा सूत व कपड़े का थोक बंद व्यापार होता है।

★ सेठ कनीरामजी रावतमलजी कटारिया बेल्लारी (मद्रास)

रूण (नागौर-मारवाड़) निवासी सेठ कनीरामजी के श्री रावतमलजी, धनराजजी, हस्तीमलजी एवं बस्तीमलजी नामक चार पुत्र हुए। श्री रावतमलजी बड़े कर्मवीर तथा धार्मिक कार्यों में अग्रसर रहने वाले सज्जन हैं। आप औषध विज्ञान में भी अति चतुर हैं। जैन शास्त्रों के स्वाध्याय में आप अत्यधिक तल्लीन रहते हैं। श्री रावतमलजी के सुखराजजी और हेमराजजी नामक दो पुत्र हैं। श्री हस्तीमलजी के भीवराजजी एवं गणपतचन्दजी नामक दो पुत्र हैं। बस्तीमलजी के पुत्रों का नाम भँवरीमलजी गुणचन्दजी माणकचन्दजी तथा दुलीचन्दजी हैं।

"कनीरामजी रावतमलजी" के नाम से आपका व्यापार होता है। फर्म की शाखायें रूण, कानपुर इत्यादि स्थानों पर भी भिन्न २ नामों से हैं एवं सुदृढ़ रूप से व्यवसाय होता है।

★राय बहादुर सेठ बालचन्द्रजी बन्ठावत, कुन्नूर

आपका जन्म सन् १८७८ में हुआ। आप जैन समाज के आगेवान प्रतिष्ठित श्रीमन्त सज्जन हैं। आपके नीलगिरी में चाय के कई बड़े बड़े बाग हैं। कुन्नूर में

"चांदमल बालचन्द बच्छावत" के नाम से आपका व्यवसाय होता है। आ कुन्नूर तथा नीलगिरी के सुप्रसिद्ध बैंकर और चाय के बड़े व्यापारी हैं। आप ही विचारशील शिक्षा प्रेमी, समाज सुधारक और समाज व धर्मप्रेमी हैं। आ ने कुन्नूर में योगीराज श्री मद् जैनाचार्य श्री विजय शांति सूरीजी के स्मरण एक बड़ी रकमदान में देकर शान्ति विजय गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना की है।

अ० भारत वर्षीय ओसवाल व जैन समाज में आप बड़े ही सम्मानन सज्जन माने जाते हैं। आपके ४ पुत्र हैं:--निहालचन्दजी, शांतिलालजी जयन लालजी, सूर्यकुमारजी। फर्म पर साहूकारी लेन देन होता है। सिनेमा तथा कृषि कार्य भी होता है।

☆सेठ पाबूदानजी चौरड़िया, कुन्नूर (नीलगिरी)

आपका मूल निवास स्थान पली व फलोदी (मारवाड़) है। पिता सेठ जसराज आपका जन्म सं० १६३६ में हुआ। सं० १६५८ में आपने अलसी दास एण्ड ब्रदर्स के नाम से कुन्नूर में बैंकिंग का व्यवसाय प्रारंभकिया। बाद में जसराज पाबूदान के नाम से कपड़े का व्यापार भी प्रारंभ किया।



आपके ३ पुत्र हुए सेठ रतनलालजी, मेघराजजी तथा गुलाबचन्दजी।

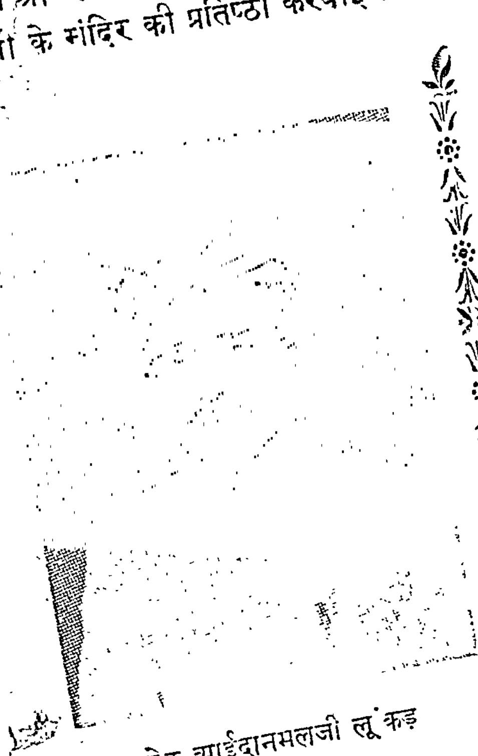
श्री रतनलालजी पी. रतनलाल एण्ड को. के नाम से चायका थोकबन्द व्यवसाय करते है। श्री मेघराजजी व श्री गुलाब चन्दजी 'पाबूदान गुलाबचन्द' के नाम से नीलगिरी तैल चाय व बैंकिंग का व्यवसाय करते हैं।

श्री रतनलालजी के ४ पुत्र–मनोहमलजी सम्पतलालजी कान्तिलालजी व देवराजजी। श्री मेघराजजी के प्रेमचन्द तथा श्री गुलाबचन्दजी के ४ पुत्र हैं—पारसमलजी, मंगलचन्जी, पूनमचन्दजी अशोककुमारजी। कुन्नूर में यह फर्म बड़ी प्रतिष्ठित श्रीमन्त मानी जाती है।

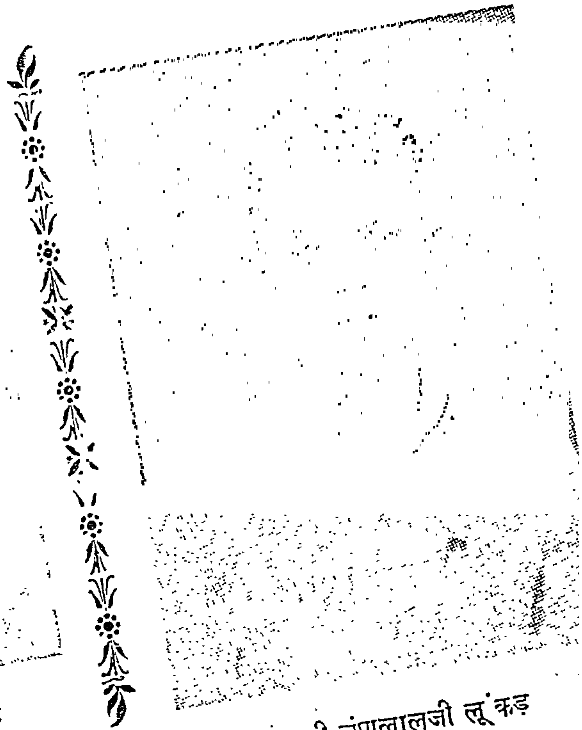
★शा० आईदानमलजी चम्पालालजी बेल्लारी

आपका मूल निवास स्थान राखी सिवाना (मारवाड़) है। सेठ डूंगरचंद के पुत्र श्री बस्तीमलजी के आईदानमलजी और चादरमलजी नमक दो पु

हुए। श्री सेठ वस्तीमलजी धर्म निष्ठ परोपकारी सज्जन थे, सं १९६४ में आपने रावों के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।



सेठ आईदानमलजी लूंकड़



श्री चंपालालजी लूंकड़

वर्तमान में इस परिवार में सेठ वस्तीमलजी के पुत्र सेठ आईदानमलजी तथा वस्तीमलजी के बड़े भाई श्री हजारीमलजी के पुत्र लच्छीरामजी के पुत्र चम्पालालजी हैं। श्री सेठ आईदानमलजी बड़े उदारदिल और समझदार सज्जन हैं। इस समय आपकी ४६ वर्ष की अवस्था है। श्री चम्पालालजी आदर्श विचारों के समझदार २८ वर्षीय युवक हैं। आपके बाबूलाल नामक एक पुत्र है।

आपके यहाँ 'शा आईदानमल चम्पालाल' के नाम से काम होता है।

★सेठ चुन्नीलालजी छगनमलजी वैद, उटकामंड

परिवार का मूल निवास स्थान रास (मारवाड़) है। बाद में ब्यावर आये। सं० १९१८ में सेठ चुन्नीलालजी व छगनलालजी ने सेठ रिखवदास फतेहमल की साझेदारी में सर्राफी का व्यापार प्रारंभ किया। वर्तमान में इस फर्म पर कपड़े का व्यवसाय होता है।







सेठ चुन्नीलालजी मूथा उटकामंड

श्री भंवरलालजी मूथा

सेठ चुन्नीलालजी के भँवरलालजी नामक पुत्र हैं। आप बड़े मिलनसार, सुधार प्रिय कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। उटकामंड जैन नवयुवक मंडल के सभापति हैं। आपके पार्श्वमलजी नामक पुत्र हैं। 'भँवरलाल पार्श्वमल' के नाम से गिरवी व साहूकारी लेन देन का व्यवसाय होता है। सेठ छगनमलजी के उम्मेदमलजी नामक पुत्र हैं। आप भी एक होनहार युवक हैं।

★सेठ चुन्नीलालजी कटारिया, उटकामंड

आपका मूल निवास स्थान चंडावल (मारवाड़) है। सं० १९७९ में सोजत में बसे। आपके पिता सेठ नवलमलजी एक धर्मिष्ठ सज्जन थे। सेठ चुन्नीलालजी का जन्म सं० १९५० चैत्र शुक्ला ३ है। आपके ५ पुत्र हैं—चम्पालालजी, नेमीचंद जी सोहनराजजी, सुखलालजी व जंवरीलालजी।

आप स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी है। उटकामंड मैन बाजार में आपकी फर्म पर 'नवलमल चुन्नीलाल एन्ड कम्पनी के नाम से ज्वेलर्स सोना चांदी व बैंकिंग की व्यवसाय होता है। धाड़ीवाल वूलन मिल्स के आप एजेण्ट हैं।

आप एक उदार व धर्म प्रेमी सज्जन हैं। उटकामंड में जैन स्थानक निर्माता में अच्छी सहायता रही है। धार्मिक नित्य नियम के पक्के हैं।

★सेठ पूनमचन्दजी लालचंदजी ओसवाल, उटकामंड

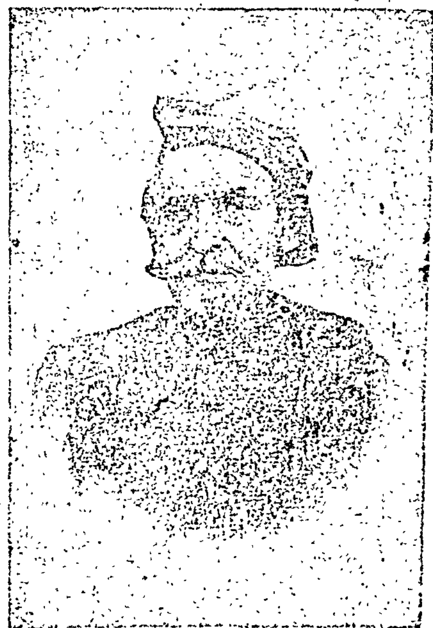
आपका मूल निवास रामपुरा (जैतारण) है। सेठ पूनमचन्दजी का जन्म

सं० १६३२ कार्तिक शुक्ला १५ है। आपके ३ पुत्र हुए—जिनमें सेठ लालचन्दजी विद्यमान हैं। आपका जन्म सं० १६६६ आषाढ़ शुक्ला १४ है। आप स्थानकवासी धर्मानुयायी हैं। उटकामंड १४ मैन बाजार में "पूनमचंद लालचन्द" के नाम में कपड़े का व्यवसाय होता है।

सेठ लालचन्दजी एक धर्मप्रेमी मिलनसार सज्जन हैं। आपके भँवरलालजी नामक एक पुत्र हैं जिनका जन्म सं० १६६२ आषाढ़ शुक्ला ५ है।

★ सेठ किशनलालजी फूलचन्दजी लूणिया, बंगलोर सीटी

आपका मूलनिवास स्थान पीपलिया (जैतारण मारवाड़) है। आप छोटी वय में ही बंगलोर आये और कुछ वर्षों नोकरी करने के पश्चात् अपनी तीव्र बुद्धि से नीजि दुकान शुरु की। धीरे धीरे चातुर्यता से व्यवसाय विशाल रूप में बढ़ गया और बम्बई, मद्रास, शोलापुर, अहमदाबाद, ब्यावर आदि स्थानों में शाखायें खोली।



आप बड़े ही सदाचारी सादगी प्रिय और प्रतिज्ञा के पक्के हैं। चौविहार व्रत करीब ३० वर्ष से बराबर पाल रहे हैं। धार्मिक नित्य नियम के पक्के हैं।

बंगलोर की गौ रक्षिणी शाला के आप प्रमुख है। इस समय आपकी वय करीब ७१ वर्ष है। आपके पुत्र हुए थे पर जीवित न रहने से चंडावल निवासी सेठ मिश्रीलालजी जेंवतराजजी के छोटे भाई श्री फूलचन्दजी को गोद लाये।

श्री फूलचन्दजी भी एक धर्म निष्ठ, मिलन सार और शिक्षा प्रेमी सज्जन है। सार्वजनिक जनहित के कार्यों में पूरी दिलचस्पी रखते हैं। उदार चेता हैं। साहित्य रसिक होने के साथ साथ धार्मिक नित्य नियम व व्रत उपवास आदि तपश्चर्या में भी दिल चस्पी रखते हैं सेठ किशनलालजी लूणिया, बंगलोर आपके जयकुमार नामक एक पुत्र हैं—जिनका जन्म ता० १५-११-५० को हुआ।

बंगलोर में जे० किशनलाल फूलचन्द के नाम से २ दीवान सुरारपा लेन चिक



श्री फूलचंदजी लूणिया



जयकुमार S/O श्रीफूलचंदजी लूणिया

पैठ में आपकी फर्म है। फर्म—कमीशन एजेण्ट जनरल मर्चेंट, गवर्नमेण्ट कन्ट्राक्टर और बैंकर है।

बंगलोर में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है और सर्वोपरि श्रीमंतों में गिनती है।

★सेठ सुगनमलजी माणकलालजी बोथरा, उटकासंड

आपका मूल निवास स्थान खींचन मारवाड़ है। सेठ सुगनमलजी के ८ पुत्र हुए जिनमें ६ विद्यमान हैं—श्री अगरचन्दजी, माणकलालजी, अमरचन्दजी, बच्छराजजी, किशनलालजी व सुखलालजी।

श्री माणकलालजी का जन्म सं० १९५२ चैत्र शुक्ला १३ है। आप स्थानकवासी धर्मानुयायी हैं। धार्मिक प्रवृत्ति वाले उदार सज्जन हैं। उटकासंड जैन स्थानक में आपकी बड़ी सहायता रही है। अन्य कार्यों में भी सहायता करते रहते हैं। उटकामुंड में दो दुकानें हैं एक पर सोना, चांदी, ज्वेलरी तथा बैंकिंग का व्यवसाय होता है तथा दूसरी पर सोने के तैयार जेवर आदि मिलते हैं।

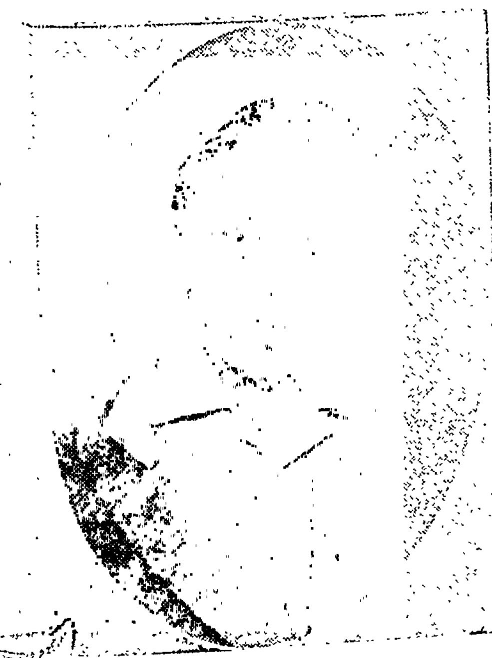
श्री अमरचंद के नाम से मद्रास में व्यवसाय करते हैं। जैसलमेर में भी आपके एक भाई व्यवसाय करते हैं।



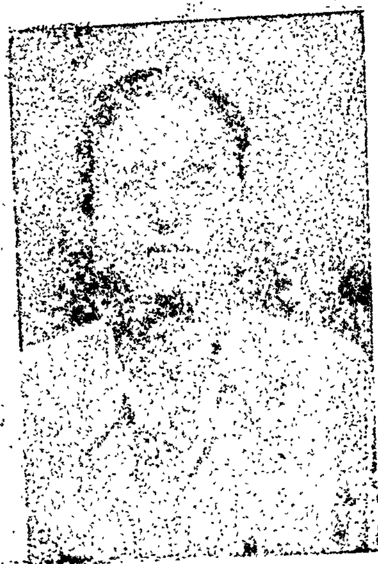
सेठ अन्नराजजी भूरमलजी बंदा मेहता कोयम्बटूर



सेठ चुन्नीलालजी जैन, कार्णीनाड़ा



शाह मांगीलालजी मगराजजी नाकोनाड़ा



वसन्तचन्द्रजी, दुराणा, शोलापुर

सेठ शेषमलजी गणेशमलजी, बेंगलोर



१ सज्जनमलजी, २ श्री गणेशमलजी, (बैठे हुए) पास में कान्ता कंवर ४ मानमलजी



मेसर्स देवीचन्दजी जैठमलजी बोहरा का परिवार, बेंगलोर सीटी



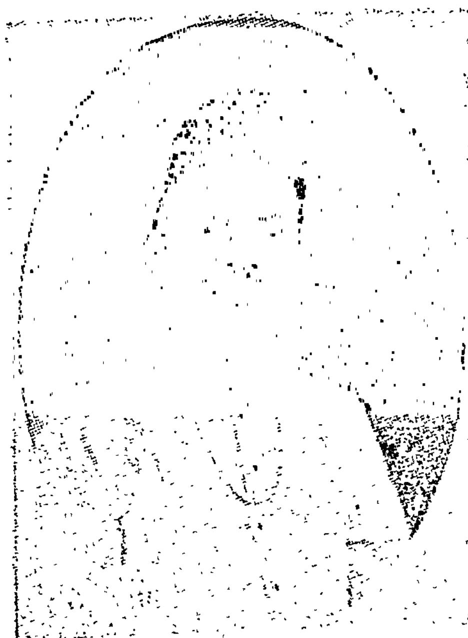
सेठ सांकलचन्दजी पोरवाल
विजयवाड़ा दक्षिण



सेठ दुर्गचन्दजी जैन, विजयवाड़ा



सेठ भैरूलालजी जैन, विजयवाड़ा



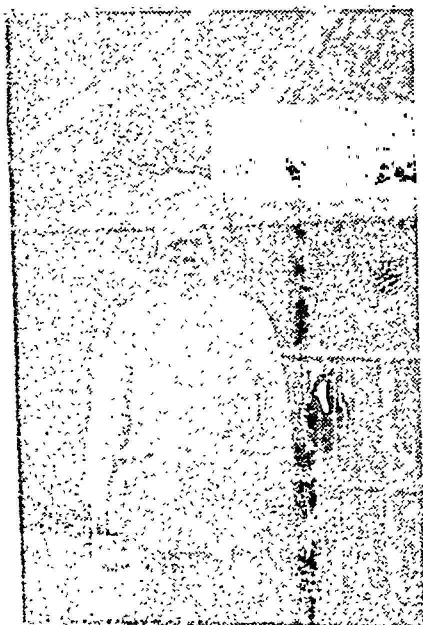
सेठ सम्पतलालजी लूणावत (महावीर ज्वेलरीमार्ट) विजयवाड़ा।



सेठ चंदनमलजी सोलंकी, विजयवाड़ा



सेठ चांदमलजी रांका, विजयवाड़ा



सेठ मिश्रीमलजी, राजमहेन्द्री



सेठ हजारीमलजी, राजमहेन्द्री

★श्री सेठ खूमाजी हिम्मतमलजी वोरा—बंगलोर सॉटी

श्री सेठ खूमाजी के हिम्मतमलजी, जसराजजी, देवीचन्दजी तथा पुखराजजी नामक चार पुत्र हुए। इनमें श्री जसराजजी के जेठमलजी व भँवरलालजी नामक दो पुत्र हैं। श्री देवीचंदजी के पुत्र कुन्दनमलजी, जयन्तीलालजी तथा मूलचंदजी हैं। आप होनहार युवक हैं।

स्व० सेठ हिम्तमलजी धार्मिक कार्यों में उत्साह पूर्वक अग्रेसर होकर भाग लेते थे एवं गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी तपश्चर्या युक्त जीवन बिताते थे।

—बोरिंग पैठ में-खुमाजी हिम्सतमलजी के नाम से वं बेंगलोर में देवीचन्द जेठमल के नास आपकी फर्मे हैं। प्रथम फर्म पर वस्त्र व्यवसाय एवं द्वितीय फर्म पर सोना चांदी एवं जवाहरात का व्यवसाय होता है।

★सेठ रतनचन्दजी लोढा—बंगलोर केन्ट

जन्म सं० १९५९ भाद्र पद सुदि ४। व्यवसायिक कार्यों में आपने सूझ बूझ से अच्छी सफलता प्राप्त की। आप बड़े ही उदार दानी मानी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के सज्जन हैं। स्थानीय जैन समाज के आप गौरवशाली महानुभाव हैं। तथा समय २ पर सामाजिक कार्यों में आर्थिक सहायता देते रहते हैं।

श्री सेठ रतनचन्दजी के मानमलजी एवं सज्जनराजजी नामक दो पुत्र हैं जो बड़े ही होनहार वालक हैं।

र्प्राईन्सरोड पो० पर "श्री शेषमलजी गणेशमलजी" नामक आपकी फर्म पर मनीलेण्डर का कार्य होता है।

★ श्री सेठ वगतावरमलजी छल्लाणी—रावर्टसनपेठ [मद्रास]

जेतारण (मारवाड़) निवासी सेठ घेवरचन्दजी के पुत्र वगतावरमलजी सन् १९४१ व्यापारार्थ यहाँ आए और—"वगतावरमल घेवरचन्द" के नाम से फर्म स्थापित कर सोना चांदी एवं किराये का व्यवसाय चालू किया। योग्यता एवं सचाई से व्यवसाय करने से अल्प समय में ही आपने अच्छी उन्नति करली। रावर्ट सन पेठ में दुकान स्थापित करने वालों में आप ही प्रथम मारवाड़ी हैं। आप बड़े ही प्रतिष्ठित, एवं धर्म प्रिय महानुभाव हैं।

श्री सेठ साहब के चम्पालालजी, पन्नालाल जी, अन्नराजजी एवं धनराजजी नामक ४ पुत्र हैं। आप स्थानकवासी आम्नाय मानने वाले है।

★श्री सेठ शान्तिलालजी वाफना—रावर्टसन पेठ [मद्रास]

श्री सेठ ऋषभचन्दजी धर्मपरायण उदार हृदय दानी सज्जन हो चुके हैं। स्थानीय जैन मन्दिर का निर्माण आपकी धर्म निष्ठता का परिचय देता है। आपके

पुत्र श्री शांतिलालजी का जन्म सं० १८८१ का है। जातीय तथा सामाजिक कार्यों में आपका प्रमुख सहयोग रहता है।

—श्री एच० आर० शांतिलालजी वाफना "नामक आपकी फर्म मोटर-डिलर एवं साईकिलों की एजेन्सी है। आपके श्री जयचन्दजी, पारसमलजी, नेमीचन्दजी, चम्पालालजी, कुमारपालजी नामक भाई है ये लोग भी अपने २ व्यवसाय में व्यस्त हैं।

★ श्री सेठ किस्तूरचन्दजी कुन्दनमलजी लूंकड बंगलोर सीटी

सोजत (मारवाड़) निवासी सेठ किस्तूर चन्दजी के पुत्र श्री कुन्दनमलजी धर्मनिष्ठ श्रावक एवं दानी महानुभाव हैं। स्थानीय गोशाला एवं अन्यान्य सार्वजनिक कार्यों में आपका अतिशय योग रहा है। साधु मुनियों की सेवामें सर्वदा अग्रेसर रहते हैं। स्थानीय स्थानक के लिए १००००) रुपये देकर आपने आदर्श धर्म सेवा की। आपके पुत्र श्री पुखराजजी भी आपही के पद चिन्हों पर चलने वाले गुण ग्राही युवक हैं।

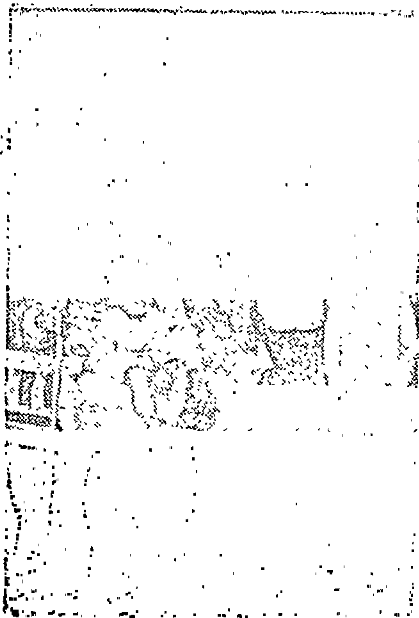
चिकपेठ पर मेसर्स किस्तूर चन्द कुन्दन मल नामक आपकी फर्म इलेक्ट्रिक सामान स्पलाई करती है। टेलीफोन नं० २६३२।

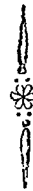


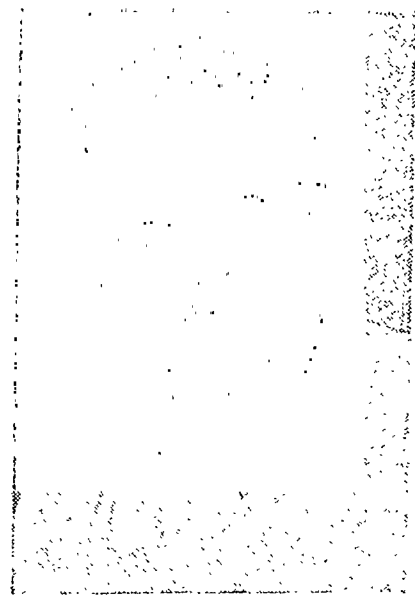
सेठ पुखराजजी कुन्दनमलजी बंगलोर

★ सेठ मिलापचंदजी आंचलिया टिंडिवनम

बड़ी पादू (मारवाड़) निवासी सेठकनकमलजी आंचालिया के पुत्र सेठ मिलाप चन्दजी आंचालिया टिंडिवनम के एक गणमान्य श्रीमन्त सज्जन है। आप तेरापंथी जैन धर्मनुयायी हैं। प्रकृति के बड़े उदार एवं मिलन सार हैं। शिक्षण संस्थाओं तथा सार्वजनिक कार्यों में तन मन व धन से पूर्ण सहयोगी रहते हैं। तेरापंथी हाई स्कूल राणावास के परम सहायक हैं।



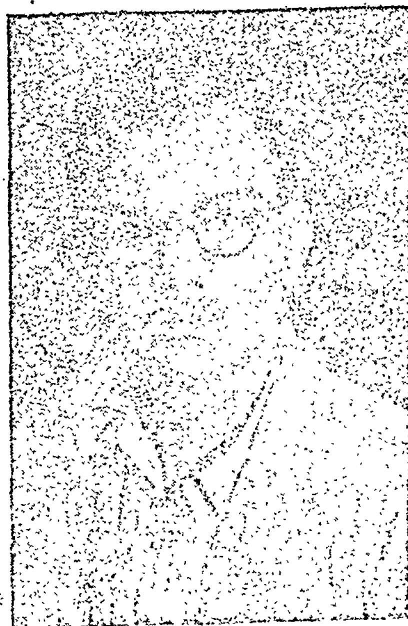




सेठ मिलापचन्दजी आंचलिया　　　　　कु० जबरचन्दजी आंचलिया

आपके ४ पुत्र हैं—श्री जबरचन्दजी, उत्तमचन्दजी गौतमचन्दजी व प्रकाशचन्दजी। श्री जबरचन्दजी एक उत्साही युवक हैं। 'गुजरमल कनकमल' के नाम से साहूकारी लेन देन व बैंकिंग का व्यवसाय होता है।

☆श्री पारसमलजी व नेमीचन्दजी टिंसकलेचा डिवरम्



श्री पारसमलजी सकलेचा टिंडिवरम्



श्री नेमीचन्दजी सकलेचा टिंडिवरम्

जैतारण (मारवाड़) निवासी सेठ अभयराजजी मकलेचाके ४ पुत्र हैं। श्री पारसमलजी (जन्म सं० १६८३) नेमीचन्दजी, शान्तिलालजी, तथा ऋषभचन्दजी श्री पारसमलजी व नेमीचन्दजी विचार शील उत्साही मिलनसार नवयुवक है। श्री पारसमलजी बी. ए. बड़े उदार हैं। पिताजी की स्मृति में जैतारण गौशाल में १६-०१ दान दिया है।

'अभयराज पारसमलजी' के नाम से बैंकिंग व साहूकारी लेन देन होता है। डालमिया सिमेण्ट वर्क्स के एजेण्ट भी हैं।

*सेठ ताराचंदजी गेलडा, मद्रास

आपका मूल निवास स्थान कुचेरा (मारवाड़) है। आपके पूर्वज सेठ अमरचन्दजी करीब १५० वर्ष पूर्व मद्रास आये और बैंकिंग का व्यवसाय जमाया संवत् १६५२ में आप स्वर्गवासी हुए। आपके ३ पुत्र हुए-सेठ पूनमचन्दजी, हीराचन्दजी और रामबक्सजी।

सेठ पूनमचन्दजी बडे ही उदार हृदय और धार्मिक वृत्ति के सज्जन थे। सं० १६६३ में आप स्वर्गवासी हुए। आपके ३ पुत्र हुए श्री ताराचन्दजी, किशनलालजी और इन्द्रचन्दजी।

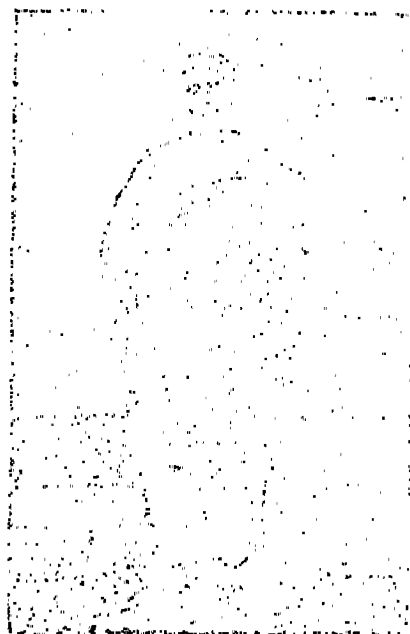
सेठ ताराचन्दजी–आपका जन्म सं० १६४० का है। भारत वर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के आगेवान नेताओं में आपका नाम है। धार्मिक व सामाजिक कार्यों में तन मन धन से सक्रिय सहयोग देते हैं। मद्रास स्थानकवासी जैन समाज के तो आप प्रधान कर्मठ कार्यकर्त्ता व सलाहकार हैं। कई संस्थाए आपही के प्रयत्न से जन्मी, फली और वर्तमान में अच्छा काम कर रही है। अ० भा० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के १७ वें मद्रास आधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष थे। श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल रतलाम के कई वर्षों तक सभापति रहे हैं और वर्तमान में भी प्रधान कार्यकर्त्ता हैं।

जैन साहित्य प्रचार की तरफ आपका विशेष लक्ष्य है। आपने स्व० जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी म० रचित ग्रन्थ अपनी ओर से छपवा कर अर्द्ध मूल्य या लागत मूल्य में समाज को दिये हैं। बड़े दानवीर भी हैं। कई जैन संस्थाओं के आप सहायक हैं।

समाज सुधार क्षेत्र में भी आपकी सेवाएं बड़ी प्रशंसनीय हैं। अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन के उप सभापति भी आप हैं। बड़े निर्भिक और स्पष्ट सत्यवादी हैं। रहन बडा सादा है। शुद्ध खद्दर का ही प्रयोग करते हैं। आपके ३ पुत्र हैं। श्री भागचंदजी नेमीचंदजी और खुशालचंदजी। श्री भागचंदजी भी पिताश्री के अनुरुप कर्मठ समाज सेवी हैं।

★ सेठ मोहनमलजी चौरडिया, मद्रास

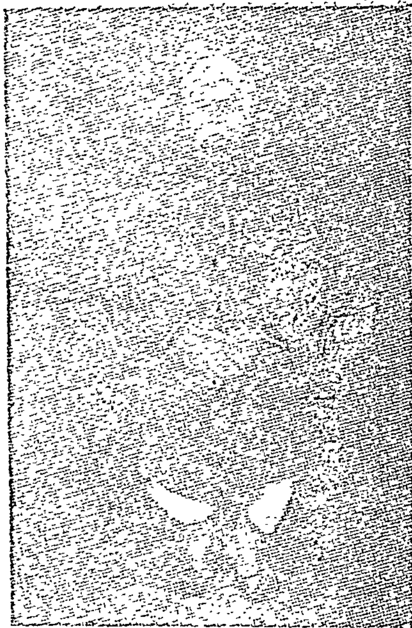
कुचेरा (जोधपुर स्टेट) निवासी सेठ अगरचन्दजी पैदल मार्ग द्वारा १८४७ में जालना होते हुए मद्रास आये। सन् १८८० तक रजिमेंटल बैङ्कर्स का काम करते रहे यहां के व्यापारिक समाज में एक आफ सरों में बड़े आदरणीय समझे जाते थे। आपके कोई पुत्र नहीं हुआ अतः आपने ज्येष्ठ भ्राता चतुर्भुजजी के पुत्र सेठ मानमल जी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सेठ अगरचन्दजी ने ३० हजार के दान से अगरचन्द ट्रस्ट कायम किया जो धार्मिक तथा ...म जक क... में उप... में आता है।



सेठ मानमलजी एक मेधावी बुद्धि के सज्जन थे। यही कारण है कि केवल १६ वर्ष की अल्पायु में ही आप नांवा (कुचामनरोड़) में हाकिम बना दिये गये थे। आपको होनहार समझकर अगरचंद जी ने अपनी फर्म का उत्तराधिकारी बनाया था लेकिन २८ वर्ष की अल्पायु में सन् १८९५ में आप स्वर्गवासी हो गए। आपके यहां सेठ मोहनलालजी सन् १८९६ में दत्तक आए। आपके बाद नोखा (मारवाड़) के सेठ मोहनलालजी वर्तमान में इस फर्म के मालिक हैं। आपके हाथ से इस फर्म की विशेष उन्नति हुई है। आपके दो पुत्र हैं। जो अभी अध्ययन कर रहे हैं। यह फर्म यहां के व्यापारिक समाज में बहुत पुरानी प्रतिष्ठित मानी जाती है। मद्रास प्रान्त में आपके सात आठ ग्राम जमींदारी के हैं। मद्रास की ओसवाल समाज में इस परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है। जैन समाज में आप अग्रणीय महानुभावों में से हैं। शिक्षा तथा सामाजिक सेवाओं के लिए आप सर्वदा तत्पर रहते हैं। तथा समय समय पर मुक्त हस्त से सहायता करते रहते हैं। अगरचन्द "मानमल" के नाम साहुकार पैठ मद्रास में बैङ्किंग तथा प्रापर्टी पर रुपया देने का काम होता है। आप की फर्म मद्रास के ओसवाल समाज की प्रधान धनिक फर्मों में से है।

★ सेठ सुखलालजी बहादुरमलजी कानमलजी समदड़ियामद्रास

श्री सेठ भैरुवक्षजी के बड़े पुत्र श्री सुखलालजी, धर्मिष्ठ परोपकारी और कुशल व्यापारी थे साहूकार पेठ के मन्दिर की प्रतिष्ठा में आप का अति शय सह-



सेठ सुखमलजी समदड़िया, मद्रास

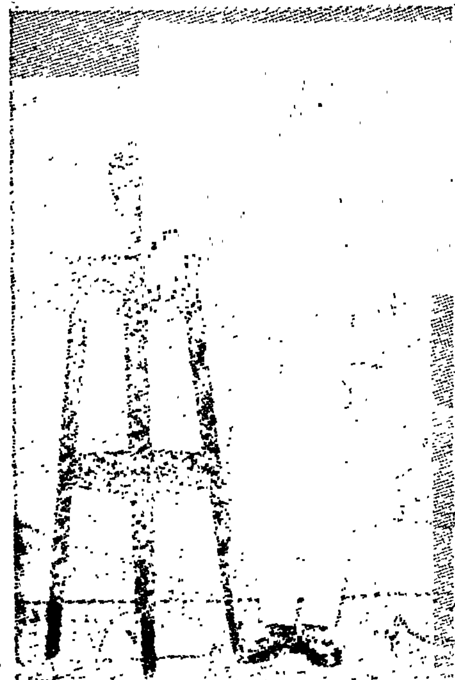


सेठ जीवनमलजी समदड़िया मद्रास



समदड़िया भवन, मद्रास





श्री मदनचन्दजी समदड़िया, मद्रास

योग रहा। स्थानीय दादावाड़ी का श्रेय आपही को है। इसी प्रकार से आपने कई ज्ञातीय कार्य कर एक आदर्श रक्खा। मद्रास के ६ मील दूर ऋषभदेव भगवान के मन्दिर निर्माण में आप अग्रेसर रहे। सं० २००४ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके डूंगरचन्दजी, जीवणचन्दजी, मदनचन्दजी, कमलचन्दजी, खूबचन्दजी, लालचन्दजी, पदमचन्दजी, प्रेमचन्दजी, एवं ऋषभचन्दजी नामक दस पुत्र हैं। वर्तमान में श्री मन्दिर और दादावाड़ी का शुभ कार्य श्री जीवनणचन्दजी तथा मदनचन्दजी के आधीन है। आप दोनों बन्धु उत्साही और धर्मनिष्ठ हैं। श्री जीवणचन्दजी के हुकमीचन्दजी, सज्जनचन्दजी निहालचन्दजी, बालचन्दजी, नामक चार पुत्र हैं। श्री मदनचन्दजी के किस्तूचन्दजी, ज्ञानचन्दजी एवं विमल चन्दजी ये तीन पुत्र हैं। दादावाड़ी के अन्तर्गत सुन्दर जिनालय है जिसकी लागत हजारों की है।

श्री सेठ बहादुरमलजी का जन्म सं० १६३४ का है। आप १६५१ में मद्रास आए। अपने ज्येष्ठ भ्राता सुखलालजी के साथ व्यवसाय करते रहे। ११ दिसम्बर १६४२ में आप दिवंगत हुए। श्री सागरमलजी और सायरमलजी ये दो पुत्र हुए।

श्री सेठ कानमलजी का जन्म सं० १६४१ में हुआ। सं० १६५५ में मद्रास आये आपके सरदारमलजी, लक्ष्मीचन्दजी, कृपाचन्दजी, एवं प्रकाशमलजी नामक चार पुत्र हैं।

वर्तमान में आप तीनों भ्राताओं की मद्रास में दुकानें हैं। मद्रास के प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं। आप लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा हैं। आपके परिवार की ओर से नागौर स्टेशन पर एक आराम प्रद सुन्दर धर्मशाला है एवं नागौर में एक सुन्दर जिन मन्दिर भी बनवाया है।

आपका पता।—

श्री सुखराजजी जीवणचन्दजी समदड़िया १७ विरपनस्ट्रट साहुकार पेठ मद्रास

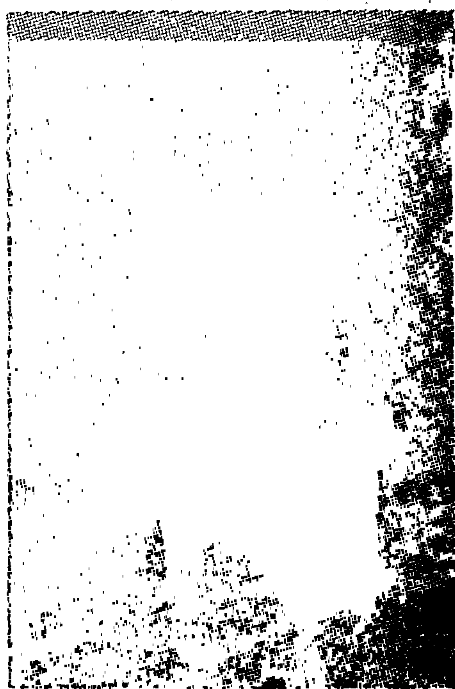
★श्री सेठ रावतमलजी सूरजमलजी वैद मेहता-मद्रास

स्थानक वासी आम्नाय उपासक श्री सेठ रावतमलजी नागौर से मद्रास आये एवं अपनी दुकान स्थापित की। आपके पुत्र सूरजमलजी ने व्यापार में बड़ी ख्याति प्राप्त की। आप के श्री शम्भूमलजी गोद आए।

श्री सेठ शम्भूमलजी का जन्म सं० १६४६ का है। आप धार्मिक वृत्ति के उदार महानुभाव हैं। आपके यहां से भिखारियों को सदाव्रत दिया जाता है। स्थानीय जैनस्कूल में आपकी ओर से २१०००) प्रदान किये गये तथा आप प्रति वर्ष धार्मिक एवं शिक्षा के कार्यों में सहायता देते रहते हैं। स्थानीय जैन समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके मांगीलालजी मदनलालजी, कमलचन्दजी



सेठ शंभूमलजी वैद, मद्रास



स्व० सेठ रावतमलजी वैद,



कु० श्री मदनलालजी वैद मद्रास



कु० कमलचन्दजी

पन्नालालजी एवं प्रतापसिंहजी नामक पांच पुत्र हैं। ८० बाजार रोड़ मेलापुर पर उपरोक्त नाम से आपकी फर्म पर लेन देन का व्यवसाय होता है।

★श्री सेठ लालचंदजी मूथा, गुलेजगढ़

आपके पिता श्री सिरेमलजी यहां व्यापारार्थ आये। कपड़े का व्यापार शुरू किया। सिरेमलजी के कोई सन्तान नहीं थी, अतः लालचन्दजी गोद लाये गये। आपकी मातु श्री का नाम जेठीबाई है। आपकी फर्म कर्नाटक प्रान्त में सब से अधिक प्रसिद्ध है। आप राय साहब हैं तथा कई वर्ष तक ओनरेरी मजिस्ट्रेट तथा स्थानीय म्यूनीसिपल कमेटी के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। आप स्थानकवासी समाज में काफी प्रसिद्ध सज्जन हैं। प्रति वर्ष चातुर्मास में १-२ मास मुनि सेवा करते हैं। सम्वत् १९९७ में आपने जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज का चातुर्मास यहां कराया। कर्नाटक प्रान्तीय जैन सेवा-संघ के आप अध्यक्ष हैं। आपके सुपुत्र का नाम श्री जौहरीलालजी है। आपकी एक



फर्म अहमदनगर में लालचन्द जंवरीलाल के नाम से चलती है।

★श्री सेठ शम्भूमलजी चोरड़िया—मद्रास

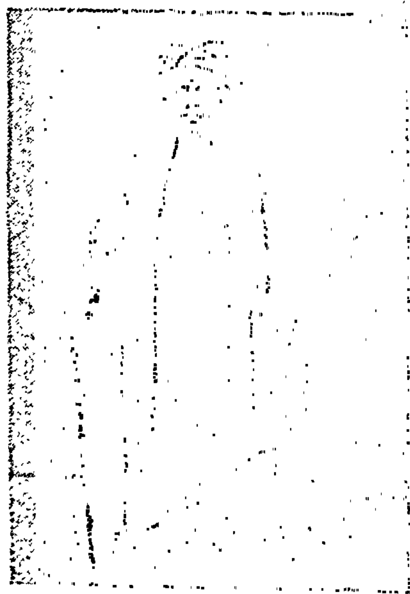
शुभ जन्म सं० १९५७। आपके पूर्वज व्यापारार्थ देश से मद्रास आये एवं सं० १९०२ में अपनी फर्म स्थापना की। इस प्रकार आपकी फर्म सबसे प्राचीन है। सेठ साहब की धार्मिक लगन शीलता दूसरों पर अपना अच्छा प्रभाव डालती है। आपके माणकचन्दजी एवं मूलचन्दजी नामक दो पुत्र हैं। श्री माणकचन्दजी के प्रेमचन्दजी, मदनचन्दजी एवं सुरेशचन्दजी नामक तीन पुत्र हैं। आप स्थानकवासी आम्नाय के मानने वाले हैं।

मेसर्स नवलमल शम्भूमल चोरड़िया के नाम से ९।१३ बाजार रोड मेलापुर में सोना चांदी तथा लेनदेन का व्यापार होता है। एवं एम. एस. फार्मेसी नामक आपका मैडिकल स्टोर भी है।



★ सेठ लालचंदजी मरलेचा, मद्रास

सौजत (मारवाड़) निवासी सेठ बिरदीचन्दजी मरलेचा एक परम धर्मनिष्ठ और उदार हृदय सज्जन थे। मद्रास जैन समाज व व्यापारी समाज में आपका विशिष्ठ स्थान था। सामाजिक, धार्मिक व अन्य लोकोपकारी कार्यों में आपकी सदा सहायता रहती थी। मद्रास में जैन बोडिंग निर्माण कार्य में ५० हजार रुपया आपने प्रदान किया था। केटालिया (मारवाड़) में ५० हजार दान प्रदान कर एक पाठशाला स्थापित की। सिरयारी के जैनेन्द्र ज्ञानमंदिर में २० हजार रुपया सहायतार्थ प्रदान किये। आपकी धर्मपत्नी के नाम से श्री प्रेमकँवर पाठशाला चल रही है। जैन गुरुकुल ब्यावर, नागौर सोजत, मद्रास आदि स्थानों की संस्थाओं को समय समय पर काफी सहायता प्रदान की जाती रही है।। आपके एक पुत्र हुए थे पर वे अल्पवय में ही स्वर्गवास हो जाने से मारवाड़ जंकशन के सेठ चंदनमलजी मरलेचा के पुत्र श्री लालचन्दजी को सं १९७० में गोद लिया।



स्व० सेठ बिरदीचंदजी मरलेचा, मद्रास



सेठ लालचंदजी मरलेचा, मद्रास

सेठ लालचंदजी:--आप भी अपनी उदार प्रकृति, मिलन सारिता तथा समाज सेवा भावना से बड़े लोकप्रिय सज्जन बने हुए है। आपका जन्म सं० १९३६ का है। आपने स्वर्गीय सेठ वृद्धिचंदजी सा० के स्मरणार्थ एक बड़ी धन राशी परोपकारी कार्यों के लिये निकाली है। मद्रास में पच्चीस हजार रुपये में "वृद्धिचन्द जैन फ्री डिसपेन्सरी" नामक धर्मार्थ औषधालय प्रारम्भ किया है।

रायपुरम् मद्रास में फर्म का नाम बिरदीचंद लालचन्द मरलेचा है।

★श्री सेठ एच० चन्दनमलजी वेद मूथा, मद्रास

सादड़ी (मारवाड़) निवासी सेठ चन्दनमलजी अपनी व्यापारिक सफलताओं के कारण ही आप हिन्दुस्तान चेम्बर्स ओफ कोमर्स एवं दी केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट एसोसियशन एवं दी मद्रास किराणा मर्चेण्ट एसोसियशन के पदाधिकारी है। न केवल आप व्यापारिक संस्थाओं में ही अग्रेसर है अपितु श्री एस. एस. जैन ऐज्यूकेशन सोसायटी की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। आपके बड़े पुत्र श्री लक्ष्मीचन्दजी का जन्म सं० १९८४ कार्तिक पूर्णिमा का है इनसे छोटे इन्द्रचन्दजी, नगराजजी, एवं धीरूचन्द जी हैं आपका यह परिवार श्वेताम्बर स्थानक वासी आम्नाय का उपासक है।



सेठ लक्ष्मीचन्दजी वैद मूथा मद्रास

फर्म ९७ नायनप्पा नायक स्ट्रीट पर चन्दनमल एण्ड कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध है। महता एण्ड कम्पनी के नाम से आपकी अति प्रसिद्ध द्वितीय फर्म से दवाइयों का थोक बन्द व्यवसाय होता है।

★श्री मणिलालजी रतनचंद्रजी मेहता—मद्रास

सन् १८९२ में पालनपुर (गुजरात) में श्री मणिलालजी का जन्म हुआ। सन् १९१६ में आप मद्रास आए एवं जवाहरात के व्यवसाय में प्रवृत हुए। अपनी व्यापारिक एवं मेधावी बुद्धि से अच्छी सफलता प्राप्त की। श्री मणिलालजी के ज्येष्ठ पुत्र रसिकलालजी का जन्म सन् १९२१ का है एवं छोटे पुत्र रजनीकान्तजी का जन्म १९२४ का है। पालनपुर में "रतनचन्द कपूरचन्द" के नामसे आयम्बिल खाता खुलवाया एवं २२५००) का दान देकर वर्धन एवं पोषण किया। सन् १९४७ में आपका स्वर्गवास होगया।

श्री रसिकलालजी एवं रजनीकान्तजी सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र है। आप भी आदर्शवादी एवं उदार दिल युवक हैं। स्थानीय जैन समाज में आपके परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है।

नं० १७२ नेताजी सुभाष रोड पर "मनीलाल एण्ड सन्स" नामक जवाहरात की फर्म मद्रास की प्रतिष्ठित एवं धनिक फर्मों में से है।

★श्री सेठ लालचंदजी लूणिया-मद्रास

स्थानकवासी आम्नाय के उपासक श्री सेठ पूनमचन्दजी के पुत्र श्री लालचन्दजी मिश्रीलालजी, जवतराजजी, एवं फूलचन्दजी हुए। आप चारों बन्धु उदार दिल तथा धर्म प्रेमी हैं। श्री मिश्रीलालजी का जन्म सं० १९६० फाल्गुन व. ी का है आप बड़े ही उत्साही एवं धार्मिक कार्यों में दिलचस्पी रखने वाले सज्जन हैं। श्री जेंवतराजी के पुत्र का नाम श्री शांतिलालजी है।

"श्री किशनलालजी रूपचन्दजी एंड को" नाम से नं० २७ गोडाउन स्ट्रीट में कपड़े का थोक बन्द व्यापार होता है। अहमदाबाद में पांच कुआं के पास "श्रीलालचंदजी मिश्रीलाल" के नाम से कपड़े की फर्म है और शोलापुर में भी फर्म की शाखा है। इस प्रकार से आपका उद्योग सुविस्तृत एवं सुव्यवस्थित है।

★श्री सेठ हजारीमलजी—मद्रास

आपका जन्म सं० १९६६ फाल्गुण सुदि २ सं० १९६८ में आप मद्रास व्यवसाय के निमित्त पधारे। ११ वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात्-जे० हजारीमल एन्ड को नामक फर्म नायनप्पा नायक स्ट्रीट नं० १२६ में स्थापित कर एलेक्ट्रिक सामान का इम्पोर्ट और एक्सपोर्ट प्रारम्भ किया। अपनी व्यापारिक कुशलता एवं दृढ़ अध्यवसाय से फर्म ने अतिशय उन्नति की।

जहाँ सेठ हजारीमलजी एक सफल व्यापारी हैं वहां धार्मिक एवं सामाजिक सेवा में भी अग्रेसर रहते हैं। आपकी प्रकृति बड़ी सौम्य है। आपका परिवार श्वेताम्बर आम्नाय का मानने वाला और धार्मिक कार्यों में पूर्ण रूपेण भाग लेता है।

★श्री सेठ जेंवतराजजी-मांडोत-मद्रास

श्वेताम्बर मंदिर आम्नाय के उपासक आहोर (जोधपुर) से सं १९६५ में आप के पिताजी व्यवसाय के निमित्त मद्रास चले आये। श्री जेंवतराजजी मिलनसार, उत्साही तथा समाज प्रतिष्ठित सज्जन हैं धार्मिकता एवं कर्म वीरता का आप में सुन्दर समन्वय है। आपके चम्पालालजी तथा महेन्द्र कुमारजी नामके दो पुत्र हैं।

आपकी फर्म—"ऋषभदास भंवरीमल" के नाम से नारायण मुदाली स्ट्रीट नं० १०१ में स्टेशनरी का डायरेक्टर इम्पोर्ट तथा कमिशन एजेन्ट का काम करती है। टेलीफोन नं० ४८६६ है।

★श्री शाह मोतीचन्दजी परमार-मद्रास

जन्म सं १९६७ आसोज बुद्ध ११ का है। आपने अपने जीवन में स्य गवृत्ति को बड़ा महत्व दिया। स्थानीय जैन समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के आप केन्द्र हैं। श्री मोतीचंदजी के सुपुत्र श्री दानमलजी प्रतिभा शाली युवक है। आप लोग श्वेताम्बर जैन आम्नाय के अनुयायी हैं। मंडाणी (सरोही) का मूल निवास है।

—आपकी फर्म "श्री शाह मोतीचंदजी गणेशमलजी" के नाम से नं० ४३० मिन्ट स्ट्रीट साहूकार पेठ पर है। स्टेशनरी सामान की यह फर्म एजेन्ट है। फर्म की शाखा नारायण स्ट्रीट में भी है।

★श्री सेठ सलराजजी रांका-मद्रास

आपका जन्म सं० १९६२ पोष सुद ५ को कोटड़ा (ब्यावर) में श्री जगरूपमलजी सा के घर हुआ। सन् १९४१ में श्री सलराजजी व्यवसाय के निमित्त मद्रास आए एवं नं० ४ नारायण मुदाली स्ट्रीट में "शा सालराज मोतीलाल के नाम से फर्म स्थापित कर स्टेशनरी समान इम्पोर्ट का और एक्सपोर्ट का व्यवसाय चालू किया। एवं आपने अच्छी सफलता प्राप्त की।

श्री सेठ सलराजजी धर्मनिष्ठ एवं दयालु सज्जन हैं। साधु-मुनियों की सेवा के पूर्ण सेवा भावी हैं। आपके श्री मोतीलालजी, चम्पालालजी, एवं नवरत्नमलजी नामक तीन पुत्र हैं। आप तीनों होनहार हैं।

★ श्री मूलचंदजी जवानमलजी लोढा-मद्रास

श्री सेठ मूलचन्दजी के सुपुत्र श्री जवानमलजी ने अपनी व्यापारिक बुद्धि से महती सफलता प्राप्त कर नामांकित पुरुषों में अपनी गणना कराई। आप

के फौजमलजी एवं चुन्नीलालजी नामक दो भाई और थे। श्री जवानमलजी के जीवराजजी कुन्दनमलजी, बस्तीमलजी, हीराचन्दजी एवं सोहनलालजी नामक पांच पुत्र हुए। इनमें श्री सोहनलालजी का स्वर्गवास हो चुका है। श्री चुन्नीलालजी के नेमीचंदजी, चंपालालजी और मांगीलालजी नामक तीन पुत्र हैं श्री कुन्दनमल (जवानमलजी के द्वितीय पुत्र) के अन्नराजजी, विमलचंदजी, वसन्तराजजी एवं गोतमराजजी नामक चार पुत्र हुए। श्री बस्तीमलजी के अमृतलालजी, चंदनमलजी, प्रेमरतनजी नामक तीन पुत्र हैं श्री हीराचंदजी के एक पुत्र है। इस प्रकार से यह लोढ़ा परिवार समृद्ध एवं सुखी है, तथा धर्म की ओर भी पूर्ण अभिरुचि है। आप सब बन्धु अपने २ व्यवसाय में व्यस्त हैं।

★सेठ माणकचंदजी बेताला मद्रास

जन्म सं० १९६५ फाल्गुन पूर्णिमा। आप श्री सेठ अमरचंदजी के दत्तक पुत्र हैं। २-३० वीरपन स्ट्रीट साहूकार पेठ पर अपनी "देवीचंद माणकचंद" के नाम से फर्म स्थापित कर हीरे जवाहरात का व्यवसाय चालू किया। न केवल आप व्यवसायिक कार्यों में ही व्यस्त रहते हैं अपितु सार्वजनिक कार्यों के प्रति भी आप सक्रिय रहते हैं। और हजारों रुपये धर्म कार्य एवं जातीय सेवा में लगाते रहते हैं श्री सेठ अमरचंदजी नागौर में धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

श्री माणकचंदजी के गौतमचंदजी और हरिश्चंद्रजी नामक दो पुत्र हैं। जो होनहार एवं बुद्धिमान युवक हैं।

★सेठ हीराचंदजी चोरड़िया—मद्रास

जन्म सं० १९५७ फाल्गुन बुद ७ का है। व्यवसायिक महत्वा कांक्षा से आप मद्रास चले आए और २१स्वीरपन स्ट्रीट साहुकार पेठ पर अपनी फर्म सिरेमल हीराचन्द स्थापित कर मशीनरी की एन्जेसी ले व्यवसाय प्रारम्भ कर किया। एवं अच्छी सफलता प्राप्त की। जैसे आपने धन सञ्चय किया वैसे ही दान भी करते हैं। आपने मूल निवास स्थान पर श्री मोहनलालजी श्री खेमराजजी माणकचन्दजी के सहयोग से ११०००) की लागत का एक तालाब बनवा कर-जनहित का कार्य किया जैन स्कूल में २१००) का कमरा बनवाया है।

आपके अमरचन्दजी, तेजराजजी, प्रकाशचन्द्रजी, महावीरचंदजी एवं उत्तमचंदजी नामक पांच पुत्र हैं इनमें श्री तेजराजजी के एक बालक हैं। आप पांचों बन्धु उत्साही मिलनसार एवं प्रेमी युवक हैं। तार का पता नोखावाला एवं टेलीफोन नं० ५५०४१।

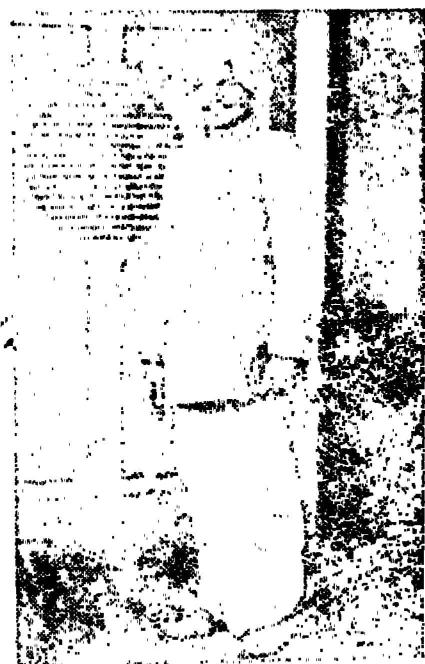
★सेठ केवलचंदजी बरमेचा-मद्रास

श्री सेठ केवलचंदजी, धर्मपरायण उदार हृदय के दयालु सज्जन हैं अपनी व्यापारिक बुद्धि से आपने अच्छी उन्नति करली है। आपके धर्मीचंदजी नाम

एक पुत्र है। श्री केवलचंदजी के जेष्ठ बन्धु श्री खींवराजजी के पुत्र श्री इन्द्रचंदजी हैं। आपका यह परिवार स्थानक वासी आम्नाय का अनुयायी है।

आपके यहां "श्री जैन स्टोर्स" के नाम से नं० ३ तुलासींगम स्ट्रीट साहूकार पेठ में बढ़िया डिजायन के रेशमी कार्य "आरी भारत" और एम्ब्रायिडरी का काम जम्फर गबन, साड़ी इत्यादि का सुन्दर काम होता है।

★सेठ कन्हैयालालजी गादिया, आरकोनम् (मद्रास)



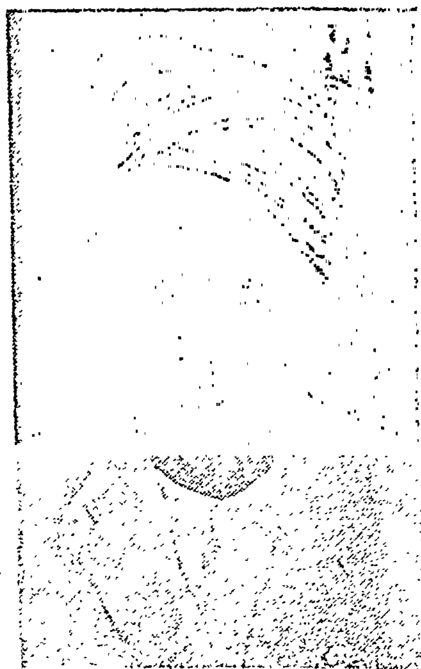
आप बगड़ी सज्जनपुर (मारवाड़ के मूल निवासी हैं। आपके पिता श्री सेठ गुलाबचंदजी बड़े धर्मात्मा सज्जन थे।

सेठ कन्हैलालजी एक मिलनसार नवीन विचारों के समाज प्रेमी नवयुवक हैं।

'जी० कन्हैयालाल साहूकार के नाम से आपकी फर्म स्टेंडर्ड वेक्यूम आइल कम्पनी दी सीमेंट मार्केटिंग कंपनी (इंडिया लि०) की इजेएट तथा इम्पीरिल केमिकल एराडस्ट्रीज लि० की डिस्ट्रीब्यूटर हैं। तिरव लोर में भी एक ब्रांच है।

★खींसेठ वराजजी चोरडिया-मद्रस

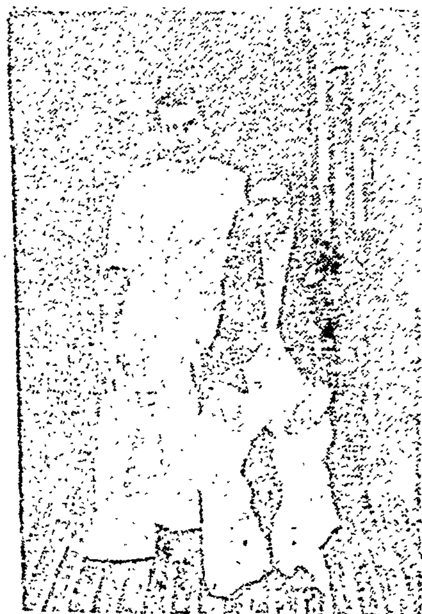
स्थानकवासी धर्मानुयायी श्री सेठ खीवराजजी का जन्म सं० १६७१ मिति आसोज सुदि ६ को हुआ। आप नोखा (जोधपुर) निवासी हैं। जैन हाईस्कूल में २१००) की लागत का एक हाल बनवा कर अपनी शिक्षा प्रेम का परिचय दिया। आप बड़े ही उदारदिल और मिलनसार सज्जन हैं। अपनी योग्यता से फर्म की आपने अच्छी उन्नति की है। मेमर्स चोरड़िया ब्रादर्स नं० २६ जनरल मुत्थाली स्ट्रीट साहुकार पेठ पर आपकी फर्म मनीलेएडरी का व्यवसाय बृहद रूप करती है। श्री सेठ खीवराजजी के देवराजजी तथा नवरत्नमल नामक दो पुत्र हैं।



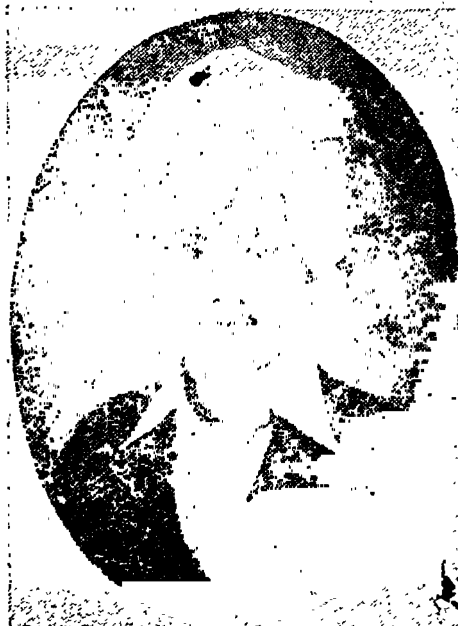
सेठ किशनलालजी छजानी, तंजोर



शाह लूम्बाजी गेनाजी
(वांकली मारवाड़ निवासी), गुडीवाड़



श्री उमरावसिंहजी भोपालसिंहजी, चिरमारम

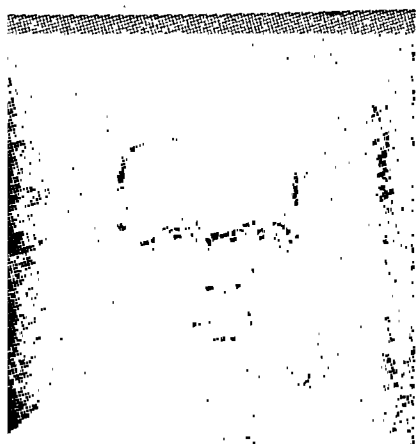


श्री ऋषभचन्दजी जैन, पिटापुरम

★ सेठ ओटाजी शिवदानजी, कोइम्बटूर

सादूर (मारवाड़) निवासी सेठ शीवदानजी के ३ पुत्र हैं – श्री ओटाजी व ी केशाजी। सेठ ओटाजी के विनयचन्द्जी तथा श्री केशाजी के वेलराजजी नामक त्र हैं। श्री वेलराजजी के फूलचन्दजी और फूलचन्दजी के हीराचन्दजी नामक पुत्र ैं।

सेठ विनयचन्दजी ही फर्म के मुखिया हैं। आपका जन्म सं० १९७२ फाल्गुन ुक्ला १० है। कोयम्बटूर में आपकी २ दुकाने हैं। फर्मों के नाम (१) ओटाजी शेवदानजी तथा (२) एस० ओटाजी के नाम से है। फर्म पर गिरवी, साहूकारी लेन ेन का व्यवसाय है। यहां की प्रतिष्ठित श्रीमंत फर्मों में आपकी गिनती है।



सेठ सुगनचन्दजी छल्लाणी
तंजोर

★ सेठ नेमीचन्दजी रघुनाथमलजी लूंकड़ गदग (धारवाड़)

आपका मूलनिवास स्थान मोकलसर (मारवाड़) है। स्व० सेठ जेठमलजी के ३ पुत्र हुए सेठ नेमीचंदजी, रघुनाथमलजी तथा रिखबचंदजी। आप तीनों बंधु बड़े धर्मनिष्ठ व मिलनसार सज्जन हैं। शिक्षा व साहित्यिक कार्यों से बड़ा प्रेम रखते हैं। सेठ नेमीचंदजी के जुगराजजी शान्तिलालजी तथा सेठ रघुनाथमलजी के पार्श्वमलजी राजमलजी व बाबूलालजी नामक पुत्र हैं।

'सेठ नेमीचंदजी रघुनाथमलजी के नाम से कपड़े का व्यापार होता है।

★ सेठ जेठमलजी मुलतानचंदजी विजयानगरम्

भारुदां (मारवाड़) निवासी सेठ शेषमलजी श्री श्रीमाल के ५ पुत्र हुए श्री जेठमलजी, मुलतानमलजी, सुकनराजजी मिश्रीमलजी तथा बाबूलालजी। जेठमलजी एक उदार हृदयी सज्जन हैं। जेठमल मुलतानमल के नाम से आपकी फर्म पर ... का थोक बंद व्यवसाय होता है। फिरोजाबाद और

सालूर में भी आपकी दुकाने हैं।

★सेठ रिखवाजी गणेशमलजी नैल्लौर

गुढ़ा बालोतरा निवासी आप पोरवाल जातीय श्वेताम्बर जैन हैं। सो व चांदी के आभूषण व फैन्सी डिजाईन के बर्तन निर्माता के रूप में आपकी फ विख्यात है। आप बड़े धर्म प्रिय मिलनसार सज्जन हैं।



★ सेठ जवानमलजी गणेशमलजी नैल्लोर

करीब १४ वर्ष से आपकी फ नैल्लोर में प्रतिष्ठित है। इस श्रीमं फर्म पर सोने व चांदी के जेवर तथ चांदी के बर्तन तैयार मिलते हैं। बर्त फैन्सी डिजाईन के सुन्दर कारीगरी यु बनने से दूर २ तक बिकने जाते हैं फर्म की सच्चाई व असली माल वे लिये बड़ी प्रतिष्ठा है।

सेठ जवानमलजी गणेशमलजी ब उदार सज्जन हैं।

★सेठसुपार्श्वमलजी चौरड़िया, नीलकुप्पम

नागार निवासी सेठ मांगीलालजी चौरड़िया के सुपुत्र सेठ सुपार्श्वमलजी ब मिलनसार सज्जन हैं। नीलीकुप्पम में आपकी फर्म एक प्रतिष्ठित श्रीमंत मान जाती है। आपके ५ पुत्र हैं-श्री धनरूपमलजी, कल्याणमलजी, हस्तीमलज जंवरीमलजी व चंचलमलजी। धनरूपमलजी इन्टर में पढ़ रहे हैं और होनहा युवक हैं।

'सुपार्श्वमल धनरूपमल' के नाम से जवाहरात का तथा साहूकारी लेन दे का व्यवसाय होता है।

★सेठ छोटेलालजी अजीतसिंहजी, गुलाबपुरा (मेवाड़)

'मेसर्स छोटेलालज अजीतसिंह' फर्म गुलाबपुरा व विजयनगर में अपन विशेष प्रतिष्ठा रखती है।

फर्म के मालिक सेठ सौभाग्यचन्दजी नाहर टांटोटी निवासी हैं। आप ए उदार प्रकृति के सज्जन हैं। शिक्षा, धर्म व समाज के कार्यों में सदा सक्रिय सहयोग रहते हैं। फर्म की ओर से परोपकारी कार्यों में सदा सहायता दी जाती है फर्म की उन्नति में श्री कितूरचंदजी नाहर का विशेष सहयोग है। आप श्री नानव जैन छात्रालय के मंत्री हैं।